कर्नल जेम्स टॉड कृत

राजस्थान का इतिहास

(एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजपूताना का हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक
डॉ० कालूराम शर्मा
प्रोफेसर एव अध्यक्ष इतिहास विभाग
वनस्थली विद्यापीठ विश्वविद्यालय
(राजस्थान)

श्याम प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक श्याम प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी जयपुर 302003

सस्करण 1990

मूल्य एक सौ पच्चीस रुपये

मुद्रक गोपाल आर्ट प्रिन्टर्स
जयपुर-302003

प्रस्तावना

कर्नल जेम्स टॉड को "राजस्थान के इतिहास का पिता" माना जाता है। ऐसा मानना उचित भी है। उसके पहले, राजपूताना की विभिन्न रियासतो का अपने राज्य के चारण-भाटो के काव्य ग्र था के रूप मे अलग अलग इतिहास तो उपलब्ध था पर तु समूचे राजस्थान का इतिहास किसी एक ग्र थ मे उपलब्ध न था। वस्तुत जिस प्रदेश को हम आजकल राजस्थान कहते है, उसको रजवाडा, राजस्थान अथवा राजपूताना के नाम से सम्बोधन करने वाला पहला इतिहासकर टॉड ही था। उसी ने सबसे पहले मेवाड, मारवाड, बीकानेर, जसलमेर, जयपुर-शेखावाटी, बू दी और कोटा-राजस्थान की इन सात प्रमुख रियासतो का इतिहास एक ही ग्र थ मे लिखा जो राजस्थान का इतिहास कहलाया। इस ग्र थ के सम्ब ध मे जैसा कि डा ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि यह ग्र थ सब अशो मे पूर्ण नही है कि तु फिर भी वैज्ञानिक अ वेषको के लिये एक अद्भुत मौलिक सामग्री है।

जेम्स टाड मूल रूप से स्काटलण्ड का निवासी था। उसके पिता इगलण्ड मे नौकरी करते थे। टाड का ज म 20 माच 1782 ई मे हुआ था और 1800 ई के अ त मे वह ईस्ट इडिया कम्पनी का नौकर हो गया और उसे इजीनियर का पद देकर भारत भेज दिया गया क्योकि उसने तकनीकी शिक्षा प्राप्त की थी। भारत आते ही उसे कम्पनी सरकार ने दिल्ली की पुरानी यमुना नहर का सर्वे करने तथा उसकी मरम्मत का काम सौपा। बाद मे उसे लेफ्टीनेण्ट के पद पर पदोन्नत किया गया और कुछ समय बाद ग्वालियर के मराठा राजा सि धिया के दरबार मे रेजीडेण्ट अथवा एजेण्ट के पद पर नियुक्त किया गया। इस पद पर वह लगभग दस वष तक बना रहा और कलकत्ता से गुजरात तक का भ्रमण किया। राजस्थान के राज्यो म भी आने जाने के अवसर मिलते रहे। 1806 ई के जून मास मे वह पहली बार उदयपुर आया था। 1812-17 ई की अवधि मे वह निर तर भ्रमण करता रहा व ऐतिहासिक सामग्री का सग्रह भी करता रहा। वह जहा भी जाता कुछ न कुछ सामग्री जरूर ले आता। तत्कालीन भारत की सबस प्रमुख शक्ति का राजनतिक एजेण्ट होन के कारण साम तो एव राजा महाराजाओ ने इस काम मे उसकी पूरी पूरी सहायता की। उसन राजस्थान के सभी प्रमुख स्थानो का भ्रमण किया और स्थान-स्थान पर जाकर शिलालेख, हस्तलिखित पुस्तको और बहुत से सिक्को को प्राप्त किया। जून, 1818 ई को उसे उदयपुर मे ईस्ट इडिया कम्पनी का रेजीडण्ट नियुक्त कर उदयपुर भेज दिया गया। जहाँ वह 1822 ई तक रहा। यहा रहत हुये उसन अपन गुरु जन यति ज्ञानच द की सहायता से सग्रहीत चारण भाटो की ख्यातो, द त-कथाओ और वशावलियो तथा शिलालेखो आदि का अथ समझ कर अपनी भाषा म

उनका अनुवाद किया। सस्कृत, अरबी फारसी आदि दस्तावेजो एव पाण्डुलिपियो का अथ समझने मे उसे अपने कुछ मु शियो से भी सहायता मिली। जून, 1822 को वह त्यागपत्र देकर वापस स्वदेश लौट गया। जाते समय वह अपने द्वारा सग्रहीत समस्त सामग्री को भी अपने साथ लेता गया। 16 नवम्बर, 1826 ई को उसने इगलण्ड मे अपनी शादी भी कर ली जिससे उसे दो पुत्र एव एक पुत्री हुई। 17 नवम्बर, 1835 ई को उसकी मृत्यु हो गई।

इगलण्ड जाने के बाद उसने अपनी सग्रहीत सामग्री के आधार पर राजस्थान का इतिहास लिखने का निश्चय किया। इसकी प्रेरणा उसे कसे मिली, उस सम्बन्ध मे उसने अपने ग्रथ की प्रस्तावना म लिखा है "भारत म पर रखते ही मैंने इस बात का निणय कर लिया था कि एक ऐसी जाति के सम्ब ध म जिसका नान यूरोप के लोगो को बिल्कुल नही के बराबर है, मैं ऐतिहासिक खोज का काम अवश्य करू गा। अपने इसी निणय के अनुसार मैंने यहा आते ही अपना काम शुरू कर दिया था।" इगलण्ड जाकर उसने अपने विगत बाईस वर्षों के श्रम को लिखित रूप देना शुरू किया और 1829 ई मे "एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजपूताना" का प्रथम भाग अपने निजी व्यय से छपवाकर प्रकाशित करवाया और 1832 ई मे उसका दूसरा भाग भी प्रकाशित करवाया।

टाड का 'एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज आफ राजपूताना" उसके चौबीस-पच्चीस वर्षों के अथक परिश्रम एव अनुभव का परिणाम है। उसमे राजस्थान क सात प्रमुख राज्या का इतिहास तो है ही, परन्तु भारत के प्राचीन युग के इतिहास के साथ साथ सामाजिक धार्मिक एव सास्कृतिक स्थिति का भी सुन्दर वणन है।

आज का आधुनिक इतिहासकार जिसको इतिहास के अध्ययन अ वेषण के लिय आवश्यक सभी प्रकार की साधन सामग्री और उसके परीक्षण की वज्ञानिक पद्धतिया उपलब्ध है टाड के ग्र थ की कमियो और भूलो की तरफ अधिक सक्रिय और जागरूक होने की चेष्टा कर रहा है। ऐसा करना अनुचित नही है यदि वह उन परिस्थितियो, विशेषकर राजनतिक अराजकता और टॉड की स्वय की विवशताओ को भी ध्यान मे रखे, जिनके अन्तगत भी उसने अथक परिश्रम करके राजस्थान के इतिहास का ऐसा अनमोल ढाचा खडा किया जिसका महत्व आज भी बना हुआ है। वह एक विदेशी था। साहित्य अथवा इतिहास का विद्यार्थी नही अपितु तकनीकी शिक्षा प्राप्त एक सामान्य विद्यार्थी। किसी लाड अथवा सम्भ्रान्त सम्पन्न परिवार का नही अपितु एक साधारण परिवार का सदस्य था। उसे भारतीय भाषाओ अथवा स्थानीय बोलियो का नान न था। ईस्ट इडिया कम्पनी का दायित्व निभाते रहने के कारण अधिक समय भी नही मिल पाता था। फिर भी उसम लगन और परिश्रम करने की शक्ति का अभाव न था। उसके दुभाषिये उसको जसा समझाते उसको

मानने के अलावा उसके सामने दूसरा विकल्प न था। इसके अलावा उसे नैणसी की ख्यात जैसी कुछ श्रेष्ठ रचनायें भी उपलब्ध नहीं हो पाई थी। अत उसे चारण-भाटो की ख्यातो, काव्य ग्रथो और वशावलियो पर ही अधिक निर्भर रहना पडा। यद्यपि उसने उनकी रचनाओ के अतिशयोक्तिपूर्ण विवरणो से ऐतिहासिक सत्य को खोज निकालने का पूरा पूरा प्रयास किया परन्तु राजपूती शौर्य एव पराक्रम उनके उज्ज्वल चरित्र और निष्ठा ने उसे राजपूतो का अधविश्वासी प्रशसक बना डाला और वह उन अतिशयोक्तिपूर्ण विवरणो की उपेक्षा नही कर पाया। उसने स्वय लिखा है कि, "मैं इस देश की मिट्टी से प्यार करता हू। वृक्षा एव उनकी शाखाओ से स्नेह करता हू एव देश के स्त्री पुरुषो के साथ मैं अपना आत्मिक सम्बन्ध रखता हू।"

ऐसे व्यक्ति पर यह आरोप लगाना कि उसने इस देश के लोगो मे साम्प्रदायिक फूट पैदा करने के लिये, राजपूतो को मराठो और मुसलमानो से जुदा करने के लिये अपने ग्रन्थ मे मराठो और मुसलमानो की निन्दा की है, बेबुनियाद है। हा, यह आरोप सही है कि उसके ग्रन्थ मे अनेक तिथिया सही नही है, कही कही पर घटनाओ का क्रम आगे पीछे हो गया है और कही-कही पर वह प्रमुख लोगो के आपसी पारिवारिक सम्बन्धो को भी सही ढग से प्रस्तुत नही कर पाया है। परन्तु इसका कारण सरलता से समझ मे आ जाता है। उसने इगलैण्ड मे जाकर ग्रन्थ लिखना शुरू किया था और उसका स्वास्थ्य भी उसका साथ नही दे रहा था। आवश्यक सन्देह को दूर करने के लिये कोई साधन भी उपलब्ध न था। अत जो कुछ सामग्री उसके पास उपलब्ध थी और जितनी याद बाकी रह गई थी उसे उसी पर निर्भर करना पडा। ऐसे मे कुछ बातो का भूल जाना अस्वाभाविक न था।

परन्तु वह जो कुछ लिख गया वह कितना मौलिक और महत्वपूर्ण था और आज भी है, इसका पता उसके ग्रन्थ को आधार बनाकर बाद मे लिखे गये ग्रन्थो तथा ऐतिहासिक शोध कार्यों से चलता है। उसके ग्रन्थ ने अनेक विद्वानो को प्रेरणा प्रदान की जिन्होने अपने ढग से राजस्थान का इतिहास लिखा। अनेको नई दिशाए प्रदान की जिन्होने शोधकार्यों से उसके कार्य को आगे बढाया। आज भी शोधकर्ता उसके ग्रन्थ को एक पवित्र ग्रन्थ की भाति पढकर फिर आगे बढने की चेष्टा करते है। एक विदेशी होते हुये भी उसने राजपूत समाज, नीति नियम, शासन व्यवस्था रस्म रिवाज तथा यहा की भौगोलिक जानकारी आदि के बारे मे पूर्ण जानकारी प्राप्त की थी और इससे उसकी अलौकिक प्रतिभा का पता चलता है। राजपूत समाज के बारे मे जितनी सामग्री टॉड के ग्रन्थ मे है वह अन्यत्र नही उपलब्ध होती है। न कही राजपूत सामन्तशाही का ऐसा विस्तृत वर्णन मिलता है जैसा कि टाड के इतिहास मे है।

टॉड के इस महान ग्रन्थ का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद 1907-9 की अवधि मे प बलदेव प्रसाद मिश्र ने किया। दूसरे भाग के प्रकाशन के पूर्व ही उनका

स्वर्गवास हो गया। अत दूसरे भाग की पाण्डुलिपि को संशोधित करने का काम उनके भ्राता प ज्वालाप्रसाद मिश्र और राजस्थान के प्रारम्भिक सुप्रसिद्ध इतिहासकार मु शी देवी प्रसाद ने किया। 1961 ई मे श्री केशवकुमार ठाकुर ने एक ही ग्रन्थ मे उसके दोनो भागो का अनुवाद कर प्रकाशित करवाया।

अनुवाद मे मूल लेखक के विचारो को सुरक्षित रखना एक कठिन काय है और ऐतिहासिक ग्र थ के अनुवाद म यह दायित्व और भी अधिक बढ जाता था। क्योंकि अनुवादक अपने विचारो को थोपने का सयम नही रख पाता। टॉड के ग्रन्थ के हि दी अनुवादो—विशेषकर मिश्र बधुग्रा के द्वारा किये गये प्रथम हिन्दी अनुवाद मे भी कुछ ऐसा ही हो गया। दूसर अनुवादक महोदय भी मिश्र बधुओ के प्रभाव से अपने को पूरी तरह से मुक्त नही रख पाये। परिणामस्वरूप टॉड के हिन्दी अनुवादो म ऐसी बहुत सी बाता की भरमार है जो टाड के मूल ग्रन्थ मे कही देखने को नही मिलती। इस प्रकार की बातो से हिन्दी अनुवादो पर ही निभर रहने वाले विद्यार्थी, शिक्षक और शोधकर्ता को काफी भ्रम उत्पन हो जाना स्वाभाविक ही है।

प्रस्तुत अनुवाद मे मैंने अपने आपको टाड के मूल ग्रन्थ के विवरण तक ही सीमित रखन पूरा पूरा प्रयास किया है। अपनी तरफ से लीपा पोती करने की चेष्टा नही की है। हा जहाँ आवश्यक हुआ पाद टिप्पणी के द्वारा ग्र थ की भूलो तथा असत्य कथन का स्पष्टीकरण करने का प्रयास अवश्य किया है ताकि पाठक को वास्तविक सत्य की जानकारी भी मिल जाय। मैं नही जानता कि मैं अपने इस प्रयास मे कहा तक सफल रह पाया हू। इसका निणय तो विद्वान् जिज्ञासु ही करेंगे।

श्याम प्रकाशन के प्रतिष्ठापक श्री ओमप्रकाश अग्रवाल ने टॉड के इस हि दी अनुवाद के प्रकाशन का दायित्व लेकर अपन जिस उत्साह और साहित्य प्रेम का परिचय दिया है उसके लिये मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हू।

वनस्थली विद्यापीठ
18–5–1988

कालूराम शर्मा

. 1 /2'

विषय-सूची

मारवाड का इतिहास

बीकानेर का इतिहास

जैसलमेर का इतिहास

जयपुर राज्य का इतिहास

बूंदी का इतिहास

कोटा राज्य का इतिहास

राजपूताने का भूगोल

राजस्थान, भारत के उस क्षेत्र का सामूहिक तथा अति उत्तम नाम है जो राजपूतो (राजाओ) का निवास स्थान है। इस देश की जनप्रिय बोली मे इसको "राजवाडा' के नाम से पुकारा जाता है। राजपूता के इस क्षेत्र की पहचान के लिए अग्रेज इसे सामान्य रूप से "राजपूताना" के नाम से पुकारने लगे।

इस क्षेत्र के पश्चिम मे सिन्धु नदी की वादी पूव मे बुन्देलखण्ड उत्तर मे सतलज नदी के दक्षिण ओर का जगलदेश नामक मरुस्थल और दक्षिण मे विन्ध्याचल पवत है। यह समूचा क्षेत्र अनुमान से आठ अक्षाश और नौ रेखाश मे आता है अर्थात् 22 से 30 उत्तर अक्षाश और 69 से 78 पूव देशान्तर तक विस्तृत है जिसका क्षेत्र-फल लगभग 3 50,000 वगमील है।

यदि राजस्थान की आकृति की ओर पाठको का ध्यान दिलाऊँ और उन्हे अलग खडे हुए आबू पहाड के सबसे ऊँचे गुरु शिखर[1] पर बैठाऊँ तो भिन्न प्रकार की आकृति दृष्टिगत होगी। उसे पश्चिम मे सिन्धु नद के नीले जल से लेकर पूव मे सरपत या नरकट नामक पौधो से ढकी हुई बेतवा (वेत्रवती) नदी तक का विस्तृत प्रदेश दिखाई पडेगा। इस स्थान से उसकी दृष्टि मेदपाट[2] (मेवाड का सस्कृत का नाम) के मैदानो पर पडेगी, जिसके बीच मे मुख्य नदिया अवली पहाड से निकलकर बेडस और बनास मे जा मिलती हैं और पठार या मध्य हिन्दुस्तान की उच्चसम पृथ्वी उनको चम्बल के साथ नही मिलने देती।

सुप्रसिद्ध चित्तौड के समीप इस उच्च सम भूमि पर चढकर ठीक पूर्वी रेखा से दृष्टि का कुछ हटाकर रतनगढ तथा सीगाली होकर कोटा को जाने वाले सीध माग पर दृष्टिपात किया जाय तो उस उच्च भूमि के क्रम से तीन मदान दृष्टिगत होगे जो कि मानो रूसी तातार के मदानो के छोटे दृश्य है। वहा से यदि चम्बल के आर-पार दृष्टि डाली जाय तो शाहबाद के किले से रक्षित हाडौती की उस पूर्वी सीमा तक देखने से और वहा से एक साथ इस उच्चसमभूमि से नीचे आकर छोटी सिन्धु नदी की तलहटी तक दृष्टि पसारते और फिर पूव की ओर दृष्टि बढाते हुए चलें तो वह दृष्टि बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा मे मच की आकृति वाले पहाड पर जाकर रुक जायेगी। कोटडा के स्थान पर बेतवा का क्षेत्र समुद्र की सतह से एक हजार फुट ऊँचा है, जबकि उदयपुर की ऊँचाई समुद्र की सतह से दो हजार फुट है। यह छोटा सा प्रदेश अपने रहने वालो और भूमि सम्बन्धी गुप्त प्रगट (खनिज तथा वनस्पति) पदार्थों और अनेक प्रकार के भेदो से भरा पडा है।

पूर्वी रेखा के उस उच्च स्थान से यदि हम उस रेखा के दक्षिण और उत्तर की ओर दष्टि डालें तो यह रेखा मध्यदेश अर्थात् राजस्थान की मध्यभूमि को लगभग दो समान भागो मे बाटती है। मेरे कहे मध्य देश से वह देश समझना चाहिए जो चम्बल और उसकी सहायक नदियो के मार्ग से यमुना सगम तक सब प्रकार उत्तम रीति से सीमाबद्ध किया गया है और इसी प्रकार अरवली के ऊचे परे के पश्चिम वाले देश को पश्चिमी राजस्थान नाम देना बहुत ही उचित है।

दक्षिण की ओर दृष्टि डाली जाय तो वह विन्ध्याचल की दूर तक फैली हुई श्रेणी पर जाकर रुक जायेगी जो हिन्दू और दक्षिण की स्पष्ट सीमा है। अरवली को विन्ध्याचल से मिला हुआ कहा जा सकता है। चम्पानेर की तरफ उसके मिलने का स्थान है और अरवली का विन्ध्याचल से निकल कर फैलना कहना अनुचित भी नही है यद्यपि उत्तर की अपेक्षा यहा उसकी ऊचाई बहुत कम है, परन्तु दक्षिण की तरफ लूनावाडा डूगरपुर और ईडर से आरम्भ कर अम्बा भवानी और उदयपुर तक अपना विराट रूप धारण किये है। विन्ध्याचल की सबसे ऊची चोटिया से निकलकर उसकी काली मिट्टी के मदान उत्तर की ओर को बहने वाले अनेक स्रोतो से कटे हुए दिखाई देते है। इनमे से कई एक तो घुमाव खाते हुए घाटियो मे जाकर टीलो पर गिरते हैं और दूसरी छोटी धाराए मध्य स्थान की उच्चसमभूमि म बलपूर्वक अनता मार्ग बनाती हुई चम्बल मे गिरती हैं।

यदि इसी प्रकार हम उत्तर की ओर अरवली के उच्च भाग पर दृष्टिपात करे और उदयपुर से लेकर औगणा, पानडवा और मेरूपुर होते हुए सिरोही के पास वाले पश्चिम ओर के उतार तक देखें तो उदयपुर की ओर के चढाव से लेकर मारवाड के उतार तक पहाडियो पर पहाडियो और पवतो पर पवतो के सिलसिले उठे हुए दिखाई देंगे। यदि कुम्भलमेर के दुर्ग के ऊपर से उस पवत श्रेणी पर दष्टि डालें जो अजमेर तक उत्तर की ओर को चली गई है तो उसका महाकार रूप थोडी ही दूर पर लुप्त हो जायेगा। उसकी अनेक शाखाए शेखावाटी के ठिकाना और अलवर मे ऊचे ऊचे करारे वाले टीले बनकर चली गई ह जहाँ से यह ऊचाई कम होते होते दिल्ली तक समाप्त हो जाती है। कुम्भलमेर से अजमेर तक का सम्पूर्ण क्षेत्र मेरवाडा कहलाता है। इसकी चौडाई का औसत 6 से लेकर 15 मील तक है और उसकी उपत्यका तथा टीकरियो पर लगभग 150 से अधिक गाव तथा खेडे पृथक पृथक बसे हुए हैं जहा जल और चारा बहुतायत से होता है।

इस पवत श्रेणी पर दोनो ओर की रक्षा करते हुए इसके ऊपर कई किले दिखाई देते हैं और बहुत से सोते निकल कर पवत श्रेणी म अपना टेढा बाका मार्ग ढूढते हुए नीचे की ओर को बहते हैं। पूर्व की बनास नदी म बडेच कोटेसरी खारी डाइ— यह सब नदियाँ मिलती हैं जो गोडवाड के उपजाऊ प्रान्त को उवरा कर देती हैं और खारी जल से भरी लूनी नदी से मिलकर यथार्थ मे मरुभूमि की सीमा कायम करती ...ो और बाडी इनमे मुख्य नदिया हैं और अन्य नदियाँ बारहो महीने बहती

परन्तु ये केवल वर्षा में ही बहती हैं जिनके बहाव का नाम रेला होता है। इस रेले में बहुत सा पहाड़ी खाद और मिट्टी होती है, जिससे नीचे की पथरीली भूमि उपज के योग्य हो जाती है। कुम्भलमेर की इस ऊँचाई से इन पर्वतशिला के क्रमरहित समूह का दृश्य चाहे कैसा ही विकट दृष्टिगोचर हो परन्तु यथार्थ में मारवाड़ के मैदानों से ही उसका पूर्ण महत्व अधिक स्पष्ट दिखाई देता है जहाँ उसकी अनेकों चोटियाँ अनेक रूप में एक दूसरे पर उठी हुई दृष्टि में आती हैं, या सघन वन से ढके टेढ़े-मेढ़े उतार वाले अंधेरिये ऊँचे-नीचे एकान्त स्थानों का क्रूर दृष्टि से मानो देख रहे हैं।

अरवली की प्राकृतिक बनावट ही उसका सामान्य रूप है। ग्रेनाइट पत्थर बड़े भारी ठोस तथा गहरे नीले वर्ण स्लेट के पत्थर पर पड़ा हुआ अनेक प्रकार के कोन बनाता है। पूर्व की ओर का इसकी साधारण ढाल है। यह स्लेट पत्थर अपने ऊपर स्थित ग्रेनाइट पाषाण की सतह या मूल से कुछ ही ऊँचा पाया जाता है। कई प्रकार के क्वाटज[3] और प्रत्येक रंगत के मिसट्स स्लेट पत्थर भी भीतर घाटियों में बहुतायत से पाये जाते हैं।

अरवली तथा उससे सम्बन्धित पहाड़ियों में खनिज पदार्थों की कमी नहीं है। इन खानों की पैदावार राणा की निज आय में वृद्धि करती है। किसी समय रांगे की खानें मेवाड़ में बहुत उपजाऊ थीं और कहते हैं उनमें चाँदी बहुतायत से निकलती थी। यहाँ ताँबा बहुत ही उत्तम निकलता है। उसी के पैसे बनाये जाते हैं। सलूम्बर सरदार भी अपनी जागीर की खानों से ताँबा निकलवाकर राजाज्ञा से पैसे बनवाता है। पश्चिमी सीमा पर सुरमा तामड़ा नीलमणि, लहसनिया, बिल्लौर और छोटे मूल्य के पन्ने भी मेवाड़ में पाये जाते हैं।

अब हम माण्डलगढ़ से आगे दक्षिण की ओर पग बढ़ाते हैं और चित्तौड़ को पार्श्व भाग में छोड़कर आगे जावद दांतोली, रामपुरा (इसके निकट चम्बल पहले पठार में प्रवेश करती है), भानपुरा और मुकुन्दरा की घाटी (जिस स्थान से काली सिन्धु अपने सामने आये मचाकार पर्वत में से निकलकर इकलेरा, जहाँ नेवज नदी पर्वत श्रेणी को तोड़ती जाती है) और मृगवास तक (जहाँ पार्वती नदी कम ऊँचाई का मौका पाकर मालवा से हाड़ौती में प्रवेश करती है), वहाँ से राघवगढ़ शाहाबाद गाजीगढ़ और गसवानी होते हुए जादूवाटी तक चलें तो वहाँ पूर्व में चम्बल पर उच्च-समभूमि समाप्त होती है और माण्डलगढ़ से आगे इसी क्रम में अपना पग बढ़ावें तो कुछ दूर पर ही उसका मचाकार रूप लुप्त हो जाता है और कहीं कहीं पूर्व रूप में दिखाई देने वाली बड़ी बड़ी कगारें जैसे कि बूँदी के किले में डबलाना, इन्द्रगढ़, लाखेरी होती हुई रणथम्भौर और करौली तक जाकर धौलपुर बाड़ी के समीप समाप्त हो जाती है। इस भूमि की ऊँचाई और ढलाई, इसको पश्चिम से पूर्व की ओर अर्थात् इन मैदानों से लेकर चम्बल की सतह तक, पार करते समय भली प्रकार से दिखाई देती है।

रणथम्भोर के समीप यह उच्चसमभूमि ऊची ऊची कतारो के रूप मे परिवर्तित हो जाती है जिसकी घाटिया धूप मे चमकती हैं, आकृति म यह विषम और शिखररहित है, यद्यपि यह पवत के सिलसिले से पृथक है तथापि इसम पहाड की बनावट विद्यमान है। यहा कम से कम सात पृथक पृथक पवत श्रेणियां हैं और बनास नदी को चम्बल से मिलने के लिए उन सभी श्रेणिया से होकर गुजरना पडता है। रणथम्भोर से आगे करौली से आरम्भ कर उस नदी तक का सम्पूण भाग एक असम मचाकार की भूमि है, जिसके शिखर के तट पर अतगिरि मण्डरायल और रण का विख्यात किला है। इसके पूर्वी पाश्व मे एक दूसरा ढाल मदान है, जिसका उतार बु देलखण्ड और बेतवा की वादी म चला गया है।

इस विषम भूमि का धरातल बहुत ही भिन्न प्रकार का है। कोटा के समीप आगे को निकली हुई चट्टान पर कई एक स्थाना मे तो वनस्पति का चिन्ह मात्र तक भी नही दीखता, तिस पर जहा वह तिरछा कोण निर्माण करता हुआ नदी के किनारो तक पहुचता है, वह भारत की सबसे अधिक उवरा और उपजाऊ भूमि म स एक है जहा ब्रिटिश भारत के प्रत्येक स्थान से भी उत्तम कृषि हाती है। यह मध्यस्थ ऊचाई पिछली रचना की है, जिसे ट्रेप' कहते हैं। जहा चम्बल ने इसको नग्न कर दिया है, वहा इसका रग दूध के समान श्वेत है। यह बडा कठोर है और मिलवा दानेदार है। इसलिए उस पर टाकी कठिनता से चलती है फिर भी इस पत्थर की खुदाई का काम शिल्पकार के लिए उपयोगी हो सकता है। पश्चिम की ओर भी उसका रग सवथा सफेद है। कोटा के निकट श्वत और बैंजनी सिला हुआ तथा शाहाबाद के समीप लाल और भूरा है। खनिज धातुओ के निमित्त यह बनावट उपयोगी नही है। वहा केवल सीसा और लोहा ही प्राप्त होता है, जिसमे लोहा अधिक मिलता है।

पहाडियो के समूह के मध्य मे वि ध्याचल के एक अति ऊचे स्थान पर चम्बल के सोत है उस स्थान पर इनका नाम जान पावा' है और उसी स्थान से चम्बल, चम्बेला और गम्भीर—यह तीन सोत निकलते है और दक्षिणी पाश्व भाग स दूमरी नदिया निकलती हैं, जो नमदा मे जाकर गिरती ह आर क्षिप्रा नदी पीपलादा स छोटी सि धु[4] देवास से और दूसरी छाटी छोटी नदिया उज्जन के पास होकर सबकी सब चम्बल मे पृथक पृथक स्थानो पर उसके उच्चसमभूमि म प्रवश करन से पहल मिल जाती हैं।

वागडी से काली सि धु और साडादिया राधोगढ से उसकी छोटी शाखा मोर सूकडी और भागडदा से नेवज तथा जामीरी और आमलखेडा की घाटी स पावती निकलती है। विन्ध्याचल के ऊचे शिखर पर इन सबके निगत स्थान हैं जहा से निकल कर अत मे नुनेरा और पालो के घाटा पर चम्बल मे मिल जाती हैं। यह सब [illegible] आर से मिलती हैं। बनास नदी बाए ओर से मिलती है, जो अवली स निकलने

वाली छोटी छोटी नदियो और उदयपुर की भीला से निकलने वाली वेडच नदी का जल लेकर इसमे आ मिलती है। यह बारहा मास बहने वाली नदी है। मेवाड-उदयपुर की दक्षिणी सीमा और करौली की ऊची भूमि को सीचने के बाद यह (बनास) नदी रामेश्वर के समीप चम्बल से मिलने के निमित्त दक्षिण को मुडती है। चम्बल सहस्रो चक्कर खाने के बाद इटावा और कालपी के मध्य यमुना से मिल जाती है। छोटे छोटे घुमावो को छोड कर चम्बल की लम्बाई 500 मील से अधिक होगी।

मरुस्थल की मनोहर वस्तु खारे जल वाली लूनी नदी है, जो अवली से निकल कर अपनी शाखाओ सहित जोधपुर राज्य के सर्वोत्तम भाग को उपजाऊ बनाती है और बालू के उस बडे मदान की सीमा को सदा अपना स्थान बदलन के लिए स्पष्टता स अकित करती है। मरुस्थल का ही अपभ्रश 'मारवाड' है। पुष्कर और अजमेर की पवित्र झीलो तथा परवतसर से निकलन वाली लूनी नदी की लम्बाई उसकी अधिक दूरवर्ती शाखा से लेकर उसके पश्चिम के विस्तारयुक्त खारे दलदल वाले मुहान तक 300 मील से कुछ अधिक है।

सिकन्दर के इतिहासकारो ने अपनी पुस्तको मे एरिनस शब्द लिखा है। वह 'रण' अथवा रिण' का अपभ्रश विदित होता है। उसका प्रयोग अब तक बडे दलदल क लिए किया जाता है, जो लूनी नदी तथा थाट के दक्षिणी मरुस्थल से बहकर आने वाली वसे ही खारी जल से पूण नदिया के बहाव की मिट्टी से बना है। यह रण 150 मील लम्बा है और भुज से बलियारी तक उसकी अधिक से अधिक चौडाई 70 मील के लगभग है। इस खारे दलदल के मध्य मे एक पृथक मनोहर भूमि है और यात्री लाग इसी तरफ से रण को पार करत है। गर्मी के दिनो मे उसकी धोखा देने वाली सतह पर जिसमे घोर भयानक रेती भरी हुई है, खारी नून (लवण) की एक बडी उज्ज्वल पपडी के सिवाय और कुछ दिखाई नही देता। वर्षा ऋतु मे वहा मला और खारी दलदल हो जाता है। इस खारी दलदल के सूखे किनारा पर मरीचिका भ्रम का दृश्य विलक्षण रूप से दिखाई देता ह। मरुस्थल मे प्राय ऐसे दृश्य बहुत दिखाई देते हैं, और जहा विशेषकर लवण की पपडियाँ होती है, वहा पर यह दृश्य अधिक दिखलाई देते हैं।

इस रेतीले प्रदेश का आरम्भ दक्षिण मे लूनी नदी के उत्तरी किनारे से और पूव मे शेखावाटी की सीमा से होता है। यह रेतीले मदान ज्यो ज्यो पश्चिम की ओर बढोगे त्यो त्यो परिमाण मे विशेष बढते जायेंगे। बीकानेर, जोधपुर और जसलमेर– ये रेत के ही मदान मे हैं। इस देश का सम्पूण यह विभाग रेतीले मैदान के अवलम्ब वाला है, जितने कुए जोधपुर से अजमेर तक खुदाये गये सबमे ही एक प्रकार का रेत, ककर और खडिया मिट्टी निकली।

जसलमेर के चारो ओर भी मरुस्थल है और जिसमे गेहू, जौ तथा चावल[5] उपजते हैं। राजधानी के समीप के इस क्षेत्र को मरु मध्य की उवरा भूमि कहा जाय

तो अनुचित न होगा। यहा का दुग पहाडी श्रेणी पर कई मौ फुट की ऊचाई पर निर्मित है जिसका पता उसकी दक्षिणी सीमा के पर पुरान चौहटा के खण्डहरा तक बताया जाता है, जो उसी पर निर्मित है। कदाचित यह टीवा उसी पहाडी से मिला हो जो जालौर क उवरा प्रा त मे होकर गई है और कदाचित यह आवू के मूल से प्रकट होने वाली एक शाखा हो। यद्यपि यह सब क्षेत्र मरस्थल कहाता है (जा रेतीले मैदानो का एक प्रभावोत्पादक और लाक्षणिक नाम है) तथापि यह नाम उसी भाग के लिए प्रयुक्त है जिस पर राठौड जाति का अधिकार है। लूनी नदी के वालातरा स्थान से आरम्भ कर सब घाट उमरसुमरा और जैसलमर के पश्चिम ओर के विभाग दाऊदपोता तथा वीकानर की दक्षिण सीमाओ के इस चौडे खण्ड म बिल्कुल उजाड है। जसलमेर के समीप पीले पाषाण की केवल एक ही पहाडी है जिसका पत्थर आगरे की उस प्रसिद्ध इमारत, शाहजहा की बेगम के "ताज' नामक रोजे मे बहुतायत से लगाया गया है।

अब यहा इतना ही कहना बहुत होगा कि वह क्षुद्र नदी जो भक्कर के टापू से सात मील दूर उत्तर म दारा के समीप सि धु से पृथक होकर लखपत के घोरे सागर मे गिरती है और उस कछार के इस पूर्वी भाग की चौडाई प्रकट करती है जो मरु देश की पश्चिमी सीमा बनाता है। यदि कोई यात्री इस सीधी सि धु की समान भूमि से आगे पूव की ओर को पग धरे तो वह मरस्थल की सीमा को उसके उन ऊचे ऊचे रेतील टीवो सहित स्पष्ट रूप से देख लेगा कि जिनके नीचे साकडा नदी बहती है जो सामयिक वर्षा की बाढो के सिवाय प्राय सूखी रहती है। यहाँ बालू क टीबे भी बडे-बडे ऊचे ऊचे है और मीठी नदी अर्थात् मीठा महाराण (सि धु नद) के बाढ की सीमा कह जा सकत है। मीठा महाराण नदी का एक सीथियन तातारी[6] नाम है जिसमे पचनद से आरम्भ कर सागर तक की सि धु नदी का बोध होता है।

सन्दभ

1 यह एक तीथ स्थान है। यहा गुरु दत्तात्रय की पादुका है।

2 मेदपाट—(मध्य = बीच) (पाट = चौडाई)—टाड ने मध्य पाट लिखा है जो सही प्रतीत नही होता। इसे 'मेदपाट कहना अधिक सही होगा जिसका अथ है मेद या मेव लोगो का राज्य।

3 एक प्रकार का चमकीला पत्थर बिल्लोर।

4 यह चौथी सि धु है। पहली सि धु, दूसरी छोटी सि धु तीसरी काली सि धु और चौथी लाटौती के समीप सिराज के ऊपर वाली पश्चिमी उच्चसम भूमि पर बहने वाली सि धु।

5 जैसलमर क्षेत्र मे टाड न चावल की उपज होना लिखा है, पर तु यह फसल नाम मात्र की होती है।

6 महाराण सीथियन नही कि तु मरु भाषा का ही शब्द' प्रतीत होता है।

राजपूत जातियो का ऐतिहासिक वृत्तान्त

अध्याय 1

मानव के आदि पुरुष

मध्य और पश्चिमी भारत की योद्धा जातियो के वृत्तान्त को लिपिबद्ध करने की इच्छा जागृत होने पर यह आवश्यक हो गया कि पहले उन स्रोतो की प्रामाणिकता की जाच की जाय, जिनके आधार पर वे अपनी वशावली का दावा प्रस्तुत करते है। इसके लिए मैने हिन्दुओ के पुराण ग्रन्थो की छानबीन तथा उन्हे समझने का प्रयास किया और उन्ही के आधार पर महान् सूर्य और चन्द्रवशी जातियो की वशावलिया तथा भौगोलिक एव ऐतिहासिक वृत्तान्त की रचना की है।

अधिकाश पुराणो मे इस देश से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथा भौगोलिक वर्णन का उल्लेख मिलता है। परन्तु उनमे भी भागवत्, स्कन्द अग्नि और भविष्य पुराण मुख्य है। यद्यपि पुराणो के वर्णन मे स्थान स्थान पर अनेकता दिखाई देती है परन्तु इस प्रकार का विरोधाभास राजाओ के नामो तथा उनकी सख्या के बारे मे है, ऐतिहासिक वर्णन मे नही।

विश्व के अनेक देशो के प्राचीन ग्रन्थो मे सृष्टि की उत्पत्ति का जो विवरण है उसी की भाति भारत मे भी 'सृष्टि की उत्पत्ति' का आरम्भ महाप्रलय की घटना से माना जाता है। इस सम्बन्ध मे अग्नि पुराण मे लिखा है कि जब ब्रह्मा के आदेश से समुद्र ने उफन कर पृथ्वी को जलमग्न करना शुरू किया उस समय हिमालय मे निवास करने वाले वैवस्वत मनु[1] कृतमाला नदी के किनारे बैठे तपस्या कर रहे थे कि अचानक एक छोटी सी मछली नदी के जल के साथ उनकी अजली मे आ गिरी। एक अज्ञात स्वर ने उन्हे मछली को सुरक्षित रखने का अनुरोध किया। उस मछली ने देखते ही देखते एक विराट् रूप धारण कर लिया। मनु अपने पुत्रो स्त्रियो तथा अन्य मुनियो (सप्तऋषियो) तथा प्रत्येक जीव, जन्तु वृक्षलता गुल्मादिका का एक एक बीज लेकर एक नाव पर चढ गये और उस नाव को उस विराट मछली के एक सीग से बाँध दिया। इस प्रकार महाप्रलय से वे सभी बच गये।

भविष्य पुराण मे लिखा है कि 'वैवस्वत मनु (सूर्य-पुत्र) सुमेरु पर्वत[2] पर राज्य करता था। उसका एक वशज ककुत्स्थ नामक राजा हुआ। वह अयोध्या मे

आकर राज्य करने लगा और क्रम से उसकी बहुत सी संतति पर्वत के देशों से आकर संसार के सब देशों में फैल गई।

इस पवित्र सुमेरु पर्वत के बारे में भिन्न भिन्न देशों के धर्मग्रंथों में बड़ी विचित्र बातें पढ़ने में आती हैं। भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के उपासकों ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन कर इस पर्वत को अपने-अपने उपास्य देवता का निवास स्थान बतलाया है। ब्राह्मणों ने इस पवित्र पर्वत को बाघेश आदीश्वर महादेव का, जैनियों ने जैनाधिप आदित्यनाथ का और यूनानियों ने वेकश का निवास स्थान बताया है। सभी का मानना है कि इस स्थान पर ही मनु ने मनुष्य जाति को कृषि, शिल्प और अन्य सभ्य विद्याओं की शिक्षा दी थी।

इस सम्पूर्ण विषय पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संसार के ऐतिहासिक ग्रन्थों में ये सम्पूर्ण भिन्न भिन्न नाम एक ही स्थान के हैं और एक ही आदिपुरुष का निवास स्थान है। उस समय हिन्दू और ग्रीक (यूनानी) जाति में कोई भेद न था। सब मिलकर एक साथ ही जीवन यापन करते थे और आदिनाथ, आदीश्वर, असिरीश बाघेश, वेकश, मनु, मीनस और नूह[3]—ये सभी एक ही मानव पिता के अलग अलग नाम हैं। हिन्दुओं के ग्रन्थ मनुष्य की उत्पत्ति का स्थान पश्चिम में काकेशस पर्वत के मध्य में मानते हैं। वैवस्वत मनु, जिसे वे इस सृष्टि का आदि पुरुष मानते हैं वहीं निवास करता था। उसके वंशज वहां से चलकर पूर्व की ओर सिन्धु नदी और गंगा के किनारे आये और कौशल में अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया।

मध्य एशिया के जिस विशाल से आमू आक्सस जेहून तथा अन्यान्य नदियां प्रवाहित हुई हैं उसी पार्वतीय स्थान को सूर्य और चन्द्रवंशी लोग अपना आदिस्थान कहते हैं। (भगवान् सूर्य के पुत्र मनु ने सूर्यवंश की और चन्द्रमा के पुत्र बुध ने चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा की थी।)

देवताओं से सेवित इस उच्च भूमि को त्याग कर वैवस्वत मनु सिन्धु गंगा के प्रवाह से पवित्र हुई इस आर्यावर्त भूमि में आये थे और अपने विशाल वंश का बीज आरोपण किया और वह वृक्ष क्रम से अनेक शाखा-प्रशाखाओं में शोभायमान हुआ और वे सब शाखाएँ शनै शनै सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल गई।

इन सब बातों से साबित होता है कि संसार के सभी मनुष्यों का मूल स्थान एक ही था और बाद में वहाँ से लोग पूर्व की तरफ आये। राजपूतों के स्वभावों और उनकी आदतों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि वे और शक जाति के लोग किसी समय एक ही थे और एक साथ ठण्डे प्रदेश में निवास करते थे। इसका

प्रमाण यह है कि शक लोगो की सभी बातें राजपूत जातियो मे पाई जाती हैं। शक लोगो की वीरता, उनकी आदतें और उनके विश्वास राजपूतो मे पूर्णरूप से देखने को मिलते हैं। अनेक प्रकार की सामाजिक प्रथाओ के साथ साथ अश्वमेध यज्ञ की प्रथा भी राजपूतो मे वही है, जो शक लोगो मे पाई गई है।[4] इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे बहुत थोडे से मनुष्य ससार मे थे और वे सभी बिना किसी भेदभाव के एक ही स्थान पर निवास करते थे।

सन्दभ

1 पुराणो के अनुसार वैवस्वत मनु का दूसरा नाम श्राद्धदेव था। वे सूय के औरस से विश्वकर्मा की पुत्री सज्ञा के गभ से उत्पन्न हुए। इस हिसाब से यम और यमी उनके भाई बहिन थे।

2 सुमेरू पवत की भौगोलिक स्थिति निर्धारित करना कठिन है। पुराणो के अनुसार इसके दक्षिण मे नील पवत उत्तर मे निषध पवत, पूव मे माल्यवान पवत और पश्चिम मे ग धमादन पवत है।

3 यहूदी और मुसलमान जिसे 'नूह' कहते हैं वह शायद मनु' शब्द का अपभ्र श हो।

4 शक जाति और राजपूतो के मध्य समानता की बात, टाड महोदय की अपनी कल्पना है। बहुत से विद्वान् उनके विचारो से सहमत नही हैं।

अध्याय 2

राजपूतों की वंशावली उसकी खोज का काम

भागवत् और अग्नि पुराण जिनमे सूय और चन्द्रवशी राजपूतो की वशावली है के वृत्ता तो का परीक्षण करना आवश्यक है। यद्यपि सर विलियम जो स, मिस्टर बेंटले और कनल विल्फड के द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज की पुस्तको मे इन वशावलियो का कुछ हिस्सा प्रकाशित हो चुका है फिर भी किसी भी व्यक्ति को अन्य लोगा के शोधकाय तक ही सन्तुष्ट नही रहना चाहिए।

इसमे कोई स देह नही कि मूल पुराणा मे अमूल्य एतिहासिक सामग्री थी परन्तु उनके भाष्यकारो न उनकी ऐतिहासिक सामग्री मे जिस प्रकार की निकृष्ट मिलावट की है, उससे उनके ऐतिहासिक तत्त्वो का अनुस धान करना बहुत कठिन हो गया है। हिन्दुओ ने बौद्धिक उन्नति की थी, इसका प्रमाण आज भी उनके भग्नावशेषा तथा पौराणिक कलाकृतियो से मिलता है। उन्नति के बाद अवनति का समय आया और उस समय म मौलिक सृजन के स्थान पर केवल पुरानी रचनाओ के भाष्य लिखे गय। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मे भाष्यकारा को नियन्त्रण म रखने क लिए सच्चे समालोचको की कमी रही होगी। इससे भाष्यकारो को मनमानी व्याख्या करने का अवसर मिल गया। प्रत्येक भाष्यकार यह मानकर चलन लगा कि इन प्राचीन ग्र था मे वह जितनी आश्चयजनक बाता का समावेश करेगा उसकी उतनी ही प्रशसा होगी। परिणाम यह निकला कि पुराणो की एतिहासिक सामग्री विलीन हो गयी और पुराण असत्य और आश्चय मे डाल देन वाली कहानियो क प्रतीक मात्र बनकर रह गये।

पुराण यदि अपने मूल रूप म इसी प्रकार अस्पष्ट होत जसे कि वे आज हैं तब तो इस बात पर विश्वास करना ही कठिन हो जाता कि भारत न विद्या और बुद्धि मे बहुत बडा उन्नति की थी परन्तु एसा नही था। प्राचीन भारत के पतन के प्रारम्भ होते ही इस दश म नयी रचनायें नही लिखी गयी। उनके स्थान पर पुरानी रचनाओ को रहस्यपूर्ण बनाने के लिए भाष्य लिखे गय और बाद के रचनाकारो न भाष्या के भी भाष्य लिख डाल। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भिक रचनाओ म निहित मूल ज्ञान अर्थात् सामग्री विलीन हो गई। आज स्थिति यह है कि उनम

सुधार या परिवतन के नाम पर कोई सोज नही कर सकता और यदि कोई ऐसा दुस्साहस करे भी तो अधर्मी और विरोधी समझा जाता है।

ससार की अन्य जातियो की भाति हिन्दुओ ने भी विज्ञान की उच्चतम सीमाओ की तरफ धीरे धीरे कदम बढाया होगा और इस अवस्था मे उन्होने अन्य जातिया से भी कुछ न कुछ लिया हागा, ऐसा स्वाभाविक है। यदि किसी देश अथवा जाति ने ऐसा नही किया ता यह मानी हुई बात है कि उसकी उन्नति स्थायी रूप से अधिक समय तक नही चल सकती।

सूय और चन्द्रवशियो के आरम्भिक समय मे धार्मिक नतृत्व कुछ परिवारो म पैतृक नही था, अपितु एक व्यवसाय (पशा) था, जिम पर सबका समान रूप से अधिकार था। वशावलिया से ऐसे अनक उदाहरण मिलते है जिनसे पता चलता है कि इन वशो की अनक शाखाओ न योद्धा धम को त्याग कर विशुद्ध धार्मिक कम को अपनाया और अपन पृथक् सम्प्रदाय अथवा गोत्र कायम किय। आगे चलकर उनके कई वशजो न इस व्यवसाय का छोडकर पुन सनिक व्यवसाय को अपना लिया। आज बहुत से काय ब्राह्मणो तक ही सीमित है लेकिन पहले ऐसा नही था। शासन और धम का अधिकार क्षत्रियो और ब्राह्मणो को था। दोनो को शासन और धम मे बराबर अधिकार थे। समाज का विधान इसका विरोधी न था।

भारत के शासन मे ब्राह्मणो का स्थान कम नही रहा। जमदग्नि से लकर महाराष्ट्र के पेशवा तक म इस बात के प्रमाण बराबर मिलते है कि ब्राह्मण इस देश मे शासन करते रहे। शासको पर ब्राह्मणो का प्रभुत्व था। मिथिला नरेश जनक राजर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ से हाथ जोडकर प्राथना किया करता था। बहुत से ब्राह्मणो ने भारत मे राज्य किया। रावण ब्राह्मण था और लका म शासन करता था।

उस समय भारत मे जाति व्यवस्था मजबूती के साथ कायम हो रही थी। वह समय ईसा से लगभग चादह सौ वष पहले का था। महाभारत महाकाव्य का प्रणेता व्यास दिल्ली के राजा शान्तनु का बटा था और योजनगन्धा नाम की मल्लाह जाति की लडकी से उसकी अविवाहित अवस्था म उत्पन्न हुआ था। व्यास का जन्म हो जाने के बाद शान्तनु न योजनगन्धा से विवाह कर लिया और उसस विचित्रवीय नामक पुत्र हुआ। विचित्रवीय क तीन पुत्रियाँ हुई उनम एक का नाम पाण्डया था। शान्तनु के वश को चलान के लिए व्यास न पाण्डया के साथ विवाह कर लिया।[1]

पाण्डया के वशजा न इक्तीस पीढी तक ईसा स पूव 1120वें वष से लकर 610वें वष तक राज्य किया और पाण्डुवश के अन्तिम राजा का शासन अयोग्य होन के कारण राज्य के सामन्तो न विद्रोह किया और उसी वश के सैनिक मन्त्री को

राजा बनाया। उसके बाद विक्रमादित्य तक दूसरे दो वंशों ने राज्य किया। भारत की राजधानी उत्तर से उठकर दक्षिण में चले जाने के कारण विक्रम संवत् की चौथी शताब्दी और कुछ के अनुसार आठवीं सदी तक इन्द्रप्रस्थ में कोई शासक न रहा। उसके पश्चात् तोवर जाति के राजपूतों ने, जो अपने आपको पाण्डु के वंशज कहते थे इन्द्रप्रस्थ पर शासन किया और उस राजधानी का नाम दिल्ली रखा। बारहवीं शताब्दी तक इस वंश का शासन चलता रहा। अंतिम राजा अनंगपाल ने दिल्ली की राजगद्दी अपनी लड़की के पुत्र पृथ्वीराज को दे दी[2], जो भारत का अंतिम राजपूत सम्राट हुआ और मुसलमानों के द्वारा उसके पराजित होने पर भारत में मुस्लिम शासन का प्रारम्भ हुआ।

सन्दर्भ

1 व्यास और पाण्डया के विवाह के बारे में अन्य लेखक सहमत नहीं हैं।

2 टाड महोदय का यह कथन सही नहीं है। अजमेर के चौहान शासक विग्रहराज चतुर्थ (1158 से 1163 ई०) ने तोमरों को पराजित करके *दिल्ली को जीता था और तब से दिल्ली पर चौहानों का अधिकार बना* रहा। अतः अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य दिया जाना सही प्रतीत नहीं होता। दूसरी बात यह कि पृथ्वीराज चौहान की माता अनंगपाल की पुत्री नहीं थी, उसका नाम कर्पूरी देवी था। वह त्रिपुरी के शासक अचल की पुत्री थी।

अध्याय 3

सूर्यवश और चन्द्रवश के राजाओ का वर्णन

व्यास न सूयपुत्र मनु से लेकर भगवान् राम तक, सूयवश के 57 राजाओ का उल्लेख किया है और च द्रवश के राजाओ की वशावली मे मुझे 58 राजाओ से अधिक नाम देखने को नही मिले ।[1] इक्ष्वाकु, मनु का पहला बेटा था, जिसने पूव की तरफ जाकर अयोध्या की नीव रखी । बुध च द्रवशियो का आदिपुरुष माना जाता है, लेकिन इस बात का निणय करने की हमे कोई सामग्री नही मिली कि उनकी प्रथम राजधानी प्रयाग की प्रतिष्ठा किसने की । फिर भी, जो कुछ पढने को मिला है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि बुध से छठी पीढी म पुरु ने उसकी स्थापना की थी ।

इक्ष्वाकु से लेकर राम तक 57 राजा अयोध्या के सिंहासन पर बठे । ययाति से च द्रवश प्रारम्भ होता है । चन्द्रवश की शाखा यदुवश मे ययाति से लेकर कृष्ण और कस तक, कहीं 57 और कही 59 पीढियो का उल्लेख है । सूयवशी शाखाओ और च द्रवश की यदुवशी शाखाओ मे बहुत अ तर पाया जाता है । हमने यहाँ पर वही सख्यायें दी है जो अधिक सही मालूम हुई हैं ।

इन वशावलियो का उल्लेख मिस्टर बेटले, सर विलियम जा स और कनल विल्फड न अपन लेखो मे किया है । बेंटले और जो स की दी हुई सख्याओ मे कोई अ तर नही है । उन दोनो ने सूय और च द्रवशियो की क्रमश 56 और 46 पीढिया का उल्लेख किया है । कनल विल्फड ने सूयवशिया की जा सख्या दी है, वह सही प्रतीत नही होती, पर तु च द्रवश की पुरु और यदुवशो की नामावली सही लगती है । च द्रवश की प्रमुख शाखाओ म पुरु, हस्ती, अजामीढ, कुरु शा तनु और युधिष्ठिर बडे प्रतापशाली हुए । कनल विल्फड न हस्ती और कुरु दोनो ही वशा की अनक शाखाओ का उल्लेख किया है । इन दोनो वशावलियो म भीमसेन के बाद दिलीप का नाम है । इस प्रकार के नामा क सम्ब ध म हि दुओ के ग्र थ एकमत नही हैं ।

इन वशावलियो के सम्ब ध म सही बाता का जानन के लिए मैंन कुछ बाकी नही रखा । परन्तु कठिनाई यह पदा हा जाती है कि हि दुओ के ग्र थ स्वय कही-

कही पर एक दूसरे के प्रतिकूल हो जाते हैं। कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसे प्रामाणिक मानकर सही वशावली प्राप्त की जा सके।

राजवशो के प्राचीन समय का निर्णय रामायण पुराणों तथा अन्य पुराने ग्र थो के द्वारा ही किया गया है, जिससे किसी प्रकार की भूल न हो सके। इक्ष्वाकु की तेइसवी पीढी मे त्रिशकु हुआ। उसका लडका हरिश्चन्द्र हुआ जो अपने सत्य वचन के लिए इस देश म आज तक विख्यात है वह परशुराम का समकालीन था।" परशुराम ने नर्मदा नदी के तीरवर्ती माहिष्मती के हैहय अर्थात् चन्द्रवशी राजा सहस्रार्जुन का वध किया था। रामायण मे बताया गया है कि परशुराम ने क्षत्रियो का विनाश किया। सूर्यवश का बत्तीसवाँ राजा सागर, चन्द्रवशी सहस्रार्जुन की छठी पीढी के तालजघ का समकालीन था। सूर्यवशी और चन्द्रवशी राजाओ के मध्य निरन्तर युद्ध हुए थे जिनके विवरण रामायण और पुराणो म मिलते हैं। सागर और तालजघ के सघर्ष का विवरण भविष्य पुराण मे किया गया है। हस्तिनापुर का राजा हस्ती और अगदिश—दोनो समकालीन माने गये हैं। अगदिश ने अगदेश की प्रतिष्ठा की थी।[3] रामायण से जानकारी मिलती है कि बुध का चालीसवा वशज अयोध्या का राजा अम्बरीष कन्नौज की प्रतिष्ठा करने वाले राजा गाधी और अगदेश के राजा लोमपाद का समकालीन था। महाभारत से कृष्ण और युधिष्ठिर की समकालीनता सिद्ध होती है। उनके बाद द्वापर युग समाप्त होता है और कलियुग का आरम्भ होता है। सूर्यवशी राम और चन्द्रवशी कृष्ण के बीच के समय का निर्णय करने के लिए हम किसी ग्रन्थ मे कोई सामग्री नही मिलती।

मथुरा का राजा कस बुध से 59वाँ और उसका भाजा कृष्ण 58वाँ वशज था। पुरु के वश मे अजमीढ और देवीमीढ के वश म शल्य जरासध और युधिष्ठिर क्रमश 51वें, 53वें और 54वें वशज थे। महाभारत के युद्ध म भाग लेने वाला अगवशी पृथुसेन बुध का 53वा वशज था। इस प्रकार बुध से लेकर कृष्ण और युधिष्ठिर तक 55 पीढियो का होना सिद्ध होता है। यदि प्रत्येक राजा के शासन का औसत बीस वर्ष माना जाय तो उनकी पचपन पीढियो के सभी राजाओ ने 1100 वर्ष शासन किया। *यह समय यदि विक्रमादित्य तक सभी राजाओ के* शासनकाल म जोड दिया जाय जो ईसा से 56 वर्ष पूर्व तक रहा तो भारत म सूर्यवशी और चन्द्रवशी प्रतिष्ठा का समय 2256 ई पू माना जा सकता है। मिस्र, चीन और असीरिया के राज्यो की प्रतिष्ठा का समय भी इसी के बाद माना जाता है। *यह समय महाप्रलय के लगभग* डेढ सौ वर्ष बाद माना जाता है।

अग्नि पुराण मे यह भी लिखा है कि मध्य एशिया से जो लोग भारत मे आकर बसे उनमे इक्ष्वाकु के वशज सूर्यवशी सबसे पहले आये थे। अग्नि पुराण के पर यह भी स्वीकार करना पडेगा कि चन्द्रवश का आदिपुरुष बुध उनका

समकालीन था क्योकि भारत मे बसने के बाद उसने इक्ष्वाकु की बहिन इला से विवाह किया था।

चन्द्रवशी कृष्ण और अर्जुन के तथा सूर्यवशी राम और उनके पुत्रो कुश तथा लव के वशजो के सम्बन्ध मे अधिक लिखने के पहले, उनके पूर्वजो द्वारा स्थापित राज्या पर प्रकाश डालना जरूरी है।

सन्दर्भ

1 ये वशावलिया मुख्य मुख्य राजाओ की हैं। अन्यथा इतने लम्बे समय मे अन्य बहुत से राजा हुए थे जिनका उल्लेख भी मिलता है।

2 विश्वामित्र के साथ हरिश्चन्द्र और राम का इतिहास मिलाकर टॉड साहब ने यह अनुमान कर लिया कि वे समकालीन थे। यह अनुमान ठीक नही है। अपनी तपस्या के बल पर उन्होने दीर्घायु प्राप्त की थी और ब्रह्मर्षि कहाते हैं। वे राजा हरिश्चन्द्र, त्रिशकु और राम—तीनो राजाओ के समय मे थे।

3 अगदेश तिब्बत के समीप है। उसके निवासी अपने को हुगी कहते हैं। शायद इनका भी चन्द्रवश से सम्बन्ध हो।

अध्याय 4

विभिन्न राजवशों द्वारा नगरों और राज्यों की स्थापना

सूयवशियो द्वारा स्थापित नगरा म अयोध्या सबसे पहली नगरी थी। अयोध्या नगरी ने धीरे धीरे सुन्दरता और समृद्धि को प्राप्त किया । राम के बहुत पहले यह नगरी समृद्ध और प्रतिष्ठित हो चुकी थी । अयोध्या की प्रतिष्ठा के समय ही महा राज इक्ष्वाकु के पौत्र मिथिल न मिथिला देश की राजधानी मिथिलापुरी की स्थापना की थी । जनक मिथिल का पुत्र था । उसी के नाम पर सूयवश की इस शाखा को प्रसिद्धि मिली । प्राचीन काल म सूयवशी शाखाओं को ये दो राजधानिया—अयोध्या और मिथिला[1] काफी प्रसिद्ध हुइ । यद्यपि रामच द्र क पहले रोहतास और चम्पापुर की तरह के कई नगरा की स्थापना हो चुकी थी ।

बुध के च द्रवश की अनेक शाखाओ ने भी कई राज्या की स्थापना की । उनमे प्रसिद्ध प्रयाग नगरी की स्थापना पहले की गई । पर तु अनुभव से जाहिर होता है कि च द्रवशियो की पहली राजधानी हैहयवश के सहस्त्राजु न के द्वारा स्थापित की गई थी । इसका नाम माहिष्मती था और यह नमदा के तट पर बसी थी । जैसा कि पहल बतलाया जा चुका है सूयवशियो और च द्रवशियो म बहुत दिना तक सघष होता रहा था । उस सघष मे ब्राह्मणो न सूयवशियो की सहायता की थी और सहस्त्राजु न को माहिष्मती से निकाल दिया था ।

कृष्ण की राजधानी कुशस्थली द्वारका थी । इसकी स्थापना प्रयाग, शूरपुर अथवा मथुरा से बहुत पहले हुई थी । भागवत मे लिखा है कि इसकी स्थापना इक्ष्वाकु के छोट भाई आनत न की[2] पर तु यदुवशियो के अधिकार मे कब आ गई, इस सम्ब ध में भागवत मे कुछ नही लिखा है । जसलमेर के प्राचीन भट्ट ग्र थ से मालूम होता है कि सबसे पहले प्रयाग, फिर मथुरा और बाद मे द्वारिका की प्रतिष्ठा हुई । य तीनो नगर आरम्भ मे ही प्रसिद्ध रहे हैं फिर भी प्रयाग विशेष प्रसिद्ध है । पुरवश के मुख्य मुख्य राजा यही हुए थे । विख्यात यात्री मेगस्थनीज भारत यात्रा के समय इस नगर की सुन्दरता को देखकर मोहित हो गया था । शकु तला का बेटा मे ही रहा करता था । रामायण से पता चलता है कि सूयवशी लोगो

के साथ हैहयवंशियों के संघर्ष में शशविंधी लोग जो यदुवंशियो की एक शाखा थी हैहयवंशियों के साथ सम्मिलित हो जाते थे। चेदी राज्य का संस्थापक शिशुपाल इसी शशविंधी वंश[3] का था और वह कृष्ण का शत्रु था।

यूनानी इतिहासकारो के मतानुसार सिकन्दर के आक्रमण के समय मथुरा के आस पास के लोगो को सूरसेनी कहा जाता था। सूरसेन नाम के दो राजाओं का वृत्तान्त मिलता है। उनमे से एक तो कृष्ण का पितामह था और दूसरा आठ शताब्दी पहले हुआ था। उन्ही में से किसी के द्वारा सूरपुर नामक राजधानी की स्थापना की गई थी।

चन्द्रवंशी महाराजा हस्ती ने हस्तिनापुर बसाया था। महाभारत के बाद भी हस्तिनापुर का अस्तित्व बहुत समय तक कायम रहा। परन्तु सिकन्दर के आक्रमण का इतिहास लिखने वाले यूनानी लेखकों ने इस प्राचीन नगरी का उल्लेख क्यों नही किया यह समझ मे नही आता। भारत पर सिकन्दर का आक्रमण महाभारत के लगभग 800 वर्ष बाद हुआ था। उस समय इस क्षेत्र मे पोरस नाम के दो राजा थे। एक तो पुरुवंशी था और दूसरा पंजाब की सीमा पर रहता था। इससे यह बात समझ में आती है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय इस क्षेत्र मे रहने वाले पोरी लोग चन्द्रवंशी थे। महाराज हस्ती के बाद चन्द्रवंश मे अजमीढ द्विमीढ और पुरुमीढ की यह तीन विशाल शाखाएं उत्पन्न हुई। अजमीढ के वंशज भारत के उत्तरी भागो मे आबाद हुए। यह समय ईसा से 1600 वर्ष पूर्व का रहा होगा। अजमीढ का चौथा वंशज बाजस्व (बाह्याश्व) नामक राजा हुआ। उसने सिन्धुनद के निकट वाले किसी देश में अपना राज्य स्थापित किया था। बाजस्व के पांच पुत्र उत्पन्न हुए।[4] उन पांचो के नाम से उस प्रदेश का नाम 'पांचालिक' पड़ा।[5] इन पांच भाइयो मे से एक का नाम कम्पिल था। उसने अपने नाम मे कम्पिल नामक नगर की प्रतिष्ठा की। अजमीढ की दूसरी पत्नी का नाम केशनी था। केशनी के पुत्रो ने एक नये राज्य की स्थापना कर एक नये राजवंश की नींव रखी। इस नये राजवंश का नाम कुशिक वंश है। महाराज कुश के चार पुत्र हुए। उनमें से एक कुशनाभ ने गंगा के किनारे महादय नामक नगर बसाया था। इस नगर का नाम बाद में कान्यकुब्ज और फिर कन्नौज हो गया। 1193 ई में शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के समय इस नगर की प्रतिष्ठा काफी बढ़ी चढ़ी थी और उस समय में यह गाधीपुर अथवा गाधी नाम से विख्यात था। इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि प्राचीन समय मे यह नगर पच्चीस कोस के घेरे मे बसा था और इस नगर मे तीस हजार केवल तंबोलियों की दुकानें मौजूद थी। छठी शताब्दी तक इस नगरी की समृद्धि कायम रही थी। बारहवी सदी मे जयचन्द के बाद इस नगरी का विनाश हुआ।

कुश के दूसरे पुत्र कुशाम्ब ने कौशाम्बी नामक नगरी को बसाया था। ग्यारहवी सदी तक इस नगरी की प्रतिष्ठा कायम रही। कन्नौज से चलकर कुछ दक्षिण में गंगा के किनारे देखभाल करने से कौशाम्बी नगरी के टूटे फूटे चिन्ह

दिखाई देत हैं। कुश के शेष दो पुत्रो ने धर्मारण्य और वसुमति नामक दो नगरो की स्थापना की थी पर तु ये दोनो नगर कहा हैं इसका अच्छा प्रमाण नही पाया जाता।

कुश के सुध वा और परीक्षित नामक दो पुत्र हुए। सुध वा के वश म जरास ध और परीक्षित क वश म शा तनु और वाल्हीक राजा हुए। जरास ध की राजधानी का नाम राजगृह था जो विहार प्रा त म गगा के किनारे बसी हुई थी। युधिष्ठिर और दुर्योधन शा तनु के वशज थ। वाल्हीक के पुत्र वाल्हीक कहलाय। कुरू वश का उत्तराधिकारी दुर्योधन प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर म रहा करता था। पाण्डव लोगो न उनसे अलग रहकर इ द्रप्रस्थ नामक नगर बसाया। इसवी आठवी सदी के मध्य भाग म इस नगर का नाम दिल्ली हो गया। वाल्हीक क पुत्रो ने पालिपात्र और आरोड[6] नामक दो राज्य स्थापित किय। पालिपोत्र गगा क किनारे और आरोड सि धु नदी के किनारे पर था।

च द्रवश के उपयु क्त सभी राजा महाराज ययाति के सबसे बडे और छोटे पुत्र—यदु व पुर के वश म उत्पन्न हुए थ। ययाति के शेष पुत्रो के सम्ब ध म कोई विशेष जानकारी नही मिलती है। ययाति वश की एक शाखा उरु अथवा उरसु जिस कुछ विद्वानो न तुरवसु लिखा है ने काफी प्रतिष्ठा अर्जित की। उरु वश का सस्थापक उरु ही था। उसके वशजो ने अनेक राज्यो की स्थापना की। उसकी आठवी पीढी म विमुत नामक राजा हुआ। उसके आठ पुत्र हुए जिनमे द्रुह्य और बभ्रू प्रसिद्ध हैं। दोना के नाम से दो नये राजवशो की नीव पडी। द्रुह्य के वश मे गा धार और प्रचेता नाम के प्रतापी राजा हुए। उन दोनो ने भी दो नये राज्या की स्थापना की। प्रचेता के बार मे कोई जानकारी नही मिलती। कहते हैं कि वह किसी म्लेच्छ देश के राजा हुए थे।

दुष्य त ने शकु तला से विवाह किया था और भरत उसका बेटा था। दुष्य त के चार पोत हुए जिनके नाम हैं—कालिजर केरल पाण्डय और चौल। इन चारो न अपने अपने नाम स अलग अलग राज्यो की स्थापना की थी। कालिजर बु देलखण्ड म है और यहा का दुग बहुत विख्यात है। केरल देश मालावार देश से ही मिला हुआ है और इसी को कोचीन कहते हैं। मालावार के दूसरे किनारे पर पाण्डय राज्य है जो पाण्डय मण्डल अथवा पाण्डय राज्य के नाम स प्रसिद्ध है। चौल, सौराष्ट्र प्रदेश मे विख्यात द्वारका क निकट बसा हुआ है।

बभ्रू के वश म एक अ य शाखा निकली। इसके चौतीसवें वशज राजा अग ने अगदेश की स्थापना की। इस नये राज्य की राजधानी चम्पामालिनी थी। इसकी स्थापना कनौज क साथ साथ ईसा से 1500 वष पूव हुई थी। अग के नाम पर यह अग राजवश कहलाया और प्राचीनकाल मे इस राजवश ने बडी प्रतिष्ठा अर्जित की थी। इस वश का अ त पृथुमन के साथ हुआ।

मनु और बुध से लेकर राम, कृष्ण, युधिष्ठिर तथा जरासंध तक सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखा गया। इन दोनो विख्यात वंशों के सम्बन्ध में बहुत सी काम की बातों का स्पष्टीकरण हो गया है, इस बात की आशा की जानी चाहिए।

सन्दर्भ

1 यह प्रदेश इस समय तिरहुत (तरहूत) नाम से प्रसिद्ध है और मिथिला भी कहाता है। दरभंगा के समीप जनकपुर इस समय नेपाल राज्य मे है।

2 टाड साहब ने आनत को इक्ष्वाकु का छोटा भाई लिखा है। यह सही नही है। आनत इक्ष्वाकु के छोटे भाई शर्याति के पुत्र थे। विस्तृत विवरण के लिये देखें—भागवत स्कन्ध 9, अध्याय 3।

3 कुछ विद्वानो के अनुसार शशविधी शब्द 'शशक' से सम्बन्ध रखता है और वे सीसोदिया वंश की उत्पत्ति इसी वंश से मानते हैं। परन्तु अधिकांश विद्वान् सीसोदा ग्राम मे रहने के कारण सीसोदिया नाम पड़ना बतलाते हैं।

4 पांच पुत्रों के नाम इस प्रकार थे—मुद्गल, जवीनर, बृहदिषु, संजय और कम्पिल।

5 विष्णु पुराण के अनुसार पांचाल अथवा पांचालिक एक भिन्न देश था और उसका पंजाब के साथ कोई सम्बन्ध न था।

6 आरोड या आलोर सिन्धु प्रदेश की प्राचीन राजधानी है। कुछ के अनुसार इसकी स्थापना बाल्हीक वंश के राजा शल्य ने की थी।

अध्याय 5

श्रीराम एव युधिष्ठिर के वशजो तथा अन्य राजवशों का विवरण

इक्ष्वाकु से लेकर श्री राम तक और बुध से लेकर श्री कृष्ण व युधिष्ठिर तक सूय और चन्द्रवश की सक्षिप्त जानकारी के बाद उनके परवर्ती राजवशा का सक्षेप म वणन करेंगे । मेवाड बीकानेर जोधपुर और जयपुर के वतमान राजपूत राजा और उनकी अनेक शाखाओ के लोग अपने को श्री राम का वशज बताते हैं । जबकि जसलमेर और कच्छ के राजवश जो सतलज नदी स समुद्र क किनारे तक भारत की मरुभूमि मे फल हुए है अपने को बुध एव कृष्ण क वशज मानते हैं ।

राम और कृष्ण के बाद सूय और चन्द्र वश मे उत्पन्न हान वाले अनेक राजवशो म से तीन प्रमुख राजवशा का वणन किया जाता है । व है—(1) सूयवशी श्री राम के वशज (2) इन्दुवशी[1] युधिष्ठिर के वशज और (3) इन्दुवशी जरासन्ध क वशज ।

सूयवशी राजपूत अपने को राम के पुत्र लव[2] और कुश क वशज मानत है । मवाड के राणा लोग और बडगूजर लोग अपनी उत्पत्ति राम स बतलाते हैं । नवर और आमेर क कुशवाह राजा अपनी उत्पत्ति राम के पुत्र कुश स बतलाते है । मारवाड का राजवश भी इसी वश म अपनी उत्पत्ति मानता है । आमेर क राजाओ न जो वशावलियाँ तयार करवाई है, उनम मवाड के राजवश की उत्पत्ति राम के बडे पुत्र लव से मानी गयी है और उसम लव से सुमित्र तक के राजाओ क नाम दिये गये हैं ।

भागवत क अनुसार सुमित्र के साथ ही राम क वश का अन्त हो गया । पुराणा क अनुसार सुमित्र राम के वश का अन्तिम राजा था । पुराणा के अनुसार सूयवश म 56 राजा हुए । लकिन सर विलियम जोन्स ने उनकी सख्या 57 लिखी है । यदि उनकी सख्या 56 मान ली जाय तो राम से सुमित्र तक का समय जा विक्रमादित्य स कुछ ही पहल बीता है 1120 वष का हाता है । अर्थात् सूयवश के सस्थापक इक्ष्वाकु से सुमित्र तक का समय 2200 वर्षों का हुआ । आमेर के राजा

जयसिंह ने जो वंशावली संग्रह की थी उसमें लिखा है कि सुमित्र के बाद सूर्यकुल में अनेक राजा हुए। ये लोग मेवाड के राणाओं के पूर्वपुरुष थे।

पाण्डुवंशी युधिष्ठिर की संतानों के इन्दुवंश की वंशावली राजतरंगिणी और राजावली से ली गयी है। आमेर के जयसिंह की देखरेख में पं. विद्याधर और रघुनाथ द्वारा संपादित ये दोनों पुस्तकें, राजवंशों के इतिहास और उनकी वंशावली के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकों में युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक इन्द्रप्रस्थ और दिल्ली में शासन करने वाले सभी वंशों की वंशावलियां दी गई हैं। यहां पर यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि पूर्व और पश्चिम के सभी देशों में राजवंशों की उत्पत्ति लिखने के समय बहुत कुछ आधार कल्पनाओं का लिया गया है। पाण्डु की उत्पत्ति, उसी प्रकार की कल्पित कथाओं के साथ पढ़ने को मिलती है। पाण्डु की मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने हस्तिनापुर में अपने उपस्थित समस्त बन्धुओं के सामने पाण्डवों के जन्म को कलंकपूर्ण बतलाया था। परन्तु ब्राह्मणों और पंडितों के सहयोग से पाण्डव बन्धुओं में ज्येष्ठ युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार मिल गया।

दुर्योधन पाण्डवों के विरुद्ध निरन्तर षडयन्त्रों में लगा रहा। उससे दुःखी होकर पांचों पाण्डवों ने राजधानी हस्तिनापुर को छोड़कर कुछ समय के लिए सिन्धु नदी के समीपवर्ती देशों में समय बिताने की दृष्टि से उस तरफ पलायन कर दिया। पांचाल के राजा द्रुपद ने उनको आश्रय तथा सहायता दी। द्रुपद की राजधानी कम्पिलनगर में थी। उसी अवसर पर द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में अनेक राजा लोग आये हुए थे। द्रौपदी ने अर्जुन का वरण किया और स्वयंवर में उपस्थित राजाओं ने अर्जुन के साथ युद्ध लड़ा जिसमें वे सभी अर्जुन के हाथों पराजित हुए। द्रौपदी अर्जुन के साथ जाकर पांचों भाइयों की पत्नी बनी। शक लोगों में भी विवाह की इस प्रकार की रस्म पाई जाती है।

धृतराष्ट्र की कोशिश और प्रभाव से पाण्डवों को वापस बुलाया गया और राज्य का बटवारा किया गया। हस्तिनापुर दुर्योधन को मिला। युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ नामक स्थान पर अपनी नई राजधानी बसाई।[3] धीरे धीरे इन्द्रप्रस्थ का वैभव बढ़ता गया। आस पास के राजाओं ने भी पाण्डवों की अधीनता स्वीकार कर ली। कुछ समय बाद युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। इससे दुर्योधन और उसके बन्धुओं की ईर्ष्या बढ़ गई। जब दुर्योधन अपने षडयन्त्रों और कूटनीतिक दावपेंचों में सफल नहीं हो पाया तो उसने युधिष्ठिर के सामने जुआ खेलने का प्रस्ताव रखा।[4] युधिष्ठिर जुए में अपना राज्य खो बैठा और अपने शरीर के साथ साथ अपने भाइयों तथा पत्नी द्रौपदी को भी हार गया। परिणामस्वरूप उसे अपने परिवार के साथ बारह वर्ष के लिए वनवास जाना पड़ा। उसके बाद पाण्डवों और

कौरवा म जो भयकर युद्ध लडा गया वह महाभारत के नाम स विख्यात हुआ । इ
युद्ध म हजारा लोग मारे गय । अन्त म पाण्डवा की विजय हुई ।

महाभारत के युद्ध का युधिष्ठिर पर घातक प्रभाव पडा और वह सासारिक
जीवन स विरक्त हो गया । अभिमन्यु क पुत्र परीक्षित को सिहासन पर बठा कर वह
कृष्ण और बलदेव क साथ द्वारका चला गया । महाभारत म जा लोग बच गय थे,
वे सब युधिष्ठिर क साथ द्वारका चल गय थ । कृष्ण की मृत्यु क बाद बलदेव और
कुछ अन्य लोगा के साथ युधिष्ठिर हिमालय पवत की ओर चल गय । इसके बाद उन
से किसी का भी कोई समाचार नही मिला । सभवत वे सब लोग हिमालय की वफ
म गल गये ।

युधिष्ठिर के वश म परीक्षित से लकर विक्रमादित्य तक चार वशा के विवरण
मिलते हैं । परीक्षित के वश का अतिम राजा राजपाल था । राजपाल न कुमायू क
राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा सुखवत क हाथा मारा गया । विजयी
सुखवत न इन्द्रप्रस्थ पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया । कुछ वर्षों बाद
विक्रमादित्य न उसे पराजित कर इन्द्रप्रस्थ स खदेड दिया और वापस अपनी राजधानी
उज्जन को चला गया । लगभग आठ सौ वर्षों तक इन्द्रप्रस्थ नगरी राजधानी क
गौरव से वचित रही । उसके बाद तोमर वश के प्रतिष्ठाता अनगपाल न उसे फिर से
अपनी राजधानी बनाया । वह अपन आपको पाण्डवो का वशज कहता था । उसक
समय से इन्द्रप्रस्थ का नाम बदलकर दिल्ली हो गया ।

राजावली नामक ग्रथ म लिखा है कि भारत क उत्तरी भाग कुमायू से
सुखवन्त नामक एक राजा न आकर चौदह वप तक इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया । फिर
विक्रमादित्य न उसे मार कर इन्द्रप्रस्थ का उद्धार किया । युधिष्ठिर स लकर पृथ्वी-
राज तक जा क्षत्रिय राजा दिल्ली क सिहासन पर बठे उनकी सख्या क बारे म काफी
विवाद है और उस सम्ब ध म यहा पर विस्तार स लिखने की आवश्यकता मालूम नही
होती ।

विशाल चद्रवश की एक अन्य शाखा का वृत्तान्त प्रयोजनवश लिखा है । इस
शाखाकुल म महाराज जरासन्ध प्रसिद्ध हुआ । उसकी राजधानी राजगृह नामक
नगर थी । भागवत क अनुसार जरासध का पुत्र सहदव और पौत्र मार्जारी महा
भारत के समर समय म विद्यमान थ । अत वे परीक्षित क समकालीन हुए ।

जरासध के बाद उसक वश म 23 राजा हुए । अतिम राजा का नाम
रिपुन्जय था । उस उसक मत्री सनक न मौत क घाट उतार कर राज्य पर अधिकार
कर लिया । उसन अपन पुत्र प्रद्योत को सिहासन पर बठाया । सनक का वश पाच पीढी
तक चला । अतिम राजा न दावधन था । इन पाच राजाओ न 138 वप तक राज्य

किया। उसी समय म शेषनाग देश स यहा य लोग शेषनाग नामक विजेता के साथ भारत मे आये और जरासन्ध के राज्य पर अधिकार कर लिया। उसका वश दस पीढी तक चला। इस वश का अन्तिम राजा महान द था। वह अनौरस था। इन दस राजाओ का राज्यकाल 360 वष का लिखा गया है। चौथी वशावली इसी तक्षक वश के चन्द्रगुप्त मौय से आरम्भ हुई। इस वश मे 10 राजा हुए और उन्होने 137 वष तक राज्य किया।[6]

शृगी नामक देश मे आन्ध्र पाचवे वश के आठ राजाओ न 112 वष तक यहा पर राज्य किया। इस वश का अन्तिम राजा देवभूत हुआ। उसी के समय मे कण्वदेश से भूमित्र नामक एक पराक्रमी सेनानायक मगध आया। उसने देवभूत का सहार करके सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया। कण्व देश से आया हुआ यह वश 23 पीढी तक चला। परन्तु इनम से अधिक राजा शूद्रकुल मे उत्पन्न हुए थे। भूमित्र स चौथी पीढी म कृष्ण नामक एक राजा शूद्राणी के गभ से उत्पन्न हुआ और इस राजा से ही इस वश म शूद्रपन का प्रचार हुआ। इस वश के अन्तिम राजा का नाम सुलोमधी था।

इस प्रकार, महाभारत क पश्चात् 6 वशावलिया दी गयी है। उनमे जरा स घ के वशज सहदव से लकर सुलोमधी तक 82 राजाओ का लगातार क्रम चला है। कुछ छोटी छोटी वशावलिया भी दी गयी है। उनके विवरण यहा पर देने की जरूरत नही है। युधिष्ठिर के सवत् का समय ससार की उत्पत्ति से 2825 वष बाद निकलता है। इस हिसाब से अगर 4004 म से अर्थात् ससार की उत्पत्ति से लकर ईसा के जन्म समय तक का समय निकाला जाये तो युधिष्ठिर के सवत् का प्रारम्भ ईसा के 1179 वष और विक्रमादित्य से 1123 वष पहले सिद्ध होता है।

11,332
9/5/92

सन्दभ

1 सस्कृत भाषा मे इन्दु और सोम को चन्द्र कहत है। इसलिए इन्दुवश का अभिप्राय चन्द्रवश से है।

2 टाड साहब ने लव को राम का ज्येष्ठ पुत्र माना है। पुराणा के मतानुसार कुश ही बडा पुत्र था।

3 राज्य का बटवारा हो जाने पर दोना के अलग अलग वश चल। दुर्योधन ने अपने आदिपुरुष कुरु के नाम से कौरव वश और युधिष्ठिर ने अपने पिता पाण्डु के नाम से पाण्डव वश चलाया।

4 टाड साहब क मतानुसार शक लोगो मे जुआ खेलन की पुरानी प्रथा थी और उन्ही से राजपूतो म यह प्रथा आई।

5 पुराणो म मगध क राजवशो का उल्लख ठीक ढग से नही लिया गया है । पाठको की जानकारी के लिए यह लिखना आवश्यक है कि मगध साम्राज्य का उदय हयकवश के बिम्बिसार (जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था) के साथ हुआ था । इस वश के अ तिम राजा नागदासक को सिहासन से हटा कर शिशुनाग मगध के सिहासन पर बठा । शिशुनाग वश के कालाशोक की हत्या कर महापद्म सिहासन पर बठा । उसका वश न दवश कहलाया । च द्रगुप्त मौय न न दो का विनाश कर मौयवश की स्थापना की । अ तिम मौय सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर उसके सेनानायक पुष्यमित्र शु ग ने शु ग-वश की स्थापना की । शु गवश के अ तिम राजा देवभूति को मार कर उसके मत्री वसुदेव कण्व ने सिहासन पर अधिकार कर लिया और कण्ववश की प्रतिष्ठा की । कण्ववश के अ तिम शासक सुशर्मा को परास्त करके सातवाहन वशी साम त शासक सिमुक ' ने मगध पर अपना अधिकार जमा लिया और सातवाहन वश की स्थापना की ।

अध्याय 6

भारत पर आक्रमण करने वाली जातियाँ उनके साथ राजपूत जाति की समानता पर विचार

इस अध्याय मे उन जातियो के सम्ब ध मे प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे, जि होने समय-समय पर भारत मे आकर आक्रमण किया और बाद मे राजस्थान के 36 राजवशो मे मानी गइ। जिन जातियो का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, वे हय अथवा अश्य, तक्षक जिट अथवा जिटी के नाम से विख्यात थी। इन सब जातियो की पौराणिक उत्पत्ति, वश विवरण आचार विचार आदि का अ य जातियो के साथ मिलान कर देखन से पता चलता है कि वे और चीनी तातारी मुगल, हि दू और शक जातियाँ अपन प्रारम्भिक जीवन मे एक ही थी। उन सबका मूल एक था। यह कहना कठिन है कि य आक्रमणकारी जातिया किस समय भारत मे आई थी, पर तु यह आसानी से समझा जा सकता है कि वे किन देशो से आई थी।

सवप्रथम हम तातारिया और मुगलो की उत्पत्ति को देखना है। उनका वणन उनके ही इतिहासकार अबुलगाजी ने किया है और पुराणो मे भी उनकी उत्पत्ति के सम्ब ध म बहुत सी बातो का उल्लख है। अबुलगाजी के अनुसार तातारिया के वश की प्रतिष्ठा 'मुगल' नामक व्यक्ति ने की थी। उसके पुत्र का नाम ओगज था। ओगज को उत्तरी प्रदेशा म बसने वाली तातार और मुगल जातियो का आदि पुरुष माना जाता है। ओगज के 6 पुत्र हुए।[1] पहले बेटे का नाम किऊन[2] (कायन) था। पुराणो म उस 'सूय' कहा गया है। दूसरे का नाम अय था जिस पुराणो म च द्र अथवा इ दु कहा गया है। अ तिम पुत्र का नाम आयु था। पुराणो म इसका च द्र का एक वशज माना गया है। तातारी लोग इसी आयु नामक व्यक्ति को अपना आदि पूवज मानते हैं और जमनो की भाति च द्र को अपना देवता मानते है।

अय के पुत्र का नाम जुल्डस था। जुल्डस के एक पुत्र का नाम ह्यू था। उसी के वशजो ने चीन के प्रथम राजवश की प्रतिष्ठा की। पुराणा मे वर्णित आयु' के यदु नाम का पुत्र हुआ। उसे कही कही पर जदु भी कहा गया है। यदु और जदु मे केवल उच्चारण की भिनता है। यदु के तीसर पुत्र का नाम ह्यू था। पर तु पुराणा

क अनुसार ह्यू क कोई सन्तान नहीं हुई। फिर भी चीन के लोग अपने को ह्यू क वंश मे इन्दु की सन्तान मानते हैं।[3]

अय की नवी पीढी म एलखा हुआ। एलखा के दो बेटे थे। पहले का नाम काइयान और दूसरे का नाम नगस था। तातार प्रदेश के सभी तातारी लोग नगस क वंशज है। विख्यात चंगेज खाँ अपने को काइयान का वंशज मानता था। सम्भव है कि पुराणो और तातारी ग्रन्थो म वर्णित तक्षक और नागवंश[4] का आदिपुरुष नगस रहा हो। डी गिगनीस न उसका नाम तबियुक मुगल लिखा है।

उपर्युक्त विवरण स स्पष्ट है कि हिन्दुओ, तातारियो और मुगलो की उत्पत्ति, एक दूसरे से मिलती है। उनक गोत्रपति और देवताओ म भी काफी साम्य है। पुराणो के अनुसार सूर्यपुत्र इक्ष्वाकु की पुत्री इला एक दिन वन मे विचरण कर रही थी, जहा उसका चन्द्रपुत्र बुध से समागम हुआ। बुध न उसे अपनी पत्नी बना लिया। उनस जो सतान पैदा हुई उससे चन्द्रवंश (इन्दुवंश) की उत्पत्ति हुई। चीनी ग्रन्थो क अनुसार उनका प्रथम राजा यू (अयु) था। उसकी माता का एक दिन एक तारे को (बुध) के साथ समागम हो गया जिसस वह गर्भवती हो गई। यथा समय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'यू' रखा गया। इसी यू न चीन के प्रथम राजवंश की स्थापना की और उसने बाद म चीन को नौ भागो म विभाजित किया। उसन ईसा से 2207 वर्ष पहले राज्य करना आरम्भ किया था।

इस प्रकार, तातारियो का अय चीनियो का यू और पुराणो का आयु य तीनो नाम उक्त तीनो जातियो के आदिपुरुष के हैं। तीनो को चन्द्रमा का वंशज बताया गया है और उनके वंशजो से चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा हुई।

अब हमे सीथियन अर्थात् शक जाति की उत्पत्ति पर विचार करना है और इन जातियो के साथ शक जाति के सम्बन्ध को देखना है। सीथियन लोग प्रारम्भिक काल म अरेक्सीज नदी के किनारे पर रहते थ। वे अपनी उत्पत्ति पृथ्वी की रूपवती कन्या स मानते है। इसका नाम इला था। इला क कमर स ऊपर का भाग एक स्त्री के समान था और नीचे का भाग एक साप की तरह था। जुपीटर (बृहस्पति) ने उसक साथ विवाह किया। इस विवाह स जो सन्तान हुई उसका नाम सीथिस[5] रखा गया। उसक वंशजो न उसी के नाम पर अपनी जाति का नाम रखा। सीथिस क पालास और नापास नामक दो पुत्र हुए। य दोनो एस पराक्रमी हुए कि एक समय उन्होंने अफ्रीका से लेकर नील नदी और पूर्व सागर के मध्य क विशाल देश तक का भू भाग अपने अधिकार म कर लिया था।

सीथिस के वंश म अनेक विख्यात राजा हुए जिनके वंश म सक म अथवा मसेजटी अथवा जट (जिट) एरी मस्पियन और अन्य बहुत सी जातियां थी।

उन्होंने असीरिया और मीडिया[6] को जीतकर वहा के राज्य को नष्ट किया । ये सभी जातिया और उप जातियाँ राजस्थान के 36 राजवशो म आ गइ । अब हमे यह देखना है कि उन जातिया का मूल निवास स्थान कहा पर था ।

स्ट्रेबा के मतानुसार कास्पियन सागर के पूव म निवास करन वाली सभी जातिया सीथिक कही जाती ह । उन सबके अलग अलग नाम और स्थान है जैसे कि मसजेटी, सकी, जिट इत्यादि । लगभग सभी जातियाँ घुमक्कड जीवन व्यतीत करती थी और आवश्यकता के अनुसार अपना निवास स्थान बदलती रहती थी । अपन स्थान से चलकर इन जातियो के लाग दूसरे देश के लागा पर आक्रमण करते थे । इन लोगो ने यूनानियो से बक्ट्रिया प्रदेश जीत लिया था । शक जाति के इन लागो ने एशिया म भी आक्रमण किया था । योरोप भी इनके आक्रमणो से नही बचा । भारत पर उनके आक्रमण उस समय मे हुए जबकि उस जाति के अन्य समूहो न योराप मे प्रवेश किया । इसी आधार पर यह मानना पडता ह कि राजपूता और योरोप की प्राचीन जातियो मे सम्बन्ध था और प्राचीन काल मे वे एक ही स्थान पर रहा करती थी और उनका मूल उत्पत्ति एक थी । इसकी पुष्टि उनके एक जसे देवी-देवताओ, कहानियो, रीति रस्मा आदता, आक्रमण क तरीका गीत सगीत आदि से भी होती है । उनकी भाषा मे कोई अन्तर न था । उनकी सभी बातें एक ही प्रकार की थी ।

भारत मे इन जातियो का आगमन कब हुआ ? पुराणा के अनुसार इन्दु सीथिक जेटी तक्षक आर असी जातिया का आगमन पहले हुआ । शेषनाग (तक्षक) का शेषनाग देश से आने का समय ईसा से 600 वष पहले सिद्ध होता है । इसी समय इन जातियो ने एशिया माइनर पर आक्रमण कर उसको जीता था । उसके बाद स्कण्डीनेविया तथा बक्ट्रिया के यूनानी राज्य को नष्ट किया । कुछ समय बाद असी काठी और किम्बरी जातियो ने बाल्टिक सागर के किनारे आबाद रोमन लागा पर आक्रमण किया था ।

यदि यह सिद्ध किया जा सके कि आदिकाल म जमनी क लोग सीथियन थे अथवा गॉथ या जेटी जाति से सम्बन्धित थे तो जिस निष्कष पर हम पहुचना चाहते हैं उसके लिए बहुत कुछ रास्ता साफ हो जायेगा । हेरोडोटस के अनुसार शक लागा ने 500 ई पू मे स्कैण्डीनविया पर अधिकार कर लिया था । ये शक लोग मक्यूरी (बुध) आडन (ओडिन) की पूजा करते थे और अपन को उन्ही का वशज मानते थ । यूनानियो और गाथ लागो क देवता तथा धार्मिक विश्वास एक जैसे ही थे । उनक मुख्य देवता केलम और टरा बुध और पृथ्वी की सतान थे । स्कैण्डीनेविया क लागो क दवी-देवता तथा धार्मिक विश्वास भी यूनानिया आर रोमनो से मिलते जुलत हैं । वस्तुत इन जातिया की अधिकाश बातें एक दूसर से काफी मिलती जुलती हैं ।

उनके विचारो और विश्वासो मे कोई विशप अ तर न था। प्राचीन योरोप की जातिया, राजपूतो और शको (सीथियन) की उत्पत्ति एक ही थी। इस पर थोडा और विचार कर लेना चाहिए।

अबुलगाजी के ग्र थ के टीकाकार ने लिखा है कि हम लोग तातारिया से घृणा करते हैं। लेकिन विचार करने से मालूम होगा कि हम मे और उनमे कोई अ तर नही है। हम दोनो के पूवज एक ही थे और वे एशिया के उत्तर से आय थे।' वे सब तातार से आने वाले ही थे जि होने किम्ब्रियन केल्ट और गाथ क नाम से योरोप के समस्त उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया था। गॉथ हूण एलन स्वीड, वाइल फ्रैंक आदि जातियो के लोग वास्तव म एक ही थे। स्वीडन के इतिहास के अनुसार स्वीड लोग काशगर से आये थे और सक्सन तथा किपचक भाषाओ मे कोई विशेष अ तर न था।

प्राचीनकाल म अनेक देशो न सभ्यता मे उन्नति की थी। एशिया की ऊची जमीन पर आबाद यूची और जिट लोगो पर जब 'सू' लोगो ने आक्रमण किया था तो उ ह कुछ ऐसे नगर मिले जिनम भारत की तयार की हुई बहुत सी व्यावसायिक चीजा की बिक्री होती थी और उनम सिक्को का प्रचार था। उसके बाद इन देशो मे ऐसी लडाइया हुई जि होने उन देशो का विनाश किया। उस समय से ये देश बरबाद हो गये।

जेटी जोट अथवा जिट और तक्षक जातिया जो आज भारत के 36 राज वशो मे शामिल हैं सब की सब सीथिया प्रदेश से आई थी। पूवकाल मे उनके स्थान परिवतन का कारण हमे पुराणो मे ढू ढना चाहिए। पर तु उनके आक्रमणो के सबध मे बहुत सी बाता की जानकारी महमूद गजनवी और तमूर के इतिहास स मिलती है।

जाऊद के पवतो से लकर मकरान के किनारे तक और गगा के समीपवर्ती स्थानो मे जिट लाग बहुत बडी सख्या म आबाद हैं। प्राचीन ग्र थो और शिलालेखो मे तक्षक जाति का उल्लेख मिलता है। इन प्राचीन जातियो के नामो म भी अब परिवतन हो गय हैं। साइरस ने जब जेटी लोगो पर आक्रमण किया तो वे भागकर सतजल नदी के पार आ गये और बीकानेर के समीप मरुभूमि मे चरवाहो की तरह रहने लगे। बाद मे वे काश्तकारी का काम करन लगे।

इन इन्दु सीथिक जातियो (जेटी, तक्षक, अस्सी कट्टी, राजपाली, हूण, कमेरी) के आक्रमणो के बाद इस देश मे इन्दुवश (च द्रवश) के सस्थापक बुध की पूजा का श्रीगणेश हुआ। अश्व अथवा बाजस्व का इन्दुवश सिन्धु नदी के दोनो किनारो के प्रदेशा मे आबाद हो गया। अश्व लोग इ दुवशी थे पर तु सूयवश की एक शाखा का नाम भी अश्व पाया जाता है। अश्वो के सम्ब ध म लिखा गया है कि वे

लोग घोडा की सवारी करते थे और अश्व पूजा भी करते थे और सूयदेव को घोडे की वलि भी देते थे । जेटिक जाति के लोगा मे अश्वमेघ की प्रथा प्रचलित थी । इससे सिद्ध होता है कि उन लोगो की उत्पत्ति सीथियन लोगो से हुई क्योकि यह प्रथा सीथियन लागो की बहुत पुरानी प्रथा है ।

ईसा से 1200 वप पूव गगा और सरयू के तटवर्ती सूयवशी राजाग्रा द्वारा अश्वमघ यज्ञ किया जाता था । इसी प्रकार की प्रथा जेटी लोगो मे साइरस के समय थी । घोडे की पूजा और उसकी वलि दन की वात राजपूतो म आज भी विद्यमान है । स्कण्डीनेविया की जेटी जाति मे घोडे की पूजा की प्रथा का प्रचार असी लोगो द्वारा हुआ । वाद म सू, सुएवी कट्टी, सुक्मिब्री ग्रार जेटी नामक प्राचीन जातिया न इस प्रथा का प्रचार जमनी और एल्व तथा वजर नदियो के आसपास किया ।

चीनी और तातारी लखका के अनुमार वुध और फो ईसा से 1027 वप पहले हुए थे । वाक्ट्रिया और जेहुन नदी के किनारे आवाद यूची लोग वाद म जटा अथवा जेटन के नाम से विख्यात हुए । एशिया मे उनका साम्राज्य बहुत समय तक रहा और वह भारत मे भी फला हुआ था । यूनानी लोग इनको इन्डोसीथी क नाम से जानत थे । उनके जीवन की अनेक वाते तुर्को के समान थी । शेषनाग देश से तक्षक जाति के आन का समय छठी शताब्दी माना गया है ।

मूल उत्पत्ति एक होन का सबसे बडा प्रमाण भाषा की अपेक्षा धम भी है क्योकि भाषा मे तो हमेशा परिवर्तन होता रहा है पर तु रीति रिवाज और धार्मिक विश्वास सदा एक रहते है । अब हम यह देखें कि बाहर से आन वाली इन जातियो और राजपूतो के धम, समाज, व्यवहार सम्ब धी रीतिनीति की बातें कहा तक मिलती हैं । विचार कर देखने से विदित होता है कि इनका मेल इतना अधिक है कि इनको पृथक मानना कठिन विदित होता है । पहल धम को ही लें ।

देश वश—टइस्टो (अर्थात् वुध) और अर्था (पृथ्वी) प्राचीन जमन लोगो के प्रधान दवता थ । उनके मतानुसार भगवान मनु के द्वारा अर्था के गभ से ट्इस्टो की उत्पत्ति हुई है । जमन वाला न उक्त टइस्टो (मगल) और वाधेन (वुध) का एक ही कह कर लिखा है, जिससे स्थान स्थान पर उनका बहुत उलभन मे पडना पडता है ।

पूजाविधि—स्कैण्डोनेविया की जेटो जातिया म सुयोनीज अथवा सुएवी एक विख्यात जाति थी । वह वाद म अनक शाखाग्रा म विभाजित हो गई थी । उन जातिया के लाग पृथ्वी की पूजा करत थे और उसको प्रसन्न करने के लिए अपन पवित्र कु जा मे नरवलि चढात थ । उनके धमग्रन्था म यह भी लिखा है कि उनका भगवती वसुमति का रथ एक गाय के द्वारा खीचा जाता था । सुएवी लाग भी मूर्तिपूजक थे । वे लाग ईसिम (ईश, गौरी) की पूजा करत थे । प्राचीन मिस्र के लाग भी ईसिम और आसि रिम की युगल मूर्ति (हर गौरी) की पूजा करत थ । उदयपुर म विशाल सरोवर क

किनारे अब तक गौरी का त्योहार मनाया जाता है और उसके मनाने का तरीका वैसा ही है जैसा कि प्राचीन काल मे उक्त जातियाँ मनाया करती थी। इस प्रकार का विवरण हेरोडोटस ने अपने ग्रन्थ म किया है।

वीर व्यवहार—ससार की सभी प्राचीन जातियो के युद्ध सम्बन्धी आचार-व्यवहार एक से थे। उन सबके देवता एक थे। भाषा की विभिन्नता के कारण आज उनके नामो म अन्तर आ गये हैं। सभी जातिया युद्ध म जाने के पहले अपने देवताओ के प्रशसा सूचक गीत गाती थी और उनसे प्रेरणा प्राप्त करती थी। वे लोग युद्ध मे जाते समय अपने देवता की ध्वजा तथा प्रतिमा साथ ले जाते थे। युद्ध मे लडने की कलाए भी एक जैसी थी। सभी जातिया युद्ध म बछा और भालो का प्रयोग करती थी। सुएवी अर्थात् सुयोनीज लोग त्रिमूर्ति की पूजा करते थे और इसकी प्रतिमा को अपने मन्दिरो म प्रतिष्ठित रखते थे। त्रिमूर्ति के तीन देवताओ के नाम हैं—थार, वोडन और फ्रेमा। राजपूतो मे भी तीन देवता माने जाते हैं। थोर अर्थात् युद्ध का देवता महादेव (शत्रु का सहार करने वाला) वोडन अर्थात् बुध रक्षा करने वाला देवता और फ्रेमा अर्थात् उमा जो शक्ति उत्पन्न करने वाली देवी थी। वसन्त ऋतु मे फ्रेमा का उत्सव मनाया जाता था और देवी के सम्मुख जगली सुअर की बलि चढाई जाती थी।

राजपूत लोग भी वसन्तोत्सव मनाते हैं और वसन्त के प्रारम्भ म राजा लोग अपने सरदारो के साथ सुअर का आखेट करने जाते थे। यदि राजा को आखेट मे सफलता न मिलती तो वह वर्ष उसके लिए अपशकुन का माना जाता था।

पिक्टन टॉलेमी के अनुसधान के आधार पर जटलैंड की जिन 6 जातियो का उल्लेख किया गया है, उनके देवता और धार्मिक विश्वास भी उसी प्रकार के थे, जैसाकि ऊपर अनेक प्राचीन जातियो के सम्बन्ध म लिखा गया है। ममीज ने भी इन बातो की पुष्टि की है। इन 6 जातियो म किम्ब्री का नाम अधिक विख्यात है। इस जाति के लोग अपने जीवन म शूरवीरता को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। भारत के राजपूतो म जितने भी अच्छे गुण थे उनमे उनकी शौर्य भावना प्रधान है। शायद ही किसी राजपूत मे इस गुण का अभाव हो।

कुमार को राजपूत युद्ध का देवता मानते हैं। पुराणो तथा हिन्दुओ के अन्य धर्मग्रन्थों मे उस देवता के सात सिर बताये गये हैं।[7] सक्सन लोग अपने युद्ध के देवता के 6 सिर मानते थे। सक्सनी, कट्टी, सीवी अथवा सुएवी जोटी अथवा जेटी और किम्ब्री जाति के सब लोग भी उक्त 6 मुख वाले युद्ध देवता की पूजा करते थे।

समर विलासी राजपूतो के रणधर्म और शिव पूजा पद्धति उन हिन्दुओ के धर्म और सिद्धान्तो से मेल नही खाती जो फलो, पत्तियो और पौधो को खाकर

जीवन निर्वाह करते हैं और गाय की पूजा करते हैं। राजपूत लोग लडाई, दगे तथा रक्त धारा बहाने से ही अत्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं। अपने इष्ट देवता पर वे मदिरा और रक्त चढाते हैं और मनुष्य की खोपडी में अपने देवता को अर्घ्य देते है। इन पदार्थों को अपने इष्ट देवता को सतुष्ट करने वाला जानकर राजपूत लोग अच्छा समझते हैं। राजपूतो की ये सभी बातें, उनके कार्य, विश्वास और सिद्धान्त स्कण्डीनविया के लोगों से मिलती जुलती हैं।

भट्ट कवि—राजपूत लोग भैंसो की हिंसा करते हैं। मृग, सुअर, हस और अन्य जगली जीवो का शिकार करके उनके मास को खा जाते है। वे लोग सूर्य, तलवार और घोडे की पूजा करते हैं। ब्राह्मणो के धर्मपूर्ण उपाख्यानो की अपेक्षा उनको भट्ट[8] कविगणो के रण सगीत अधिक पसन्द हैं। ठीक इसी प्रकार का स्वभाव स्कण्डीनविया के लोगो का था। उनकी देवकथाओ मे भी वीरता के कथानक पाये जाते हैं और उनकी रचनाओ म वीर रस की कविताए मिलती हैं। पूर्व और पश्चिम की इन युद्धप्रिय जातियो के साथ राजपूतो का मिलान कर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि इन सभी जातियो के आदिपुरुष एक ही थे और उनकी उत्पत्ति एक दूसरे से भिन्न नहीं है।

प्राचीनकाल मे सक्सन लोगों मे भी कुछ लोग भाट कवियो की तरह का ही काम करते थे। टसीटस ने लिखा है युद्ध म जाने के समय वे लोग जोशीली कवितायें सुनाकर सक्सन लोगो को युद्ध के लिए तयार करते थे।' राजपूत आज भी रामायण, गीता और अन्य हिन्दू ग्रन्थो की अपेक्षा महाभारत और आल्हा अधिक पढते और गाते हैं।

युद्ध रथ—महाराज दशरथ और महाभारत के युद्धवीरो के समय से लेकर भारत मे आक्रमण करने वाले मुसलमानो की विजय तक इण्डो सीथिक जातियो मे रथ की सवारी काफी लोकप्रिय थी। उसके बाद रथ की सवारी धीरे-धीरे कम होती गई। इसके पहले ससार की प्राचीन जातियाँ युद्ध मे रथो का प्रयोग अधिक करती थी। अभी कुछ दिन पीछे तक भी भारत के दक्षिण पश्चिम प्रान्त स्थित विशाल स्थान मे युद्धरथ का व्यवहार होता था। जिन जातियो ने रथ का व्यवहार किया था, उनमे सौराष्ट्र की काठी कोमानी और कोमारी अधिक प्रसिद्ध हैं। इन जातियो का रहन सहन उनका स्वभाव और विश्वास तथा जिन्दगी की बहुत सी बातें सीथियन लोगो के समान ही है।

स्त्रियों के प्रति व्यवहार—प्राचीन जर्मन और स्कण्डेनवियन जातियो जेटी लोगों और राजपूतो के आचार विचार मे सबसे अधिक समानता स्त्रियो के प्रति व्यवहारो म मिलती है। राजपूत लोग अपनी स्त्रियो के साथ जैसा श्रेष्ठ व्यवहार करते हैं ठीक वैसा ही व्यवहार वे लोग भी करते थे। टैसीटस ने लिखा है कि

जमनी के लोग अपनी स्त्रियो पर बहुत विश्वास करत हैं और उनकी सम्मति को पवित्र दववाणी के समान मानते हैं। राजपूत भी अपनी स्त्रियो का सम्मान करत है और उनके मान सम्मान की रक्षा क लिए अपन प्राणो का बलिदान कर दत हैं।

द्यूत जुआ—प्राचीन काल म सीथियन लोगो म जुआ खेलन का विवरण पाया जाता है। उ ही क द्वारा जमन लोगो म भी इस आदत का प्रचार हुआ। राजपूतो म भी जुआ खेलन की आदत थी। जमन और सीथियन लाग अपना सब कुछ, यहाँ तक कि अपनी स्वाधीनता की बाजी लगाकर इस अनिष्टकारी खल को खेलत थ और यदि हार जात ता जीतन वाला उनको दास भाव से बच दिया करता था। इसी दुर्व्यसन क कारण पाण्डवो न अपना राज्य और शारीरिक स्वतन्त्रता जुए म हारकर खो दी थी। आज भी समस्त हिन्दू जातियो म इस प्रकार क जुए का प्रचार है उनक धम म भी इस कुप्रथा का स्थान दिया गया और दीपावली क अवसर पर जुआ खेलन की अनुमति दी गई है। य लोग भगवती लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए जुआ खेला करत हैं।[9]

शकुन अपशकुन—शकुन अपशकुन पर सभी प्राचीन जातियो का विश्वास था। जेटी जातियो और जमन जातियो के लोग इनम बहुत अधिक विश्वास रखत थे। शाकुनिक और सामुद्रिक गणना पक्षियो क उडन शब्द करन, पर फडफडान और अगो क फडकने से शुभाशुभ का विचार किया जाता था। इनक सिवाय दवन और सामुद्रिक जानन वाल क विचार पर इन समस्त प्राचीन जातियो का अटल विश्वास है।

मदिरापान—स्कण्डीनेविया की असी जाति और जमन जातियो मे मदिरा पीन का प्रचार प्राचीनकाल म अधिक था। मदिरापान म उन लोगो की विकट आसक्ति थी। मदिरापान म राजपूत लोग भी सीथिया और योरोप के लोगो से किसी प्रकार कम नही हैं। मदिरा और मादक द्रव्यो के सेवन की आदत भारत मे दूसरे देशो से आई है।

अन्य बातें—राजपूत लोग भी अतिथि सत्कार मे विश्वास रखत है यहा तक कि शत्रुओ के साथ भी जब वे एक बार खा पी लत हैं तो उनकी शत्रुता के भाव मिट जाते हैं। सीथियन और जमनी के पुरान लोगो म भी इस प्रकार की आदतें पायी जाती थी।

स्कण्डीनविया क लोग युद्ध के दवता थोर की पूजा करते थ। उनके मत से शत्रु की खोपडी ही उनक देवता का मदिरा पात्र है। इसलिए व शत्रु की खोपडी का प्याला बनाकर रक्त का पान करत। उनकी इस प्रथा की समता बहुत कुछ राजपूतो

के देवता महादेव के साथ होती है। महादव का प्रसाद पान के लिए राजपूत लोग पूजा के समय बहुत सी मदिरा और रुधिर चढाया करते है।

राजपूत लोग जिस प्रकार से अपने मृतको के शवो का दाह सस्कार किया करते है, उसके सम्बन्ध मे भी प्राचीन जातियो की एकता और समानता मिलती है। स्कैण्डीनेविया मे दो प्रकार की प्रथाए पायी जाती थी। एक तो मृत शरीर को आग मे जलाकर भस्म कर देने की और दूसरी उसको भूमि मे गाड देने की। आडिन बुध न शव को पृथ्वी मे गाडने तथा उस स्थान पर समाधि बनाने की प्रथा का प्रचार किया। उसी समय मृत पति के साथ जीवित पत्नी के जल जाने की प्रथा (सती प्रथा) का भी प्रचार हुआ। भारत म इस प्रकार की बातो का प्रचार शक द्वीप अथवा शक-सीथिया से आकर हुआ। हेरोडॉटस ने लिखा है कि सीथिया म मृतको के साथ उनकी पत्नियो को भी चिता मे जीवित जला दिया जाता था। स्कण्डीनेविया मे एक नई रीति प्रचलित थी। यदि मृतक पुरुष के बहुत सी स्त्रियाँ हाती थी तो सबस पहली विवाहित स्त्री ही उसके साथ जल सकती थी। पति के साथ चिता पर पत्नी के जलने की प्रथा, राजपूतो मे ठीक उसी प्रकार की है जिस प्रकार कि अन्य जातिया के सम्बन्ध मे ऊपर लिखी गई है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल म सीथिक स्कण्डीनवियन और राजपूत जातिया एक थी। हेरोडाटस कहता है कि सीथियन जेटी लाग जब मरते थे तब उनके साथ उनके प्यारे घोडे जीवित जलाये जात थे और स्कण्डीनेविया के जेटी लोग जब मरते थे तब उनके साथ घोडे भी पृथ्वी में गाडे जात थे। इस प्रकार के सस्कार का मूल कारण उनका यह विश्वास था कि विना घाडे के परलोक मे पैदल ही भगवान वोधेन के समीप नही पहुच सकते हैं। राजपूता म भी उनके घोडो के बलिदान की प्रथा भी इससे मिलती जुलती है। राजपूत का मृत शरीर शस्त्रो से सुसज्जित चिता पर रखा जाता है और उसके घोडे को जलाने क स्थान पर उसके देवता के नाम पर उसके किसी पुजारी को दान मे दे दिया जाता है।

स्कण्डीनेविया क लोग और जीट लोग सजातीय मृतक पुरुष की भस्म पर ऊची वदिका बनाया करते थे। राजपूत लोगा का भी ऐसा ही वृत्तान्त पाया जाता है। जा राजपूत युद्ध मे वीरगति को प्राप्त होत हैं उनके चबूतरे स्तम्भ और किसी अन्य प्रकार के स्मारक बनवाये जात हैं और इस प्रकार के स्मारक अथवा उनक चिन्ह सम्पूर्ण राजस्थान मे अब तक पाये जाते हैं जिन पर मृतक का घोडे पर सवार और सभी प्रकार के शस्त्रो स सुसज्जित दिखाया जाता है। उसके साथ भस्म हुई सती विराजमान रहती है। फिर उस युगल मूर्ति के दोनो ओर चन्द्रमा और सूर्य की भाति दो मूर्तियाँ खुदी रहती हैं। सौराष्ट्र प्रदेश मे काठी कोमानी, बल्ला और दूसर सीथिक वश के लोगो म भी इसी प्रकार की प्रथाए प्रचलित थी। तातार के कामानी लोगो और केन्ट लोगो मे भी इस प्रकार की प्रथाए थी। सभी प्राचीन

मे यह प्रथा एक जैसी ही थी और यह बात उन सबके एक होने का प्रमाण देती है।

राजपूत लोग अपने अस्त्र शस्त्रो को, घोडे ही के समान आदरणीय वस्तु समझते हैं और उनकी पूजा करते हैं। तलवार ढाल, बर्छा और कटार उनके विशेष हथियारो मे रहे है और आवश्यकता पडने पर वे उनकी शपथ लेते हैं। हेरोडाटस ने सीथियन जेटी लोगो के बारे म इसी प्रकार की अनेक बातो का उल्लेख किया है।

जमन युवको को जिस पद्धति के अनुसार सनिक शिक्षा दी जाती थी, ठीक इसी ढग से राजपूतो को भी शिक्षा दी जाती थी। अपने आराध्य देव को प्रसन्न करने के लिए प्राचीन जातियो मे बलि देने की जो प्रथाए थी, वे भी एक-दूसरी स काफी भिन्न न थी। बलि दिये जाने वाले पशुओ मे अवश्य थोडी बहुत भिन्नता पायी जाती है। हेरोडॉटस कहता है कि स्कण्डीनविया के लोग सक्रान्ति का पव बडी धूमधाम से मनाया करते थे। राजपूतो और हिन्दुओ मे आज भी यह त्यौहार मनाया जाता हैं।

विश्व की प्राचीन जातियो के सम्ब ध मे इस प्रकार जितने भी अनुस धान किये जा सकते हैं, उन सभी से पता चलता है कि आरम्भ मे वे सभी एक थी और उनकी उत्पत्ति म भी किसी प्रकार की भिन्नता न थी। आरम्भ मे उनकी भाषा एक थी, लेकिन वे लोग एक दूसरे से जितने ही दूर होते गये, उनकी भाषाओ मे अन्तर शुरू हुआ और धीरे धीरे उनकी भाषाए भी अलग अलग बन गइ। उन प्राचीन भाषाओ का मिलान करने से स्पष्ट पता चलता है कि उन सबकी उत्पत्ति एक ही भाषा से हुई थी। धार्मिक विश्वास देवताओ की पूजा युद्ध की प्रणाली शिकार करने की आदत लडने के तरीके युद्ध के गीत युद्ध के अस्त्र शस्त्र उनके काम मे आने वाली सवारिया स्त्रियो का सम्मान जुआ खेलना मद्यपान अतिथि सत्कार, पति के साथ पत्नी के जलने की प्रथा मृत्यु सस्कार आदि जीवन की सकडो बातें इस बात का एक प्रमाण ह कि आदिकाल म वे सब एक थी। ससार की प्राचीन जातियो का प्रत्यक इतिहास लेखक इसी सिद्धा त का समथन करता है। इसके विरोध मे हम कोई सामग्री नही मिली।

सन्दर्भ

1 ओगज के इन 6 पुत्रो से तातारिया के 6 राजकुल उत्पन्न हुए। इसी प्रकार आय जाति मे पहले दो राजवश थे फिर उनमे अग्नि से उत्पन्न चार कुल और मिल जाने से 6 हो गये। अन्त मे बढते बढते यही कुल 36 प्रकार के हो गये।

2 अबुलगाजी के अनुसार, किऊन का अथ तातारी भाषा मे सूय और च द्र होता है ।

3 चीनी ग्रन्थो के आधार पर विलियम जो स ने लिखा है कि चीनी लोग अपने आपको हि दुओ की एक शाखा मानते ह । लेकिन प्राचीन तथ्यो पर यह स्वीकार करना पडता है कि हि दू और चीनी—दोना च द्रवशी जातिया है और दोनो जातियो के पूवज सीथियन (शक) थे ।

4 सस्कृत मे नाग और तक्षक को साप कहते ह । इसको बुध का चि ह माना जाता है । भारत मे प्रसिद्ध नाग जाति के लोग सीथिया के निवासी तक्षक और तकयुक हैं । पुराणो म जो नाग तक्षकादि का विवरण पाया जाता है उनका प्रारम्भिक निवास स्थान शाक द्वीप रहा है । इन लोगो ने ईसा से 600 वष पूव भारत मे आक्रमण किया था ।

5 सीथीस, सीथि से बना है । सीथ + ईश, सीथ=शाक द्वीप और ईश अर्थात् स्वामी, इस प्रकार सीथीस=सीथियन का स्वामी ।

6 च द्रवश की अश्व (वाजस्व) जाति मीड के नाम से प्रसिद्ध है, जसे पुरमीड, अजमीड और देवमीड । इस जाति के लोग वाजस्व के पुत्र थे । उनका मूल निवास पाचालिक देश था । वहा से ये लोग असीरिया और मीडिया पर आक्रमण करने के लिये आये थे ।

7 टॉड साहब ने न जाने किस आधार पर षडानन को सप्तानन कहा है । वाल्मीकीय रामायण मे लिखा है कि, कुमार को 6 कृत्तिका एक साथ दूध पिलाने की परम इच्छा करने लगी थी इससे कुमार ने उनकी प्रीति देख षण्मुख धारण किये थे ।

8 ब्रह्मववत्त पुराण म लिखा है कि क्षत्री के औरस और ब्राह्मण क या के गभ से भट्ट जाति हुई है ।

9 हि दूशास्त्र द्यूतक्रीडा का निषेध करते हैं । जुआ खेलने का विधान धमशास्त्र म नही कि तु निषेध है । आधार इतना मिलता है कि इस दिन कोई कृत्य इतना मात्र कर ले जिससे अपनी जय पराजय विदित हो जाय ।

अध्याय 7

राजस्थान के छत्तीस राजकुल

राजपूतो के आचार व्यवहार समाजनीति राजनीति और धम के साथ ससार की दूसरी प्राचीन जातिया का मिलान करके अब हम राजस्थान के 36 राजकुला की सक्षिप्त समालाचना करत है। इन वशो का विवरण उन साधनो के द्वारा प्राप्त किया गया है, जिनके सम्बन्ध मे अधिक से अधिक विश्वास किया जा सकता है। उनमे से पहली रचना मारवाड में नाडौल के प्राचीन नगर के जन मदिर से प्राप्त हुई है। दूसरी रचना दिल्ली के अतिम हिन्दू सम्राट के चारण कवि चन्दबरदाई की है। तीसरी रचना चद के समकालीन कवि की "कुमारपाल चरित्र" है। चौथी खीची चारण की और पाचवी सौराष्ट के एक चारण की है।

राजस्थान के जिन 36 राजवशो का हम इतिहास लिखन जा रहे है व बहुत सी शाखाओ अथात् उपवशो मे विभाजित है और ये शाखाए अगणित प्रशाखाओ अथात् गोत्रो में बदल गई हैं। इनमे जा अधिक प्रसिद्ध है उन्ही के विवरण यहा पर दिये गये हैं।

इन राजवशो मे से लगभग एक तिहाई ऐसे हैं जिनकी शाखाए नही हैं। राजवशो के साथ साथ 84 व्यवसायिक जातियो का भी उल्लेख किया गया है, जो विशेषकर राजपूता की ही शाखायें हैं और जो प्राचीन काल म खेती का काम करती थी अथवा पशुपालन के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करती थी।

आरम्भ मे सूय और चन्द्र-य दो ही वश थ। बाद म अग्निवश वाला क मिल जाने से वे 6 हो गये। इनके अलावा अन्य जितन भी वश है वे सूय अथवा चन्द्रवश की शाखायें है अथवा उनकी उत्पत्ति इण्डो सीथियन जाति से हुई है। भारत म मुस्लिम शासन के पूव, उनकी गणना 36 राजकुला म की जाती थी।

गुहिलोत अथवा गहलोत[1]—सभी की सम्मति के अनुसार और जैसाकि इस जाति के गोत्र से भी सिद्ध होता है इस वश के सभी राजा सूयवशी रामचन्द्र के वशज मान जाते हैं। यह वश रामचन्द्र से निकला है। पुराणो मे राम के वशजा की जा नामावली दी गई है उसके अन्तिम राजा सुमित्र के साथ गुहिलोत वश का सम्बन्ध है।

हुग्रा । कृष्ण के देहावसान के बाद युधिष्ठिर ग्रौर वलदव न दिल्ली ग्रौर द्वारका स महाप्रस्थान किया । कृष्ण के पुत्र भी ग्र य यदुवशियो के साथ, उनक साथ चले । इन लोगो ने मुल्तान के माग से सि धु को पार किया । जाबुलिस्तान पहुचकर य लाग वहीं बस गये । उ होने गजनी का सु दर नगर वसाया ग्रौर धीर धीरे इनक वशजा न समरक द तक ग्रपनी बस्तियाँ कायम कर ली ।

यह बताना ग्रसम्भव है कि श्रीकृष्ण के वशज किन कारणो से पुन भारत म ग्राये । ग्रनुमान है कि सिक दर के बाद के यूनानी शासको न उनको वहा से निकाल दिया हागा । पुन भारत मे ग्रान के बाद यादवा ने सि धु के पार जाकर पजाब म ग्रधिकार कर लिया ग्रौर सलभनपुर (शालिवाहनपुर) नामक नगर बसाया । इस नये प्रदेश म भी वे लोग ग्रधिक समय तक नही टिक पाये ग्रौर यहा स चलकर भारत की मरुभूमि म पहुच गय । इस मरुस्थल म पहले से निवास कर रही लङ्गधा, जोहिया ग्रौर मोहिल ग्रादि जातियो का भगाकर ग्रपना ग्रधिकार जमा लिया । बाद मे उ होने इस क्षेत्र म कई नगर बसाये जिनमे तनोट, देरावल ग्रौर जसलमेर विशेष प्रसिद्ध हुए । जैसलमेर की प्रतिष्ठा सम्वत् 1212 मे की गई । यही जसलमेर कृष्ण के वशजो भट्टी ग्रथवा भाटी लोगो की ग्रब तक राजधानी है । यहा पर भट्टी नाम का एक वश चला, जिसे भट्टी ने चलाया । इन लोगो ने गारह नदी के दक्खिन ग्रार के सभी प्रदेशा पर ग्रधिकार कर लिया । लेकिन बाद म राठौड लोगो न पहुचकर उनके प्रभाव को कम कर दिया ।

यदुवश से जाडेजा[3] नाम की एक ग्रौर प्रसिद्ध शाखा चली जा भट्टी शाखा क समान ही पराक्रमी निकली । इन दोना शाखाग्रो के सम्ब ध म लगभग एक सा ही वृत्ता त पाया जाता है । जाडेजा भी श्रीकृष्ण के वशधर माने जाते हैं । इसी कारण वे लोग ग्रपन ग्रापको श्याम पुत्र ग्रथवा साम पुत्र कहते थे । इस जाति क राजाग्रो की उपाधि सम्भा' थी । श्यामपुत्रो के बारे मे ग्रनेक प्रकार की बाते लिखी हुई मिलती हैं । उनम से एक यह है कि बहुत समय बाद श्यामवशियो न यह स्वीकार किया कि हम लोग शाम ग्रथवा सीरिया से ग्राये है ग्रौर ईरान के जमशदवशी हैं । इसी ग्राधार पर शाम के स्थान पर जाम हा गया ग्रौर इसी नाम पर जाम राज्य की भी प्रतिष्ठा हुई ।

यदुवश की ग्राठ शाखायें हैं—(1) करौली के यदु (2) जसलमेर के भाटी, (3) कच्छ भुज के जाडेजा (4) सि ध के ममचा मुसलमान, (5) मुडचा, (6) छिदभन, (7) बद्दा ग्रौर (8) साहा । ग्र तिम तीन शाखाग्रा का कोई विवरण नही मिलता ।

तोग्रर (तोमर) वश– तोग्रर वश यद्यपि यदुवश की ही एक शाखा थी फिर भी उसे छत्तीस वशा म स्थान दिया गया है। युधिष्ठिर की राजधानी इ द्रप्रस्थ ग्राठवी

इस वश का विस्तृत विवरण मेवाड के इतिहास म दिया गया है। यहाँ पर सक्षेप म उनकी उन्ही बातो का उल्लेख किया गया है जो उनके गोत्र और प्रदेशो से सम्बन्धित हैं। इसका अनुमान करना बहुत ही कठिन है कि गुहिलोतो का आदि गोत्रपति ठीक किस समय म अयोध्या (कोशल) को छोडकर आया था। ऐसा अनुमान है कि रामचन्द्र से कई पीढी पीछे कनकसेन नामक एक सूयवशी राजा ने पितृ राज्य (अयोध्या) को छोडकर सौराष्ट्र म सूयवश की स्थापना की थी। कनकसेन ने उसी सुप्रसिद्ध विराट प्रदेश मे अपनी राजसत्ता कायम की जहा किसी समय पाण्डवो ने अपना अज्ञातवास कर समय बिताया था। कई पीढियो के बाद उसके एक वशज विजय ने इस प्रदेश म विजयपुर नामक नगर बसाया।

कनकसेन के वशजो न वल्लभी राज्य की प्रतिष्ठा नही की थी फिर भी वे वल्लभी के राजा कहलाये। वहाँ का एक सवत् भी चला और उसका आरम्भ विक्रम सवत् 375 म हुआ। गजनी अथवा गयनी वल्लभी राज्य की दूसरी राजधानी थी। वल्लभी का अन्तिम राजा शिलादित्य मलेच्छो के द्वारा घिर कर मारा गया। उसके परिवार को वहाँ स निकाल दिया गया। शिलादित्य के मरणोपरान्त उसक गुहादित्य नामक पुत्र हुआ। गुहादित्य न आग चलकर ईडर नामक छोटे से राज्य को जीता और शासन करन लगा। उसके द्वारा स्थापित राजवश उसी के नाम पर गुहिल'[2] कहलाया और उसके वशज गुहिलोत कहलाये। कुछ समय बाद यह वश 'अहाडिया वश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और बारहवीं सदी तक इसी नाम से पुकारा जाता रहा। इस वश के राहप नामक राजकुमार न डूगरपुर मे अपना एक अलग राज्य स्थापित किया और उस राज्य के लोग अब तक अपन को अहाडिया वशज मानते है।

राहप के छोट भाई माहप न सीसादा नामक गाव को अपन राज्य की नई राजधानी बनाया। उस समय से उसके वशज सीसोदिया के नाम स विख्यात हुए। सीसोदिया का यह उपवश गुहिलोत की शाखा माना जाता है। समय के साथ साथ गुहिलोत वश 24 शाखाओ म विभक्त हो गया था। उनमे स कुछ शाखाओ का अस्तित्व अब तक कायम है। य 24 शाखायें इस प्रकार ह–(1) अहाडिया (डूगरपुर मे), (2) मागलिया (मरुभूमि म), (3) सीसोदिया (मेवाड म), (4) पीपाड (मारवाड मे), (5) कलावा, (6) गद्दोर, (7) घोरणिया (8) गाधा, (9) मगरोपा, (10) भीमला, (11) ककोटक, (12) कोटेचा, (13) सोरा, (14) ऊडड, (15) ऊसेवा, (16) निरूप (5 से 16 तक की शाखाओ के सदस्यो की सख्या काफी कम रही और अब उनका अस्तित्व नही मिलता)। (17) नादोडया, (18) नाधोता, (19) भोजकरा, (20) कुचेरा, (21) दसोन, (22) भटेवरा, (23) पाहा और (24) पूरोत। इनम भी 17 से 24 तक के वश बहुत पहले से समाप्त हो गये हैं।

यदु वश –यदु द्वारा प्रतिष्ठित यादव वश सभी वशो मे अधिक विख्यात था और चन्द्रवश के आदिपुरुष बुध के वशजो का यही वश आगे चलकर प्रसिद्धि को प्राप्त

हुआ । कृष्ण के देहावसान के बाद युधिष्ठिर आ
महाप्रस्थान किया । कृष्ण के पुत्र भी अन्य यदु
इन लोगो ने मुल्तान के माग से सि धु को पार कि
वही बस गये । उ होने गजनी का सु दर नगर ब
ने समरक द तक अपनी बस्तिया कायम कर ली ।

यह बताना असम्भव है कि श्रीकृष्ण के व
आय । अनुमान है कि सिक दर के बाद के यूनानी
दिया होगा । पुन भारत म आने के बाद यादवा
अधिकार कर लिया और सलभनपुर (शालिवाहनपु
प्रदेश मे भी वे लोग अधिक समय तक नही टिक
की मरुभूमि मे पहुच गये । इस मरुस्थल मे पह
जोहिया और मोहिल आदि जातिया को भगाकर
मे उ होने इस क्षेत्र मे कइ नगर बसाये जिनमे तन्न
प्रसिद्ध हुए । जसलमेर की प्रतिष्ठा सम्वत् 1212
के वशजा भट्टी अथवा भाटी लोगा की अब तक
का एक वश चला जिसे भट्टी न चलाया । इन ल
के सभी प्रदेशो पर अधिकार कर लिया । लेकिन
उनके प्रभाव को कम कर दिया ।

यदुवश से जाडेजा[3] नाम की एक और
के समान ही पराक्रमी निकली । इन दोनो शाखाओं
वृत्ता त पाया जाता है । जाडेजा भी श्रीकृष्ण के
लोग अपने आपको श्याम पुत्र अथवा साम पुत्र क
उपाधि 'सम्भा' थी । श्यामपुत्रा के बारे मे अनेक प्र
उनम से एक यह है कि बहुत समय बाद श्यामवं
लोग शाम अथवा सीरिया से आये है और ईरान
शाम के स्थान पर जाम हो गया और इसी न
हुई ।

यदुवश की आठ शाखाये हैं—(1)
(3) कच्छ भुज के जाडेजा (4) सि ध के
विदभन (7) बद्दा और (8) सोहा । अ तम
मिलता ।

तोअर (तोमर) वश– तोअर वश यद्यपि
भी उसे छत्तीस वशा म स्थान दिया गया है । पु

कहा जाता है कि हय अथवा हैहयवश के राजाओ की प्राचीन राजधानी माहेश्वर (माहिष्मती) परमार राजपूतो की पहली राजधानी थी। इसके बाद परमारो ने विन्ध्य के शिखर पर धारा और माण्डू नामक दो नगरो की स्थापना की। बहुत से लोगो के अनुसार विख्यात उज्जैन नगरी को भी इन्होंने ही बसाया था। परमार राजपूतो के राज्य की सीमा नर्मदा तक ही सीमित न थी। भट्ट ग्रन्थो मे पाया जाता है कि राम नामक एक प्रसिद्ध राजा इस वश मे उत्पन्न हुआ जिसने तलग देश म एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। चौहान राजाओ का भाट च द उसे भारत के सम्राट होने की पदवी देता था। लेकिन राम के उत्तराधिकारी अपने अधिकारो की रक्षा न कर पाये और उनके साम ता ने अपने स्वत त्र राज्यो की स्थापना कर ली। उनका चित्तौड का राज्य गुहिलोत राजपूतो ने छीन लिया। गुहिलातो के उदय होने के बाद उनका गौरव लोप हो गया।

परमार राजपूतो म राजा भोज का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भारत म भोज नाम के कई राजा हुए हैं। लेकिन परमारो म इस नाम का एक ही राजा हुआ है जिसने बहुत ख्याति प्राप्त की थी।

सिक दर का समकालीन च द्रगुप्त मौर्य था। पुराणो म उसे तक्षक वशी कहा गया है। परमारो की अनेक शाखाओ म एक मुख्य शाखा है—मोरी वश। इस वश का तुष्टा अथवा तक्षक भी लिखा गया है।

विक्रमादित्य को पराजित करने वाला शालिवाहन तक्षकवशी था। परमारो के प्रताप और महत्व को उजागर करने वाले अब उनके भग्नावशेष ही बाकी रह गये हैं। इस देश की मरुस्थली मे धाट का राजा इस वश का अन्तिम शासक था। वह परमार राजपूतो की एक प्रसिद्ध शाखा सोढा कुल म उत्पन्न हुआ था। इसी कुल के एक राजा न हुमायू को अपनी राजधानी अमरकोट (उमरकोट) मे उस समय सरक्षण दिया था जब वह तमूर के राजसिंहासन को खोकर इधर उधर भटक रहा था और भारत म उसे कोई राजा शरण देने को तैयार न था इसी अमरकोट मे हुमायू के पुत्र अकबर का जन्म हुआ था।

परमार वश म कुल पैंतीस शाखायें थी जिनमे विहल नामक शाखा अधिक विख्यात हुई। इस शाखा क राजाओ का राज्य च द्रावती मे था, जो आबू पवत की उपत्यका म था। बिजौलिया का सरदार जिसे राणा के दरबार म सम्मानित स्थान प्राप्त था धाट शाखा का परमार राजपूत सरदार था।

परमारो की 35 शाखाये इस प्रकार है—

मोरी—इस शाखा मे चन्द्रगुप्त और गुहिलोतो से पहले के चित्तौड के राजा हुए।

सोढा—सिकन्दर के समकालीन सोगढी जो भारत की मरुभूमि म धाट के राजा थे।

लाहौर मे वस कुशवाहो की एक शाखा ने सुप्रसिद्ध नरवर नगर की स्थापना की। यह नगर विख्यात राजा नल की लीलाभूमि रही और उसक वशज तातारा तथा मुगलो के समय म भी इस क्षेत्र पर शासन करते रहे। दसवी सदी म नरवर से चलकर कुशवाहो की एक शाखा ने राजस्थान म प्रवेश किया और मीना तथा वड गूजर जाति के राजपूता से राजौर और उसके आस पास के इलाको को लेकर आम्बर (आमेर) राज्य की स्थापना की।[6] बारहवी सदी के अन्त मे भी कुशवाह वश के लोग दिल्ली राज्य के साम तो म थे। राजस्थान के दूसरे वशो का जब पतन आरम्भ हुआ, उस समय से कुशवाहा वश की उन्नति आरम्भ हुई।

कुशवाहा वश भी अनेक शाखाओ मे विभाजित है। वतमान मे यह बारह भागा मे विभाजित है और ये भाग कोठरियो के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनका वरणन आगे किया जायेगा।

अग्नि कुल– राजपूतो के चार वश ऐसे है जिनकी उत्पति अग्नि से बतायी जाती है।[7] ये हैं—परमार, परिहार (पडिहार) चालुक्य अथवा सोलकी और चौहान। इन चारा वशा को अग्निवशी कहा जाता है। अग्निवशी राजपूतो की उत्पत्ति के सबध म अनेक प्रकार के वृत्ता त मिलते है। उन सभी का ऐतिहासिक सत्य इतना ही है कि देश म जिस समय ब्राह्मणो के द्वारा अगणित देवी देवताओ की पूजा का प्रचार बढ रहा था, बौद्ध धम ने उसका घोर विरोध किया। उस समय ब्राह्मणो ने बौद्धधर्मी लोगो का विरोध करने का निणय किया और इसके लिए आबू पवत की चोटी पर अग्नि कुण्ड बनाकर जिनको सस्कार करके बौद्ध धम क विरुद्ध युद्ध करने के लिए तयार किया, उन राजपूतो की उत्पत्ति अग्नि से मानी गयी और उसी समय स वे और उनके वशज अग्निवशी कहलाये।

ब्राह्मणा के तपावल द्वारा अग्नि के मध्य से जो वीरकुल उत्पन्न हुआ था, वह अनेक वर्षो तक अपने प्रताप और धमानुराग का अटल रख सका था। पर तु मुसल माना के आक्रमण के समय तक अग्निकुल के अधिकाश लोग ब्राह्मण धम का छोड कर जन या बौद्ध धमावलम्बी हो गये थे।

परमार (पवार)– अग्निकुल म उत्पन्न परमार वश[8], यद्यपि सोलकी और चौहान कुल के समान सम्पत्तिवान् और पराक्रमी नही हो पाया, तथापि उन लोगो ने ही सबसे पहले राज्योपाधि धारण की थी। इस वश से पैंतीस शाखाओ की उत्पत्ति हुई और बहुत बडे विस्तार म उन लोगो न राज्य किया। उनके विस्तार के कारण ही अब तक लोग कहा करत है कि पृथ्वी परमारो की है। परमारा के द्वारा जो राज्य जीते गय अथवा बसाय गय उनम माहेश्वर, धार, माण्डू उज्जन च द्रभागा, चित्तौड, आबू, च द्रावती मऊमदाना, परमावती, उमरकोट वेरवर लोद्रवा और पट्टन अधिक विख्यात हैं।

कहा जाता है कि हय अथवा हैहयवश के राजाओ की प्राचीन राजधानी माहेश्वर (माहिष्मती) परमार राजपूतो की पहली राजधानी थी। इसके बाद परमारो न विन्ध्य के शिखर पर धारा और माण्डू नामक दो नगरा की स्थापना की। बहुत से लोगो के अनुसार विख्यात उज्जन नगरी को भी इन्होने ही बसाया था। परमार राजपूतो के राज्य की सीमा नमदा तक ही सीमित न थी। भट्ट ग्रन्थो म पाया जाता है कि राम नामक एक प्रसिद्ध राजा इस वश मे उत्पन्न हुआ जिसने तलग देश म एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। चौहान राजाओ का भाट चन्द उसे भारत के सम्राट होने की पदवी देता था। लेकिन राम के उत्तराधिकारी अपने अधिकारो की रक्षा न कर पाये और उनके सामन्ता न अपने स्वतन्त्र राज्या की स्थापना कर ली। उनका चित्तौड का राज्य गुहिलोत राजपूतो ने छीन लिया। गुहिलातो के उदय होने के बाद उनका गौरव लोप हा गया।

परमार राजपूतो मे राजा भोज का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भारत मे भोज नाम के कई राजा हुए हैं। लेकिन परमारा म इस नाम का एक ही राजा हुआ है जिसन बहुत ख्याति प्राप्त की थी।

सिकन्दर का समकालीन चन्द्रगुप्त मौय था। पुराणो म उसे तक्षक वशी कहा गया है। परमारा की अनक शाखाओ म एक मुख्य शाखा है—मोरी वश। इस वश को तुष्टा अथवा तक्षक भी लिखा गया है।

विक्रमादित्य का पराजित करने वाला शालिवाहन तक्षकवशी था। परमारो के प्रताप और महत्व को उजागर करने वाले अब उनके भग्नावशेष ही बाकी रह गये हैं। इस देश की मरुस्थली म धाट का राजा इस वश का अन्तिम शासक था। वह परमार राजपूतो की एक प्रसिद्ध शाखा सोढा कुल म उत्पन हुआ था। इसी कुल के एक राजा न हुमायू को अपनी राजधानी अमरकोट (उमरकोट) मे उस समय सरक्षण दिया था जब वह तमूर के राजसिंहासन को खोकर इधर-उधर भटक रहा था और भारत म उसे कोई राजा शरण देने को तयार न था। इसी अमरकोट मे हुमायू के पुत्र अक्बर का जन्म हुआ था।

परमार वश म कुल पतीस शाखायें थी जिनमे विहल नामक शाखा अधिक विख्यात हुई। इस शाखा क राजाओ का राज्य चन्द्रावती मे था, जा आबू पवत की उपत्यका म था। बिजौलिया का सरदार जिसे राणा के दरबार म सम्मानित स्थान प्राप्त था धाट शाखा का परमार राजपूत सरदार था।

परमारा की 35 शाखाये इस प्रकार हैं—

मारी—इस शाखा मे चन्द्रगुप्त और गुहिलोतो से पहले के चित्तौड के राजा हुए।

सोढा—सिकन्दर के समकालीन सोगढी जो भारत की मरुभूमि म धाट के राजा थे।

साखला—पूगल के जागीरदार और मारवाड के कुछ ठिकानो के सरदार।

खर—इनकी राजधानी खेरालू थी।

ऊमरा और सूमरा—इनका प्राचीन स्थान मारवाड मे था। बाद मे इन शाखाओ के लोग मुसलमान हो गये।

वहिल अथवा विहिल—आबू पर्वत के समीप चन्द्रावती के राजा।

मयावत—मेवाड म बिजौलिया के वतमान जागीरदार।

बुल्हर—मारवाड के उत्तरी भाग म आबाद थ।

काबा—इनका प्राचीन स्थान सौराष्ट्र मे था। आजकल उनमे स कुछ लोग सिरोही मे पाये जाते हैं।

ऊमट—मालवा म ऊमटवाडा के राजा। वहा पर य लोग बारह पीढी से आबाद है। परमारो क अधिकार म जितन भी प्रदेश है, ऊमटवाडा सबस वडा है।

रहवर, दुण्डा सारटिया हरड—मालवा म इन शाखाओ के छोटे छोटे ठिकाने हैं।

उपर्युक्त शाखाओ के अलावा अन्य शाखाओ का कोई विशेष महत्व नहीं है। उनके नाम है—चौदा खेचड सुगडा, वरकोटा पूनी मम्मल, भीवा कालपुसर कालमोह कोहिला पूया कहोरिया धुन्ध देवा बरहर, जीप्रा पोसरा, धूता, रिकमवा ढीका आदि। इनमे से बहुत-सी शाखाओ के लोगो न इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया है।

चौहान—चौहान अथवा चाहुमान वश के राजपूत, राजपूतो मे बहुत अधिक शूरवीर रहे हैं। इस वश के लोगो मे शूरवीरता के काय सदा रहे हैं। चौहानो की चौबीस शाखायें है उनमे हाडा खीची देवडा सोनगरा शाखायें अपने पराक्रम के लिए अधिक प्रसिद्ध रही है।

चौहान का अर्थ है चार भुजा वाला अर्थात् चतुर्भुज। पुराणो के अनुसार दैत्यो स लडन के लिए ब्राह्मणो ने जिन योद्धाओ को भेजा था उनमे चौहान के सिवा अन्य सभी दैत्यो से पराजित हुए थे। चौहानो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे हिन्दुओ की जो पौराणिक कथा है, उसको यहा पर सक्षेप म लिखना आवश्यक मालूम होता है। वह इस प्रकार है—

आबू पर्वत जिसे सस्कृत मे अर्बुद गिरि कहा जाता है हिन्दू ग्रन्थो म बहुत पवित्र माना गया है। उसके सम्बन्ध म लिखा है कि उसकी चोटी पर केवल एक दिन का व्रत करने मात्र से मनुष्य के सारे पाप धुल जाते है। किसी समय इसी पर्वत पर कुछ मुनि तपस्या कर रहे थ। दैत्यो न मुनियो को परेशान करना शुरू किया। वे

मुनियों के तप और यज्ञ मे अवधान डालने लगे। तब ब्राह्मण मुनियों ने दैत्यों का प्रतिरोध करने के लिए पर्वत पर एक अग्नि कुण्ड खोदा। काफी बाधाओं के बाद वे अग्निकुण्ड को प्रज्वलित करने में सफल रहे और उन्होंने भगवान् महादेव से दैत्यों के विनाश की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना के बाद अग्निकुण्ड से एक पुरुष निकला परन्तु देखने में वह योद्धा प्रतीत नहीं हो रहा था। अतः उसे द्वारपाल बनाकर वहीं बैठा दिया गया। उसका नाम रखा गया प्रतिहार अथवा परिहार। उसके बाद दूसरा पुरुष निकला। उसका नाम चालुक्य (चालुक्य) रखा गया। यज्ञ कुण्ड से प्रगट होने वाले तीसरे पुरुष का नाम परमार रखा गया। वह दैत्यों से युद्ध करने गया परन्तु परास्त हुआ। इस पर ब्राह्मणों ने पुनः प्रार्थना की। तब अग्निकुण्ड से एक दीर्घ-काय और उन्नत ललाट वाला सशस्त्र पुरुष प्रगट हुआ। उसका नाम चौहान रखा गया। चौहान ने दैत्यों को परास्त किया। अनेक मारे गये और शेष भाग निकले। दैत्यों के सर्वनाश से मुनियों और ब्राह्मणों को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उस चौहान के नाम से उसके वंश का नाम चौहान वंश चला और इसी वंश में पृथ्वीराज चौहान ने जन्म लिया।

चौहानों की वंशावली से पता चलता है कि उनका आदि पुरुष अनहिल था।[9] अनहिल से लेकर चौहानों के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज तक कुल उनतीस राजा हुए। चौहानगाथाओं के अनुसार, अजयपाल चौहान ने अजमेर के दुर्ग का निर्माण करवाया था। चौहानों की राजधानियों में अजमेर भी एक राजधानी थी। इससे पूर्व साम्भर झील के किनारे उन्होंने साम्भर नगर को अपनी राजधानी बनाया था। साम्भर नगर के पीछे यहां के चौहान राजा सम्भरीराव कहलाये। पृथ्वीराज चौहान के दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद चौहानों मे पुनः प्रचण्ड तेज आ गया परन्तु यह तेज निर्वाण होते एवं टिमटिमाते हुए दीपक के प्रकाश के समान कुछ समय के लिए ही स्थाई रहा। पृथ्वीराज के अन्त के साथ साथ चौहान कुल का गौरव क्रमानुसार श्रीहीन होने लगा।

चौहान कुल में जितने विख्यात राजा हुए उनमें माणिकराय भी एक था। मुसलमानों का पंजाब में आगे बढ़ने से सबसे पहिले माणिकराय ने ही रोका था। मुसलमान इतिहासकार भी यह मानते हैं कि जब महमूद गजनी अपनी शक्तिशाली सेना के साथ सौराष्ट्र की तरफ जा रहा था, तब अजमेर मे ही एक प्रतापी राजा ने उसको पराजित एवं अपमानित किया था। पराजित महमूद को युद्ध क्षेत्र से वापस लौटना पड़ा था। चौहान नरेश विशालदेव के समय मे भी चौहानों ने मुसलमानों को परास्त किया था। विशालदेव की इस विजय का ज्ञान दिल्ली के प्राचीन विजय-स्तम्भ के ऊपर लगी हुई शिलालिपि के अध्ययन से होता है।

चौहानों की चौबीस शाखायें हैं जिनमें बूंदी और कोटा के वर्तमान राजवंश अधिक प्रसिद्ध हैं। ये राजवंश हाड़ौती की शाखा में हैं और युद्ध में हमेशा पराक्रमी रहे हैं। गागरोण और राघागढ़ के खीची सिरोही के देवड़े जालौर के सोनगर

सूयेबाह और साचोर के चौहान पावागढ के पावेचे लोग भी अपनी शूरवीरता के लिए विख्यात रहे। चौहान सरदारा न समय-समय पर अपनी जन्मभूमि के सम्मान के लिए अपना सवस्व त्याग किया। शेखावाटी क्षेत्र म ग्राबाद चौहाना म कायमखानी, सुरवानी लोवानी, कुरुरवानी और वदवान भी अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध रह है।[10]

चौहानो की चौबीस शाखायें इस प्रकार हैं--चौहान, हाडा खीची, सोनगरा, देवडा, थाविया, साचौरा गोएन्वाल भदौरिया, निर्वाण, मालानी पूरविया, सूरा, मादडेचा सकेचा भूरेचा, वालेचा, तस्सेरा, चाचेरा, टोसिया चाद्रू, नुकुम्प, भावर और वकट।

चालुक्य अथवा सोलकी--अग्निवशी चालुक्य अथवा सोलकी वश की ख्याति के बारे म हमे व्यापक स्तर पर ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नही हो पाई है और उस कारण उनका प्राचीन इतिहास विदित नही होता। भट्ट कविजना क काव्य ग्रथो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राठोड राजपूतो द्वारा कन्नौज पर अधिकार करने के पूव गगा के किनारे सोरू म उनका राज्य था। वशावली के आधार पर उनके रहने का स्थान लोहकोट मे था। लोहकोट लाहौर का पुराना नाम है। चौहानो और सोलकियो की मूल शाखा एक ही है। कुछ सोलकी सरदार मालावार क्षेत्र मे कल्याण नगर मे भी ग्राबाद थे। इस नगर से सोलकी कुल की एक शाखा निकलकर समय के हेर फेर से अनहिलवाडा पट्टन के चावडा राजवश की उत्तराधिकारी बन गई।

अनहिलवाडा पट्टन के राजा भोज की पुत्री का विवाह जयसिह के साथ हुआ था। भोज की मृत्यु के बाद जयसिह का पुत्र मूलराज सोलकी अनहिलवाडा के सिहासन पर बठा। यह बात सवत् 987 अर्थात् 930 931 ई० के आस पास की है। उस समय अनहिलवाडा का स्थान भारत मे ठीक उसी प्रकार का था जिस प्रकार यूरोप म वनिस का। अपनी समृद्धि के लिए यह नगर सम्पूण भारत मे विख्यात हो रहा था। चामुण्डराय के शासन काल मे महमूद गजनवी न अनहिलवाडा पट्टन पर आक्रमण किया तथा लूट म विपुल धन सम्पदा अपने साथ ले गया। गजनवी और उसके उत्तराधिकारियो के बारम्बार आक्रमणो तथा लूट न अनहिलवाडा को समृद्धिहीन बना दिया। फिर भी, सिद्धराज जयसिंह न इस राज्य को पुन समृद्ध एव प्रतिष्ठित किया।[11] वह एक प्रतापी राजा हुआ। कर्नाटक और हिमालय के बीच म बसे हुए 22 नगर एक समय सिद्धराज की छत्रछाया म थे। परन्तु सिद्धराज के उत्तराधिकारी उसके विस्तृत राज्य का सुख बहुत समय नही भोग सके।

सिद्धराज जयसिह सोलकी क बाद चौहाना का एक वशज कुमारपाल अनहिलवाडा क सिहासन पर बठा। चौहानवशी होते हुए भी कुमारपाल सोलकी

वश का हो गया। उसके शासनकाल मे मुसलमाना ने उसके राज्य म अनेक बार लूटमार की तथा उसके राजत्व को श्रीहीन बना दिया। कुमारपाल न कठोर दु ख और मानसिक पीडा स अपने शरीर को छोड दिया। उसके बाद मूलदेव उसके सिहासन पर वठा। 1228 ई० मे मूलदव की मृत्यु के साथ ही अनहिलवाडा पट्टन के सोलकी वश का अवसान हो गया। इसक बाद सोलकी वश की वघेल[12] नामक एक शाखा के सरदार विशालदेव न राज्य पर अधिकार कर पुन शान्ति एव व्यवस्था कायम की।

सोलकी वश की सालह शाखाये ह, जो इस प्रकार हैं—

(1) वघल–वघलखण्ड क राजा जिनकी राजधानी वाधूगढ थी। पीथापुर, थराद और अदलज के सरदार। (2) वेहिल—मेवाड के अधीन कल्याणपुर क जागीरदार। (3) वारपुरा—लूणावाडा के सरदार। (4) भूरता। (5) कालेचा—जसलमेर के अ तगत वारू टकरा और चाहिर मे। (6) लघा—मुल्तान के निकट रहन वाले मुसलमान। (7) तोगरू–पचनद प्रदेश के निवासी मुसलमान। (8) ब्रिकू—पचनद क्षेत्र के निवासी मुसलमान। (9) सोलके—दक्षिण मे पाय जात हैं। (10) सिखरिया—सौराष्ट्र क्षेत्र म गिरनार मे आवाद। (11) राओका—जयपुर राज्य क अ तगत टोडा क्षेत्र म आवाद है। (12) राणकरा—मवाड के अन्तगत देसूरी क्षेत्र मे रहत है। (13) खरूरा—मालवा मे आलोट और जावरा के रहन वाले हैं। (14) तौतिया—च दभूड सकुनवरी। (15) अलमेचा—इनका कोई विशेप स्थान नही है और (16) कुलमोर—गुजरात के रहने वाले है।

प्रतिहार (परिहार अथवा पडिहार)—अग्निवशी परिहार वश की ऐतिहासिक सामग्री भी वहुत कम मिल पाती है। राजस्थान के इतिहास मे इस वश का कोई भी उल्लेखनीय काय नही है और इस वश के राजाओ ने बहुत समय तक दिल्ली क तोमरो और अजमेर के चौहानो के करद् साम तो के रूप मे शासन किया।

परिहार वश की प्राचीन राजधानी का नाम मडोर था। सस्कृत मे इसे म दोद्री कहते हैं। राठौड राजपूतो के उदय के वहुत समय पूव ही परिहार लोग मडोर म प्रतिष्ठित हो चुके थे। यह नगर उस समय मे मारवाड का एक सुप्रसिद्ध नगर था और आधुनिक जोधपुर से केवल पाच मील की दूरी पर बसा हुआ है।

कनौज के राठौड राजा, का यकुब्ज स भागकर मडोर के परिहारो के यहा आये, जहा उ हे आश्रय प्राप्त हुआ। इस उपकार का वदला राठौड लोगा न विश्वासघात के द्वारा दिया। चू डा नामक राठौड राजा ने परिहारो के अ तिम राजा का राज्य छीनकर अपना अधिकार कर लिया और मडार के दुग पर राठौडा का झण्डा फहराने लगा।[13] इस घटना क पूव परिहारो को मवाड के राजाओ से निर तर सघप करना पडा था। इस मघप न उनकी शक्ति को निबल वना दिया

था। पहले परिहारो के राजा लोग 'राणा' कहलाते थे। गुहिलवशी राजा राहुप ने मडौर पर आक्रमण करके परिहारो को पराजित किया और उनसे 'राणा' की उपाधि छीन ली।[14]

परिहार वश के लोग सम्पूर्ण राजस्थान मे बिखरे पडे हैं। परन्तु उनके अधिकार मे किसी स्वतन्त्र जागीर का उल्लेख नही मिला। कोहारी सिधु और चम्बल नदियो का जहा पर सगम होता है उस क्षेत्र मे परिहार वश के बहुत से लोग बसे हुए हैं और आसपास के अनेक गाँव उन्ही के द्वारा बसाये गये हैं।

परिहार वश की बारह शाखाओ मे इन्दा और सिन्धल ही विशेष प्रसिद्ध है। इन दोनो शाखाओ के कुछ लोग मारवाड की लूनी नदी के दोनो किनारो पर पाये जाते हैं।

चावडा अथवा चावरा—चावडा अथवा चावरा वश के लोगो ने किसी समय मे इस देश मे प्रसिद्धि प्राप्त की थी, लेकिन अब उनका अस्तित्व मिटता जा रहा है। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे हमे कोई जानकारी नही मिलती है। सूर्यवशी तथा चन्द्रवशियो के साथ उनका कोई सम्बन्ध नही है। ऐसी स्थिति मे सीथियन लोगो से उनकी उत्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु भट्टग्रन्थ से पता चलता है कि मेवाड के सूर्यवशी वर्तमान राजवशो के साथ इस वश के लोगो का वैवाहिक सम्बन्ध था।

चावडो की राजधानी सौराष्ट्र के समुद्री किनारे पर स्थित दीव बन्दर के टापू मे थी। इस बात के प्रमाण मिलते है कि दीव के राजा ने 746 ई० मे अनहिलवाडा पट्टन की नीव डाली थी जो आगे चलकर भारत के इस क्षेत्र का एक प्रमुख नगर बना। चावडा वश के कुछ उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो मे उपलब्ध हैं। मेवाड के इतिहास से ज्ञात होता है कि मुसलमानो के पहले आक्रमण मे चित्तौड को बचाने के लिए चतनसी नामक एक चावडा सरदार एक सेना के साथ युद्ध के लिये गया था।

महमूद गजनवी ने जब सौराष्ट्र पर आक्रमण कर उसकी राजधानी अनहिलवाडा को जीत लिया तो उसने वहा के राजा को सिंहासनच्युत कर उसके स्थान पर वहा के एक प्राचीन राज परिवार के सदस्य को सिंहासन पर बठाया जिसका नाम दावशिलिम था। प्राप्त लेखो से पता चलता है कि डाबी एक वश की शाखा थी जिसको बहुत से लोग चावडा वश के अन्तर्गत मानते हैं। कुछ उस प्राचीन यदुवश की शाखा मानते है। एक हजार वर्ष बीत जाने के बाद भी वशी राजाओ और सौराष्ट्र के चावडा तथा सौरो के सम्बन्ध कायम है। राणा ९ राजस्थान मे अत्यधिक सम्मानपूर्ण माना जाता है और चावडा वश

पतना मुल प्रवस्था म है। फिर भी, चावडा वश की लडकियाँ राणा परिवारा म ब्याही जाती हैं। राजकुमार जवानसिंह गुजरात के एक छोट चावडा सरदार की पुत्री स पदा हुआ। इस प्रकार क और भी उदाहरण हैं।

टाँक अथवा तक्षक—तक्षक वश उस जाति का नाम है जिसस प्राचीनकाल म भारत क आक्रमणकारी विभिन्न सीथियन वशो की उत्पत्ति हुई थी। तक्षक वश जटी जाति जिससे अगणित शाखाओ की उत्पत्ति हुई की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। इन दोना जातियो के सम्ब ध एक दूसर के इतने नजदीक हैं कि दोना का एक दूसरे से पृथक् करना बहुत कठिन था।

अबुलगाजी ने तानक को तुक अथवा तर्गताई का पुत्र माना है, जिसका पुराण म तुरुक क नाम से और चीनी ग्रन्था म तक्कुस के नाम स उल्लख मिलता है और जो टाचरी जाति स उत्पन्न हुआ मालूम होता है, जिसन यूनान के अन्तगत बक्ट्रिया क राज्य का सवनाश करन मे सहयोग दिया था। इस टाचरी जाति क नाम स ही एशिया के एक विस्तृत प्रदेश का नाम टोचरिस्तान पडा, जो आग चल कर तुर्किस्तान क नाम स पुकारा जान लगा। एलफिस्टन साहब न अपनी पुस्तक म जिस ताजक जाति का वणन किया है वह वास्तव म तक्षक वशी थी ऐसा मालूम होता है कि य दो नाम एक ही जाति के ह।

पहल बताया जा चुका है कि राजस्थान के अनक भागो मे तुस्टा तक्षक और टाँक जाति के पाली अथवा बौद्ध अक्षरा म प्राचीन शिलालेख मिले है जो मोरी, परमार और उनक वशजा से सम्ब ध रखत हैं। सस्कृत भाषा म नाग और तक्षक का सप कहत हैं और तक्षक वह वश है जिसका वणन नागवश के नाम से भारत के प्राचीन एतिहासिक वीर काव्य ग्र था म मिलता है। महाभारत म पाडव-वशियो और तक्षक लोगा के युद्ध का उल्लेख मिलता है। तक्षक के हाथो परीक्षित की मृत्यु और परीक्षित के पुत्र जनमजय द्वारा तक्षको का विनाश—इन सबका उल्लेख महाभारत म पाया जाता है। जसलमेर के भाटी राजाओ के प्राचीन इतिहास म लिखा है कि जब वे लोग जाबुलिस्तान से खदेड दिये गय तो उन लोगा ने टाक जाति स सि धु नदी के किनारे के क्षेत्र छीन लिय और वही पर बस गय। वहाँ पर उनकी राजधानी शालमनपुर थी। इन घटनाओ का समय युधिष्ठर सवत् का 3008वाँ वष माना गया है। इस हिसाब से यह निश्चित है कि तामरवशी विक्रम का विजय करन वाला शालिवाहन अथवा सालवाहन जो कि तक्षक जाति का था, उसी वश का था, जिसको भाटी लोगो ने परास्त करके दक्षिण की ओर खदेड दिया था।

बहुत से लोग अनुमान करत है कि ईस्वी छ या सात शताब्दी के पहले तक्षको ने अपन राजा शपनाग (शिशुनाग) क नतृत्व म भारत मे प्रवेश किया था।

आबू माहात्म्य म तक्षको को हिमाचल का पुत्र माना गया है। इन सभी वाता से सिद्ध हाता है कि व लोग सीथियन जाति से सम्ब ध रखते थे और उ ही के वशजो मे से थे। जसा कि पहले बताया जा चुका है कि तक्षक मारीवश के लोग प्राचीनकाल से ही चित्तौड के अधिकारी रह थे। लेकिन आग चलकर जब गुहिलोता ने उ ह चित्तौड से निकाल दिया तो चित्तौड पर मुसलमाना का आक्रमण हुआ। उस समय जिन राजपूत राजाओ ने चित्तौड की रक्षा के लिए मुसलमाना से युद्ध किया, उनमे आसरगढ के टाक लाग भी थे। इस घटना के लगभग 200 वप वाद तक आसरगढ पर टाक लोगो का अधिकार बना रहा। वहाँ का सरदार पृथ्वीराज की सना का एक महत्त्वपूण सेनापति था। च द कवि ने उसका उल्लख "झण्डा बरदार आसेर का टाक" के रूप म किया है।[15]

यह प्राचीन वश जनमजय का शत्रु तथा सिक दर का मित्र था। तक्षक वश क सेहारन (शिहरण) नामक राजा न अपना पुराना धम छोडकर इस्लाम धम को ग्रहण कर लिया था। उसन अपनी टाक जाति को छिपाकर अपनी जाति का नाम वजहुउलतुल्क जाहिर किया। उसका वेटा जफर खाँ गुजरात के सिहासन पर उस समय बठा, जब तमूर भारत म मारकाट मचा रहा था। जफर को उसके पात ने मार डाला और अनहिलवाडा की प्राचीन राजधानी हटाकर अहमदाबाद मे कायम की। धम परिवतन के बाद टाक जाति का अस्तित्व राजस्थान म खत्म हो गया।

जिट अथवा जाट—राजस्थान के 36 राजकुला मे जिट अथवा जाट का भी स्थान है। पर तु इस जाति का राजपूत नहीं माना जाता और न ही राजपूतो के साथ उनके कही ववाहिक सम्ब ध ही पाये जाते है, लेकिन भारत के सभी क्षेत्रो मे इस जाति के लोग पाय जाते हैं। इन लोगो का मुख्य काम कृषि है। पजाब मे इन लोगो को प्राय जिट कहा जाता है लेकिन गगा-जमुना क्षेत्र म इ हे जाट कहा जाता है। जाटा मे भरतपुर क राजा का बडा सम्मान है। सि धु नदी के किनार और सौराष्ट्र मे इन लोगा को जट कहा जाता है। राजस्थान के अधिकाश कृपक इसी जाति क लोग है। सि धु नदी के उस पार आबाद मुसलमान भी पहल जाट वश के थ।

एक समय था जब जटो का राज्य काफी विख्यात रहा। साइरस के समय से लेकर चौदहवी शताब्दी तक उसकी ख्याति बनी रही। इस राज्य की राजधानी जगजार्टीज नदी क किनार थे। काला तर मे इस जाति न इस्लाम धम को अपना लिया। चीनी ग्र था के अनुसार प्राचीन समय मे इस जाति के लोग बौद्ध धर्मावलम्बी थ।

जिट जाति के सम्ब ध म बहुत सी बाता का उल्लेख मिलता है। सि धु नदी के पश्चिम का क्षेत्र उनका निवास स्थान माना जाता है। उनकी उत्पत्ति यदुवश स

मानी जाती है। जसा कि पहले बताया जा चुका है कि जिट और तक्षक वे जातियां हैं, जिनकी विभिन्न उपजातियों ने भारत मे आक्रमण किये थे। पाचवी सदी का एक शिलालेख मिला है, जिससे पता चलता है कि य दोनों नाम एक ही जाति के है। उस शिलालेख से यह भी जानकारी मिलती है कि इस जाति का राजा सूय की पूजा करता था जस कि सीथियन लोग करते थे। उस शिलालेख मे इस बात का भी उल्लेख है कि जिटवशी राजा की माता यदुवशी थी। इस आधार पर जिट लोगो के यदुवशी होन का दावा सही प्रतीत होता है।

डिगिग्निज ग्रंथकार के अनुसार यूची अथवा जिट लाग पांचवी और छठवी शताब्दी मे पजाब मे रहते थे और इस वश के जिस राजा का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसकी राजधानी सालिंद्रपुर[16] थी। इससे अनुमान किया जाता है कि सालिवाहनपुर का ही नाम पहले सालिन्द्रपुर रहा होगा जहा यदुवशी भाटियो ने टाक जाति को पराजित करके अपना शासन स्थापित कर लिया था। इससे कितने समय पूर्व जिट लोगो ने राजस्थान मे प्रवेश किया था इसका निर्णय तो शिलालेखों के आधार पर ही किया जा सकता है। परन्तु इतना निश्चित है कि 440 ई० मे उनका शासन चल रहा था।

सालिवाहन से खदेडे जाने के बाद यादव जाति ने सतलज नदी पार करके मरुभूमि मे दहिया और जोहिया राजपूतो के यहां आश्रय लिया और इस क्षेत्र मे उन्होने अपनी प्रथम राजधानी देरावल मे स्थापित की। बाद मे, उनमे से बहुतो ने इस्लाम अपना लिया। इस समय से वे लोग जाट कहे गये, जिनकी बीस से अधिक शाखाओ का उल्लेख यदुवश के इतिहास मे किया गया है।

जिट लोगो के सम्बन्ध मे बहुत सी बाते महमूद के इतिहास मे पढने को मिलती है। 1026 ई० मे जिट लोगो ने महमूद की सेना का माग रोककर उससे घमासान युद्ध किया था, परन्तु जिटो को परास्त होना पडा। बहुत से लोग मारे गये और जो लोग बचे, उनके द्वारा बीकानेर की स्थापना हुई। इस घटना के थोडे ही दिनो के बाद जिट लोगो का मूल राज्य भी नष्ट हो गया और बहुत से जिट लोगो ने भागकर भारत मे शरण ली। 1360 ई० मे तोगलताश तैमूर जेटी जाति का प्रधान था। 1369 ई० मे उसकी मृत्यु के बाद जेटी लोगो की प्रधानता की पदवी बडे खान के नाम से चगताई तमूर को मिली। 1370 ई० मे उसने जेटी जाति की एक राजकुमारी के साथ विवाह किया। परन्तु बाद मे चगताई और जेटी लोगो मे भयकर सघर्ष शुरू हो गया, जिसमे जेटी लोगो की पराजय हुई। फिर भी, पंजाब उनके अधिकार मे बना रहा और आज तक लाहौर का प्रतापी राजा जिटवशी है। इस राजा का अधिकार उन सभी प्रदेशो मे है जहाँ पर पाचवी सदी मे यूची लोग रहते थे और जहाँ गजनी से भागकर आने के बाद यदुवशी लोगो ने

टाक लोगो क पतन के बाद अपना अधिकार जमा लिया था। जिट लागा के घुडसवारो और सीथियन लागो के तरीके बहुत कुछ मिलते जुलते है।

हूण जाति—राजस्थान के 36 राजवशो मे जिन सीथियन जातियो को स्थान मिला है उनमे एक हूण लोग भी है। यह ठीक किस समय भारत मे आय, यह भलीभाति निरूपण करना कठिन है। इतना निश्चित है कि प्राचीन समय म जिन जातियो ने भारत मे आक्रमण किया था उनम एक यह जाति भी है और इस जाति के कुछ लोग आज भी सौराष्ट्र म पाये जाते हैं। इस देश के प्राचीन ऐतिहासिक ग्र थो और शिलालेखो मे हूण जाति के लोगो के सम्ब ध मे अनेक बातो का उल्लेख पाया जाता है।[17]

एक शिलालेख मे लेख है कि विहार क्षेत्र के एक राजा न अपनी दिग्विजय के समय अ य देशो को जीतने के साथ साथ हूणो को भी पराजित किया था और उनकी शक्ति को नष्ट कर दिया था। इस घटना के पूव इस जाति का वणन पहले कही दिखाई नही देता। इसके बाद मेवाड के प्राचीन भट्टग्र थो स विदित होता है कि जिस समय मुसलमानो ने सबसे पहले चित्तौड पर आक्रमण किया था उस समय उसकी रक्षा के लिए जिन राजाओ ने सहयोग दिया था, उनमे हूणो का सरदार अगत्सी भी था। डिगिग्निज के मतानुसार अगत हूणो और मुगलो के एक विशाल दल का नाम था। अबुलगाजी के अनुसार जो तातार चीन देश की विशाल दीवार की रक्षा करत थे, उ हे अगती अथवा अगुट नाम से पुकारा जाता था। उन लागो का अपना एक राजा था जिसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। जिन देशो मे ह्मियागना और ओहुओन अर्थात् तुक और मुगल जाति के लोग रहते थे, उ्ही का नाम तातार था। तातार नाम तातान देश से चला। इस देश की सीमा इर्टिश नदी के पास स लकर अल्ताई पहाडो के बराबर पीले सागर के किनारे तक विस्तृत थी। रोम क पतन का इतिहास लिखने वाले गिबन ने हूणो के उस समय का इतिहास लिखा है जब हूणो न यूरोप पर चढाई की थी।

कास्मस नामक यात्री के ग्र थ के आधार पर डनविल साहब न लिखा है कि हूण लाग भारत क उत्तरी भाग मे निवास करते थे। यदि उनक मत को सही मान लिया जाय ता अवश्य ही कहना पडेगा कि हूणो ने भारत म क्रमश प्रवेश करक सौराष्ट्र और मेवाड म विजय प्राप्त की होगी।

जनश्रुति के आधार पर लोगो का विश्वास है कि हूणो न सवप्रथम चम्बल नदी क पूर्वी किनारे पर स्थित बाडोली (बिडाली) नामक स्थान पर पडाव डाला था। इस क्षत्र म उन्होने कई म दिरो तथा भवनो का निर्माण करवाया था। ऐस म दिरो म एक म दिर इस जाति के राजा का ववाहिक स्थान है, जिसका नाम है—सनगर चामोरी। कहते हैं कि उस राजा का अधिकार चम्बल नदी क दूसरे किनारे

तक फला हुआ था। इस जाति का अस्तित्व अभी तक पूरी तरह से नष्ट नहीं हुआ है और यूरोप तथा एशिया के भिन्न-भिन्न स्थानो मे उसके थोडे बहुत चिह्न दिखाई देते है।

कट्टी अथवा काठी—इस जाति के सम्बन्ध मे पहले ही लिखा जा चुका है। राजस्थान और सौराष्ट्र के भट्टग्रन्थो मे उन्हे राजवशो मे स्थान दिया गया। पश्चिमी प्रायद्वीप की प्रसिद्ध जातियो मे एक जाति यह भी है। इस जाति के लोगो ने सौराष्ट्र का नाम बदलकर काठियावाड कर दिया है।

काठियावाड मे इस जाति ने अपना अस्तित्व कायम रखा है। इस जाति की धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ एव परम्परायें तथा उनके शरीर की बनावट और मुखाकृति उनके सीथियन होने का सबूत देती है। सिकन्दर के आक्रमण के समय काठी जाति सिन्धु नदी की पाँचो शाखाओ के सगम स्थान पर निवास करती थी। इन लोगो ने सिकन्दर से जमकर युद्ध किया था तथा सिकन्दर को भाग्य से ही विजय मिल पाई थी। जैसलमर के भट्टग्रन्थो से विदित होता है कि वहाँ के लोगो ने काठी लोगो के साथ युद्ध किया था।

बारहवी सदी मे भी यह जाति अपना अस्तित्व कायम रखे हुए थी। मुहम्मद गौरी के विरुद्ध इस जाति के कई सरदारो ने अपने सनिक दस्तो के साथ पृथ्वीराज और जयचन्द का साथ दिया था। उस समय मे वे अनहिलवाडा पाटन के अधीन सामन्त राजा के रूप मे शासन करते थे। काठी लोग अब तक सूर्य भगवान् की पूजा किया करते है। वे लोग शान्ति से जीवन व्यतीत करना अच्छा नही समझते। चोरी युद्ध और आक्रमण उनको प्रिय लगते हैं। कप्तान मैक्समर्डी ने इन लोगो के सम्बन्ध मे लिखा है—' काठी जाति के लोग अनेक बातो मे राजपूतो से भिन्न हैं। वे स्वाभाविक रूप से निर्दयी हैं और बहादुरी मे वे राजपूतो से भी अधिक है। शारीरिक शक्ति मे उनका स्थान ऊँचा है। कद मे वे साधारण आदमी की अपेक्षा लम्बे होते हैं। उनका कद प्राय 6 फीट से अधिक होता है। उनके शरीर मजबूत और महनत से भरे होते है। उनके मुख पर सुन्दरता नही होती, लेकिन उनकी मुखाकृति मे कट्टरता पाई जाती है। उनके जीवन मे कोमलता किसी प्रकार की भी नही होती।"

बल्ला और बाला—भट्टग्रन्थो मे बल्ला जाति का भी 36 राजवशो मे स्थान दिया गया है। इन्हे 'ट्टमुल्तान के राव' के नाम से पुकारा गया है जिससे मालूम होता है कि ये लोग सिन्धु नदी के किनारे रहते थे। ये लोग अपने को सूर्यवशी कहते हैं और श्रीराम के पुत्र लव के वशज बताते हैं। इन लोगो का प्राचीन निवास स्थान सौराष्ट्र मे ढाक अथवा धक नामक बस्ती थी। प्राचीनकाल मे इस स्थान को गोपी पट्टन कहा जाता था। यहाँ बसने के बाद इन लोगो ने आस पास के क्षेत्र

का जीतकर उस 'वल्ल क्षेत्र का नाम दिया और वल्लभीपुर म अपनी राजधानी स्थापित की। इनके राजाम्रो न 'वल्लाराय' की उपाधि धारण की। य लोग अपन आपको गुहिलोत राजपूता के बराबर का मानत हैं। हा सकता है कि वल्ला गुहिलात वश की शाखा हो। वल्ला लागा का मुख्य देवता सूय था। इनकी अनक वाते सीथियन लागो से मिलती है।

कट्टी—य लाग अपने का वल्लावश की शाखा मानत है। तरहवी शताब्दी मे वल्ला लोग मेवाड मे भी छापा मारन लग। मवाड के राणा हमीर न इन लागा पर आक्रमण किया और चोटीला के वल्ला सरदार का मार डाला। टाक का वतमान राजा वल्लावशी ह।

झालामकवाणा—य लोग सौराष्ट्र प्रायद्वीप म रहत है और राजपूत कह जाते है, पर तु च द्र, सूय और अग्नि कुल मे इनका काई वृत्ता त नही पाया जाता। ऐसा नात होता है कि ये लोग भारत क उत्तरी हिस्से से इस तरफ चले आय थ। भारत अथवा राजस्थान के इतिहास म भी इस जाति के लागो ने अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नही की।

सौराष्ट्र के वडे क्षेत्रो म एक क्षेत्र झालावाड है, जहा झाला मकवाणा लागो की प्रधानता है। इस क्षेत्र मे वीकानेर (वेकनीर) तलवद और धागदरा नामक वडे वडे नगर है। इस क्षेत्र म झाला लाग कब आये और उनका पुराना इतिहास क्या है, इसका निणय करन के लिए हमारे पास पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री नही है, पर तु कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ इस सम्ब ध मे हमारी सहायता करती हैं। मुसलमाना के प्रारम्भिक आक्रमण के समय झाला जाति के लोगो ने राणा को सनिक सहायता दी थी और पृथ्वीराज के इतिहास म भी झालाम्रा का उल्लेख मिलता है। झालाम्रा की कई शाखाएँ है जिनम मकवाणा प्रधान है।

जेठवा (जेटवा) अथवा कमरी—यह एक प्राचीन जाति है और इतिहासकारा ने इस जाति को राजपूत माना है। पर तु झाला लोगा की तरह इस जाति क लाग भी सौराष्ट्र के वाहर उल्लेखनीय प्रसिद्धि प्राप्त नही कर पाय। इस जाति का मुख्य स्थान पोरव दर है और इसका राजा राणा कहलाता है। पुराने समय म इसकी राजधानी गूमली थी। वहाँ के भग्नावशेषो से उस राज्य के वभव की जानकारी मिलती है। वहा की शिल्पकला यूरोप की शिल्पकला के समान है। जेठवा क भाटा के अनुसार वहाँ 130 राजाम्रो न शासन किया। प्राप्त लेखा से पता चलता है कि यहा के एक राजा का विवाह दिल्ली के तोमर राजा के यहाँ हुआ था। उस समय जेठवा वश 'कमर वश के नाम से पुकारा जाता था। बारहवी सदी म उत्तर स सेहनकमर नामक राजा न आक्रमण करके गूमली के राजा का खदड दिया था। इसके बाद से कमर वश जठवा वश के नाम स पुकारा जाने लगा। शायद

जेठवा वश के लोग सीथियन वश के हो। इस वश का सम्बन्ध भारत की प्राचीन जातियो के साथ जाहिर नही होता। ऐसा लगता है कि यह वश एशिया की प्रसिद्ध जाति किमेरी अथवा यूरोप की किम्ब्री जाति की शाखा है। वसे ये लोग अपने आपको प्रसिद्ध वानर हनुमान के वशज मानते है और इसके समर्थन मे अपने राजाओ की लम्बी पीठ की हड्डी का उदाहरण देते है।

गोहिल—एक समय मे ये लोग बडे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हुए थे। सबसे पहले ये लोग मारवाड मे लूनी नदी के किनारे जूना खेडगढ मे रहते थे। उन्होने यह स्थान खेरवा नामक भील सरदार को परास्त करके प्राप्त किया था। बाद मे राठौडो ने उन्हे इस स्थान से खदेड दिया। वहाँ से खदेडे जाने के बाद ये लोग सौराष्ट्र की तरफ चले गये और पीरमगढ मे रहने लगे। यहाँ से उनकी एक शाखा बगवा म जा बसी और इस शाखा के राजा ने वहा के नन्दननगर (नान्दोद) के राजा की लडकी से विवाह किया और बाद मे उसन अपने ससुर के राज्य पर अधिकार कर लिया। सोमपाल से नरसिंह तक—जो नान्दोली का वतमान राजा है 27 पीढी मानी जाती है। दूसरी शाखा सिहोर म जा बसी, जहा उसने भावनगर और गोगो नगर बसाये। भावनगर माही की खाडी पर गोहिलो के रहने का स्थान है और उन्ही लोगो के नाम पर सौराष्ट्र का पूर्वी क्षेत्र गोहिलवाडा कहलाता है। यह वश अपने को सूयवशी कहता है परन्तु इसका प्रमुख काय व्यवसाय है।

सर्व्य अथवा सरिअस्प—प्राचीनकाल मे इस वश की प्रतिष्ठा का पता चलता है परन्तु वतमान म उन लोगो का केवल नाम ही शेष रह गया है। भाट लोग इन्हे क्षत्रिय मानते हैं।

सिलार अथवा सुलार—इस जाति के सम्बन्ध म विशेष जानकारी नही मिलती। लार जाति किसी समय म सौराष्ट्र म निवास करती थी। अनहिलवाडा के इतिहास स पता चलता है कि सिद्धराज जयसिंह ने इन लोगो को अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था। इसलिए ऐसा लगता है कि सिलार अथवा सुलार, लार जाति ही थी। कुमारपाल चरित्र म इस जाति का राजवशी लिखा है परन्तु अब यह जाति वश्यो मे मानी जाती है और इस जाति के लोग बौद्ध धम को मानते हैं। उसकी 84 शाखाएँ हैं जिनम एक लार भी है। इन 84 शाखाओ मे स कुछ के राजपूतो से निकलने के उल्लेख भी पाये जाते हैं।

डाबी (दाबी)—एक समय यह जाति सौराष्ट्र म प्रसिद्ध थी, परन्तु आजकल इन लोगो का कोई विशेष वृत्तान्त देखने म नही आता। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध म कोई विशेष जानकारी नही मिल पाती। किसी किसी भाट ने इन लोगो

को यदुकुल की शाखा कहकर वर्णन किया है, परन्तु इस बात का कोई ठोस प्रमाण नही मिलता।

गौड—एक समय म यह जाति राजस्थान म सम्मान और प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी परन्तु विशेष प्रतिष्ठा और प्रमुता प्राप्त न कर सकी। बगाल क प्राचीन राजा इसी जाति के थ और उन्ही के नाम म उनकी राजधानी का नाम लखनौती पडा। प्राचीन भट्टग्र था म इन लोगो को 'अजमर क गौड' कहा गया है, जिसस अनुमान लगाया जाता है कि चौहाना के पूव ये लोग इस क्षत्र म प्रतिष्ठित थ। कुछ के अनुसार इन लोगो न पृथ्वीराज चौहान की सहायता की थी। 1809 ई० मे सिन्धिया न गौडवश के अधिकारा को छीन लिया था। इस प्रकार की थोडी बहुत बातो के अलावा इन लोगो के बारे मे विशेष जानकारी नही मिलती।

डोड अथवा डोडा (दोवा)—यद्यपि अनेक भट्टग्र था म इस वश क नाम का उल्लेख मिलता है परन्तु इसमे अधिक कोई जानकारी नही मिलती।

गेहरवाल (घरवाल)—इस जाति को राजस्थान के लोग राजपूत मानन को तयार नही होते पर तु वीरता मे ये लोग राजपूता के समान थ। शायद इसीलिए इ हे 36 राजकुला म स्थान प्राप्त हो पाया। इस जाति का मूल स्थान काशी का प्राचीन राज्य है। इस जाति के प्राचीन राजाओ म किसी खोरतजदेव का उल्लख मिलता है, जिसकी सातवी पीढी म जस द हुआ। जेस द ने विन्ध्यावासिनी देवी के स्थान पर एक यज्ञ किया तथा 'बुन्देला' की उपाधि धारण की। उसी के पीछे बुन्देलखण्ड प्रदेश का नाम प्रसिद्ध है। इस प्रदेश म कालिजर मोहिनी महोबा जसे नगर है।

चन्देल—ये लोग बुन्देलखण्ड के प्राचीन निवासी थ और राजस्थान के 36 राजवशो मे इनको भी स्थान प्राप्त था। बारहवी सदी मे य लोग अपनी वीरता के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे। उस समय मे इनके अधिकार म यमुना और नवदा नदियो के बीच का वह सम्पूर्ण क्षेत्र था जिस पर अब बुन्देलो और बघला का का अधिकार है। पृथ्वीराज के साथ लडे गये युद्ध म व लोग बुरी तरह से पराजित हुए और इस पराजय के बाद गहरवाल लोगो न उनक राज्य को जीतना शुरू कर दिया।

अकबर के समय से लेकर मुगला के पतन तक बुन्देलो न सभी प्रसिद्ध युद्धो मे अपनी वीरता का प्रदशन किया था। बुन्देला राज्यो म ओरछा के राज्य न विशष प्रसिद्धि अर्जित की। वतमान म बुन्देला वश क लोगा की सख्या अधिक है। गेहरवाल लोग उनके निवास स्थानो तक ही सीमित है।

बडगूजर—भाट लोग इ ह सूयवशी कहत है और य लोग अपन आपको भगवान् श्रीराम के पुत्र लव के वशज मानत है। इन लोगो का राज्य ढूढाड

(जयपुर–अलवर) मे था और माचेडी राज्य मे राजौर का पहाडी किला उनकी राजधानी था।[18] राजगढ और अलवर भी उनके राज्य मे सम्मिलित थे। कछवाहो ने उन पर आक्रमण कर उन्ह वहा से भगा दिया। इसके बाद इस वश के कुछ लोगो ने गगा के किनारे पर रहना शुरू कर दिया और वहाँ पर उन्होन अनूपशहर बसाया।

सेंगर—इसके बारे मे बहुत कम जानकारी मिलती है। इस वश को कभी प्रसिद्धि नही मिली। यमुना के किनारे स्थित जगमोहनपुर उनका एकमात्र राज्य है।

सीकरवाल—इस वश को भी प्रसिद्धि नही मिल पाई। चम्बल के किनारे यदुवाटी से मिला हुआ एक छोटा-सा क्षेत्र जो वतमान मे ग्वालियर राज्य के अन्तगत है इसका मुख्य स्थान है। यह सीकडवाड कहलाता है।

बैस—इस वश की गणना भी 36 राजवशो मे की जाती है। यह वश अनेक शाखाओ म विभक्त है और गगा-जमुना का मध्यवर्ती क्षेत्र जो बसवाडा कहलाता है, उसम इस वश के अधिकाश लोग बसे हुए हैं।

दाहिया—यह एक प्राचीन जाति है और पुराने समय मे ये लोग सिन्धु क किनार सतलज के सगम के पास आबाद थे। इनकी गणना भी 36 राजकुलो म की जाती है, पर तु वतमान मे य लोग कही नही पाये जाते। जसलमेर के भट्ट ग्र थ मे इस जाति का उल्लेख मिलता है।

जोहिया—इस जाति के लोग दाहिया के समीप ही आबाद थे और अब इस जाति के लोगो का अस्तित्व लगभग समाप्त हो चुका है।

मोहिल—भट्ट लोगा के काव्य ग्र था से केवल इतनी जानकारी मिलती है कि इनकी गणना 36 राजवशो मे की जाती थी और राठौडो के पूव य लोग बीकानेर क्षेत्र मे आबाद थे। बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा करन वाले राठौड लोगा न उ ह इस क्षेत्र से परास्त करके खदेड दिया था।

मालण, मालाणी और मल्लिया नाम की जातिया का अस्तित्व अब समाप्त हो चुका है।

निकुम्प—सभी वशावलिया मे इस वश की प्रसिद्धि का तो उल्लख मिलता है परन्तु इसक बार म कोई विशेष जानकारी नही मिलती। केवल इतना पता चलता है कि गुहिलोतो के पहले इस वश का माण्डलगढ पर अधिकार था।

राजपाली—भट्टग्र थो म इस वश का उल्लख राजपालिक तथा पाल के नाम स किया गया है, परन्तु इसक बारे म भी विशेष जानकारी नही मिलती। कुछ

के अनुसार व लोग सौराष्ट्र म रहते थ और सभी प्रकार से सीथियन प्रतीत होते थ। सीथियन से उनकी उत्पत्ति के कुछ और प्रमाण भी मिलते हैं। राजपाली नाम से प्रतीत होता है कि यह जाति प्राचीन पालि जाति की एक शाखा क सिवाय और कुछ न थी।

दाहिर अथवा दाहिरिया—केवल कुमारपाल चरित्र के आधार पर इस वश की गणना 36 राजवशो मे की जा सकती है। अन्य साधनो से इस वश के बार म कोई विशेष जानकारी नही मिलती। केवल इतना पता चलता है कि चित्तौड पर मुसलमानो के पहले आक्रमण के समय जो राजपूत सरदार चित्तौड की रक्षा के लिए वहाँ गये थे, उनमे राजा दाहिर नामक एक सरदार भी था। सम्भवत यह दाहिर दाहिरिया वश का रहा हो।

दाहिमा—एक समय इस राजकुल ने अपनी शूरवीरता के लिए काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, लेकिन वह प्रतिष्ठा न जाने कब और कसे लोप हो गई इसकी जानकारी नही मिलती। बयाना का सुप्रसिद्ध दुग इस वश के अधिकार म था और दाहिमा पृथ्वीराज के वरद् सामन्त के रूप मे शासन करते थे। पृथ्वीराज चौहान के समय इस वश के तीन भाई उच्च पदो पर नियुक्त थे। सबसे बडा भाई पृथ्वीराज का मन्त्री था और किसी ईर्ष्यावश मारा गया। दूसरा भाई लाहौर म एक सैनिक पद पर नियुक्त था। तीसरा भाई चामुण्डराय पृथ्वीराज का सेनापति था। मुस्लिम इतिहासकारो न भी दाहिमा चामुण्डराय की वीरता को स्वीकार किया है।[19] उनमे से एक ने लिखा है कि उसकी खौफनाक तलवार से शहाबुद्दीन युद्ध म मारे जाने की स्थिति म पहुँच गया था। महाकवि चन्द ने लिखा है कि पृथ्वीराज ने चामुण्डराय की बहिन से विवाह किया था और उससे उस रणजीतसिंह (रणसी) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। दिल्ली पर मुसलमानो के अधिकार होने के पूव ही रणसी की मृत्यु हो गई थी। चौहानो के पतन के साथ ही दाहिमा वश भी नष्ट हो गया।

जगलो मे रहने वाली जातियाँ—बागरी, मेर काबा मीना, भील, सेरिया (सहरिया), थोरी, खागर गोड, भाड, जेंवर और सरूद।

कृषक और चरवाहा जातियाँ—अभीर अथवा अहीर, ग्वाला कुर्मी कुलम्बी गूजर और जाट।

व्यवसायिक चौरासी जातियाँ[20]—श्री श्रीमाल श्रीमाल ओसवाल बगरवाल, डीडू पुष्करवाल, मेरतावाल हर्सोरूह सुरूरवाल पल्लीवाल, भम्बू खण्डेलवाल बेदरवाल, डीसावाल गूजरवाल सोहरवाल अग्गरवाल जाइलवाल मानतवाल, कजोटीवाल, कोटवाल, चेत्रवाल सोनी, सोजतवाल, नागरमोड जल्हेरा, लाड

कपोल, खेरता, दसोरा, वरूडी, वम्वरवाल, नागद्रा, करबेरा, भटेवरा, मेवाड़ा, नरसिंहपुरा, खतेरवाल, पचमवाल, हुनरवाल, सरकैरा, वैश्य, स्तुखी, कम्बोवाल, जीरागवाल, भगेलवाल, ग्रोरचितवाल, बामणवाल, श्रीगौड, ठाकुरवाल, वालमीवाल, टिपोरा, टीलोना, प्रतवर्गी, लादिसका, वदनोरा, खीचा, गुसोरा, वाम्रोसर, जाइमा, पदमोरा मेहेरिया ढाकरवाल मगौरा गोयलवाल चीतोडा, मौहरवाल काकलिया भारेजा ग्रन्दोरा साचोरा, भू गरवाल, म दड्लू, ब्रामणिया, वागडिया, डीजोरिया, वोरवाल, सोरविया, नफाग ग्रौर नागौरा । दो नाम ग्रनात ।

सन्दर्भ

1 गुहिलवशोय शासको एव साम तो के लिए राजस्थानी मे 'गुहिलोत शब्द प्रयुक्त किया जाता है । सस्कृत मे इसको गोमिलपुत्र, गुहिलपुत्र, गुहिल्य लिखते हैं ।

2 प्रतापी होने के कारण शिलालेखो मे गुहिल से मेवाड की वशावली ग्रारम्भ की गई है, ग्रतएव उसी को मेवाड राज्य का मस्थापक मान लिया गया है ।

3 जाडेजा राजपूता के सम्व ध मे ग्रनेक भ्रामक वातो का उल्लेख मिलता है । जाडेजा जाडा के ग्रौर सामेजा सम्मा के वशज थे । वे लोग शाम ग्रथवा सीरिया से नही ग्राये थे । यदुवशी कृष्ण से इन वशो की उत्पत्ति हुई ।

4 जसा कि पहले बताया जा चुका है, टाड साहव का यह कथन गलत है । पृथ्वीराज ग्रनगपाल तोमर की पुत्री का पुत्र न था ग्रौर न ही दिल्ली का राज्य उसे ग्रनगपाल से प्राप्त हुग्रा था ।

5 कुछ भाटो की मा यता है कि राठौड हिरण्यकश्यप की स तान है (राजस्थान रत्नाकर भाग 1) । जोधपुर राज्य की ख्यात म इ ह राजा विश्वुतमान के पुत्र राजा वृहद्वल से पदा होना लिखा है । दयालदास न इ ह ब्राह्मण के वश मे होन वाल भल्लराव की स तान वताया है ।

6 सामा यत यह माना जाता है कि बारहवी सदी म दुलहराय नामक राजकुमार ने ग्वालियर से ग्राकर दौसा को ग्रपना के द्र वनाया ग्रौर इस क्षेत्र मे पहले से ग्रावाद वडगूजरो को परास्त करके 1137 ई० के ग्रासपास एक नये राज्य की नींव रखी । दुलहराय न मीनो को परास्त कर माची, खोह, झोटवाडा गटोर ग्रादि जीता । उसके वाद उसी के वशज किलदेव ने मीनो को परास्त कर ग्रामर को जीता ग्रौर इसे ग्रपनी राजधानी वनाया । तभी स यह राजघराना 'ग्रामेर के कच्छवाहा कहलाने लगा ।

7 इस मत का प्रथम सूत्रपात चन्दवरदाई के प्रसिद्ध ग्र थ 'पृथ्वीराज रासो होता है। परन्तु यदि गहराई से इस मत का विश्लेषण किया जाये तो सिद्ध हो जाता है कि यह मत केवल मात्र कवियो की मानसिक कल्पना का फल है।

8 परमार शब्द का अर्थ शत्रु को मारने वाला होता है। प्रारम्भ मे परमार आबू के आसपास के प्रदेशो मे रहते थे। ज्यो ज्यो प्रतिहारो की शक्ति कमजोर पडती गई, परमारो की राजनैतिक शक्ति बढती गई। धीरे धीरे इ होने मारवाड, सि ध, गुजरात, वागड, मालवा आदि स्थानो म अपने राज्य स्थापित कर लिये।

9 कुछ विद्वानो का मत है कि चाहुमान चौहान वश का आदिपुरुष था और उसी के नाम से चौहान वश चला।

10 चौहान कुल की जिन जातियो न इस्लाम धम ग्रहण कर लिया उनम कायमखानी, सुखानी लोवानी, कुरुखानी और वदवान मुख्य हैं।

11 सिद्धराज जयसिंह न सवत् 1150 स 1201 तक राज्य किया था।

12 सम्भवत महाराज सिद्धराय क पुत्र भाग्यराय से ही इस शाखाकुल का नाम भागीला या बघेला हुआ है।

13 राव आसथान के पुत्र धूहड ने सवप्रथम परिहारो से मडौर छीना था, पर तु कुछ दिना वाद मडौर राठौडो के अधिकार स निकल गया। धूहड के पुत्र रायपाल न भी थोडे समय के लिए मडौर को अपने अधिकार म रखा था।

14 राहुप न जिस परिहार राजा को पराजित किया था उसका नाम मोकल था।

15 च दकवि न जिस तक्षकवशी सरदार को पृथ्वीराज का भडावरदार कहा है, उसका नाम चित्तु तक्षक था।

16 इसका दूसरा नाम शालपुर था। बारहवी शताब्दी म यह पजाव के प्रमुख नगरो म था।

17 पौराणिक ग्र था से विदित होता है कि भारतवासी बहुत काल पहल स हूणो से परिचित थ। वशिष्ठ और विश्वामित्र क मध्य हुए महासमर म

जिन लोगा ने वशिष्ठ की सहायता की थी, उनम हूणो का नाम भी पाया जाता है। रघुवश के चौथ सग मे भी लेख है कि रघु ने दिग्विजय के समय हूणो को परास्त किया था।

18 वतमान राजगढ से ग्राठ कोस पश्चिम की ओर राजौर के किले का टूटा-फूटा चिह्न ग्रब भी दिखाई देता है। उसम भगवान् नीलकण्ठ का एक पुराना मदिर है और यह मदिर अनेक प्रकार की शिला-लिपियो से भरा हुआ है।

19 मुसलमानो न चामुण्डराय का उल्लेख 'खाडोराय' के नाम से किया है।

20 य स्वतन्त्र जातिया नही थी बल्कि उपजातिया और उनकी शाखाएँ तथा गोत्र आदि हैं।

———

देखने और समझने के लिए मेरे पास अच्छे साधन थे। जागीरदारी प्रथा के सम्ब ध मे मागटेस्की, ह्यू म, मिलर और गिबन जसे प्रसिद्ध इतिहासकारो के लिखे हुये ग्र था का मैंने अध्ययन किया और दोना देशो की प्रथाओ की तुलना करते हुये अपना निष्कष निकालने की कोशिश की। इसी समय मुझे विख्यात इतिहासकार हालम का इस विषय पर लिखा हुआ ग्र थ पढने को मिला। इस साम त शासन प्रणाली का मूल रहस्य जो इतने दिन तक छिपा हुआ था उक्त इतिहास के द्वारा वह एक साथ प्रकट हो गया। मैने इतिहासकार हालम के निर्णय के साथ राजपूतो की इस प्रथा का मिलान किया। इतने दिनो तक जो साम त शासन शली केवल यूरोप खण्ड के निवासियो द्वारा बनाई हुई विख्यात थी इस समय वह शासन शली इस राजपूत जाति के द्वारा सबसे पहले बनाई गई थी इस बात को दृढ रूप से प्रतिपादन कर सकन पर मुझको अवश्य ही बडा भारी आनन्द मिलगा। मै अनुमान क खतरो से अपरिचित नही हूँ। इसलिए म विवादरहित प्रमाणा का आधार लेकर लिखना चाहता हूँ।

जो अद्ध जगली जातिया किसी एक स्थान पर न रहकर सदा जगलो म इधर उधर घूमा करती है, उनके बीच म शासन रीति की अनेक बातें होती है और उनके शासन की अनेक बातें सम्य जातिया के शासन मे भी विद्यमान है। ससार की समस्त प्राचीन जातिया म एक प्रकार से मूल शासन नीति की समानता देखी जाती है। यूरोप के प्रत्येक देश म साम त शासन की रीति प्रचलित थी और काकेशस पवत से लेकर हि द महासागर तक उसी प्रकार से वह शासन रीति कही पूरा और कही अपूरा अवस्था म फली हुई थी। उसकी प्रमुख बातें एक दूसरे के साथ बिल्कुल मिलती थी। समय के साथ इन प्रथाओ मे कहा क्या अन्तर पडा, इसके अनुसधान के लिये बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। समय के प्रभाव और लगातार आक्रमणा तथा उत्पीडन न राजस्थान की परिस्थितियो को बहुत विगाड दिया है, फिर भी उसकी प्राचीनता और मौलिकता की खोज की जा सकती है, जो इस प्रथा के इतिहास म बहुत महत्वपूरा सिद्ध होगी।

मुसलमाना के अत्याचारा और मराठो की लूटमार न मिलकर उस शासन रीति को बिल्कुल अधकार म डाल दिया है। राजपूत जाति की राष्ट्रीय भावना मिट गयी है और उसके पुरान सग्रह इन दिनो मे अप्राप्य अवस्था म है। राजपूत राज्या को फिर से नये प्रकार स गठित करन की आवश्यकता है और उनकी सभी बातो का नया निर्माण होना चाहिए। राजपूत जाति फिर से अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर सकती है, उनका सामाजिक जीवन परिवतन चाहता है। इस समय राजस्थान की अवस्था अच्छी नही है, उसकी शृ खला टूट गयी है। शासन की उपयोगिता खत्म हो गई है। उनकी मौजूदा विशृ खल अवस्था को देखकर कोइ आकर्षित नहा हो सकता। विदेशी लोग उनकी आलाचना कर सकते हैं क्योकि उनको यहा की प्राचीन व्यवस्था का जानन और समझन का अवसर नही मिल पाया।

अध्याय 8

राजस्थान मे जागीरदारी प्रथा (1)

राजपूत राज्यो मे से किसी एक राज्य मे पहले किसी समय दीवानी और फौजदारी की कायविधि या दडविधि (कानूनी) पुस्तक प्रचलित थी अथवा नही, निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता ।[1] परन्तु इस समय यहा पर इस प्रकार का कोई विधान नही है यह बात निश्चित है । परन्तु इन राजपूत राज्यो मे युद्ध के नियमो की रीति (फौजी कानून) ऐसे विस्तृत भाव से प्रचलित हैं कि समाज का सब प्रकार का उद्देश्य शासन विभाग की पूरी व्यवस्था, उसके द्वारा पूरी हो जाती है । यूराप की सम्पूर्ण प्राचीन साम त शासन की रीति के साथ राजपूत राज्यो की साम त शासन प्रथा इतनी समान थी कि मैं दोना के बीच समानता का निर्धारण करता हूँ । पर तु उसके बाद वहा की यह प्रथा ऐसी बिगड गयी कि उसके साथ राजस्थान की जागीरदारी प्रथा की तुलना करने का साहस मैं नही कर सकता । राजस्थान की इस प्रथा के सम्ब ध मे मैं जो कुछ इन पृष्ठो म लिखने जा रहा हू उसको समझने, जानने अध्ययन और अनुशीलन करन म मैंने अपना बहुत समय व्यतात किया है और बहुत परिश्रम के बाद मैंने जो पाया है, उसको यहा पर लिखने का मैं प्रयास करू गा । यद्यपि उस शासन रीति के अग प्रत्यग इस समय प्राय छिन्न भिन्न हो गये हैं तथापि वह सहस्रो मनुष्या से पूण समाज के प्रत्येक उद्देश्य, प्रत्येक कार्य साधन की न्यायमूलक व्यवस्था निर्धारण कर देती है और यह भी निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि एक समय यह शासन प्रणाली अपनी सर्वांग सम्पन्न मूर्ति धारण करने मे समथ हुई थी ।

जिस समय ब्रिटिश सरकार के साथ राजपूत राजाओ का सम्पक स्थापित नही हुआ था और हम लोगो को यहा की ऐतिहासिक और भौगोलिक जानकारी बहुत कम थी उन दिनो मे ही राजपूत राज्या की शासन शली के सम्ब ध मे मरे हृदय मे ऊपर वाली धारणा ने स्थान पाया था । उस समय मैं प्राय ही आन द प्राप्ति के लिये यहा के राज्यो मे भ्रमण करता था और उस समय मुझे यहा के इतिहास और भूगोल के सम्बन्ध मे जो जानकारी होती थी, उसे मैं अपनी सरकार के पास भेज देता था । यूरोप और राजस्थान की इन प्रथाओ को तुलनात्मक दृष्टि से

देखन और समझने के लिए मेरे पास अच्छे साधन थे। जागीरदारी प्रथा के सम्ब ध मे मागटेस्की, ह्यूम, मिलर और गिबन जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारो के लिखे हुये ग्र थो का मैंन अध्ययन किया और दोनो देशो की प्रथाओ की तुलना करते हुये अपना निष्कप निकालने की काशिश की। इसी समय मुझे विख्यात इतिहासकार हालम का इस विषय पर लिखा हुआ ग्र थ पढने को मिला। इस साम त शासन प्रणाली का मूल रहस्य जो इतने दिन तक छिपा हुआ था, उक्त इतिहास के द्वारा वह एक साथ प्रकट हो गया। मैने इतिहासकार हालम के निणय के साथ राजपूतो की इस प्रथा का मिलान किया। इतने दिनो तक जो साम त शासन शली केवल यूरोप खण्ड क निवासियो द्वारा बनाई हुई विख्यात थी इस समय वह शासन शली इस राजपूत जाति के द्वारा सबसे पहल बनाई गई थी इस बात का दृढ रूप से प्रतिपादन कर सकने पर मुझका अवश्य ही बडा भारी आनन्द मिलगा। मै अनुमान के खतरो से अपरिचित नहीं हूँ। इसलिए मै विवादरहित प्रमाणा का आधार लेकर लिखना चाहता हूँ।

जा अद्ध जगली जातिया किसी एक स्थान पर न रहकर सदा जगला म इधर उधर घूमा करती है, उनके बीच म शासन रीति की अनेक बाते होती है और उनक शासन की अनक बातें सभ्य जातिया के शासन मे भी विद्यमान है। ससार की समस्त प्राचीन जातिया म एक प्रकार से मूल शासन नीति की समानता देखी जाती है। यूराप के प्रत्येक देश म साम त शासन की रीति प्रचलित थी और काकेशस पवत से लेकर हि द महासागर तक उसी प्रकार से वह शासन रीति कही पूण और कही अपूण अवस्था म फली हुई थी। उसकी प्रमुख बाते एक दूसरे के साथ बिल्कुल मिलती थी। समय के साथ इन प्रथाओ म कहा क्या अन्तर पडा इसके अनुसधान के लिय बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। समय के प्रभाव और लगातार आक्रमणा तथा उत्पीडन ने राजस्थान की परिस्थितिया को बहुत बिगाड दिया है, फिर भी उसकी प्राचीनता और मौलिकता की खोज की जा सकती है, जो इस प्रथा के इतिहास म बहुत महत्वपूण सिद्ध होगी।

मुसलमाना के अत्याचारा और मराठो की लूटमार न मिलकर उस शासन रीति को बिल्कुल अधकार मे डाल दिया है। राजपूत जाति की राष्ट्रीय भावना मिट गयी है और उसके पुराने सग्रह इन दिनो म अप्राप्य अवस्था म है। राजपूत राज्या को फिर स नय प्रकार म गठित करन की आवश्यकता है और उनकी सभी बातो का नया निर्माण होना चाहिए। राजपूत जाति फिर से अपनी पूर्वावस्था का प्राप्त कर सकती है, उनका सामाजिक जीवन परिवतन चाहता है। इस समय राजस्थान की अवस्था अच्छी नही है उसकी शृ खला टूट गयी है। शासन की उपयोगिता खत्म हा गई है। उनकी मौजूदा विशृ खल अवस्था को दखकर काइ आकर्षित नही हा सकता। विदशी लोग उनकी आलाचना कर सकते है क्याकि उनका यहा की प्राचीन व्यवस्था का जानन और समझन का अवसर नही मिल पाया।

उनकी आलोचनाओ से इस देश के प्राचीन इतिहास का अनुमान नही लगाया जा सकता। राजस्थान की शासन व्यवस्था का आधार, उसकी जागीरदारी प्रथा थी और यह प्रथा प्राचीन यूरोप की जागीरदारी प्रथा से मिलती जुलती थी। उसकी श्रेष्ठता लम्बे समय तक कायम रही और वाह्य आक्रमण तथा अत्याचारो के उपरा त भी छिन भिन्न नही हो सकी। भारत का प्राचीन गौरव, इस शासन व्यवस्था की श्रेष्ठता का एक ऐसा प्रमाण है, जिससे कोई बुद्धिमान और निष्पक्ष इतिहासकार इनकार नही कर सकता।

मध्ययुगीन यूरोप के साथ राजस्थान की तुलना करके यह लिखना आवश्यक नही है कि आचार व्यवहार और संस्कार के सम्ब ध म किस देश स क्या सीखा। प्रयोजन तथा आवश्यकता के अनुसार सभी देशो को एक दूसरे से उपयोगी बातें लनी पडी और ऐसा होना ही स्वाभाविक है। जागीरदारी की यह प्रथा इगलण्ड म नामन लागो से पहुँची थी। नामन लोगा न इस प्रथा का स्कण्डीनेविया स ग्रहण किया था और उन्होने भी यह प्रथा दूसरी जातिया स ग्रहण की थी। एशिया की जातिया से साम त प्रथा अन्य दशो की जातिया म फली और कुछ जातिया न इस प्रथा को तातारिया से ग्रहण किया। यह स्वीकार करना पडता है कि ससार के पूर्वी देशो म इस प्रथा की उत्पत्ति हुई और एशिया प्रधान मे असी कटी, किम्बिक और लोम्बाड स स्कण्डीनेविया फ्रीजलण्ड और इटली म इस प्रथा का विस्तार हुआ।

मध्ययुगीन सामन्त शासन व्यवस्था के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हालम की मा यता है कि साम ता की उत्पत्ति का अनुसधान करना ससार के विभिन्न देशो म प्रचलित साम त प्रथा की तुलनात्मक आलोचना करना बहुत कठिन काय नही है। मौलिक बाता म व एक दूसरे की प्रतिछाया है और उनकी शासन प्रणाली एक ही व्यवस्था का अनुसरण करती है। इस प्रथा को एक देश ने दूसरे देश से और एक जाति न दूसरी जाति से अपनाया है। समय और परिस्थितिया न इस प्रथा के व्यावहारिक रूप म अ तर उत्पन्न कर दिया है फिर भी उनम बहुत सी बातें समान हैं और उनसे साम त प्रथा के मौलिक सिद्धान्तो का समथन होता है। रोम के लोकतात्रिक शासन काल म आभिजात्यवग के लोगो और साधारण लोगो के मध्य जसा सम्ब ध विद्यमान था और बवर तथा वीर लोग जिस प्रकार आत्मरक्षा और सीमा त रक्षा के लिए सीमान्त की भूमि का निजी जागीर के रूप म उपभोग करते थे उसकी समानता इस साम त प्रथा के साथ देखी जा सकती है। किन्तु वे लोग किसी व्यक्ति विशेष का अनुसरण न करके अपने राज्यो के प्रति राजभक्त होते थे। यही अवस्था हिन्दुस्तान के जागीरदारो और तुर्की के तोमारियो लागो की थी। हाइलैंडर और आइरिस जाति के नाना समूह अपन से ऊपर वाले सामन्तो के अधीन युद्ध म जाते हैं किन्तु उनका जाना स्वेच्छानुसार नही है। उन सामन्ता के साथ वे लोग समान रक्त सम्ब ध का बधन अनुभव कर ही युद्ध मे जाने की इच्छा करते हैं।

यहा पर राजस्थान के राज्यो मे प्रचलित जागीरदारी प्रथा को आवश्यकतानुसार विस्तार से लिखना मेरा उद्देश्य है। परन्तु लिखने के समय अन्य देशो की शासन प्रणालियाँ जो उस युग मे प्रचलित थी मेरे सामने आ जाती है। मुझे इन दोनो म कोई मौलिक अन्तर दिखाई नही देता। यहा के राज्यो के सम्बन्ध मे मैने जो कुछ लिखा है उसकी पुष्टि यहा की बहुत-सी बातो से होती है। जनश्रुति के द्वारा जो मालूम होता है, ग्रन्थो मे भी उसी व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। जो सनदें मुझे मिली है अथवा उनकी प्रतिलिपिया प्राप्त है उनके द्वारा भी वही सामग्री प्राप्त होती है। उत्तरी भारत मे निवास करने वाली जातियो मे यह प्रथा प्रचलित थी उसके समर्थन मे मेरे पास बहुत सामग्री है और उसके आधार पर मै यह कह सकता हूँ कि यह प्रथा वहा से राजस्थान मे आकर प्रचलित हुई। सात शताब्दियो तक मुगलो और पठानो के द्वारा किये गये भयकर विनाश के उपरान्त भी यह प्रथा निर्जीव नही हुई और राजस्थान के जिन जिन राज्यो मे इस शासन प्रणाली ने स्थान पाया, उन राज्यो मे यह प्रथा अब तक विद्यमान है। इस प्रथा के सम्बन्ध म मैंने विशेषकर मेवाड के इतिहास और शासन नीति का सहारा लिया है। इसका भी कारण है। जहा तक मैंने समझा है राजस्थान म मेवाड राज्य की जागीरदारी प्रथा काफी सबल थी। इस राज्य का महत्व अन्य राज्यो की अपेक्षा अधिक था और आक्रमणकारियो के इस राज्य पर जितने अत्याचार हुये थे, वसे अत्याचार अन्य राज्य को सहन नही करने पडे। इसके उपरान्त भी मेवाड की जागीरदारी प्रथा सदा सजीव और सबल होकर रही। जिस समय दिल्ली का मुगल शासन शिथिल और कमजोर हो गया था उस समय मे भी मेवाड राज्य की जागीरदारी प्रथा दृढता के साथ चल रही थी।

यूरोप के राज्यो म जिस प्रकार बहुत समय तक परम्परागत विधानानुसार भूमि के ऊपर स्वत्वाधिकार का निर्णय होता था, उसी प्रकार के निर्णय का उल्लेख राजस्थान के राज्यो मे मिलता है। इस आधार पर यह मान लेना पडता है कि उस समय म भूमि के ऊपर स्वत्वाधिकार की व्यवस्था पूर्व से लेकर पश्चिम तक—सभी देशो म एक समान ही थी। शासन पद्धति का आधार यही भूमि थी। समय के साथ साथ इन प्राचीन प्रथाओ मे थोडा बहुत परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक ही है। मेवाड के राणा लोगो द्वारा जागीरदारी प्रथा सम्बन्धी पुरानी प्रथा म कुछ परिवर्तन किये गये थे। इन परिवर्तनो की जानकारी बहुत से शिलालेखो द्वारा प्राप्त होती है। राणाओ द्वारा किये गये ये परिवर्तन अनावश्यक न थे। इस प्रथा सम्बन्धी पुराना विधान काफी पुराना हो चुका था और मानवीय जीवन की परिस्थितियो म भारी अन्तर आ गया था। आवश्यकता के अनुसार शासन प्रणाली म परिवर्तन करना अस्वाभाविक नही है। जिस प्रणाली म कभी परिवर्तन न किया जाय, वह समय के साथ निर्जीव पड जाती है।

राजपूतो को लगभग सात शताब्दिया तक विजातीय शत्रुओ के आक्रमण और अत्याचारो को सहन करना पडा और भयानक विनाश देखना पडा। विनाश और सहार के दिनो म किसी भी राज्य का विकास नही हो सकता। फिर भी, उस घोरतर दुर्दिन म, जाति की शोचनीय अवस्था म भी, राजपूत राज्या न अनेक नामी और शूरवीर नरपति उत्पन्न किये थ। राणा सागा के पौत्र प्रताप न बाबर क पौत्र अकबर के समय म बडी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। जहागीर के समय म प्रताप के पुत्र अमरसिंह न अपनी वीरता का परिचय दिया था।

जनश्रुतियो और शिलालेखो स पता चलता है कि य राजपूत नरेश अपने जीवन मे जिस प्रकार शूरवीर होते थे उसी प्रकार नीतिकुशल भी होत थे। उच्च श्रेणी की मर्यादा का निर्णय वणिक और कृषक मडली के सम्बन्ध की रीति क निर्धारण मे व कसी अच्छी योग्यता दिखा गये हैं, इसकी जानकारी उन पाषाण स्तम्भो की उत्कीर्ण लिपियो के पाठ करन से विदित हो जाती है। यह भी विदित हो जाता है कि राजा लोग सामन्त शासन के सम्बन्ध वाली आमदनी और खच की व्यवस्था भी कसे अच्छे प्रबन्ध के साथ कल्पना कर गय हैं। वाणिज्य पर महसूल के नियम, पवित्र एव महत्वपूर्ण दिवसो पर नौकरी करन वालो का अवकाश मुक्तिदान, अनुग्रह वाणिज्य की प्रधान सनदें शान्ति और श्रेष्ठता की रक्षा के लिए प्रजा क बीच समान रूप से पचायत स्थापन और प्रजा की स्वतन्त्रता म रहने की विधि जिसके द्वारा वह राजनीति के काय मे सवसाधारण का मत जानने मे समथ हो इन सब विषयो की व्यवस्था भलीभाति कर दी थी। शासन प्रणाली के सम्बन्ध वाल नियम व्यवस्था की रीतियें जब मुझको राज्यप्रसाद म नही मिली तो मैंने दूसर प्राचीन चिन्ह, उत्कीर्ण लिपि अनुशासन पत्र और पाषाण स्तम्भो पर खोदे हुए आदेश तथा पत्रावली के तत्वानुसधान से उनको प्राप्त किया। यह सब खोदे हुए अनुशासन पत्र स्तम्भो का निर्माण बहुत पुरान समय स ही प्रचलित होता आ रहा है। स्तम्भावली का नाम शिवरा अर्थात् शाल है। उन सब खोदे हुए आदेश विधान एव व्यवस्था मे सबसे पहले सूय और चन्द्र को साक्षी देकर मूल विषय लिखने के अन्त मे लिखा है कि जो पुरुष इस विधान व्यवस्था या आज्ञा को अमान्य करेगा, उसको बडा भारी दड या नरक भोग करना होगा। गत तीन शताब्दी के भीतर उस प्रकार का अनुशासन रीति और उत्कीर्ण स्तम्भ ज्यादा सख्या म बनाये गये थे। कारण कि उन तीन शताब्दियो मे राणा लोग विजातीय शत्रुओ के विरुद्ध युद्ध मे विजय पाकर अनेक लोगो को भूवृति दान, अनेक विषयो म अनुग्रह प्रकाश और इधर उधर भागी हुई जनता को एकत्र करने के लिये नई नई व्यवस्था करने म प्रवृत्त हुए थे। एक खोदे हुए स्तम्भ के पढन से विदित हुआ कि छीट के वस्त्र के ऊपर महसूल छोड दिया गया और स्थानीय वस्त्र बनान वालो पर बिना महसूल के निकटवर्ती ग्राम और नगरो मे विक्रय करन की व्यवस्था हुई थी। एक दूसरे स्तम्भ म व्यापार प्रधान नगर से युद्ध सम्बन्धी कर ग्रहण का निषेध और स्थान की आन्तरिक शासन व्यवस्था लिखा

है । ये सम्पूरा स्मृति चि ह राजपूत जाति की गौरव गरिमा और वीरता तथा प्रताप के प्रत्यक्ष प्रमाण है । किन्तु अब राजपूत जाति अन्तिम दशा म पूव पुरुषो के उन कीर्ति चि हो का अनादर कर रही है । उन स्मृति चि हो को तोडकर उनकी सामग्री से अपने घर निमाण करन म भी लज्जित नही होती । इस कारण स बहुत स स्मृति चि ह राजपूत साम तो के मकान बनवान म लग गय और बहुत से पृथ्वी के गभ म समा गय ।

राजपूत जाति की श्रेष्ठ वश मे उत्पत्ति—राजस्थान क राज्यो म जिन राजाओ न शासन किया है और अब भी शासन कर रहे हैं यदि उनकी तुलना हम यूराप क राजवशो क साथ करें तो यह अवश्य ही कहना पडेगा कि उनकी अपेक्षा राजपूतगण ही श्रेष्ठ है । राजपूत जाति की उत्पत्ति के विषय म बहुत पुरान समय के वृत्ता त पढन से मैं यह कह सकता हूँ कि यह जाति नीच वश म उत्पन्न अथवा करद् राजवश वाली नही है । यद्यपि राजपूत जाति का प्रताप, प्रभुत्व और शक्ति इस समय बिलकुल नष्ट हो गई है, उनके अधिकृत राज्य इस समय क्षीण हो गये है तथापि प्रसिद्ध ऊचे राजवशो म उत्पन्न होन के कारण वह अब भी विलक्षण रूप से परिचित है और उ होन उस पुराने नाम से उत्पन्न हुए दप और गव का किंचितमात्र भी नही छोडा है ।

लगातार अनक शताब्दियो तक अत्याचारो से पीडित रह कर भी राजपूतो ने अपन स्वाभिमान को बहुत अशो म अब तक सुरक्षित रखा है । मेरी आखो के सामने राणा का वश है । यह वश अविचल भाव से अपने वश की पवित्रता और गौरव की रक्षा करता आ रहा है । मुगल सम्राट जहागीर न सीसोदिया वश का इतिहास स्वय लिखा है । मेवाड के राणा को राजनीतिक परिस्थितियो से विवश होकर स धि करनी पडी थी, परन्तु जहागीर के लिय यह विशेष गौरव की बात थी । जिस काम को मुगल साम्राज्य का सस्थापक बाबर और उसका पुत्र हुमायू तथा पोता अकबर सफलतापूवक नही कर सके जहागीर उसे करन म सफल रहा और इसके लिये उसने ईश्वर को हृदय के साथ ध यवाद दिया । बाबर और जहागीर इन राजपूतो के विषय म जसे महान् ऊचे म त य प्रकाश कर गये हैं, उनको पढते समय चित्त म अभूतपूव आन द उदय होता है । इगलण्ड की महारानी एलिजाबेथ के शासनकाल म सर टामसरो भारत मे दूत बनकर आया था । उसने उस समय के राजपूत राजाओ के ऐश्वय, शान शौकत और पराक्रम की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है ।

मारवाड के राठौड—राठौड जाति सम्मानित और उच्च वश मे उत्पन्न होन से गव कर सकती है । राणा के परिवार के लोगो के सम्ब ध मे मैं जिस निश्चय के साथ अपन विचार प्रकट कर सकता हूँ उतनी निश्चयता के साथ राठौड राजपूतो के सम्ब ध म लिखने का म अधिकारी नही हूँ, फिर भी मैं इतना तो जानता हूँ कि

जिन दिनो म फ्रासवालो के एक अपरिचित सम्प्रदाय क नता भावी फ्रास राज्य स्थापना का माग प्रशस्त करन म प्रयत्नशील थे, उस समय राठौडा क हाथ म का कुब्ज देश का शासन था और उनका प्रभुत्व दूर दूर तक फला हुआ था। बारह शताब्दी म उनके विस्तृत राज्य का पतन हुआ परन्तु मारवाड म उनका शासन ब रहा।

आमेर के कछवाहे—बहुत प्राचीन काल म भारत म निषध नाम का प्रसि राज्य था जो इस समय नरवर के नाम से विख्यात है और जहा राजा नल और रा दमयन्ती का उपाख्यान सारे ससार म विख्यात है, उसी नषध राजवश म कछवा उत्पन्न हुए है। राज्य की अदल बदल और दूसरा के आक्रमण से ही नषध राजव वालो को अपना पतृक राज्य छोडना पडा था। उस समय भारत म चार प्रधा राज्य थे। अरब के यात्री उन चार राज्यो का जो विवरण लिख गय हैं उससे पत चलता है कि जिस समय फ्रास और इगलण्ड की सामन्त शली विकसित हुई, उस समय भारत मे वे सब राज्य समृद्धि की ओर अग्रसर थे।

मेवाड के सीसोदिया—राजस्थान के राज्या मे मेवाड का स्थान अधिक सम्मानपूर्ण है और सभी राजपूत जातियो मे सीसोदिया वश का स्थान ऊचा है।[2] मेवाड की राजनीति, समाजनीति और शासननीति अन्य राज्यो से सवथा पृथक है, इस बात को सब जानते है। अन्य राज्य जब अपनी बाल्यावस्था म ही थ, मेवाड का राज्य उस समय इस देश म प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुका था। इस वश के स्वाभिमानी राणाओ न लम्बे समय तक आक्रमणकारियो से लोहा लिया। उन्होने भयकर कठिनाइयो का सामना किया। फिर भी वे अपनी स्वाधीनता को छोडने क लिए कभी तयार न हुए। इस वश की सबसे अच्छी बात यह थी कि इस वश का कोई भी शासक अवसरवादी न था। हम लोग मेवाड की क्षति का तो सरलता के साथ मूल्याकन कर सकत हैं, पर तु उसके राज्य विस्तार का पता लगाना कठिन है। मारवाड आमेर और अन्य राज्यो ने किस प्रकार राज्य सीमा बढाई, इसका लिखना बहुत सहज है। कई छोटे छोटे राज्य लेकर ही मारवाड की उत्पत्ति हुई है, व प्राचीन छोटे छोटे प्रदेश अन्त म नवीन राठौड राजवश के अधीन करद् सामन्त की स्थिति म आ गये। इस करद् सामन्त मडली के ऊपर जिस विशेष स्वाधीनभाव से राजा लोग नियन्त्रण स्थापित करने मे समथ हुए वह केवल उनके देशाधिकार की रीति से ही स्थिर है। यूरोप की सामन्त शासन प्रणाली जिस समय प्रचलित थी उस समय के सामन्ता के स्वत्वाधिकार के समान उनका स्वत्वाधिकार ज्यो का त्यो है।

आज का निधन स निधन राजपूत भी अपन पतृक स्वत्व वश गौरव की बडे अभिमान के साथ रक्षा कर रहा है। वह कृषिकाय हल चलान और अश्वारोहण के

सिवाय ग्र य समय म उरछा चलाना पस द नही करता । ग्रपने से ऊपर के स्वामियो द्वारा मिलन वाला स्वागत-सत्कार ग्रौर ग्रपने से निम्नजनो द्वारा दिये जाने वाल सम्मान—य दाना उनके ग्राभिजात्य सम्ब धी विचार को समथन प्रदान करते है। राणाग्रा न जसा पद सम्मान, ग्रनुग्रह ग्रौर पद श्रेणी का विभाजन कर रखा है, वह समाज की वहुत ऊँची ग्रौर निमल ग्रवस्था का द्योतक है। उच्च श्रेणी का व्यक्ति ही सम्मानसूचक पताका, नगाडा निशान ग्रौर चादी का ग्रासधारी ग्रनुचर साथ रखने का ग्रधिकारी है। इसके सिवाय किसी किसी साम त के पूव पुरुषा ने ग्रपनी सेवाग्रो के द्वारा ग्रनुग्रह स्वरूप जितने स्मरणीय सम्मान चि ह प्राप्त किये थे, उनके उत्तराधिकारी उन चि हो का ग्राज तक व्यवहार करते ग्रा रहे हैं।

ग्राजकल यूरोप के राजवशीय लोग ग्रात्मपरिचय देने वाले समर के ग्रस्त्र विशेप विशेप चि हो से पृथक पृथक अकित करते ह,[3] प्राचीन राजपूत जाति वसे चि ह व्यवहार मे ग्रनभिज्ञ नही थी। मेवाड की प्रधान राजपताका लाल रग —
उस पर सूय की ग्राकृति ग्रकित रहती है। मेवाड़ ~ । पर एक-एक खड्ग की मूर्ति ग्रकित है। ग्रामेर की राज पाच रगो वाली है। च ~ नामक छोटे राज्य की पताका पर हनुमान सिह की मूर्ति ग्रकित है।[4] यूरा ~ प्रथा क्रूसेड के पहले प्रचलित नही थी, कि तु राजपूतो मे यह प्रथा ट्राय के युद्ध के पहले से विद्यमान थी। ईसा के वहुत शताब्दी पहले जिस समय महाभारत का युद्ध हुग्रा था, उस समय ग्रजु न की पताका मे हनुमान की मूर्ति ग्रकित रहती थी। यह वात महाभारत का पढने से विदित हो सकती है। यह व्यवहार के सम्पूर्ण चि ह हिन्दुग्रा के धम विधान मूलक है ग्रौर ग्रपने देव देवियो की मूर्तियो से ही यह निर्वाचन कर लिय हैं।

प्रत्येक राजपूत राजा के राजमहल म एक-एक रक्षाकर्त्ता कुल देवता की मूर्ति रहा करती है ग्रौर उसे प्राय ही युद्धक्षेत्र मे ले जायी जाती थी। राजा स्वय घोडे पर सवार होकर उस मूर्ति को ग्रपने साथ ले जाता था। कोटा के राजा भीमहर ने युद्ध क्षेत्र म ग्रपन कुल देवता क साथ जीवन विसजन किया था। खीची जाति के विख्यात राजा जयसिह भी ग्रपने कुल देवता की मूर्ति के विना कभी युद्ध म नही जात थ।[5] युद्ध म ग्रपन वश के देवता को ले जाने का ग्रामरिवाज हि दू राजाग्रा म था। यूनान के वादशाह सिक दर ने जव भारत पर ग्राक्रमण किया था, उस समय उसक विरुद्ध जो हि दू राजा लडन गय थे, वे ग्रपने कुल देवता की मूर्ति ले गय थ। कुछ राजाग्रा न ग्रपनी सना के शीषस्थान पर मूर्ति को रखकर समराग्नि प्रज्ज्वलित की थी। यूनानी इतिहासकार एरियन न लिखा है कि ग्रधीन साम ता के ऊपर राजा को प्रभुता जताने वाली पताका दान की रीति सि धुनद के तीरवर्ती राज्यो से ही यूनानी लोगो न ग्रहण की है। साम त शासन की रीति का यह कवल वाहरी ग्रा नाम मात्र है, इस कारण हम ग्रौर भी जितन पिछल समय क इतिहास म पहुँचेगे उनन प्रणाली के ग्रग प्रत्यग हमार सामन दृष्टिगत होन लगेंगे।

सि धु नदी की पश्चिम सीमा म स्थित पहाडी प्रदश म जिस समय युद्धाग्नि प्रज्ज्वलित हुई थी उसके बहुत पहले युधिष्ठिर क राजछत्र क नीचे य (मुसलमान) ने आश्रय पाया था। महाबली विशाल दव जिसका नाम दिल्लं विजय स्तम्भ पर खुदा हुआ है वह यवना क विरुद्ध अपनी जो सेना ले गया उसम 84 हि दू राजाग्रा की पताकाये थी। विशालदेव न इस जातीय महायुद्ध सहायता दन के लिए बहुत से राजाग्रा को निमन्त्रण पत्र भेजा था। चन्द व अपने ग्र थ मे उस युद्ध की बहुत सी बातो का उल्लख किया है। च दकवि ग्र काव्य म भारत सम्राट पृथ्वीराज के समय की साम त शासन विधि का जसा उ वर्णन लिख गये हैं, वैसा दूसर किसी ग्र थ मे दृष्टिगोचर नही होता। च दकवि महाकाव्य से आर्यो के शासन और इतिहास सम्ब धी बहुत सी बाते मालूम हो सक हैं, विशेषकर राजपूतो के आचार व्यवहारादि जिनकी तुलना अ य जातियो क स की जा सकती है।

रजवाडा की प्रचलित समाजनीति के अनुसार जिनका जन्म विशुद्ध राज वश मे हुआ है, उ ही को मवाड राज्य के साम त होन का अधिकार है। जिन नाडियो मे शुद्ध राजपूत रक्त बह रहा है वह राजपूत चाहे अत्यन्त निधन और ए चरसा[6] भूमि का स्वामी हो, तो भी बडे से बडे सामन्त उसके साथ सम्ब ध काय करने म अपने को अपमानित महसूस नही करते। केवल वह वश गौरव ही निध राजपूतो के अकु ठित सम्मान की रक्षा करता है। मेवाड राज्य म वश की श्रेष्ठ का बहुत महत्व दिया जाता था। राज्य के कार्यो मे राजपूतो के अलावा अन जातियो के लोग भी नियुक्त किय जात थ उनको भी उपाधि तथा गुजार के लि भूमि दी जाती थी परन्तु उस पर उनका चिरस्थायी वशानुक्रमिक स्वत्व नहीं होत था। पाने वाला जब तक राज्य की सेवा म रहता था, उस समय तक वह उस भूमि का अधिकारी समझा जाता था। जिस कारण से यूरोप म राजमन्त्री और प्रधान प्रधान राजपुरुषो को भूवृत्ति दन की प्रथा थी उसी कारण स राजपूत राज्यो म भी यह प्रथा प्रचलित हुई। प्रारम्भ म सिक्के का प्रचार न हुआ था और उस दशा म राज्य के अधिकारियो का वेतन दन म बडी असुविधा होती थी। इस असुविधा से बचन के लिए प्राचीन काल मे राजकर्मचारियो को उनक पदो क अनुसार भूमि अथवा इलाका दिया जाता था। मेवाड क मन्त्री लोग वेतन क बदले इस भूवृत्ति को ही श्रेष्ठ समझते थे। प्राचीन समय म यूरोप क अनेक राज्यो म भी भूवृत्ति की यह व्यवस्था प्रचलित थी। फ्रास के राजा सालमन क यहा राज कर्मचारियो की अलग अलग श्रेणियाँ थी। उनम छोटे और बडे सभी प्रकार के कर्मचारी थे। मन्त्रियो और अध्यक्ष लोगो की भी श्रेणियाँ थी। राजपूतो राज्यो म कुछ इसी प्रकार की बातें देखने को मिलती है।

मेवाड म वेतन के बदले भूमि पाने वालो म सभी प्रकार के लोग देखे जाते हैं। प्रासाद निर्माता चित्रकार, चिकित्सक, दूत और मन्त्री लोग भूमि पाने के अधिकारी

माने जाते हैं। राज्य के सब पदो पर वशानुक्रम से ही नियोग होता है, अर्थात् जिस पद पर जो पुरुष नियुक्त किया गया है, उस पद पर केवल उसके ही पुत्र, पौत्रादि नियुक्त हाते हैं। उन सबका उपाधि भी दी जाती है। यदि किसी कारणवश किसी की भूवृत्ति लौटा ली जाय तो वह उसके लिए सवथा अनधिकारी नही हो जाता। मेवाड म समय समय पर तीन चार पुरुषो को 'प्रधान" अर्थात् मन्त्री उपाधिधारी भी देखा गया है। भूमि अथवा गुजारा पाये हुए राज कमचारियो को राज्य के प्रति अपना कत्तव्य पालन करना पडता है और हर स्थिति म अपने राजा का भक्त तथा शुभचितक बन कर रहना पडता है। कत्तव्य परायणता के विरुद्ध कोई काम करन पर अथवा अपन आचरण से विश्वासघात का परिचय देने पर उसे जो भूमि अथवा इलाका दिया गया था, वह वापस ले लिया जाता था। सम्बधित कमचारी द्वारा प्राथना किये जाने पर उसके विरुद्ध की गई कायवाही पर पुन विचार किया जाता है।

मेवाड राज्य की भू सम्पत्ति बहुत श्रेष्ठ रीति से विभक्त, श्रेणीवद्ध और निर्णीत हुई है। राज्य के दक्षिण पूव और पश्चिम– इन तीनो सीमा प्रा त म लुटेरे भील, मीरा और मीना जाति के लोग बसे हुए हैं। राज्य के चारो प्रा त की परिधि के मध्यवर्ती सम्पूण प्रदेश साम न्तो के लिए निर्धारित है, और राज्य के मध्यस्थल म खालसा भूमि है जो कि सबसे अधिक उपजाऊ है। उक्त खालसा भूमि क चारा ओर साम त मडली के अधिकृत प्रदेश होने से वह भूमि विशेष रूप से रक्षित है।

साम तगणो को जितना भू भाग वृत्ति रूप से दिया गया है खालसा भूमि उसके चौथाई अश के बराबर भी नही है। राणा की निज अधिकार वाली भूमि ही राजशक्ति की धमनी और मासपेशी स्वरूप है। इसकी आय से ही राणा उत्तम काय के लिए लोगो को पारितोषिक देता है। राजधानी के निकट किसी भी साम त को भूमि नही दी जाती। कि तु मौजूदा महाराणा भीमसिंह ने विवेकशू य होकर खालसा भूमि के लगभग सभी गाव वृत्ति के रूप म लागो को प्रदान कर दिये।

इस भू वृत्ति के कारण मवाड के साम तो का प्राय सदा ही किसी न किसी कारण से अपनी सना सहित राणा के अधीन राज्य की रक्षा के लिए शत्रुओ स युद्ध करना पडता है। अथात् जागीर के बदले म सनिक सेवा दनी पडती है।

शासन की सुविधा के लिए राज्य को अनक इकाइया म विभाजित किया गया है। राज्य म कई जिले हैं। प्रत्येक जिले म पचास स लेकर 100 तक गाव रग गय हैं। सम्पूण उपविभाग 'चौरासी' नाम से विख्यात है। आज तक बहुत से उपविभाग 'चौरासी' नाम स कहलाते हैं। जहाजपुर और कमलमीर के चौरासी उपविभाग अब तक विद्यमान हैं। जिन दिना म इगलण्ड म जागीरदारा प्रथा प्रचलित थी, उन दिना म वहा पर भी इसी प्रकार का विभाजन होता था।

मवाड राज्य की रक्षा के लिए, उसक चारो ग्रार के विभिन्न स्थाना म एक सीमान्त रक्षक नियुक्त है ग्रौर निकटवर्ती सामन्तमडली के सनिक उस रक्षक ग्रधीन रहकर राज्य की सीमाग्रो की रक्षा करत है। राणा स्वय उन सीमा त रक्ष को नियुक्त करत ह ग्रौर वह कई राजकीय चि ह पताका का व्यवहार, माय सू बाजे ग्रौर घोपक दूत रखने के ग्रधिकारी है। सवसाधारण म वह दीवानी राजपु रूप से गिन जाकर सामरिक काय के साथ साथ विचारासन पर भी वठत है। उ श्रेणी के साम त स्वय उस सीमा त म उपस्थित न होकर कवल ग्रपनी सना क सा ग्रपने परिवार क किसी सदस्य को प्रतिनिधि के रूप म भेज देत हैं। जिला व्यवस्था एक दीवानी कमचारी ग्रौर एक सनिक ग्रधिकारी करत हैं। उक्त सनि ग्रधिकारी सामा यत दूसरी श्रेणी के साम ता म से नियुक्त किया जाता है। ग्रधिकारी प्रत्यक जिले के प्रमुख स्थान ग्रथवा दुग म निवास करत हैं।

विभाजित राज्य की सुव्यवस्था उसके साम तो क द्वारा होती है। जो साम इस प्रकार के काय करते है राज्य की तरफ स व चार श्रेणिया म विभाजित हैं ग्रौर वे इस प्रकार हैं—

पहली श्रेणी—पहली श्रेणी म सोलह साम त है।[7] राज्य की तरफ स मिले हुए इलाका क द्वारा इन साम तो की सालाना ग्रामदनी पचास हजार रुपय स लकर एक लाख रुपय तक है। इस श्रेणी के साम तगण राणा द्वारा किसी विशप काय मे ग्रामत्रित होन पर, पर्वोत्सवादि के ग्रौर धर्मानुष्ठान के समय राजभवन म जाते हैं। वशो की मर्यादा के ग्रनुसार इस श्रेणी के साम ता को राणा मत्री होने का पद मिलता है। यह मवाड म बहुत दिना से चला ग्रा रहा है।

दूसरी श्रणी[8]—इस श्रेणी के साम ता की सालाना ग्रामदनी पाच हजार रुपये से लेकर पचास हजार रुपये तक है। इन साम तो को नियमित रूप स राज भवन मे रहना पडता है। इ ही साम ता म से प्राय सीमा रक्षक चुन जात हे। उनको फौज दार कहते है। उनक ग्रधिकार म सनिका की एक छोटी सना रहती है।

तीसरी श्रेणी—साम तो म यह तीसरी श्रणी गोल नाम से विख्यात है।[9] इनकी सालाना ग्रामदनी पाच हजार रुपये तक है परन्तु कभी कभी राणा विशप ग्रनुग्रह दिखान के लिय इस श्रणी के किसी किसी साम त को इससे ग्रधिक ग्राय की भूमि भी दे दत ह। य साधारणतया स्वतन्त्र भाव स ग्राम ग्रौर भूमि भोगत ग्राये हैं। पूवकाल म इस श्रेणी के साम तगण राणा के विशप उपकार मे ग्राते थे। इनका सदा ही राणा के निकट रहन का नियम है। वास्तव म यह सामन्तमडली ही राणा की राजशासन शक्ति सचालन ग्रौर दृढ करने म प्रधान सहायक स्वरूप है। कारण कि उच्च श्रेणी की साम तमडली यदि किसी समय राजभक्ति क विरुद्ध उठ खडी

हो तो उस विपत्ति के समय मे ये साम त लाग राणा का पक्ष लेकर विद्रोही सामन्तो के साथ युद्ध करत है।

चौथी श्रेणी—राणा क परिवार म उत्पन्न राजकुमारगण एक निश्चित समय तक "बावा" कह जाते हैं। उनके भरण पोषण के लिए राज्य की तरफ से एक निश्चित भूमि होती है। इन्ही लोगो को चौथी श्रेणी के सामन्त कहा जाता है। इस श्रेणी के साम ता मे शाहपुरा और बनेडा के सामन्त अधिक शक्तिशाली है। अन्य सामन्तो की भाति राणा के साथ इनकी किसी प्रकार की अधीनता सूचक व्यवस्था न होने पर भी वह अपन को राणा के अधीन समझ कर राणा की आज्ञा पालने के लिए यथासमय अग्रसर होते है।

राज्य के दीवानी के मामलो का निणय करन के लिए जसा कि पहल बतलाया जा चुका है-दीवानी का एक अधिकारी रहता है। इस अधिकारी की नियुक्ति साम तो म से ही की जाती है। फौजदारी के अपराधा का निणय करने के लिय राणा के परामश की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के निणय जिनके द्वारा हाते है वे पचायते कहलाती हैं।

मालगुजारी और राणा के अधिकार—यहा हम राणा के राजस्व के मुख्य-मुख्य अगो का केवल स्थूल विवरण लिखते है विशेष विवरण यथोचित स्थान पर लिखा जायगा। खालसा भूमि का कर ही राणा की प्रधान आय है। उसके पीछे व्यवसाय वाणिज्य शुल्क और प्रधान-प्रधान नगर तथा बाजारा का कर आता है। पहल राणा लोग राजस्व के इस अग (व्यवसाय-बाजार) पर अधिक ध्यान देत थ और उस समय मे करो का बोझ अधिक न होने की वजह से इससे काफी आमदनी होती थी। इन व्यापारियो के साथ राज्य की तरफ से उदारतापूण व्यवहार रहता था और व्यापारी भी निर्धारित कर राज्य को देकर अपना कत्तव्य पालन करत थ। परस्पर क सदाचरण से ही विश्वास और प्रीति बढती थी। पर तु बाद म राजनीतिक परि-स्थितियो के बिगड जाने के बाद राज्य के व्यवसायियो की परिस्थितिया भी बिगडती गई। करो का बोझा बढ गया था और कर वसूली के मामला मे सम्बधित अधिकारियो का रवया भी कठोर हो गया था जिससे व्यापारी लोग विरक्त हो गये थे। उस समय एक व्यापारी न मुझस आकर कहा—"हमारे पूवज प्रथम सीमान्त चु गी से सामान की सनद् लकर बल के सीग पर बाध देते थ।[10] उसके बाद राह म पडने वाली चु गी चौकियो पर किसी प्रकार की रोक टोक नही की जाती थी। मजिल पर पहुचने के बाद सनद् को खोलकर देखा जाता था और तद्नुसार कर चुका लिया जाता था। पर तु इस समय माग म प्रत्यक नगर की चु गी चौकी पर कर दना पडता है। इसम सन्देह नही कि बढे हुए करो का राज्य की प्रजा पर बुरा प्रभाव पडा। मेवाड के पतन के पहले राणा क साथ प्रजा का जितना शुद्ध और सम्मानपूण व्यवहार था उसको पुन लान म बहुत समय लग जायगा।

प्राचीन समय में मेवाड़ राज्य में बहुत सी खानें थी, जिनसे राणा लोगों को प्रतिवर्ष लाखों रुपयों की आय होती थी। मेवाड़ के अन्तर्गत जावरा के टिन की खान से बहुत सी चांदी प्रति वर्ष प्राप्त होती थी। उसी से कई लाख रुपयों की आमदनी हो जाती थी। चम्बल सलग्न जो क्षेत्र पहले मेवाड़ के अधीन था, उसमें बहुत सा लोहा तांबा और सीसा उत्पन्न होता था। राज्य की कुछ खानों से कीमती पत्थर भी निकाला जाता था। उससे भी राज्य को धन मिलता था। परन्तु इस समय ये सब खानें नष्ट हो गई है और राणा लोगों का उनसे लाभ उठाने के उपायों पर विशेष ध्यान नहीं है।

बरार— बरार शब्द का अर्थ है कर। इस राज्य में प्रजा से वसूल किये जाने वाले कर सामान्यतः इस प्रकार हैं— गनीम बरार"—अर्थात् युद्ध सम्बन्धी कर। घरगुती बरार अर्थात् घर का कर (गृह कर)। 'हल बरार' अर्थात् कृषि कर। यौता बरार' अर्थात् विवाह कर। इसी प्रकार के अन्य बहुत से कर इस राज्य में प्रचलित हैं। इस समय युद्ध सम्बन्धी कर प्रजा से वसूल नहीं किया जाता। इससे पहले सदा ही युद्ध विग्रह उपस्थित रहते थे इस कारण उस समय में अर्थ संग्रह राणा के लिये अत्यन्त आवश्यक हो गया था।

कृषकों से जो कर वसूल किया जाता था उसका निश्चय खेती में पैदा होने वाली फसलों के अनुमान पर किया जाता था। खेती में जिसकी जैसी पैदावार होती थी उसको उसी हिसाब से कृषि कर चुकाना पड़ता था। पिछले दिनों में युद्ध कर की भी यही स्थिति थी। खेती की पैदावार के हिसाब से ही युद्ध कर वसूल किया जाता था। राज्य के पहाड़ी इलाकों में कर वसूली की व्यवस्था इससे भिन्न है, क्योंकि इन इलाकों में कृषि पैदावार का अनुमान लगाना कठिन काम था। इसलिये इन इलाकों में भूमि की उर्वरता के आधार पर कर लगा दिया जाता है।

कुछ विशेष अवसरों पर भी राणा को आर्थिक लाभ होता है। किसी सामन्त अथवा सरदार के नवीन अभिषेक अथवा किसी सरदार के पट्टे परिवर्तन के समय सामन्त या सरदार लोग जो राणा को नजराना देते हैं वह सामान्य होने पर भी आय का एक साधन कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भूमिया (भोमिया) सरदार गण निर्धारित नियमानुसार वार्षिक अथवा त्रवार्षिक राजधन देते हैं। नियमों को भंग करने वाले और दूसरे अपराधियों के ऊपर जो आर्थिक जुर्माना किया जाता है, वह भी आय में गिना जा सकता है। राणा लोग अपराधी के पकड़ने और दण्ड देने में विशेष यत्न करें तो इस आय के अधिक वृद्धि होने की सम्भावना है।

राणा लोग अपराधियों को अधिक कठोर दण्ड देने में अनिच्छा दिखाते हैं। प्राणदण्ड के स्थान पर उनको आर्थिक दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है। इसका

कारण यह भी है कि पहाडो पर रहने वाले जगली लोग प्राय अधिक अपराधी होते हैं और वे शारीरिक दण्ड की अपेक्षा आर्थिक दण्ड से अधिक घबराते है।

खड लकड—यह भी एक प्रकार का कर है और इसके द्वारा राज्य को काफी आय हो जाती है। काष्ठ और खड का यह कर राज्य मे बहुत पहले से चला आ रहा है। जिस समय राणा लोग अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान करते थे, उस समय राज्य का प्रत्येक मनुष्य राणा की सेना के व्यवहार के लिए काष्ठ और खड दिया करता था। कि तु बाद मे यह प्रथा यहा तक बढी कि बिना किसी युद्ध के यह कर लिया जाने लगा। खड लकड का अभिप्राय रसद से है। युद्धकाल मे प्रत्येक गाँव और नगर से सेना के लिए रसद एकत्र की जाती थी। रसद म खाद्य पदार्थो क अलावा अन्य बहुत सी चीजें भी वसूल की जाती थी। यह प्रथा अब भी कर रूप म प्रचलित दखी जाती है। फ्रास की साम त शासन रीति म भी यह प्रथा इसी प्रकार के कारणा से प्रचलित हुई थी और अ त म राजा लोग उसके बदले मे धन लन लग, यह बात हाल के इतिहास से भलीभाति प्रकट है। हालम न अपने ग्र थ म लिखा है कि फ्रास का राजा, जब राज्य म भ्रमण को जाता था और किसी साम त के अधिकृत क्षेत्र मे पहुँचता था तो साम त उसकी सेवा मे उपस्थित होकर सम्पत्ति क साथ घोडा और बहुमूल्य पदाथ उपहार मे देता था। इस अवसर पर साम त जो कुछ खच करता था, उसे वह अपन कृपका और व्यवसायियो से वसूल कर लेता था।

मवाड म मदिरा, अफीम और दूसरे मादक पदार्थो पर कर लिया जाता है। इन करो के द्वारा भी राणा लोगो को विशेष आय होती है।

व्यवस्था और विचार विभाग—जिस समय मेवाड ने धन, मान, गौरव व वीरता मे बहुत ऊँचा स्थान पाया था और मेवाड के प्रत्येक प्रा त मे पूणरूप से शा ति थी, उस सुखमय समय म राणागण व्यवस्थापक सभा म चार मन्त्रियो और उनके सहकारी मन्त्रिया के साथ बैठकर विचार विमश करते थे और राज्य की वतमान समस्याओ को हल करने के उपाय खोजा करते थे। केवल दीवानी अधिकारिया के सिवाय सनिक साम तमण्डली भी उस व्यवस्थापक सभा म प्रवश नही कर सकती थी।

मवाड क पतन की दशा म, जिस समय राज्य के चारा ओर ही विशृ खलता हो रही थी शासन यवस्था बहुत दुबल हो गई थी, सवत्र अशा ति फल रही थी, उन दिना म व्यवस्थापन और विचार विभाग का काय प्राय रुक गया था। कि तु स तोष का विषय है कि स्थानीय प्रयोजन सम्ब धी सब व्यवस्था के काय उन स्थानो की स्वयसिद्ध विचारालय पचायत मण्डली द्वारा नियमित रूप से सम्पादित होत थे। अशा ति के इन दिनो म भी राज्य का प्रत्येक विभाग अपना काय कर रहा था।

सीमा पर जो छावनी बनी हुई थी, उनम अधिकारी बठकर अपना काम करत थे और सीमा की रक्षा के लिए व सदा सतक रहते थ।

मवाड म कर वसूली का काय बहुत ही सावधानी के साथ चल रहा था। कही पर राज्य कमचारियो क द्वारा किसी प्रकार का उत्पात न हो, सबल लोग निबलो को सता न सके नीच और उद्दण्ड लाग अनुचित काय न कर सके, इन सभी बातो के प्रति राज्य क अधिकारी हमशा सतक रहत थ। राज्य के बहुत से काय प्रजा के प्रतिनिधियो द्वारा सम्पादित किय जात थ। राज्य का स्थानीय अधिकारी इन लोगो को चबूतर अर्थात् न्यायालय म बुला भेजता था और व लोग उसे न्याय सम्बधी तथा अय कार्यो म भी सहयोग प्रदान करते थे। इन्ह 'चोटिया' (जूरी) कहा जाता था। प्रत्येक नगर और ग्राम से प्रजा द्वारा प्रतिनिधि स्वरूप एक एक मनुष्य 'चोटिया' चुना जाता है।

राजस्थान के सभी बडे बडे नगरा म निर्णायक समितियाँ बनी हुई थी। उन ममितियो का जो प्रधान चुना जाता था, वह 'नगरसेठ' कहलाता था। नगर व ग्राम के विशेषमाय पुरुष ही प्राय इस पद पर चुने जाते थे। साधारणत पटल और पटवारी लोगा म स चोटिया' चुन जात थे। प्रजा के इन प्रतिनिधियो के साथ बठकर नगर सेठ राज्य की समस्याओ का निणय किया करता था। जिन दिनो म फ्रास मे साम त शासन पद्धति थी वहा भी इससे मिलती-जुलती व्यवस्था प्रचलित थी। वहाँ पर भी स्कावनी' नामक निर्णायक और अय सदस्यो का चुनाव प्रजा के द्वारा ही किया जाता था। निर्णायक अपने सहकारी सदस्यो की सहायता से राज्य के कार्यो की यवस्था करता था। राजस्थान म इस प्रकार की सस्थाओ के द्वारा राज्य के कार्यो का सचालन होता था। उनके बनाये हुए नियमो के आधार पर बडे बडे ग्रामो म पचायतें काम करती थी।

य सस्थाएँ अपना काय करने के लिए चबूतरो पर बठके करती थी। चबूतरे कवल खालसा जमीन अर्थात् राणा के अधिकृत भूखण्ड मे ही स्थापित होते थ। किसी साम त क अधिकृत क्षेत्र म इस प्रकार के स्थान नही चुने जाते थे। साम त लाग अपन अधिकार की भूमि का स्वत त्र रूप से उपभोग करते थे। उसमे वे राणा के हस्तक्षप को अपन लिए कलक रूप समझत थे। यद्यपि साम त लोग अपने को राणा क अधीन समझते है फिर भी व अपन अधिकार क्षेत्र को स्वतन्त्र मानत हैं।

रोजाना—साम ता म स कोई किसी प्रकार क अपराध म अपराधी होन पर राणा की आज्ञा का अनादर करन पर अथवा राणा के बुलाने पर दरबार म होन म विलम्ब करन पर अथवा इस प्रकार के किसी काय करन पर

राणा का दूत दस बीस अश्वारोही अथवा पदाति सनिको के साथ उस साम त की जागीर म साम त के पास जाता था और राणा के हस्ताक्षर और मोहर अकित आदेश पत्र साम त क हाथ म दता था और अपने तथा अपने साथियो के लिए रोजाना अर्थात् रसद मागता था। अपराधी साम त जितने दिन तक राणा की आज्ञा का पालन नही करता था, उतन दिन तक उक्त दूत अपने सनिक सहित साम त के निवास स्थान पर रहता था और उसे प्रतिदिन रोजाना मिलता था। चूँकि कई बार साम त लोग राजसभा म उपस्थित होन मे देर करते है, उस स्थिति म राणा को इसी उपाय का सहारा लेना पडता है, किन्तु इससे कभी कभी अत्यन्त शाचनीय काण्ड हो जाते है और साम तो का कष्ट भागना पडता है।

साम ता क जागीरी क्षेत्र म राणा को अथवा राज्य के किसी विभाग के अधिकारियो को हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है। अपन क्षेत्रो की व्यवस्था वे स्वय करत हैं। साम ता के क्षेत्रा म भी पचायत प्रणाली भलीभाति प्रचलित है। देवगढ के साम त न अपन अधीन सरदारा के निकट एक समय दृढ रूप से प्रतिज्ञा की थी कि, "हम तुम लोगा के म तव्य और परामश के बिना कभी किसी साधारण विषय म हस्तक्षेप, किसी प्रकार का अनुष्ठान व विधि व्यवस्था प्रचलित नही करेंगे।"

राज्य म किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न होन पर अथवा किसी बाह्य आक्रमण क समय, मवाड के सभी साम त राणा की सभा मे जाकर अपना अपना म तव्य प्रकट करत हैं और राणा भी एकत्रित साम तमण्डली के परामश के अनुसार ही आग की कायवाही का निणय करता है। साम ता के परामश के बिना अथवा उनके निणय क विरुद्ध राणा को ऐसे अवसरा पर कुछ भी करन का अधिकार नही है। मवाड पर जब कोई राजनीतिक विपदा आती है ता राणा की सभा म पहुँचने क पहिल प्रत्येक साम त अपनी अपनी सभा म उसका विश्लेषण करके यह निश्चय कर लत हैं कि सभा म उन्ह किस प्रकार का परामश देना है। अधिकाश अवसरो पर साम त यही करत हैं और इसक अन तर राणा की सभा म जाकर युक्ति और प्रमाण सहित अपन विचार प्रस्तुत करत हैं।

एसे अवसरो पर यदि राणा की तरफ स किसी साम त को आमन्त्रित नही किया जाता अथवा उस नहीं बुलाया जाता ता वह साम त अपन का अपमानित समझता है। राणा अपन राज्य की व्यवस्था क लिए जिस प्रणाली स काम करता है साम त लाग भी उसी रीति पर अपन-अपन क्षेत्रा का प्रब ध करत हैं। सामन्त क अपन कुछ प्रमुख कमचारी हात है। उसकी अधीनता म भी कुछ सरदार रहन है और उसकी सभा म भी पण्डित कवि और प्रजा क कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित रहत है। य सभी लाग साम त का परामश दत रहत है। जिस प्रकार राणा अपन

मन्त्रियो और सभा के सदस्यो के साथ बठकर राजकीय समस्याओ का निर्णय करता है ठीक उसी प्रकार साम त लोग भी अपन अधीन सरदारो तथा सभा के सदस्यो के साथ बठकर विचार विमर्श के बाद ही किसी निर्णय पर पहुँचते है। इस प्रकार के विचार विमर्श मे राणा के विचारो को प्राय महत्त्व दिया जाता है।

सैनिक कार्य—युद्ध और शांति के दिनो म मेवाड प द्रह हजार अश्वारोही सेना जुटा लेता था। ये सनिक राज्य के प्रत्येक क्षेत्र से आकर एकत्र होते थे और युद्धभूमि मे राणा के साथ जाते थे। इन सनिको को राणा की तरफ स वतन नही मिलता था बल्कि सनिक सेवा के बदले म केवल भूमि दी जाती थी। यही साम त शासन प्रणाली का मूल उद्देश्य है। प्रथम श्रेणी के साम त जिस प्रकार अपनी अपनी जागीर की आय के अनुसार पचास से अधिक सनिक युद्ध के लिए उपस्थित करते हैं उसी प्रकार सामा य भूवृत्ति प्राप्त मनुष्य केवल एक अश्वारोही उपस्थित करने को बाध्य है। बडे साम त जिस प्रकार जागीर के बदले मे राणा की सेवा म सना भेजने का बाध्य है, वे स्वय भी अपन अधीन सरदारो को भूवृत्ति (छोटा भूमिक्षेत्र) देकर उनसे सनिक जुटा लेत है।

जागीर के बदले म साम तो का कितनी सेना भेजनी होती थी, सबके लिए एक समान नियम नही था। अलग अलग जागीरदारो का भिन्न भिन्न सख्या के अनुसार ही सनिक भेजने पडते थे। कि तु एक हजार रुपये की वार्षिक आय पर कम से कम दो और आम तौर से तीन सैनिक सवारो के रखने का नियम था। विशेषकरके जिस समय जागीर अथवा भूमि दी जाती है, उस समय की व्यवस्था के अनुसार एक हजार रुपये की वार्षिक आमदनी पर किसी किसी को तीन अश्वारोही और तीन पदल सनिक रख सकने का अधिकार दे दिया जाता है। इगलण्ड के राजा विलियम ने जिस समय अपना राज्य साठ हजार भागो म विभक्त किया था, उस समय उसके प्रत्यक भाग का सेना के लिए दो सौ रुपये देने पडते थे। जो भाग सना नही दे सकता था, उसे उपरोक्त धन देना होता था।

इस समय इगलण्ड मे साम त शासन रीति नही है। पर तु जिस समय वहाँ यह रीति प्रचलित थी, उस समय साम तो की सेना पर राजा सब समय अपनी क्षमता नही चला सकते थे। प्रत्यक सनिक एक वष म केवल चालीस दिन राज्य की सेवा म उपस्थित रहता था। राजा के बुलाने पर उसे स्वदेश अथवा विदेश म जाकर युद्ध करना पडता था। इस विषय म राजपूत राजा इगलण्ड के राजाओ की अपेक्षा अधिक सुविधा का उपभोग करते थे।

राजा के प्रति साम तो को कुछ नियम पालन करने पडते हैं। मेवाड के साम तो को वर्ष भर म कुछ दिन राणा की राजधानी उदयपुर म रहना पडता है। सभी साम तो को एक साथ ऐसा नही करना पडता है। इसके लिए सभी सामन्तो

मे समय का विभाजन कर दिया गया है। एक वार श्राय हुए साम तो का निर्धारित समय समाप्त होन पर दूसर कई साम त उसी प्रकार अपनी सेना सहित आकर पूर्वोक्त काम म नियुक्त हो जाते है और पहले वाले अपनी अपनी जागीरो को लौट जाते हैं। राज्य मे कुछ युद्ध सम्बन्धी उत्सव मनाय जाते है। ऐस अवसरो पर राणा की आज्ञानुसार सभी साम त राजधानी म आते है। किसी शत्रु के साथ युद्ध उपस्थित होन पर सब सामन्त सेना और रसद सहित उपस्थित होते है। विदेश अथवा बहुत दूर के स्थान म युद्ध की आवश्यकता होन पर राणा, साम ता के सैन्य दलो के लिए कुछ रसद अपनी तरफ से भी देता है।

साम तो को अर्थदण्ड व पदच्युति—जिस समय म यूरोप म साम त शासन का रीति स शासन काय होता था, उस समय राजा की आज्ञा पालन न करन पर राजा उनके ऊपर अर्थदण्ड करते थे। मवाड म भी ऐसी ही व्यवस्था थी।[11] साम तो को जागीर अथवा भूमि देते समय जा इकरारनामा लिखा जाता था, उसम इन बातो का स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाता था। उसक अनुसार किसी साम त द्वारा अनुशासन भग करने, बुरा आचरण या गर्वित व्यवहार करन पर भारी अर्थदण्ड देना पडता था। राणा का यह भी अधिकार था कि अपने कत्तव्य का पालन न करन वाल साम त की सम्पूर्ण जागीर अपने अधिकार मे ले ले। राज्यो के शासक साम तो को पदच्युत करके उनकी जागीरे छीन लेने की अधिक इच्छा रखते हैं। पर तु साम त लोग राजकाय के किसी अश से निष्कृति पाने के लिए अर्थदण्ड दने को तो प्रस्तुत रहते है, पर तु अपनी जागीर छोडने की किसी प्रकार की इच्छा नही करत। कभी कभी तो अपनी पतृक जागीर की रक्षा के लिए वे अपन प्राणा का माह छोडकर विद्रोह तक कर बैठते है।

जागीरदारी प्रथा की कमिया—सम्पूर्ण राजस्थान म केवल राजाओ के चरित्र के ऊपर ही राज्य की उन्नति और मगल निभर है। प्रचलित शासन रीति के केवल वही मूलदड है। विधि के अ या य विखरे हुए अशा को यथोचित स्थान म रखन और काय म नियाग करन की शक्ति केवल वही रखत है। राजा यदि क्षण मात्र भी अपन कत्तव्य स मुँह मोड ल तो सब रीतियें अपनी इच्छानुसार छिन भिन्न होकर गिर पडे। ऐसे समय म अशान्ति, उपद्रव, अत्याचार सब ही प्रबल वग से दिखाई दन लग। इस प्रथा की यह सबसे बडी कमजोरी है। इस प्रथा म इस प्रकार की अनक कमियाँ अथवा त्रुटिया है। इसक द्वारा कभी कोई राज्य उन्नति नही कर सका। राजपूत राज्या म इस प्रथा क सम्ब ध म जा कमियाँ पाई जाती है व यूरापीय राज्या की साम तप्रथा म भी विद्यमान थी।

मवाड म चूडावत और शक्तावत साम त चिरकाल स एक दूसर क प्रति शत्रुता का आचरण करते रह। उनके आपसी वर-विरोध के कारण राणा को

शक्तियां दुर्बल होती गई। उन पर राणा का अंकुश पूरी तरह से काम न कर सका, क्योंकि अन्य वंशों (तीसरी श्रेणी) के सामन्तों में भी राणा की अधीनता के बारे में संशयपूर्ण आचरण बना रहा। ऐसी स्थिति में चूंडावत और शक्तावत सामन्त कभी कभी राणा की आज्ञा अमान्य करके एक दूसरे पर आक्रमण एवं अत्याचार के द्वारा राज्य में अशान्ति उपस्थित कर देते थे। ऐसे में बाह्य आक्रमणों का सामना करने में बलहीन राणा समर्थ नहीं हो पाता था।

जिस समय मुगल सम्राट जहांगीर[12] मेवाड की प्राचीन राजधानी चित्तौड और दुर्ग पर अधिकार करके राणा को मेवाड की पश्चिम प्रान्त के पहाडी प्रदेश और गहन जंगल की तरफ भाग जाने के लिए विवश कर दिया था, उस समय राणा ने सब सामन्तों को एकत्र कर खोई हुई भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए विचार विमर्श किया। शत्रु के विरुद्ध युद्ध अभियान के समय अब तक चूंडावत वंश के सामन्त ही सबसे आगे सेना सहित गमन करता था। सेना सहित सबसे आगे जाना राजपूत जाति में महासम्मान समझा जाता था। मेवाड में इसे 'हरावल का अधिकार" कहा जाता था। उस अवसर पर शक्तावत सामन्तों ने राणा से हरावल का अधिकार दिये जाने का अनुरोध किया। वंश अन्यान्य वंशों के सामन्तों की अपेक्षा शक्तावत सामन्त अधिक बलशाली थे और वे इस सम्मान के उचित पात्र भी थे। परन्तु उनका अनुरोध सुनते ही चूंडावत सामन्तों ने सूचित कर दिया कि हम लोग परम्परा से हरावल (अग्रगमन) का सम्मान प्राप्त करते चले आये हैं और इस बार भी हम लोग सेना के अग्रभाग का नेतृत्व करेंगे। यह विवाद इस सीमा तक बढ गया कि दोनों पक्षों ने तलवार के द्वारा इसका निर्णय करने का निश्चय कर लिया। परन्तु बुद्धिमान राणा ने यह कहकर विवाद को शान्त किया कि "अन्तला दुर्ग"[13] नामक जिस स्थान का मन की बात चल रही है, जो पक्ष अन्तला दुर्ग में पहले प्रवेश करेगा, वही वंश हरावल को प्राप्त करने का अधिकारी माना जायगा। राणा के निर्णय को सुनकर दोनों वंश के सामन्त अपनी सेनाओं सहित अन्तला दुर्ग पर अधिकार करने के लिए चल पडे। अन्तला उदयपुर से पूर्व की ओर नौ कोस की दूरी पर है। वहाँ से चित्तौड की तरफ एक पुराना मार्ग गया है। अन्तला का दुर्ग ऊँचे भूखण्ड के ऊपर बना हुआ है और उसके चारों ओर अभेद्य पत्थर का बना ऊँचा परकोटा है और उसके भीतर अनेक महल बने हुए हैं। दुर्ग के नीचे एक नदी बहती है। दुर्ग के भीतर दुर्ग रक्षक का निवास स्थान भी मजबूत परकोटे से युक्त है। केवल एक द्वार में होकर ही उस दुर्ग में प्रवेश किया जा सकता था।

शक्तावतों ने रात्री के साथ अन्तला दुर्ग पहुँचने की योजना बनाई और तदनुसार वे लोग सूर्योदय के पहले ही अपनी मंजिल तक पहुँच गये। उनके आगमन की सूचना दुर्ग में तैनात मुसलमान सैनिकों को मिल गई। वे लोग भी शत्रु का सामना करने के लिए दुर्ग के ऊपर एक सुरक्षित स्थान पर आ जमे।

चू डावत लोगो ने एक दूसरे माग से ग्र तला पहुँचन की योजना बनाई। पर तु ग्रागे जान पर वह रास्ता पानी से भरा हुग्रा मिला। ऐसे मे वे वापस लौटने की बात सोच रहे थे कि उ ह एक स्थानीय गडरिया मिल गया जिसने उ ह ग्र तला जाने का सही माग बतला दिया। इसके बाद चू डावत बडी तेजी के साथ ग्र तला की तरफ बढे। चू डावत युद्धकला मे शक्तावतो स ग्रधिक ग्रनुभवी थे। ग्रत वे ग्रपने साथ ऊँची ग्रौर मजबूत सीढिया तथा ग्राक्रमण के लिए ग्रावश्यक ग्र य सामान भी लेकर गय थे। जिस समय शक्तावत लोग दुग के प्रवेश द्वार को ताडने की चेष्टा मे लगे थे ठीक उसी समय चू डावत भी जा पहुँचे ग्रौर दुग पर ग्राक्रमण कर दिया। चू डावत सरदार ने परकोटे के सहारे ऊँची सीढी लगवाई ग्रौर ग्रपने साथियो के साथ सीढी पर चढकर दुग की प्राचीर पर पहुँचने का निश्चय किया। उसी समय शत्रु सनिको द्वारा दागा गया एक गोला चू डावत सरदार को लगा जिससे वह सीढी से नीचे गिर पडा ग्रौर गिरते ही उसकी मृत्यु हो गई।

दूसरी तरफ शक्तावत लोग उ मत्त हाथियो की सहायता से दुग का द्वार तोडने की चेष्टा म लगे हुए थे। द्वार के दरवाजो मे बडी बडी तीक्ष्ण कीलें लगी हुई थी जिनकी वजह से हाथी ग्रागे नही बढ पा रहा था। शक्तावत सरदार ने सोचा कि कही विलम्ब हो गया ग्रौर चू डावतो ने दुग म पहले प्रवेश कर लिया तो हरावल का ग्रधिकार नही मिल पायेगा। ग्रत शक्तावत सरदार ने ग्रपने प्राणो का मोह छोडकर दरवाजे की तीक्ष्ण कीलो पर ग्रपना शरीर लगा दिया ग्रौर महावत को हाथी ग्रागे बढाने का ग्रादेश दिया। हाथी की जोरदार टक्कर से दुग का फाटक टूट गया ग्रौर शक्तावत सनिक मारकाट करते हुए ग्रागे बढे। शक्तावत नेता हाथी की ठोकर ग्रौर लाहे की नुकीली कीलो के लगने से क्षत विक्षत होकर मर गया। इस ग्रपूव बलिदान से बाद भी शक्तावतो को हरावल का ग्रधिकार नही मिल पाया। क्योकि दूसरी तरफ चू डावतो के नेता के मरते ही, एक ग्र य चू डावत सरदार देवगढ के साम त ने नेतृत्व सम्भाल लिया था। उसने ग्रपने मृत नेता का शरीर चादर म लपट कर ग्रपनी पीठ पर बाधा ग्रौर हाथ म भाला लेकर सीढी पर चढ गया। दुग के ऊपर चढकर उसने ग्रपने सनिका के साथ मुसलमानो म घमासान युद्ध किया ग्रौर जिस समय शक्तावत सनिक जय घोष के साथ दुग म प्रवेश करन वाल ही थे देवगढ का सामन्त ग्रपने नेता के मृत शरीर को दुग के भीतर फेंक चुका था ग्रौर वह ग्रपने सनिको सहित दुग म प्रवेश कर गया था। इस प्रकार चू डावतो न भी ग्रपूव पराक्रम का प्रदशन कर हरावल का ग्रधिकार ग्रपने वश म कायम रखा।

वशगत सगठन ग्रौर प्रतिद्वंद्विता किसी भी देश ग्रौर राज्य क लिए कल्याण कारी नही हाते। ग्रापसी प्रतिस्पर्धा से सदा राज्यो का पतन हुग्रा है। शक्तावतो ग्रौर चू डावतो के ग्रापसी द्वेष का जो उदाहरण ऊपर दिया गया है, राजस्थान क इतिहास म केवल यही एक घटना नही है, किन्तु ऐसी घटनाए राजस्थान के प्रधान प्रधान

राज्यों में विशेषकर मारवाड़ के साहसी राठौड़ों में सैकड़ों बार हो गई है। मेवाड़ का इतिहास पढ़कर कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि अगर वहाँ शक्तावतों और चूंडावतों में पारस्परिक विद्वेष न रहा होता तो मेवाड़ की इतनी दुर्दशा न हुई होती। शक्तावत लोगों की संख्या बहुत कम है, किन्तु वे लोग चूंडावतों की अपेक्षा अधिक साहसी और पराक्रमी हैं। दोनों वंशों के लोग मेवाड़ राज्य के प्रमुख योद्धा थे। परन्तु राज्य में सबसे ऊँचा सम्मान तथा प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए दोनों की प्रतिद्वंद्विता ने मेवाड़ राज्य को ही कमजोर बना दिया।

बहुत पहले से भारत के विभिन्न राज्यों में सामंत शासन प्रणाली रही है और जब तक यह प्रणाली सही ढंग से चली, निःसंदेह ही यह शैली शुभफलदायक रही थी। किन्तु राज्य की केन्द्रीय शक्ति के निर्बल पड़ने पर अथवा सामंतों के अनुशासन भंग करने पर सामंत शासन प्रणाली का मूल सिद्धांत निर्बल पड़ जाता है और ऐसी अवस्था में यह प्रणाली किसी भी राज्य के लिए उपयोगी साबित नहीं होती। सामंत शासन प्रणाली में एक त्रुटि और भी भयानक है। जब एक व्यक्ति का अधिनायकवाद लाखों लोगों की पराधीनता का कारण बन जाता है, वहाँ पर शासन की यह प्रणाली निश्चित रूप से किसी समय भयानक सिद्ध होती है। इस प्रकार की कुछ अन्य त्रुटियाँ भी हैं जो इस प्रथा को अयोग्य बनाने का काम करती हैं।

अपने प्रभुत्व और सामर्थ्य की रक्षा के लिए राजस्थान के राजाओं को दिल्ली के मुगल सम्राटों की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा था। राजपूत राजाओं ने मुगल बादशाहों को नाममात्र को अपने अपने राज्य सौंप कर उनसे फिर सनद् द्वारा राज्य ग्रहण किये। जितने राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी उन सभी को यही करना पड़ा। चूँकि वे अपने राज्य शासन के लिए मुगल बादशाह से सनद् प्राप्त करते थे इसलिए उसे अपना सर्वोपरि स्वामी मान लेते थे। राजपूत राजाओं को सनद् देते समय मुगल बादशाह उन्हें हाथी, घोड़ा, मूल्यवान वस्त्र और 'महाराज' अथवा 'राणा' की उपाधि के साथ सम्मान सूचक मनसब प्रदान करते थे। अधीन राजा लोग बादशाह को अपने राज्य की तरफ से एक निश्चित धनराशि नजराने के तौर पर दिया करते थे।

इस अधीनता के लिए बादशाह और राजाओं के बीच एक संधि पत्र लिखा जाता था, जिसके अनुसार सम्राट के बुलाने पर निर्धारित संख्या में सेना सहित प्रत्येक राजा को राजधानी अथवा युद्धक्षेत्र में उपस्थित होना पड़ता था। मुगल सम्राट अपने अधीन प्रत्येक राजा को राजपताका जयघोषणा का बाजा और अन्य राज चिह्न प्रदान करता था। जिनका राजा लोग अपनी अपनी सेना के साथ व्यवहार किया करते थे।[14] इन सब लक्षणों द्वारा हम यह देखते हैं कि मुगल शासनकाल में सामंत शासन प्रणाली प्रचलित थी।

यद्यपि हुमायू न भी कई राजपूत राजाग्रा को ग्रपन ग्रधीन किया था, पर तु ग्रकबर की भाँति उसे सफलता नही मिली । ग्रकबर न ग्रपनी सूझबूझ के सहारे राजस्थान के लगभग सभी राजाग्रा को ग्रपनी ग्रधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया था । उसन वहुत विचार के वाद निश्चय किया था कि राजपूत राजाग्रो के ऊपर प्रताप विक्रम दिखान ग्रौर कठोर शासन करन से केवल बुरा फल ही नही उत्पन्न होगा, ग्रपितु महाविपत्ति म पडने की सम्भावना है । इस कारण स उसन देशी राजाग्रा को शासन मे कुछ हिस्सा देकर मुगल साम्राज्य का समथक बनाया ।

ग्रकबर न मुगल रक्त के साथ शुद्ध राजपूत रक्त के मिलान की विशेष चेष्टा की । उसका विचार था कि इस प्रकार के वैवाहिक सम्ब ध के बाद राजपूत वीरागना के गभ से उत्पन्न मुगल सम्राट के ग्रौरस पुत्र की ग्रधीनता राजपूत लोग जिस स्नेह भाव से करेंगे वसी मुगल सम्राटा की कभी नही करेंगे । उन दिना मे ग्रामेर का शासन बहुत निबल था । ग्रामेर का राज्य दिल्ली के समीप था । इसीलिए ग्रामेर न ग्रकबर के सामने ग्रात्म समपण कर दिया था । सबसे पहले ग्रामर के राजा भगवानदास न हुमायू के साथ ग्रपनी लडकी का विवाह किया था ।[15] उसक बाद तो मुगल खानदान मे ग्रपनी लडकी देने की बात राजपूत राजाग्रो के लिए साधारण बात हो गई । केवल मेवाड के राजवश न सम्राट ग्रकबर का मनोरथ पूण नही किया था ।

सम्राट जहाँगीर का ज म एक राजपूत राजकुमारी से हुग्रा था । उसका बेटा खुसरू, शाहजहा कामबख्श ग्रौर ग्रौरगजेब का बेटा ग्रकबर—ये सभी राजपूत राजकुमारिया से पदा हुए थे ।[16] ग्रौरगजेब को सिहासन से उतार कर राजपूत राजाग्रो न उसके लडके ग्रकबर का सिहासन पर बठाने का प्रयास किया था । राजपूत राजाग्रा क साथ मुगलो का ववाहिक सम्ब ध लम्बे समय तक चलता रहा । जब मुगल साम्राज्य निबल पड गया था उन दिनो मे भी सम्राट फरूखसियर न मारवाड के राजा ग्रजीतसिह की लडकी के साथ विवाह किया था ।[17]

ग्रकबर के समय म उसके ग्रधीन 416 सेनापति थे, जो 200 से लकर 10 000 ग्रश्वारोही सनिको पर ग्रधिकार रखते थे । इन सेनापतियो म 47 राजपूत थे जिनके ग्रधिकार म 53,000 ग्रश्वारोही सनिक थे । सम्पूण मनसबदारा के ग्रधीन ग्रश्वारोही सनिका की सख्या 5,30,000 थी, एसा ग्रबुलफजल न ग्रपन ग्र थ म लिखा है। उस ग्र थ से यह भी पता चलता है कि ग्रकबर के ग्रधीन म पदाति सनिका की सख्या चालीस लाख थी ।

47 राजपूत मनसबदारा म 17 क ग्रधिकार म एक हजार स पाँच हजार तक ग्रश्वारोही ग्रौर शेप 30 क ग्रधिकार मे 500 से 1000 तक ग्रश्वारोही थ ।

आमेर मारवाड, बीकानेर, बूंदी जसलमेर बुंदेलखण्ड और सिखावत के राजा लोग एक हजार से अधिक अश्वारोहियो के मनसवदार थे। आमेर के राजा के साथ ववाहिक सम्बंध होने के कारण उसे 5 000 अश्वारोही सनिको का मनसब मिला था। मारवाड का राठौड राजा उदयसिंह एक हजार अश्वारोहियो का मनसवदार था, किन्तु मारवाड के राजवश की शाखा म उत्पन्न बीकानेर के रायसिंह को चार हजार अश्वारोहिया का मनसब मिला था। चंदेरी, करौली, दतिया के स्वतन्त्र राजा और कुछ दूसरे राजा तथा सिखावत का राजा निम्न श्रेणी के सनापति थे और उन्हे 400 से 700 तक अश्वारोहिया का मनसब प्राप्त था। इसी श्रेणी मे शक्तावत वश के सरदार भी थे। राणा प्रताप के साथ झगडा हो जाने के बाद उसका भाई शक्तिसिंह अपने सरदारो के साथ अकबर की सेवा म चला गया था।

राजपूतो के साथ ववाहिक सम्बंध कायम करके अकबर ने दो लाभ उठाये। प्रथम, इससे राजपूतो के मनोभावो से उसके विदेशी होने का भाव दूर हो गया और मुगलो के साथ उसकी आत्मीयता बढी। द्वितीय उस आत्मीयता के कारण उनकी सेना सम्राट के काय साधन म नियुक्त हुई।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहा ने जिस उदार नीति का आश्रय लकर देशी राजा और साधारण प्रजा के हृदय पर अधिकार कर लिया था, औरंगजेब उस नीति का पालन नही कर पाया। उसने अपने पूवजा की नीति क विरुद्ध पक्षपातपूर्ण शासन आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप हिंदू लोग उसके विरोधी होने लगे। अब तक राजपूतो और हिंदुओ मे मुगल सिंहासन के प्रति जो भक्ति भावना थी, वह लुप्त हो गई। औरंगजेब के बाद फरूखसियर सिंहासन पर बठा।[18] वह अयोग्य और निबल था। उसके शासनकाल मे तमूर के वशजो का साम्राज्य खण्ड खण्ड हो गया।

राजस्थान क राज्यो म किस प्रकार की शासन प्रणाली सबसे श्रेष्ठ हो सकती है इस समय उसकी ठीक ठीक कल्पना करना कठिन है। बहुत समय तक इन सभी राज्यो म सामंत शासन प्रणाली न सर्वांग सुंदर रूप से काय साधन किया है। लगभग आठ सौ वर्षो तक इस देश म मुगलो पठानो और बीच बीच मे थोडा बहुत अन्य लोगो का शासन चला है। उस समय म भी जो प्रणाली काम करती रही, उसमे भी बहुत कुछ आधार सामंत शासन प्रणाली का था।

यदि राजपूत राज्य कुछ और अधिक उन्नति की सीढी पर चढ सकते, यदि राजा अपने राज्य को लुटेरो की लूटमार से अथवा सामंता के अन्यायपूर्ण खालसा भूमि को हडपने के कार्यो से बचा पाते और राज्य की भूमि को उपजाऊ बनाने की चेष्टा करत तथा सामंतगण यदि राज्य की शांति एवं रक्षा और बाह्य आक्रमण स

राज्य की रक्षा के लिए निर्धारित सख्या म सेना एकत्र करते तो यहा के राज्यो मे प्रचलित साम त शासन प्रणाली का पतन न हुआ होता।

यूरोप म जिस समय फ्रास के सम्राट चार्ल्स सप्तम् ने अपनी स्थायी सना नियत करके 'टेल' (टालि) नामक कर प्रचलित किया उस समय फ्रास के साम त विद्रोही हो गये थे। चार्ल्स के पहले यूरोप के किसी राज्य मे किसी राजा की स्थायी सेना न थी साम ता की सेना द्वारा ही सब काय सम्पन्न होते थे। इसी प्रकार की परिस्थितियाँ राजस्थान के राज्यो मे भी समय समय पर पदा हुई। कोटा के राजा द्वारा प्राचीन प्रथा का परिवतन करने पर, वसा ही शोचनीय काण्ड उपस्थित हुआ था। साठ वष पहले मेवाड के कुछ साम तो के विद्रोही हो जाने पर अवसरवादी जातियो ने मेवाड पर आक्रमण किये। उस समय राणा ने अथ की लोभी सि धी सना की सहायता ली, पर तु इसका फल हृदयभेदी रहा। साम त लाग परस्पर एक दूसरे से लडकर क्षीण बल हो गये तथा राणा के ऊपर से सवसाधारण की भक्ति भी उठ गई। जयपुर के राजा ने वेतनभोगी सनिको को रखने की प्रथा पर अधिक ध्यान दिया, कि तु यथासमय वेतन न देने से ये सैनिक काम नही करते थे। वे न तो राज्य की रक्षा ही कर पाये और न दूसरे राज्या म अपना भय उपस्थित कर सके। मारवाड म साम त प्रणाली अधिक मजबूत थी, इस कारण मारवाड के राजा लोग लम्बे समय तक विजातीय सेना की सहायता लेने म किसी प्रकार समय न हो पाये। पर तु मुगल साम्राज्य के पतनो मुख समय म पठाना की सेना मारवाड म घुस आई और मारवाड के राजा तथा साम तो और दूसर राजाओ ने भी अपने आ तरिक झगडा म उसका सहयोग लिया और उसके हाथा अपन राज्यो का विनाश होते हुए देखा। इस प्रकार की परिस्थितियाँ समय समय पर आती रही और परिणामस्वरूप न केवल राजस्थान के राज्य निबल और असमथ हो गय और प्रबल क्षमता वाली जाति न आकर उनके ऊपर अधिकार स्थापन कर लिया।

पट्टावत साम तों के कत्तव्य—इतिहासकार हालम ने लिखा है कि यदि राजा आश्रय दे और साम तगण राजभक्ति दिखाने के साथ साथ अपन कत्त या का पालन कर, ता साम त शासन प्रणाली, एक अच्छी शासन प्रणाली साबित हो सकती है। एक तरफ यह प्रथा साम ता का अपने राजा के लिए निर्धारित कार्यों को पूरा करन के लिए बाध्य करती है तो दूसरी तरफ राजा को अपन साम ता की रक्षा करन क लिए विवश करती है। हालम के लेख स स्पष्ट है कि राजा और साम त परस्पर एक दूसर की सहायता करने के लिए समभाव से बाध्य है। साम त शासन नीति का यह सरल उद्देश्य राजपूतो के द्वारा अति विशद् रूप स दो लिपियो में प्रकाशित हुआ है। मारवाड क अधिपति और साम तो के परस्पर कत्त य कम क्या है, इस विषय म एक लिपि है। दूसरी लिपि म राणा के अधीन देवाड क

ग्रामेर मारवाड बीकानेर, बूंदी जसलमेर बुंदेलखण्ड और सिखावत के राजा लोग एक हजार से अधिक अश्वारोहियो के मनसबदार थे। ग्रामेर के राजा के साथ ववाहिक सम्बंध होने के कारण उसे 5 000 अश्वारोही सनिको का मनसब मिला था। मारवाड का राठौड राजा उदयसिंह एक हजार अश्वारोहियो का मनसबदार था, किंतु मारवाड के राजवश की शाखा म उत्पन्न बीकानेर के रायसिंह को चार हजार अश्वारोहियो का मनसब मिला था। चंदेरी, करौली, दतिया के स्वतन्त्र राजा और कुछ दूसरे राजा तथा सिखावत का राजा निम्न श्रेणी क सेनापति थे और उन्हे 400 से 700 तक अश्वारोहियो का मनसब प्राप्त था। इसी श्रेणी म शक्तावत वश के सरदार भी थे। राणा प्रताप के साथ झगडा हो जाने क बाद उसका भाई शक्तिसिंह अपने सरदारो के साथ अकबर की सेवा मे चला गया था।

राजपूतो के साथ ववाहिक सम्बंध कायम करके अकबर ने दो लाभ उठाये। प्रथम, इससे राजपूतो के मनोभावो से उसके विदेशी होने का भाव दूर हो गया और मुगलो के साथ उसकी ग्रात्मीयता बढी। द्वितीय उस आत्मीयता के कारण उनकी सेना सम्राट के काय साधन मे नियुक्त हुई।

अकबर जहाँगीर और शाहजहा ने जिस उदार नीति का आश्रय लकर देशी राजा और साधारण प्रजा के हृदय पर अधिकार कर लिया था, औरगजेब उस नीति का पालन नही कर पाया। उसने अपने पूवजो की नीति क विरुद्ध पक्षपातपूर्ण शासन ग्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप हिंदू लोग उसके विरोधी होने लगे। अब तक राजपूतो और हिंदुओ म मुगल सिंहासन के प्रति जो भक्ति भावना थी, वह लुप्त हो गई। औरगजेब के बाद फरूखसियर सिंहासन पर बठा।[18] वह अयोग्य और निबल था। उसके शासनकाल म तमूर के वशजो का साम्राज्य खण्ड खण्ड हो गया।

राजस्थान के राज्यो मे किस प्रकार की शासन प्रणाली सबसे श्रेष्ठ हो सकती है इस समय उसकी ठीक ठीक कल्पना करना कठिन है। बहुत समय तक इन सभी राज्यो म सामंत शासन प्रणाली ने सर्वांग सुंदर रूप से काय साधन किया है। लगभग ग्राठ सौ वर्षो तक इस देश म मुगलो पठानो और बीच बीच मे थोडा बहुत अन्य लोगो का शासन चला है। उस समय म भी जो प्रणाली काम करती रही, उसम भी बहुत कुछ आधार सामन्त शासन प्रणाली का था।

यदि राजपूत राज्य कुछ और अधिक उन्नति की सीढी पर चढ सकते, यदि राजा अपने राज्य को लुटेरो की लूटमार से अथवा सामंतो के अन्यायपूर्ण खालसा भूमि को हडपने के कार्यो से बचा पाते और राज्य की भूमि को उपजाऊ बनाने का चेष्टा करते तथा सामंतगण यदि राज्य की शांति एव रक्षा और बाह्य ग्राक्रमण से

राज्य की रक्षा के लिए निधारित सख्या म सेना एकत्र करते तो यहाँ के राज्यो मे प्रचलित साम त शासन प्रणाली का पतन न हुआ होता।

यूराप म जिस समय फ्रास के सम्राट चाल्स सप्तम् ने अपनी स्थायी सेना नियत करके 'टल' (टालि) नामक कर प्रचलित किया उस समय फ्रास के सामन्त विद्राही हा गये थे। चाल्स के पहले यूरोप के किसी राज्य मे किसी राजा की स्थायी सेना न थी साम ता की सेना द्वारा ही सब काय सम्पन्न होते थे। इसी प्रकार की परिस्थितिया राजस्थान के राज्या मे भी समय समय पर पदा हुईं। कोटा के राजा द्वारा प्राचीन प्रथा का परिवतन करने पर, वैसा ही शोचनीय काण्ड उपस्थित हुआ था। साठ वष पहले मेवाड के कुछ साम तो के विद्रोही हो जाने पर अवसरवादी जातिया ने मेवाड पर आक्रमण किये। उस समय राणा ने अथ की लोभी सिधी सना की सहायता ली, पर तु इसका फल हृदयभेदी रहा। साम त लाग परस्पर एक दूसरे से लडकर क्षीण बल हो गये तथा राणा के ऊपर से सवसाधारण की भक्ति भी उठ गई। जयपुर के राजा ने वेतनभोगी सैनिको को रखने की प्रथा पर अधिक ध्यान दिया, कि तु यथासमय वेतन न देने से ये सैनिक काम नही करते थे। वे न तो राज्य की रक्षा ही कर पाये और न दूसरे राज्या म अपना भय उपस्थित कर सके। मारवाड मे साम त प्रणाली अधिक मजबूत थी, इस कारण मारवाड के राजा लोग लम्बे समय तक विजातीय सेना की सहायता लेन म किसी प्रकार समथ न हो पाये। पर तु मुगल साम्राज्य के पतनो मुख समय म पठाना की सेना मारवाड म घुस आई और मारवाड के राजा तथा साम तो और दूसरे राजाग्रा ने भी अपने आन्तरिक झगडो म उसका सहयोग लिया और उसके हाथो अपन राज्यो का विनाश होते हुए देखा। इस प्रकार की परिस्थितियाँ समय-समय पर आती रही और परिणामस्वरूप न केवल राजस्थान के राज्य निबल और असमथ हा गये और प्रबल क्षमता वाली जाति न आकर उनके ऊपर अधिकार स्थापन कर लिया।

पट्टावत साम तो के कत्तव्य—इतिहासकार हालम ने लिखा है कि यदि राजा आश्रय दे और साम तगण राजभक्ति दिखाने के साथ साथ अपन कत्तव्या का पालन कर, ता साम त शासन प्रणाली, एक अच्छी शासन प्रणाली साबित हा सकती है। एक तरफ यह प्रथा साम ता को अपन राजा के लिए निधारित कार्यों को पूरा करन के लिए बाध्य करती है तो दूसरी तरफ राजा को अपन साम ता की रक्षा करन के लिए विवश करती है। हालम के लेख से स्पष्ट है कि राजा और साम त परस्पर एक दूसर की सहायता करने के लिए समभाव से बाध्य है। साम त शासन नीति का यह सरल उद्देश्य राजपूतो के द्वारा अति विशद् रूप से दो लिपिया म प्रकाशित हुआ है। मारवाड क अधिपति और साम ता के परस्पर कत्तव्य क्या हैं, इस विषय म एक लिपि है। दूसरी लिपि म राणा के अधीन देवगढ़ क

सामन्त के सरदारा का स्वत्व निर्णय, दवगढ के सामन्त द्वारा उस स्वत्व म हस्तक्षेप और उसका ग्रन्तिम फल वर्णन किया गया है।

मारवाड के राजा ग्रार साम ता के कत्तव्यो क निर्णय म दोनो को समान महत्त्व दिया गया है। यदि राजा स्वेच्छाचारी वन जाता है और सामन्ता के परामश की उपेक्षा करता है, ता साम त लाग मिलकर उसके विरुद्ध विद्राह करके, उसे सिंहासनच्युत करके, उसके स्थान पर किसी दूसरे को राजा बना सक्ते हैं। साम त लोग कहते है, "महाराज यदि हम लागा को ग्रपने ग्रधीन मे नियुक्त रखकर, हमका प्रसन्न रखेगे तभी वह हमारे स्वामी ग्रौर नेता स्वरूप है, यदि एसा न करें ता वह हमारे समान है ग्रौर हम उनके भ्राता रूप स भू राजस्व के समान ग्रधिकारा हे तथा ग्रधिकार लाभ के लिए दावा भी करत है।" दवगढ के साम त के साथ उनके ग्रधीन सरदारो का जिस समय मनोविवाद हुग्रा, उस समय उन सरदारा न भी मारवाड के साम ता के कहे हुए म तव्य के ग्रनुसार ही कथन किया था।

यूरोप के व्यवस्थाविद् लोग दीघकाल से जो यह प्रश्न करत है कि, 'सामन्त लोग ग्रपने राजा के नेतृत्व मे एकत्र होकर ग्रपन ग्रात्मीय लोगा ग्रथवा दश के स्वामी राजा के विरुद्ध ग्रभियान करने का वाध्य हैं कि नही ? राजपूत जाति ने बडी सुगमता के साथ विख्यात प्रमाणो द्वारा उसकी मीमासा कर दी है। इसस पता चल जाता है कि यूरोप ग्रौर राजपूत राज्यो मे उक्त प्रणाली के विषय म किस प्रकार की भिन्नता है ग्रथवा नही। यदि किसी राजपूत स प्रश्न किया जाये कि, "तुम ग्रपने स्वामी साम त की ग्राज्ञा पालन के लिए वाध्य हा ग्रथवा राजा की ग्राज्ञा पालन करने मे वाध्य हो।" वह तत्काल उत्तर देगा कि "राज के मालिक वह, मस्तक का मालिक यह। ग्रर्थात् राज्य का मालिक तो राजा है परन्तु मेरे मस्तक का मालिक मेरा साम त है।"

राजा के साथ साम ता का जसा सम्ब ध है वसा सम्ब ध राजा तथा बड साम तो के ग्रधीन छाट साम तो या उनकी प्रजा क साथ नही हाता है। व छोटे सरदार ग्रथवा उनकी प्रजा साक्षात सम्ब ध म राजा की किसी ग्राज्ञा क पालन करने म वाध्य नही है। साम त की ग्राज्ञानुसार ही व राजा का काम करत हैं। राजा कभी किसी साम त क ग्रनुचर सरदार ग्रथवा प्रजाजनो का स्वय बुलाकर किसी काय म नियुक्त नही कर सक्त। इसके विपरीत यदि साम त राजा क विरुद्ध काई ग्रन्यायपूर्ण काय करे ग्रथवा विद्राह कर वठे ग्रौर ग्रपन ग्रधीन सरदारा तथा प्रजा का साथ दन क लिए कह ता व लोग शीघ्र विना किसी विचार क उसमे तत्पर हा जात है। इसके प्रमाण म बहुत स प्रमाण उद्ध त किय जा सकते हैं। साम त शासन की मूल नीति क ग्रनुसार स्वामी की ग्राज्ञा पालन एक ग्रावश्यक कत्तव्य है ग्रौर इस कत्त व्य पालन क निमित्त उसक ग्रधीनस्थ लाग उसक लिए ग्रपना जीवन बलिदान कर दन म भी भयभीत नही हात।

सरदारो का सगठन—साम त शासन प्रणाली मे राजा और साम ता के आपसी कत्तव्या का जितना महत्त्व है, उतना ही महत्त्व साम त और उनके अधीनस्थ सरदारा क आपसी कत्तव्या का भी है। अधीनस्थ सरदारा के अपन साम त के प्रति क्या कत्तव्य हैं अथवा उन्ह कौन कौनसी आज्ञाओ का पालन करना पडता है, उसकी सूची लिखना असम्भव है, क्योकि वे प्राय सभी आज्ञाओ का पालन करन के लिए बाध्य हैं। वे अपन सामन्ता के दरबारो के प्रमुख व्यक्ति होत हैं और उनके जीवन के काय सामन्ता के कार्यों के साथ बधे रहत है। सामन्त की सभा म सदा उपस्थिति, शिकार म उनके साथ जाना, उनके साथ राजसभा अथवा युद्ध म जाना यहाँ तक कि सामन्त के शत्रु द्वारा ब दी बनाये जान पर उसक साथ ही शत्रु के शिविर म रहना।

जहाँ राजा सामन्त लाग और सरदार—सभी अपन-अपने कत्तव्या का उचित पालन करत हैं, वहाँ पर सामन्त शासन प्रणाली कभी असफल नही हो सकती।

सन्दर्भ

1 टॉड का यह कथन पूणत सत्य नही माना जा सकता। स्वय टाड आग के पृष्ठा म राजपूत राज्यो की शासन प्रणाली की प्रशसा भी करते है।

2 मवाड की राजपूत जाति के राजवश न घटनाओ और परिस्थितिया के अनुसार अपन नामो म परिवतन किया है। पहले य लोग सूयवशी नाम स विख्यात थे, उसके बाद गुहिलोत कहलाय, फिर आहारिया (आटरिया) और उसके बाद सीसोदिया के नाम म प्रसिद्ध हुए।

3 चिह्न व्यवहार की इस प्रथा का प्रचार यूरोप म क्रूसेड (धमयुद्ध) के बाद ही शुरू हुआ था।

4 च देरी के बारे म टाड ने लिखा है कि इस वन्य प्रदेश म यूरोपियन लोगा म से केवल मैं ही सबसे पहले सन् 1807 ई० म गया था और उस यात्रा म मुझे बहुत कष्ट उठाने पडे थे। उस समय यह एक स्वतन्त्र राज्य था। तीन वष बाद इस पर सिंधिया ने अपना अधिकार कर लिया।

5 खीची जाति चौहान राजपूत वश की एक शाखा है। हाडावती के पूव की तरफ इस वश का राज्य था।

6 चडस चमडे का बना होता है और इसका उपयोग कुओ से भूमि की सिंचाई क लिए किया जाता है। सामान्यत इसे कृषि भूमि की पमाइश का एक मापदण्ड भी माना जाता है।

7 महाराणा ग्रमरसिंह द्वितीय (1698—1710) न ग्रपन साम ता का तीन श्रेणिया म वाटा था। प्रथम श्रेणी मे 16 साम त थे ग्रौर वे उमराव कहलाते थे। 19वी सदी क ग्र त तक उनकी सख्या 24 तक पहुच गई थी।

8 द्वितीय श्रेणी के साम ता की सख्या 32 थी। ग्रत वे वत्तीस' के सरदार कहलाये।

9 तीसरी श्रेणी के सरदारो की सरया कई सौ थी, ग्रत उ ह 'गोल' के सरदार कहा जाता था।

10 उस समय म व्यापार के माल को एक स्थान स दूसर स्थान पर ल जाने के लिए बलगाडिया का काम म लाया जाता था। कही-कही पर ऊँटो का प्रयोग होता था।

11 कनल टाड ने लिखा है कि, "ग्रथदण्ड ग्रौर पदच्युति इन दोना को मने देखा है।"

12 मेवाड की प्राचीन राजधानी चित्तौड पर जहाँगीर ने नही ग्रपितु ग्रकवर ने ग्रधिकार किया था।

13 कनल टाड लिखते हैं कि 'यह दुग इस समय बिल्कुल ध्वस हा गया है, कि तु ऊँची चोटी के महल ग्रौर प्राकार के कुछ ग्रश ग्रब भी पाये जात हैं।

14 1877 ई० म जब लाड लिटन न दिल्ली क दरबार म ब्रिटिश महारानी को 'भारतश्वरी' उपाधि धारण की घोषणा की थी, उ[illegible] हि दू-मुस्लिम राजाग्रा को एक एक प[illegible] दी गई थी [illegible] क बाजे के बदल एक एक स्वण पदक [illegible] था। उसी प्रकार की थी, जसी कि [illegible] को सनद दन क समय काम म

15 टॉड साहब का कथन सही [illegible] पुत्री का वि[illegible] पुत्री का दि[illegible]

16 जहाँगीर का [illegible] क बट खुसरू

शाहजहाँ का ज म मारवाड की राजकुमारी जाधाबाई से हुआ था, परन्तु कामबख्श का ज म दारा की नतकी उदयपुरी और औरगजेब से हुआ था।

17 फरुखशियर की मृत्यु क बाद अजीतसिंह अपनी पुत्री को मुगल हरम से वापस अपने साथ ले गय थ। इस प्रकार की यह प्रथम घटना थी। इसी फरुखशियर न अग्रेजा का अपनी व्यापारिक कोठी बनान के लिए हुगली मे आवश्यक भूमि प्रदान की थी।

18 औरगजेब के बाद बहादुरशाह सिंहासन पर बठा था। उसके बाद जहादार-शाह मुगल सम्राट बना। जहादारशाह के बाद फरुखसियर सिंहासन पर बठा था।

अध्याय 9

राजस्थान मे जागीरदारी प्रथा (2)

अब मैं जागीरदारी प्रथा से सम्बन्धित उन विशेष बातो अथवा व्यवस्थाओ का उल्लेख करूंगा, जो यूरोप मे प्रचलित थी और यह बताने का प्रयास करूंगा कि राजस्थान के राज्या म भी वे बातें आज तक वतमान हैं। उनमे 6 बातें मुख्य हैं, जो इस प्रकार हैं—1 नजराना। 2 जागीर का हस्तान्तरित होना। 3 पुनहीन दशा म सामन्त की मृत्यु होने पर उसकी जागीर पर राजा का पुन अधिकार। 4 विशेष अवसरा पर सामन्त द्वारा राजा को आर्थिक सहायता देना। 5 नाबालिग सामन्त की रक्षा और 6 विवाह।

नजराना—नजराना जागीरदारी प्रथा का एक मुख्य लक्षण है। इसके द्वारा राजा का प्रभुत्व और सामन्त की अधीनता प्रकट होती चली आती है। सामन्त लोग अपने राजा से जब जागीर अथवा भूमि प्राप्त करते हैं, उस समय उसके बदले मे अपने अन्या य कत्तव्यो के पालन के साथ साथ वे अपने राजा को एक निर्धारित नजराना देने का भी वचन देते हैं। यदि सयोग से किसी सामन्त की मृत्यु हो जाती है तो उसका उत्तराधिकारी राजा के सामने प्राथना पत्र उपस्थित करके और उतना ही नजराना देन की प्रतिज्ञा करके सामन्त का पद एव जागीर प्राप्त करता है। मेवाड राज्य म इस नजराने के द्वारा प्राचीन भूमि (जागीर) का स्वत्वाधिकार सवथा लोप हो जाता है और राणा नये उत्तराधिकारी को उस भूमि का स्वत्वाधिकार नये सिरे से प्रदान करता है। यूरोपीय राज्यो म मृत सामन्त का पुत्र ज... पने पिता की जागीर का उत्तराधिकारी बनता है, तब वह इसकी मान्य ... धन देता था उसी को नजराना कहा ज... पुराने सम... ा को जो करना राजा के अधिकार म नहीं था ... इच्छा प... र्धारित जब राजा अपनी तरफ स नजराना ... े अदा ... न को विवश करने लगा तो घोर अस... ड म ... सीमा पर पहुच गया तो सामन्तो ने म... र्टा ... नद) पर हस्ताक्षर करन ...

करके उसके देने का एक नियम बना दिया गया। नजराना का निर्धारण साम त पद प्राप्त करने वाले की मर्यादा के अनुसार निश्चित किया गया।[1]

फ्रास म प्राचीन व्यवस्था के अनुसार राजा को नया अभिषिक्त होने वाला साम त अपनी भूमि अथवा जागीर की एक वर्ष की मालगुजारी "नजराना" मे देता था। मेवाड राज्य मे भी यही व्यवस्था थी। यहा पर भी प्रत्येक नया साम त राणा से नई सनद लेते समय अपनी जागीर की एक वर्ष की आय के रुपये नजराने मे देते थे और यह बहुत बहुत दिनो तक चलती रही।[2]

मेवाड राज्य मे जब किसी साम त की मृत्यु की सूचना राणा को मिलती थी, तो वह उसकी जागीर को अपने अधिकार मे लेने के लिये एक असैनिक अधिकारी को कुछ अ य राजकर्मचारियो के साथ भेज देता था। इस दल को 'जब्ती" कहा जाता था। जब्ती दल का अधिकारी वहा पहुच कर जागीर की व्यवस्था अपने हाथ मे ले लेता था। तब मृत साम त का उत्तराधिकारी एक प्रार्थना पत्र के माध्यम से राणा से निवेदन करता था कि उसे उस जागीर का साम त नियुक्त किया जाय। प्रार्थना-पत्र म नियमानुसार नजराना देन का वचन दिया जाता था। नजराना अदा हो जाने के बाद राणा उसको अपने दरबार मे आने का निमन्त्रण भेजते हैं और उसे नई सनद प्रदान करते हैं। सनद के साथ पुरानी प्रथा के अनुसार राणा नये साम त की कमर मे एक तलवार बाध कर उसका अभिषेक कार्य सम्पन्न करते हैं और घोडा, दुशाला दुपट्टा आदि देकर उसे सम्मानित करते हैं। मेवाड म साम तो का यह अभिषेक समारोह बडे उत्साह के साथ मनाया जाता है और लगभग सभी साम त इस समारोह मे सम्मिलित होते है। अभिषेक की रस्म अदायगी के बाद जब्ती लोग साम त की जागीर से वापस लौट आते है और उस जागीर का अधिकार नये साम त को सौंप दिया जाता है।[3]

मेवाड राज्य मे नजराना देने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। पर तु राज्य के पतन के दिनो मे कई बलशाली सामन्तो ने नजराना देना ब द कर दिया। उन दिनो म बाह्य आक्रमणो के फलस्वरूप राणा की शक्तिया क्षीण हो गयी थी। साम तो की इस कार्यवाही से वहा की मूल प्रणाली मे परिवर्तन हो गया और नजराना की प्रथा अनुचित समझी जाने लगी।

जागीर का हस्ता तरित होना—जागीरदारी प्रथा म राजा से जागीर मिलने के बाद उस जागीर के स्वामी जागीरदार को अपनी जागीर किसी को हस्ता तरित करने का नियम नही है। जागीरदार अपनी जागीर अथवा जागीर के अश को न तो किसी को बेच सकता है और न किसी को हस्ता तरित कर सकता है। धार्मिक भूमि अनुदानो म जागीरदार को कुछ अधिकार दिये गये हैं, पर तु ऐसे अनुदानो के लिये

भी उस राजा से पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती है। यदि राजा आदेश न दे तो सामन्त को अपनी जागीर में से धार्मिक कार्य के लिये भी भूमि अनुदान देने का अधिकार नहीं है।

किसान लोग राणा को रुपया देकर अपने खेतों का पट्टा लिखा लेते हैं और वे अपने खेतों के अधिकारी बन जाते हैं। पट्टा हो जाने के बाद राणा उनसे केवल निर्धारित कर वसूल कर सकता है।

पुत्रहीन सामन्त के मरने पर जागीर का अधिकार—सामन्तों को राज्य की तरफ से जो जागीर मिलती थी उस पर सामन्त का वंशानुगत अधिकार माना जाता था। परन्तु प्रचलित विधान के अनुसार यदि किसी सामन्त के पुत्र न हो और पुत्रहीन अवस्था में उसकी मृत्यु हो जाय तो उसकी मृत्यु के बाद राणा उसकी जागीर को पुनः अपने अधिकार में ले लेता है। सामन्त के दत्तक पुत्रों को उत्तराधिकार नहीं दिया जाता था। यह राज्य की पुरानी प्रथा है और राणा को अनेक अवसरों पर इस प्रथा का पालन करना पड़ा था। सामन्त के किसी प्रकार के अपराध में अपराधी सिद्ध हो जाने पर भी राणा उस सामन्त की जागीर को पुनः ग्रहण कर सकता था। अपराध के परिणाम के अनुसार किसी की सम्पूर्ण जागीर और किसी की आधी जागीर ले ली जाती थी। यूरोप में भी पहले यह प्रथा प्रचलित थी।

इस समय मारवाड़ राज्य के प्रायः सभी प्रथम श्रेणी के सामन्त अपना राज्य छोड़कर दूसरे राज्यों में निर्वासित जीवन बिता रहे हैं। उन्हें उनके राजा ने राज्य से निकाल दिया है। मारवाड़ राजवंश के ही ईडर के राजा ने भी अपने सामन्तों को अपने राज्य से निकालने की सोची थी परन्तु बम्बई के गवर्नर के कारण वह ऐसा नहीं कर पाया।

जो राजपूत अपने परिश्रम, त्याग और पुरुषार्थ से राज्य का उपकार करते हैं राणा की तरफ से उनको जीवन भर के लिए भूमि अनुदान दिया जाता है। इसे "चारूत्तर प्रथा" कहते हैं। जिस व्यक्ति को इस प्रथा के अन्तर्गत भूमि दी जाती है उसकी मृत्यु के बाद उस भूमि पर राणा का पुनः अधिकार हो जाता था। परन्तु जिन लोगों को इस शर्त के साथ भूमि अनुदान में दी जाती थी कि उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी उस भूमि के अधिकारी बने रहेंगे ऐसे मामलों में अनुदान प्राप्त करने वाले व्यक्ति की मृत्यु के बाद बिना विशेष प्रयोजन के उसकी भूमि पर राणा अधिकार नहीं करते। उस भूमि पर मरने वाले व्यक्ति के उत्तराधिकारी का अधिकार माना जाता था।

आर्थिक सहायता—युद्ध अथवा विशेष सांसारिक कार्य उपस्थित होने पर राजा को धन की विशेष आवश्यकता होती है। ऐसे अवसरों पर राजा साधारण र से उसकी आय का दसवां भाग लेने का अधिकारी होता है। राजा के समान

सामन्त लोग भी अपन अपन अधिकृत क्षत्रा म ऐसा ही किया करते हैं। इस प्रकार के अवसरो म राजा की लडकी का विवाह भी एक है। विवाह सम्बन्धी व्यय के लिय प्रजा से सहायता ली जाती है। कुछ वर्षा पूव राणा की दो लडकियो और एक लडके का विवाह हुआ था। उन विवाहो क खच के लिय राणा ने अपनी प्रजा से उसका आय का छठा भाग वसूल किया था। लकिन यह भी देखन म आया कि राणा सभी लोगा से धन वसूल नहीं कर पाया। वहुत से लाग छूट गय। चू कि ऐसे अवसर वहुत कम आते है, इसलिए प्रजा स्वच्छा से उसक लिये तैयार रहती है। ऐसे अवसरो पर राज कमचारी भी राणा को धन की सहायता देत है।

पुरान समय म पश्चिमी राष्यो म भी इस निमित्त से धन सग्रह किया जाता था। हालम न लिखा है कि साम त शासन की प्रारम्भिक अवस्था म किसी भी प्रकार का कर निर्धारित नही था, केवल आवश्यकता के अनुसार उक्त प्रकार के धन की सहायता ली जाती थी। पर तु वाद म धनवान बन जान के वाद भी राजा लोग इस निमित्त स कर लेन लग गये थे। राजाओ की तरह साम त लोग भी अपनी कन्याओ क विवाह क अवसर पर अपनी प्रजा से धन लिया करत थ। क याओ के विवाह के समय सहायता करना लोग परमाथ समझत ह। फ्रास की प्राचीन साम त शासन प्रणाली म भी इसी प्रकार के नियम धन सग्रह करन के लिय प्रयुक्त किये जाते थे। इगलण्ड मे मग्नाकार्टा के अ तगत वहा के साम त लोग अपन वडे पुत्र के कुलीनता के पद ग्रहण, वडी कन्या के विवाह म तथा शत्रुओ द्वारा स्वय ब दी हो जान पर दण्ड रूप धन देकर छुटकारा पान की आवश्यकता पडने पर साधारण प्रजा तक से धन की सहायता लत थे। राजपूत राज्या म जिस समय मुगल पठान उपद्रव अत्याचार और हमले करके साम तो को ब दी बनाकर ले जाते थे, उस समय उनकी प्रजा धन देकर साम ता का शत्रुओ के हाथो स रिहा करवाती थी। साम त शासन पद्धति का यह नियम शायद यूरोपीय राज्यो मे न था अ यथा इगलण्ड के पराक्रमी राजा रिचड को बहुत दिना तक ब दी अवस्था म आस्ट्रिया म न रहना पडता।

नावालिग साम त की जागीर का प्रब ध—किसी साम त की मृत्यु क समय यदि उसका पुत्र नावालिग हो तो उस अपने पिता की जागीर का उत्तराधिकारी तो घोषित कर दिया जाता था, पर तु उसकी नावालिगी म उसकी जागीर की व्यवस्था राणा को करनी पडती है। उसक बालिग होन पर जागीर की व्यवस्था का अधिकार उसको सौप दिया जाता है। नाबालिग साम त की जागीर की व्यवस्था के लिये राणा जो प्रब ध करता है, कभी कभी उसक बुरे परिणाम भी सामन आते हैं। सामा यत राणा नाबालिग साम त के निकटवर्ती रिश्तेदार को ही जागीर का शासन प्रब ध सापत हैं, पर तु ऐसे लागो क सरक्षक बनन स मवाड म कभी कल्याण हाता हुआ नही दखा गया। नाबालिग साम त क हिता का साधन करने के स्थान पर व लाग अपना स्वाथ साधन करत है। यूरोप म भी ऐसे अवसरा पर यही होता था।

मेवाड मे कभी कभी नाबालिग साम त की जागीर की व्यवस्था राणा स्वय अपने अधिकार मे रख लेते है और कही कही पर नाबालिग साम त की माता भी जागीर की शासन व्यवस्था अपने हाथ म लेकर सभी कार्यों का सचालन करती है।

विवाह—विवाह के पूव प्रत्येक साम त अपने राजा से इस सम्ब ध म विचार विमश कर उसकी स्वीकृति प्राप्त करता है। ऐसा करके साम त अपने राजा के प्रति शिष्टता और सम्मान प्रकट करता है। इस प्रकार की शिष्टता से जहा राजा का प्रमुत्व बढता है, वहा साम त के सम्मान मे भी वृद्धि होती है। इस अवसर पर राजा साम त को उसकी मर्यादा के अनुसार मूल्यवान वस्तुए भेंट मे देता है।

कोई राजपूत अपने वश की किसी लडकी के साथ विवाह नही कर सकता। नामन लोग भी अपने वश की लडकी क साथ विवाह नही करते थे। व लाग अपन शत्रुओ के साथ भी ववाहिक सम्ब ध नही करते थे।

भूस्वत्वाधिकार का समय निर्णय—अब मैं राज्य की तरफ से दी जाने वाली भूमि, उसके स्वरूप और अवधि पर प्रकाश डालने का प्रयास करू गा। यहा पर म जो कुछ लिख रहा हू वह मवाड राज्य के बारे मे मेरे अनुभवों पर आधारित है।

मेवाड म भूमि के दो प्रकार के अधिकारी है। उनम एक श्रेणी की सख्या ही अधिक है। एक श्रेणी का नाम गिरासिया ठाकुर और दूसरी श्रेणी भोमिया नाम से विख्यात है।[4] जा राजपूत सरदार राणा से अपने निर्वाह के लिये पट्टे पर भूमि पाते हैं, वे लोग गिरासिया ठाकुर कहलाते है। पट्टा युक्त भूमि पाने के बाद ये लोग साम त शासन की रीति वे अनुसार निर्धारित सनिक रखते हैं। युद्ध उपस्थित हान पर अथवा राणा के विदेश मे युद्ध के निमित्त अभियान करने पर वे अपन सनिको क साथ राणा के साथ चलने को बाध्य हैं। गिरासिया ठाकुरो का पट्टा स्थायी नही होता। एक निश्चित समय के बाद वह फिर लिखा जाता है और पुराना पट्टा (भूस्वत्वाधिकार) रद्द कर दिया जाता है। ऐसे अवसर पर गिरासिया ठाकुर को निर्धारित नियमो का पालन करना पडता है और राणा को नजराना देना पडता है।

भोमिया सरदारो को भी इसी प्रकार पट्टे पर भूमि मिलती है। पर तु उसक पट्टे के नियम भिन होत हैं। उसका पट्टा बिना किसी विशेष कारण के रद्द नही किया जाता और उसे नया पट्टा नही कराना पडता। वह अपने पट्टे का दीघकाल तक प्रयोग करता है। उसके लिये उसे किसी प्रकार का नजराना नही देना पडता। उसका उत्तराधिकारी नवीन भोमिया साधारण वार्षिक कर निर्धारित करके ही 'नेम' अर्थात् भूमि के प्रयाग का अधिकारी बन जाता है। भोमिया लागो को

आवश्यकता पडने पर राज्य मे अथवा राज्य के बाहर निश्चित समय के लिये राज्य के लिय काम करना पडता है। मवाड राज्य मे भोमिया सरदारो की स्थिति ठीक उसी प्रकार थी जिस प्रकार यूरोपीय राज्यो म विना किसी शत के भूमि के अधिकार पाने वाले साम-ता की थी। फारस मे इस प्रकार के सामन्ता को जमीदार कहा जाता था। उन जमीदारो और मेवाड के भौमिया म कोई अन्तर नही है।

'ग्रास" शब्द से गिरासिया शब्द की उत्पत्ति हुई है। इस शब्द की उत्पत्ति केल्टिक भाषा के "ग्वास" शब्द से मालूम होती है। केल्टिक भाषा मे इस शब्द का अथ नौकर अथवा दास होता है। यह अनुमान कहा तक सही है, ठीक से नही कहा जा सकता।

भूवृत्ति का पुनग्रहण— वहुत समय से साम त लोग राणा स प्राप्त भूमि का स्व-स्वाधिकार भोगते आये है, उस भूमि का राणा अपनी इच्छानुसार अथवा किसी विशेष कारण के उपस्थित होने पर अपने अधिकार मे ले सकता है अथवा नही, यह प्रश्न सदा स विवादपूण रहा है। अर्थात् राणा को अपन द्वारा प्रदत्त भूवृत्ति का पुनग्रहण करन का अधिकार है अथवा नही ? यूराप म साम त शासन की जा रीति प्रचलित थी उसके अनुसार साम त अपनी मृत्युपय त तक अपनी जागीर का अधिकारी रहता था। उसकी मृत्यु क बाद उसकी जागीर पर राजा का अधिकार हो जाता था। कि तु मवाड राज्य मे प्रचलित प्रथा इससे भिन्न है। मवाड मे जिस साम त को सनद क द्वारा भूमि दी जाती है, उसका निणय उसकी सनद् अथवा पट्टे मे ही कर दिया जाता है। मवाड राज्य के किसी साम त के मरन पर उसका उत्तराधिकारी राणा को नजराना दकर फिर सनद प्राप्त कर लेता है और राणा उस साम त पद पर अभिषिक्त कर दत है। इसस पता चलता है कि राणा यदि चाहे तो मृत साम त की जागीर को पुन अपन अधिकार मे ले सकता ह। उत्तराधिकारी का सनद् प्रदान करना अथवा न करना राणा के अधिकार की वात ह। पर तु दोघकाल स राणा उत्तराधिकारियो को स्वीकार करते आय है अत उनका यह अधिकार प्रयोग म न लाय जान क कारण अब विवादपूण वन गया है। अ यथा राणा सग्रामसिह क शासनकाल तक मवाड के साम ता की जागीरे वास्तव म ही दूसरा क हाथा म जाती थी। उस समय म राणा लोग किसी राठौड सामन्त की जागीर निर्धारित समय क बाद किसी दूसरे साम त को प्रदान कर दत थे। तब जागीर स च्युत राठौड साम त अपन परिवार, गौ आदि पशु और अनुचरो के साथ अपनी जागीर को छोडकर "चुप्पान" की जगली भूमि म जाकर रहत थ।[5] इसी प्रकार जागीर हाथ स निकल जान क बाद शक्तावत साम त अरावली का तलहटी म जाकर आश्रय लेत थ और चूडावत सामन्त चम्बल तीरवर्ती क्षत्र का छोडकर किसी परमार अथवा चौहान सरदारा के अधिकृत क्षत्रा म जाकर आश्रय लत थे। उन दिना म साम ता का जागीर क पट्टे एक निश्चित अवधि क लिय प्रदान किय जात थ और उस अवधि क

समाप्त होते ही सामन्त अपनी जागीर को छोडकर किसी दूरवर्ती स्थान अथवा दूसरे राज्य मे रहने के लिये चला जाता था, जहाँ उसे भूमि देकर सामन्त स्वीकार कर लिया जाता था।

उन दिनो मे सामान्यत सामन्तो को तीन वर्ष की अवधि के लिए जागीर के पट्टे जारी किये जाते थे। उसके बाद उन्हे किसी नये स्थान पर भेज दिया जाता था और वहा पहुँचने पर उन्हे सामन्त बना लिया जाता था। महाराणा भीमसिंह ने बतलाया कि यह परिवर्तन प्रथा सामाजिक नियम के साथ ऐसी बधी हुई थी कि सामन्त लोग इसके प्रति किसी प्रकार का असतोष प्रकट नही करते थे। सामन्त के पट्टे को एक निश्चित अवधि के लिये निर्धारित करना और उसके बाद उसे किसी नये क्षेत्र की ओर भेज देना, इस नीति के पीछे एक विशेष उद्देश्य रहा है। इसका सम्बन्ध राजनीति से है। किसी एक स्थान पर सदा के लिए एक सामन्त वश का अधिकार रहने से उस स्थान विशेष मे सामन्त का प्रभाव अधिक बढ जायेगा और इस कारण सामन्त अधिक शक्तिशाली होकर यथा समय पर राणा की आज्ञा का अनादर करेगे, अत राजनीतिज्ञ राणा लोगो ने इस परिवर्तन प्रथा का प्रचार किया। परिवर्तन की यह प्रथा मेवाड राज्य मे जब तक प्रचलित रही उस समय तक कोई भी सामन्त राणा के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस नही कर सका। राणा और उसके सामन्तो के सम्बन्ध अटूट बने रहे। इस प्रथा ने राज्य पर आने वाली विपदाओ के समय सभी सामन्तो को एकता के सूत्र मे बाँधे रखा और एक लम्बे समय तक वे अपने शत्रुओ से अपनी जन्मभूमि की रक्षा करने मे सफल रहे।

जिस समय मेवाड राज्य मे उक्त परिवर्तन प्रथा प्रचलित थी उस समय मे मेवाड के सामन्तो को जागीर का चिर स्थायी पट्टा नही दिया जाता था। इतिहासकार गिबन ने लिखा है कि फ्रास की प्रारम्भिक दशा मे वहा ऐसी व्यवस्था प्रचलित थी। जागीरदारी प्रथा का अनुसधान करते हुए प्राचीन इतिहासकार कागटेस्की ने भी इसी प्रथा का उल्लेख किया है।

मेवाड राज्य मे सामन्तो को भूमि की सनद देने के तीन नियम प्रचलित है- 1 मियादी 2 चिरस्थायी और 3 वशगत। किसी सामन्त की मृत्यु हो जाने के बाद उसके पुत्र प्रपौत्र उत्तराधिकारी होकर क्रम से उस जागीर का अधिकार पाते है। लेकिन उनके उत्तराधिकार के लिए राणा की सहमति आवश्यक है। राणा किसी के उत्तराधिकार को अमान्य भी कर सकता है। सामन्त प्रथा का यह नियम बहुत पुराना है।

राणा के सामन्तो मे राठौड चौहान, परमार सोलकी, भट्ट आदि सभी राज के लोग थे। इन सामन्तो के साथ राणा लोगो के वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे। वैवाहिक सम्बन्धो ने उन सबके बीच के भेदभाव समाप्त कर दिये थे।

उक्त राठौड और चौहान आदि जाति के सामन्तो मे कई तो दिल्ली और अनहिल वाडा के प्राचीन राजवशो से सम्बन्धित है। मेवाड के राणा लोग उक्त सामन्तो की कन्याओ के साथ विवाह करते थे। राणा वश के सामन्त भी अपने लडको का विवाह उन्ही राजपूत वशो मे करते है जिनके साथ राणा के वैवाहिक सम्बन्ध होते हैं। ववाहिक सम्बन्धो के कारण मेवाड म आबाद विभिन्न कुलीय सरदारो म स्नेह की वृद्धि हुई है। इस स्नेह के कारण ही मेवाड राज्य पर आने वाली विपदाओ के समय अन्य वशो के सामन्तो ने भी तन, मन और धन का त्याग किया है। परन्तु जिस समय से यह आपसी स्नेह शिथिल पडने लगा और सामन्तो न अपने अपने दल बनाने शुरू किए, उस समय से मेवाड राज्य की सीमा घटने लग गई और चारो तरफ आत्म विग्रह की अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई। ऐसे समय मे आक्रमणकारी लोगो को अत्याचार और लूटमार करने का अवसर मिला। सगठित मराठा दलो न मेवाड म घुस कर क्या नही किया ? दिल्ली के मुगल सम्राटो का जब तक प्रताप प्रभुत्व बना रहा, तब तक मराठो अथवा उन जैसी किसी जाति को मेवाड राज्य मे विध्वस करने का अवसर नही मिला। जिस समय मुगलो की शक्ति का पतन हुआ, घटना क्रम से उस समय ही मेवाड के सिसोदिया कुल का पराक्रम भी अदृश्य हो गया।

राठौड, चौहान, परमार आदि भिन्न वशीय सामन्तगण जब मेवाड के सीसोदिया वश के साथ वैवाहिक सम्बन्धो मे बध गये तो मेवाड के राणा लोग उनको भिन्न श्रेणी का पट्टा प्रचलित करने के लिए बाध्य हुए। यद्यपि समय के प्रभाव से वह भिन्नता सर्वथा दूर हो गई, तथापि मूल पट्टा देने के समय स्थायी स्वत्व नहीं दिया जाता था और अब भी नही दिया जाता, यह बात निम्नलिखित विवरण से भली-भांति जानी जा सकती है।

काला पट्टा—राणा रायमल और उदयसिंह के वशजो न जो मुख्य राजपूत शाखायें कायम की थी, उनके वशजो ने यथा समय भिन्न भिन्न उपशाखायें पैदा की और उन शाखाओ तथा उपशाखाओ मे जो पैदा हुए, वे मेवाड के प्रधान सामन्त और सरदार श्रेणी म गिने गये थे।

चूंडावत और शक्तावत यह दो प्रधान शाखायें हैं। चूंडावत दस और शक्तावत छ शाखाओ मे विभक्त है। राजपूतो म चिर प्रचलित नियम के अनुसार व कभी अपने वश वालो के साथ कन्या लेन देन का सम्बन्ध नही कर सकत। इन शाखाओ और उपशाखाओ के सभी लोग सीसोदिया कुल के नाम से विख्यात हैं। मेवाड राज्य पर जो प्रभाव सीसोदिया वश के राजपूतो का है, वैसा अन्य कुल के राजपूतो का नही है यद्यपि ये सभी मेवाड के सामन्त हैं और इस राज्य की जागीरो के अधिकारी होते चले आये हैं। इसका कारण है। सीसोदिया वश के सभी सामन्त राणा वश से सम्बन्धित है, इसीलिए उनके अधिकार श्रेष्ठ माने जाते हैं। सीसोदिया सामन्तो की

जागीरो का पट्टा यद्यपि स्थायी नही होता, फिर भी उनका अधिकार स्थायी रूप से चला करता है। परमार, चौहान, राठौड आदि सरदारो के साथ ऐसा नही है। व यह नही कह सकते कि जागीरो पर उनका स्वत्व स्थायी हो गया है। अन्य कुल के इन साम ता को जो पट्टा दिया जाता है, वह "कालापट्टा" नाम से विख्यात है और वे लोग स्वय भी कहते है कि "हम काला पट्टाधारी हैं।" काला पट्टा का असली अर्थ यह है कि राणा की जब इच्छा हो, काला पट्टा के अ तगत दी गई जागीर को वापस लिया जा सकता है। लेकिन यह स्थिति सीसोदिया साम तो की नहीं है। उन्हे अन्य वंशीय सरदारो की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ भी प्राप्त है।

विगत कुछ वर्षो की अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए कई साम तो ने पट्टा मे लिखी हुई जागीर के अतिरिक्त खालसा भूमि पर अपना अधिकार कर लिया था। इस अराजकता को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि सभी सामन्त अपने पट्टे महाराणा को लौटा दे और महाराणा अपने हस्ताक्षरो से सामन्तो को नये पट्टे प्रदान करे। इसके लिए राणा का प्रधानमन्त्री स्वय चू डावतो के नेता सलूम्बर के साम त के उदयपुर स्थित निवास स्थान पर गया और उनसे प्राचीन पट्टा उपस्थित करने की प्रार्थना की। सलूम्बर के साम त ने भी खालसा भूमि के अनेक गावो पर अधिकार कर रखा था। पुराना पट्टा उपस्थित करने पर उसका यह निन्दनीय कार्य प्रकट हो जाता। अत सलूम्बर सरदार ने राणा के प्रासाद की ओर सकेत करके साहस के साथ उत्तर दिया कि, 'मेरा पट्टा उस प्रासाद की दीवारो की जड मे है।' राणा के प्रति उसके एक साम त का यह उत्तर कितने बडे विद्रोह से भरा हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। हमारे स्वदेश के अर्ल ऑफ वारन ने ऐसे ही कारण से सम्राट एडवर्ड के प्रतिनिधि को उत्तर दिया था 'मेरे पूर्वजो ने अपनी तलवार के बल से इस भूमि पर अधिकार किया था, मैं भी उसी तलवार के बल से इसकी रक्षा करूगा।

ऊपर हमने पुराने समय के नियमो का ही वर्णन किया है। वर्तमान नियमानुसार साम त लोग अपने जीवन भर के लिए पट्टा पाते हैं। राणा की स्वीकृति के साथ वे अपने पुत्र को अथवा दत्तक पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना सकते हैं और वह उत्तराधिकारी अपने जीवन भर जागीर को भोग सकता है। किन्तु कोई साम त यदि राणा के विरुद्ध कोई कार्य करे अथवा अपने कर्त्तव्यो का पालन न करे तो राणा को उसकी जागीर पुन अपने निय त्रण मे लेने का अधिकार है। पर तु इस अधिकार को प्रयोग मे लाना राणा के लिए साधारण कार्य नही होता। उसके सामने अनेक गम्भीर समस्याएँ पैदा होती हैं और अनेक सकटो का सामना करना पडता है। इसीलिए अधिकार रखते हुए भी राणा ऐसा करने का साहस सरलता से नही कर पाता। यद्यपि साम तो की दो श्रेणियाँ हैं-एक राणा के कुल के सीसोदिया सामन्त और दूसरे अन्य कुलो के साम त। परन्तु वैवाहिक सम्बन्धो के कारण दोनो श्रेणी के साम त एक दूसरे के साथ मैत्री सम्बन्ध में बधे हुए हैं। ऐसी स्थिति मे किसी साम त को पदच्युत करने पर

राणा का सावजनिक विरोध होता है और सभी साम त राणा के विरुद्ध उठ खडे होते हैं। इसलिए इस प्रकार की स्थिति से बचने क लिए, राणा लोग अपराधी साम त को पदच्युत करके उसकी जागीर का अधिकार उसी के कुल के किसी अ य व्यक्ति को देकर उस अपना साम त बनाते है।

भोमिया (भूमिया)—हम लिख आये है कि मेवाड राज्य की आरम्भिक दशा म राणा के वशज "भोमिया" नाम से विख्यात थे और राज्य के ऊचे पदो पर प्रतिष्ठित होन के कारण विशेष रूप से सम्मानित होते थे। बाबर और राणा सागा के समय तक उनकी यह मर्यादा यथावत बनी रही। सीसोदिया कुल मे उत्पन्न होन स हो उनका यह मर्यादा प्राप्त हुई थी। इसी मर्यादा के परिणामस्वरूप उनको भोमिया पद प्राप्त करने का अवसर मिला था।

मेवाड राज्य मे जिन लागो पर युद्ध के सचालन का दायित्व है उनमे भोमिया लोग प्रमुख मान जाते थे। भोमिया नाम ही उनकी श्रेष्ठता का परिचय देता है। मुसलमानो न जिस "जमीदार" शब्द का प्रयोग किया है उसकी अपेक्षा यह भोमिया शब्द ही अधिक भूस्वत्व को प्रकट करता है। प्राचीन काल मे भोमिया लोगो का ही राज्य मे प्रमुत्व था और वे लोग राज्य के हर हिस्से मे आबाद थे। परन्तु कमलमीर, चप्पन क जगली क्षेत्र और माण्डलगढ के समतल क्षेत्र मे उनकी सख्या अधिक थी। उक्त क्षेत्रो म बहुत काल से भोमिया लोग कृषि काय द्वारा अपना निर्वाह करते आय हैं। इस व्यवसाय मे रहकर भी उ होने कभी अपनी युद्ध कला को नही छोडा।

इन भोमिया लागो मे सभी प्रकार के लोग है। उनकी जागीरें बराबर नही हैं। किसी किसी के अधिकार मे तो केवल एक ही गाव है। अपनी जागीरी भूमि का वे राणा को बहुत कम कर देते है। आवश्यकता पडने पर उन्ह राणा का सनिक बनकर युद्ध क लिए जाना पडता है। युद्ध की अवधि मे उनके खान पीन की व्यवस्था राणा की तरफ से की जाती है। उन्ह युद्ध म काम आन वाले सभी अस्त्र शस्त्र रखन का अधिकार है और व लोग भी अपने साधारण जीवन म उन सभी को प्रयोग म लाया करत हैं।

मवाड के भोमिया लोगा स सम्बन्धित बहुत सी बातें यूराप के भूमि अधिकारिया क साथ मिलती है।[6] भोमिया लोग राज्य के अश्वारोही सनिक हैं। स्थानीय युद्ध काय म अथवा सीमान्त दुर्गों की रक्षा आदि म व लाग निर्धारित समय की अवधि तक सहयोग देत है। कि तु मवाड पर बाह्य शत्रु का आक्रमण हान पर राणा का आदेश मिलत ही व लाग अपन अस्त्र शस्त्र लकर शत्रु के विरद्ध उठ खडे हात है और बहुत बडी सख्या म राजधानी म जा पहुँचत है। इस सनिक काय के लिए वह बिना वेतन क कवल भोजन मात्र की प्राप्ति से सतुष्ट होकर जन्मभूमि की रक्षा क

लिए सग्राम म कूद पडते हैं। ये भामिया लोग बहुत दिन से यह माग कर रहे है कि 'राणा को हम लोगो से कर नही लेना चाहिए क्याकि हम युद्ध काय म विना वतन के नियुक्त होते है।" भामिया लोग अपनी अधिकृत भूमि के लिए राणा स किसी प्रकार का पट्टा नही लेत। 'बिना पट्टे के भूमि का स्वत्वाधिकार मिलना, इन लोगो के लिये वडे सम्मान और गौरव की बात समझी जाती है। 'माका भूम" अर्थात् मेरी भूमि यह सगव उक्ति सदा उनके मुख से निकलती रहती है।

पुराने समय म भोमिया पद प्राप्त करने के लिए राजपूतो का वडे वडे प्रयास करने पडते थे, कि-तु उनकी यह इच्छा प्राय पूण नही होती थी। देवला के राठौड सरदार ने अपने प्रभु साम-त बनेडा के राजा से पट्टा प्राप्त करके तीन गावा पर अधिकार कर लिया था। पट्टे के अनुसार देवला सरदार को वनडा के राजा को निर्धारित कर देना था तथा वनडा सरदार की राजसभा मे उपस्थित रहना था। युद्ध के समय उसे पैंतीस सवार भी देन थे। पर तु देवला सरदार अपने कत्तव्य पालन मे शिथिलता दिखलाने लगा। एक वार युद्ध के अवसर पर उसे सवारो सहित उप स्थित होने को कहा गया। पर तु देवला सरदार ने आदेश का पालन नही किया। युद्ध समाप्ति के वाद वनेडा के राजा न देवला सरदार को देवला लौटा देन की आज्ञा दी। इस आज्ञा के उत्तर मे उक्त सरदार न सूचित किया कि मेरा मस्तक और देवला दोनो एक साथ जुडे हैं। अ त मे राणा ने इस अभिमान के कारण देवला की जागीर छीन ली, पर-तु भोम के नाम पर जितनी भूमि उसके पास थी, वह उसके पास ही रहने दी और राठौड सरदार भोमिया साम-त के रूप म अपना कत्तव्य पालन करने लगा। राज्य मे इन भूमिपतियो अर्थात् भोमिया का इतना मान सम्मान है कि प्रथम श्रेणी के साम-त भी इस पद को प्राप्त करने के प्रयास करते रहते हैं। इसका मूल कारण यह है कि साधारण पट्टे के द्वारा जो भूस्वत्व मिलता है जिना पट्टे का यह भोमिया स्वत्व उसकी अपेक्षा विघ्न रहित और दीघ स्थायी है।

बनेडा और शाहपुरा के राजा—मेवाड राज्य के साम ता म वनडा और शाहपुरा के राजा भी हैं जिनका सम्मान और प्रभाव प्रथम श्रेणी के साम ता स भी अधिक है। यद्यपि दोनो ही साम ती पदवी पर है पर-तु राजा की उपाधि से भूषित है। बनेडा का राजा महाराणा जयसिंह का वशज है और शाहपुरा का राजा राणा उदयसिंह के वश म उत्पन्न हुआ है। इन दोना राज्यो की एक जमी व्यवस्था है। यदि इन राज्य का राजा मर जाता है तो उसका उत्तराधिकारी मेवाड के राणा स सनद् (पट्टा) लेकर राजा वन जाता है। सनद के लिये अ-य साम तो की तरह इ हें नजराना नही देना पडता। उ ह अपन अभिषेक के समय राणा की तरफ से धन और बहुमूल्य वस्त्र भेंट म प्राप्त हाते हैं। उ ह राणा के दरवार म उपस्थिति के अलावा अ य सभी साम-तीय क्तव्या के पालन स मुक्त रखा गया है। वहुत काल स " लाग अपन कतव्यो के प्रति उदासीन हैं ऐसा समय के साथ राणा की शक्तियाँ म

कमी ग्रान से सम्भव हुग्रा । वनडा ग्रोर शाहपुरा मुगला के ग्रजमेर प्रा त के निकट स्थित है । ग्रत मुगला का दवाव इन दोना राज्या पर पडना स्वाभाविक है । मुगल सीमा के दतन निकट रहकर उनकी शक्ति से निर तर लोहा लेना, इन दोना के लिए सम्भव न था । एसी स्थिति म इन दोना का झुकाव दिल्ली की तरफ हुग्रा ग्रोर वे मुगला की सेवा मे चले गये । मुगल सम्राट न ही दोनो को राजा की उपाधि दी थी ।[7] शाहपुरा क राजा का मुगल सम्राट से ग्रजमेर सूबे मे कुछ भूमि भी मिली । वतमान म शाहपुरा राज्य ब्रिटिश सरकार का उस भूमि का निर्धारित वार्षिक कर देकर उसका भाग कर रहा है ।

पट्टा का ग्रादश ग्रोर उसमे लिखित व्यवस्था—राणा ग्रपने साम तो तथा ग्रधीन व्यक्तियो का जो पट्टे प्रदान करते ह, उनको देखने से साम तो का स्वत्व ग्रधिकार, मम्मान, ग्रनुग्रह, ग्रथसग्रह का मूल कारण ग्रार किस व्यवस्था के ग्रनुसार वह जागीर ग्रथवा भूमि दी गई, सव वातें भली-भाति विदित हो सकती हैं । पर तु राणा लागा की निवलता तथा ग्रविवेकता से वतमान म राजकीय प्रभुत्व को प्रदर्शित करन वाले कई नियमा म ढील दे दी गई । नये सामन्त को पट्टा देते समय तथा उसके ग्रभिषेक के ग्रवसर पर किसी किसी साम त को नजराना से ही मुक्त कर दिया गया ता किसी के पट्टे म इसका तथा ग्रन्य वाता का उल्लेख ही नही किया गया । ग्रान ग्रोर जाने वाली वस्तुग्रा की चु गी ग्रोर दूसरी इसी प्रकार की ग्राय का ग्रश जो राणा को मिलना चाहिए था, उसे भी सामन्त लोग ग्रपने काम मे लेन लगे । इस प्रकार नियम ग्रोर विधान के विरुद्ध चलने से राणा की शक्तिया क्षीण पड गई ग्रोर साम ता को ग्रपनी मनमानी करने का ग्रवसर मिल गया । सिक्का चलाने का जो ग्रधिकार साम ता के पास न था, उसका भी दुरुपयोग होने लगा ग्रोर कुछ सामन्त ग्रपने ग्रपने क्षेत्रा म ग्रपन ग्रपने नाम से ताम्र मुद्रा चलाने लगे । इससे तथा कुछ इसी प्रकार की वाता स राणा को जो ग्रार्थिक लाभ होते थे, वे भी नष्ट हा गये ।

पट्टे का विभाजन ग्रधीन सरदार वग—राजाग्रो के ग्रादश पर ही पट्टेधारी प्रमुख साम त भी ग्रपनी जागीर की सम्पूण व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित काय करत ह । वे लोग भी मन्त्री से लेकर पनवाडी तक, प्रत्येक नाम के कमचारी नियुक्त करत ह । राजा की तरह सामन्तो के भी ग्रपने क्षेत्र म "शीशमहल", "वाडी महल"[8] देवालय ग्रादि होते ह । राजा के समान ही साम त लोग जिस समय ग्रपनी सभाकक्ष मे प्रवेश करते हैं, उस समय गाने बजान वाले, गीत वाजे के साथ साम त की जय घोषणा करते हुए ग्रागे वढत हैं । ग्र त मे, साम त के सिंहासन पर वठने ही समस्त कमचारी ग्रौर ग्रधीन सरदार वग पद मयादा के ग्रनुसार श्रेणीवद्ध होकर जय उच्चारण करते है । उसके वाद सभी लोग ग्रपने ग्रपने निधारित स्थाना पर वठ जाते हैं । जिस समय सव लोग पास पास होकर वठते हैं, उस समय परस्पर ढाला के सघात स उत्पन हुए शब्द द्वारा सभाकक्ष गूंज उठता है ।

यूरोप क राज्या म किसी नवीन माम त के अभिषक के समय साम त जिस प्रकार राजा का हाथ चूमकर अथवा राजभक्ति प्रदर्शित करने के लिय शपथ ग्रहण करत हैं राजपूत राज्यो मे वसी प्रथा प्रचलित नही है। राजपूत राज्यो म जब कोई साम त अपन पतृक पद पर अभिषिक्त होता है तब वह अपन नाम स अपन अधिकृत क्षेत्र म 'आन'' अर्थात् राजा के प्रति श्रद्धासूचक घोषणा प्रचारित करवाता है, 'मैं आपका बालक हूँ। मरा मस्तक और तलवार आपके अधीन है। मैं जीवन पय त आपकी आज्ञा पालन करू गा।' उनकी यह घोषणा ही राजभक्ति की सम्मान रक्षा के लिये यथेष्ट है। अपन राजा क प्रति विश्वासघात अथवा उसकी अवज्ञा करना राजपूतो ने किसी भी समय म नही सीखा। इसक विपरीत उनक त्याग और बलिदान के असख्य उदाहरण इतिहास म भरे पडे है। उनके जीवन म अराजकता की भावना नही है। उनका सम्पूर्ण इतिहास राजभक्ति और दशभक्ति से भरा हुआ है। कवि चद न स्वय अपने प्रसिद्ध काव्य ग्र थ म राजभक्ति का मनोहर दृश्य अकित किया है। साम त लोग जिस प्रकार अपनी राजभक्ति का परिचय अपन राजा को देत हैं, उसके अधीन सरदार भी उसी भावना स प्रेरित हाकर वसी ही भक्ति और सम्मान अपन माम त के प्रति प्रकट करते है। वे सदा स अपन साम त क साथ अभिन्न भाव स रहते आये है।

अनक शताब्दियो तक भीषण दुर्भाग्य और अत्याचारो को सहन करन क उपरा त भी राजपूतो की स्वाधीनता आर स्वाभिमान की भावना म किसी प्रकार की कमी नही आई है। सब कुछ खाने के बाद भी उ हान अपन स्वाभिमान को नही खोया। उनको अपना सम्मान सबसे अधिक प्यारा है। अपमान को अनुभव करन की उनमे अदभुत शक्ति पायी जाती है। जहा सम्मान की बात है, वहा यदि कोई भ्रम से साधारण त्रुटि भी करे तो राजपूत वीर उसको घोर अपराध समझ कर प्रतिकार क लिये तलवार हाथ म ले लेत है। राजपूत जाति का यह एसा चरित्र है जो अनादि काल से उसक साथ चला आ रहा है।

मवाड राज्य मे जितनी भी बडी बडी जागीरे है उनके अधिकारी प्रत्यक प्रधान माम त न अपन अपने पुत्र भाई आर बहुत निकट कुटुम्बियो के भरण पोषण की व्यवस्था, अपनी-अपनी मर्यादा क अनुसार की है। साम त का बडा पुत्र, प्रधान उत्तराधिकारी की हैसियत से अपन पिता का पद उपाधि आर सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त करता है। जिस साम त के जागीर की वार्षिक आय साठ स अस्सी हजार रुपय तक है उस जागीर के साम त के दूसर पुत्र तीन स पाच हजार रुपय वार्षिक आय क गाव प्राप्त करत है। यह उनका 'बपोता' अर्थात् पतृक अधिकार है। इस पतृक अधिकार क अलावा दूसर पुत्र अपन राजा क यहा अथवा बाहर कोई भी काय कर सकता है। छोट पुत्रो को वश क अनुसार भूवृत्ति दी जाती है। प्रत्यक मामन्त पुत्र जितना जितना पाते हैं, वह अश फिर उन पुत्रो के परिवार क खण्ड-खण्ड म विभक्त होत है।

प्रत्यक परिवार से एक एक नवीन नामधारी वश की उत्पत्ति देखी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि विभाजन होते होत एक दिन किसी अच्छी जागीर के भी सक्डो और हजारो टुक्डे हो जात हैं और उम जागीर का महत्व नष्ट हो जाता है।

चरसा (चडसा)—चडसा शब्द का अथ चम होता है। भूमि की नाप के निमित्त इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अग्रेजी मे इसको "हाइड" कहत है। एक अश्वारोही सनिक के भरण पोषण और घोडा रखन के लिय जितनी भूमि दी जाती है, मेवाड मे उतनी नाप की भूमि को एक 'चरसा" भूमि कहा जाता है। जागीर दारी प्रथा के अनुसार निम्न श्रेणी के सैनिक मेवाड राज्य म जितनी भूमि प्राप्त करत हैं इगलण्ड म भी उस श्रेणी के सनिक, उतनी ही भूमि वृत्ति स्वरूप पात हैं। दाना का उपयाग भी एक ही अथ मे होता है। मेवाड मे चरसा भूमि के अथ म जिस प्रकार केवल एक हल से जोतने योग्य भूमि समझी जाती है, इगलण्ड मे उसी प्रकार, उस अथ म वह गृहीत होती थी। इगलण्ड के नाइट उपाधिधारी एक एक वीर को चार हाइड भूमि वृत्ति स्वरूप दी जाती थी जो इस समय की दस एकड के बराबर होती थी। मेवाड म एक चरसा भूमि का नाप पच्चीस से तीस बीघे तक है।

एक माम त के अधिकार मे जितनी भूमि का पट्टा होता है, वह भूमि पतृक अधिकार के नाम पर विभाजित होते होत इतनी छोटी रह जाती है कि किसी समय म उसम एक छोट से परिवार का निर्वाह होना भी कठिन हो जाता है। पतृक अधिकार का यह नियम जागीरदारी प्रथा म काफी महत्व रखता है पर्तु राज्य क साधारण मगल और विजातीय आक्रमण के हाथो राज्य की रक्षा के लिये विनाशकारी ही गिना जा सकता है। राजपूतो के सगे भाइयो और परिवार के लोगो मे जो प्राय विवाद अथवा सघष पदा होते है उसका मूल कारण यही पतृक अधिकार होता है। इसक अलावा, पतक अधिकारो ने अधिकाश राजपूतो को अकमण्य बना दिया है।

प्राचीन काल म फ्रामीसी लोग इस पतृक अधिकार के दुष्परिणामो से परिचित थे। इसीलिए उ होने अपनी माम ती व्यवस्था म इसका स्थान नही दिया। वहा एसा कोई नियम नहीं था जिसके आधार पर मृत माम त की जागीर को उसके उत्तराधिकारियो म विभाजित किया जा सके। साम त का बडा लडका ही उसकी सम्पूण जागीर का उत्तराधिकारी बनता था। उत्तराधिकारियो मे जागीर का विभाजन एक भयानक प्रश्न है और न बाँटन का प्रश्न भी उतना ही भयानक है। अत इन प्रश्नो का निणय आसानी से नहीं किया जा सकता। पैतृक अधिकार को मानन की स्थिति म माम त परिवार का प्रत्येक मदस्य चाहे वह बेटा हो अथवा भाई जागीर पर अपना अधिकार चाहता है। इसी अधिकार के नाम पर फ्राम म 'फिरज" का सवाल उठा

था और उस अवसर पर वहा के अधिकारियो ने सामन्त के सम्मान और जागीर को अविभाजित रखने का निर्णय लिया था। इगलण्ड के राजा एडवड प्रथम के शासन काल मे इगलण्ड मे भी इसी प्रथा को मान्यता मिली। फ्रास और इगलण्ड मे यह निर्णय भी लिया गया कि यदि इस प्रथा का उल्लघन करते हुए किसी जागीर का विभाजन किया गया तो उस जागीर को जब्त कर लिया जाय। जागीर के विभाजन के लिये ऐसे नियम का होना आवश्यक है। जिस प्रकार की भी व्यवस्था हो उसका उद्देश्य होना चाहिए कि जागीर को कायम रखते हुए अन्य उत्तराधिकारियो के अधिकारो को ध्यान मे रखना। यदि जागीर के विभाजन को सीमित कर दिया जाय तो उसके द्वारा राष्ट्र के हितो की सुरक्षा भी हो सकती है। मेवाड मे जागीरो का विभाजन उत्तराधिकार की प्रथा के कारण कितना अधिक हुआ है और आज भी हो रहा है—उसे लिखने मे हम असमर्थ है। परन्तु हम इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि जागीर के विभाजन तथा लडकियो के विवाहो मे दहेज की प्रथा के कारण राजपूतो मे शिशु हत्या की सृष्टि हुई है।

सन्दर्भ

1 अल लोगो का उत्तराधिकारी पिता का पद और उसकी जागीर को प्राप्त करने के लिये 100 पौंड देता था। बरन लोगो का उत्तराधिकारी 100 मार्क और नाइट लोगो का उत्तराधिकारी 100 शिलिंग नजराने मे देता था।

2 मेवाड मे इसे 'नजराना' नही कहा जाता था। यह "उत्तराधिकार शुल्क" था और इसे "कैद" अथवा "तलवार बधाई" कहा जाता था। जब्ती दल के जाने के बाद महाराणा अपने कुवर को अथवा शिवरती के महाराज को वहा मातमपुर्सी हेतु भेजता था जो वहा पहुचकर उत्तराधिकारी सामन्त से "तलवार बधाई" की रकम तय करता था।

3 तलवार बधाई की रस्म पूरी होने के बाद जब्ती उठाई जा[illegible] दिन जब्तीदल उस जागीर मे रहता [illegible] मका खाना पीना [illegible] तने दिया जाता था।

4 मेवाड के सामन्तो की चौथी [illegible] पर्वतीय क्षेत्र मे थीं, भोमट के [illegible] की दो श्रेणियाँ थी— 1) भोमिया [illegible] महाराणा को [illegible] नाम [illegible] म तो को जि[illegible] था। भोमट [illegible] । ये भो[illegible]

मेवाड और गुज[illegible] के दक्षिण पश्चि[illegible]

6 मवाड के भामिया लोगो के साथ यूरोप क भूमि अधिकारियो की तुलना करते हुए इतिहासकार हालम न लिखा है 'सामन्त शासन शली के अनुसार यह भूस्वत्व उत्तराधिकारी भाव से प्राप्त है और इसके अधिकारी स्थानीय शाति स्थापना के लिये सेना म भर्ती होने का बाध्य है, कि तु अ य किसी प्रकार के कर देने म बाध्य नही है।" भोमिया लोगो के साथ राज्य के जो नियम चलत हैं वे सभी राज्या म एक समान नही हे। कच्छ म उनके उत्तराधिकारियो को स्वीकार नही किया जाता जबकि मेवाड मे किया जाता है। मेवाड के भोमिया लोग कहते है कि "हमारा यह भूस्वत्व राज्य स्थापन के आरम्भ से प्रचलित है। किसी लिखित विधान या सनद् द्वारा यह स्वत्व उनके पूवजा ने नही पाया उत्तराधिकरी रूप से ही अधिकार करते चलते आते है।"

7 *महाराणा जगतसिह के काल (1628–1652) म महाराणा अमरसिह के* द्वितीय पुत्र सूरजमल के बडे लडके सुजानसिह और महाराणा मे अनबन हो गई और सुजानसिह बादशाह शाहजहा की सेवा म चला गया। बादशाह ने 1631 मे सुजानसिह को फूलिया का परगना प्रदान किया, जो मवाड राज्य स पृथक कर जब्त कर लिया गया था। सुजानसिह न इस परगन को आबाद कर शाहजहा के नाम से शाहपुरा बसाया।

जून, 1681 म महाराणा जयसिह न औरगजेब के साथ स धि कर ली थी। इस स धि के कुछ दिनो बाद ही महाराणा का भाई भीमसिह औरगजेब की सवा म चला गया। औरगजेब न उस 'राजा" की उपाधि और बनडा की जागीर प्रदान की।

8 प्रासाद या उद्यान वाटिका।

अध्याय 10

राजस्थान मे जागीरदारी प्रथा (3)

रखवाली—पूर्वी और पश्चिमी राज्यो की साम त शासन पद्धति के एक जसे नियमो पर हम इस अध्याय म प्रकाश डालने की कोशिश करेग । पचायती व्यवस्था क शिथिल होने तथा चारा ओर अशाति फलने से, राजाओ की शासन शक्ति क कमजोर पड जाने से, प्रजा के धन और प्राण की रक्षा मे असमर्थ होने के कारण राजपूत राज्यो म जिस नये कर का ज म हुआ, उस "रखवाली" (अर्थात् 'सुरक्षा शुल्क") के नाम से प्रसिद्धि मिली ।[1] इसी प्रकार की अशाति और अरक्षा के दिनो मे यूरोपीय राज्यो म मलवामे दा' नामक कर लगाया गया था । रखवाली शब्द का अर्थ है— रक्षा करना, आश्रय देना । राजपूत राज्यो मे इस प्रकार का कर पूवकाल म भी कुछ कुछ प्रचलित था पर तु पिछले पचास वर्षो से यह कर भयानक हो उठा और शोचनीय रूप से प्रजा का खून चूसता था ।

धन प्राण और भूमि सम्पत्ति की रक्षा के लिये ही प्रजा सबल साम तो क आश्रय को ग्रहण करके रक्षा के बदले मे यह रखवाली कर देने को विवश हुई थी । जिन लोगो ने रक्षा करने का कार्य किया उनको उसका मूल्य अदा किया गया । यह अदायगी कई तरीको से की गई । प्राय नगद रुपये अथवा खेतो की पदावार मे या रक्षा करने वाले साम त की भूमि को कई मास तक बिना कुछ लिये जोत कर अदा किया जाता था । इसके अलावा, साम त लोग अपनी इच्छानुसार दूसरे स्वाथ भी पूर्ण कर लेते थे ।

जिन लोगा ने दूसरा को आश्रय देन का व्यवसाय आरम्भ किया उनका मुख्य प्रयोजन आश्रितजना की भूमि पर अधिकार करना रहा । कारण कि साम तगण यदि राणा के द्वारा किसी प्रकार से साम त पद तथा जागीर से वचित कर दिये जाय और उ हे भूस्वत्व छोडन को विवश होना पडे, तो इस भोमिया स्वत्व द्वारा प्राप्त भूमि से सहज म जीविका निर्वाह की जा सकती थी । भोमिया स्वत्व की भूमि को राणा किसी प्रकार भी अपन अधिकार म नही कर सकते थे । रखवाला के नाम पर साम त जिस भूमि पर अधिकार पा जाते थे उसके व सदा के लिये स्वामी बन

जात थ और उसम फिर किसी प्रकार का सशोधन और परिवतन नही होता था। भूमिया साम तो की तुलना हम यूरोप के उन साम तो के साथ कर सकत ह जो किसी प्रकार का कर अपन राजा को नहीं देत थ।

दासत्व—अशांति और अराजकता के दिना म प्रजा न जिन लोगा का आश्रय लिया था, उन्होंन प्रजा की रक्षा तो की पर तु रक्षा के बदले म प्रजा क भूस्वत्व को अपने अधिकार म लेना प्रारम्भ कर दिया। यह पहले लिखा जा चुका है कि राणा की जो भूमि साम तो को नही दी जाती थी वह राणा के अधिकार म रहती थी और उस पर आबाद प्रजा की रक्षा करना, राणा का कतव्य था। अशांति बाह्य अथवा चारो ओर आक्रमणो के दिनो म राणा की शक्तियाँ काफी निबल पड गई और राणा क अधिकार वाली भूमि पर आबाद प्रजा के सामन अपना धन और प्राण बचाने की विकट समस्या उत्पन्न हो गई। ऐसी स्थिति म प्रजा को अपन समीपवर्ती सबल सामन्त का आश्रय लना पडा। उस आश्रय क बदल म प्रजा को उस साम त की दासता स्वीकार करनी पडी। जिन लोगो न इस प्रकार की दासता स्वीकार की उन्ह वष म कई कई महीन साम त की आज्ञानुसार साम त के खेतो पर काम करने के लिए जाना पडा। यह अवस्था मेवाड राज्य म अपन आप फैली और इससे दासता स्वीकार करन वालो को अपार कष्टो का सामना करना पडा। अत म 1818 ई म राज्य के सामन्तो न राणा के साथ जो समझौता किया उससे इस शोचनीय स्थिति का अत हुआ।

बसी—पूवकाल म यूरोप के देशो म गुलामी की प्रथा रही थी। उन दिनो म वहा पर जिस प्रकार के गुलाम थे उनकी अवस्था बहुत कुछ यहा के राज्यो के उन लोगो से मिलती जुलती है, जो अपनी अरक्षित अवस्था मे साम त लोगो की सहायता प्राप्त करत थ और इसके बदले म वष मे कुछ मास उनके खेतो पर नि शुल्क काम किया करते थे। दोनो की परिस्थितियाँ एक जसी थी। दोनो की दासता और विवशता अनेक अर्थो मे एक जसी थी, फिर भी दोनो को एक श्रेणी का गुलाम नही कहा जा सकता। इन दासो के सम्ब ध म इतिहासकार हालम ने जो कुछ लिखा है उसके पढ़न से मालूम होता है कि इन दासो की विवशता बिल्कुल दासता का रूप रखती है। स्वाधीन राजपूत और राजवशीय लोगो के अधीन गोला नामक उपाधिधारी दासो म "बसी" नामक एक श्रेणी म दासो का उल्लेख देखा जाता है। यह बसी लोग सालिक फ्रांको के प्राचीन 'मारभि" नामक दास श्रेणी के प्राय समान है। हालम न लिखा है कि मराभ दासो की निज सम्पत्ति होने पर भी वह अपन स्वामी के अधीन कृषि काय और स्वामी की जागीर म ही निवास करने को बाध्य होत थे। हालम ने लिखा है कि 'लूटमार और अत्याचार के दिनो मे भूमि के निबल अधिकारियो की स्वत त्रता नष्ट हो गयी है। उनकी भूमि पर दूसरे लोग स्वामी बन बठे है और जो असली मालिक थ, व दासता का जीवन बिता रहे हैं।"

अगावनी की एक श्रेणी के किसान जो इस समय "हाली"[2] नाम से प्रसिद्ध है उनकी दशा पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। साम तो का आश्रय लेने से वे लोग पूरी तरह से दासता में आ गये हों, यह पूरे तौर पर सही नहीं है। मेवाड़ राज्य में बहुत दिनों से जिस प्रकार के अत्याचार हो रहे थे और उनके परिणाम स्वरूप जिस श्रेणी की दासता उत्पन्न हुई है वह 'वसी' के नाम से प्रसिद्ध है। कोटा राज्य के हाली लोग भी यद्यपि दासों के समान ही हैं, परन्तु उनमें और वसी लोगों की स्थिति में काफी अन्तर है। वसी लोगों की दशा उनकी अपेक्षा शोचनीय है। क्योंकि उनकी निज की किसी प्रकार की धन सम्पत्ति या भूमि नहीं है। पहले जिस भूमि पर उनका अधिकार था, इस समय उस भूमि पर साम तो का अधिकार है और उनकी आज्ञानुसार जीविका निर्वाह के लिये उस भूमि पर खेती करने को बाध्य हैं। इस प्रकार वसी लोग साम तो के ऋण जाल में ऐसे फसे हुए हैं कि उनका उससे कभी छुटकारा नहीं हो सकता। वे जीवन भर उनकी दासता स्वीकार करने के लिये प्रत्येक अवस्था में बाध्य हैं। किन्तु इस समय इस वसी श्रेणी की शोचनीय अवस्था में काफी सुधार हो गया है।

गोला—गोला का अर्थ है, दास अथवा गुलाम। पुराने समय में दुर्भिक्ष के दिनों में ही राजस्थान में इस श्रेणी की उत्पत्ति हुई थी। भीषण अकाल के दिनों में हजारों लोग दास रूप में बाजार में बेचे जाते थे। लूटमार करने वाले पिण्डारों और पहाड़ी दुर्दान्त जातियों के द्वारा यह दास बेचने की प्रथा बहुत काल से प्रचलित थी। वे लोग असहाय राजपूतों को पकड़कर अपने साथ ले जाते और अन्यत्र बेच आते थे।

फ्राको में दासगण जिस प्रकार अपनी माता के द्वारा स्वाधीनता पाते थे, राजपूत राज्यों में भी उसी प्रकार गोला लोग माता के गुण के अनुसार स्वाधीनता पाते थे। गोली अर्थात् दासी के लड़के लड़की भी गोला अथवा गोली बनने के लिए बाध्य थे। इस कारण ही राजपूत परिवारों में जो असंख्य गोला थे, उनकी उपपत्नियों के गर्भ से उत्पन्न हुई सन्तान आज तक मेवाड़ में देखी जाती है। यूरोपीय देशों में इसी प्रकार के सबमन दास होते थे और उन्हीं के समान गोला लोग भी दास चिह्न स्वरूप गले के बदले बायें हाथ में चांदी का खड़ुआ (कड़ा) पहनते हैं। उनके स्वामी उनके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं और उनमें से बहुत से शिक्षित सैनिकों में गिने जाते हैं। किन्तु पहले ही लिख चुके हैं कि वह अपनी माता के वंश और गुण के अनुसार ही आदर पाते हैं। देवगढ़ के मृत सामन्त के प्रपितामह जब राजधानी उदयपुर में आते थे तो उनके साथ तीन सौ अश्वारोही गोला सैनिक आया करते थे। प्रत्येक गोला सैनिक के बायें हाथ में एक सोने का कड़ा पड़ा रहता था। इन गोला सैनिकों का जीवन सब प्रकार से उन सामन्त के अधीन था। उक्त सामन्त उस समय अपने प्रधानस्थ सरदारों में से दो हजार सैनिक लेकर रणक्षेत्र में जाते थे।[3]

प्राचीन काल म जमन जातिया म जुआ खलन का बहुत प्रचार था। टसीटस नामक रामन इतिहासकार न लिखा है कि जुआ खलत हुए अन्त म जा लाग हार जात थ, उन्ह गुलामा क बाजार म ल जाकर बच दिया जाता था। जमना की भाति राजपूत जाति भी जुआ खलन म रुचि रखती थी, इस बात का उल्लख यथास्थान किया जा चुका है। सकडा वर्षों पहल राजपूता म यह प्रथा प्रचलित थी इस बात का पता भारत क इतिहास तथा पुराणा स ज्ञात हाता है। यदि पाण्डवा और कौरवा म जुआ खलन की प्रथा न हाती ता कुरुक्षत्र का महाभारत न हाता और उस महाभारत म अगणित वीरा का अपन प्राणा का आहुतियाँ न दनी पडतीं। जुआ क कारण ही युधिष्ठिर का अपना राज सिंहासन खाना पडा और पाण्डवा का द्रौपदी का असह्य अपमान भी चुपचाप सहन करना पडा। जुआ खलन क दुष्परिणामा का बहुत बडा इतिहास हिन्दुआ क ग्रथा म है। परन्तु भारतवष क रजवाडा म अब भी अनक हिन्दू जातियें जुआ खलन म उन्मत ह।

राजपूत साम ता क औरस स उत्पन्न दासी पुत्र जिस प्रकार गाला नाम स विख्यात है, वस ही राणा लागा क औरस न उसी प्रकार राजपूताना दासिया क गभ स जा ज म लत है, व भी गाला ही कहलात ह। इन दासा का साम ता अथवा राणा से जीवन निर्वाह क लिए भूमि मिलती है, कि तु उनका सभी पचायता म किसी प्रकार का काइ प्रतिष्ठित पद नहीं दिया जाता। समाज म भी उनकी काई खास प्रतिष्ठा नहीं मानी जाती।

वसी और गाला दाना ही गुलाम ह। वसी लाग अपनी इच्छानुसार दास नाम से विख्यात हैं, जबकि गाला लाग वशानुक्रमिक दास नाम से कह जात ह। गाला कवल गोली अर्थात् दासी ही क साथ विवाह कर सकता है। राणा लोगो क औरस म उत्पन्न दासी पुत्रा का साधारण स साधारण राजपूत भी अपनी क या देना नहीं चाहता। वसी लोग भाग्य परिवतन क साथ अपना क्रीत दासत्व छुडाकर व्यक्तिगत स्वाधीनता फिर प्राप्त कर सकत हैं। पर तु गाला लोग वसी स्वाधीनता पाना नहीं चाहत क्याकि भूवृत्ति पान क बाद भी व अपनी दशा का श्रेष्ठ नहीं बना सकत है अर्थात् ज म दाष क कारण वह राजपूत समाज म मिश्रित हान म सवथा असमथ है। वसी लागा को एसा काइ ज म दाष नहीं है। व क्रीत दास होन क उपरान्त भी अपने चिर अवलम्बित काय साधन और सामाजिक रीति नीति के अनुसार आदान प्रदान करा सकत ह। कि तु व साम त की अनुमति क बिना अपनी स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकत।

राजपूत राज्यो म वसी लागा की भाति दासो की एक दूसरी श्रेणी भी विद्यमान था। शत्रुओ अथवा डाकुओ क द्वारा जो लाग ब दी बना लिय जाते थे वे पश्‍ किसी साम त अथवा अ य किसी व्यक्ति क द्वारा ब दी जीवन से उद्धार पाते थे तो

वे व दी लोग मुक्ति दिलान वाले ्यक्ति के दास हा जात थे। यहा तक कि किसी किसी समय इसी प्रकार की विपत्ति म पडकर किसी किसी क्षेत्र क सम्पूरा नर नारी धन, प्राण, धम और सम्मान की रक्षा के लिए उद्धारकर्त्ता क दास दासी बन जाते थे। बसी लागो का कुछ इसी प्रकार का इतिहास है और इसके सही होने क बहुत से प्रमाण ग्रार उदाहरण मिलते हैं। बिजौली के रहन वाले बहुत से लोग परमार सामन्तो के बसी कहे जात है। बारह वप पूव परमार सामन्त के साथ बहुत से लोग मेवाड मे आये थे और राणा ने उन लागा का बसन के लिए अपने राज्य की भूमि दी थी। यद्यपि राणा उन सवक प्रभु है पर तु वे लोग परमार साम त के बसी लोग ह ।[4]

गोला लोग जिस प्रकार अपने बायें हाथ म दास के चि ह रूप कडा (खडवा) पहनत है बसी दासो के मस्तक पर उमी प्रकार एक बाला का गुच्छा रहता है। बसी लाग गुलामा की एक जाति मे मान जात हैं पर तु उनम और गोला लोगो मे अ तर समझा जाता है। बसी शब्द गोला शब्द की भाति अपमानसूचक नही है। बसना व बस्ती शब्द से ही बसी शब्द बना है। बसी शब्द का यथाथ अथ उपनिवेशी या निवासकारी है। पूवकाल म अनक साम त विभिन्न कारणो से अपनी पतृक भूमि छोडकर अपन अपन सम्पूरा अनुचरा के साथ भिन्न भिन्न देशो मे जाकर वास करते थे उस भाव से ही भारत के अनेक प्रा ता मे बहुत से इलाके (बस्ती) बसी नाम से पुकारे जाते है। टोक (रामपुरा) राज्य के समीप बसी नाम का एक प्रसिद्ध नगर है। इस नगर का यह नाम इसी कारण से उत्पन्न हुआ है। किसी सोलकी राजा न किसी आक्रमणकारी क अत्याचार से अपना पतृक राज्य (गुजरात मे) छोडकर इस स्थान पर बस्ती बसाई थी। उनकी प्रजा भी स्वेच्छा स उनके साथ ही यहा आकर बस गई थी। पर तु इस बसी नगर के निवासियो को अब तक लोग भ्रम वश बसी गुलाम मानत है। कृतज्ञ चित्त स बहुत से राजपूत यही कहते है कि, 'म आपका बसी हू, आप मुझको दास रूप म बेच सकत हैं।'[5]

आपसी कलह और प्रतिशोध—राजपूतो के पतन और सवनाश का कारण बाहरी आक्रमणकारियो के अत्याचार की अपेक्षा उनकी आपसी कलह और वमनस्य अधिक है। इस जाति म प्रतिशाध की भावना बहुत प्रबल है और इस भावना ने ही मेवाड को श्मशान बना दिया है। मेवाड के इतिहास म इस प्रकार के कई दृष्टा त मिलत हैं जिनके विवरण पढने से पता चलता है कि आपमी कलह और प्रतिशाध की ज्वाला म जलते हुए राजपूता न क्म कसे अनय किय। इस समय मवाड की परि स्थितियाँ बदल गई है और राजस्थान का परम रमणीक राज्य मेवाड अब फिर स सुख और शा ति का जीवन व्यतीत करने लगा है। अ यथा मेवाड के ध्वस हाने म कुछ बाकी न रहा था। भयानक बाघ और जगली शूकर राजधानी उदयपुर म घूमा करत थ और राजप्रासाद के रमणीक कमरा म गीदड निभय होकर रहन लग थ।

प्रासाद के स मुख स्थित जिस बडे ग्रागन म सामन्तगण ग्रपन ग्रपन सरदारा के साथ उपस्थित हाकर परम शाभा की वृद्धि करत थ, वह भूमि भी घास फूस स भर गई थी। यह चित्र ग्रत्यन्त हृदय भेदी है। परन्तु वह समय मवाड के जीवन से ग्रव तिराहित हो चुका है। यह प्रसन्नता की वात है।

राजस्थान के प्रत्यक राज्य म ही वदला लन की प्रवृत्ति ग्रधिक प्रवल है। प्रत्यक राजपूत भी साधारण सी बात का भी बदला लेना चाहता है। कोई राजपूत यदि उसका वदला न लकर चुप हा जाय ता सव उसका घृणा की दृष्टि से देखते ह। जिस दश म राजनियम व्यक्तिगत ग्रत्याचार ग्रौर स्वच्छाचार दमन करन मे ग्रसमथ है उस दश क मनुष्य जिस प्रकार यथच्छाचरण करन मे निभय प्रवृत्त होते है राजपूत जाति म भी हम उसी प्रकार दग्वत ह। राजपूता म वदला लन की भावना इतनी प्रवल ह कि यदि दो भिन्न वश ग्रथवा परिवारा म एक बार किसी कारण स वमनस्य उत्पन हा जाने पर पीढी दर पीढी वदला लते चले जाते हैं। ग्रात्म सम्मान की रक्षा के लिए प्रतिशोध की भावना प्राचीन सैक्मन लागा म भी माजूद थी। उन लोगो म यह नियम था कि यदि कोई किसी के शरीर का कोई अग नष्ट करता तो उसकी क्षतिपूर्ति के लिए ग्रथ दण्ड दना हाता था। उगली ग्रगूठे ग्रादि प्रत्येक ग्रवयव का मूल्य निर्धारित था। पर तु राजपूत उनस वहुत ग्रागे है ग्रौर सदा ग्रागे है। वे खून क बदल म खून चाहते है। ग्रथ दण्ड से राजपूतो को कोई स तोप नही होता।

कवल एक उपाय के द्वारा ही यह विपम ग्रात्मकलह ग्रौर प्रतिहिंसा समाप्त हो सकती है, किन्तु वह उपाय राजपूत जाति म घृणित समझा जाता है। ग्रापसी विवाद क ग्रारम्भ होन ग्रौर उस कारण स दाना के वदला लेने म उतारू होने पर यदि क्षतिग्रस्त राजपूत क्षमा प्राथना करे ग्रथवा ग्रत्याचारी यदि उसके ग्रधिकृत स्थान पर जाकर क्षमा चाह, तो परस्पर की शत्रुता दूर हा जाती है। इसके बाद वदला लना समाज म कलकित ग्रौर ग्रपमानित समझा जाता था। पर तु मौजूदा समय म निर्जीव ग्रार जातीय गुणा स हीन राजपूत इस माग का ग्रवलम्वन करत है।

शाहपुरा का राजा मवाड के साम ता म ग्रत्य त शक्तिशाली था। वह राणा वश म उत्पन्न हुग्रा था। एक समय शाहपुरा क साम त उम्मदसिह ग्रौर ग्रमरगढ के भोमिया राणावत सरदार दिलील क मध्य क्लश उत्पन्न हो गया। उम्मदसिह के पास दो जागीरें थी एक राणा स मिली हुई थी ग्रौर दूसरी दिल्ली के बादशाह से। दाना जागीरा स उस बीस हजार पौड की वार्पिक ग्राय थी। वाणिज्य शुल्क ग्रादि से हाने वाला ग्राय ग्रलग थी। राणा से मिली जागीर माडलगढ जिल म थी ग्रौर उसी जिल म भोमिया साम त दिलील भी रहता था। दिलील एक साधारण साम त था ग्रौर उसक ग्रधिकार म कवल दस गाव थ। इनम उस ग्यारह सौ पाड वार्पिक की ग्राय थी। उम्मदसिह क कुछ गावा की सीमा दिलील के गावा से मिली हुई थी। सीमा त

भूमि को लेकर प्राय दोनो मे विवाद बना रहता था और कभी कभी झगडा फिसाद भी हो जाता था। दोनो सरदारो के किसान लोग आपस म झगडा कर बठते और उनके झगडे का प्रभाव दोनो सरदारो पर भी पडता।

राजा उम्मेदसिंह एक शक्तिशाली व्यक्ति था परन्तु अपनी प्रजा म अप्रिय हो रहा था। दिलीप का जीवन दूसरी तरह का था। सम्पूर्ण प्रजा का न्यायानुसार शासित करने से दिलीप सबका प्रिय था और उसके स्वजातीय भाई ब धु उसके लिए हर समय तलवार धारण करने मे तत्पर रहते थे। दिलीप का दुग और महल एक शिखर पर बना हुआ था और उसके पश्चिमी भाग (शाहपुरा की तरफ) म ऊची चोटी के महल पर कई तोपें सज्जित रहती थी। दुग और महल के चारो ओर गहन जगल है, केवल दो तीन दुगम मार्गों म होकर उस दुग मे प्रवेश किया जा सकता था। उस कारण कोई शत्रु सहसा उसम घुस कर आक्रमण नही कर सकता था। अतएव शाह पुरा सामन्त के प्रबल सामर्थ्ययुक्त और रणक्षेत्र मे हजार योद्धा उपस्थित करने म समर्थ होने पर भी दिलीप निर्भय निवास करता था।

दिलीप स्वाभिमानी व्यक्ति था और उसे राजा उम्मेदसिंह से किसी प्रकार का डर न था। दोनो सीमाओं की बीच की भूमि को लेकर दोनो पक्षो म अनेक बार झगड हो चुके थे जिनम दिलीप न सदा बडी निर्भीकता से काम लिया था। उम्मेदसिंह उसे किसी प्रकार की क्षति नही पहुँचा सका। दिलीप समय समय पर शाहपुरा के गावो म घुस कर गौ आदि पशु लूट लेता और धनवान लोगो को ब दी बनाकर अमरगढ के कारागार म डाल देता और समुचित धन लेकर उनको रिहा करता। राजा और सामन्त के बढते हुए विवाद से दोनो पक्षो के किसानो को यथेष्ट हानि होती थी। कृषि काय चौपट हो गया और शाहपुरा जागीर वाले गावो के लोग प्राण बचाने के लिये अन्यत्र भागने को विवश हुए। राजा के आस-पास के दूसरे भोमिया सरदार भी उससे अप्रसन्न थे। इसका कारण उम्मेदसिंह का अहकार था। इस निरन्तर विवाद से प्रजा भी बरसो तबाही कर देते देते कगाल हो गई थी।[6]

शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह एक अस्थिर चित्त और पाषाण हृदय पुरुष था। एक बार उसने क्रोधित होकर अपने पुत्र की कमर म रस्सी बाधी और उसे मंदिर की ऊची चोटी म बाध कर लटका दिया तथा उसी की माता को बुलाकर वह हृदय विदारक दृश्य दिखलाया था। वह सदा घोडे पर अथवा शीघ्रगामी ऊट पर चढकर अकेले घूमा करता था। बीच बीच म कई दिन तक उसका कोई समाचार भी नही पहुँचता था। एक दिन राजा उम्मेदसिंह इसी प्रकार अकेले में घूमता हुआ अमरगढ पहुँच गया। दिलीप न शत्रुता का आचरण न करके बडे आदर के साथ राजा का सम्मान और अतिथि सत्कार किया और राजा की स्वास्थ्य की कामना से मनुहार प्याला' पिया। फिर दोनो न साथ बठकर भोजन किया और परस्पर की शत्रुता सदा के लिये छोड देने की प्रतिज्ञा की।[7]

इस घटना के कुछ दिन बाद मेवाड के सभी साम त किसी अवसर पर उदयपुर म एकत्रित हुए। उम्मदसिंह और दिलीन भी वहा पहुँचे थे। उदयपुर से वापस लौटन समय उम्मदसिंह न दिलील को शाहपुरा चलने के लिये निमन्त्रित किया। दिलील न हृदय से साथ निमन्त्रण स्वीकार किया और अपने तीस अश्वारोही सनिको के साथ शाहपुरा पहुँच गया, जहा उम्मदसिंह न उसका बडा आदर सत्कार किया। दोनो न एक साथ बठकर भोजन किया। नाच और गाना भी हुआ। पिछली शत्रुता भुला देने के लिए दोनो मन्दिर म गये और प्रतिज्ञायें की। मन्दिर म लौटते समय जब दिलील सीढिया स उतर रहा था, उम्मदसिंह की तलवार न दिलील का सिर काट दिया। साम त दिलील न वही दम तोड दिया। मन्दिर की सीढिया रक्त स सराबोर हो उठी। उम्मदसिंह इसस भी स तुष्ट नही हुआ। उसन दिलील के शरीर पर से सारे आभूषण उतार लिये और कटे हुए सिर पर लात मारकर दुवचन कहे। विश्वासघाती उम्मदसिंह द्वारा अपने पिता की उस शोचनीय मृत्यु को सुनकर दिलील के पुत्र न बदला लेने की तयारी की। यह समाचार राणा के पास भी पहुँचा। इससे राणा को गहरा दुःख हुआ। राणा ने दोनो पक्षो म युद्ध रोकने की भरसक कोशिश की और वह स्वय मध्यस्थ बना। उम्मदसिंह न दिलील के जो आभूषण छीन लिये थे, वे सब दिलील के पुत्र को वापस दिलवाये गये और उम्मेदसिंह की जागीर म स पाच प्रसिद्ध गाव भी दिलील के पुत्र को दिये गये। जो जागीर मेवाड की तरफ से उम्मदसिंह को दी गयी थी, उसके पाच गाव जो साम त के पुत्र को दिये गये—छोडकर शेष सम्पूर्ण जागीर पर राणा न अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार, राणा न विश्वासघाती उम्मेदसिंह को सजा दी।

इस प्रकार के सैकडो दृष्टा त यहा दिये जा सकते है।[8] ऐसे अवसरो पर राजपूत लोग यदि क्षमा मागना और क्षमा करना सीख ले तो उनकी कलह आसानी स खत्म हो सकती है। प्राचीन इतिहास के पढने से पता चलता है कि कलह को मिटाने तथा शत्रुता को मित्रता म बदलने के लिए कई प्रकार की प्रथाए थी। उन प्रथाओ म एक ववाहिक प्रथा भी थी। अपराधी पक्ष दूसरे पक्ष के राजा के साथ शत्रुता समाप्त करने के लिए अपनी कन्या अथवा बहन का विवाह कर देता था। परस्पर मित्रभाव से मुलाकात और शत्रुता छोडने की प्रतिज्ञा करने की अपेक्षा यही उपाय उत्तम है।

सीमा विवाद को लेकर ही साम तो म सदा विवाद और आत्म कलह उपस्थित होता था। जसलमेर और बीकानेर राज्यो के सीमान्तवर्ती झगडे अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। सीमा त विषय का विवाद इस समय बिल्कुल दूर हो गया है। भविष्य म ऐसे झगडे नही होंगे इसकी पूरी आशा की जाती है। इसी आधार पर इस समय न केवल राजपूत राज्यो मे अपितु भारत के सम्पूर्ण देशी राज्यो मे शान्ति दिखाई दे रही है।

राजा और मन्त्री– राजस्थान के साम त राजाओं को किस किस आज्ञा पालन के लिये वाध्य है और राज दरबार में कितने दिन तक रहकर क्या क्या काय करते हैं, इन सब बातों को यथास्थान म लिख चुके है। राज्य मे ऐसे कितने ही अवसर आते हैं, जब साम तो को अपने परिवार के साथ राजधानी म आकर निवास करना पडता है। राजधानी म रहने का उनका समय निर्धारित होता है। राजधानी म उनके साथ उनके सैनिक और नौकर चाकर भी उस अवधि म उनके साथ रहते हैं। इस नियम के अनुसार उदयपुर राजसभा सदा ही साम तो स पूर्ण रहती है। किन्तु मेवाड म ऊँची श्रेणी के साम त अधिक अनुग्रह और स्वाधीनता भोगते हैं। अन्य राज्यों म साम त लोग जिस प्रकार शृंखलाबद्ध होकर राजा की आज्ञा पालन में तत्पर दिखाई देते हैं मेवाड के ऊँची श्रेणी के साम त उतने नहीं। मेवाड में विशेष विशेष पर्वोत्सव और राजकीय नवीन अनुष्ठानों के समय भी वे अपनी सेनायें लेकर राजधानी म नही आते।

कोई राजनीतिक प्रश्न अथवा युद्ध उपस्थित होने पर मेवाड के सभी सामन्त राजधानी म आकर राणा को अपना अपना परामर्श देते है और उस प्रश्न की समालोचना करते है। राणा उनके परामर्शों को सुने बिना कोई निर्णय नहीं लेता। कुछ ऐसे अवसर भी राणा के सामने आते है जब वह अपने प्रधान साम तो से परामर्श करके कोई निर्णय लेता है। ऐसे अवसरों पर राणा अपने प्रधान साम तो को राजधानी पहुँचने का निमन्त्रण भेजता है।

साम त लोग जिस समय राजधानी म निवास करते है उस समय प्रत्येक को सप्ताह मे एक एक दिन अपने अनुचरो सहित सभागृह और प्रासाद की रक्षा म नियुक्त होना होता है। उक्त काय साधन के लिए जब साम त अपने अनुचरो सहित प्रासाद के स मुख वाले आगन म पहुँचता है तो राणा को उनके आगमन की सूचना दी जाती है और राणा सम्मान के साथ उनका अभिन दन स्वीकार करते हैं। इसके बाद साम त अपने अनुचरों सहित बडे दरीखाने (सभामण्डप) मे प्रवेश करता है जहा उनके बैठने के लिये बडा गलीचा पहले से ही बिछा दिया जाता है। भोजन के समय राणा उस साम त को भोजन के लिये आमन्त्रित करता है। तब सामन्त 'रसोडा' अर्थात् भोजनशाला म जाकर राणा के साथ भोजन करता है।[9] रात भर सुरक्षा का काम कर दूसरे दिन साम त राणा के प्रति सम्मान दिखाकर विदा होते है।

यदि किसी समय राणा किसी कारण स साम तो को बुलावे तो साम त शीघ्र ही वहा उपस्थित हो जाते है। साम तो की पदमर्यादा के अनुसार ही रुक्का अर्थात् बुलाने का पत्र लिखकर भेजा जाता है। प्रधान प्रधान साम तो का बुलावे का पत्र राणा के गोपनीय पुरुष अपने हाथो से लिखकर राणा के नाम की मोहर

ग्रक्ति करत है ग्रार उमरा व द करक उसक ऊपर राणा की गुप्त ग्रगूठी चिन्ह भी ग्रक्ति कर देते है।

राजस्थान के सभी राज्यो मे ही साम त श्रेणी मे जो सबसे चतुर, वीर साहसी, वुद्धिमान ग्रौर षडयन्त्र कुशल है वही राजा का चित्त प्रसन्न करके मत्रीपद पर ग्रधिकार कर लेते हैं। राजा की प्रसन्नता ही मत्री होने वाले साम त की योग्यता समझी जाती है। कि तु वह साम त मत्री दीवानी शासन विभाग मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही कर सकत। उस विभाग का सम्पूण काय एक स्वतत्र मत्री देखता है। राजपूत मत्री राज्य के युद्ध विभाग के मत्री के रूप मे गिने जाते ह। दीवानी विभाग क मत्री पद पर राजपूत जाति का कोई पुरुष नियुक्त नही किया जाता। कार्यो के ग्रनुसार मत्रिया को उपाधिया दी जाती हैं जो सभी राज्यो मे एक समान नही है। उदयपुर मे "भञ्जगड", जोधपुर मे "प्रधान", जयपुर मे 'मुसाहिब" ग्रौर कोटा मे "किलेदार" तथा 'दीवान' नाम से वे लोग विख्यात ह। राजपूत मत्री राज्य की सामरिक श्रेणी ग्रौर नीची श्रेणी के कमचारियो पर पूरा ग्रधिकार रखते है।

राजस्थान क कई राज्यो मे वशानुक्रम से मत्रित्व प्राप्ति का विधान प्रचलित है। यह प्रथा वहुत पुरानी है। कुछ ग्रर्थो मे यह प्रथा ग्रच्छी कही जा सकती है। लेकिन ग्रामतौर पर इस प्रकार की प्रथाग्रो का परिणाम ग्रच्छा नही हुग्रा करता। जिस समय मेवाड के राणा ने ब्रिटिश सरकार के साथ प्रथम सधि की थी उस समय राणा के दूतो ने ग्रग्रेज प्रतिनिधि से सधि पत्र म एक ग्रौर धारा लिखन का निवेदन किया था। वह धारा इस प्रकार थी, "मेवाड के प्रधान ग्रर्थात् सामरिक मत्री पद पर सलूम्बर का साम त वश जिस प्रकार सदा से नियुक्त होता ग्रा रहा है, वह पद उसी प्रकार उक्त वशधरो को ही मिल सकेगा, सरकार ऐसा वचन दे।' यथाथ म ही उक्त पद सदा से सलम्बर साम त लोगो को मिलता चला ग्राता है किन्तु यथा समय उस प्रणाली के द्वारा ही मेवाड का सवनाश हुग्रा था।

राणा जिस समय किसी कारण स राजधानी छोडकर वाहर जात, उस समय नगर शासन ग्रौर प्रासाद की सुरक्षा का भार सलूम्बर साम त को ही सौपा जाता था। राणा के वशधरो का सन्य प्रशिक्षण भी उसी की देखरेख मे होता था। तलवार वधाई ग्रौर ग्रभिपेक के समय नवीन राणा के माथ पर राजटीका भी सलूम्बर साम त लगाता था। युद्ध क समय सवसे ग्राग सेना ल जाना ग्रौर वाह्य ग्राक्रमण क समय दुग की रक्षा करना उसका मुख्य काम था। सलूम्बर साम त सपरिवार दुग म ही एक मनोरम महल मे रहत थे।

मवाड की भाति मारवाड राज्य म ग्राऊवा के साम त के वशधर उत्तराधिकारी क्रम से वहा के "प्रधान" ग्रर्थात् सामरिक मत्री का पद ग्रौर बडा सम्मान

पाते थे । आऊवा के साम त कुशालसिंह का मारवाड के राजा से विवाद हो गया और साम त ने अपनी मृत्यु के समय अपने वंशधरो को हिदायत दी कि वे भविष्य कभी 'प्रधान' पद स्वीकार न करे । तब आमोप के सामन्त घराने को प्रधान पद सौंपा गया । परन्तु राज्य म जिस प्रकार से हत्याओ का सिलसिला बढ़ने लगा उससे दुखी होकर आसोप के साम त ने "प्रधान" पद त्याग दिया । इसके बाद निमाज और पोकरण के दानो साम तो ने सम्मिलित रूप से कुछ समय तक राज्य के प्रधान पद पर कार्य किया । परन्तु राजा की कोपदृष्टि के कारण निमाज के साम त को अपने जीवन से ही हाथ धोना पडा । पोकरण के उस समय के सामन्त के पर दादा देवीसिंह अपने पाच सौ सैनिकों के साथ जोधपुर के प्रासाद में प्रधान सभा में रात्रि के समय सात थे । वह जैसा साहसी और पराक्रमी था, वैसा ही वीर भी था और सदा घमण्ड के साथ कहा करता था कि "मारवाड का सिंहासन मेरी इस तलवार के ऊपर है ।' मारवाड नरेश ने घटना क्रम से देवीसिंह को बन्दी बना कर प्राण दण्ड की आज्ञा दी । उसकी मृत्यु के पूर्व जब राजा ने उससे पूछा कि अब वह तलवार कहा है ? मृत्यु मुख म फसे उस वीर ने तत्काल उत्तर दिया 'पोकरण म अपने पुत्र के पास उसको रख आया हूँ । देवीसिंह के पुत्र सावलसिंह ने संहार मूर्ति धारण कर राजा को गहरे संकट म धकेल दिया । राजा लाख कोशिश के बाद भी पोकरण के अभेद्य दुर्ग पर अपना अधिकार नही कर पाया ।

कोटा और जैसलमेर के राज्यों मे मन्त्रियो के अधिकार और भी अधिक हैं। फ्रांस के इतिहासकार मान्टेस्क्यू ने अपने यहा के मन्त्रियो के सम्बन्ध म लिखा है यहा के मन्त्री अपने राजाओ को महलो म बन्दी बना कर रखा करते थे और वे राजाओ को वर्ष म एक बार प्रजा के सामने आने का अवसर देते थे । उस समय राजा अपनी प्रजा के सामने उतना ही बोलते थे जितना कि मन्त्री उसे सिखाते थे ।' फ्रांसीसी इतिहासकार के ये शब्द कोटा और जैसलमेर के मन्त्रियो के कार्यों का चित्र हमारे सामने उपस्थित करते हैं ।

गोद लेने की प्रथा—पुत्र के अभाव म गोद लेने की प्रथा, राजपूतो मे सनातन से चली आ रही है । यह प्रथा पैतृक अधिकारो को सुरक्षित रखने के लिये राजाओ म उत्पन्न हुई थी । इस प्रथा के प्रभाव से मेवाड के राणा और सामन्त के सामने उत्तराधिकारी का अभाव नही रहता । सम्मान उपाधि और वंश रक्षा के निमित्त ही पुत्र के गोद लेने की रीति प्रचलित है । यह पुत्र का गोद लेना चाहे कितना ही मूल्यवान समझा जाय और चाहे देशी पचायत सभायें इस रीति को पुष्ट करें किन्तु जिस भाव से पुत्र गोद लिया जाता है वह अत्यन्त बुद्धिहीनता का जताने वाला और शोचनीय है । केवल युद्ध सम्बन्ध वाली जाति की दुर्दशा और राणाओ की शक्ति के ' से ही यह शोचनीय दृश्य समय समय पर देखे जाते थे ।

पुत्र न होने पर गोद लेने का काय प्राय जीवन काल मे ही होता है। साम त सबसे पहिने अपनी स्त्री के साथ परामश और विचार करता है और किसी लडके का निर्णय करता है। उसके बाद वह अपने अधीन सरदारो के सामने उस लडके का नाम प्रकट करता है और फिर अपने विचार अपने राजा के सामने रखता है। राजा अधिकतर साम त के निणय एव चुनाव को स्वीकार कर लेता है। जिस बालक को गोद लिया जाता है, वह साम त का अति निकट सम्बन्धी होना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो दूसरे समीपी विवाद खडा करके विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित कर देते हैं। उस समय राजा उसका निणय करता है। विधान के अनुसार, निकटवर्ती वशज को गोद लेने के लिए राजा अपना निणय देता है और उसके कारण जो झगडा पैदा होने वाला होता है, उसको वह रोकने का प्रयास करता है।

यदि अकस्मात पुत्रहीन अवस्था मे किसी साम त की मृत्यु हो जाती है तो प्रचलित विधान के अनुसार उसकी स्त्री निकट के सम्ब धी और सरदारो के साथ परामश करके दत्तक पुत्र का चयन कर लेती है। जब तक दत्तक पुत्र नाबालिग रहता है, उसकी माता, उसके स्थान पर जागीर का प्रब ध करती है।

मेवाड के सोलह प्रधान साम तो मे से देवगढ के एक साम त पुत्रहीन अवस्था मे परलोक सिधार गये। मृत्यु के पूव उसने अपनी स्त्री और सरदारो से अनुरोध कर दिया कि आप लोग नाहरसिंह को ही पौष्य पुत्र बनायें। नाहरसिंह सग्रामगढ के स्वाधीन साम त का पुत्र था। उसके साथ देवगढ के साम त का ग्यारहवी पीढी का सम्ब ध था, कि तु सातवी और आठवी पीढी के भी कई पुरुष उस समय जीवित थे। इसलिये ये लोग अधिक निकटवर्ती थे। पर तु इनकी मर्यादा देवगढ के सामन्त की अपेक्षा बहुत साधारण थी और ये लोग या तो राणा की अश्वारोही सेना म थे अथवा राज्य के साधारण कमचारी थे। इन निकटवर्ती लोगो मे दो परिवार ऐसे थे, जिनका कोई बच्चा देवगढ के साम त की स्त्री द्वारा गोद लिया जा सकता था। पर तु उनकी साधारण हैसियत का ध्यान म रखते हुए देवगढ के साम त ने उन परिवारो से गोद लेने का परामश नही दिया था।

उधर कुछ सरदारो ने इस समस्या को राणा के सामने प्रस्तुत कर दिया। राणा ने उन दो परिवारो मे से एक को देवगढ के साम त पद पर वरण करने की इच्छा जाहिर की। पर तु इस बीच देवगढ के कई प्रभावशाली सरदारो ने मिलकर नाहरसिंह के सिर पर मृत साम त की पगडी बाँध दी और उसी ने मृत साम त के प्रेत कृत्यादि सभी काय सम्पन्न करवाये। राणा की बिना अनुमति लिए नाहरसिंह का गोद लिया जाना राणा को अच्छा नही लगा और गुस्से म आकर उन्होंने देवगढ के सगावत कुल को ही खत्म करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने एक अधिकारी को यह आदेश देकर भेजा कि देवगढ के लोगो ने जो भ्रम पाया है वह

पाते थ । आऊवा के साम त कुशालसिंह का मारवाड क राजा न विवाद हो गया और साम त ने अपनी मृत्यु के समय अपन वशधरो को हिदायत दी कि वे भविष्य म कभी 'प्रधान' पद स्वीकार न करे । तब आसोप के साम त घराने को प्रधान का पद सौंपा गया । पर तु राज्य म जिस प्रकार स हत्याओ का सिलसिला बढने लगा उसस दु खी होकर आसोप क साम त न 'प्रधान'' पद त्याग दिया । इसक बा निमाज और पोकरण क दोनो सामन्ता न सम्मिलित रूप स कुछ समय तक राज्य क प्रधान पद पर काय किया । परन्तु राजा की कोपदृष्टि के कारण निमाज क साम त को अपन जीवन स ही हाथ धाना पडा । पोकरण क उस समय के साम त क पर दादा देवीसिंह अपन पाच सौ सैनिको के साथ जोधपुर के प्रासाद के प्रधान सभा कक्ष म रात्रि के समय सात थे । वह जसा साहसी और पराक्रमी था, वसा ही वीर भी था और सदा घमण्ड क साथ कहा करता था कि ''मारवाड का सिंहासन मेरी इस तलवार के ऊपर है ।' मारवाड नरेश न घटना क्रम स देवीसिंह को बन्दी बना कर प्राण दण्ड की आज्ञा दी । उसकी मृत्यु क पूव जब राजा न उसस पूछा कि अब वह तलवार कहा है ? मृत्यु मुख म फसे उस वीर ने तत्काल उत्तर दिया पोकरण म अपन पुत्र के पास उसका रख आया हूँ । देवीसिंह क पुत्र सावल सिंह ने सहार मूर्ति धारण कर राजा को गहर सकट म धकेल दिया । राजा लाख कोशिश के बाद भी पोकरण के अभेद्य दुग पर अपना अधिकार नही कर पाया ।

कोटा और जसलमर क राज्या मे मन्त्रियो के अधिकार और भी अधि फ्रास के इतिहासकार माण्टेस्क्यू न अपने यहा के मन्त्रियो के सम्बन्ध म यहा के मत्री अपने राजाओ को महलो म ब दी बना कर रखा क राजाओ को वष म एक बार प्रजा क सामने आने का अवसर दे राजा अपनी प्रजा क सामने उतना ही बोलते थे जितना कि म फ्रासीसी इतिहासकार क य शब्द कोटा और जसलमेर के र हमारे सामने उपस्थित करत ह ।

गोद लेने की प्रथा—पुत्र के अभाव म गोद लेने की प्रथ स चली आ रही है । यह प्रथा पतृक अधिकारो को सुरक्षित रख म उत्पन हुई थी । इस प्रथा के प्रभाव स मवाड क राणा और उत्तराधिकारी का अभाव नही रहता । सम्मान उपाधि और वश रक्ष ही पुत्र के गोद लेने की रीति प्रचलित है । यह पुत्र का गोद लना च मूल्यवान समभा जाय आर चाहे देशी पचायत सभायें इस रीति को जिस भाव से पुत्र गोद लिया जाता है वह अत्य त बुद्धिहीनता का शोचनीय है । केवल युद्ध सम्ब ध वाली जाति की दुदशा और र लोप से ही यह शोचनीय दृश्य समय समय पर देखे जात थ ।

सदा तत्पर रहते हैं। मेवाड के इतिहास और अजीतसिह के समय से मारवाट के इतिहास का पढने से हम लाग यह बात भलीभाँति जान सकते है। राजपूतो के चरित्र की श्रेष्ठता का बहुत कुछ पान हमको उन प्रसिद्ध इतिहासकारा के ग्र था से होता है, जि हान सम्राट अकबर, जहाँगीर और औरगजेब के राज्या का इतिहास लिखा है। उन इतिहासकारा ने साफ साफ इस बात को स्वीकार किया है कि मुगल बादशाहा ने भारत के अनेक स्थाना क जिन युद्धो म विजय और गारव पाया था उनके मूल म राजपूता के साथ उनकी मित्रता थी। जिस आसाम देश का जोतने के लिए आजकल ब्रिटिश सेनायें युद्ध कर रही है उस आसाम का केवल एक राजपूत राजा ने विजय कर लिया था। वह राजा था—जयपुर का मानसिह। उसन आसाम के अलावा अराकान और उडीसा को जीतकर वहाँ अपनी विजय की पताका फहराई थी। कोटा के राजा राममिह न भी मुगल बादशाह के लिए कई युद्ध लडे थे और सफलता प्राप्त की थी। उन युद्धा म उसके पाँच भाइया क साथ उसका प्यारा पाता ईश्वरीसिह लडते हुए मारा गया था। राजपूत चरित्र म इस समय जितन शोचनीय लक्षण दिखाई देत हैं, शा ति विस्तार के साथ साथ ही व सब दूर हो जायेंग और स्वदेश की सुख समृद्धि जितनी ही बढेगी, उतने ही उनके हृदय म नये नय भाव उत्पन्न होकर सद्‌गुण प्रवृत्ति को विकसित करेग।

सन्दभ

1 राजस्थान म प्रचलित 'रखवाली कर' की भाति इगलण्ड मे भी किसी समय इसी प्रकार का एक कर प्रचलित हुआ था। सन् 1724 ई० मे लाड लोवट न इगलण्ड के जॉज प्रथम को सूचित किया था कि "इगलण्ड की दशा इन दिना म बहुत शाचनीय हो गई ह। चारा और लुटेरा के अत्याचारा से प्रजा का सवस्व नष्ट हो गया। इन सगठित लुटेरा न प्रजा के सामन प्रस्ताव रखा था कि यदि आप लोग वष मे एक निश्चित रकम कर के रूप म देना पस द करें ता कुछ लागो का सशस्त्र सनिक बनाकर आपकी रक्षा की जा सकती है।" प्रजा के द्वारा इस कर को स्वीकार करत ही लूटमार ब द हो गयी। लेकिन जो लोग इस कर को अदा न करते वे लूट लिय जात थे।

2 हाली शब्द कृषि काय साधक हल से उत्पन्न हुआ है। सामा यत उन लोगो को हाली कहा जाता है जो अपन स्वामी के खेतो पर हल चलाने का काम करत हैं।

3 कनल टाड ने प्रमुख गोला लागो से ही राज्यो की विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त की थी।

सब बाट कर ल आओ । जब देवगढ के सरदारो को इसकी सूचना मिली तो उन्होंने राणा स निवेदन किया कि हम लोगो न केवल मृत सामन्त क पुत्र का चयन किया है देवगढ क भावी सामन्त का नियुक्त करन का अधिकार तो केवल महाराणा का है । इस उत्तर स सन्तुष्ट होकर बाद म राणा न नाहरसिंह को देवगढ का सामन्त स्वीकार कर लिया ।

राजपूतो के इतिहास का गम्भीर अध्ययन करन क पश्चात् यह मानना पडता है कि व कभी भी सगठित होकर नही रह सक । यहाँ तक कि जीवन और मृत्यु के अवसर उपस्थित होन पर भी व सगठित न हो सक । व कभी भी राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण नही कर पाय और न ही मराठो की भाँति अपनी केन्द्रीय शक्ति की स्थापना कर पाये । प्रत्यक राजपूत राजा अपन राज्य का स्वय अधिकारी था और अपने राज्य की रक्षा करन क लिए एक सेना रखता था । राजा अथवा राज्य की निबल अवस्था म सहायता करन वाला किसी अन्य शक्ति क निर्माण की तरफ किसी ने कोई ध्यान नही दिया ।

सामन्त शासन प्रणाली म एक राजपूत राज्य अपन पडौसी राज्य क लिए जितना घातक सिद्ध होता है उतना वह किसी दूरवर्ती राज्य क लिए नही होता । इस प्रकार की शासन व्यवस्था म कोई भी राज्य समुचित ढग स अपनी रक्षा नही कर पाता और बाह्य आक्रमण के समय उसकी शक्तियाँ निबल पड जाती है । इसी प्रकार की कुछ अन्य घातक कमियाँ इस प्रकार की शासन व्यवस्था म पाई जाती है ।

राजपूतो के चरित्र और स्वभाव क अध्ययन क लिए आवश्यक साधनो की कोई कमी नही है । उनके चरित्र और स्वभाव म कोई विशेष परिवर्तन आया हो, ऐसा दिखलाई नही देता । आज तक प्रत्येक राजपूत कृतज्ञता राजभक्ति, आत्म सम्मान और विश्वस्तता का मूल अर्थ समझते है । परन्तु जिन गुणो क कारण पूर्व काल म राजपूतो न ख्याति पाई थी उनके अभाव म आज राजपूतो का सम्मान घटता जा रहा है । किसी राजपूत स प्रश्न किया जाय कि मनुष्य क जीवन का सबसे बडा अपराध क्या है ? वह तत्काल उसक उत्तर म कहेगा कि 'गुणछोड' अर्थात् उपकारी क प्रति कृतघ्न होना । राजपूत जाति की आत्मा क साथ मानो कृतज्ञता जुडी हुई है और व लोग कृतज्ञता की पूजा करते है और कृतघ्नता को सबसे बुरी चीज समझ कर उससे घृणा करते है । राजपूत जाति का विश्वास है कि कृतघ्न व्यक्ति इस ससार म रहन क योग्य नही है ।

राजपूत जाति चाहे कितनी ही उग्र स्वभाव युक्त हो, उसके हृदय म राजभक्ति और देशप्रेम की भावना भलीभाँति विद्यमान है । यद्यपि राजपूत लोग बीच बीच म अपन पिता और राजा क प्रति उद्दण्ड व्यवहार कर बैठते है परन्तु किसी विजातीय शत्रु क आक्रमण होन पर अपने राजा क नेतृत्व म लडने क लिए

सदा तत्पर रहते हैं। मेवाड के इतिहास और अजीतसिंह के समय से मारवाड के इतिहास का पढन से हम लाग यह बात भलीभाति जान सकते हैं। राजपूतो के चरित्र की श्रेष्ठता का बहुत कुछ ज्ञान हमका उन प्रसिद्ध इतिहासकारा के ग्र था मे होता है, जिन्हाने सम्राट अकबर, जहागीर और औरगजब के राज्यो का इतिहास लिखा है। उन इतिहासकारा न साफ साफ इस बात को स्वीकार किया है कि मुगल बादशाहो ने भारत के अनेक स्थाना के जिन युद्धा म विजय और गौरव पाया था उनके मूल म राजपूता के साथ उनकी मित्रता थी। जिस आसाम देश को जीतन के लिए आजकल ब्रिटिश सेनायें युद्ध कर रही है उस आसाम को केवल एक राजपूत राजा ने विजय कर लिया था। वह राजा था—जयपुर का मानसिंह। उसने आसाम के अलावा अराकान और उडीसा को जीतकर वहा अपनी विजय की पताका फहराई थी। कोटा के राजा रामसिंह न भी मुगल बादशाह के लिए कई युद्ध लडे थे और सफलता प्राप्त की थी। उन युद्धा म उसके पाच भाइया के साथ, उसका प्यारा पोता ईश्वरीसिंह लडते हुए मारा गया था। राजपूत चरित्र मे इस समय जितन शोचनीय लक्षण दिखाई देत हैं, शांति विस्तार के साथ साथ ही व सब दूर हो जायेगे और स्वदेश की सुख समृद्धि जितनी ही बढेगी, उतन ही उनके हृदय म नये नय भाव उत्पन्न होकर सद्गुण प्रवृत्ति का विकसित करेंगे।

सन्दभ

1 राजस्थान म प्रचलित 'रखवाली कर की भाति इगलण्ड मे भी किसी समय इसी प्रकार का एक कर प्रचलित हुआ था। सन् 1724 ई० मे लाड लोवट न इगलण्ड के जॉज प्रथम को सूचित किया था कि 'इगलण्ड की दशा इन दिना म बहुत शोचनीय हो गई है। चारो और लुटरो के अत्याचारा स प्रजा का सवस्व नष्ट हो गया। इन सगठित लुटेरा न प्रजा के सामन प्रस्ताव रखा था कि यदि आप लोग वष म एक निश्चित रकम कर के रूप मे देना पसद करें ता कुछ लागो को सशस्त्र सनिक बनाकर आपकी रक्षा की जा सकती है।" प्रजा के द्वारा इस कर को स्वीकार करत ही लूटमार ब द हो गयी। लेकिन जो लोग इस कर को अदा न करते वे लूट लिये जात थे।

2 हाली शब्द कृषि काय साधक हल से उत्पन्न हुआ है। सामान्यत उन लोगो को हाली कहा जाता है जो अपने स्वामी के खेता पर हल चलाने का काम करत हैं।

3 कनल टाड न प्रमुख गोला लोगो से ही राज्या की विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त की थी।

4 उक्त परमार सरदार ने उन लोगों की किससे रक्षा की थी इस बारे में टाड साहब स्वयं सन्देह में हैं।

5 टाड साहब ने इस सम्बन्ध में एक व्यक्तिगत उदाहरण दिया है। युद्ध का कर न दे सकने के अपराध में मराठा सैनिकों ने कुछ राजपूत युवकों को कैद कर लिया था। जो लोग पकड़े गये थे, उनमें पूरावत सरदार का छोटा भाई भी था। उन्हीं दिनों में उसकी माता बीमार हो गई और उसकी मृत्यु का समय समीप आ गया। माता ने मरने से पूर्व अपने छोटे पुत्र को देखने की लालसा प्रकट की। टाड साहब ने मराठा लोगों से मिलकर उस युवक को रिहा करवा दिया। जब उस युवक को पता चला कि टाड साहब ने उसे रिहा करवाया है तो वह अपनी मरणासन्न माता को देखने न जाकर पहले टाड साहब के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने पहुँचा। बाद में टाड साहब ने उसे अपनी माता के पास भिजवा दिया।

6 अराजकता के दिनों में मेवाड़ राज्य में चारों तरफ लूटमार प्रबल हो गई थी और डाकू लोगों की बन आई। वे लोग असहाय निवासियों से अपने बरछे के बल पर धन वसूल करने लगे। जब डाकू लोग छाती पर बरछा रखकर उसे घुसेड़ने का प्रयास करते तो प्रजा 'दुहाई' देकर प्राणदान की भीख मांगती थी। इसी कारण उसका नाम बरसा दोहाई हुआ। कृषि करने वाले किसान भी डाकू लोगों से फसलों की रक्षा के लिए बरसा दुहाई देती थी।

7 अतिथि सम्मानार्थ अफीम पीने का प्याला 'मनुआर प्याला' कहा जाता था। इसी प्रकार एक साथ बैठकर भोजन करना, राजपूतों में स्नेह का परिचायक माना जाता है।

8 कर्नल टाड ने पाद टिप्पणी में एक ऐसा ही उदाहरण बूंदी और मेवाड़ के राजवंशों में विद्यमान बदले की भावना का दिया है जिसमें अहेरिया उत्सव के अवसर पर बूंदी के युवराज ने मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह की धोखे से हत्या कर दी थी।

9 रसोड़ा अर्थात् पाकशाला एक छोटे दुर्ग के समान है जिसमें अलग अलग भोजनागार बने हैं। टॉड साहब ने लिखा है कि राणा के रसोड़े में प्रतिदिन हजारों आदमियों के लिए भोजन बनता है।

मेवाड का इतिहास

अध्याय 11

प्रारम्भ से राजा शिलादित्य तक का इतिहास

अब हम राजस्थान के राज्यों के इतिहास की तरफ बढ़ते हैं और इसको प्रारम्भ मेवाड तथा उनके राजाओं के इतिहास से करेंगे। ये लोग राणा कहलाते हैं और सूर्यवंश की बडी शाखा के वंशज हैं। राम के एक पूर्वज के पीछे इन्हें रघुवंशी भी कहा जाता है। हिन्दू लोग एक स्वर से मेवाड के राजाओं को राम का वैधानिक उत्तराधिकारी मानते हैं और उन्हें 'हिन्दुआ सूरज' कहते हैं। छत्तीस राजवंशों में राणा वंश का सबसे श्रेष्ठ स्थान है और उसकी पवित्रता एवं निर्मलता में कभी किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो सकता।

छत्तीस राजकुलों में जैसलमेर के अलावा मेवाड ही एकमात्र ऐसा राजवंश है जो विगत आठ सौ वर्षों के विदेशी प्रभुत्व के उपरान्त भी अपने अस्तित्व और गौरव को सुरक्षित बनाये रखने में सफल रहा है। इस दीर्घ समय में मेवाड को भी अनेक बार घोर संकटों का सामना करना पडा, परन्तु इस राज्य का जैसा विस्तार तब था वैसा ही अब है, इसमें किसी भांति की कमती बढ़ती नहीं हुई। बहुत समय पहले जब महमूद गजनवी सिन्धु नद के नीले जल को पार कर भारत में आया था, उस समय में मेवाड राज्य का जितना विस्तार था आज शोचनीय दशा में भी मेवाड का उतना ही विस्तार देखा जाता है। जिन प्राचीन ग्रन्थों में मेवाड राज्य का ऐतिहासिक वृत्तान्त थोडा बहुत लिखा हुआ है उनमें 'जयविलास'[1] 'राजरत्नाकर'[2] और 'राजविलास'[3] विशेष प्रसिद्ध हैं और विश्वास के योग्य हैं। इनके अलावा खुमानरासो[4] मामदेव परिशिष्ट[5] तथा अनेक जैन और भट्ट ग्रन्थों में भी मेवाड का कुछ कुछ वृत्तान्त देखा जाता है। इन ग्रन्थों में बहुत-से मतभेद भी हैं परन्तु सावधानी से अध्ययन करने पर उनमें ऐतिहासिक सत्य को खोज कर निकाला जा सकता है और हमने यही किया भी है।

भट्ट ग्रन्थों में महाराज कनकसेन को मेवाड़ को बसाने वाला कहा गया है। उन ग्रन्थों के अनुसार कनकसेन का मूल स्थान भारत के उत्तर में किसी क्षेत्र में था

और समय के फेर से वे उस स्थान को छोडकर सम्वत् 201 अर्थात् सन् 145 ई० में सौराष्ट्र में आकर बस गये।[6] आमेर के ज्योतिषी महाराजा जयसिंह ने अपने बनाये इतिहास में भट्टग्रन्थों के इस मत को मानते हुए सूर्यवंश के साथ इस राजवंश की समानता सिद्ध की है।

अयोध्या—जिसे वर्तमान में अवध कहा जाता है—प्रसिद्ध राम की राजधानी थी। राम के दो पुत्र थे—लव और कुश। राणा का वंश अपने आपको लव का वंशज मानता है। जनश्रुति के अनुसार लव ने लोटकोट (लोहकोट) नामक नगर बसाया था जिसे अब लाहौर कहते हैं। इसी क्षेत्र में मेवाड राज्य के पूर्वज उस समय तक निवास करते रहे जब तक कनकसेन उसे छोडकर सौराष्ट्र नहीं चला आया। कनकसेन लोहकोट को छोडकर किस मार्ग से होकर दक्षिण (सौराष्ट्र) पहुँचा उसका कोई विवरण भट्टग्रन्थों में नहीं पाया जाता। कहते हैं कि जब वह सौराष्ट्र में पहुँचा उस समय वह क्षेत्र परमार वंश के किसी राजा के अधिकार में था। कनकसेन ने उस परमार राजा को पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही अपनी सत्ता को सुदृढ बनाने में जुट गया। तदुपरान्त 144 ई० में उसने वीरनगर नामक एक नगर बसाया।

कनकसेन के बाद चौथी पीढ़ी में उसके वंश में विजयसेन नामक एक राजा हुआ। आमेर के राजा जयसिंह ने इसका उल्लेख नौशेरवाँ नाम से किया है। इसी विजयसेन ने विजयपुर नगर बसाया था। समय के फेर से विजयपुर नगर वीरान हो गया और उसके खंडहर पर वर्तमान धोलका नगरी स्थापित हुई है। भट्टग्रन्थों से पता चलता है कि विजयसेन ने वल्लभीपुर और विदर्भ नामक दो अन्य नगर भी बसाये थे।[7] इन दोनों में से वल्लभीपुर ही विशेष प्रसिद्ध है परन्तु यह वल्लभीपुर कहाँ प्रतिष्ठित है इस बात का निरूपण करना कठिन है। काफी अनुसंधान के बाद यह स्वीकार किया गया है कि वर्तमान भावनगर के पाँच कोस उत्तर पश्चिम की ओर वल्लभी नामक जो नगर बसा हुआ है वही प्राचीन वल्लभीपुर का बचा हुआ भाग है। शत्रुंजय माहात्म्य नामक एक जैन धर्म ग्रन्थ में उक्त राज्य की सत्यता सम्पूर्ण भाव प्रमाणित हो गई है।

बहुत से लोगों का मानना है कि उक्त वल्लभीपुर से ही मेवाड का राजवंश उत्पन्न हुआ है। यह बात सत्य है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत देखने को मिलते हैं। परन्तु अभी कुछ दिनों पहले राणा के राज्य के पूर्वी क्षेत्र में एक भग्न शिवालय के खंडहरों में से एक शिलालेख मिला है। इस लेख में मेवाड राजवंश का प्राचीन वर्णन संक्षेप में लिखा है और लिपिकर्त्ता ने एक स्थान में लिखा है 'यह बात सत्य है अथवा नहीं इसकी प्रकाशित साक्षी वल्लभी की दीवारें हैं।' इसके अतिरिक्त, राणा राजसिंह के समय की बातों का आधार लेकर जो एक ग्रन्थ

बनाया गया है, उसम लिखा है कि ' पश्चिम म सौराष्ट नामक एक देश है । मलेच्छो न उस देश पर ग्राक्रमण कर वहा के वालकनाथो को जीत लिया था । जिस समय वल्लभीपुर का यह विनाश हुग्रा था उस ममय वालकनाथराज की एक पुत्री के ग्रलावा ग्र य सब लोग मार गये थे ।" एक ग्र य ग्र थ मे लिखा है कि वल्लभीपुर के विध्वन होने पर वहा क रहन वाले लोग मरू देश म भागकर चले गये ग्रौर वहा उन लागा न वाली, साडेराव ग्रौर नाडौल नामक तीन नगर वसाये । ये तीना नगर ग्राज भी मौजूद है । छठी शताब्दी क प्रारम्भ म जब मलेच्छो ने वल्लभीपुर का विध्वस किया था, उन दिना मे वहा पर जन धम का प्रचार था ग्रौर ग्राज उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे भी वह प्राचीन जन धम वहा पर उसी प्रकार से चलता हुग्रा दिखाई देता है । उक्त तीन नगरो के ग्रलावा उनके द्वारा वसाया गया एक ग्र य नगर का भी उल्लेख मिलता हे । उसका नाम गायनी है ।[8] यह भी पता चलता है कि वल्लभीपुर का राजा शिलादित्य ग्रपने परिवार के साथ सौराष्ट्र से भाग कर गायनी नगर पहुचा था । भट्ट ग्र थो स यह भी पता चलता ह कि मलच्छ लोगो ने महाराज शिलादित्य क गायनी नगर को जीता । उस नगर की रक्षा करने म महाराज शिलादित्य के बहुत स प्रधान योद्धा मारे गये । उसका वश समाप्त हो गया केवल उसका नाम मात्र शेष रह गया ।

इम बात को निश्चित रूप से वताना कठिन ह कि कौनसी मलेच्छ जाति ने वल्लभीपुर पर ग्राक्रमण कर उसका विनाश किया था ।[9] प्राचीन इतिहासो को दखने से नात होता है कि वे सीथिक लोग थे ग्रौर पारथियन राज्य से ग्राये थे । उ होने ईसा की दूसरी शताब्दी म सि धु नद के किनारे पर वसे हुए श्यामनगर को ग्रपनी राजधानी वना कर उस क्षेत्र पर शासन किया था । इसी श्यामनगर म प्राचीन यादव लोगो ने बहुत समय तक राज्य किया था । विद्वान एरियन न श्यामनगर को ' मीनगढ"[10] ग्रौर ग्ररब भूगोल वेत्ताग्रा ने "मनकर" कहा है ।

सि धुनद के किनारे जिस विशाल प्रदेश म सीथिक लोग रहते थ वह भारत पर ग्राक्रमण करने वाली विदेशी जातिया के लिए एक सुगम माग सिद्ध हुग्रा ग्रौर उस तरफ से भारत ग्रान वालो का रास्ता बहुत ग्रासान हा गया । इसीलिए उस खुल द्वार म प्रवेश करक ग्रनक जातिया न भारत मे ग्राकर इस देश का विनाश किया । जिट, हूण कामारी काठी, मकवाहन, वल्ल ग्रौर ग्रश्वारिया नाम की ग्रनक जातियो न उस तरफ से भारत म प्रवेश किया ग्रौर ग्रपनी शक्तिया का प्रदशन करते हुए सूरत तक जा पहुची थी । ये सभी जातिया इस देश मे उसी तरफ स ग्रायी थी क्योकि भारत का वह क्षेत्र उस समय बहुत ही ग्रसुरक्षित ग्रवस्था म था । प्रसिद्ध यात्री परिव्राजक कासमस चीन के राजा जस्टीनियम के शासन काल मे भारत मे मौजूद था ।[11] वह वल्लभीराज का कल्याण नगर देखने गया था । उसन ग्रपन यात्रा वृत्तान्त म लिखा है कि जिस समय म वल्लभीपुर नष्ट हुग्रा था, उस ममय म बहुत से हूण

लोग सिंधु नद के किनारे अपनी बस्तियां बसा कर आबाद हो गये थे। उस समय उनके सरदार का नाम गालास था। लेकिन इतिहासकार एरियन दूसरी बात लिखते हैं। उनके अनुसार सिंधु और नर्मदा के मध्यवर्ती भू भाग पर अगणित संख्या में साथिक लोग रहते थे। मीनगढ़ उनकी राजधानी थी। अब यहाँ पता नहीं चलता कि सत्य क्या है? सम्भव है कि कासमस ने सीथियों को ही हूण समझ लिया हो अथवा यहाँ पहले सीथिक रहे हों और बाद में हूणों ने उन्हें वहां से खदेड़ दिया हो। परन्तु इतना तो मानना पड़ेगा कि इन्हीं दोनों जातियों में से किसी ने वल्लभीपुर का विनाश किया था।

सूर्यवंशी महाराज कनकसेन से आठवीं पीढ़ी में शिलादित्य नाम का एक राजा हुआ था और उसी के शासन काल में म्लेच्छों ने आक्रमण कर वल्लभीपुर को तहस नहस कर दिया था। शिलादित्य के सम्बन्ध में एक विचित्र किम्वदन्ती सुनने में आती है। वह यह कि गुजर राज्य में कयर नामक एक नगर है जिसमें देवादित्य नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदों का ज्ञाता था। उसके सुभागा नामक एक बेटी थी। विवाह की रात में ही वह विधवा हो गई। सुभागा के गुरु ने उसको बीज मन्त्र की शिक्षा दी थी। एक दिन असावधानी से सुभागा ने उस मन्त्र का उच्चारण किया। उच्चारण के तत्काल बाद सूर्य भगवान् प्रकट हुए और सुभागा गर्भवती हो गई। देवादित्य ने लोक लज्जा के कारण सुभागा को वल्लभीपुर भिजवा दिया जहां उसने एक पुत्र और पुत्री को जन्म दिया। बड़े होने पर बच्चे को विद्यालय भेजा गया। उसके सहपाठी उसे गैवी (गुप्त) नाम से पुकारते और उससे उसके पिता का नाम पूछते और उसे अपमानित करते। अपमान से तंग आकर एक दिन गैवी ने अपनी माता को कहा कि वह या तो पिता का नाम बताये अन्यथा वह उसे मार डालेगा। इसी समय सूर्य भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने गैवी को सभी बातें बतला दी। इसके बाद उन्होंने गैवी को एक पत्थर का टुकड़ा दिया और कहा कि इसको हाथ में रख कर तुम जिसको छुओगे वह तत्काल गिर जायगा। इस पत्थर की सहायता से गैवी ने वहां के राजा को पराजित करके सिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया। उस समय से गैवी शिलादित्य के नाम से पुकारा जाने लगा।[12]

महाराज शिलादित्य के सम्बन्ध में इसी प्रकार की और भी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं। कहते हैं कि वल्लभीपुर में एक सूर्यकुण्ड था। जब कभी कोई युद्ध आ पड़ता शिलादित्य उस कुण्ड के समीप जाकर सूर्य भगवान् की स्तुति करता था और कुण्ड से एक सात रंग का घोड़ा निकलता था। उस घोड़े को शिलादित्य अपने रथ में जोत कर युद्ध के लिए प्रस्थान करता और शत्रु पक्ष को परास्त करके खदेड़ देता था। शिलादित्य का एक पापात्मा मन्त्री इस गूढ़ विषय को ... । उसने विश्वासघात करके शत्रुओं को यह भेद बतला दिया और सलाह दी ... रक्त डालकर उसे अपवित्र कर दो। इससे शिलादित्य ... गो ... न

गया। इसके बाद जब मलच्छा न ग्राक्रमण किया तो सूय कुण्ड स घोडा प्रकट नही हुआ। फिर भी, शिलादित्य न अपनी सना क साथ शत्रुग्रा का जमकर सामना किया परन्तु वह अपन अधिकाश याद्धाग्रा क साथ लडता हुग्रा वीरगति का प्राप्त हुग्रा। उसकी शोचनीय मृत्यु के साथ साथ वल्लभीपुर स उसका वश वृक्ष भी जड स उखड गया।

सन्दभ

1 इस ग्र थ की रचना राजसिंह क पुत्र राणा जयसिंह क समय म हुई थी। इसम मवाड क राणाग्रा की वीरता तथा युद्ध क पूव की वाता का सग्रह है।

2 इस ग्रन्थ का लखक सदाशिव भट्ट था। इसकी रचना राणा राजसिंह के समय म की गई थी।

3 इसका लखक मानकुवश्वर है। इसका रचना भी राजसिंह के समय म हुई थी।

4 इस ग्र थ का सम्पादन डा० कृष्णच द्र श्रोत्रिय द्वारा किया जा चुका है। इसम भगवान राम से लेकर सूयवशी राणाग्रो का क्रमानुसार वणन है। इससे मेवाड के प्राचीन इतिहास के बार म महत्वपूण जानकारी प्राप्त होती है।

5 कमलमीर के देव म दिर स जो शिलालख प्राप्त हुए है उनका सग्रह इस ग्र थ मे है।

6 टाड साहब ने वि स 201 तो सही लिखा है पर तु ईस्वी सन् 145 गलत लिखा है। गणित की दृष्टि स 144 ई० सही होना चाहिए। ग्राग व स्वय कहत है कि 144 ई म कनकसेन न वीरनगर बसाया।

7 ग्राजकल इसका नाम शिहार है ग्रोर दूसरी नगरी 'विदभ" जहा दमय ती न ज म लिया था, इस समय बडे नागपुर क नाम से पुकारी जाती है।

8 गायनी ग्रथवा गजनी वतमान काम्ब का प्राचीन नाम है। इस नगर के दक्षिण म तीन मील की दूरी पर इसक खडहर ग्रब तक विद्यमान है। खडहरो के ग्रध्ययन स पता चलता है कि बालक रायगण भारत क दक्षिण म शासन करत थे। भट्ट ग्र था स यह भी पता चलता है कि वतमान दवगढ प्राचीनकाल म बिलबिलपुर पट्टन के नाम से पुकारा जाता था ग्रौर इस स्थान पर मेवाड राज्य के ग्रधिकारियो के पूवज शासन करत थ।

लोग सिन्धु नदी के किनारे अपनी बस्तियां बसा कर आबाद हो गये थे। उस समय उनके सरदार का नाम गोलास था। लेकिन इतिहासकार एरियन दूसरी बात लिखते हैं। उनके अनुसार सिन्धु और नर्मदा के मध्यवर्ती भू भाग पर अगणित संख्या में साथिक लोग रहते थे। मीनगढ़ उनकी राजधानी थी। अब यहां पता नहीं चलता कि सत्य क्या है? सम्भव है कि कासमस ने साथिकों को ही हूण समझ लिया हो अथवा यहां पहले सीथिक रहे हों और बाद में हूणों ने उन्हें वहां से खदेड़ दिया हो। परन्तु इतना तो मानना पड़ेगा कि इन्हीं दोनों जातियों में से किसी ने वल्लभीपुर का विनाश किया था।

सूर्यवंशी महाराज कनकसेन से आठवीं पीढ़ी में शिलादित्य नाम का एक राजा हुआ था और उसी के शासन काल में म्लेच्छों ने आक्रमण कर वल्लभीपुर को तहस नहस कर दिया था। शिलादित्य के सम्बन्ध में एक विचित्र किम्वदंती सुनने में आती है। वह यह कि गुर्जर राज्य में कयर नामक एक नगर है जिसमें देवादित्य नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदों का ज्ञाता था। उसके सुभागा नामक एक बेटी थी। विवाह की रात में ही वह विधवा हो गई। सुभागा के गुरु ने उसको बीज मंत्र की शिक्षा दी थी। एक दिन असावधानी से सुभागा ने उस मंत्र का उच्चारण किया। उच्चारण के तत्काल बाद सूर्य भगवान् प्रकट हुए और सुभागा गर्भवती हो गई। देवादित्य ने लोक लज्जा के कारण सुभागा को वल्लभीपुर भिजवा दिया जहां उसने एक पुत्र और पुत्री को जन्म दिया। बड़े होने पर बच्चे को विद्यालय भेजा गया। उसके सहपाठी उसे 'गवी' (गुप्त) नाम से पुकारते और उससे उसके पिता का नाम पूछते और उसे अपमानित करते। अपमान से तंग आकर एक दिन गवी ने अपनी माता को कहा कि वह या तो पिता का नाम बताये अन्यथा वह उसे मार डालेगा। इसी समय सूर्य भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने गवी को सभी बातें बतला दीं। इसके बाद उन्होंने गवी को एक पत्थर का टुकड़ा दिया और कहा कि इसको हाथ में रख कर तुम जिसको छुओगे, वह तत्काल गिर जायेगा। इस पत्थर की सहायता से गवी ने वहां के राजा को पराजित करके सिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया। उस समय से गवी 'शिलादित्य' के नाम से पुकारा जाने लगा।[12]

महाराज शिलादित्य के सम्बन्ध में इसी प्रकार की और भी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं। कहते हैं कि वल्लभीपुर में एक 'सूर्यकुण्ड' था। जब कभी कोई युद्ध आ पड़ता शिलादित्य उस कुण्ड के समीप जाकर सूर्य भगवान् की स्तुति करता था और कुण्ड से एक बड़ा घोड़ा निकलता था। उस घोड़े को शिलादित्य अपने रथ में जोत कर युद्ध के लिए प्रस्थान करता और शत्रु पक्ष को परास्त करके खदेड़ देता था। शिलादित्य का एक पापात्मा मंत्री इस गूढ़ विषय को जानता था। उसने विश्वासघात करके शत्रुओं को यह भेद बतला दिया और सलाह दी कि कुण्ड में गौ रक्त डालकर उसे अपवित्र कर दो। इससे शिलादित्य के सौभाग्य मार्ग में कांटा लग

गया। इसके बाद जब मलेच्छो न आक्रमण किया तो सूय कुण्ट से घोडा प्रकट नही हुआ। फिर भी, शिलादित्य न अपनी सेना क साथ शत्रुओं का जमकर सामना किया परन्तु वह अपन अधिकाश याद्धाओं के साथ लडता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी शाचनीय मृत्यु के साथ साथ वल्लभीपुर से उसका वश वृक्ष भी जड से उखड गया।

सन्दर्भ

1 इस ग्र थ की रचना राजसिंह क पुत्र राणा जयसिंह क समय म हुई थी। इसम मवाड क राणाओं की वीरता तथा युद्ध क पूव की वाता का सग्रह है।

2 इम ग्र थ का लखक सदाशिव भट्ट था। इसकी रचना राणा राजसिंह के समय म की गई थी।

3 इसका लेखक मानकुवश्वर है। इसकी रचना भी राजसिंह के समय मे हुई थी।

4 इस ग्र थ का सम्पादन डा० कृष्णच द्र श्रात्रिय द्वारा किया जा चुका है। इसम भगवान राम से लेकर सूयवशी राणाओं का क्रमानुसार वणन है। इसस मेवाड के प्राचीन इतिहास के बारे म महत्वपूण जानकारी प्राप्त होती है।

5 कमलमीर के देव म दिर स जो शिलालेख प्राप्त हुए है, उनका सग्रह इस ग्र थ म है।

6 टाड साहब न वि स 201 तो सही लिखा है पर तु ईस्वी सन् 145 गलत लिखा है। गणित की दृष्टि स 144 ई० सही होना चाहिए। आग व स्वय कहत ह कि 144 ई म कनकसेन न वीरनगर बसाया।

7 आजकल इसका नाम शिहोर है और दूसरा नगरी विदभ' जहा दमय ती न ज म लिया था, इस समय बडे नागपुर के नाम स पुकारी जाती है।

8 गायनी अथवा गजनी बनमान काम्ब का प्राचीन नाम है। इस नगर के दक्षिण म तीन मील की दूरी पर इसक खडहर अब तक विद्यमान है। खडहरा के अध्ययन स पता चलता है कि बालक रायगण भारत क दक्षिण म शासन करत थे। भट्ट ग्र था स यह भी पता चलता है कि बतमान देवाड प्राचीनकाल म त्रिलबिलपुर पट्टन क नाम स पुकारा जाता था और इस स्थान पर मवाड राज्य क अधिकारियो क पूवज शासन करत थ।

9 इन मलेच्छो के सम्ब ध मे ग्रलग ग्रलग मत देखने को मिलते हैं। सभी ने ग्रपनी ग्रपनी खोज के ग्राधार पर उनका उल्लेख किया है। इतिहासकार एलफि स्टन ने इन मलेच्छो को पारसीक बतलाया है। इसके लिए उसने जो प्रमाण दिये हैं वे ग्रधिक विश्वस्त मालूम होते हैं। पारसीक ऐतिहासिक ग्र थो म लिखा है कि 600 ई के ग्रारम्भ म बादशाह नौशेरवा ने सि ध देश पर ग्राक्रमण किया था पर तु इस ग्राक्रमण का क्या परिणाम हुग्रा, इस सम्ब ध मे कुछ नही लिखा। ग्रत एलफि स्टन का मत ही ग्रधिक तर्कसगत लगता है।

10 "मीनगढ' के सम्ब ध म डेनविल से लेकर सर हेनरी पोटिन्जर तक ग्रनेक विदेशी लेखको ने बहुत सी बाते लिखी हैं ग्रौर इसके ठीक स्थान का पता लगाने की चेष्टा की थी। टाड ने उन सब मतो की खोज बीन के बाद इस बात को स्वीकार किया कि मीनगढ सि धु नदी के किनारे सिवान पर स्थित है।

11 प्राचीन समय मे भारत ग्रौर चीन के राजाग्रो मे परस्पर पत्र-व्यवहार होता था।

12 भारतीय इतिहास म एक दूसरे शिलादित्य का उल्लेख भी पाया जाता है। पर तु वह ग्रन्य था ग्रौर सातवी शताब्दी ईस्वी के मध्य भाग म कन्नौज के सिंहासन पर विराजमान था। (हर्षवर्धन को भी शिलादित्य कहते हैं)

अध्याय 12

गुहिल से वप्पा रावल तक का इतिहास

मलेच्छो के आक्रमण क परिणामस्वरूप राजा शिलादित्य मारा गया और उसकी राजधानी वल्लभीपुर का विध्वस हो गया। शिलादित्य के बहुत सी रानिया थी। पुष्पावती नामक रानी के अलावा अन्य सभी रानिया शिलादित्य के साथ ही सती हो गई थी। पुष्पावती गर्भवती थी और पुत्र की मनौती मानने के लिए वह अपने पिता के राज्य म स्थित जगदम्बादेवी के दर्शन करने को गई हुई थी। उसका पिता परमारवशी था और उसके राज्य का नाम च द्रावती था जो वि ध्यपर्वत की तलहटी मे स्थित था। जब वह अपन पिता के घर से वापस अपने पति के पास आ रही थी तो रास्ते म ही उसे अपने पति की मृत्यु तथा वल्लभीपुर के विनाश का समाचार मिला। इससे रानी को घोर आघात पहुचा। वह सती होना चाहती थी परन्तु गर्भावस्था के कारण उस समय यह सम्भव न था। अत उसने अपनी सहेलियो के साथ 'मलिया" नाम की एक गुफा म आश्रय लिया। इसी गुफा मे उसने अपने पुत्र को ज म दिया।

इस मलिया गुफा के पास ही वीरनगर नाम की एक बस्ती थी जिसम कमलावती नाम की एक ब्राह्मणी रहती थी। रानी पुष्पावती न उस ब्राह्मणी को बुलाकर अपना पुत्र उसे सौप दिया और चिता की दहकती हुई अग्नि मे प्रवेश कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। चिता म प्रवेश करन के पूर्व उसन कमलावती स प्रार्थना की कि वह उसके पुत्र को अपना पुत्र समझकर उसका पालन पोषण कर, उस ब्राह्मणोचित शिक्षा दिलवाय और बडा होने पर किसी राजपूत कन्या के साथ उसका विवाह कर द।

कमलावती न रानी के पुत्र का अपन पुत्र की भाति ही पालन पोषण किया। बालक गुफा म पैदा हुआ था और उस प्रदेश क लोग 'गुफा' को 'गोह" कहते थे अत कमलावती न उस बच्चे का नाम 'गोह' रखा जो आगे चलकर 'गुहिल' क नाम स विख्यात हुआ।[1] गोह बचपन स ही चचल और ढीठ स्वभाव का था। समय के साथ साथ उसकी य आदतें भी बढन लगी। पढाई लिखाई म उसका मन नही

लगता था और कमला की आज्ञा का उल्लंघन करके वह अपनी उम्र के राजपूत लड़कों के साथ दिन-रात खेलता फिरता। वह घने जंगल में निकल जाता और शिकार खेलता और स्वतंत्रता से काम करता। कमला की बात का उस पर कोई असर नहीं पड़ता। इस प्रकार, धीरे धीरे गोह ग्यारह वर्ष का हो गया।

मेवाड़ की दक्षिण दिशा में घनी पर्वतमालाओं के मध्य में ईडर नामक एक भील राज्य है। उस समय में मंडलीक नामक एक भील राजा इस राज्य पर शासन करता था। गोह ईडर के भीलों के साथ ही घूमा करता था और उन्हीं के साथ जानवरों का शिकार किया करता था। उसे शांत स्वभाव वाले ब्राह्मणों का संग बिल्कुल पसन्द न था। भील लोग भी गोह का बड़ा आदर करते थे और खेल खेल में ही उन्होंने उसे ईडर का राजा बना दिया। अब्बुल फजल और भट्ट कवियों ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—एक समय गोह भील बालकों के साथ खेल रहा था। उसी समय भील बालकों का खेल खेल ही में यह विचार हुआ कि अपने में से किसी को राजा बनाया जाय और इसके लिए सभी ने गोह को ही योग्य और उचित समझा। एक भील बालक ने तत्काल अपनी अंगुली काट कर उसके रक्त से गोह के माथे पर राजतिलक कर दिया। जब भीलों के वृद्ध राजा माडलीक ने यह वृत्तान्त सुना तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने अपना राज्य गोह को सौंप दिया और राज काज से अवकाश ले लिया। परन्तु इसका परिणाम अत्यन्त बुरा निकला। भील राजा के बहुत से पुत्र थे परन्तु उसने अपना राज्य अपने किसी पुत्र को न देकर गोह को दिया था और उसी गोह ने एक दिन वृद्ध भील राजा को मार डाला। उसने ऐसा क्या किया, इस सम्बन्ध में कहीं पर कोई उल्लेख नहीं मिलता। आगे चल कर 'गोह' का नाम उसके वंशधरों का गोत्र हो गया और वे लोग गुहिल अथवा गुहिलोत नाम से विख्यात हुए।

इस घटना के बाद गोह तथा उसके उत्तराधिकारियों के बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है उसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि गोह के बाद आठवीं पीढ़ी तक ईडर राज्य पर गुहिलोतों का शासन रहा और वहां के भील पराधीनता में रहते हुए भी उनके सभी प्रकार काम आते रहे। गोह की आठवीं पीढ़ी में नागादित्य नामक राजा हुआ। उसके व्यवहार ने बहुत से भीलों को असन्तुष्ट बना दिया। इसलिए एक दिन जब नागादित्य जंगल में शिकार खेलने गया था, भीलों ने उसे घेर कर मार डाला और ईडर राज्य पर पुनः अपना अधिकार कर लिया।

ईडर राज्य के अधिकांश निवासी भील थे और चारों तरफ उनका आतंक फैला हुआ था। नागादित्य की मृत्यु के बाद उनका आतंक और भी बढ़ गया। ... में भीलों का सामना करने का साहस भी न बचा। सभी भावी विनाश से

भयभीत हो उठे थे। सबसे अधिक चिन्ता नागादित्य के तीन वर्षीय पुत्र बप्पा के जीवन को बचाने की थी। ऐसे घोर सकट के समय ईश्वर ने कृपा की। वीरनगर की जिस कमलावती ने गोह के जीवन को बचाया था उसी के वशजो ने शिलादित्य के राजवश की रक्षा करने का काम किया। वे लोग गुहिल राजवश के कुल पुरोहित थे। चूँकि ईडर मे चारो तरफ भीलो का आतक बढ रहा था और बप्पा के जीवन का हर पल खतरा बना हुआ था अत कमला के वशधर ब्राह्मण बप्पा को लेकर माडर[2] नाम के दुर्ग मे चले गये। वहा पर एक भील ने जो कि यदुवशी था उन ब्राह्मणो को आश्रय दिया। परन्तु उस स्थान को निरापद न समझकर ब्राह्मण लोग बप्पा को लेकर पराशर नामक स्थान मे चले गये। यह स्थान जगल मे घने वृक्षो से परिपूर्ण था। इसके समीप ही त्रिकूट पर्वत है जिसकी तलहटी मे नागेन्द्र नामक एक साधारण नगर बसा हुआ है। इसे नागदा कहते हैं और यह नगर उदयपुर से उत्तर की तरफ दस मील की दूरी पर है। यहा पर भगवान् शिव की उपासना करने वाले बहुत से ब्राह्मण निवास करते थे। बप्पा को उन शान्तशील ब्राह्मणो के हाथ मे सौप दिया गया। ब्राह्मणो के आश्रय मे बप्पा स्वच्छन्दता से भ्रमण करने लगा।

बप्पा के बचपन के सम्बन्ध मे अनेक अद्भुत बातें सुनने और जानने को मिलती हैं, जैसे कि दूसरे कुलो की प्रतिष्ठा करने वाले प्रसिद्ध पुरुषो के सम्बन्ध मे कही जाती हैं।[3] जिन ब्राह्मणो के हाथ मे उसके लालन पालन का भार था, कुमार बप्पा उनके पशुओ को चराया करता था और प्रसन्न रहता। भट्ट ग्रन्थो मे लिखा है कि राजपूतो मे शरद् ऋतु मे झूलो का उत्सव बडे उत्साह और आनन्द के साथ मनाया जाता था। उत्सव मे सभी लडके लडकिया सम्मिलित होती हैं। उन दिनो मे नगेन्द्र नगर मे कोई सोलकी राजा राज करता था। झूलो के उत्सव के दिनो मे उस राजा की पुत्री अपनी सहेलियो तथा नगर की कुछ अन्य लडकियो के साथ विहार करने के लिए कुज वन मे गई। परन्तु वहा पहुँचने पर मालूम हुआ कि झूला डालने की रस्सी नही है। इस कारण सब लडकियाँ इधर उधर देखने लगी। इतने मे ही बप्पा वहा जा पहुँचा। राजकुमारी ने उससे रस्सी ला देने को कहा। चचल और हँसमुख स्वभाव वाले बप्पा ने राजकुमारी से कहा "जो तुम पहले मुझसे विवाह कर लो तो मैं अभी रस्सी ला दूँगा।" राजकुमारी और उसकी सहेलियो ने भी कौतुक कर डाला। उन्होने बप्पा की बात मान ली और तमाशे की तरह उसी समय वहा विवाह की तैयारी हुई और राजकुमारी तथा बप्पा का विवाह हो गया। सोलकी राजकुमारी के दुपट्टे के साथ बप्पा के दुपट्टे की गाठ बाधी गई। फिर सभी लडकिया परस्पर एक-दूसरे का हाथ पकडे हुए उन दोनो के साथ घेरा बनाकर एक बडे आम वृक्ष के चारो ओर प्रदक्षिणा करने लगी। इस प्रकार नकली विवाह हो गया। उसके बाद झूला उत्सव शुरू हुआ और उत्सव के बाद सभी अपने अपने घर को चले गये और विवाह की बात को भूल गये।

राजकुमारी विवाह के योग्य हो चुकी थी। इसलिए उसके पिता ने वर खोज कर विवाह की तैयारी शुरू कर दी। इसी अवसर पर एक दिन राजा के एक ज्योतिषी ने राजकुमारी का हाथ देखकर कहा कि इसका विवाह तो पहले हो चुका है। इस बात को सुनकर राजमहल में सभी को आश्चर्य हुआ। राजा ने अपने मंत्रियों से इस रहस्य को जानने को कहा और राज्य के गुप्तचरों को आदेश दिया गया कि इस नाटक के अभिनेता का पता लगाया जाय। बप्पा ने भी यह समाचार सुना। भावी संकट की आशंका से उसने अपने साथियों से बातचीत की। उसके सभी साथी उसका बहुत अधिक सम्मान करते थे, इसलिये उनकी तरफ से बप्पा को किसी आशंका की सम्भावना न थी। फिर भी, बप्पा ने एक कठोर प्रतिज्ञा से उनको बांध लिया। बप्पा ने एक छोटा सा गढ़ा खोदा और अपने हाथ में पत्थर का एक टुकड़ा उठाकर अपने साथियों से कहा 'तुम सभी लोग यह शपथ लो कि सुख-दुःख में तुम लोग मेरे साथी बने रहोगे और प्राण जाने पर भी मेरी कोई बात किसी से न कहोगे बल्कि दूसरों की सब बातें मुझसे कहोगे। यदि ऐसा न कर सकोगे तो तुम्हारे पूर्वजों के पुण्य-प्रताप इस पत्थर की भांति धोबी के गढ़े में मिलकर नष्ट हो जायेंगे।'[4] इतना कहकर बप्पा ने अपने हाथ के पत्थर के टुकड़े को उस गढ़े में डाल दिया। वहाँ उपस्थित उसके सभी साथियों ने तत्काल ही शपथ ली और उन्होंने अपनी शपथ का कभी उल्लंघन नहीं किया। लेकिन राजकुमारी के पिता को उस नकली विवाह के बारे में सारी जानकारी मिल गई और यह भी पता चल गया कि बप्पा के साथ राजकुमारी का विवाह रचाया गया था।

बप्पा के साथियों को भी राज दरबार में होने वाली बातों की जानकारी मिल गई जिसे उन्होंने बप्पा को बता दिया। बप्पा को लगा कि निकट भविष्य में उस पर कोई विपत्ति आ सकती है। इसलिये वह पर्वतमाला के एक गुप्त स्थान में जाकर रहने लगा। इस स्थान पर आगे चलकर बप्पा के कई वंशधर आश्रय ले चुके हैं। बालीय और देव नामक दो भील लड़के भी बप्पा के साथ इस गुप्त स्थान में आये थे। इन दोनों भीलकुमारों ने हर परिस्थिति में बप्पा का साथ दिया और कभी उसे अकेला नहीं छोड़ा। बप्पा ने उनके उपकार को कभी चित्त से नहीं भुलाया और जब वह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा तो उन्हीं के हाथ से राजतिलक ग्रहण किया। यद्यपि समय काफी बदल गया है तथापि बप्पा के वंशधर अब तक बालीय और देव के वंशवालों का दिया हुआ राजतिलक ग्रहण करके अपने को सम्मानित समझते हैं। राणा के राज्याभिषेक के अवसर पर अपने अंगूठे के रक्त से तिलक करने के अलावा देव का वंशवाला राणा का हाथ पकड़ कर राज सिंहासन पर बैठाता है और बालीय के वंशज भील चावल का चूर्ण और दही का पात्र हाथ में लेकर खड़ा रहता है। जब समय अच्छा था तब इस अभिषेक पर मेवाड़ की [illegible] आमदनी खर्च हो जाती थी। राणा जगतसिंह के अभिषेक के बाद इस [illegible] हुत कुछ कमी आ गई है।

विचार करने से बप्पा का इस प्रकार भागना और भागने का कारण स्वाभाविक और सही प्रतीत होता है। परन्तु भट्ट ग्रंथों में एक दूसरा ही वृत्तान्त मिलता है। उनके अनुसार नगेन्द्रनगर के घने जंगल में बप्पा अपने आश्रयदाता ब्राह्मणों की गायें चराता था। उनमें से एक गाय बहुत दूध देने वाली थी परन्तु आश्चर्य की बात थी कि सन्ध्या के समय वह गाय जब आश्रम में वापस आती थी तो उसके थनों में दूध नहीं मिलता। ब्राह्मणों के मन में सन्देह हुआ कि बप्पा एकान्त में इस गाय का दूध पी जाता है। अतः वे बप्पा की चौकसी करने लगे। बप्पा ने भी इस बात को समझ लिया। अतः उसने वस्तुस्थिति जानने का निश्चय किया और दूसरे दिन उस गाय पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। वह गाय एक निर्जन कंदरा में घुस गई। बप्पा भी उसके पीछे पीछे गया और उसने देखा कि गाय बेल पत्तों के एक ढेर की चोटी पर दूध की धार छोड रही है। बप्पा ने पास जाकर देखा कि उस ढेर के नीचे एक शिवलिंग स्थापित है और दूध की धार उसी पर गिर रही है।[5] बप्पा ने एक और दृश्य देखा। शिवलिंग के सम्मुख एक गुफा में एक योगी समाधि लगाये बैठा है। बप्पा के जाने से योगी का ध्यान टूट गया परन्तु उसने बप्पा से कुछ न कहा। उस योगी का नाम हारीत था और वह भी उस गाय की दुग्धधार का प्राप्त करते थे।

हारीत का ध्यान भंग होने पर बप्पा ने उसको प्रणाम किया और उसको अपना सारा वृत्तान्त सुनाया। इसके बाद बप्पा प्रतिदिन योगी के पास जाने लगे और भक्तिभाव से उसकी सेवा करते रहे। बप्पा की भक्ति से प्रसन्न होकर योगी ने उसे शिव मंत्र की दीक्षा दी और "एकलिंग के दीवान" की उपाधि दी। माता भवानी ने भी प्रकट होकर अपने हाथ से बप्पा को विश्वकर्मा के बनाये बहुत से दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। कुछ दिनों बाद योगी हारीत ने शिवलोक जाने का निश्चय किया और बप्पा से निश्चित समय पर आने को कहा। बप्पा को निश्चित समय पर पहुंचने में थोडा विलम्ब हो गया। हारीत रथ पर सवार होकर चल पडे थे परन्तु शिष्य को देखकर रथ की चाल को धीमा कर बप्पा को अपना मुंह खोलने को कहा। बप्पा ने मुंह खोल दिया। परन्तु जब हारीत ने उसके मुंह में थूकने का प्रयास किया तो बप्पा ने घृणा और अवज्ञा से अपना मुंह बन्द कर दिया। यदि वह ऐसा न करता तो निश्चय ही अमर हो जाता। फिर भी, थूक बप्पा के चरणों पर गिरा जिससे उसका शरीर सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से अभेद्य हो गया।

कुमार बप्पा ने अपनी माता से सुना था कि मैं चित्तौड के मोरी राजा का भानजा हूं। इसलिये बप्पा ने चित्तौड जाने का निश्चय किया क्योंकि वह चरवाहा के जीवन से उकता गया था। अतः वह अपने बहुत से साथियों के साथ उस निर्जन वन से निकल पडा। मार्ग में नाहरा मगरा[6] नामक पर्वत की तलहटी में उसे विख्यात सिद्ध पुरुष गोरखनाथ के दर्शन हो गये। गोरखनाथ ने प्रसन्न होकर उसे एक दुधारी

तलवार प्रदान की।[7] उसको यदि मय पढ़कर चलाया जाता तो पहाड़ के भी दो टुकडे हो जाते थे। इसके बाद बप्पा चित्तौड जा पहुचा।

चित्तौड में उस समय परमार कुल की मोरी शाखा का राज था और मान नामक राजा शासन कर रहा था। महाराज मान ने अपने भानजे का भली भांति आदर किया तथा एक जागीर देकर उसे अपना सामंत बना लिया। मानसिंह के समय का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। उसके अध्ययन से पता चलता है कि उस काल में भी सामंत प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा के अंतर्गत शूरवीर सरदारों को जागीरें दी जाती थी और वे लोग अपने सैनिक दस्ता के साथ राजा की सेवा के लिये तत्पर रहते थे। मानसिंह के बहुत से सरदार थे और अपने राजा के प्रति उनका व्यवहार भी अच्छा था। परन्तु बप्पा को सामंत बना दिये जाने से वे असंतुष्ट थे और अब उनके व्यवहार में भी थोडा परिवर्तन आ गया। वे लोग बप्पा को सहन नहीं कर पाये।

उन्ही दिनो किसी विदेशी सेना ने चित्तौड को घेर लिया। राजा मान ने अपने सामंतों को उस विदेशी सेना से लड़ने जाने को कहा परन्तु उन्होंने जाने से इंकार कर दिया और निवेदन किया कि इस कार्य के लिये बप्पा को भेज दिया जाय। बप्पा ने चुनौती को स्वीकार करते हुये युद्ध के लिये प्रस्थान किया। बप्पा ने अभूतपूर्व पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए विदेशी सेना को परास्त करके खदेड दिया। विजय प्राप्त करने के बाद बप्पा चित्तौड न आकर अपने पैतृक राज्य गायनी (गजनी) की तरफ चल पड़े। उस समय गायनी पर एक मलेच्छ सलीम का शासन था। बप्पा ने उसे पराजित करके राज्य पर अधिकार किया और सलीम की पुत्री के साथ विवाह किया। गायनी की शासन व्यवस्था अपने एक साथी सरदार को सौंप कर बप्पा चित्तौड लौट आया।

चित्तौड में राजा मान और उसके सरदारों में तनाव उत्पन्न हो गया और अधिकांश सरदार राज दरबार को छोडकर चले गये। राजा ने सरदारो को समझाने के लिये बारम्बार दूत भेजे परन्तु उन्होंने राजा की अपील को ठुकरा दिया। इन बागी सरदारो ने बप्पा को अपना नेता चुना और चित्तौड पर धावा बोल दिया। राजा मान को सिंहासन से हटा दिया गया और बप्पा उस देश के मोर अर्थात मुकुट स्वरूप हो गये। चित्तौड के सिंहासन पर बैठने के बाद सर्वसाधारण की सहमति से बप्पा ने "हिन्दू सूर्य" "राजगुरु" और "चक्कवे" यह तीन उपाधियाँ धारण की। राज के लोभ में पडकर बप्पा ने अपने मामा के साथ विश्वासघात किया, इसमें कोई संदेह नहीं।

बप्पा की असंख्य रानियाँ थीं जिनसे उसे बहुत सी संतान हुई। उनमें से कुछ तो अपने पैतृक राज सौराष्ट्र काठियावाड क्षेत्र में चली गई। पांच पुत्र मारवाड देश

मे जा बसे परन्तु थोड़े ही दिनों मे वहां से निकाले जाकर वे लोग अब वल्लभीपुर के ऊजड मैदान मे अति दीन भाव से समय व्यतीत कर रहे हैं। पचास वर्ष की आयु मे बप्पा खुरासान राज्य मे चले गये और उधर के राज्यो को जीता और वहा की बहुत सी मलेच्छ स्त्रियो के साथ विवाह किया। उनसे भी बप्पा के बहुत से पुत्र और पुत्रियाँ हुईं।

एक सौ वर्ष की पूर्ण आयु के बाद बप्पा की मृत्यु हुई। देलवाडा सरदार के पास एक प्राचीन ग्रन्थ है। उससे पता चलता है कि बप्पा ने इस्फहान कन्धार काश्मीर, इराक ईरान, तूरान और काफरिस्तान आदि पश्चिम देशो के राजाओ को पराजित किया तथा उनकी पुत्रियो के साथ विवाह किया और अन्त मे तपस्वी साधु का जीवन व्यतीत किया और मेरू पर्वत की तलहटी मे जीवित समाधि ली।[8] उन सब स्त्रियो मे बप्पा के 130 पुत्र हुए जो इतिहास मे नौशेरा पठानो के नाम से विख्यात हुए। उसके एक एक पुत्र ने अलग-अलग वश की प्रतिष्ठा की। हिन्दू स्त्रियो से उसके 98 पुत्र हुए। वे सब "अग्नि उपासी सूर्यवशी' कहलाये।

भट्ट ग्रन्थो मे लिखा है कि बप्पा के मरने पर मुसलमान उसकी देह को जमीन मे गाड़ना चाहते थे और हिन्दू जलाना चाहते थे। इस बात को लेकर दोनो मे काफी विवाद हुआ। परन्तु जब मृत देह पर ढका हुआ कपडा हटा कर देखा गया तो शव के स्थान पर सफेद रग के खिले हुए कमल थे। उन फूलो को मान सरोवर पर लगाया गया। फारस के नौशेरवा बादशाह के बारे मे भी इसी प्रकार की बातें कही जाती हैं।

यहा पर मेवाड के राजवश के मूल सस्थापक बप्पा रावल का सक्षिप्त जीवन चरित्र लिखा गया है। अब हम यह लिखेंगे कि वह कौन से समय मे हुआ था। पहले लिखा जा चुका है कि सवत् 205 मे शिलादित्य के समय मे वल्लभीपुर का पतन हुआ था। शिलादित्य की नौवी पीढ़ी मे बप्पा का जन्म हुआ। लेकिन राणा के महलो मे जो भट्ट ग्रन्थ है उन सबमे बप्पा का जन्म समय सवत 191 (135 ई) लिखा हुआ है। चित्तौड की एक शिलालिपि मे खुदा हुआ है कि सवत 770 (714 ई) मे चित्तौड का राजा मोरी वशी मानसिंह था और बप्पा रावल उसका भानजा था। अपने इसी मामा को सिंहासनच्युत कर वह चित्तौड के सिंहासन पर बैठा था। इस प्रकार, सही समय निश्चित करना कठिन हो जाता है। सौभाग्य से सोमनाथ के मन्दिर से प्राप्त एक शिलालेख मे पता चला है कि वल्लभी नामक एक स्वतन्त्र सवत् का प्रचलन भी था। यह सवत् विक्रम सवत् के 375 वर्ष पीछे प्रचलित हुआ है।

अब पुन हिसाब लगायें। सवत् 205 मे वल्लभीपुर का पतन हुआ। यह वल्लभी सवत् है। अर्थात् वल्लभीपुर का पतन 205 + 375 = 580 विक्रम सवत् अथवा 524 ई मे हुआ था। चित्तौड का मोरी राजा मान 770 विक्रम सवत् मे

मौजूद था। 770 म से 580 घटा दे तो 190 आया। अर्थात् इस गणना से वप्पा का ज म 190 वि स के आसपास होना चाहिए। भट्ट ग्र था मे वि स 191 लिखा हुआ है। सिंहासन पर बठा के समय वप्पा की आयु 15 वप की थी। इससे यह भी पता चलता है कि 728 ई के आसपास चित्तौड पर गुहिलोतो का आधिपत्य प्रारम्भ हुआ। इस समय से लेकर 1100 वप तक 59 राजा मेवाड क सिंहासन पर बठे। यह सत्य है कि कवियो द्वारा रचित इतिहास म कल्पनाओं की भरमार अधिक होती है पर तु राजस्थान का इतिहास वहुत-कुछ वहा के भट्ट कविया क काव्य ग्र था पर निभर है।

वप्पा के जीवनकाल म ही आक्रमणकारी मुसलमाना न भारत म प्रवश किया था और वे लोग सि धु नदी का पार कर इस देश म आय थे। हिजरी सवत् 95 म खलीफा वलीद का सेनापति मुहम्मद विन कासिम सि ध प्रदेश को जीत कर गगा के किनारे तक चला आया था। अरब तवारीखो के अलावा एलमकिन के ग्र थ म भी मुसलमानो द्वारा सि ध पर चढाई का विवरण दिया हुआ है। आठवी सदी के मध्य मे इन आक्रमणकारियो ने अजमेर के राजा माणकराय का राज्य उजाड दिया था। सि ध के राजा दाहिर का इतिहास पढन से इस बात का स देह नही रह जाता कि अजमेर पर आक्रमण करन वाला कासिम था।[9] अब्बुल फजल न लिखा है कि हिजरी सवत् 95 (713 ई) म कासिम न दाहिर का मार कर उसके राज्य का विध्वस किया था। राजा दाहिर के बेट न भाग कर चित्तौड के मोरी राजा क यहा आश्रय लिया था।

वप्पा से लेकर शक्ति कुमार के बीच तक (दो शताब्दिया म) चित्तौड क सिंहासन पर नौ राजा बैठे। इनम चार वडे वीर और प्रतापी निकल, जो इस प्रकार है—पहला कनकसेन (सन् 144 ई म), दूसरा शिलादित्य (सन 524 ई म), तीसरा वप्पा (सन् 728 ई म) और चौथा शक्ति कुमार (सन 1068 ई म)।[10]

सन्दभ

1 गुहिल का समय अभी तक पूरी तरह म निधारित नही किया जा सका है। ओझाजी क अनुसार गुहिल का समय वि स 623 (566 ई) के आसपास स्थिर किया जा सकता है।

2 आरोली के 15 मील दक्षिण-पश्चिम म स्थित है।

3 पिछल ख्यात लेखका न वप्पा क सम्ब घ म कई कपोल कल्पित बातें लिख दी जि ह टाड न मा यता दी। इन बाता न इतिहास प्रेमिया क हृदय म स्थान

पा लिया और बप्पा एक आख्यायिको के वर्णन का विषय बन गया। ये सभी कथाए बडी रोचक हैं पर तु इनमे ऐतिहासिक तथ्यो का निता त अभाव है।

4 राजपूत धोबी के गढे को बहुत ही अपवित्र समझकर घृणा करत हैं। टाड ने लिखा है कि ये गढे नदियो के किनारे खोदे जाते है।

5 ठीक इसी स्थान पर एकलिग जी का पवित्र म दिर बना हुआ है।

6 उदयपुर के पूव मे जो पहाडी माग है, उसम 7 मील दूर नाहरा मगरा अर्थात् व्याघ्र मेरू है।

7 टाड साहब को राणा कुल के प्रधान भट्ट लोगो ने बताया था कि राणा अब तक उसी दुधारी तलवार की पूजा भक्तिभाव से प्रतिवप किया करते है।

8 इस कथानक मे सच्चाई नही है क्योकि बप्पा का देहा त नागदा म हुआ था। आज भी उसका समाधिस्थान "बापा रावल' के नाम स प्रसिद्ध है।

9 मुहम्मद बिन कासिम चित्तौड की तरफ भी बढा था पर तु बप्पा के हाथो पराजित होकर वह वापस लौट गया।

10 क्या बप्पा नाम का कोई राजा हुआ है अथवा "बप्पा" किसी राजा का विरद है—इस सम्ब ध मे इतिहासकारो मे भारी विवाद है। कविराज श्यामलदास के मतानुसार 'बप्पा किसी राजा का नाम नही, कि तु खिताब है।" पर तु यह खिताब किस राजा का था ? टाड के अनुसार 'शील' नामक राजा का था। श्यामलदास के अनुसार शील के पोत महे द्र का था और भण्डारकर के अनुसार 'खुम्भाण" की थी। ओझा के अनुसार 'कालभोज' की थी। सभी विद्वानो ने अपने अपने तक दिये हैं। पर तु किसी का मत सवमा य नही हो पाया है।

इसी प्रकार, बप्पा का समय भी विवादास्पद है।

अध्याय 13

राणा लक्ष्मणसिंह के पूर्वाधिकारियो का इतिहास

बप्पा रावल के चित्तौड से ईरान चले जाने के बाद मेवाड के इतिहास मे एक नये युग का आरम्भ होता है। बप्पा से लेकर समरसिंह तक चार शताब्दियाँ व्यतीत होती हैं और इस अवधि मे 18 राजा मेवाड के सिंहासन पर बैठे। परन्तु उनके बारे मे भट्ट ग्रन्थो मे विशेष जानकारी नहीं मिलती। जो थोडी बहुत जानकारी मिलती है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि वे सब बप्पा के योग्य वशज थे।[1]

आयतपुर के एक शिलालेख से पता चलता है कि उपरोक्त अवधि मे शक्ति कुमार नाम का एक राजा हुआ जो सवत् 1024 (968 ई०) मे मेवाड के सिंहासन पर विराजमान था। जन लेखो से पता चलता है कि शक्तिकुमार से चार पीढी पहले सवत् 922 (866 ई०) मे अल्लट नामक राजा मेवाड का अधिपति था। खुमानरासा नामक एक प्राचीन ग्रन्थ से पता चलता है कि मेवाड पर मुसलमानो का आक्रमण हुआ था और यह आक्रमण राणा खुमान के समय मे हुआ था। राणा खुमान ने 812 से 836 ई० तक राज्य किया था।

भारत का इतिहास इस समय घोर अन्धकार से ढका हुआ था और उस समय का ऐतिहासिक वर्णन खोजना बहुत कठिन काम है। फिर भी, भट्टकवियो, आईन ए अकबरी और फरिश्ता आदि के ग्रन्थो की सहायता से जो सामग्री हमे मिल सकी है उसकी सहायता से हम यहा पर कुछ लिखने का प्रयास करेंगे।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है गुहिलोत कुल मे 24 शाखायें हैं। इनमे से कुछ शाखायें बप्पा से उत्पन्न हुई। चित्तौड पर अधिकार करने के बाद बप्पा सूरत देश मे गये। उसके निकट एक बन्दरद्वीप है जिस पर इस्फगुल नाम का राजा राज करता था।[2] बप्पा ने इस राजा की पुत्री के साथ विवाह किया। उसके गर्भ से बप्पा के अपराजित नामक एक पुत्र हुआ। इससे पहले बप्पा के कालीवाव नगर के परमार राजा की पुत्री के गर्भ से असिल नामक एक पुत्र उत्पन्न हो चुका था। असिल बडा था परन्तु वह पिता के राज्य को छोड कर अपने मामा के यहा रहता था। इस कारण

चित्तौड का सिंहासन ग्रपराजित को मिला। ग्रसिल ने सोराष्ट्र मे एक राज्य स्थापन करके वहा एक शाखाकुल की प्रतिष्ठा की।[3] उसके वंशज 'ग्रसिल गुहिलोत" कहलाये।

ग्रपराजित के समय का हम कोई उल्लेखनीय वृत्तान्त नही मिलता। उसके दो पुत्र हुए। एक खलभोज ग्रौर दूसरा नन्दकुमार। खलभोज मेवाड के सिंहासन पर बैठा ग्रौर नन्दकुमार ने दादा वंश के राजा भीमसेन को मारकर दक्षिण मे बसे उसके देवगढ नामक राज्य पर ग्रधिकार कर लिया। खलभोज के बाद खुमान मेवाड का राजा बना। मेवाड के इतिहास मे खुमान ग्रपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध है। उसके राजा बनने के कुछ दिनो बाद ही मुसलमानो ने मेवाड पर ग्राक्रमण किया ग्रौर चित्तौड को घेर लिया। इस ग्रवसर पर ग्रनेक राजपूत राजा ग्रपनी ग्रपनी सेनाग्रो के साथ चित्तौड की रक्षा के लिये ग्रा पहुँचे। राणा खुमान ने बुद्धिमता एवं वीरता के साथ युद्ध किया ग्रौर उन्हे परास्त किया। भागती हुई मुस्लिम सेना का पीछा किया गया ग्रौर उनके सेनापति महमूद को पकड कर चित्तौड ले ग्राये। परन्तु यह महमूद कौन सा था। सन्देह इसलिये होता है कि इस युद्ध के दो शताब्दी बाद गजनी की सेना लेकर जिस मुसलमान ने भारत पर ग्राक्रमण किया था उसका नाम भी महमूद था। इस सन्देह के निवारण के लिये उन लोगो का इतिहास देखना होगा।

खलीफा उमर के समय मे सर्वप्रथम मुसलमान भारत मे ग्राये। उन दिनो गुजरात ग्रौर सिन्ध ग्रपने व्यापार-वाणिज्य के लिये विख्यात हो रहे थे। इन नगरो पर ग्रधिकार जमाने के उद्देश्य से खलीफा उमर ने टाइग्रेस नदी के किनारे बसोरा नामक एक नगर बसाया ग्रौर फिर ग्रब्बुल ग्रायास के नेतृत्व मे एक बडी सेना को भारत की ग्रोर भेजा। ग्रब्बुल ग्रायास सिन्ध तक बढता चला ग्राया। ग्रारोर नामक स्थान पर भारतीयो के साथ उसका जबरदस्त युद्ध हुग्रा जिसमे मुस्लिम सेना परास्त हुई ग्रौर ग्रब्बुल ग्रायास वीरगति को प्राप्त हुग्रा। उमर साहब के बाद उस्मान खलीफा बने। उसने भी भारत पर ग्राक्रमण करने के लिये व्यापक तैयारिया की परन्तु वह इस दिशा मे कुछ न कर पाया। उस्मान के बाद ग्रलीबुगदाद खलीफा बने। उसके सेनापति को सिन्ध जीतने मे सफलता तो मिली परन्तु वह ग्रधिक दिनो तक इस प्रदेश को ग्रपने ग्रधिकार मे न रख पाया। खलीफा की मृत्यु के बाद उसे यहा इतने ग्रधिक संकटो का सामना करना पडा कि वह इस देश को छोडकर वापस स्वदेश लौट गया। इसके बाद खलीफा ग्रब्दुल मलिक ग्रौर खुरासान के बादशाह ग्रजीद के समय मे भी भारत पर ग्राक्रमण करने की तैयारिया होती रही परन्तु ग्राक्रमण नही हुग्रा।

कुछ समय बाद, खलीफा वलीद ने एक शक्तिशाली सेना के साथ भारत पर ग्राक्रमण किया ग्रौर सिन्ध तथा ग्रासपास के कई नगरो को जीत लिया। कहते हैं

कि गगा के पश्चिमी किनारो पर जो छोटे छोटे राजा थ, उन्होने अपने सवनाश से बचन के लिय बिना लडे ही खलीफा को कर देना स्वीकार कर लिया। इसी अवसर पर सिंध का पतन हुआ और उसका राजा दाहिर मारा गया। राजा राडरिक क अण्डलूस राज्य पर भी इस्लामी ध्वज फहरान लगा। इस प्रकार का आक्रमण वि स 774 (718 ई०) मे सेनापति मुहम्मद बिन कासिम के द्वारा भारत म किया गया था। कासिम ने राजा दाहिर की दो युवा पुत्रियो को खलीफा की भेंट म भेजी थी। आईन अकबरी और फरिश्ता के ग्रन्थ मे लिखा है कि उन दोनो लडकियो ने खलीफा से कासिम के अश्लील व्यवहार की शिकायत की जिसे सुनते ही खलीफा ने क्रोधित होकर आदेश दिया कि सेनापति कासिम को कच्ची खाल म भरकर मरे सामने प्रस्तुत किया जाय। उस समय कासिम कन्नौज पर आक्रमण की तयारी कर रहा था। खलीफा के आदेशानुसार उसे खलीफा की अदालत म लाया गया और उसके जीवन का अन्त कर दिया गया।

उपरोक्त घटना के बाद भारत म मुसलमानो की गतिविधियो का विशष वृत्तान्त नही मिलता। केवल इतना पता चलता है कि वलीद के बाद खलीफा अल मनसूर के समय म खुरासान के दजीद ने बगावत कर दी थी और उसका बेटा भाग कर सिन्धु देश म चला आया था। जिस समय अलमनसूर स्वय खलीफा नही था अपितु खलीफा अब्बास का सेनापति था उस समय सिन्ध और भारत के अन्यान्य पश्चिमी राज्य उसके अधिकार मे थे। उसके समय म ही बप्पा रावल मेवाड को छोडकर ईरान गये थे।

हारूँ अल रशीद न खलीफा बनने क बाद अपन विशाल राज्य को अपने पुत्रो मे विभाजित किया और अपन दूसर पुत्र अलमामून को खुरासान, जबूलिस्तान काबुलिस्तान, सिन्ध और हिन्दुस्तानी राज्य दिये। हारूँ अल रशीद की मृत्यु के बाद अल मामून ने अपन बडे भाई को पदच्युत करके खलीफा पद पर अधिकार कर लिया। यह घटना सन् 813 ई० की है। यह वही समय था जब खुमान चित्तौड का राजा था। उसी के शासन काल मे अलमामून ने जबूलिस्तान से आकर चित्तौड पर आक्रमण किया था। इसी को पराजित करके खुमान ने बन्दी बनाया था। लिखने वालो ने भूल से उसका नाम महमूद लिख दिया।

और कुछ न रह गया। इस स्थिति म खलीफाओ का भारत के साथ रहा-सहा सम्ब ध भी टूट गया और भारत को भी कुछ वर्षों के लिये मुस्लिम आक्रमणो से राहत मिल गई। पर तु खुरासान के सिंहासन पर सुबुक्तगीन के बठते ही (975 ई०) भारत पर आक्रमण की तयारियाँ शुरू हो गई। इसी वप उसने सि धु नदी को पार कर भारत पर आक्रमण किया। उसकी विशाल सेना के सामने भारत के बहुत से राजाओ का पतन हुआ और मकडो लोगो का अपना सनातन धम छोडकर मुसलमान हान क लिये विवश होना पडा। इसी शताब्दी क अ त मे सुबुक्तगीन न एक बार फिर भारत पर आक्रमण किया और उसक सनिको न हि दुओ के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया।

सुबुक्तगीन के बाद उसका बेटा महमूद सिंहासन पर बठा और उसन बारह बार भारत पर भयानक आक्रमण किय।[5] अपन इन आक्रमणो के दौरान उसन यहा की सम्पत्ति को लूटा, नगरो का विनाश किया और म दिरो को तोड कर उ ह भूमिसात किया। उसके अत्याचारो न हजारो हि दुओ को मुसलमान बनने के लिये विवश कर दिया।

अब हम पुन अपन मूल वृत्ता त की तरफ आते है। चित्तोड के मोरी राजा मानसिंह के समय म नेच्छो न मेवाड पर आक्रमण किया था जि हे बप्पा रावल ने पराजित किया था। सम्भवत इजीद उनका नेता था अथवा मुहम्मद बिन कासिम न सि ध से आकर चित्तोड पर आक्रमण किया था। पर तु मुसलमानी ग्र थो म इस आक्रमण का कोई उल्लख नही पाया जाता। उनकी तवारीखो मे खलीफाओ अथवा उनके सेनापतियो ने हि दुओ पर जो विजयें प्राप्त की थी, केवल उ ही का उल्लेख पाया जाता है। खलीफा के विद्रोही सेनापति भी अक्सर भारत पर चढ आते थे पर तु उनकी चढाइयो का उल्लख तवारीखो मे नही किया गया है। हि दू ग्र थो म इन आक्रमणो का वणन भिन्न भिन्न तरीके स किया गया है। उ ह कही दत्य कही राक्षस और कही जादूगर के नाम से पुकारा गया है। कभी वह सि ध से आया कही जहाज पर चढ कर समुद्र के माग से आया। मूल बात यह है कि वह प्रचण्ड शत्रु कौन था उसके सम्ब ध मे अनेक प्रकार के भिन्न भिन्न मत सुने जाते हैं।

गुहिलोत, चौहान और यादव लोगो के ऐतिहासिक ग्र थो स पता चलता है कि सवत 750 से 780 तक (694 से 724 ई) आक्रमणकारियो ने उनके राज्यो म भयानक आतक उपस्थित कर दिया था। पर तु इन ग्र थो मे आक्रमणकारी कौन लोग थे—इसका स्पष्ट वर्णन नही किया गया है। हिजरी सन 75 (वि स 750) म पजाब के एक यदुवशीय भट्ट राजा ने शत्रु द्वारा अपनी राजधानी शालपुर से खदेडे जान पर सतलज नदी के पूव पार की मरुभूमि मे आकर आश्रय लिया था। उस शत्रु का नाम भट्ट ग्र थो मे फरीद लिखा है। इसी समय अजमेर के चौहान राजा माणिक-राय पर भी शत्रु न आक्रमण किया था और माणिकराय युद्ध म मारा गया था। इन

दिना म सि धु सागर दोग्राव मीची वश के पहल के राजाग्रा क ग्रधिकार म था ग्रौर हारस कुल के पूवज गोलकुण्डा म रहत थ । इन दोनो वशो क राजा एक ही समय म ग्रपन ग्रपन राज्यो से निकाले गये थ । जिस शत्रु ने इनका राज्य से निकाला था, भट्ट ग्र था म उसका नाम "दानव लिखा है । कहत है कि गगोत्री के निकट क "गजलि व दराजारण्यराय' नामक किसी पहाडी देश स वह दानव भारत म ग्राया था । इससे ग्राग हि दू ग्र थो म कुछ नही लिखा है । मुस्लिम तवारीखो से पता चलता है कि इन दिनो म खलीफा की तरफ स इजीद खुरासान म राज करता था ग्रौर खलीफा वलीद की सना भारत म ग्राक्रमण करन के लिय गगा के किनारे तक बढ ग्राई थी । इससे ग्रनुमान लगाया जा सकता है कि इन दिनो म भारत मे ग्राकर जिन ग्राक्रमणकारिया न उत्पात मचाया था, उनका नेता इजीद ग्रथवा वलीद का ग्र य कोई सेनानायक हो सकता है । क्योकि मुस्लिम तवारीखो म भारत पर हान वाल ग्राक्रमणो क सम्ब ध म इ ही दोनो का उल्लेख मिलता है ।

चित्तौड क मोरी राजा मान क समय मे मलेच्छो के ग्राक्रमण से चित्तौड की रक्षा करन के लिय जा राजा वहा पहुचे थ उनके नाम इस प्रकार हैं—ग्रजमर, कोटा, सौराष्ट्र ग्रौर गुजरात क राजा, हूणो का सरदार ग्रगुत्सी, उत्तर देश का राजा बूसा, जारीजा का राजा शिव जगल देश का राजा जोहिया शिवपत, कुल्हर, मालून ग्रोहिर ग्रौर हूल । इनके ग्रतिरिक्त ग्र य बहुत से राजाग्रो ने भी युद्ध मे भाग लिया था । सि ध के मृतक राजा दाहिर के एक पुत्र, जो इस समय चित्तौड म था, ने भी युद्ध म भाग लिया था । इस युद्ध म बप्पा रावल न ग्रधिक बहादुरी दिखाई थी ग्रौर उसी के कारण शत्रु लाग पराजित होकर सिन्ध देश की तरफ चल गय थ । शत्रुग्रो का पीछा करते हुए बप्पा ग्रपन पूवजो के राज्य गजना तक पहुच गया था । उस समय वहा पर सलीम का शासन था । सलीम का पराजित करके बप्पा ने गजनी के सिंहासन पर ग्रपन भानजे को बठाया ।[6] बप्पा न सलीम की पुत्री के साथ विवाह किया ग्रौर उसे साथ लकर वापस चित्तौड लौट ग्राया ।

रोल के मकवाना, जेतगढ के जाडिया, तारागढ से रीवड, नरवर के कच्छवाहे, साचौर के कालुम, जूनागढ के यादव अजमेर के गौड, लोदरागढ से चंदाना कसौदी के डोड[10] दिल्ली के तोमर[11] पाटन से चावडा, जालौर के सोनगर, सिरोही से देवडा गागरोन से खीची, पाटरी से झाला जोयनगढ से दुसाना, कन्नौज से राठौड छोटियाला से बल्ला, पीरनगढ से गोहिल, जसलमेर से भाटी लाहौर से बूसा,[12] रोनीजा से सकल,[13] नरलीगढ से सीहूर[14] मडलगढ से निकुम्प, राजोड से बडगूजर कुरनगढ से चंदेल[15] मोकर से सिकरवार, ओमरगढ से जतवा, पाली से वाग्गेत, खुनतरगढ से जारीजा, जरिगाह के खेरकर और काश्मीर के परिहार।

शत्रु से युद्ध लडने तथा चित्तौड की रक्षा के लिये राजा खुमान को इन्ही राजाओं से सैनिक सहायता मिली थी। खुमान ने अपने जीवनकाल में 24 बार शत्रुओं से लोहा लिया था और इन युद्धों में उसने जिस शूरवीरता और पराक्रम का परिचय दिया, वह रोम सम्राट सीजर की तरह राजपूतों के लिये गौरव की बात है। उसके शौर्य और प्रताप ने भारत के इतिहास में राजपूतों का नाम अमर कर दिया है।

ब्राह्मण लोगों की सलाह पर महाराजा खुमान ने अपने छोटे पुत्र जगराज को राज्य का भार सौंप दिया। परन्तु कुछ समय बाद उनका विचार बदल गया और उन्होंने शासन प्रबन्ध पुनः अपने हाथ में ले लिया और सलाह देने वाले ब्राह्मणों को मौत के घाट उतार दिया तथा समस्त ब्राह्मणों को अपने राज्य से निकाल दिया। खुमान को इस पाप का फल शीघ्र ही मिल गया। उसी के एक अन्य पुत्र मंगल ने उसे मार कर सिंहासन हथिया लिया। परन्तु मेवाड के सरदारों ने पितृघाती मंगल को मेवाड से खदेड दिया। मेवाड से निकाले जाने के बाद वह उत्तरी रेगिस्तान में जा बसा और लोदडवा नामक स्थान पर अधिकार करके अपने वंशवृक्ष को स्थापित किया। उसके वंशज "मांगलिया गुहिलोत" कहलाये।

मंगल के निर्वासन के बाद भर्तृ भट्ट चित्तौड के सिंहासन पर बैठा। इसके और इसके पीछे जो राजा हुए, उन सभी का इतिहास अंधकार में है। कहते हैं कि भर्तृ भट्ट ने मालव और गुर्जर राज्य के 13 स्वतन्त्र राज्यों को जीतकर अपने 13 पुत्रों को वहां के सिंहासन पर बैठाया। वे सब "गाटरा गुहिलोत" कहलाये। उस समय में चित्तौड के गुहिलोत और अजमेर के चौहानों में कभी मित्रता और कभी शत्रुता का दौर चलता रहता था। परन्तु विदेशी आक्रमण के समय दोनों एकजुट हो जाया करते थे। चित्तौड के राजा वीरसिंह ने चौहान राज दुर्लभ को मार दिया परन्तु दुर्लभ के पुत्र वीसलदेव ने वीरसिंह के उत्तराधिकारी तेजसिंह के साथ अभिन्न मित्रता निभाई। राजपूतों के इन अपूर्व गुणों का उल्लेख केवल भट्ट ग्रन्थों में ही नहीं लिखा है, अपितु अनेक शिलालेख भी उनके इन गुणों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

सन्दर्भ

1 डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार बप्पा रावल के उत्तराधिकारियों के क्रमश नाम इस प्रकार हैं—भोज महेन्द्र, नाग, शिलादित्य, अपराजित कालभोज, खुमान प्रथम मत्तट भर्तृ भट्ट सिंह, खुमान द्वितीय, महायक, खुमान तृतीय, भर्तृ भट्ट द्वितीय अल्लट नरवाहन, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद और उसके बाद लगभग 10 शासक ऐसे हुए जिनके बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती। टाड का वर्णन इनसे मेल नहीं खाता है।

2 इस्फगुल का राज्य चौल प्रदेश में था। बहुत से विद्वान इसको बाग राजा का पिता कहते हैं।

3 असिल ने अपने किले का नाम असीलगढ रखा था। उसके पुत्र का नाम विजयपाल था जो युद्ध में मारा गया।

4 मलभोज का दूसरा नाम रण था। उसी ने योगी हारीत के आश्रम में एक लिंग के मंदिर को बनवाया था।

5 महमूद गजनवी ने कुल मिलाकर भारत पर 17 बार आक्रमण किया था।

6 किसी भी अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य से इस घटना की पुष्टि नहीं होती है।

7 कस्बे का प्राचीन नाम गायनी या गजनी था। सभवत बप्पा रावल भी इसी गजनी की तरफ गया था। यहां पर पहले समय में गुहिलोतो का शासन था और वे गजनी के गुहिलोत पुकारे जाते थे।

8 सेतब दर मलाबार के किनारे है। परन्तु जोरकेरा का विवरण नहीं मिलता है।

9 गराबी सभवत परमार कुल की कोई शाखा हो।

10 कसोदी शायद गंगा के किनारे कन्नौज के दक्षिण में बसा हुआ था।

11 उस समय दिल्ली में कौनसा तोमर राजा था? इसकी कोई जानकारी नहीं मिल पाई है।

12 लाहौर के बूसा लोगों का वृत्तान्त भी किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं मिलता।

13 इसका वास्तविक नाम रूणेचा है। यह पोकरण के पास है और सकल पर मारा की एक शाखा थी।

14 सरलीगढ के सीहूर अथवा सिहोट सिन्धु नदी के किनारे राज करते थे।

15 कुरनगढ आधुनिक बुन्देलखण्ड में था।

अध्याय 14

अनगपाल, समरसिह और राहप

मेवाड क राजा समरसिंह का ज म सवत् 1206 मे हुआ । यद्यपि चित्तौड के राज भट्ट कवियो न उसके जीवन चरित्र क ,बार म वहुत कुछ लिखा है पर तु यहा हम च द्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो का आधार लकर आग बढेगे ।[1] पर तु इसस पूव हम उस समय की स्थिति की समालोचना करेंगे । इस समय पाटन नगर पर लोह पुरुष चालुक्यवशी भोला भीम का शासन था । आवू पवत पर ध्रुव नक्षत्र की भाति रणक्षेत्र मे अटल रहने वाले परमारवशी जेत का शासन था । मेवाड मे अत्यन्त पराक्रमी समरसिंह राज कर रहा था जो दिल्लीपति के शत्रु यवनो के माग को रोकन वाली लोहे की शलाका के समान था । इन सबके मध्य मे बलवान और निडर नाहरराव था जो अपने ही वल स मरूभूमि की राजधानी मडौर पर शासन कर रहा था । दिल्ली पर तोमरवशी अनगपाल का शासन है जिसकी आज्ञा पालन के लिए मडौर नागौर, सि धु, जलावत और इनक निकट बसे हुए दूसरे देश जैसे कि पशावर, लाहौर, कागडा काशी, प्रयाग आर देवगिरी के राजा लोग तत्पर रहत है । महाराजा अनगपाल इन दिना म इन सब राजाओ के शिरमौर थे ।[2]

जावालिस्तान से भागकर भारत म आन के बाद भट अथवा भाटी लोगा ने पजाब म शालिवाहनपुर, तानोट और मारवाड म लोद्रवा को अपन अधिकार म कर लिया था और जिस समय पृथ्वीराज चौहान दिल्ली क सिंहासन पर वठे उस समय भाटी लाग जसलमेर की प्रतिष्ठा म लग हुए थ । भाटी लोगा का आरोर म रहन वाल खलीफा के सनानायको से निर तर सघष करना पड रहा था । इन सघर्षों म भाटियो को प्राय सफलता मिलती रही । चौहानराज पृथ्वीराज के समय से ही भाटी लोगा की उन्नति आरम्भ हुई । भाटीराज का एक भाई अचीलश पृथ्वीराज का एक प्रसिद्ध सनापति था ।

अनगपाल प्रथम तोमर राजा बिल्हनदव स 19 पीढी पीछे हुए । जसाकि पहल लिखा जा चुका है कि जब विक्रमादित्य न उज्जन को भारत की राजधानी बनाई तो युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ का गौरव समाप्त हो गया । सकडा वर्षो बाद बिल्हनदेव न इसका पुन उद्धार किया और इसे अपनी राजधानी बनाया और

सन्दर्भ

1 डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार बप्पा रावल के उत्तराधिकारियों के क्रमश नाम इस प्रकार हैं—भोज, महेन्द्र, नाग, शिलादित्य, अपराजित, कालभोज, खुमान प्रथम, मत्तट, भर्तृ भट्ट, सिंह, खुमान द्वितीय, महायक, खुमान तृतीय, भर्तृ भट्ट द्वितीय अल्लट, नरवाहन, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद और उसके बाद लगभग 10 शासक ऐसे हुए जिनके बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती। टाड का वर्णन इससे मेल नहीं खाता है।

2 इस्फगुल का राज्य चौल प्रदेश में था। बहुत से विद्वान इसको बाण राजा का पिता कहते हैं।

3 असिल ने अपने किले का नाम असीनगढ़ रखा था। उसके पुत्र का नाम विजयपाल था जो युद्ध में मारा गया।

4 कालभोज का दूसरा नाम कर्ण था। उसी ने योगी हारीत के आश्रम में एक लिंग के मंदिर को बनवाया था।

5 महमूद गजनवी ने कुल मिलाकर भारत पर 17 बार आक्रमण किया था।

6 किसी भी अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य से इस घटना की पुष्टि नहीं होती है।

7 कस्बे का प्राचीन नाम गायनी या गजनी था। सम्भवत बप्पा रावल भी इसी गजनी की तरफ गया था। यहां पर पहले समय में गुहिलोतों का शासन था और वे गजनी के गुहिलोत पुकारे जाते थे।

8 सेतव दर मलाबार के किनारे है। परन्तु जारकेरा का विवरण नहीं मिलता है।

9 सरावी सम्भवत परमार कुल की कोई शाखा हो।

10 कसादी शायद गंगा के किनारे कन्नौज के दक्षिण में बसा हुआ था।

11 उस समय दिल्ली में कौनसा तोमर राजा था? इसकी कोई जानकारी नहीं मिल पाई है।

12 लाहौर के बूसा लोगों का वृत्तान्त भी किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलता।

13 इसका वास्तविक नाम रूणेचा है। यह पोकरण के पास है और सकल पर मारों की एक शाखा थी।

14 खरलीगढ के सोहूर अथवा मिहोट सिंधु नदी के किनारे राज करते थे।

15 कुरनगढ आधुनिक बुन्देलखण्ड में था।

अध्याय 14

अनगपाल, समरसिह और राहप

मेवाड के राजा समरसिंह का ज म सवत् 1206 म हुआ। यद्यपि चित्तौड क राज भट्ट कवियो न उसके जीवन चरित्र क ,वार म वहुत कुछ लिखा है, पर तु यहा हम चन्द्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो का आधार लेकर आगे बढेग।[1] पर तु इसस पूव हम उस समय की स्थिति की समालोचना करेंगे। इस समय पाटन नगर पर लाह पुरुप चालुक्यवशी भोला भीम का शासन था। आबू पवत पर ध्रुव नक्षत्र की भाति रणक्षेत्र म अटल रहने वाले परमारवशी जेत का शासन था। मेवाड मे अत्यन्त पराक्रमी समरसिंह राज कर रहा था जा दिल्लीपति के शत्रु यवनो क माग को रोकन वाली लोहे की शलाका के समान था। इन सबके मध्य मे बलवान और निडर नाहरराव था जो अपने ही बल स मरूभूमि की राजधानी मडौर पर शासन कर रहा था। दिल्ली पर तोमरवशी अनगपाल का शासन है जिसकी आज्ञा पालन के लिए मडौर, नागौर, सि धु, जलावत और इनके निकट बसे हुए दूसरे देश जसे कि पशावर, लाहौर, कागडा काशी, प्रयाग और देवगिरी के राजा लोग तत्पर रहते हैं। महाराजा अनगपाल इन दिनो म इन सब राजाओ के शिरमौर थे।[2]

जावालिस्तान से भागकर भारत म आन के बाद भट अथवा भाटी लोगा न पजाब म शालिवाहनपुर, तानोट और मारवाड म लोद्रवा को अपन अधिकार म कर लिया था और जिस समय पृथ्वीराज चौहान दिल्ली क सिंहासन पर बठे उस समय भाटी लोग जसलमर की प्रतिष्ठा म लग हुए थे। भाटी लोगा का आरार म रहन वाल खलीफा के सनानायका स निर तर सघप करना पड रहा था। इन सघर्षो म भाटियो को प्राय सफलता मिलती रही। चौहानराज पृथ्वीराज के समय स ही भाटी लोगा की उन्नति आरम्भ हुई। भाटीराज का एक भाई अचीलश पृथ्वीराज का एक प्रसिद्ध सनापति था।

अनगपाल प्रथम तोमर राजा बिल्हनदव स 19 पीढी पीछे हुए। जसाकि पहल लिखा जा चुका है कि जब विक्रमादित्य न उज्जन को भारत की राजधानी बनाई तो युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ का गौरव समाप्त हो गया। मकडो वर्षो बाद बिल्हनदव न इसका पुन उद्धार किया और इस अपनी राजधानी बनाया और

इसका नाम दिल्ली रखा। उसके उत्तराधिकारियो के समय मे अजमेर के चौहान राजा दिल्ली के करद् साम तो की भाति शासन करते थे। परन्तु चौहानो के शक्ति सम्पन्न होते ही यह अधीनता नाम मात्र की रह गई थी।

महाराज अनगपाल की सर्वोच्चता को कन्नौज वालो ने चुनाती दी। इस बात का लेकर दोनो पक्षो म जबरदस्त युद्ध लडा गया। इस युद्ध म अजमेर क तत्कालीन राजा सोमेश्वर न अनगपाल की विशेष सहायता की जिससे प्रसन्न होकर अनगपाल न अपनी एक पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। इसी लडकी के गर्भ से पृथ्वीराज का ज म हुआ।[3] जब पृथ्वीराज आठ वष का ही था, उसे दिल्ली सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया। कन्नौज का जयचन्द और पृथ्वीराज नाना ही अनगपाल के दोहित्र थे। जयच द के पिता विजयपाल ने भी अनगपाल की पुत्री से विवाह किया था। जयच द पृथ्वीराज स बडा था। इसलिए दिल्ली क सिंहासन पर अपना हक मानता था। इससे चौहाना और राठौडो म ऐसी घातक प्रतिस्पर्धा शुरू हुई जिसन अ त मे दानो का ही सवनाश कर दिया। जब पृथ्वीराज दिल्ली क सिंहासन पर बठा ता जयच द न उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार नही किया और दिल्ली के सिंहासन को हस्तगत करने की जोड ताड म लग गया। इस काम म अन हिलवाड पाटन के राजा और मडौर के परिहार राजा न जयच द का साथ दिया। ये दोना चौहानो के पुश्तनी शत्रु थे। मडौर नरेश ने ता पृथ्वीराज को अपनी पुत्री देने की बात कर ऐन समय पर वचन भग कर पृथ्वीराज का घोर अपमान भी किया। अत दोनो म भयकर युद्ध लडा गया और इसी युद्ध ने पृथ्वीराज के भावी गौरव की सूचना दी।[4] जयच द और पट्टन क राजा ने विदेशियो की सहायता लेने की बात सोची। भारतीय राजाओ की इस आपसी फूट का मुहम्मद गोरी ने अच्छा फायदा उठाया और उसने भारत की भूमि पर इस्लाम की विजय पताका को गाड दिया।

चित्तौड के राजा समरसिंह न पृथ्वीराज की बहन पृथा से विवाह किया था।[5] इस सम्ब ध तथा दोनो के व्यक्तिगत चरित्र के कारण दोनो म इतनी प्रगाढ मत्री हो गई कि उसका अ त कग्गर के किनारे समरसिंह की मृत्यु के साथ ही हुआ। आपसी विवादो और युद्धो स हि दुस्तान का कभी रा त नहीं मिली। पर तु इन घरेलू झगडों मे एक विचित्र बात देखने को मिलती है। जब विवाद की आग तज हो जाती थी, ता उस समय का कोई भाट दानो पक्षा के बीच म पडकर दोनो मे सुलह करा देता था। इस प्रकार की शा ति परस्पर के विवाह बधन से हुआ करती थी। पर तु इस प्रकार का मत्री भाव दो पीढी से अधिक नही ठहरता था। भारत के राजाओ की सदा से ही यही राजनीति रही है। इसकी पुष्टि स्वय भारत के महाकाव्यो, अरब वालो के वृत्ता तो तथा फारसी ग्र था स होती है। उनकी इस दुर्नीति से भारतभूमि

शियो के आक्रमण का शिकार बनती रही।

पृथ्वीराज चौहान को राजा समरसिंह के सहयोग की सर्वप्रथम आवश्यकता तब पड़ी जबकि नागौर में एक स्थान से सात करोड़ रुपया का दबा हुआ खजाना मिला। पृथ्वीराज को जब यह खजाना मिल गया तो कन्नौज के राजा और पाटन के राजा दोनों के मन में यह आशंका उत्पन्न हुई कि इस भारी सम्पत्ति के हाथ लगने से पृथ्वीराज की सैनिक शक्ति और भी प्रबल हो जायगी। पृथ्वीराज की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए दोनों ने अपनी सहायता के लिए शहाबुद्दीन को आमंत्रित किया।[6] इस संकट के अवसर पर समरसिंह को बुलाने के लिए पृथ्वीराज ने अपने सामन्त चण्डपुण्डीर को चित्तौड़ भेजा। चण्डपुण्डीर लाहौर का करद सामन्त और सीमा प्रान्त का रक्षक था। वह युद्ध में कुशल पराक्रमी और पृथ्वीराज का विश्वासी सामन्त था। उससे सारा वृत्तान्त सुनकर समरसिंह अपनी शक्तिशाली सेना को लेकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ।

पृथ्वीराज अनहिलवाड़ा पाटन के राजा पर आक्रमण करके उसको [illegible] करना चाहता था। परन्तु चूँकि वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा समरसिंह [illegible] से बँधा हुआ था, अतः उसने वहाँ जाना अपने लिए उचित न समझा। [illegible] हुआ कि पृथ्वीराज इस राजा के विरुद्ध अभियान करे और समरसिंह [illegible] का विरोध करे। समरसिंह ने गजनी की सेना के साथ बहुत ही [illegible] लड़ा जिससे पृथ्वीराज को इतना समय मिल गया कि वह [illegible] करके समरसिंह से आ मिले।[7] समरसिंह और पृथ्वीराज [illegible] सेना को बुरी तरह से पराजित किया और उसके नेता [illegible] में जो धन पृथ्वीराज को मिला था, समरसिंह उसमें [illegible] हुआ। हाँ, उसने अपने सरदारों को पृथ्वीराज से [illegible] अवश्य दे दी।

इस घटना के बाद बहुत वर्ष बीत गये। [illegible] अपनी सेना सहित दिल्ली तथा उसके राजा [illegible] ईर्ष्या और प्रतिशोध की अग्नि में जल [illegible] के राजा उस भावी संघर्ष में मूक दर्शक [illegible] का विध्वंस करने वाला था।

कवि चन्द ने समरसिंह द्वारा [illegible] का विस्तृत विवरण दिया है। [illegible] सका। चित्तौड़ से प्रस्थान करने के [illegible] कर्णसिंह को सौंपा। इससे उसका [illegible] गया। वहाँ उसने विदौर नामक [illegible] की प्रतिष्ठा की। दिल्ली पहुँचने पर [illegible]

समय तक गजनी की सेना भारत मे प्रवेश कर चुकी थी। अत दिल्ली से पृथ्वीराज और समरसिंह राजपूत सेनाओ के साथ शत्रु की तरफ बढे। कगार के किनारे पर दोनो पक्षो के मध्य घमासान युद्ध हुआ। तीन दिन की भयकर मारकाट के बाद समरसिंह अपने पुत्र कल्याण और तेरह हजार राजपूत सनिको तथा सरदारा के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। जब उसकी रानी पृथा न अपन पति तथा पुत्र की मृत्यु, भाई पृथ्वीराज के ब दी बनाये जान तथा हजारो राजपूत सनिको की वीरगति का दु खद समाचार सुना तो उसने बिना किसी बात की प्रतीक्षा के चिता म प्रवेश कर अपन प्राण उत्सग कर दिये। इसके बाद गजनी की विजयी सेना न दिल्ली पर अधिकार कर लिया और फिर कन्नौज का पतन हुआ और देशद्रोही जयच द को गगा की लहरा म अपन प्राण गवाने पडे। चौहानो के राज सिंहासन पर बठने से शहाबुद्दीन को रोकन वाला अब कोई न बचा।

शौय पराक्रम धय और जीवन के उच्च आदर्शो के सम्ब ध म पृथ्वी पर एसी कौनसी जाति है जा राजपूतो की बराबरी कर सके? शताब्दियो तक विदेशी आक्रमणकारियो के अत्याचारो और सवनाश को सहन करके भी राजपूत जाति न जिस प्रकार अपन पूवजो की सभ्यता को अपन जीवन म सुरक्षित रखा है, उसकी समता ससार की कोई जाति नही कर सकती, यह बात तो हम माननी ही पडेगी। राजपूत जाति स्वभावत निडर और स्वाभिमानी होती है और अपन सम्मान तथा गौरव की रक्षा के लिय अपना सवस्व बलिदान करन को तत्पर रहती है। इस प्रकार के गुण एक जाति के गौरव की वृद्धि करन वाले होत है। राजपूत युद्ध क्षत्र म पराजित होकर भागन की अपेक्षा वीरगति को प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर समझता है। अवसर का लाभ उठाने म विश्वास रखन वाली जातियाँ उनकी समानता नही कर सकती। प्रत्येक राजपूत अपनी शरण मे आये हुय शत्रु की रक्षा करना भी अपना कत्तव्य समझता है। जीवन क इस महत्वपूण सिद्धा त की श्रेष्ठता से कौन इन्कार कर सकता है? उनक कुछ राज्यो न देशद्रोह का परिचय दिया और उन्ह उसकी सजा भुगतनी पडी। राठौडा की कीर्ति और चालुक्यो का वभव जाता रहा और अब उनका केवल नाम ही शेष रह गया है। केवल मवाड न ही अपनी सुरक्षा के लिय अपन सम्मान का कभी सौदा नही किया और वह आज भी अपना प्राचीन अस्तित्व बनाये हुए है। समरसिंह न शत्रु स लडत हुए वीरगति प्राप्त की पर तु उसका यश और प्रताप इतिहास क पन्ना म अमिट अक्षरो म लिखा गया है।

समरसिंह के कई बेटे थे। उनम स कर्णसिंह उसका उत्तराधिकारी बना।[9] उसक नाबालिग होन क कारण उसकी मा कर्मदेवी (पाटन की राजकुमारी) ने राज्य का प्रब ध अपन हाथ म लिया। उसक समय म कुतुबुद्दीन न मवाड पर आक्रमण किया। कर्मदवी स्वय घोडे पर सवार होकर अपनी सेना क साथ लडन गई। आमेर क निकट उसन शत्रु को परास्त किया। कुतुबुद्दीन बुरी तरह स घायल हुआ। इस

युद्ध म नौ राजा और ग्यारह सरदारा ने अपन राजा की मा के नेतत्व मे युद्ध मे भाग लिया था ।

सवत् 1249 (1193 ई०) म करण मवाड के सिंहासन पर बठा परन्तु उसके भाग्य मे पुत्र न लिखा था । भट्ट ग्र थो मे भूल स लिख दिया गया है कि करण के माहुप और राहुप नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थ । राजा समरसिंह के एक भाई था । उसका नाम सूयमल था । सूयमल क भरत नाम का एक लडका हुआ । करणसिंह का विवाह चौहान वश को एक राजकुमारी के साथ हुआ जिसक गभ स माहुप का ज म हुआ । मवाड क कुछ सरदारा न षडयन्त्र रचकर भरत को राज्य से निकलवा दिया। भरत सि ध की तरफ चला गया और अरोर के मुस्लिम राजा स इस नगर को छीन लिया । इसक बाद उसने पूगल के भाटी सरदार की लडकी से विवाह किया । इससे उस राहुप नाम का लडका हुआ । भरत के राज्य से चले जाने और माहुप की अयोग्यता स करण बहुत दु खी था और इसी दु ख के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

जालौर क सोनगरे वशी सरदार न करण की लडकी से विवाह किया था और इसस उस "रणधोल" नामक एक लडका हुआ । करण की मृत्यु के बाद रणधोल को मेवाड के सिंहासन पर बठान के उद्देश्य स सोनगरे चौहानो न मेवाड पर आक्रमण किया और भयानक विश्वासघात के बाद रणधोल को मेवाड के सिंहासन पर बठाने मे कामयाब रहे । मेवाड का सिंहासन हमेशा के लिये चौहानो के अधिकार मे चला गया होता परन्तु एक पुराना भाट सीधा अरोर जा पहुचा और भरत को सब वृत्तान्त सुनाया । भरत ने अपने पुत्र राहुप को एक शक्तिशाली सेना के साथ चित्तौड की तरफ भेजा । पाली नामक स्थान के निकट राहुप ने सोनगरे चौहानो को परास्त करके खदेड दिया । मेवाड के अ य सरदार भी उससे आ मिले और उनकी सहायता से वह चित्तौड के सिंहासन पर बठने म सफल रहा । कुछ दिना बाद, अरोर का राज्य एक अ य पुत्र का सौप कर भरत भी चित्तौड आ गया । उसके इस पुत्र ने अरोर के खातिर अपन धम का सौदा कर लिया और अब इस पर काबुल के करद् शासक की हैसियत स शासन करन लगा ।

राहुप न सवत् 1257 (1201 ई) म चित्तौड हस्तगत किया था और इसक कुछ समय बाद ही उसे शम्सुद्दीन के आक्रमण का सामना करना पडा ।[10] नागौर क निकट लडे गय युद्ध म राहुप न उसे पराजित किया । इस राजा के द्वारा दो महत्वपूर्ण परिवतन किय गय । पहला परिवतन राजकुल का नाम गुहिलोत स सीसोदिया मे बदलना था और दूसरा, राजा की उपाधि ' रावल" के स्थान पर 'राणा" करना था ।[11] पहल परिवतन का कारण ज्ञात हो चुका है । दूसरे परिवतन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है । राहुप के शत्रुओ म मडौर का परिहार राजा मुख्य था । उसका नाम मुकुल था और "राणा' उसकी उपाधि थी । राहुप न उसे उसी की राजधानी

4 इस घटना की पुष्टि अन्य किसी साक्ष्य से नही होती ।

5 चित्तौड के समरसिंह ने 1273 से 1302 ई के मध्य म शासन किया था, जबकि पृथ्वीराज 1192 ई म मारा गया था । इसलिये उसे पृथ्वीराज तृतीय का बहनाई मानना उचित नही होगा । मेवाड के साम तसिंह (1171-1202 इ) ने पृथ्वीराज द्वितीय की बहिन पृथा से विवाह किया था । परन्तु वह तराइन के दूसरे युद्ध के बाद भी जीवित रहा था । इसलिये इस अध्याय म समरसिंह और पृथ्वीराज चौहान के बारे मे टाड साहब ने जो कुछ भी लिखा है, वह विश्वसनीय नही माना जा सकता । कालक्रम से भी कोई तालमेल नही बठता ।

6 इस कथन की पुष्टि किसी भी मुस्लिम तवारीख से नही होती । रासो के अलावा अन्य कोई ग्रथ भी इसकी पुष्टि नही करता ।

7 रासो के अनुसार गुजरात के भीमदेव ने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को मार डाला था । अत इसका बदला लेने के लिये पथ्वीराज ने गुजरात पर आक्रमण किया और भीमदेव का युद्ध म परास्त करके मार डाला । रासो का यह वर्णन काल्पनिक है । क्योकि भीमदेव द्वितीय के सिंहासन पर बठने के पूर्व ही सोमेश्वर की मृत्यु हो चुकी थी और भीमदेव 1239 ई तक जीवित रहा था ।

8 इस युद्ध को यदि हम तराइन का प्रथम युद्ध मानें तो यह कथन कि गजनी की सेना के नेता को पकड लिया, सही नही होगा । युद्ध मे पराजित गोरी सुरक्षित बच निकला था । कुछ महीने बाद राजपूत तबरहिन्द म नियुक्त गोरी के सेनानायक काजी जियाउद्दीन को पकड कर अजमेर अवश्य ले गये थे ।

9 डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार रणसिंह जिसे कर्णसिंह भी कहते है साम तसिंह (1171 1202 ई) का दादा था । साम तसिंह के बाद मथनसिंह और उसके बाद पद्मसिंह राजा बने । पद्मसिंह के बाद जत्रसिंह और फिर तजसिंह और उसके बाद समरसिंह राजा बने । समरसिंह के बाद विख्यात रानी पद्मिनी का पति रत्नसिंह राजा बना ।

10 इस समय मेवाड के सिंहासन पर साम तसिंह विराजमान थे न कि राहुप । दूसरी बात, शम्सुद्दीन 1206 ई म ऐबक की मृत्यु के बाद दिल्ली का सुल्तान बना था ।

11 राजा रत्नसिंह समय तक चित्तौड के राजा रावल कहलाते थे । हम्मीर के समय मे वे "राणा" कहे जाने लगे ।

अध्याय 15

लक्ष्मणसिंह से लेकर क्षेत्रसिंह तक का वृत्तान्त

अपने पिता की मृत्यु क वाद वि स 1331 (1275 ई०) म लक्ष्मणसिह चित्तोड क सिहासन पर वठे ।[1] इसक साथ ही चित्तोड क लिए एक नय युग का सूत्रपात हुआ । जो चित्तोड अव तक सभी प्रकार क उतार चढाव क वाद भी सिर उठाय खडा था वह पठान वादशाह अलाउद्दीन की क्रूरता स भस्म हो गया । यद्यपि पहली चढाई म आक्रमणकारी चित्तोड का हाथ नही लगा सका परन्तु उसके आक्रमण का विफल वनान म मवाड क अनेक शूरवीरा का अपन प्राण अर्पित करने पडे । दूसरी चढाई म चित्तोड नगर ध्वस और ऊजड हो गया ।

भीमसिह अल्पायु राणा का चाचा था और उसकी नावालिगी म वही उस का अभिभावक था । राणा भीमसिह न सिहल के चौहानवशी राजा हमीर शख की विख्यात सुन्दरी पुत्री पद्मिनी से विवाह किया था । उसकी सुन्दरता ही सीसोदिया लोगा क लिए अभिशाप वनी ।[2] देवागना के समान रानी पद्मिनी की सुन्दरता गुण गौरव महिमा और मृत्यु का वृत्तान्त व महारानी की सम्पूर्ण वाते राजवाड म भली भाति से प्रसिद्ध हैं । हिन्दू भट्ट कवियो का मानना है कि पद्मिनी का प्राप्त करना ही चित्तोड पर अलाउद्दीन के आक्रमण का मूल कारण था यश की प्राप्ति क लिए उसने आक्रमण नही किया था । चित्तोड की दीर्घ घेराव दी क वाद भी जव सफलता न मिली ता उसने यह सदेश भिजवाया कि यदि पद्मिनी उस सौंप दी जाय ता वह वापस लौट जायेगा । जव राजपूता न इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया ता उसन यह प्रस्ताव किया कि रानी पद्मिनी की परछाई का दर्पण म दिखा दिया जाय ता वह वापस लौट जायगा । राणा न इस प्रस्ताव को मान लिया । राजपूता क वचन म विश्वास रखत हुए थोडे स अगरक्षका क साथ अलाउद्दीन चित्तोड दुर्ग म गया और मनोरथ पूरा होते ही अपन शिविर क लिए वापस मुड गया । इस अवसर पर राणा स्वय भी उसे पहुँचान क लिए दुर्ग क वाहरी द्वार तक गया । अचानक समय और सयोग पाकर अलाउद्दीन क सशस्त्र अगरक्षका न राणा को पकड लिया और उसे वदी वनाकर अपन शिविर म ले गय । उसके वाद चित्तोड क सरदारा का सदेश

भिजवाया गया कि पद्मिनी को पाने पर ही राणा को रिहा किया जायेगा। पद्मिनी के समर्पण के बिना कुछ नहीं हो पायगा।

इस समाचार से सम्पूर्ण चित्तौड में निराशा और दुःख का वातावरण उत्पन्न हो गया। पद्मिनी ने इस समाचार को सुनने के बाद बडे धैर्य और संयम से काम लिया। उस समय चित्तौड मे उसके चाचा गोरा और भतीजा बादल उपस्थित थे। पद्मिनी ने अपने इन्ही दोनो सम्बन्धियो से विचार विमर्श किया। दोनो ने उसके सम्मान को बचाते हुए राणा को रिहा करने की युक्ति सोची और दूसरे दिन बादशाह के पास संदेशा भिजवा दिया गया कि जिस दिन उसकी सेना मार्चों से हट जायगी, उसी दिन पद्मिनी को भेज दिया जायेगा। परन्तु वह अपने स्वयं तथा अपनी पद मर्यादा के अनुकूल ढग से आयेगी। उसके साथ जो राजपूत सहेलिया रहा करती है वे सभी पद्मिनी को यहा तक विदा करने आयेंगी। वे सब परदेदार पालकिया में रहेगी। उनमें से कुछ रानी के साथ दिल्ली जायेंगी और शेष चित्तौड लौट आयेगी। इसके अलावा वे लोग जो रानी को अंतिम विदाई देना चाहते हैं, रानी के साथ आयेंगे। राजपूत स्त्रियो की मान मर्यादा और पर्दानशीनता को बनाये रखने और भीड भाड न होने देने के लिये सख्त आदेश जारी किये जायें। बादशाह ने सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया। निश्चित दिन पर सात सौ पालकिया चित्तौड से निकल कर बादशाह के शिविर की तरफ रवाना हुईं। प्रत्येक पालकी में एक-एक चुना हुआ वीर सैनिक बैठा हुआ था और प्रत्येक पालकी को उठाने वाले कहारो के रूप में छद्म-छ सैनिक अपने वस्त्रो में हथियार छुपाये चल रहे थे। चित्तौड से रवाना होकर पालकियाँ शाही शिविर में पहुची जहा एक निश्चित स्थान चारो तरफ से कनातो के द्वारा बन्द कर दिया गया था। एक एक करके सभी पालकियाँ उसमें दाखिल हो गई और हिन्दू राजा को अपनी पत्नी से अंतिम मुलाकात के लिये आध घंटे का समय दिया गया। इसी समय राणा को एक पालकी में बठाकर चित्तौड की तरफ रवाना कर दिया गया। इस पालकी के साथ कुछ अन्य पालकियाँ भी लौट गई। अधिकाश पालकिया सुन्दर रानी के साथ दिल्ली जाने के लिये वही रुकी रही। आधा घटा बीत जाने पर भी जब मुलाकात समाप्त न हुई तो अलाउद्दीन को सन्देह हुआ। कनातो से घिरे स्थान मे राजा और रानी तथा रानी की सहेलियो के स्थान पर सशस्त्र राजपूत सैनिक खडे थे। उन्होंने तत्काल मारकाट मचा दी। बादशाह राजपूतो की चाल को समझ गया। उसने तत्काल एक सैनिक दस्ता भीमसिंह का पीछा करने के लिये भेजा परन्तु पालकियो में सवार राजपूत वीरो ने भीमसिंह की रक्षा की। इस प्रयास मे बहुत से वीर मारे गये। तभी पहले से तयार तजगति वाला अश्व आ पहुँचा जिस पर सवार होकर भीमसिंह सुरक्षित अवस्था मे चित्तौड पहुँच गया। भीमसिंह का पीछा करते हुए शाही सैनिको ने दुर्ग के समीप सिंह द्वार पर जोरदार आक्रमण किया। गोरा और बादल के नेतृत्व में राजपूत वीरो ने अपने राजा और रानी के सम्मान की रक्षा के लिये अद्भुत वीरता के साथ शत्रुओं का सामना

किया। शाही सनिका की सख्या अधिक था फिर भी राजपूता न जमकर सघप किया। गारा वही मारा गया। असख्य राजपूत सनिक मार गय और अन्त म शत्रु सना वापस लौट गई। कुछ थोड़े स वच हुए सनिका के साथ बादल लौट कर वापस आया। उसके साथ गोरा न था। गारा की पत्नी युद्ध का परिणाम समझ गइ परन्तु वह वादल क मुह स सुनना चाहती थी कि उसक पति न वादशाह क शत्रुआ स किस बहादुरी क साथ युद्ध किया और कितना का यमलोक पहुँचाया। वह सयम न रख सकी और वादल स पूछ वठी। बारह वर्षीय बादल म साहस था। उसन तत्काल उत्तर दिया चाचा की तलवार स आज शत्रुआ का सहार हुआ। सिंह द्वार पर जम कर युद्ध हुआ। चाचा की तलवार स वादशाह के सूब सनिक मार गय। सीसोदिया वश की कीर्ति को अमर बनान के लिए शत्रुआ का सहार करत हुय चाचा न अपने प्राणा की आहुति दी। यह सुनकर उस सतोप मिला और फिर उसन यह कहते हुय कि 'अब मुझे अधिक विलम्ब नही करना चाहिए। म यथा उन्ह मर लिये अधिक प्रतिक्षा करनी पडगी', उसन जलती हुई चिता म प्रवश कर लिया।

शिविर और सिंह द्वार पर राजपूता क प्रबल प्रतिरोध तथा असख्य शाही सनिका के मारे जान और पद्मिनी का प्राप्त करन की योजना के विफल हो जान स दुखी अलाउद्दीन वापस दिल्ली लौट गया। परन्तु वह पद्मिनी को भुला न सका और अपनी सनिक शक्ति को सबल बना कर पुन चित्तौड पर चढ आया। यह दूसरा आक्रमण सवत् 1346 (1290 ई०) म किया गया। परन्तु फरिश्ता न लिखा है कि यह आक्रमण तेरह वर्ष बाद किया गया है। इस बार, काफी सघप क बाद अलाउद्दीन दक्षिण छोर की पहाडी पर कब्जा जमाने म सफल रहा और वही खाइया खुदवा कर डट गया। उसक पहल आक्रमण क समय राजपूता का जो सहार हुआ था, उसकी पूर्ति भी न हो पाई थी। वहा के असख्य वीर योद्धा पहल ही चित्तौड़ की रक्षा म वलिदान हो चुक थ। फिर भी जो बचे थ व पूरी तयारी क साथ चित्तौड पहुँच गय। बडी तयारी क वाद राणा के बडे पुत्र अरिसिंह न चित्तौड की सना क साथ शाही सेना का मुकावला किया। तीन दिन क भयकर युद्ध क वाद अरिसिंह अपने अनक सनिको सहित मारा गया।

अरिसिंह के बाद उसका छोटा भाई अजयसिंह युद्ध क लिए तयार हुआ परन्तु उसक प्रति विशेष लगाव के कारण भीमसिंह न उसे युद्धभूमि म भेजना पसन्द नही किया। तब उसस छोटे पुत्रा न मोर्चा सभाला और एक एक करक भीमसिंह के ग्यारह पुत्र मारे गय। अब केवल अजयसिंह शेष रह गया। तब राणा भीमसिंह ने स्वय युद्ध म जान का निश्चय किया। दूसरी तरफ महलो म जौहर व्रत पालन की व्यवस्था की जान लगी। जब राजपूता को अपन राज्य की रक्षा की कोई आशा नही रह जाती थी तब अपनी स्त्रियो क सतीत्व एव स्वातन्त्र्य की रक्षा क लिए इस प्रकार की व्यवस्था की जाती थी। इस अवसर पर सहस्रा की सख्या म राजपूत बालायें

जौहर व्रत का पालन करती हुई आग की होली मे अपने प्राणो का उत्सग करती थी। इस समय उसी जौहर व्रत की तयारी की गई थी। राजप्रासाद के बीच म पृथ्वी के नीचे एक विशाल और लम्बी सुरग थी जहा दिन म भी घोर अधकार रहता था। इस सुरग मे ढेर सारी लकडिया पहुँचा कर चिता जलायी गई। चित्तौड की रानिया और राजकुमारिया राजपूत बालायें और सु दर युवतिया अगणित सख्या मे प्राणोत्सग करने के लिये तयार हुई। सु दरी पद्मिनी ने उस समूह का नेतृत्व किया, जिसमे वह समस्त नारी सौ दय एव यौवन सम्मिलित था, जिसका तातारो की काम पिपासा द्वारा लाछित होने का भय था। इनको सुरग म ले जाया गया और भस्मीभूत करने वाले तत्व (अग्नि) म अपमान से त्राण पाने के लिए भीतर छोड कर सुरग का द्वार ब द कर दिया गया। अब राजपूतो को किसी बात का भय न रहा।

सुरग का द्वार ब द होते ही भीमसिंह अपने बचे हुए सरदारो और सनिको के साथ शत्रु पर अतिम प्रहार करने के लिए चित्तौड से निकल पडे। इससे पूव उसने अपने लडके अजयसिंह को कुछ विश्वस्त सनिको के साथ सुरक्षित स्थान को भेज दिया ताकि बप्पा रावल का वश जीवित रहे और वीरगति प्राप्त करने वालो का पिण्ड दान किया जा सके। युद्धस्थल पर पहुँचते ही विशाल शाही सेना के साथ राजपूतो का सघष शुरू हो गया। भयमुक्त राजपूतो ने प्रचण्ड पराक्रम दिखलाया पर तु अपनी अल्पसख्या के कारण एक एक करके वे सभी मारे गये। युद्ध स्थल श्मशान म बदल गया। चारो ओर मृतक तथा घायल सनिको के शरीर से रक्त की धाराएँ बह रही थी। इस युद्ध म चित्तौड का पूण विनाश हो गया।

भीमसिंह और उसकी सेना का सहार करने के बाद बादशाह ने चित्तौड म प्रवेश किया। शहर का दृश्य भी युद्धस्थल के समान ही था और राजमहल की स्थिति तो और भी दारुण थी। पद्मिनी के हाथ न लगने से खिन्न अलाउद्दीन ने उसके महल को छोडकर बाकी सभी महलो और म दिरो का विध्वस करा दिया।[3] कुछ दिन चित्तौड म बिताने के बाद वह वापस दिल्ली लौट गया। लौटने के पूव वह चित्तौड का शासन जालौर के सोनगरा वश के मालदेव नामक सरदार को सौंप गया।[4] अलाउद्दीन के अत्याचारो से राजस्थान के कई नगर मिट्टी म मिल गये थे। अनहिलवाडा, प्राचीन धार अवन्ती और देवगढ आदि राज्यो म जहाँ सोलकी, परमार परिहार और तक्षक राजाओ के शासन थे, अलाउद्दीन ने उन पर आक्रमण कर उनका विनाश किया। जसलमेर, गागरान और बूदी राज्यो को भी उसने उजाड कर रख दिया। ऐसे सकट म भी मारवाड के राठौड और आमेर के कछवाहा लोग किसी प्रकार अपना अस्तित्व कायम किये हुए थे।

राणा भीमसिंह का लडका अजयसिंह चित्तौड के सवनाश से बचकर मेवाड के पश्चिम की तरफ अरावली पवत के ऊपर बसे हुए कलवाडा की तरफ चला गया

था। उस पहाडी क्षेत्र म रहत हुए अजयसिंह अपन पतृक राज्य के उद्धार के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लग। अजयसिंह का चित्तौड स विदा करने क पूव उसके पिता ने उससे कहा था कि तुम्हारे बाद तुम्हारे बडे भाई अरिसिंह का पुत्र सिंहासन पर बैठेगा।[5] अजयसिंह ने इसे याद रखा, परन्तु बडे भाई के पुत्र का कहीं भी पता न था और उसके स्वय के पुत्र सिंहासन पर बठन के लिए योग्य न थ। अरिसिंह के पुत्र का नाम हम्मीर था। इस हम्मीर के जन्म का वृत्तान्त भट्ट ग्रन्थो म इस प्रकार लिखा गया है

एक बार अरिसिंह अपने कुछ साथियो के साथ अन्दवा के जगल म शिकार खेलने गया हुआ था। वहा उसने एक शूकर को मारने के लिये बाण चलाया परन्तु शूकर भाग कर पास के एक मक्के के खेत मे चला गया। अरिसिंह न अपने साथियो के साथ उसका पीछा किया। खेत के बीच म एक मचान पर बठी हुई युवती यह सब देख रही थी। जब अरिसिंह अपने साथियो सहित उस खेत के पास पहुचा तो उस युवती ने उनसे कहा कि आप लाग थोडी देर के लिय रुकें, मं इस शूकर का आपके पास लाये देती हूँ। यह कह कर वह युवती मचान से उतरी और मक्के का एक पड उखाड लिया। मक्के के पड दस बारह फीट लम्बे थे। युवती ने उखाडे हुए मक्क के तने के एक सिरे का नुकीला बनाया और मचान पर चढकर उसको अपन धनुष म चढाकर छिप हुए शूकर को मारा। उसके लगत ही शूकर न तत्काल दम तोड दिया। युवती पुन नीचे उतरी और मृत शूकर को खेत स घसीटकर अरिसिंह के पास ल आई और वापस लौट गई।

यद्यपि अरिसिंह और उसके साथी अपने देश की स्त्रियो के इस प्रकार के पराक्रम से परिचित थ परन्तु युवती की निशानेबाजी और वीरता ने उन सभी को आश्चयचकित कर दिया। इसक बाद शिकारियो ने पास ही भोजन पकाया और गप्पशप्प करने लगे। अचानक खेत की तरफ स एक मिट्टी का बडा सा ढेला, राजकुमार के घोडे के लगा जिसस उसकी टाग टूट गई। सभी ने खेत की तरफ देखा। वही युवती ढेले फेंक फेंक कर पक्षियो को उडा रही थी। युवती को जब मालूम हुआ कि उसके ढेले न शिकारियो के एक घोडे की टाग तोड दी है तो वह उनके पास आई और विनम्र तथा शिष्ट भाषा म क्षमा याचना कर अपन घर को लौट गई। अरिसिंह भी अपन डेरे को लौट आया परन्तु वह उस युवती स इतना अधिक प्रभावित हो चुका था कि उसने दूसरे दिन उस लडकी का पता लगवाया। मालूम पडा कि वह एक साधारण चौहान राजपूत की लडकी है। इस पर अरिसिंह ने उसके साथ विवाह करन का निश्चय कर लिया और वह अपने साथियो सहित उसके पिता क पास गया। युवती के माता पिता ने उसक साथ अपनी पुत्री का विवाह कर [illegible]। हम्मीर इसी युवती का लडका था। चित्तौड पर अलाउद्दीन क आक्रमण तथा

अरिसिंह की मृत्यु के समय वह बारह वष का हो गया था, पर तु ज म समय से ही ननिहाल म रहने की वजह से चित्तौड मे उसे कोई नही जानता था।

मेवाड पर इस समय दिल्ली का अधिकार था और कैलवाडा मे रहते हुए अजयसिंह को वहाँ के पवतीय सरदारो से भी सामना करना पड रहा था। इन सरदारो मे मु जा बालेचा नामक सरदार बहुत वीर था। उसने अजयसिंह पर हमला किया और उस अवसर पर उसे घायल होकर वापस लौटना पडा। पर तु तब से ही वह अजयसिंह को मारने की ताक मे था। अजयसिंह के दो लडके थे—अजीमसिंह और सुजानसिंह। लेकिन *अपने पुत्रो से अजयसिंह को कोई विशेष सहायता न मिल* सकी। इसलिए अजयसिंह ने हम्मीर को बुलवा भेजा और मु जा बालचा पर आक्रमण करन के लिये भेजा। हम्मीर तत्काल रवाना हो गया और कुछ दिनो बाद कलवाडा के लोगो ने देखा कि अपने घोडे पर बठा हुआ और भाले की नोक पर मु जा का सिर टागे हम्मीर चला आ रहा है। हम्मीर ने मु जा का कटा हुआ सिर अजयसिंह के सामने रख दिया। अजयसिंह उसकी वीरता से अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसे विश्वास हो गया कि चित्तौड का उद्धार हम्मीर के हाथो ही हो पायगा। *अत उसन मु जा के सिर के रुधिर से हम्मीर के ललाट पर राजतिलक कर दिया।* इस घटना ने अजयसिंह के पुत्रो क भाग्योदय का द्वार ब द कर दिया। अजीमशाह तो कलवाडे मे ही मर गया। सुजानसिंह अपने पिता को छोडकर दक्षिण की तरफ चला गया जहाँ कई पीढिया के बाद उसके वश म शिवाजी नामक बालक हुआ जिसने अपने बाहुबल से मुगलो को पराजित करके अपने लिए एक स्वत त्र राज्य की प्रतिष्ठा की।[6]

वि स 1357 (1301 ई०) मे चित्तौड के राणा के रूप म हम्मीर का राजतिलक हुआ पर तु उस समय हम्मीर के अधिकार म कुछ न था। चारो ओर शत्रुओ का आधिपत्य था। राजतिलक के बाद हम्मीर न अपनी शक्तियो का सचय करना आरम्भ किया। सवप्रथम उसन मु जा बालेचा के राज्य पर आक्रमण किया और सलिम्रो नामक उसके पहाडी दुग को जीत लिया।

दिल्ली की सेना के साथ मालदेव चित्तौड म जमा रहा, पर तु हम्मीर न राज्य के मैदानी इलाको मे अपना आतक कायम कर दिया और उसके शत्रुओ के अधिकार म केवल प्राचीरा से सुरक्षित नगर मात्र रह गय। हम्मीर न घोषणा करवा दी कि जो लोग उसे अपना शासक मानत है, वे अपन परिवारो के साथ राज्य के पूर्वी और पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रो मे जा बसें। जो एसा न करेंगे उनको शत्रुओ म माना जायगा और उनकी सुरक्षा का कोई दायित्व नही रहेगा। अपने ही देश के मदानी प्रदेशो को वीरान बना कर और पहाडी क्षेत्रो म अपनी शक्ति का सचय करके अवसर मिलने पर शत्रु पर आक्रमण करन की यह नीति बहुत पुरानी रही है।

हम्मीर ने कलवाडा को अपना केन्द्र बनाया जहा मेवाड के विभिन्न क्षेत्रो से अपने घर छोडकर लोगो ने पहुचकर रहना आरम्भ किया। इसके बाद हम्मीर ने मेवाड के नगरो और गावो पर आक्रमण करके उन्हे उजाडना शुरू कर दिया। मेवाड के नगर और गाव सुनसान हो गये। आने जाने के रास्ते असुरक्षित हो गये। चित्तौड मे नियुक्त शाही सेना की सहायता से मालदेव ने हम्मीर की गतिविधियो को नियन्त्रित करने का अथक प्रयास किया परन्तु उसे सफलता न मिली। हम्मीर ने कलवाडा की सुरक्षा का उत्तम प्रबन्ध कर दिया था। वहा पर उसने एक बडा तालाब बनवाया जिसे हम्मीर का तालाब कहते है। इस क्षेत्र मे हम्मीर ने अनेक ऐसे गुप्त मार्ग भी बनवाये जहा पर शत्रु की सेना पहुचकर उसे कोई क्षति नही पहुचा सकती थी। उल्टे आक्रमणकारी सेना सकुशल वापस नही लौट सकती थी। इसी स्थान पर आगे चलकर कमलमेर का सुप्रसिद्ध दुर्ग बना। इस क्षेत्र के अगुना और पनोरा के भील हमेशा से ही गुहिलवंश के आज्ञाकारी सेवक रहे है और आवश्यकता पडने पर पाच हजार भील अपने प्राणो का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते थे। अलाउद्दीन के आक्रमण ने इन भीलो की शक्ति का भी काफी विनाश कर दिया था।

ऐसे ही समय मे चित्तौड के हिन्दू गवर्नर मालदेव की तरफ से एक प्रस्ताव आया कि वह अपनी पुत्री का विवाह हम्मीर के साथ करना चाहता है। हम्मीर के शुभचिन्तको और सरदारो ने इसे मालदेव की चाल समझकर आशका प्रकट की तथा इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने की प्रार्थना की। परन्तु हम्मीर ने सभी के सुझाव के विरुद्ध इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का निश्चय कर लिया। हम्मीर ने उन्हे समझाते हुए कहा 'मै भी इस बात को समझता हूँ कि राजा मालदेव के साथ मेरे सम्बन्ध अच्छे नही है और इस स्थिति मे हम लोगो का सम्बन्धी होना कैसे सम्भव हो सकता है। इसलिये सहज ही यह समझा जा सकता है कि मुझे समाप्त करने के लिये मालदेव ने यह षडयन्त्र रचा होगा। परन्तु हमे घबराने की कोई आवश्यकता नही है। कभी कभी घोर सकट मे भी उज्ज्वल भविष्य का सदेश छिपा रहता है। हँसते हुए सकटो का सामना करना ही शूरवीरो का काम है। सकटो को पार करने के बाद ही महान् सफलता की प्राप्ति होती है। इसलिए मालदेव के इस प्रस्ताव को स्वीकार करना ही उचित है।' विवाह का दिन निश्चित हो गया और पूरी तयारी के बाद हम्मीर अपने चुने हुये पाँच सौ सवारो के साथ विवाह के लिये चित्तौड की तरफ चला। चित्तौड के फाटक पर मालदेव के पाच पुत्रो ने हम्मीर का स्वागत किया। परन्तु हम्मीर को वहा विवाह की कोई तयारी दिखायी न पडी। राणा हम्मीर अपने सैनिको के साथ चित्तौड के भीतर पहुँचा। वह अपने जीवन मे पहली बार अपने पूर्वजो की राजधानी मे कदम रख रहा था। इसके बाद उसे एक बडे कक्ष मे ले जाया गया जहाँ मालदेव और उसके बडे लडके बनवीर ने उसका स्वागत सत्कार किया। फिर विवाह मडप की तरफ ले जाया गया। यहा भी हम्मीर को विवाह की तयारी के कोई चिन्ह

दृष्टिगत न हुए जिससे उसके हृदय म ग्राशकायें उत्पन्न हुइ, पर तु उसने सयम तथा सावधानी से काम लिया । मालदव ग्रपनी क या को ल ग्राया । हम्मीर के दुपट्टे के पल्ले के साथ लडकी की साडी के पल्ले की गाठ बाध दी गई ग्रौर लडकी का हाथ हम्मीर क हाथ म पकडा दिया गया ग्रौर विवाह की रस्म पूरी हा गई । न कोई मत्रोच्चार ग्रौर न ग्रग्नि के चारो ग्रोर परिक्रमा । विवाह के बाद पुरानी प्रथा के ग्रनुसार वर-वधू—दानो का एक एका त कक्ष म पहुँचा दिया गया । मालदेव की लडकी काफी समझदार थी । उसने हम्मीर की चि ताग्रो का ग्रनुमान लगा लिया । उसकी उदारता ग्रौर पतिनिष्ठा न हम्मीर की निराशा का दूर कर दिया । उसने ग्रतिदीनता के साथ रहस्य का पर्दा उठाते हुए हम्मीर से कहा कि ग्राप किसी प्रकार की चि ता न करे । वास्तव मे, म एक विधवा हूँ । ग्रल्पायु मे ही मेरा विवाह एक छाटी सरदार के साथ हुग्रा था ग्रौर कुछ दिनो बाद ही वह विधवा हो गई । मुझे ग्रपन पति का चेहरा तक याद नही । इससे हम्मीर न ग्रपने को ग्रपमानित ग्रनुभव किया । पर तु लडकी की ग्राखा मे ग्रासू देखकर वह ग्रपन ग्रपमान को भूल गया ग्रौर लडकी को सतोष दत हुए उसस कहा कि उस इस विवाह स रत्ती भर भी खेद नही है । उसे चि ता केवल इस बात की है कि वह ग्रपन पूवजो क राज्य का उद्धार किस उपाय स करे ।

हम्मीर की बात सुनकर उसकी पत्नी की उदासी दूर हा गई ग्रौर उसने ग्राश्वासन दिया कि वह इस ग्रपमान का बदला लन ग्रौर चित्तौड क उद्धार म उसको पूरा सहयोग देगी । उसने हम्मीर स कहा कि तुम दहज म मालदेव क एक ग्रधिकारी मेहता जलधर को माग लेना । उन दिनो राजपूता म यह प्रथा थी कि विदाई क समय दामाद को ग्रपन ससुर से दहेज क लिये किसी एक वस्तु को मागन का ग्रधिकार था । पत्नी के परामश स मालदेव ने मेहता जलधर की माग कर दी जिस मालदेव ने स्वीकार कर लिया । हम्मीर ग्रपनी पत्नी ग्रार जलधर को साथ लकर क्लवाडा लौट ग्राया । कुछ महीन बाद उसकी पत्नी न एक लडक को ज म दिया जिसका नाम क्षत्रसिह रखा गया । इस खुशी के ग्रवसर पर मालदेव न ग्रपना सारा पहाडी इलाका हम्मीर को द दिया । जब क्षेत्रसिह एक वष का हुग्रा तो उसकी माता न ग्रपन पिता का लिखा कि उसे चित्तौड म देवता के चरणो म बच्चे को धोक दिलवानी है ग्रत उनका ल जान की व्यवस्था करवा द । कुछ दिना बाद ही चित्तौड स सनिक ग्रा पहुचे । वह ग्रपन बच्चे, मेहता जलधर ग्रौर थाडे सेवका के साथ चल दी । पर तु जान के पहल हम्मीर का सारी याजना समझा गई । चित्तौड पहुचते ही मेहता जलधर क माध्यम स उसन ग्रपने सरदारा स विचार विमश करके हम्मीर का सदश भिजवा दिया । मालदेव उस समय ग्रपनी सेना क साथ मादरिया क मेर लागा का दमन करन के लिय गया हुग्रा था । उधर सदेश मिलत ही हम्मीर ग्रपना सना सहित चित्तौड पहुच गया । मालदव क सनिका न उसका जोरदार सामना किया पर तु भाग्य न हम्मीर का साथ दिया ग्रौर वह ग्रपनी सना के बल पर चित्तौड का हस्तगत करन म सफल रहा ।

मेर लोगो का दमन कर जब मालदेव वापस लौटा तो उसे सब वृत्तान्त मालूम हुआ । चूंकि मेवाड के अधिकांश सामंत हम्मीर के साथ मिल चुके थे अतः अपने ही बलबूते पर हम्मीर का सामना करने का साहस वह नहीं जुटा पाया और वह चित्तौड से दिल्ली चला गया । उधर दिल्ली में अलाउद्दीन के बाद माहम्मद खिलजी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था । मालदेव ने उसे चित्तौड का सब हाल सुनाया । माहम्मद खिलजी अपनी सेना के साथ मालदेव के साथ चित्तौड की तरफ बढ चला । दूसरी तरफ से हम्मीर भी अपनी सेना के साथ शत्रु का सामना करने के लिए आगे बढा । दोनो पक्षो में घमासान युद्ध हुआ । इस युद्ध में मालदेव का एक लडका हरी सिंह मारा गया । माहम्मद पराजित हुआ और उसे बंदी बनाकर चित्तौड लाया गया । तीन महीने बाद बादशाह ने हम्मीर को अजमेर रणथम्भोर नागौर शिवपुर के इलाके तथा एक सौ हाथी और पचास लाख रुपये देकर अपनी मुक्ति पायी ।[7] इस प्रकार मालदेव की योजना विफल हो गई । मालदेव का बडा लडका वनवीर हम्मीर की वीरता से बहुत प्रभावित हुआ और उसने हम्मीर की अधीनता स्वीकार कर ली । हम्मीर ने उसे नीमच जीरण रतनपुर और केवारा के इलाके जागीर में प्रदान किये । कुछ दिनों बाद वनवीर ने भिनसोर पर आक्रमण किया तथा इस क्षेत्र को जीतकर मेवाड राज्य में मिला दिया । इससे वह हम्मीर का विश्वासपात्र बन गया ।

धीरे-धीरे हम्मीर निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर होता गया और वह भारत वर्ष का एक पराक्रमी राजा बन गया । मुस्लिम आक्रमणो के परिणामस्वरूप मेवाड के जो नगर और गांव बर्बाद हो गये थे उनके पुनर्निर्माण पर हम्मीर ने विशेष ध्यान दिया । उसका प्रभाव इतना अधिक बढ गया कि मारवाड जयपुर बूंदी ग्वालियर, चन्देरी रायसीन सीकरी कालपी तथा आबू आदि के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । कुल मिलाकर हम्मीर ने बडी बुद्धिमानी के साथ मेवाड राज्य का फिर से निर्माण किया ।

हम्मीर की मृत्यु के बाद उसका बडा पुत्र क्षेत्रसिंह संवत् 1421 (1365 ई) में मेवाड के सिंहासन पर बैठा । वह अपने पिता का पराक्रमी एवं बुद्धिमान उत्तराधिकारी हुआ । उसने अजमेर और जहाजपुर को लील पठान से जीता और माडलगढ देसूरी तथा छप्पन के सम्पूर्ण क्षेत्र को जीतकर मेवाड राज्य में सम्मिलित किया । बकरोल नामक स्थान पर उसने दिल्ली सम्राट हुमायूं पर भी जीत प्राप्त की ।[8] परन्तु दुर्भाग्यवश अपने एक हाडा सरदार बनादा के क्षेत्रसिंह के साथ पारिवारिक संघर्ष में अकस्मात ही उसके जीवन का अन्त हो गया । इस सरदार की एक लडकी के साथ उसका विवाह भी होने ही वाला था ।

उपर्युक्त हत्याकाण्ड के बाद संवत् 1439 (1373 ई) में राणा लाखा चित्तौड के सिंहासन पर बैठा । सिंहासन पर बैठते ही उसने सम्पूर्ण मेरवाड़ा के पर

तीय क्षेत्र को जीता तथा वहा के प्रमिद्ध विराटगट के दुग को नष्ट करके उसके स्थान पर वदनौर के विख्यात दुग का निर्माण करवाया। पर तु इसस भी कही अधिक महत्वपूर्ण वात जावरा नामक स्थान म चादी और टीन की खाना का मिलना था। राणा क्षेत्रसिह न छप्पन (चप्पन) के इस क्षेत्र को भीलो से जीता या। राणा लाखा का इस वात का श्रेय दिया जाता है कि उसन पहलो वार इन खाना स धातु निकालन का उद्यम किया। कहत हैं कि इस क्षेत्र स 'सप्त धातु" पाई जाती है। पर तु सोने का ता कोई पता नही पाया जाता। हा चादी, टीन तावा, सीसा आदि बहुतायत से पाया जाता है।

राणा लाखा के शासनकाल म मवाड राज्य न काफी उन्नति की। लाखा ने अामर के अ तगत नगराचल इलाके म रहन वाल साखला वश के बहुत से राजपूत सरदारा को पराजित कर मवाड का प्रभुत्व वढाया। उसन वदनौर के निकट दिल्ली के वादशाह मोहम्मदशाह लोदी को भी स मुख युद्ध म पराजित किया। उसके समय म मलच्छो न गया तीथ पर आक्रमण किया। तीथ स्थान की रक्षा करने के लिये लाखा अपनी सेना सहित गया की तरफ गया और वही पर शत्रुआ से युद्ध करते हुए वह मारा गया।

लाखा कला और स्थापत्य का आश्रयदाता था। जावरा से मिलने वाले धन का पुरान तालावो तथा म दिरो आदि के जीर्णोद्धार के लिये सदुपयोग किया गया जिससे उसके काल म शिल्प कला की वहुत उन्नति हुई। उसने कितने ही सु दर तालावो और म दिरो का भी निमाण करवाया जिनम ब्रह्माजी का म दिर आज तक प्रसिद्ध है। राणा लाखा के वहुत से पुत्र हुए, जि हान राजस्थान के भिन्न भिन्न स्थाना म आवाद होकर अपने नये नये वश स्थापित किय। उनम लूनावत और दूलावत नाम के वश अधिक प्रसिद्ध है। लाखा के वडे पुत्र का नाम चू डा था। अपने पिता के राज्य का वही उत्तराधिकारी था। लेकिन वह मवाड के सिंहासन पर नही बैठ पाया। इसका कारण और विवरण आगे के अध्याय म किया जायगा।

सन्दर्भ

1 जसा कि पिछले अध्याय की पाद टिप्पणी म वताया जा चुका है कि कनल टाड न राणा समरसिंह के ज म और मृत्यु काल के सम्व ध न वडी भूल की है। उसन पृथ्वीराज रासा के आधार पर यह मा यता वना ली कि समरसिंह का ज म 1149 ई म तथा उसका विवाह पृथ्वीराज तृतीय की वहिन पृथा स और मृत्यु तराइन के युद्ध म हुई। उसका यह मत सवथा अमा य है। इस भूल के कारण टाड न आग की जा वशावली दी है वह भी गलत हा गई। टॉड क अनुसार सवत् 1331 म लक्ष्मणसिह (लखमसी) चित्तौड का राजा

वना और चूंकि वह अल्पवयस्क था इसलिए उसका चाचा भीमसिंह उसका रक्षक वना। पद्मिनी को इसी भीमसिंह की पत्नी वता दिया। वस्तुत अलाउद्दीन के आक्रमण के समय रत्नसिंह मेवाड का राजा था और पद्मिनी उसी की पत्नी थी। लक्ष्मणसिंह तो सीसोदे का जागीरदार था जो चित्तौड की रक्षा करते हुए अपने सात पुत्रो के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। आगे चलकर सीसोदे की राणा शाखा के हम्मीर ने चित्तौड का उद्धार किया। यही से राणा शाखा मेवाड की शासक बनी।

2 पद्मिनी की कथा काफी विवादास्पद है। डा ओझा, डा के एस लाल एव अन्य कुछ इतिहासकारो ने ठोस तर्कों के आधार पर इस सम्पूर्ण कथा को अविश्वसनीय सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु डा दशरथ शर्मा तथा कुछ अन्य विद्वानो ने इस गाथा को विश्वसनीय वतलाया है।

3 चित्तौड में प्रवेश करने के बाद अलाउद्दीन के आदेश से लगभग 30 000 निर्दोष नागरिको को मौत के घाट उतार दिया गया।

4 औपचारिक रूप से चित्तौड का किला युवराज खिज्र खा को सौपा गया था और उसका नाम 'खिजराबाद' रखा गया। वाद में यह किला सोनागरा मालदेव को सौपा गया था।

5 अरिसिंह और अजयसिंह—दोनो ही सीसोदे के सरदार के लडके थे न कि भीमसिंह के।

6 मेवाड के भट्ट ग्रन्थो में शिवाजी के वश का वर्णन इस प्रकार दिया गया है— अजयसिंह सुजानसिंह दिलीपजी शिवजी तरवजी देवराज उग्रसेन, माहुलजी खलजी जनकजी सत्यजी शम्भूजी (शाहजी) और शिवाजी।

7 मुस्लिम तवारीखो में इस घटना का उल्लेख नही पाया जाता। अत यह मोहम्मद बादशाह कौन था ? अलाउद्दीन के वाद उसका केवल एक वशज मुबारक खिलजी ही वास्तविक बादशाह बन पाया था और उसकी मृत्यु के वाद खिलजी वश का अन्त हो गया। मुहम्मद तुगलक के साथ भी तिथिक्रम का तालमेल नही वठता।

8 इस हुमायू के वारे मे भी सन्देह उत्पन्न होता है। भारत के इतिहास में 1365 से 1383 ई तक किसी हुमायू का नाम नही पाया जाता। वावर का वशज हुमायू सोलहवी सदी में हुआ था। हा नसीरुद्दीन तुगलक का एक बेटा हुमायू 1394 ई में सिंहासन पर वठा था। परन्तु उसका समय भी क्षेत्रसिंह के शासनकाल से दूर पड जाता है।

अध्याय 16

महाराणा मोकल तक का इतिहास

यदि स्त्री के प्रति भक्ति का सभ्यता की कसौटी मानी जाय तो एक राजपूत का स्थान श्रेष्ठ माना जायेगा। स्त्री का असम्मान वह कभी सहन नहीं कर सकता। उसके हृदय म आग सी जल उठती है और जब तक अपमानकारी से बदला नहीं ले लेता तब तक उसे शान्ति नहीं होती। शिष्टाचार विरोधी एक वाक्य ने राठौडो और कच्छवाहो की अभिन्न मैत्री को समाप्त करके उ हे एक दूसरे का शत्रु बना दिया था। दोनो के अलग अलग हो जाने से मराठा को अवसर मिल गया पहले जब वे दानो एक थे तब मराठा को उन पर आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ था। स्त्रिया के विषय मे अति साधारण परिहास करने से लाखा न अपने बडे पुत्र चूण्डा के हृदय म जो अग्नि जला दी थी, वह सहज भाव से नहीं बुझ पाई। उसको बुझान मे राज्य की एक पुरानी रीति को ही उलट देना पडा और ऐसा करन से मेवाड राज्य का जो अनिष्ट हुआ, वसा अनिष्ट मुगलो अथवा मराठो के आक्रमण से भी नहीं हुआ था।

राणा लाखा का बुढापा आ गया और उसके बेटे पाते सभी उचित स्थानो पर प्रतिष्ठित हो चुके थे तभी मारवाड के राजा रणमल ने चित्तौड राज्य के उत्तराधिकारी युवराज चूण्डा के साथ अपनी लडकी का विवाह करने के लिए अपने दूत के हाथ नारियल भिजवाया।[1] राज दरबार म दूत का स्वागत किया गया। चूण्डा उस समय दरबार म उपस्थित नहीं था। अत लाखा ने दूत से कहा कि 'चूण्डा आने ही वाला है। वह स्वय आकर अपनी स्वीकृति देगा।' इसके बाद लाखा ने अपनी दाढी पर हाथ रखते हुए हसी मजाक करते हुए दूत से कहा कि 'मैं इस प्रकार की कल्पना नहीं करता कि तुम मरे जस सफेद दाढी मूँछ वाल आदमी के लिए इस प्रकार की खेल की सामग्री लाये हो।" बात हसी म कही गई थी पर तु चूण्डा ने सब वृत्तान्त सुनकर दूत से कहा कि "चाहे पिताजी न परिहास म ही इस सम्ब ध को माना हो, फिर भी, मरे लिए अब इस सम्ब ध को स्वीकार करना सम्भव नहीं है।' लाखा न पुत्र को बहुत समझाया पर तु वह अपने निर्णय पर अटल रहा। लाखा धम सकट म पड गया। चूण्डा सम्ब ध के लिए तयार नहीं था और शादी के लिए आये हुए नारियल को वापस करना रणमल का घोर अपमान करना था। राजा रणमल को

अपमान से बचाने का एक ही मार्ग बच गया और वह यह कि लाखा स्वयं विवाह करे। अत लाखा ने चूण्डा से कहा, "तुम्हारे विवाह न करने की वजह से मुझे विवाह करना पडेगा। परन्तु याद रखो कि यदि उससे लडका पैदा हुआ तो वही इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा और उस दशा मे इस राज्य पर तुम्हारा कोई अधिकार न रहेगा।" चूण्डा ने पिता की इस शर्त को स्वीकार कर लिया।

मोकल इसी विवाह का परिणाम था। जब वह केवल पाच वर्ष का था गया तीर्थ पर मलेच्छो ने आक्रमण किया और तीर्थ स्थान की रक्षा के लिए लाखा अपनी सेना सहित उनसे लडने गया। इस युद्ध मे लाखा मारा गया। युद्ध मे जाने के पूर्व लाखा ने अपने राज्य की व्यवस्था करने के उद्देश्य से चूण्डा को बुलाकर कहा कि 'मैं शायद वापस न आ पाऊँ। तो फिर मोकल की उपजीविका का क्या उपाय होगा? मोकल के लिए कौनसी सम्पत्ति निर्धारित होगी?' चूण्डा ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया 'चित्तौड का राजसिंहासन।' पिता के मन मे किसी प्रकार का सन्देह न रहे इसलिये चूण्डा ने उनके जाने के पूर्व ही मोकल के राजतिलक की व्यवस्था करने का निश्चय कर लिया और तदनुसार पाच वर्ष के बालक मोकल को राजसिंहासन पर बैठा दिया गया।[2] चूण्डा ने सबसे पहले नये राणा के प्रति स्वामी भक्ति और निष्ठा की प्रतिज्ञा की। उसके इस त्याग को देखकर राजदरबार मे उसको सबसे ऊँचा आसन दिया गया और यह नियम बनाया गया कि उस दिन से राणा की ओर से किसी भी सामन्त को भूमि वृत्ति का जो अनुदान किया जायेगा उस अनुदान पत्र पर राणा के हस्ताक्षरो के ऊपर चूण्डा के खड्ग का चिन्ह बना रहेगा। तभी से सलूम्बर के सामन्त के खड्ग का चिन्ह बना हुआ दिखाई देता है।

चूण्डा का त्याग महान था। लाखा के पीछे मेवाड राज्य की व्यवस्था अति बुद्धिमता से करते हुए चूण्डा अपने कार्य मे संलग्न रहा। परन्तु मोकल की माता को इससे संताप नहीं हुआ। वह वास्तविक राजमाता बन कर राज्य का शासन सूत्र अपने हाथ मे लेना चाहती थी। उसने चूण्डा पर दोष लगाते हुये कहा 'राजकार्य को चलाने के बहाने चूण्डा स्वयं ही राणा बन जाते हैं यद्यपि वे अपने को राणा नहीं कहते हैं परन्तु इस उपाधि का केवल नाम मात्र रखना चाहते हैं।' इन सब बातो को सुनकर चूण्डा को घोर आघात पहुचा। उसने राजमाता को कहला भेजा कि मैं चित्तौड छोड कर जा रहा हूँ। राज्य का समस्त प्रबन्ध आप ही देखिये परन्तु यह ध्यान रखें कि सीसोदिया कुल का गौरव कहीं नष्ट न हो जाय। इसके बाद चूण्डा चित्तौड छोड कर माडू राज्य की ओर चला गया। माडू के सुल्तान ने उसका स्वागत किया और जीविका के लिये हल्लार नामक जागीर प्रदान की।

चूण्डा के चित्तौड से जाते ही राजमाता के कुटुम्बियो का मारवाड से चित्तौड आने का सिलसिला आरम्भ हो गया। सबसे पहले मोकल के मामा जोधा (जिसने आगे चल कर जोधपुर नगर बसाया) चित्तौड आये। कुछ दिनो बाद जोधा के पिता

रणमल और बहुत से राठौड सरदार भी आ पहुँचे। ज्वार की रोटी खाते-खाते मारवाड में जिनके गले सूख गये थे वे लोग मेवाड में गेहूं की बनी रोटियां खाकर मोकल की जय-जयकार करने लगे।

मडौर से आये राठौड राजपूतो का चित्तौड मे बढता हुआ आधिपत्य और अधिकार देखकर सीसोदिया वश की एक बूढी धाय मा को बहुत दुःख हो रहा था। उसे लगा कि यदि कुछ समय तक ऐसे ही चलता रहा तो सीसोदिया वश समाप्त हो जायेगा और मेवाड राठौडो के अधिकार मे चला जायेगा। अतः काफी सोच समझ कर उसने राजमाता से विनम्र निवेदन किया "तुम राजमाता हो। तुम्हारा छोटा बालक मोकल इस राज्य का स्वामी है। मैं एक साधारण दासी हू और जीवन भर सीसोदिया वश के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है। परन्तु इस समय चित्तौड मे जो कुछ हो रहा है, उसको देखकर मुझे घोर आशका हो रही है। अब चित्तौड मे सीसोदिया वश के स्थान पर राठौड वश की जड मजबूत हो रही है।" धात्री (धाय) की बात को सुनकर राजमाता भी चिंतित हो उठी। उसे स्वय अपने स्वजनो की कार्यवाहियो पर सन्देह होने लगा। उसने विस्तार के साथ धाय से बातचीत की और उसे धाय की बाते सही मालूम हुई। अब उसकी समझ मे आया कि चूण्डा को हटा कर उसने बहुत बडी भूल की है।

राजमाता ने सम्पूर्ण परिस्थिति को समझने का प्रयास किया और एक दिन जब उसने अपने पिता से इस सम्बन्ध मे कुछ कहा तो पिता के व्यवहार से उसे यह सकेत मिल गया कि मोकल का राजपद वास्तव मे सकट मे पडता जा रहा है। उसका विश्वास उस समय और भी दृढ हो गया जब उसने सुना कि चूण्डा के एक भाई राघव देव को उसके पिता ने गुप्त रूप से मरवा दिया है।[3] इस सकटपूर्ण स्थिति मे राजमाता का ध्यान चूण्डा की तरफ गया। चूण्डा को सम्पूर्ण स्थिति से अवगत कराना कठिन न था। इस समय सीसोदिया वश के सिर पर सकट मडरा रहा था। सम्पूर्ण शासन राठौडो के नियन्त्रण मे था। राज्य के छोटे बडे सभी पदो पर मारवाड से आये लोग नियुक्त थे। पहले इन पदो पर मेवाड के जो लोग काम करते थे उन्हे नौकरी से पृथक कर दिया गया था। चित्तौड के सबसे ऊंचे पद पर जैसलमेर का एक भाटी राजपूत नियुक्त था। अतः राजमाता ने चूण्डा को बुलाने के लिये अपना दूत भेजा।

चित्तौड से मांडू जाते समय लगभग दो सौ स्वामिभक्त भील भी चूण्डा के साथ गये थे। उनके परिवार चित्तौड मे ही थे। राजमाता का सन्देश मिलने के बाद चूण्डा ने उन भीलो के साथ परामर्श किया और योजनानुसार उन्हे चित्तौड भेज दिया। उन्ही के साथ चूण्डा ने राजमाता को अपना सदेश तथा सारी योजना कहला भेजी। राजमाता ने योजनानुसार ही कार्य किया। उन्ही दिनो मे दीपावली का त्यौहार भी आने वाला था। इस उत्सव को मनाने के लिए राजमाता मोकल और

कुछ सेवको को साथ लकर गोगुदा (गोगु दा) नामक नगर म पहुच गई। राजमाता न दिन भर गरीबा का भोजन कराया। शाम हो जाने पर अधेरा हो गया पर तु चूण्डा का कही पता न था। इससे उसकी परशानी बढन लगी और उसने चित्तौड लौटने की तयारी की। तभी भेष बदले हुए राजकुमार चूण्डा अपने चालीस विश्वस्त अश्वारोहियो क साथ आ उपस्थित हुआ। उसन आते ही राणा मोकल का अभिवादन किया। राजमाता ने उस पहचान कर सतोष की सास ली। सभी लोग चित्तौड की तरफ चले। रास्त म किसी न नही टोका। पर तु जब वे चित्तौड दुग की रामपोल नामक फाटक पर पहुचे तो वहा क द्वारपालो न उन्ह रोका। इस पर चूण्डा ने उत्तर दिया कि हम लोग समीप के गावा के सरदार हैं और गोगु दा से राणा को दुग तक पहुचाने उनके साथ आय है। इस उत्तर से सतुष्ट होकर द्वारपालो न सभी को जाने दिया। पर तु द्वारपाला को पुन स देह हुआ और व अपन हाथो मे तलवार लकर चूण्डा और उसके साथिया को रोकने के लिए आगे बढे। इस पर दुग म मारकाट मच गई। इस समय तक पूव योजनानुसार भील लोग भी आ पहुचे थ। चूण्डा ने भाटी राजपूत सरदार को ब दी बना लिया। बहुत स द्वारपाल मारे गय और दुग मे रहने वाल राठौडो को निदयतापूवक मारा जाने लगा।

राव रणमल को दुग म घटित होने वाली बाता का कुछ पता न था। चित्तौड आन के बाद वह विलासी बन गया था। रानी के महलो म एक खूबसूरत सीसोदिया लडकी दासी के रूप म रहा करती थी। रणमल ने इन्ही दिनो म उसका सतीत्व नष्ट किया था। अत वह अपनी बेइज्जती का बदला लेने की ताक म थी। जिस समय दुग म मारकाट चल रही थी, रणमल शराब और अफीम के नशे म बेसुध लेटा हुआ सो रहा था। राजपूत लडकी ने मौका पाकर रणमल की लम्बी मारवाडी पगडी से उसको चारपाइ म कसकर बाध दिया।[4] वह तब भी सोता रहा। महल क बाहर मारकाट की आवाजें सुनकर लडकी चुपचाप वहा से चली गई। उसके जाते ही चूण्डा क साथी सनिक वहा जा पहुचे और रणमल पर प्रहार करन लगे। तब उसकी त द्रा टूटी और वह चारपाई सहित उठ खडा हुआ। पास म पडे पीतल के एक बडे बतन स उसन कुछ सनिको को घायल किया। तभी एक सनिक न उसका वध कर दिया। उस समय रणमल का लडका जोधा दुग से नीचे दक्षिण की तरफ एक महल म था। ज्यो ही उस दुग की घटनाओ का पता चला वह घबरा उठा और अपन घोडे पर सवार होकर चित्तौड स भाग निकला। कुछ अ य राठौड सरदार भी उसक साथ भाग निकले। जब चूण्डा को उसक भागने का समाचार मिला तो वह सेना सहित उसक पीछे गया। वह जोधा को ब दी बनाना चाहता था।

जोधा न मडोर का रास्ता पकडा। चूण्डा भी अपन सनिको के साथ मडोर की तरफ बढता गया। मडोर को सुरक्षित न समझ कर जोधा वहा स भी चल पडा और हरबू साखला नामक एक पराक्रमी राजपूत क यहा आश्रय लिया।[5] उधर चूण्डा

ने सावधानी के साथ मडोर पर अधिकार कर लिया और जब तक कु तोजी ग्रार मु जाजी नामक चूण्डा के दो पुत्र मवाड स नई सेना लेकर नही आये, तब तक चूण्डा मडोर म डटा रहा। इस प्रकार राठोडा को अपनी कपटता का फल मिल गया। उम दिन से आगामी बारह बप तक उनकी राजधानी सीसोदियो के अधिकार मे रही।

इस समय सीसोदिया कुल और राठौड कुल म जो भयकर शत्रुता उत्पन्न हो गई थी उस शत्रुता की भीतरी बातें परस्पर इस प्रकार मिली हुई हैं कि उनको छोड देना उचित न होगा। सीसोदिया लागा ने किस प्रकार स गोडवार का इलाका प्राप्त किया और वीर जोधा ने किस प्रकार से फिर मडोर पर अपना अधिकार किया था, इसका वरान करने के बाद मोकल के राज्य का इतिहास लिखेंगे।

"विपत्ति की उपयोगिता" अच्छे परिणाम देती है। जोधा के लिय यह विपत्ति उनकी भावी उन्नति की प्रथम सीढी बनी। हरबू साखला का आश्रय और बाद म समथन जोधा के लिये वरदान सिद्ध हुआ। उसी की सहायता से जोधा को 100 अश्वा के मालिक मेव सरदार का सहयाग मिला। फिर काले घोडे के अश्वारोही के नाम से विख्यात पाबूजी का सहयोग भी जोधा को मिल गया। धीरे धीरे आस पडौस के कुछ और सरदारा का समथन भी मिल गया। अब जोधा ने मडौर के उद्धार की तरफ ध्यान दिया। उधर चूण्डा के पुत्र बिना किसी आशका के शासन कर रहे थे। इतन मे ही जोधा ने अचानक उन लोगो पर आक्रमण कर दिया। कु तो जी ने जोधा की शक्ति का अनुमान लगाये बिना ही युद्ध के लिए प्रस्थान किया और थोडी देर बाद ही मारा गया। अनेक मेवाडी सनिक और सरदार भी मारे गये। स्थिति की गभीरता को समझते हुए चूण्डा का दूसरा पुत्र मु जा घोडे पर सवार होकर भागा। पर तु उसका पीछा किया गया और गौडवार की सीमा पर उसे घेर कर मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार, राठौडो ने सीसोदियो से अपना पिछला हिसाब चुकता कर दिया। पर तु सारी स्थिति पर विचार करने के बाद जोधा न इस शत्रुता को समाप्त करना ही उचित समझा और चूण्डा के पास सधि पत्र भेजा। जोधा न समझौत के बदले म 'मुण्डकाटि" अर्थात् रक्त के बदले दण्ड स्वरूप समस्त गौडवार प्रदेश देन की बात स्वीकार की। चूण्डा का पुत्र मु जा जिस स्थान पर मारा गया, वह स्थान मारवाड और मेवाड दोनो राज्यो की सीमा मानी गइ। इस समझौत म दोनो कुला म पुन मत्री सम्ब ध कायम हो गये।[6]

राणा मोकल जिसन चूण्डा के महान् त्याग के फलस्वरूप मेवाड का राज्य प्राप्त किया था उसको भोगने के लिए अधिक समय तक जीवित न रहे। यद्यपि अल्पायु म ही मोकल ने राजाओ क योग्य सभी गुण प्राप्त कर लिय थ और राज्य करने को समथ हो गय थे परन्तु विधाता न अधिक दिन तक उस यह सुख भोगन न

दिया । 1398 ई० म जब मोकल सिंहासन पर बठे, उस समय सम्पूर्ण भारत म एक नवीन युग प्रारम्भ हो गया था । तमूर एक विशाल सेना के साथ भारत पर चढ आया था । उसक आक्रमण न दिल्ली के सिंहासन को नष्ट कर दिया यद्यपि उसके आक्रमण स मवाड को कोई हानि नही उठानी पडी थी । इ ही दिनो मोकल न अपनी सेना का दृढ करक मवाड क दूसर भागो म भी अपन अधिकार को सुन्ढ बनाया । मोकल न बहुत स भवनो का भी निर्माण करवाया जिसम लाखा राणा का भवन और चार भुजा दवी का मदिर विशप प्रसिद्ध है ।

मोकल क तीन पुत्र और एक पुत्री हुई । रूपवती होन क कारण उस 'लाल बाई' के नाम से पुकारा जाता था । उसका विवाह गागरोण क खीची सरदार क साथ किया गया । विवाह क अवसर पर खीची सरदार न राणा स यह वचन लिया कि जब भी गागरोण पर शत्रु आक्रमण कर तब राणा उसकी सहायता करेंगे । विवाह के कुछ वप बाद मालवा क सुल्तान हुसग न गागरोण पर आक्रमण कर दिया । खीची सरदार न अपन पुत्र धीरज को सहायता के लिए राणा के पास भेजा । उस समय मोकल मादरिया क पहाडी लोगो का विद्रोह दबान के लिए मादेरिया म शिविर लगाय हुए थे ।[7] धीरज उनसे वही जाकर मिला और आवश्यक सहायता क साथ वापस लौट गया । मोकल के लिय मादेरिया ही अन्तिम रगभूमि सिद्ध हुई ।

राणा क्षेत्रसिंह की सवा मे एक दासी थी । उसी क गभ स राणा क दो पुत्र हुए । एक का नाम था चाचा और दूसरे का मेरा । दासी पुत्र होन क कारण वे राज्य के अधिकारी नही हो सकते थ । चित्तौड क सरदार और सीसोदिया राजपूत उन्ह घृणा की दृष्टि से दखत थ । इसलिए दोनो भाई असतुष्ट थ और मोकल के भाग्य स जला करते थ । मोकल को इन सब बातो की जानकारी थी फिर भी उन दोनो का अपना चाचा मान कर कभी उनक साथ अनुचित यवहार नही किया और दोनो को चित्तौड की सना म उच्च पद दे रखा था । जब मोकल न सना क साथ मादेरिया क लोगो का दमन करने क लिये चित्तौड स प्रस्थान किया था तो य दोनो भाई भी राणा क साथ गय थ । दोनो भाई पहले से ही मोकल स जलत थ और अपने आपको ही व मवाड राज्य का उत्तराधिकारी भी समझत थ । केवल मोकल ही उन्ह अपन माग का बाधक दिखलाई पडा । अत एक दिन मौका पाकर उन दोनो ने मोकल की हत्या कर दी ।

मोकल का बडा लडका कुम्भा उन दिनो चित्तौड म ही था । अपन पिता की हत्या का समाचार सुनकर उस गहरा दु ख हुआ तथा यह भय भी हुआ कि व दोनो भाई चित्तौड का सिंहासन प्राप्त करन क लिय शीघ्र ही चित्तौड पर आक्रमण करेंगे । यह सोचकर उसने मारवाड क राजा को तुरन्त सहायता क लिए स देशा भेजा । ग क राजा न अपने लडक को तत्काल एक सना क साथ चित्तौड भज दिया । तब

तक चाचा और मेरा चित्तौड के काफी निकट आ पहुचे थे। मारवाड की सेना के आने का समाचार सुन कर वे अपने सैनिकों के साथ अरावली पर्वतों में पाई नामक स्थान की तरफ भाग गये। मारवाड और मेवाड की सेनाओं ने पाई को जा घेरा और कुछ दिनो बाद दोनो भाई मौत के घाट उतार दिये गये।

सन्दर्भ

1 राठौड राजकुमारी का नाम हसाबाई था। वह रणमल की पुत्री नही अपितु बहिन थी और मारवाड के शासक राव चूण्डा की पुत्री थी।

2 अधिकाश विद्वानो ने राणा लाखा का शासनकाल 1382 से 1421 ई तथा मोकल का 1421 से 1433 ई माना है। परन्तु यह युक्तिसगत प्रतीत नही होता। डा उपेन्द्रनाथ डे ने लाखा का शासनकाल 1382 से 1397 ई तथा मोकल का 1397 से 1433 ई निर्धारित किया है, जो अधिक तर्कसगत लगता है। क्योकि सिंहासन पर बैठते समय मोकल पाच वर्ष का था और उसकी मृत्यु 1433 ई मे हुई थी। यदि वह 1421 मे सिंहासन पर बैठा तो मृत्यु के समय उसकी आयु 17-18 वर्ष की रही होगी। परन्तु हम मालूम है कि उसके तीन पुत्र और एक पुत्री भी हुई और उसके जीवनकाल मे ही उसकी पुत्री का विवाह भी हो गया। इतना सब कुछ 17-18 वर्ष की आयु तक घटित होना सम्भव नही लगता।

3 कर्नल टाड इस अध्याय मे भी बहुत सी भूले कर बैठे हैं। राघवदेव का वध मोकल के शासनकाल मे नही अपितु कुम्भा के शासनकाल मे हुआ था। चित्तौड मे राठौडो का प्रभाव वास्तव मे मोकल की हत्या के बाद कुम्भा के शासन के प्रारम्भिक वर्षो मे बढा था।

4 रणमल की हत्या सम्बन्धी यह विवरण सही नही है। वास्तव मे यह काम मोकल के हत्यारो के साथियो महपा और अक्का का था। चूण्डा का समर्थन भी उन्हे प्राप्त था। उन्होने रणमल की प्रेयसी दासी भारमली को अपनी तरफ मिलाया और भारमली ने रणमल को खूब शराब पिलाकर बेहोश कर दिया और उसे चारपाई से बाध दिया। महपा ने रणमल का वध किया था।

5 जोधा ने बीकानेर से दस कोस दूर स्थित काहुनी गाव मे जाकर आश्रय लिया था। हरबू साखला का सहयोग तो काफी बाद मे लिया गया था।

6 मारवाड ग्रौर मवाड क समझौता का विवरण सही नही है। इसम भी टाड न भूलें की हैं। वस्तुस्थिति इस प्रकार है—1453-54 ई म जाधा न मडोर जीत लिया था। कुम्भा न उसक विरुद्ध वार वार सनिक ग्रभियान भेज परन्तु सफलता न मिली। उल्टे जोधा न मवाड क गोडवार क्षत्र म धाव मारन शुरू कर दिय, ग्रन्त म कुम्भा स्वय जोधा के विरुद्ध गया। पाली नगर क समीप दोना पक्ष ग्रामन सामन ग्रा गय। यहा पर दोनो पक्षा म समझौता हा गया। जोधा ने ग्रपनी पुत्री शृ गार देवी का विवाह कुम्भा क पुत्र रायमल क साथ करक मैत्रीपूर्ण सम्बधा को ग्रौर ग्रधिक सुदृढ बना दिया।

7 मोकल के ग्रंतिम दिना म गुजरात क सुल्तान ग्रहमदशाह न मवाड पर ग्राक्रमण कर दिया। महाराणा मोकल उसका सामना करन क लिए सना सहित चित्तौड स रवाना हुग्रा। जब वह जीलवाडा क्षत्र म गुजरात के सुल्तान का ग्राक्रमण राकन क लिए पडाव डाल हुए था, तब चाचा ग्रौर मेरा ने उसकी हत्या की थी।

अध्याय 17

राणा कुम्भा और रायमल

सवत् 1475 (1419 ई) म राणा कुम्भा अपन पिता का उत्तराधिकारी बना।[1] सामान्य कठिनाइयो के उपरान्त भी उसके शासनकाल म मेवाड राज्य उन्नति क शिखर पर पहुच गया था। परन्तु यदि मारवाड के राजा न आरम्भ म उसकी सहायता की होती ता इस उन्नति होने मे सदेह था। राठौड राजा ने अत्य त परिश्रम, यत्न और चेष्टा करके कुम्भा की सहायता करन मे मन लगाया। इसके बहुत से कारण दखे जात है। उनमे से एक विशेष कारण यह है कि कुम्भा न उनसे सहायता मागी थी। यदि वह सहायता न दता तो उसके लिय कलक की बात हाती। दूसरी बात यह कि कुम्भा राठौड राजा का भानजा था। स्नेह और ममता के वशीभूत होकर भी उन्हे सहायता करनी पडी।[2]

मवाड का राज्य जिस प्रकार चतुर और तजस्वी राजाओ द्वारा बहुत दिनो तक शोभायमान होता रहा है, ऐसा सौभाग्य और किसी राज्य को प्राप्त नही हुआ। इस समय वह अपने गौरव क मध्य भाग से गुजर रहा था। उसके विधर्मी शत्रुओ की शक्ति का पतन हो चुका था। अलाउद्दीन के आक्रमण को सौ वष बीत चुके थे। उस समय जिन वीरो ने चित्तौड की रक्षा के लिए अपन प्राणो का उत्सग किया था उनका स्थान अगणित सीसोदिया वीरो ने ले लिया। परन्तु कुम्भा न नियति को देख लिया था और भावी विपदा से मवाड को बचाने के लिये उचित उपाय करन लगे। उनम हम्मीर की तजस्विता और लाखा की शिल्पप्रियता का अद्भुत सगम था।

शहाबुद्दीन स लेकर राणा कुम्भा के समय तक 236 वर्षो का समय बीता है और इस लम्ब समय म अनेक परिवतन हुये हैं। खिलजी वश के अतिम दिनो म दिल्ली के प्रातीय सूबेदारो न उसकी सत्ता का त्याग कर अपन पृथक स्वत त्र राज्य स्थापित करने शुरू कर दिये। दक्षिण म बिजयपुर और गोलकुण्डा, पूव म मालवा गुजरात और जौनपुर तथा कालपी म भी एक स्वत त्र राजा शासन करन लग गया था। कुम्भा के सिंहासन पर बठने के समय तक मालवा और गुजरात न काफी शक्ति सगठित कर ली थी। कुम्भा के शासनकाल के मध्य म सवत् 1496 (1440 ई) म

दोनो ने मिलकर मेवाड पर आक्रमण करने का निश्चय किया[3] और अपनी अपनी विशाल सेनाये लेकर मेवाड की तरफ बढ चले। उनके आक्रमण की सूचना मिलते ही कुम्भा ने भी बडी तत्परता के साथ युद्ध की तयारी की और एक लाख सैनिको तथा 1400 हाथियो के साथ अपने राज्य की सीमा के आगे मालवा के मैदानी क्षेत्र मे उनकी सयुक्त सेनाओ के साथ युद्ध किया। घमासान युद्ध के बाद कुम्भा की विजय हुई और मालवा का सुल्तान महमूद खिलजी पकडा गया। उसे चित्तौड लाया गया।

अब्बुल फजल ने भी इस विजय का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि उदार चरित्र वाले कुम्भा ने बिना किसी प्रकार का जुर्माना किये ही अपने शत्रु महमूद को न केवल रिहा कर दिया अपितु उसको अनेक प्रकार की भेंट देकर सम्मान के साथ उसको उसके राज्य मे पहुचा दिया। इसमे कोई सन्देह नही कि हिन्दू जाति का चरित्र ऐसा ही उदार होता है। परन्तु भट्ट ग्रन्थो मे लिखा है कि महमूद खिलजी पूरे 6 महीने तक चित्तौड की जेल मे रहा और उसके बाद राणा कुम्भा ने महमूद खिलजी के ताज को अपनी विजय के प्रमाण मे अपने पास रखकर उसको छोड दिया।[4] बाबर ने भी अपनी आत्मकथा मे इसी प्रकार की बात लिखी है जिसमे राणा सागा के लडके ने वह ताज बादशाह बाबर को भेंट मे दिया था। परन्तु इन सबकी अपेक्षा एक दूसरा स्मृति चिन्ह बहुत दिनो से उस विजय की कहानी सुना रहा है। वह है कुम्भा द्वारा बनवाया गया एक विशाल विजय स्तम्भ। इस विजय स्तम्भ पर युद्ध का पूरा वृत्तान्त लिखा हुआ है। इस युद्ध के ग्यारह वर्ष बाद राणा ने इसको बनवाना आरम्भ किया और दस वर्ष बाद यह बनकर तयार हो गया।

इस युद्ध के बाद महमूद खिलजी कुम्भा का मित्र बन गया। जब दिल्ली की सेना के साथ झुझनू नामक स्थान पर राणा का युद्ध हुआ[5] तब महमूद खिलजी अपनी सेना के साथ कुम्भा की सहायता के लिये आया था। इस युद्ध मे कुम्भा विजयी रहा। उस समय दिल्ली के बादशाह की शक्ति काफी गिर चुकी थी और एक बार तो मालवा सुल्तान ने अकेले ही दिल्ली के पिछले सुल्तान गोरी को पराजित किया था।

मेवाड की सुरक्षा के लिये निर्मित 84 दुर्गों मे से 32 दुर्गों का निर्माण कुम्भा ने करवाया था। इनमे से चित्तौड के अलावा अन्य सभी दुर्गों मे श्रेष्ठ कुम्भमेर (कुम्भलगढ) का दुर्ग विशेष प्रसिद्ध है। राणा कुम्भा के नाम के पीछे यह कुम्भमेर के नाम से विख्यात हुआ। इसका निर्माण बडी मजबूती से किया गया है और किसी देशी सेना के लिये उसे जीतना काफी कठिन है। जनश्रुति के अनुसार इस स्थान पर सबसे पहले एक दुर्ग चन्द्रगुप्त के वंश मे सप्रीत नामक एक जैन राजा ने दूसरी शताब्दी मे बनाया था। इस प्राचीन दुर्ग मे स्थान स्थान पर निर्मित जैन मन्दिरो से जनश्रुति के ऊपर विश्वास करने को जी चाहता है। इस दुर्ग के मुख्य द्वार का नाम हनुमान

पोल" है, जहा महावीरजी की एक विशाल मूर्ति विराजमान होकर उस द्वार की रक्षा कर रही है। यह मूर्ति राणा कुम्भा नागौर जीत कर वहा से लाया था। आबू पहाड के एक शिखर पर जहा परमारा का एक पुराना किला बना हुआ था, कुम्भा ने उस किले म एक महल बनावाया जिसमे वह बहुधा रहा करता था। इस दुग का अस्त्रागार और रक्षक शाला आज तक कुम्भा के नाम से प्रसिद्ध है। दुग के भीतर एव मदिर म भगवान् कुम्भ और राणा के पिता की मूर्तिया स्थापित हैं। मेवाड के पश्चिमी प्रान्त और आबू पहाड के बीच म बने हुए मार्गो का परकोटे आदि से दृढ करके कुम्भा ने वतमान सिरोही के निकट वसन्ती दुग का और मेरो के प्रभाव को बढने से रोकने के लिये मचान के दुग का निर्माण कराया। जाराल और पानोर के उद्दण्ड भीलो को नियन्त्रण मे रखने के लिए कुम्भा ने आहोर तथा कुछ अय दुर्गो की मरम्मत कराई। उसने मेवाड और मारवाड के राज्यो की सीमाए निर्धारित की।

उपयुक्त स्मारको के अलावा धम स सम्बधित दो स्मारक भी अभी तक सुरक्षित हैं। एक आबू पहाड के ऊपर की भूमि पर बना हुआ 'कुभश्याम' है। यदि किसी और स्थान पर बना होता तो अपनी सुदरता से यह जगत म प्रसिद्ध हो जाता। दूसरा स्मारक बहुत विशाल है। इसको बनाने मे दस करोड से कुछ अधिक रुपये खच हुए और कुम्भा न अपनी तरफ से आठ लाख रुपये दिय थे। यह विशाल स्मारक मेवाड के पश्चिमी भाग मे सादडी नामक पहाडी माग के बीच में स्थित है। यह मदिर "ऋषभदेव" को अर्पित है।[6] दुगम पवतो म होने के कारण यह मदिर मुसलमानो के विध्वसकारी कार्यों से सुरक्षित रह गया। राणा कुम्भा एक अच्छा कवि भी था परन्तु उसने अय कवियो की भाति अपन पराक्रम का वर्णन करन अथवा अपनी प्रियाओ के सौदय का उल्लेख करने में अपनी बुद्धि और काय प्रतिभा का व्यय नही किया। उसने गीत गोविन्द की एक सुन्दर टीका बनाई।

कुम्भा ने मारवाड के कुलो मे सवश्रेष्ठ मेडता के राठौड की लडकी मीरा स विवाह किया था।[7] सौन्दय और प्रेम काव्य की रचना के लिए मीरा अपने युग की अत्यधिक प्रसिद्ध राजकुमारी थी। भगवान् कृष्ण की स्तुति म उसन अनेक पद बनाय थ। उनके कुछ पद और छद आज भी सुरक्षित हैं और उनका बहुत आदर किया जाता है। उसने अपन पति स प्रेरणा प्राप्त की अथवा कुम्भा न उसक साहचय से गीतगोविन्द की रचना की, इसका तय करना बहुत कठिन है। उसका जीवन रोमान्स से परिपूर्ण था और यमुना के किनारे स लेकर पृथ्वी के द्वार तक कृष्ण के जितने मदिर थ उन सबको वह देख आई थी। उसके सम्बध म तरह तरह की अफवाह सुनने को मिलती हैं परन्तु व सब मिथ्या हैं। कुम्भा म वीररस और शृगाररस का अपूर्व मिश्रण था। वह झालावाड सरदार की बेटी जिसकी सगाई मण्डोर के राज कुमार के साथ हो चुकी थी का अपहरण करके ल गया। इसस पहल राठौड और सीसोदिया राजाओ मे जो मित्रता कायम हो चुकी थी, कुम्भा क इस कृत्य से वह

समाप्त हो गई। राठौड़ राजकुमार ने अपनी मगेतर के उद्धार के लिये बहुत से प्रयत्न किये परन्तु उसे सफलता न मिली।[8]

कुम्भा ने अर्द्ध शताब्दी तक शासन किया। उसने अपने कुल के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की, दुर्गों के द्वारा अपने राज्य को सुरक्षित बनाया, असंख्य मन्दिरों से सुशोभित किया और अपनी कीर्ति तथा प्रतिष्ठा की नींव रखी। ऐसे समय में, एक दिन जो भयंकर कुकृत्य हुआ उसके कारण भारत के इतिहास का एक पूरा अध्याय कलंक की स्याही से कलुषित हो गया। कुम्भा का जीवन, जिसे प्रकृति समाप्त करने वाली थी, एक पिशाच घातक की छुरी से समाप्त हो गया। वह घातक पिशाच राणा का ही पुत्र था।

यह कुकृत्य संवत् 1525 (1469 ई.) में हुआ था। उस पितृहन्ता का नाम ऊदा था। उसने जिस राज्य के लालच में ऐसा किया था, उस राज्य को वह बहुत थोड़े समय तक ही भोग सका। राजस्थान के भट्ट कविगण इसके घिनौने नाम के बदले 'हत्यारा' और नरहन्ता के नाम से इस अभागे को पुकारा करते हैं। अपने भाई बंधुओं से तिरस्कृत ऊदा ने सिंहासन को बचाये रखने के लिए दूसरे देशों की सहायता ली और पांच वर्षों में ही उसने वह सब कुछ खो दिया जिसको प्राप्त करने में असंख्य लोगों ने कुर्बानी दी थी। उसने आबू के देवड़ा सामंत को स्वतंत्र राजा बना दिया और जोधपुर के राजा को सांभर, अजमेर और इनके निकट के कई परगने दे दिये। परन्तु फिर भी उसका उद्देश्य पूरा न हुआ। न तो उसे इन राजाओं से सम्मान मिल पाया और न ही वह इनकी सहायता पर भरोसा कर पाया। अन्य कोई उपाय न देखकर वह दिल्ली के मुसलमान बादशाह के पास चला गया और अपनी कन्या देने का वचन देकर उससे सहायता मांगी।[9] परन्तु ईश्वर ने उसके इस दुराचारी को दूर करके दूसरे कनक से बप्पा रावल के पवित्र वंश की रक्षा की और पापी को पाप का फल दिया।" जब ऊदा बादशाह से विदा लेकर दीवानखाने से बाहर आया उसी समय उसके सिर पर बिजली गिरी और तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गई। इस जघन्य कृत्य में भट्ट वंश का एक आदमी भी ऊदा के साथ था। अपनी जाति की दुष्टता को छिपाने के लिये भट्ट लोगों ने इस वृत्तान्त को साधारण ढंग से लिख दिया।

ब्राह्मण, यति, चारण और भाट लोग जो दान लिया करते हैं मंगता कहलाते हैं और इन मंगतों में सदा से ही परस्पर विद्वेष रहा है। परन्तु हम्मीर के समय से चारण लोगों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। एक ब्राह्मण ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि राणा कुम्भा एक चारण के हाथों मारे जायेंगे। कुम्भा जो पहले से ही किसी कारणवश चारणों से अप्रसन्न थे इस भ[illegible] को सुनकर क्रोधित हो उठे और चारणों की भू सम्पत्ति जब्त कर उ[illegible] दिया। यह एक ऐसा कठोर कदम [illegible] दिना [illegible]सित [illegible]

उठाने का साहस जुटा पाता। पर तु चारणो को अधिक दिन तक इस दण्ड को न भोगना पडा। कुम्भा ने किसी कारण स अपने उत्तराधिकारी राजकुमार रायमल को भी अपन राज्य से निष्कासित कर दिया था। रायमल ईडर चला गया जहा एक चारण न उनकी विशप सहायता की। रायमल के अनुग्रह म चारणो का दण्ड समाप्त हुआ।

राणा रायमल सवत् 1530 (1474 ई०) म चित्तौड के सिंहासन पर बठे। सिंहासन पर बठन के पहल उसको पितृघाती ऊदा स सघष करना पडा था। ऊदा दिल्ली चला गया और वही उसकी मृत्यु हो गई। ऊदा के सहसमल और सूरजमल नाम क दो पुत्र थ। बादशाह इ ही दो पुत्रो को साथ लेकर मेवाड पर चढ आया। रायमल के नतृत्व म मेवाड की सना भी आग बढी। धासा नामक स्थान पर दोनो पक्षो म भयकर युद्ध लडा गया। ऊदा क पुत्रो न अपूव पराक्रम का परिचय दिया पर तु बादशाह की सेना पराजित होकर भाग खडी हुई। इसके बाद बादशाह न मवाड की सीमा मे दुबारा कदम नही रखा। राणा रायमल न ऊदा क पुत्रो को क्षमा करके अपनी सेवा मे रख लिया।[10]

रायमल के दो पुत्रिया और तीन पुत्र हुए। एक क या का विवाह गिरनार के राजा के साथ और दूसरी का सिरोही के देवडा राजा जयमल के साथ हुआ था। किसी कारणवश रायमल की मालवा क सुल्तान गियासुद्दीन के साथ शत्रुता हो गई जिसकी वजह से दोनो म कई बार युद्ध हुए। इन सभी युद्धो म रायमल विजयी रहा। अ त म, गियासुद्दीन ने रायमल के साथ समझौता करना ही उचित समझा।[11] इसके बाद रायमल चन से शासन करन लग। इ ही दिनो लोदियो न दिल्ली सल्तनत पर अधिकार कर लिया था। मेवाड के उत्तरी सीमा त के क्षेत्रो को लेकर रायमल को लोदी बादशाह स भी कई बार युद्ध लडना पडा।

रायमल के तीनो ही पुत्र—सागा, पृथ्वीराज और जयमल महापराक्रमी थ। पर तु मवाड और रायमल के दुर्भाग्य स तीनो भाइयो मे इतना अधिक तनाव पदा हो गया कि वे एक दूसर के खून क प्यास हो गय। तीनो भाइयो के आपसी झगडो न राणा रायमल के सुखी जीवन को दु खी बना दिया। दु खी और क्रोधित अवस्था म राणा न तीनो को ही देश से निवासित करन का विचार किया। बडा पुत्र (सागा) तो उस झगडे स अपन प्राण बचान क लिए स्वय ही मवाड छोड कर चला गया।[1] पृथ्वीराज को राणा न दश स निकाल दिया और जयमल एक अ यायपूर्ण कृत्य क कारण मारा गया। राजपूतो क इन आपसी झगडो के अध्ययन स स्पष्ट होता है कि य लोग बडे कठोर होत है और जब तलवार की प्यास बुझान क लिए दश क शत्रु स मुक्त नही होत तो य लोग मूखतावश आपस म लड झगड कर एक दूसर का विनाश करन क लिए सदा तत्पर रहत है।

सागा और पृथ्वीराज सगे भाई थ । उनकी मा झाला वश की थी । जयमल उनका सौतेला भाई था । चौहान वश क पृथ्वीराज से सीसोदिया वश के इस पृथ्वी राज की अनेक वात मिलती थी । सीसोदिया पृथ्वीराज की वीरता पर मेवाड क लोग इतने मुग्ध है कि जब व भाटो क मुख स उसकी वीरता का वर्णन सुनत हैं तो उनके आन द की कोई सीमा नही रहती । सागा और पृथ्वीराज यद्यपि वीरता और साहस म एक समान थे पर तु दोनो म बहुत अ तर था। सागा साच विचार कर लडाई म हाथ डालत थ जबकि पृथ्वीराज प्रतिक्षण युद्ध के लिये तयार रहता था । तलवार के बल से अपनी भावी उन्नति के विषय म वह कहा करता कि ईश्वर ने मुझको मेवाड राज्य का शासन करने के निमित्त पदा किया है ।'' सागा बडा लडका था, अत वह अपने को अपन पिता का उत्तराधिकारी समझता था पर तु पृथ्वीराज को यह पस द न था । चित्तौड का भावी अधिकारी कौन होगा ? इस बात का लकर दोनो भाइयो म झगडा होन लगा । एक दिन तीनो भाई अपने चाचा सूरजमल के पास बठ उत्तराधिकार क विषय म बातें कर रह थ । सागा न कहा ' याय के अनुसार मेवाड के दस हजार नगरो का स्वामी म ही हू पर तु मैं अपना दावा छोडने को तयार हू यदि तुम सभी को नाहर मगरा की चारणी देवी की बात पर विश्वास हो । वह जो निर्णय देगी उसे हम सभी को मानना होगा ।' सभी ने इस बात को मान लिया और चारणी देवी के निवास का गये । पृथ्वीराज और जयमल न पहले प्रवेश किया और एक चौकी पर बठ गय । बाद म सागा और सूरजमल आये । सागा सामन बिछे हुए व्याघ्र चम पर बठ गय । चाचा सूरजमल भी उस व्याघ्र चम के आसन पर अपना एक घुटना टेक कर बठ गय। चारणी देवी को जसे ही पृथ्वीराज न अपन आन का प्रयोजन बताया उसने व्याघ्रचम की तरफ इशारा किया । इससे समझा गया कि सागा ही राजा होगा और सूरजमल के भाग्य म राज्य का आंशिक भोग लिखा है । चारणी की भविष्यवाणी को असत्य सिद्ध करने के लिए पृथ्वीराज न तलवार निकाल कर सागा पर जोरदार प्रहार किया पर तु सूरजमल के बीच म आ जाने स सागा बच गया और पृथ्वीराज का वार निष्फल हो गया । इसक बाद जबरदस्त लडाई हुई । सागा के बाण लगा और पाच घाव तलवार के लगे । बाण के लगने से उसकी एक आख जाती रही । वह तत्काल अपन प्राण बचाकर भागा । सूरजमल और पृथ्वीराज दोनो ही घमासान लडाई क बाद घायल हो गये । घायल सागा ने बीदा नामक राठौड राजपूत से सहायता की याचना की । तभी जयमल सागा का पीछा करता हुआ आ पहुचा । बीदा न शरणागत की रक्षा म अपन प्राण उत्सग कर दिय । तब तक सागा वहा स काफी दूर निकल गया ।

घावो के ठीक होते ही पृथ्वीराज, सागा की खोज म निकल पडा । सागा को इसकी जानकारी मिलत ही वह घन जगलो की तरफ चला गया और कुछ दिन गडरियो के पास बिताय और फिर कुछ राजपूतो क साथ श्रीनगर के राव करमचद

नामक सरदार की सेवा मे जा पहुँचा ।[13] परामर वशी करमचद एक डकत था और डाके डाल कर ही अपना निर्वाह करता था। अनालवासी सागा को भी इस कुकम म सम्मिलित होने के लिए विवश होना पडा । एक दिन दोपहर मे बरगद के पेड के नीचे सागा विश्राम कर रहा था और उसक साथी भाजन बना रह थे, तभी सूय की एक किरण सागा के मुख पर पडन लगी जिस दखकर एक नागराज अपन बिल से निकल कर, सागा के मुख मण्डल पर अपना फण फला कर बठ गया। उसी समय एक शकुन पक्षी भी जोर से बोलन लगा। उस रास्त स जान वाल एक शकुन विशपज्ञ न यह दृश्य दखा तथा पक्षी की आवाज क अथ को समझा । उसे विश्वास हा गया कि सोया हुआ व्यक्ति एक महान् राजा हागा । शकुन जानन वाल व्यक्ति का नाम मारू था। मारू न सारा वृत्ता न करमच द का सुनाया। करमचद इमसे प्रभावित हुआ और उसन अपनी एक लडकी का विवाह सागा स कर दिया । जब तक सागा को सिंहासन प्राप्त नही हुआ, तब तक वह करमच द के पास ही रहा ।

उधर राणा रायमल को जब यह वृत्तात मालूम हुआ तो व अत्यधिक दु खी और क्रोधित हो उठे और उ होने पृथ्वीराज को बुलाकर कहा कि तुम इसी समय मवाड राज्य से चले जाओ । पृथ्वीराज न पिता के आदेश का पालन करते हुये केवल पाच सवारो के साथ गौडवार की तरफ चला गया। राणा कुम्भा की अकाल मृत्यु ने मेवाड की शाति को पहल ही काफी क्षति पहुँचाई थी । अब सीसोदिया राजकुमारो के प्राणघातक सघष ने राजा की सुरक्षा का और भी कमजोर कर दिया । गौडवार का इलाका अरावली पवतमाला म ही बसा हुआ है। वहा के असभ्य तथा लडाकू लोगो न गौडवार के मुख्य नगर नाडौल तक लूटमार शुरू कर दी थी। पृथ्वीराज आवश्यक सामान खरीदन के लिय नाडौल म एक ओर एक व्यापारी के पास अपनी अगूठी गिरवी रखन के लिये गये । व्यापारी न गुप्त वशधारी पृथ्वीराज को तत्काल पहचान लिया और उस हर सम्भव सहायता दन का आश्वासन दिया । उसके आग्रह पर पृथ्वीराज न वही रहत हुए लडाकू लोगो का दमन कर गौडवार मे शान्ति एव व्यवस्था स्थापित करन का सफल प्रयास किया। लडाकू मीनो क समस्त इलाका पर पृथ्वीराज न अपना अधिकार कायम कर लिया। जब यह समाचार राणा रायमल के पास पहुँचा तो उ होन पृथ्वीराज को वापस अपन पास बुला लिया। क्योकि इस समय तक रायमल का सबसे छोटा पुत्र जयमल मारा जा चुका था और बड पुत्र सागा का कोई समाचार न था ।

राजस्थान म टोडा नामक एक छोटी सी रियासत थी जहा राव सुरतान शासन करता था। परन्तु मुसलमाना न टोडा पर अधिकार कर लिया और सुरतान को अपने परिवार सहित भागकर मवाड का तरफ आना पडा । अरावली की उपत्यका म बसे बदनौर नगर म सुलतान न आश्रय लिया । उसक एक सु दर पुत्री थी—तारा बाई । सुरतान न प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई राजपूत मुसलमानो क हाथ स टोडा

का उद्धार करेगा उसी के साथ तारा का विवाह होगा। तारा की सुन्दरता और वीरता को सुनकर राजकुमार जयमल बदनौर गया और तारा से विवाह करने की जिद की। इतना ही नहीं उसने तारा के साथ कुकर्म करने का भी प्रयास किया जिससे क्रोधित होकर सुरतान ने उसका वध कर दिया। भट्ट लोगों ने वर्णन किया कि है "जयमल के भाग्यवश के लिये तारा अनुकूल तारा न हुई।" राणा रायमल ने पूरा वृत्तांत सुनने के बाद कहा जिस पुत्र ने अपने कुकृत्य से एक प्रतिष्ठित सज्जन और विशेष कर विपदा में पड़े उस राजपूत का अपमान करना चाहा था उसको उसकी करनी का फल मिल गया।" इतना ही नहीं अपितु राणा रायमल ने बदनौर का इलाका राव सुरतान को जागीर के रूप में प्रदान कर दिया।

जयमल की मृत्यु के बाद राणा ने पृथ्वीराज को वापस बुला लिया। गौडवार के मीणों का दमन करने से पृथ्वीराज की वीरता का यश सम्पूर्ण मेवाड़ में फैल गया था। उधर पृथ्वीराज को ताराबाई की वीरता और सुन्दरता की जानकारी मिली। पृथ्वीराज ने उसे प्राप्त करने का निश्चय किया और वह बदनौर जा पहुँचा। राव सुरतान ने उसका आदर सत्कार किया और पृथ्वीराज ने टोडा जीतने का वचन दिया। कुछ दिनों बाद ही पृथ्वीराज ने मुसलमानों को टोडा से निकाल बाहर किया। राव सुरतान ने प्रसन्नता के साथ उसकी शादी तारा के साथ कर दी।

सांगा पृथ्वीराज और जयमल के मध्य झगड़ा कराने वाला सूरजमल ही था। जिस दिन चारणी देवी ने भविष्यवाणी की थी कि सूरजमल को भी आंशिक राज लाभ होगा तभी से वह चित्तौड़ राज्य की आशा करने लगा था। परन्तु पृथ्वीराज के वापस लौट आने पर सूरजमल के स्वप्न टूटने लगे। अतः वह फिर किसी नये षडयन्त्र की खोज में रहने लगा और जब उसे कुछ ना सूझा तो वह सारंगदेव नामक एक राजपूत सरदार से जा मिला। दोनों ने सलाह कर मालवा के सुल्तान के पास सहायता के लिये जाने का निश्चय किया। मालवा के सुल्तान ने सहायता देना स्वीकार कर लिया और अपनी सेना उनके साथ भेज दी। उस सेना की सहायता से दोनों ने दक्षिणी मेवाड़ पर आक्रमण कर साण्डी बाटुरा और नाई से लेकर नीमच तक के भू भाग पर अधिकार कर लिया तथा चित्तौड़ की तरफ बढ़ने लगे। राणा रायमल को ज्यों ही इस आक्रमण की जानकारी मिली वे सेना सहित चल पड़े और गम्भीरी नदी के तट पर शत्रु सेना का सामना किया। लगातार लड़ते रहने के कारण वृद्ध राणा बुरी तरह घायल हो गये और युद्ध जीतने की आशा खो बैठे। तभी राजकुमार पृथ्वीराज अपने एक हजार सैनिकों के साथ आ पहुंचे और अपने प्रचण्ड पराक्रम से चाचा सूरजमल और मुस्लिम सेना को परास्त करके खदेड़ दिया। पराजित होने के भी सूरजमल ने आशा नहीं छोड़ी और राज्य प्राप्त करने के लिये कई बार प्रयास किये परन्तु हर बार विफल रहा।[14]

इसके बाद पृथ्वीराज अपनी पत्नी के साथ कमलमीर के दु... लगा। उसे पता चल गया कि सूरजमल ने ही तीनों भाइयों में झगड़ा...

तीनो को समाप्त करके वह स्वय चित्तौड के सिहासन पर अधिकार करना चाहता था। अत पृथ्वीराज ने अन्य मार्गा का पता लगाना शुरू किया। परन्तु इन्ही दिनो उसको अपनी बहिन का एक पत्र मिला। उसकी बहिन का विवाह सिरोही के राजा के साथ हुआ था। सिरोही राजा का अपनी सीसोदिया रानी के साथ व्यवहार अच्छा नही था और वह प्राय उसको यातनाए देता रहता था। इन यातनाओ से दु खी होकर उसने पृथ्वीराज को पत्र भिजवाया था। पत्र पढने के बाद पृथ्वीराज अपनी बहिन से मिलने सिरोही जा पहुँचा और अपनी बहिन की हालत देख कर उसे गहरा आघात पहुँचा। उसने अपने बहनोई से कठोरता के साथ बाते की परन्तु उसके माफी मागने पर उसे क्षमा कर दिया। कुछ दिन वहा रुक कर जब पृथ्वीराज वहा से चलने लगा तो बहनोई ने प्रेम और आदर के साथ उसे विदा किया और मार्ग मे भोजन के लिये लड्डू दिये। कमलमीर के निकट पृथ्वीराज ने उन लडडुओ को खाया। उनमे जहर मिला हुआ था। उनको खाते ही वह वेदना से छटपटाने लगा। कमलमीर से उसकी पत्नी तारा उसके पास आ पाती उससे पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। ताराबाई उसके मृत शरीर के साथ सती हो गई। पृथ्वीराज की मृत्यु का समाचार सुन कर वृद्ध राणा रायमल पर वज्रपात हुआ। वह इसे सहन नही कर पाया और कुछ दिनो बाद उसका भी स्वर्गवास हो गया।

सन्दर्भ

1 टॉड साहब ने कुम्भा का शासनकाल गलत लिखा है। कुम्भा ने 1433 से 1468 ई० तक शासन किया था।

2 कुम्भा मारवाड के राठौड नरेश रणमल का भानजा था और रणमल ने ही मेवाड मे जाकर शान्ति और व्यवस्था कायम की थी।

3 1451 ई० मे मालवा और गुजरात के सुलतानो के मध्य मेवाड के विरुद्ध "चम्पानेर की सन्धि" सम्पन्न हुई थी। कठोर परिश्रम के उपरान्त भी इस गठबन्धन का उल्लेखनीय सफलता नही मिली। गुजरात के कुतुबुद्दीन की मृत्यु के साथ ही चम्पानेर की सन्धि का अन्त हो गया।

4 महमूद खिलजी का पकडा जाना और 6 महीने तक चित्तौड मे बन्दी के रूप मे रखा जाना विवादास्पद प्रश्न है। आधुनिक शोध कार्यो से इसकी पुष्टि नही होती। डा उपेन्द्रनाथ डे ने वजनदार तर्को के साथ इस कथन को असत्य ठहराया है। उनका मानना है कि चारण साहित्य मे भ्रमवश राणा सागा द्वारा बन्दी बनाये गये महमूद खिलजी द्वितीय को महमूद खिलजी प्रथम समझ लिया गया है और श्यामलदास तथा गौरीशंकर ने भी भ्रमवश उनके वृत्तान्तो को सही मान लिया है।

5 कुम्भा और दिल्ली की सेना के मध्य लड़े गये इस युद्ध की पुष्टि अन्य स्रोतो स नही हो पाती ।

6 राणा के एक जन मन्त्री न 1438 ई० म यह मदिर बनवाया था । इसके बनाने म सब प्रजा न भी चदा दिया था ।

7 टॉड साहब का यह कथन गलत है । मीरा का विवाह राणा सागा के बड पुत्र राजकुमार भाज क साथ हुआ था ।

8 टाड के इस कथानक की सत्यता क बारे म भी स देह है ।

9 ऊदा सहायता प्राप्त करन के लिय दिल्ली क बादशाह के पास नही गया था अपितु मालवा क सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी के पास गया था और माण्डू म ही उसकी मृत्यु हुई थी ।

10 ऊदा के पुत्रो न बीकानेर क राठौड राज्य म आश्रय लिया था ।

11 रायमल और गियासुद्दीन क मध्य लडे गये युद्धो के प्रारम्भिक दौर म रायमल को सफलता मिली था परन्तु बाद म रायमल को नीचा देखना पडा । गियासुद्दीन न रणथम्भौर टोडा और बूदी पर अपना अधिकार जमा लिया था ।

12 सागा रायमल का बडा पुत्र नही था । सबसे बडा पृथ्वीराज था । उसके बाद जयमल । फिर रायसिंह और चौथ नम्बर पर राणा सागा था । टाड साहब न न जान किस आधार पर सागा को बडा पुत्र मान लिया ।

13 श्रीनगर अजमर के पास स्थित है । करमच द डकत नही था । वह एक पवार सरदार था ।

14 सूरजमल काठल प्रदेश म चला गया और वहा उसन एक पृथक राज्य की स्थापना की ।

अध्याय 18

राणा सागा, रत्नसिह और विक्रमाजीत

सग्राम सिह जा मवाड के इतिहास म सागा के नाम से प्रसिद्ध है सवत् 1565 (1509 ई०) म सिहासन पर वठे । उसके समय मे मेवाड का राज्य उन्नति के ऊचे शिखर पर पहुँच गया था । मवाड के कवियो ने लिखा है कि, "महाराणा सागा मेवाड क गौरव चोटी के सबसे ऊचे कलश थे ।" पर तु दुर्भाग्यवश मेवाड राज्य इस गौरव का वहुत दिनो तक भाग नही कर पाया और उसकी मृत्यु के साथ ही इस गौरव का अ त हो गया । बाद म इस गौरव के दो चार चि ह दिखाई दिये थे पर तु वे चिन्ह डूबत हुए सूय की आखिरी किरणो के समान थे ।

दिल्ली का राज सिहासन जो किसी समय म पाण्डवो द्वारा सुशोभित था वाद म जिस पर वठकर तोमर तथा चौहान राजपूतो न ख्याति प्राप्त की थी, समय चक्र से उसी सिहासन पर गोरी, खिलजी और लोदी वश के बादशाहो ने बठकर शासन किया । उसी दिल्ली का राज्य अनेक टुकडो म विभाजित हो गया और उन टुकडो म अलग अलग राजा और सुलतान शासन करने लगे । उनमे चार मुख्य थे— दिल्ली वयाना काल्पी और जौनपुर ।[1] मवाड को इनसे कोई भय न था । एक समय था जब मवाड राज्य म आपसी झगडे पदा हो गये थ उस समय गुजरात और मालवा के दोना सुल्तान मवाड राज्य के विरोधिया से मिल गये थे, परन्तु वे मेवाड राज्य को कोई हानि नही पहुँचा सके । जव सागा न अपन सवारो के साथ उनका सामना किया तो व भाग खडे हुए । 80,000 अश्वारोही, उच्च पद वाले सात राजा, नौ राव, 104 रावल तथा रावत उपाधिधारी सरदार, पाच हजार लडाकू हाथियो के साथ उसके नतृत्व म युद्ध क्षेत्र म चलते थ । मारवाड और आमेर के राजा उसको सम्मान देते थ और ग्वालियर अजमेर सीकरी, रायसीन कालपी, च देरी बूदी गागरौण रामपुरा और आबू के राव लाग उसके करद् साम त बनकर उसकी सेवा करत थे । विपत्ति के समय मे जिन लोगो न सागा को आश्रय दिया था उ ह उसन याद रखा । श्री नगर के करमच द को अजमर की भूमिवृत्ति दान कर दी और उसके पुत्र जगमल को च देरी विजय मे सहायता देने के उपलक्ष्य मे 'राव की उपाधि दी ।

सिंहासन पर बैठने के थोड़े समय के भीतर ही सागा ने उस अव्यवस्था का अन्त कर दिया जो उसके परिवार में उत्पन्न आपसी झगड़े के कारण उत्पन्न हुई थी। सागा वीर्यवान और साहसी नरेश थे। इस पर कोई यह प्रश्न कर सकता है कि वह अपने उत्तराधिकार को छोड़कर वन-वन में किस कारण भटकते फिरे, इस प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि इससे कायरपन या साहसहीनता का परिचय नहीं पाया जाता वरन् उसमें उनकी अपूर्व भावदर्शिता, वीरता धीरता और सहनशीलता दिखाई देती है, यदि उस समय वह आगा पीछा न सोच कर केवल स्वार्थ साधन के लिये ही विरोध करता तो निस्सन्देह मेवाड़ की बहुत अधिक हानि होती।

सागा ने अपनी सेना को भलीभांति प्रशिक्षित किया था। इसी सेना के साथ तैमूर के वंशज के साथ लड़ने के पूर्व उसने दिल्ली और मालवा के शासकों के विरुद्ध अठारह बार सफलतापूर्वक युद्ध लड़े थे। इनमें से दो बार—बारी और खातोली में स्वयं इब्राहीम लोदी ने उसका सामना किया था। खातोली के युद्ध में तो बादशाह की सेना पर ऐसी मार पड़ी कि कुछ सैनिक ही प्राण बचा कर भाग सके और एक शाही राजकुमार तो बन्दी बनाकर चित्तौड़ लाया गया था।[2] उसके राज्य की सीमाएँ उत्तर में बयाना के पास बहने वाली पीली नदी पूर्व में सिंधु नद, दक्षिण में मालवा और पश्चिम में मेवाड़ की दुर्गम पर्वत माला तक फैली हुई थी। इस प्रकार विशाल राजस्थान के बड़े भाग मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा सागा प्रतिष्ठा की ऊंची सोपान पर पहुंच रहा था कि भारत के पश्चिम द्वार से उजबेग[3] और तातारी सेना के साथ बाबर का सिंहनाद सुनाई दिया। यदि देशद्रोही राजा लोग उस यवन की सहायता न करते तो भारत का राजमुकुट फिर हिन्दुओं के ही सिर पर रखा जाता। भारत की विजय वैजयन्ती इन्द्रप्रस्थ से उतर कर चित्तौड़ के ऊँचे दुर्ग पर फहराया करती।

अपने लिखित इतिहास के आरम्भ से ही भारतवर्ष मध्य एशिया की कठोर जातियों के आक्रमण का शिकार बनता रहा है। इससे एक बात का निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में कभी भी भलीभांति एकता नहीं रही। पारस्परिक संघर्षों ने इस देश में बहुत से छोटे छोटे राज्यों को जन्म दिया और यही स्थिति विदेशी आक्रमणकारियों को इस देश की तरफ आकर्षित करती रही। सिकन्दर के इतिहासकारों में इस बात की पुष्टि होती है जब अकेले पंजाब में कई राजाओं के राज्य थे और कई गणराज्य थे। इसके बाद ईरान वाले आये। उनका राजा दारा अपने भारतीय प्रदेश को सबसे समृद्ध प्रान्त मानता था। इसी प्रकार से तक्षक जिट, पारद हूण यूनानी, तातारी गोरी और चगताई बाबर आया। इनमें से अधिकांश यहां की धन सम्पदा को लूटकर चलते बने और कुछ यहीं पर बस गये और अपने वंश वृक्ष लगा गये। इनमें से अन्तिम—बाबर सागा का प्रतिद्वन्द्वी था और उसने भारतवासियों के हाथों

म पराधीनता की जो हथकडिया पहनाई वे आज तक नही उतरी। जब तक ज्ञान रूपी सलाई के द्वारा भारतीयो के अज्ञान से अ ध नेत्र नही खुलेंगे, जब तक सभ्यता की जननी भारत भूमि नवीन बल को प्राप्त कर नही जी उठती है, तब तक पराधीनता की वे हथकडियाँ किसी प्रकार मे नही खुलेंगी।

इस विशाल देश मे कही स भी थोडे से लोगा का आना आक्रमण करना और अपना राज्य स्थापित कर लेना कम आश्चय की बात नही है। विश्व के सभी देशा म प्राचीनकाल से लगातार परिवतन हुए हैं उनके जीवन और उद्देश्यो मे महान् क्रा तियाँ हुइ, विभिन्न जातिया एक दूसरे के निकट सम्पक म आइ और इसी प्रकार के अ य बहुत से परिवतन हुए है। परिवतनो के नाम पर ही कई देशो के नाम बदल गये, नदियो पहाडो और बहुत से स्थानो के नाम भी बदल गये। स्वय मनुष्य भी बहुत कुछ बदल गया और कई नई जातिया अस्तित्व मे आकर मिट भी गइ। पर तु सभ्यता के इस कोने मे हमको प्राचीनकाल से लेकर अब तक कोई परिवतन दिखाई नही दिया। यहा के राजपूत आज भी वसे ही हैं जसे कई हजार वष पहले उनके पूवज थे। उनके जीवन की नतिकता और सामाजिकता जीण शीण रूप मे आज भी विद्यमान है। आपस की फूट और ईर्ष्या आज भी उनम उसी रूप म मौजूद है। ससार के लोग एक तरफ हैं और यहा के लोग दूसरी तरफ है। विश्व के किसी देश के साथ इस देश का सम्ब ध और सम्पक नही है। सिक दर से लेकर बाबर तक इस देश म कितने ही तूफान आये और उनसे चाहे कितना ही सवनाश हुआ हो यहाँ के लोगा ने परिवतन की कोई आवश्यकता अनुभव नही की।

बाबर इन दिनो मे मध्य एशिया के फरगना नामक राज्य का राजा था। बाबर और सागा के जीवन की अनेक बातें मिलती जुलती है। सागा ने बचपन से लेकर सिंहासन पर बठने के समय तक जीवन की भयानक कठिनाइयो का सामना किया था। बाबर भी सागा की भाति प्रतिकूल परिस्थितियो मे बडा हुआ था और उसकी भाति ही अपने पराक्रम तथा अपनी सफलता म विश्वास रखन वाला व्यक्ति था। 1494 ई म बारह वष की नाजुक आयु म वह फरगना के सिंहासन पर बठा था। सोलह वष की आयु म उसन अपने आस-पास के कई राजाओ को पराजित किया और समरक द को जीता। दो वर्षों म समरक द उसके हाथ से निकल गया और उसने दुबारा उसे जीत भी लिया। उसका जीवन जय पराजय की विचित्र श्र खला बन गया था। एक दिन वह ट्रास आक्सियाना के प्रमुख राज्यो का स्वामी होता था तो दूसरे दिन उसे अपना राज्य छोडकर दर दर की ठोकरें खाने के लिए दूर भाग जाना पडता था। फरगना से अ तिम रूप मे निकाल दिये जाने के बाद अत्यधिक निराशा के साथ उसन हि दूकुश का पार किया और 1519 ई० म सि धु नदी के पास पहुचा।[1] काबुल और पजाब के बीच म रहकर उसन किसी प्रकार स सात वष बिताये। इसके बाद दिल्ली के इब्राहीम के साथ तलवार के दो हाथ करने के लिए

वह आग बढा। भाग्य न उसका साथ दिया। इब्राहीम मारा गया। उसकी सना पराजित होकर तितर वितर हो गई। दिल्ली और आगरा न फरगना क भगोड राजा क लिए अपन द्वार खोल दिये। अपनी सफलता के लिए बाबर न भगवान को धन्य-वाद दिया। इस विजय क बाद उसन एक वप तक दिल्ली म विश्राम किया और उसके बाद वह अपन सबस प्रबल शत्रु चित्तौड क सग्रामसिंह क विरुद्ध चल पडा।

पराक्रमी सनिक तथा एक सनिक क सभी गुणो से युक्त बाबर के सामन कई प्रकार के अवसर आ सकत थ। बयाना के निकट पीत नदी क किनार सभी क जीवन का अन्त हो सकता था। बल अथवा चालाकी की सहायता से इस अपक्षित भाग्य को नही बदला जा सकता था। बाबर न स्वय लिखा है कि जक्सरतीस नदी के किनारे स आये हुए आक्रा ताओ का समूह बिना किसी सहायता अथवा पलायन म असमथ विवशता की स्थिति म सख्या म अपन स कही अधिक वीर राजपूत शत्रुओ क विरुद्ध खदका म बठा भाग्य की प्रतीक्षा कर रहा था। बाबर का भरोसा भी जाता रहा था। उसकी सना निरुत्साहित हो गई थी। बाबर का उकसाना और उत्साह दिलाना सब निष्फल हो रहा था। इस बात को समझकर उसने कहा था कि 'क्या इस समय ऐसा कोई नही है कि जो इस सकट के समय म पुरुपोचित्त बात कह कर साहस और उत्तजना दे।

बाबर अपनी पूरी तयारी के साथ आगरा से सीकरी की तरफ राणा सागा पर आक्रमण करन के लिए चला। राजस्थान क प्राय समस्त राजा सागा की सहायता क लिय उसके झण्ड के नीचे एकत्र थे। यद्यपि भट्ट ग्र था मे कुछ एसी बातो का उल्लख किया गया है जिनका उल्लख शाही इतिहासकारो न नही किया है फिर भी युद्ध सम्ब धी दाना वृत्ता त मूल बातो पर सहमत है। मवाडी इतिहास के अनुसार कार्तिक वदी पचमी सवत् 1584 (1528 ई)[5] के दिन राणा सागा न बयाना का घरा उठान क बाद खानवा क निकट तातारा की अग्रिम सेना जिसम 1500 सवार थ का सामना किया और उस पूरी तरह स नष्ट कर दिया। प्राण बचाकर भाग हुए सनिक मुख्य सना स जा मिल और अपन सवनाश का बयान किया जिसम उनका उत्साह भग हो गया और परिणामस्वरूप विजय क विश्वास क साथ आग बढन की अपेक्षा अपनी सुरक्षा के खातिर मोर्चाब दी करके वही जम गय। अग्रिम दस्त की सहा-यता क लिय जा दूसरी सनिक टुकडी भजी गई थी वह भी पराजित होकर वापस शिविर म लौट आई था। बचपन स असफलताओ को सहन करत करत बाबर का सहन शीलता का अभ्यास हो गया था और उसन तत्काल इस सकट स उबरन का उपाय सोच लिया। उसन अपन शिविर क चारा ओर खदक खुदवाइ, बडे बड बाँध बधवा दिय और उन बाधा पर अपनी तापा को क्रमानुसार लगा दिया। सुरक्षा का हर सम्भव उपाय करके देख लिया, फिर भी उस लगा कि प्रत्यक वस्तु हिंदुओ का पक्ष ले रही है। इतना ही नही, एक तातारी ज्योतिपी न तो गणना कर यह भविष्यवाणी

भी कर दी कि "जब तक मगल ग्रह पश्चिम म स्थित रहेगा तब तक जो लोग उसकी विपरीत दिशा से ग्राकर युद्ध करेंगे, वे पराजित होग ।" इससे बाबर को चि ता हुई क्योकि वही विपरीत दिशा से ग्राया था । इस प्रकार चि ता करते प द्रह दिन व्यतीत हो गये । बाबर ने मानवी शक्ति का तुच्छ समझकर ईश्वर पर भरोसा रखने का निश्चय किया ग्रौर ग्रपने पापो का प्रायश्चित करने के लिये ईश्वर से प्राथना करने लगा । इस ग्रवसर पर उसने प्रतिज्ञा की कि 'ग्रब शराब न पीऊगा ।' शराब के प्याल ग्रौर बोतलो को जमीन पर लुढका दिया गया । जब इसका भी कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगत नही हुग्रा तो उसने ग्रपने सभी सैनिको को धमभाव (जिहाद) से उत्साहित करन का प्रयास किया । उसने एक तेजस्वी भाषण दिया ग्रौर जब उसन देखा कि उसका भाषण कुछ रग लाया है ता उसने प्रत्येक सनिक से कहा कि 'ग्रहद कर कुरान को छूकर खुदा का नाम लेकर कसम खाग्रा कि या तो फतह ही करेंग ग्रन्यथा इस जग मे ग्रपनी जान दे देंगे ।' बाबर के इन शब्दो ने सभी सनिको मे नया उत्साह भर दिया ग्रौर वे युद्ध के लिये तयार हो गये । बाबर इसी ग्रवसर की प्रतीक्षा म था । वह ग्रपनी सेना को लेकर दो मील तक ग्राग बढ ग्राया । उसी समय राजपूता की सना ने सामन ग्राकर युद्ध ग्रारम्भ कर दिया । राजपूता की शक्ति का ग्रनुमान लगाकर बाबर न युद्ध रोक दिया । राजपूत सेना भी वापस लौट गई ।

बाबर की सैनिक निबलता का राणा सागा ने कोई लाभ नही उठाया । विपत्ति म पडे हुए शत्रु को घेरना सागा जस रणविशारद राजपूत के लिए नीति विरुद्ध काय माना जा सकता है, पर तु एसा न करने से राणा की ही ग्रधिक क्षति हुइ । वह जितनी देर करत रह उतनी ही उनकी बुराई होती जाती थी ग्रौर शत्रु पक्ष धीरे धीरे बलवान होता जा रहा था । इस पर भी यदि सागा की भाति उसकी सना के हृदय म भी स्वदेश प्रेम ग्रौर वीर प्रेम की भावना होती तो किसी प्रकार की हानि की ग्राशका न थी । सागा न ग्रपने सरदारा का ठीक से पहचाना नही । उसन इस बात पर ध्यान नही दिया कि ये लाग केवल भूमि की ग्रभिलाषा रखन वाल लाभी जीव है । ग्रपन सरदारा तथा सनिको पर विश्वास ही उसक लिए काल रूप सिद्ध हुग्रा । मवाड के इतिहास म लिखा है कि इतन मे ही बाबर का एक दूत स धि का प्रस्ताव लेकर सागा के पास ग्राया । यह तय हुग्रा कि दिल्ली ग्रौर उसके सब परगन बाबर के ग्रधिकार मे बने रहग ग्रौर बयाना क समीप बहने वाली पीली नदी मुगलो ग्रौर मवाड की सीमा मानी जायगी । बाबर न सागा को प्रतिवप कुछ कर देना भी स्वीकार किया । परन्तु बाबर इस विषय म मौन है जबकि भट्ट ग्रन्था म इसका विस्तृत विवरण दिया हुग्रा है । जिस देशद्रोही न यह समझौता[6] नही होन दिया उनका नाम था सलहदी । वह सागा का एक विश्वस्त एव प्रमुख साम त था । राय सीन का सरदार ।

16 माच का भार हात ही राजपूता न तातारिया की सना क मध्य ग्रौर दक्षिण पाश्व पर जोरदार ग्राक्रमण कर दिया ग्रौर कई घटा तक घमासान लडाई

जारी रही । राजपूतो म लगन की कमी नही थी इस बात की पुष्टि वीरगति प्राप्त करन वाल योद्धाग्रो की सूची स हो जाती है । शत्रु की तोपो न राजपूत ग्रश्वारोही सेना का जबरदस्त सहार किया । वह न तो खदको की ग्रार बढ सकी ग्रौर न सुर- प्रदान करने वाली पदाति सेना के पास वापस लौट सकी । युद्ध जब पूरे जोरो पर थ तभी सागा के ग्रग्रभाग का सनापति तु वर राणा सलहदी देशद्रोहिता का परिचय देते हुए ग्रपनी सेना के साथ बाबर की तरफ जा मिला ।[7] पीडा ग्रौर शोक स व्याकुल ग्रौर बुरी तरह स घायल सागा को युद्ध का मदान छोडकर जाना पडा ।[8] उसके ग्रसख्य सरदार मार जा चुके थ । डूगरपुर का रावल उदयसिंह ग्रपन दो सौ सनिको, सलूम्बर का रतनसिंह ग्रपन तीन सौ चूडावता, मारवाड का राठौड राजकुमार रायमल ग्रौर दो विख्यात मडतिया सरदार खेतसिंह ग्रौर रत्नसिंह, सानगरा सरदार रामदास झाला सरदार ग्रोझा परमार गोकुलदास मेवाड क चौहान सरदार मानकचद ग्रौर चद्रभान तथा निम्न श्रेणी क बहुत स राजपूत वीर तथा सरदार युद्ध क्षेत्र म मारे गय । सागा की सहायता को ग्राये दो मुसलमान वीर—मवात क हुमन खाँ ग्रौर इब्राहीम लोदी का एक राजकुमार भी मारा गया । युद्ध भूमि म वीरगति प्राप्त राजपूता क कटे हुए मस्तक एकत्र करके बडे बडे शिखराकार ढेर बनाय गये ग्रौर सामने की पहाडी पर उनकी खोपडियो से एक मीनार बनाई गई । विजय से प्रसन्न बाबर ने इस ग्रवसर पर 'गाजी' की उपाधि धारण की । उसके सभी वशज इस उपाधि को धारण करत रहे ।

सागा मेवात की पहाडिया की ग्रोर चल गय । जात-जात यह निश्चय कर लिया कि विजय प्राप्त किये बिना वह कभी चित्तौड म प्रवश नही करेगा । यदि देश के सौभाग्य स उसका जीवन बचा रहता तो शायद वह ग्रपन वचन का पालन कर लेता । पर तु उसकी पराजय वाला वष ही उसके जीवन का ग्र तिम वष सिद्ध हुग्रा । मेवात की सीमा पर बसवा नामक स्थान पर उसका स्वगवास हो गया ।[9] कहते हैं कि मन्त्रियो ने ही विष देकर उस मार डाला । यह केवल स देह मात्र है । दुराचारी मन्त्रियो न शा ति ग्रौर स्वच्छन्दता को प्राप्त करने की ग्राशा से ही यह कुकृत्य किया था । ऐसा करके उ होने ग्रपनी ज मभूमि क माथे पर जो कलक लगाया, उसे कभी नही भुलाया जा सकगा ।

पूव म बहु विवाह की प्रथा नतिक ग्रौर भौतिक दृष्टि से बुराइयो की उवरा भूमि रही है । इसस राजाग्रो क यहा तो ग्रत्य त ग्रमगल हो जाता है । प्रत्यक रानी की यह इच्छा कि उसका पुत्र ही सिंहासन पर बठ यह स्वाभाविक है । इस इच्छा को पूरा करने म उ हे फिर किसी बात का ध्यान नही रहता, चाहे वह ग्रात्मघातक ही क्या न हो । हम देखते है कि सागा की मृत्यु क बाद उसकी एक रानी न ग्रपन पुत्र को सिंहासन पर बठान क लिय बाबर स ही समझौता करन का निश्चय कर लिया था ग्रौर बदल म बाबर को रणथम्भौर का किला ग्रौर मालवा के सुल्तान का ताज भी

देन का मानस बना लिया था ताकि वास्तविक उत्तराधिकारी सिंहासन पर न बैठ सके।[10] परन्तु बाबर इसके लिये तैयार नहीं हुआ। वह इतनी जल्दी अपने शत्रुओं से दूसरे युद्ध का खतरा मोल लेना नहीं चाहता था।

राणा सांगा मझोले कद का था परन्तु उसमें अपार शारीरिक शक्ति थी। नेत्र बड़े बड़े और शरीर गौरवर्ण था। विभिन्न युद्धों में उसके कई अंग प्रत्यंग जाते रहे थे। एक आंख तो पृथ्वीराज के साथ लड़ाई में जाती रही थी। इब्राहीम लोदी के विरुद्ध लड़े गये युद्ध में उसका एक हाथ कट गया था और एक अन्य युद्ध में तोप का गोला लगने से एक पैर टूट गया था। इसके अलावा उसके शरीर पर हथियारों के अस्सी घाव थे। मालवा के सुलतान को बन्दी बनाकर और रणथम्भौर का किला जीतकर अपूर्व पराक्रम का परिचय दिया था, जिससे उनका यश दूर-दूर फैल गया था। सांगा के सात पुत्र थे। उनमें से दो बड़े तो बचपन में ही गुजर गये थे। तीसरा बेटा उसका उत्तराधिकारी बना।

संवत 1586 (1530 ई) में रतनसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा।[11] उसमें अपनी जाति का गर्व और वीरता विद्यमान थी। अपने पिता की भांति उसने भी राजधानी को छोड़कर बराबर युद्ध क्षेत्र में बने रहने का निश्चय किया था और चित्तौड़ के सिंह द्वार को दिन रात खुले रहने की आज्ञा देकर वह दर्प के साथ कहा करता था कि इसके द्वार तो दिल्ली और माण्डू है। परन्तु अभाग्यवश युवावस्था के प्रारम्भ में ही वह इस लोक से चल बसा। राजपूतों की युवावस्था अत्यन्त ही भयानक होती है। इस आयु में ये लोग अनर्थक लड़ाई झगड़ों में मतवाले होकर अपनी जिन्दगी को गवां बैठते हैं। राणा रतनसिंह का प्राण भी इसी कारण गया था। उसने आमेर के राजा पृथ्वीराज की पुत्री से चोरी छिपे विवाह किया था।[12] राजा पृथ्वीराज को इसकी जानकारी भी न थी। बून्दी का हाड़ावंशीय राजा सूरजमल भी इस सत्य से अपरिचित था। उसने आमेर की उस राजकन्या से विवाह कर लिया और उसे अपने साथ बून्दी ले गया। उस राजकन्या ने भी शर्म के मारे अपने पिछले विवाह के बारे में किसी से कुछ न कहा। यह भी संयोग ही था कि राणा रत्नसिंह राजा सूरजमल के बहनोई थे। जब रत्नसिंह को इस विवाह की जानकारी मिली तो उसको गहरा आघात पहुंचा और उसने इसका बदला लेने का निश्चय कर लिया। अहेरिया उत्सव (वासंती मृगया) के आते ही राणा अपने सरदारों के साथ शिकार खेलने के लिये जंगल की तरफ चल पड़े। सूरजमल भी इस अवसर पर उसके साथ था। बून्दी के हाड़ा लोग मेवाड़ की पूर्वी पार्श्व की पहाड़ियों के भीतर रहते थे और बसे वे मेवाड़ के अधीन नहीं थे परन्तु वे लोग मेवाड़ के राणाओं का आदर करते थे। गोरी के विरुद्ध लड़े गये युद्ध के दिनों से ही बून्दी के हाड़ा मेवाड़ के लिये प्राणपण से युद्ध करते आये थे। शिकार के समय सूरजमल और राणा के अलावा अन्य सभी लोग काफी पीछे रह गये। अवसर समझकर राणा ने अकस्मात सूरजमल पर तलवार का भरपूर प्रहार किया। वह

घोड़े से गिर पडा। राणा ने उसे मरा हुआ समझकर भागने का प्रयास किया। परन्तु सूरजमल के ललकारने पर वह वापस लौटा और इस बार सूरजमल ने उसे मौत के घाट उतार दिया। राणा की कुबुद्धि से बूंदी के साथ मेवाड का जो वैरभाव उत्पन्न हुआ उससे कुछ दिनो तक दोनो राज्यो का मैत्री बंधन कुछ ढीला पड गया।

राणा की अकाल मृत्यु के बाद संवत 1591 (1535 ई) में विक्रमाजीत चित्तौड के सिंहासन पर बैठा। विक्रमाजीत में एक भी राज्योचित गुण नहीं था। उसने अपने बडे भाई के गुणो को छोडकर उसके अवगुणो को ग्रहण किया। बडे भाई की ढिठाई तेजस्विता और अपरिणामदर्शिता उसके चरित्र में पूरी तरह से विद्यमान थी। इसके अतिरिक्त वह क्षमाहीन और प्रतिहिंसा में विश्वास रखता था। इन सबके परिणामस्वरूप मेवाड के सभी सरदार उससे अप्रसन्न हो गये। उनकी अप्रसन्नता का एक और कारण भी था। विक्रमाजीत अपना अधिकाश समय पहलवानो की कुश्तियाँ और कसरत देखने मे बिताता था और उन्हे तरह तरह के पदो पर प्रतिष्ठित करता रहता था। राजपूत सवारो की अपेक्षा पदाति सैनिको को महत्त्व दिया जाने लगा। शायद उसने यह नई नीति मुसलमानो से सीखी हो। जब से तोपो का उपयोग बढा तबसे ही मुसलमानो में पैदल सेना का महत्व बढा था। परन्तु राजपूत लोगो ने अभी तक अपनी पुरानी रीति को नहीं छोडा था। राणा की नई नीति से सरदारो के मन से राणा के प्रति सारी प्रीति और ममता जाती रही। शासन अव्यवस्थित हो गया और पीडित प्रजा कातर भाव से कहने लगी कि फिर से 'पापाबाई का राज' आ गया है। पहाडो के रहने वाले असभ्य लोगो के धावो से जन धन की रक्षा करना भी कठिन हो गया। जब राणा ने अपने सरदारो को उनका दमन करने के लिये कहा तो उन्होने एक स्वर से उत्तर दिया कि 'अपने पायक (पदाति) लोगो को भेजें।'

गुजरात के सुल्तान बहादुर ने राजपूतो की इस आपसी फूट को देखकर लाभ उठाने तथा अपने एक पूर्वाधिकारी मुज्जफर की पराजय और चित्तौड में बन्दी बनाकर रखे गये अपमान का बदला चुकाने का अच्छा अवसर देखा। उसने मालवा से सहायता प्राप्त कर राणा के विरुद्ध चढाई कर दी। राणा इस समय बूंदी के अन्तर्गत लोइचा नामक स्थान पर पडाव डाले हुए था। यद्यपि इस अवसर पर विक्रमाजीत के पास पर्याप्त सैनिक नहीं थे फिर भी अपने कुल के अनुसार बहादुरी के साथ बहादुर का सामना किया परन्तु राणा की वेतन भोगी पदाति सेना शत्रु का सफलतापूर्वक सामना न कर पाई और राणा विपत्ति में फंस गये। इस नाजुक अवसर पर मेवाडी सरदार राणा सांगा के छोटे पुत्र उदयसिंह चित्तौड की रक्षा के लिये चल गये। विक्रमाजीत को अपने कर्मों का फल मिल गया।

चित्तौड के नाम की अपनी एक अलग ही महिमा है। प्राचीनकाल से ही इसको अपने रक्षक उपलब्ध होते रहे हैं। अब जब फिर से बर्बर शत्रु ने आक्रमण किया

तो मनु भाव को छोडकर अगणित राजपूत सरदार उसकी रक्षा को आ जुटे। सूरजमल के वशज अपनी नई राजधानी देवला का छोडकर अपने पूवजो के वास स्थान की रक्षा के लिय चला आया। इसी प्रकार, बूदी का राजकुमार अपने पाच सौ हाडाओ और सोनगरे तथा आबू और जालौर के देवडे तथा अन्य राजपूत राजा लोग भी अपने-अपने सनिक दस्ता के साथ आ पहुचे। मध्य भारत के मुस्लिम सुल्ताना द्वारा इस बार जोरदार प्रयास किया गया था और इस बार व अपने साथ एक यूरोपियन तोपची को भी ले आय थ। भट्ट ग्र था म इस तोपची का फिरगीयान का लाब्रीखा" कहकर पुकारा गया है और इसी के कौशल की सहायता से बहादुर चित्तौड का विध्वस करने म सफल रहा था। चतुर तापची लाब्रीखा न बीका पहाडी के नीचे एक बडी सुरग खोदी और उसम बारूद भरकर आग लगा दी जिससे दुग की 45 हाथ दीवार एक साथ उड गई। उस स्थान पर तनात हाडा राजकुमार अपन पाच सौ सनिका सहित मारा गया। टूटी हुई दीवार से यवन सना ने दुग मे प्रवेश करन का प्रयास किया पर तु राव दुर्गा न चू डावत सरदार सत्ता और दूदा की सहायता से आगे बढती हुई यवन सना का रोके रखा। इसी समय राठौड कुल म उत्पन्न सीसोदिया महारानी जवाहर बाई रणचण्डी की भाति उस स्थान पर आ डटी। पर तु मुट्ठी भर राजपूत वीर कब तक टिक पाते। महारानी सहित सभी राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए। जौहर की तयारी की गई। महारानी कर्णवती 13,000 राजपूत स्त्रियो के साथ उस अग्नि म कूद पडी। राजकुमार उदयसिंह को बू दी के राव सुरतान की देख-रेख म सौप दिया गया। इसके बाद राजपूतो ने दुग का द्वार खोलकर लडते लडते अपने प्राण त्याग दिय।

बहादुर न अपना प्रतिशोध ले लिया। पर तु अपनी विजय का दृश्य देखने जब उसन चित्तौड मे प्रवेश किया तो एक बार तो वह भी सहम गया। चित्तौड के गली कूचो मे स्थान स्थान पर मृतको के हाथ पर सिर और शरीर बिखरे पडे थे जिनसे रुधिर बह रहा था। अगणित अधमरे मनुष्य भयकर कष्ट से छटपटा रहे थ। ख्यात कार के शब्दो म 'चित्तौड का अ तिम दिवस आ पहुचा था।" प्रत्येक कुल ने अपने सरदार और चुन हुए सैनिको को खो दिया था। घेराब दी और अ तिम धावे के दौरान 32,000 राजपूत मारे गये थे। यह चित्तौड का दूसरा शाका था। अर्थात् दूसरी बार चित्तौड का विनाश हुआ था।

बहादुर केवल प द्रह दिन तक ही चित्तौड म रह पाया था कि उसे सूचना मिली कि हुमायू अपनी सेना सहित इसी तरफ बढा चला आ रहा है। यह सुनकर उसन स्वदेश लौटना ही उचित समझा। कहते हैं कि एक पवित्र बधन के अनुरोध से ही मुगल सम्राट हुमायू चित्तौड का उद्धार करने के लिया आया था। उदयसिंह की माता कर्णवती ने हुमायू को अपना धम भाई बनाया था। राजपूत लोग इस पवित्र भ्रातृत्व बधन को राखी बधन' के नाम से पुकारत हैं।

राखी का उत्सव वस तकाल म ही हुग्रा करता है। राजपूत लडकिया इस समय ग्रपन-ग्रपने भाइयो के पास राखी भेजती है। कभी कभी कु ग्रारी लडकियाँ भी राखी भेजा करती हैं पर तु विषम सकट ग्रथवा प्रत्यक्ष प्रयोजन के समय ही वे ऐसा करती हैं। नियत व्यक्ति के पास राखी भेजन के समय राजपूत लडकिया उसको धमभाई के नाम से पुकारा करती है। धमभाई ग्रपनी धम बहिन का मगल साधन करने के लिये ग्रपने प्राण तक उत्सग कर दता है। फिर भी धम भाई ग्रपनी धम बहिन का प्रत्यक्ष दशन नही कर पाता। इस पवित्र राखी को प्राप्त करने के लिये राजा महाराजा भी लल चात रहत है। बादशाह हुमायू ने महारानी कर्णवती की राखी पाकर ग्रपन को कृताथ समझा। उसने ग्रपनी धम बहिन ग्रौर भानजो को विपत्ति से बचाने के लिए बगाल की चढाई को छोड दिया। उसन बहादुर को चित्तौड से निकालकर भगा दिया, माण्डू नगर को जीत लिया क्योकि यहा के बादशाह ने बहादुर को सहयोग दिया था। चित्तौड का उद्धार करक विक्रमाजीत को फिर से सिहासन पर बठाया।[13]

दु ख, कष्ट ग्रौर ग्रनेक पीडाग्रो को सहन करन के बाद विक्रमाजीत को चित्तौड का सिहासन पुन नसीब हुग्रा था, इस पर भी उसके चाल चलन म किसी प्रकार का सुधार न ग्राया। थोडे दिनो के बाद ही वह ग्रपन सरदारो पर पुन ग्रत्या चार करन लगा। जिस करमच द न उसके पिता को विपत्ति के समय मे ग्राश्रय दिया था ग्रौर जो इस समय ग्रपनी ग्रायु के ग्र तिम दिनो मे था, उसी करमच द पर विक्रमाजीत ने भरी सभा म प्रहार किया। यह ग्र याय ग्रौर ग्रपमान देखकर समस्त सरदार ग्रपन-ग्रपन ग्रासन स उठ बठे ग्रौर चू डावत सरदार कानजी ने चिल्लाकर कहा व धु सरदारो ! ग्रब तक तो हम लोग फूल की गध सू घते रह पर तु इस समय उसके फल को चखेग।' इस पर करमच द न कहा "कल ही उस फल का स्वाद मालूम हो जायेगा।" इसके बाद सभी सरदार दरबार से उठकर चले गये।

राजपूत लोग ग्रपन राजा को ग्रपने ग्राराध्य देव के समान मानते हैं। उनके धमग्र थ भी एसा ही कहते है। पर तु इसकी भी एक सीमा है। स्थितिवश इसका ग्रनादर भी हो सकता है। राजा ग्रपन क्त्त यो से च्युत होकर दुराचारी हो जाय तो उस देवता के समान नही पूजा जा सकता। क्रोधित सरदार लोग राजभवन से निकल कर पृथ्वीराज की उपपत्नी के पुत्र बनवीर क पास गय ग्रौर उसे सम्पूण वृत्तान्त समझाकर चित्तौड के सिहासन पर बठने का ग्रनुरोध किया। बनवीर पहल तो इसके लिये तयार न हुग्रा पर तु स्थिति की गम्भीरता तथा सभी सरदारो के ग्राग्रह को ध्यान मे रखते हुए उसन उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ग्रभागे विक्रमाजीत को सिहासन स उतार दिया गया[14] ग्रौर बनवीर को नया राणा घोषित कर दिया गया। सरदार लोग इस समय सागा क ग्रल्पायु पुत्र उदयसिह को सिहासन पर बठान के पक्ष म न थ।

सन्दभ

1 दिल्ली सल्तनत के भग्नावशेषो पर उदित होन वाले राज्यो मे मालवा और गुजरात तथा दक्षिण म बहमनी प्रमुख थे ।

2 खातोली का युद्ध 1517 ई० म लडा गया था । कुछ दण्ड लेकर लोदी राजकुमार का रिहा कर दिया गया था ।

3 उजबेग लोग सकरवर्णी थे । तुक, मुगल और फिनिक—इन कई एक मुसलमान जातियो स इनकी उत्पत्ति हुई है । देखन मे ये लोग तुक से मालूम पडत हैं । पहले साईबेरिया का एक बडा भाग इनके अधिकार म था ।

4 ट्रास आक्सियाना स खदेडे जान के बाद बाबर ने 1405 ई० म काबुल पर अधिकार कर लिया था । 20 अप्रल, 1526 को उसने पानीपत के प्रथम युद्ध म इब्राहीम लोदी को पराजित किया । 27 अप्रल को दिल्ली मे उसक नाम का खुतबा पढा गया था ।

5 टॉड महोदय ने सवत् और ईस्वा सन् म 56 वष का अन्तर मान कर अधिकाश स्थानो पर तिथियो क सम्ब ध मे भूले की है । यहा भी 1528 के स्थान पर 1527 ई० होना चाहिए । खानवा का युद्ध 17 माच, 1527 को लडा गया था । बाबर ने अपनी आत्मकथा म 11 जनवरी लिखा है वह भी गलत है ।

6 भट्ट ग्र थो के अलावा अ य किसी साक्ष्य से समझौता वार्ता की पुष्टि नही होती है ।

7 डा० गोपीनाथ शर्मा सलहदी द्वारा पक्ष परिवतन को सागा की पराजय का मुख्य कारण नही मानते । उनके मतानुसार सलहदी ने युद्ध के अ तिम दौर म पक्ष बदला था । तब तक राजपूता की पराजय निश्चित हो चुकी थी ।

8 एक तीर लगने स सागा मूछित हो गया था । आमर के पृथ्वीराज, जोधपुर के मालदेव और सिरोही के अखैराज की देख रेख म उसे बसवा ले जाया गया था ।

9 जब सागा को बाबर द्वारा च देरी पर आक्रमण की सूचना मिली तो वह सेना सहित मेदिनीराय की सहायता के लिय चल पडा । कालपी क निकट ईरिच नामक स्थान पर 30 जनवरी, 1528 को उसका स्वगवास हो गया ।

10 सागा की हाडी रानी कमवती ने अपने पुत्र विक्रमादित्य (टॉड का विक्रमाजीत) का सिहासन पर बठाने के लिये बाबर के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा था ।

11 रत्नसिह 1528 ई० म सिहासन पर बठा था न कि 1530 ई० म, जसा कि टाड साहब ने लिखा है ।

12 इस विवाह के बारे मे भिन्न भिन्न मत है । अधिकाश विद्वान् इसकी सत्यता मे विश्वास नही करते हैं ।

13 हुमायू के बारे मे जो कुछ लिखा गया है वह सत्य नही है । उसन राजपूतो की किसी प्रकार से सहायता न की थी ।

14 अधिकाश विद्वानो के अनुसार बनवीर की साजिश से विक्रमादित्य की हत्या कर दी गई थी ।

अध्याय 19

महाराणा उदयसिंह

कुछ घंटो तक सिंहासन पर बैठने के बाद, बनवीर के हृदय का सम्पूर्ण भाव एक साथ बदल गया। यद्यपि सरदारो ने विक्रमाजीत को सिंहासन से उतार कर बनवीर को सिंहासन पर बठाया था, परन्तु उसे हमेशा के लिए सिंहासन नहीं सौंपा गया था। ऐसा ज्ञात होता है कि उदयसिंह के वयस्क होने तक बनवीर को राज्य दिया गया था। परन्तु बनवीर ने हमेशा के लिए सिंहासन पर अपना अधिकार बनाये रखने का निश्चय कर लिया। उसके इस निश्चय के मार्ग में पदच्युत राणा विक्रमाजीत और सांगा का 6 वर्षीय पुत्र उदयसिंह अवरोध स्वरूप विद्यमान थे। बनवीर ने अपने हाथ से इनको अपने मार्ग से हटाने का निश्चय कर लिया और अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक रात, उदय सिंह भोजन करने के बाद सो गया। उसकी धाय बिस्तरे पर बैठी हुई उसकी सेवा करने लगी। कुछ समय बाद रावला (रनिवास) से घोर आर्त्तनाद और रोने की आवाज सुनाई पडी। रात्रि भोजन के बर्तनों को उठाने वाला बारी (नाई) भय से कांपता हुआ धाय के पास आया और कहा कि बनवीर ने राणा विक्रमाजीत की हत्या कर दी है। धाय समझ गई कि एक हत्या दूसरी हत्या की शुरूआत है। उसने फलो का एक खाली टोकरा उठाया और उसमे राजकुमार उदयसिंह को सुलाकर उसके ऊपर वृक्षो के पत्ते आदि रखकर अच्छी तरह से ढक दिया और नाई को कहा कि वह तत्काल इस टोकरे को दुर्ग के बाहर ले जाय। राजकुमार के स्थान पर अपने छोटे पुत्र को सुलाकर धाय लौट ही रही थी कि बनवीर राजकुमार की खोज में वहां आ पहुंचा। भय के मारे धाय कुछ भी न बोल पाई और अपने सोते हुए पुत्र की ओर संकेत कर दिया। उसने अपनी आंखो के सामने घातक लोह को अपने पुत्र के सीने में घुसते तथा छटपटाते हुए प्राण त्यागते देखा परन्तु वह जी भर कर रो भी न सकी। चुपचाप अपने पुत्र का संस्कार करके आंसू बहाती हुई दुर्ग के बाहर निकल गई। खीची राजपूत कुल में उत्पन्न इस धाय का नाम पन्ना बाई था।

चित्तौड के पश्चिम की ओर बेडस नदी के पास विश्वासपात्र बारी धाय की प्रतीक्षा कर रहा था। सौभाग्यवश चित्तौड के भीतर राजकुमार की खोज नहीं

गुली । पन्ना धाय उन दोनो को लेकर देवला के सिहराव के पास गई । सिहराव का पिता वाघजी चित्तौड की रक्षा करते हुए मारा गया था । परन्तु वनवीर के भय से उसने आश्रय देने से इन्कार कर दिया । तब वे डूगरपुर के रावल आसकरण के पास पहुँचे परन्तु यहा भी निराश होना पडा । तब वह कुछ भीलो के सरक्षण म अरावली के दुगम रास्तो को तय करके कमलमीर पहुची ।[1] वहा इस समय दीसा वणिक वशी आशाशाह नामक व्यक्ति का अधिकार था । पन्ना धाय ने सारा वृत्तान्त सुनाने के बाद बालक राजकुमार को आश्रय देने की प्राथना की । आशाशाह पहले तो तयार नही हुआ परन्तु अपनी माता के उपदेश सुनकर वह उदय सिंह को आश्रय देने क लिए सहमत हो गया । आशाशाह ने उसको अपना भतीजा कह कर प्रसिद्ध किया । धाय वापस लौट गई ।

आशाशाह के साथ रहते हुए उदयसिंह को सात वष बीत गये । लोगो के मन मे अनेक प्रकार के सन्देह उठने लगे क्योकि उसका स्वभाव और व्यवहार वणिको के समान नही था । अन्त म सत्य प्रकट हो ही गया । जालोर का सोनगरा सरदार किसी काम मे आशाशाह से मिलने आया । शाहजी ने उसकी देखभाल का काम उदयसिंह को सौंपा । उसने इतनी उत्तमता के साथ इस काय को पूरा किया कि सोनगरा सरदार को विश्वास हो गया कि यह किशोर शाह का भतीजा नही हो सकता । धीरे धीरे यह समाचार चारो तरफ फल गया । मेवाड के सरदार ही नही अपितु आस पास के अन्य राजा एव सामन्त भी राणा सागा के पुत्र उदयसिंह का अभिवादन करने कमलमीर आने लगे । सलूम्बर सरदार सहीदास केलवा सरदार जग्गी, चूडावत गोरखनाथ सागा कोठारिया और बेदला के चौहान सरदार बिजोली का परमार सरदार साचौर का राजा पृथ्वीराज और जेतावत लूनकरण आदि सभी लोग उदयसिंह को देखने कमलमीर आये । उन लोगो ने उस अवसर पर धाय पन्ना और उस बारी को भी बुलवा भेजा । उन दोनो ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर सभी के सन्देहो का दूर कर दिया । उसी दिन कमलमीर म एक बड़े दरबार का आयोजन किया गया । आशाशाह ने राजकुमार को मेवाड के वृद्ध चौहान सामन्त के हाथ म सौंप दिया । चौहान सरदार को राजकुमार के अज्ञातवासी जीवन के बारे म शुरू से ही जानकारी थी । अन्य सरदारो का सन्देह दूर करने के लिये उसने एक ही थाल म उदयसिंह के साथ बठकर भोजन किया । सोनगरे सरदार ने अपनी पुत्री का विवाह उदयसिंह के साथ करके उसकी स्थिति को और भी अधिक सुदृढ कर दिया । कमलमीर के दुग म उदयसिंह ने सभी की उपस्थिति मे चित्तौड के राजतिलक को स्वीकार किया ।

वनवीर के पास भी इस घटना के समाचार पहुच गये जिसे सुनकर वह हताश हो गया । क्योकि उसने तो अपने को निष्कटक समझकर मनमाने ढग से शासन करना शुरू कर दिया था । उसको राजमद इतना चढ गया था कि अपने हीन वश

को भूल कर चित्तौड के वधानिक राजाओ के अनुकूल सम्मान का वलपूवक भोग करने लगा। एक वार चूण्डा के किसी तेजस्वी वशज ने उसका 'दौना" अर्थात् उच्छिष्ट प्रसाद स्वीकार नही किया तो बनवीर ने उसका घोर अपमान किया था। दौना (दूना) राजा का उच्छिष्ट प्रसाद होता है जिसको पाने के लिये कितने ही सरदार लालायित रहते हैं परन्तु राणा के सग भोजन करने वाले सरदारो म से किसी एक को कभी कभी दौना प्राप्त हो पाता है। जिस सरदार पर इस प्रकार की मेहरबानी होती है रसोइय के हाथ उस सरदार के यहाँ यह दौना" भिजवाया जाता है। पूर्वोक्त चूण्डावत सरदार को जब दौना भिजवाया गया तो उसने उसे लौटाते हुए कहा यदि बप्पा रावल के यथाथ वशधर से मिलता तो वास्तव म यह गौरव का विषय होता परन्तु शीतलसेनी दासी के पुत्र के हाथ से उसका ग्रहण करना महाघोर अपमान के सिवा और क्या हो सकता है।' इस घटना से सभी सरदार अप्रसन्न हो उठे और वे उदयसिंह का अभिषेक करने के लिये कमलमीर की तरफ बढ चले। माग मे उन्ह 500 घोडे और दस हजार बल जिन पर सामान लदा हुआ था, आते हुए दिखाई दिये। जब सरदारो को मालूम हुआ कि यह सब सामान बनवीर की पुत्री के लिये कच्छ देश से आ रहा है, तो सरदारो ने रक्षको पर आक्रमण कर सारा सामान लूट लिया और लूटा हुआ सामान सोनगरे सरदार की बेटी और उदयसिंह के विवाह म काम मे लाया गया। यह विवाह जालौर के अन्तगत बाली नामक स्थान पर हुआ। लगभग सभी सरदार उपस्थित हुए। केवल दो सरदार नही आये एक था माहोली का सोलकी और दूसरा था मालोजी। उनकी अनुपस्थिति को राणा का अपमान समझकर सरदारो ने उन पर आक्रमण करने का निश्चय किया। भयभीत दोनो सरदार बनवीर की शरण मे जा पहुचे। बनवीर सेना सहित उनकी रक्षा के लिए आगे बढा। परन्तु मालो जी मारा गया और सोलकी सरदार ने उदयसिंह की अधीनता स्वीकार कर अपने प्राण बचाये। बनवीर के अधिकाश साथी और बधु उसका साथ छोडकर चलते बने। फिर भी उसने अन्तिम क्षण तक राजधानी म रहकर उदयसिंह का मुकाबला करने का निश्चय किया। परन्तु उसके मन्त्री न नये सनिको की भर्ती के नाम पर उदयसिंह के एक हजार सनिको को किले म नियुक्त कर दिया। थोडे समय बाद ही उन्होने द्वार रक्षको पर आक्रमण करके किले के शिखर पर उदयसिंह की विजय पताका को गाड दिया। सारा नगर उदयसिंह की जय जयकार से गूँज उठा। बनवीर पर किसी न किसी प्रकार का अत्याचार नही किया और वह अपने परिवार तथा धनसम्पत्ति के साथ दक्षिण की तरफ चला गया। उसकी सतति से ही नागपुर के भोसले वश की उत्पत्ति हुई।[2]

सवत् 1597 (1541 42ई०) म राणा उदयसिंह सिंहासन पर बठे।[3] राजकुमार की वापसी पर घर घर म उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर जो गीत गाये गये थे वे आज भी भगवती ईशानी के वार्षिकोत्सव के समय गाये जाते हैं। परन्तु

राणा सागा की मृत्यु क बाद मवाड के जो दुर्दिन ग्राये जिन्ह राणा रत्ना की ढिठाई ग्रौर विक्रमाजीत के दुर्व्यवहार ग्रौर बनवीर की ग्रयोग्यता न ग्रौर ग्रधकारमय बना दिया था उनका ग्र त नही हुग्रा। उदयसिंह की कापुरुषता न रही सही कमी को भी पूरा कर दिया। मवाड क इतिहास म एसा ग्रवसर कभी न ग्राया कि एक जारज क पीछे एक कापुरुष राजा क हाथ म सीसोदिया कुल का भार सौंपा गया हो। यदि रत्ना ग्रार विक्रमाजीत क दोपा क साथ उसकी तुलना करें तो उनक दाप भी गुणो क समान जान पडग। इस ग्रयोग्यता से मवाड का जातीय जीवन सदा क लिए नष्ट हो गया। जो मेवाड ग्रब तक ग्रजेय समझा जाता था, उसका वह गौरव जाता रहा।

राजस्थान क ग्र तिम महाकवि च द्र न कहा है स्त्री ग्रथवा व्यवहार को न जानन वाला वालक जिस देश म राजा होता है उस देश का दुर्भाग्य निकट ही होता है। ग्रभाग्यवश मवाड म दोनो वातें एक साथ हुईं। उदयसिंह म ग्रपन प्रतापी कुल का एक ग्रश भी नही था। यदि वह हुमायू के समय ग्रथवा पठाना के राष्ट्र विप्लव के समय म ग्रपना जीवन व्यतीत कर रहा होता तो मेवाड की कुछ भी हानि नही हाती पर तु सम्पूण राजस्थान क दुर्भाग्य से ऐसा नही हुग्रा। मरुभूमि के उस पार एक राजकुमार का ज म हो चुका था जिसन हि दू जाति को ऐसी जजीरें पहना दी जो सदिया तक काटी नही जा सकी। यद्यपि समय चक्र से वह जजीर ग्राज बहुत ही कमजोर हा गई है पर तु उसके घोर मघपण से हि दू जाति क सम्पूण शरीर म ग्रगणित घाव हो गय हैं।

जिस वप कमलमीर क मध मडित महलो म उदयसिंह क सम्मान म गीत गाय गये थ उसी वप म ग्रमरकोट की दीवारो स एक एस शिशु के ज म का समाचार मिला जो हि दुस्तान क महानतम सम्राटो की पक्ति म बैठन वाला था। ग्रमरकाट वही स्थान है जिस सिक दर ने पुराने शोदगी लोगो का निवास स्थान कहा है यही पर ग्रकवर न प्रकाश की पहली किरण देखी थी। उसका पिता हुमायू ग्रपना राज्य खोकर इधर उधर भटक रहा था ग्रौर उसका पुन प्राप्त करने की कोई भी ग्राशा नही थी। सिंहासन पर बठन क बाद के दस वप हुमायू न ग्रपने भाइयो के साथ विवाद म व्यतीत कर दिये। पुरानी परम्परा के ग्रनुसार सभी भाई पृथक पृथक राज्यो के शासक बना दिय गय थ पर तु इमसे व सतुष्ट नही हुए ग्रौर हुमायू के हाथ से दिल्ली का सिंहासन छीन लेने का प्रयास करत रह। उनकी स्वार्थी महत्त्वाकाक्षा का उन्ह हाथा हाथ फल मिल गया। शरशाह न चगताई वश को हटाकर ग्रपन पठानवश की सत्ता स्थापित कर दी।

कनोज क युद्ध स्थल जहाँ हुमायू ग्रपना ताज खो ग्राया था क बाद उसके शत्रुग्रा न उसको चन से नही रहने दिया ग्रौर उस ग्रागरा स लाहौर की तरफ खदेड

दिया। वहां से वह सिंध की तरफ गया। मार्ग में उसने अधिक कष्ट उठाये। फिर भी वह निरुत्साह नहीं हुआ। उसने मुल्तान से लेकर समुद्र के किनारे तक के सिंधु वर्ती सब जिलों को जीतने का प्रयत्न किया पर वह विफल रहा। उसके कुछ साथी और सरदार भी विद्रोही हो गये। उसने जैसलमेर और जोधपुर से सहायता की प्रार्थना की परन्तु किसी ने ध्यान नहीं दिया। यद्यपि भाटी और राठौड़ राजाओं से उसे सहायता न मिली परन्तु जर्मानि मुगल इतिहासकारों ने लिखा है कि जोधपुर के मालदेव ने विपत्ति में पड़े हुमायूं को कैद करने का प्रयास किया था।[4] यदि यह सत्य है तो हम मालदेव के भ्रष्ट राजपूती चरित्र की निंदा करनी चाहिए। स्थिति का भार कर हुमायूं ने पुनः मरुभूमि में प्रवेश किया और अपार कष्ट उठाये। हुमायूं को इस दुर्दशा में अमरकोट के सोढ़ा राजा ने उसको अपने यहां आश्रय दिया।[5] यहीं अकबर का जन्म हुआ।

हुमायूं ने अपने पिता बाबर के समय में विपत्ति के जिस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी उसी में अकबर को भी शिक्षित किया। भारत से भागने के बाद के बारह वर्षों तक वह ईरान, कंधार और अपने पैतृक राज्य के मध्य भटकता रहा। इस अवधि में भारत में पठानों का शासन ख़ास मुगलों में एक के बाद एक करके 6 बादशाह सिंहासन पर बैठे। उनमें से अंतिम सिकन्दर अपने भाइयों के साथ संघर्ष में लिप्त था। हुमायूं जो इस समय काश्मीर के निकट था ने इस स्थिति का अपना प्रयोजन सिद्ध करने का उचित अवसर समझा। उसने सिंधु को पार किया और सरहिंद तक बढ़ आया, जहां पठान बादशाह भी एक शक्तिशाली सेना के साथ बढ़ आया था। हुमायूं ने अपने किशोर पुत्र अकबर को सेनापति बनाकर युद्ध शुरू किया। अकबर उस समय केवल बारह वर्ष का ही था परन्तु उसकी वीरता और तेजस्विता से मुगल यह युद्ध जीत गये। इस गौरव से उसके होनहार यशोगौरव की सूचना हुई। इसके बाद हुमायूं ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। परन्तु हुमायूं अधिक दिन तक उसे नहीं भोग सका। एक दिन पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिर कर वह परलोक सिधार गया।

सिंहासन पर बैठने के कुछ ही दिन बाद दिल्ली और आगरा अकबर के हाथ से निकल गये और केवल पंजाब का थोड़ा सा क्षेत्र ही उसके अधिकार में रह गया। परन्तु उसके अभिभावक बैराम खां की वीरता तथा चतुराई से उसे शीघ्र ही अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त हो गया। कालपी, चंदेरी, कालिंजर, सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड और मालवा कुछ दिनों बाद ही उसके अधिकार में आ गये। अठारह वर्ष की आयु में अकबर ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसने शीघ्र ही राजपूतों की तरफ ध्यान दिया और सबसे पहले राठौड़ों की तरफ बढ़ा और मारवाड़ के दूसरे नम्बर के नगर मेड़ता पर अधिकार कर लिया। आमेर के राजा भारमल ने भावी का अनुमान कर अपने पुत्र भगवानदास[6] के साथ अकबर का सामंत बन गया और

अपनी पुत्री का चगताई के साथ विवाह कर दिया और साम्राज्य की जागीर के रूप म अपने राज्य पर शासन करने लगा। पर तु उजबेग सरदारो के विद्राह और भूतपूव राजाओ द्वारा अपन खोय हुए राज्यो की पुन चेष्टा के कारण अकबर को कुछ समय के लिये राजस्थान की विजय को स्थगित करना पडा। परन्तु इन समस्याओ से मुक्त होते ही उसन चित्तौड पर चढाई कर दी। मालवा के बहादुर[7] और नरवर क भूतपूव राजा को राणा द्वारा आश्रय देना, इस आक्रमण का कारण बन गया था।

अकबर और उदयसिंह एक ही उम्र मे सिंहासन पर बठे थे। जिस दिन अकबर सिंहासन पर बठा था उसके माग मे बहुत से विघ्न थे और उसका भविष्य भी अधिक उज्ज्वल नजर नही आ रहा था। पर तु भाग्यवश उसे बराम खाँ और विद्वान अब्बुल फजल जसे चतुर मत्री और सलाहकार उपलब्ध हो गये। अकबर के साथ उदयसिंह की तुलना नही की जा सकती। ज म से ही प्रतिकूल परिस्थितियो म पलकर अकबर ने मानव प्रकृति के गूढ तत्व का जो ज्ञान प्राप्त किया था वसा उदय सिंह को प्राप्त नही हो पाया। उदयसिंह बचपन से ही एका त मे प्रतिपालित हुआ था और उसे पहले तो कमलमीर की पहाडियो और बाद मे राजमहलो की शोभा निहारने के अलावा बाह्य दुनियाँ के बारे म कोई विशेष जानकारी नही मिल पाई थी। अत ससार नीति का कोई सूत्र ही उदयसिंह को ज्ञात न था।

अकबर मुगलो के साम्राज्य का वास्तविक सस्थापक था। राजपूतो की स्वाधीनता को जीतन वाला प्रथम सफल विजेता था। अपनी बुद्धिमता और पराक्रम के द्वारा वह उ हे जजीरो म बाधने मे सफल रहा। हम नही जानते कि कौनसे गुण के प्रभाव से और कौनसे महामत्र के बल से राजपूतो ने उसकी पहिराई हुई कठोर जजीर का बार बार चुम्बन किया था। वास्तव म अकबर न केवल एक चतुर शासक ही था अपितु दूसरो के हृदयो पर अधिकार करन का मत्र भी जानता था। उसन जिन शासको के राज्यो को अपन साम्राज्य म मिलाया उ ही को अपन अधीन रखत हुए उ हे शासन करन का अधिकार देकर उनके हृदयो को भी जीत लिया था। इसीलिए उसके द्वारा पराजित हि दू राजाओ ने भी उसको "जगद्गुरु" "दिल्लीश्वर' कहकर पुकारा। पर तु उन हि दू विद्वेषी कठोर हृदय वाले शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन जस बादशाहो की पक्ति म भी रखा जाता है। जवानी के भयकर मद म मतवाले होकर अकबर न कठोर दुराकाक्षा वृत्ति को तप्त करन के लिये हि दुओ के हृदय म जो कठोर घाव कर दिये थे, वृद्धावस्था म उसन उन सब घावो को चगा करके करोडो भारत वासियो का आशीर्वाद प्राप्त किया था।

फरिश्ता न चित्तौड के विरुद्ध एक ही आक्रमण और वह भी उस पर अकबर के अधिकार का उल्लेख किया है। पर तु नट्ट ग थो म इससे पूव के एक और अभियान का उल्लेख किया गया है जब अकबर को विवश होकर वापस लौटना पडा था।

अपन घोड स गिर कर मर गया । इस समय तक राजपूतो की शक्ति काफी कमजोर पड गई थी और उ होन चित्तौड क बचन की आशा छोड दी । मुगलो क तेज आक्रमण को रोकने क लिए आठ हजार राजपूत एक साथ आगे बढे । दूसरी तरफ स्त्रियो न जौहर की तयारी की । आखिरी युद्ध म हजारो राजपूत मार गय और चित्तौड क अपमानजनक समपरण का दखन क लिय थोडे स लोग ही जीवित बच । अकबर न चित्तौड म प्रवश किया जबकि मानवता क इस सरक्षक की विजयतृष्णा को तृप्त करन म बत्तीस हजार लोगो को अपन प्राणो से हाथ धोना पडा । घर और बाहर क सभी कुलो क सरदार मार गय और राणा परिवार क निकट क 17 000 लोग अपने कर्त्तव्य का पालन करत हुए वीरगति को प्राप्त हुय । कवल ग्वालियर का तोवर राजा ही एक अ य होनहार को देखन क लिय जीवित बच गया था । नौ रानियाँ पाच राजकुमारियाँ, दो बच्चे और समस्त सरदार कुल की स्त्रिया ने जौहर की ज्वाला म अपन प्राण उत्सग किय । उस भयकर दिन म चित्तौड का जो सवनाश हुआ था वह भूलन योग्य नही है । जब तक ससार म हि दू नाम अचल रहगा तब तक कोई इस सत्यानाश की कहानी को नही भूलगा । विजय प्राप्ति के बाद अकबर न चित्तौड के अनक भव्य भवनो और मदिरो को भूमिगत करवा दिया और सिहद्वार के किवाडो को खुलवाकर अपन साथ ले गया ।

अकबर न अपन हाथो स जयमल को मारने की बात कही है । उसन जिस ब दूक स जयमल को गोली मारी थी उसका नाम 'सग्राम' रखा । अब्बुल फजल और जहाँगीर दोनो न इस सत्य को लिपिबद्ध किया है । यद्यपि अकबर ने जयमल का वध किया था पर तु उसमे अनेक गुण भी थ । जयमल और पत्ता की वीरता को अचल रखन क लिये उसन दिल्ली के किल के सिहद्वार पर एक ऊँचे चबूतरे पर उन दोनो की पाषाण मूर्तियाँ स्थापित की थी । बर्नियर जब भारत आया तब तक वे मूर्तियाँ वहाँ थी ।

जब कार्थेज वालो ने केना का युद्ध जीता था तो उ होन समरभूमि म प्राण त्यागने वाल रोमनो की अगुठियो को तोलकर अपनी विजय का परिणाम आका था । अकबर न वीरगति प्राप्त राजपूत सनिको क यज्ञोपवीतो (जनऊ) को तोलकर अपनी सफलता का अकन किया । उन सबका वजन 74½ मन निकला ।[9]

उदयसिह न चित्तौड छोडने के बाद राजपिप्पली वन म गोहिलो के यहाँ आश्रय लिया था । यहा से वह अरावली की पहाडियो म स्थित गिरवा म जा बसा । चित्तौड विजय के पूव बप्पा रावल न भी इसी क्षेत्र म अपना अज्ञातवास किया था । चित्तौड क ध्वस होने के कुछ वर्षों पूव उदयसिह ने यहाँ पर एक झील बनवाई थी जो उसी क नाम पर 'उदयसागर' कहलाई । इसी क्षेत्र म बहन वाली एक नदी को रोक कर उदयसिह न एक विशाल बाध बनवाया और पहाडी के ऊचे शिखर पर

"नवचौकी" नामक एक छोटा सा महल बनवाया। शीघ्र ही उस महल के चारो तरफ अनेक भवन बन गये और धीरे धीरे वहाँ एक पूरा नगर बस गया जो उदयपुर के नाम से विख्यात हुआ। यही नगर फिर मेवाड की राजधानी बन गया।

चित्तौड को खोने के बाद उदयसिंह केवल चार वर्ष तक ही जीवित रहा और 42 वर्ष की अल्पायु में ही गोगुण्डा नामक स्थान पर उसका स्वर्गवास हो गया।[10] उदयसिंह अपने पीछे 25 पुत्र छोड गया। ये सभी राणावत के नाम से विख्यात हुए। राणावत पुरावत और कानावत—ये सभी उन्ही की शाखायें हैं। मरने से पहले उदयसिंह अपने पुत्रो के मध्य विषम झगडे का बीज बो गया। उसने परम्परागत उत्तराधिकार नियम का उल्लंघन कर अपने छोटे परन्तु प्रिय पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। मेवाड में मृत राणा के अंतिम संस्कार और नये राणा के अभिषेक में विशेष अन्तर नहीं रहता। एक तरफ परिवार के लोग अपने कुल पुरोहित के घर जाकर शोक मनाते हैं और दूसरी तरफ नये राणा के अभिषेक के लिये राजभवन को सजाना शुरू कर दिया जाता है। फाल्गुण मास की बसंत पूर्णिमा के दिन जगमाल के सभी भाई तो अपने पिता की अन्त्येष्टि करने श्मशान गये हुए थे और उधर जगमाल को सिंहासन पर बैठा दिया गया। परन्तु उसके भाग्य में राजसुख नहीं लिखा था। श्मशान में एकत्र सभी सरदार उत्तराधिकार के विषय में गम्भीर परामर्श करने में लगे हुए थे। उदयसिंह ने जालौर के सोनगरा सरदार की पुत्री से विवाह किया था अतः जालौर का सरदार अपनी पुत्री के पुत्र को सिंहासन पर बैठाना चाहता था क्योंकि वह सबसे बड़ा था। अतः उसने मेवाड के प्रमुख सरदार चूण्डावत कृष्णजी से पूछा कि आपने इस अन्याय के लिए कैसे स्वीकृति प्रदान की? चूण्डावत सरदार ने उत्तर दिया कि जब रोगी अन्त समय में थोडा सा दूध मांगे तो उसको कैसे मना किया जा सकता है। परन्तु आपके भानजे को ही मैंने मनोनीत किया है और मैं प्रताप के साथ रहूँगा।

जगमल ने रसोडा में प्रवेश कर राणा के लिए निर्धारित ऊंचे आसन पर अधिकार जमाया और उधर प्रतापसिंह मेवाड राज्य को छोडकर जाने के लिए अपना घोडा तैयार करने लगे। तभी ग्वालियर के भूतपूर्व राजा के साथ चूण्डावत कृष्णजी ने रसोडे में प्रवेश किया और दोनों ने ही जगमल की बांह पकडकर उसे निचले आसन पर बैठाते हुए कहा कि महाराज, आपको कुछ भ्रम हो गया है। इस ऊंचे आसन पर बैठने का अधिकार केवल आपके बडे भाई प्रतापसिंह को ही है। इसके बाद प्रतापसिंह को सिंहासन पर बैठाया गया।[11]

सन्दर्भ

1 कमलमीर को अब कुम्भलगढ के नाम से पुकारा जाता है।

2 नागपुर के भोसलो का आदि पुरुष यही बनवीर था, यह वि विषय है।

3 सन् 1540 ई तक उदयसिंह सम्पूण मेवाड का स्वामी बन चुका था।

4 टॉड का यह कथन केवल मुस्लिम इतिहासकारा के कथन पर आधारित है। मालदेव ने हुमायू को सहायता देने का आश्वासन दिया था परन्तु हुमायू एक वष के विलम्ब के बाद मारवाड म पहुचा। फिर भी, मालदव ने उसको कद करने का प्रयास नही किया था।

5 मोढा लोग परमार वश की एक शाखा के थे।

6 भारमल के बडे लडके का नाम भगवन्तदास था। इस अकबर अपन साथ ही ले गया था। मानसिंह इसी का लडका था। अकबर भगव तदास का बहुत अधिक विश्वास करता था।

7 यह मालवा का भूतपूव सुल्तान बाज बहादुर था।

8 यह सागा चूण्डावत वश के एक सरदार थे और उनके वशज सगावत कहलाते ह।

9 यह मन चार सेर का था, चालीस सेर वाला नही।

10 राणा उदयसिंह का स्वगवास 28 फरवरी 1572 ई को हुआ था।

11 जगमल मेवाड छोडकर अकबर की शरण म चला गया था। अकबर ने पहले उसे जहाजपुर और बाद म आधी सिरोही की जागीर प्रदान की। सिरोही म ही 1583 ई मे दताणी के युद्ध म उसकी मृत्यु हो गई।

अध्याय 20

महाराणा प्रताप

प्रताप ने एक प्रतिष्ठित कुल के मान सम्मान और उसकी उपाधि को प्राप्त किया। परन्तु उसके पास न तो राजधानी थी और न वित्तीय साधन। बार बार की पराजयों ने उसके स्वबन्धुओं और जाति के लोगों को निरुत्साहित कर दिया था। फिर भी उसके पास अपना जातीय स्वाभिमान था। उसने सत्तारूढ होते ही चित्तौड के उद्धार, कुल के सम्मान की पुनर्स्थापना तथा उसकी शक्ति को प्रतिष्ठित करने की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस ध्येय से प्रेरित होकर वह अपने प्रबल शत्रु के विरुद्ध जुट गया। उसने इस बात की चिन्ता नही की कि परिस्थितियाँ उसके कितनी प्रतिकूल है। उसका चतुर विरोधी एक सुनिश्चित नीति के द्वारा उसके ध्येय को परास्त करने में लगा हुआ था। धूर्त मुगल प्रताप के धर्म और रक्त बन्धुओं को ही उसके विरोध में खडा करने में जुटा था। मारवाड, आमेर, बीकानेर और बूंदी के राजा लोग अकबर की सार्वभौम सत्ता के सामने मस्तक झुका चुके थे। इतना ही नही अपितु प्रताप का सगा भाई सागर[1] भी उसका साथ छोडकर शत्रु पक्ष से जा मिला और अपने इस विश्वासघात की कीमत उसे अपने कुल की राजधानी और उपाधि के रूप में प्राप्त हुई।

परन्तु प्रताप इन कठिनाइयों से विचलित होने वाला नही था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह 'माता के पवित्र दूध को कभी कलंकित नही करेगा।' इस प्रतिज्ञा का पालन उसने पूरी तरह से किया। कभी मैदानी प्रदेशों पर धावा मारकर जन स्थानों को उजाडना तो कभी एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर भागना और इस विपत्तिकाल में अपने परिवार का पर्वतीय कन्दमूल फल द्वारा पोषण करना और अपने पुत्र अमर का जगली जानवरों और जगली लोगों के मध्य पालन करना—अत्यन्त कष्टप्रद कार्य था। इन सबके पीछे मूल मन्त्र यही था कि बप्पा रावल का वंशज किसी शत्रु अथवा देशद्रोही के सम्मुख शीश झुकाय—यह असम्भव बात थी। कायरों के योग्य इस पापमय विचार से ही प्रताप का हृदय टुकडे टुकडे हो जाता था। तातार वालों को अपनी बहन बेटी समर्पण कर अनुग्रह प्राप्त करना प्रताप को किसी भी दशा में स्वीकार्य न था।

उस समय मे प्रताप ने जो अदभुत और विस्मयजनक काय किये, वे मेवाड की प्रत्येक उपत्यका म प्रकाशवान होकर विराजमान हैं, प्रत्यक राजपूत के हृदय मे सजीव हैं और उनमे से बहुतो का उल्लेख विजेताओ के इतिहास म भी किया गया है। उन सभी का उल्लेख करना अथवा उसने जो कष्ट उठाये उनका वर्णन करना, वे लोग जिन्होने प्रताप के देश का भ्रमण नही किया और जिन्ह उस भूमि के सरदारो एव सामन्तो से उनके पूवजो का वृत्तान्त सुनने को नही मिला, इन स्मरणीय कार्यों को उपन्यास या कहानी समझेंगे।

प्रताप को अभूतपूव समथन मिला। यद्यपि धन और उज्ज्वल भविष्य न उसके सरदारो को काफी प्रलोभन दिया परन्तु किसी ने भी उसका साथ नही छोडा। जयमल के पुत्रो ने उसके काय के लिये अपना रक्त बहाया पत्ता के वशधरो ने भी ऐसा ही किया और सलम्बर के कुल वालो ने भी चूण्डा की स्वामिभक्ति को जीवित रखा। इनकी वीरता और स्वाथ त्याग का वृत्तान्त मेवाड के इतिहास मे अत्यन्त गौरवमय समझा जाता है।

चित्तौड के विध्वस और उसकी दीन दशा को देखकर भट्ट कवियो ने उसको आभूषण रहित विधवा स्त्री" की उपमा दी है। प्रताप ने अपनी जन्मभूमि की इस दशा को देखकर सब प्रकार के भोग विलास को त्याग दिया भोजन पान के समय काम म लिये जाने वाले सोने चादी के बतनो को त्याग कर वृक्षो के पत्तो को काम म लिया जाने लगा कोमल शय्या को छोड तृण शय्या का उपयोग किया जाने लगा। उसने अकेले ही इस कठिन माग को नही अपनाया अपितु अपने वश वालो के लिये भी इस कठोर नियम का पालन करने के लिये आज्ञा दी थी कि जब तक चित्तौड का उद्धार न हो तब तक सीसोदिया राजपूतो को सभी सुख त्याग देने चाहिए। चित्तौड की मौजूदा दुदशा सभी लोगो के हृदय मे अंकित हो जाय इस दृष्टि से उसने यह आदेश भी दिया कि युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय जो नगाडे सेना के आगे आगे बजाये जाते थे, वे अब सेना के पीछे बजाये जाय। इस आदेश का पालन आज तक किया जा रहा है और युद्ध के नगाडे सेना के पिछले भाग के साथ ही चलते हैं।

प्रताप को प्राय यह कहते सुना गया कि 'यदि उदयसिंह पैदा न होते अथवा सग्रामसिंह और उनके बीच म कोई सीसोदिया कुल मे उत्पन्न न होता तो कोई भी तुर्क राजस्थान पर अपना नियम लागू न कर पाता।" सौ वष के बीच म हिन्दू जाति का एक नया चित्र दिखलाई देता है। गंगा और यमुना का मध्यवर्ती देश अपने विध्वस को भुलाकर एक नवीन बल से बलवान होकर धीरे-धीरे अपना मस्तक उठा रहा था। आमेर और मारवाड इतने बलवान हो गये थे कि अकेले मारवाड ने ही सम्राट शेरशाह के विरुद्ध सघष किया था और चम्बल के दोनो किनारो पर अनेक छोटे-छोटे राज्य बल सग्रह करके उन्नति की ओर बढ़ रहे थे। कमी थी तो केवल एक

सम्ब ध के लिये जो घूम ली वह महत्त्वपूर्ण थी । उस चार समृद्ध परगने प्राप्त हुए । इनकी सालाना ग्रामदनी बीस लाख रुपय थी । इन परगनों के प्राप्त हो जान से मारवाड राज्य की ग्राय दुगनी हो गई । ग्रामर ग्रौर मारवाड जैसे उदाहरणों की मौजूदगी म ग्रौर प्रलोभन का विरोध करन की शक्ति की कमी के कारण राजस्थान के छोटे राजा लोग ग्रपन ग्रसत्य पराक्रमी सरदारों के साथ दिल्ली के सामन्तों म परिवर्तित हो गये ग्रौर इस परिवतन के कारण उनम से बहुत से लोगों का महत्व भी बढ गया । मुगल इतिहासकारों न सत्य ही लिखा है कि वे "सिंहासन के स्तम्भ ग्रौर ग्रलकार स्वरूप थे ।'

पर तु उपयु क्त सभी बातें प्रताप क विरुद्ध भयजनक थी । उसके देशवासियों के शस्त्र ग्रब उसी के विरुद्ध उठ रहे थे । ग्रपनी मान मर्यादा बेचने वाले राजाग्रो से यह बात सही नही जा रही थी कि प्रताप गौरव क ऊचे ग्रासन पर विराजमान रहे । इस बात का विचार करके ही उनके हृदय म डाह की प्रबल ग्राग जलने लगी । प्रताप न उन समस्त राजाग्रो (बून्दी के ग्रलावा) से ग्रपना सम्बन्ध छोड दिया जो मुसलमानो स मिल गये थ । सीसोदिया वश के किसी शासक न ग्रपनी कन्या मुगलो को नही दी । इतना ही नही, उन्होंन लम्बे समय तक उन राजवशो को भी ग्रपनी कन्याए नही दी जिन्होने मुगलो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध किये थ । इससे उन राजाग्रो को काफी ग्राघात पहुचा । इसकी पुष्टि मारवाड ग्रौर ग्रामेर के राजाग्रो–बख्तसिंह ग्रौर जयसिंह क पत्रो से होती है । दोनो ही शासको ने मेवाड क सीसोदिया वश के साथ वैवाहिक सम्बन्धो का पुन स्थापित करने का ग्रनुरोध किया था । लगभग एक शताब्दी के बाद उनका ग्रनुरोध स्वीकार किया गया ग्रौर वह भी इस शर्त के साथ कि मेवाड की राजकन्या के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही सम्बन्धित राजा का उत्तराधिकारी होगा ।

सीसोदिया घराने न ग्रपने रक्त की पवित्रता को बनाये रखने के लिये जो कदम उठाये उनमे से एक का उल्लेख करना ग्रावश्यक है क्योंकि उस घटना ने ग्रान वाली घटनाग्रो को काफी प्रभावित किया है । ग्रामेर का राजा मानसिंह ग्रपने वश का ग्रत्यधिक प्रसिद्ध राजा था ग्रौर उसके समय से ही उसके राज्य की उन्नति ग्रारम्भ हुई थी । वह ग्रकबर का साला था । वसे मानसिंह एक साहसी, चतुर ग्रौर रण विशारद सेनानायक था ग्रौर ग्रकबर की सफलताग्रो म उसका ग्राधा योगदान भी रहा था, परन्तु पारिवारिक सम्बन्ध तथा ग्रकबर की विशेष कृपा से वह मुगल साम्राज्य का महत्वपूर्ण सेनापति बन गया था । कच्छवाह भट्टकवियो ने उसके शौर्य तथा उसकी उपलब्धियो का तेजस्विनी भाषा मे उल्लेख किया है ।

शोलापुर की विजय के बाद जब मानसिंह वापस हिन्दुस्तान लौट रहा था तो उसने राणा प्रताप से जो इन दिनो कमलमीर म था, मिलने की इच्छा प्रकट की ।

प्रताप उसका स्वागत करने के लिए उदयसागर तक आया। इस झील के सामने वाले टीले पर आमेर के राजा के लिय दावत की व्यवस्था की गई। भोजन तयार हो जान पर मानसिंह को बुलावा भेजा गया। राजकुमार अमरसिंह को अतिथि की सेवा के लिये नियुक्त किया गया था। राणा प्रताप अनुपस्थित थे। मानसिंह के पूछन पर अमरसिंह न उसे बताया कि राणा को सिरदद है वे नही आ पायेंगे। आप भोजन करके विश्राम करें। मानसिंह न गव के साथ सम्मानित स्वर से कहा कि 'राणा जी से कहो कि उनके सिर दद का यथाथ कारण समझ गया हूँ। जो कुछ होना था, वह तो हो गया और उसका सुधारन का कोई उपाय नही है, फिर भी यदि वे मुझे खाना नही परोसेंग तो और कौन परोसेगा।' मानसिंह न राणा के बिना भोजन स्वीकार नही किया तब प्रताप न उस कहला भेजा कि जिस राजपूत ने अपनी बहिन तुर्क को दी हो, उसके साथ कौन राजपूत भोजन करेगा? राजा मानसिंह न इस अपमान को आहूत करन मे बुद्धिमता नही दिखाई थी। यदि प्रताप की तरफ से उसे निमन्त्रित किया गया होता तब तो उसका व्यवहार उचित माना जा सकता था पर तु इसके लिये प्रताप को दोषी नही ठहराया जा सकता। मानसिंह ने भोजन को छुआ तक नही, केवल चावल के कुछ कणो को जो अन्न देवता का अपण किय थे उन्ह अपनी पगडी मे रख कर वहा से चला गया। जात समय उसन कहा, आपकी ही मान मर्यादा बचाने के लिये हमने अपनी मर्यादा को खोकर मुगलो को अपनी बहिन बेटियाँ दी। इस पर भी जब आप मे और हम मे विषमता रही तो आपकी स्थिति म भी कमी आयेगी, यदि आपकी इच्छा सदा ही विपत्ति म रहने की है, तो यह अभिप्राय शीघ्र ही पूरा होगा। यह देश हृदय से आपको धारण नही करेगा।' अपन घोडे पर सवार होकर मानसिंह ने राणा प्रताप जो इस समय आ पहुँचे थे को कठोर दृष्टि से निहारत हुए कहा, यदि मैं तुम्हारा यह मान चूण न कर दू तो मेरा नाम मानसिंह नही।' प्रताप न उत्तर दिया कि आपसे मिल कर मुझे खुशी होगी। वहा उपस्थित किसी व्यक्ति ने अभद्र भाषा मे कह दिया कि अपन साथ अपन 'फूफा' को लाना मत भूलना। जिस स्थान पर मानसिंह के लिये भोजन सजाया गया था उसे अपवित्र हुआ मानकर खोद दिया गया और फिर वहा गगा जल छिडका गया और जिन सरदारो एव राजपूतो ने अपमान का यह दृश्य देखा था, उन सभी न अपन को मानसिंह का दशन करन से पतित समझकर तत्काल स्नान किया तथा वस्त्रादि बदले।[5] मुगल सम्राट को सम्पूण वृत्ता त की सूचना दी गई। उसन मानसिंह के अपमान को अपना अपमान समझा। अकबर न समझा था कि राजपूत अपने पुरान संस्कारो को छोड बठे होगे पर तु यह उसकी भूल थी। इस अपमान का बदला लेन के लिय युद्ध की तयारी की गई और इन युद्धो ने प्रताप का नाम अमर कर दिया। पहला युद्ध हल्दीघाटी के नाम स प्रसिद्ध है। जब तक मवाड पर किसी सीसोदिया का अधिकार रहेगा अथवा कोई भट्टकवि जीवित रहेगा तब तक हल्दीघाटी का नाम कोई भी नही भुला सकगा।

दिल्ली का उत्तराधिकारी, युवराज सलीम मुगल सेना के साथ युद्ध के लिए चढ़ आया। उसके साथ राजा मानसिंह और सागरजी का जातिभ्रष्ट पुत्र महावत खाँ भी थे। प्रताप ने अपने पत्ता और बाईस हजार राजपूतों में विश्वास रखते हुए अकबर के पुत्र का सामना किया। अरावली के पश्चिमी छोर तक शाही सेना को किसी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। परन्तु इसके आगे का मार्ग प्रताप के नियन्त्रण में था।

प्रताप अपनी नई राजधानी के पश्चिम की ओर की पहाड़ियों में आ डटा। इस इलाके की लम्बाई लगभग अस्सी मील थी और इतनी ही चौड़ाई थी। सारा इलाका पर्वतों और वनों से घिरा हुआ है, बीच बीच में कई छोटी छोटी नदियें बहती हैं। राजधानी की तरफ जाने वाले मार्ग इतने तंग और दुर्गम हैं कि वहाँ कठिनाई से दो गाड़ियाँ आ जा सकती हैं। उस स्थान का नाम हल्दीघाट है जिसके द्वार पर खड़े पर्वतों को लाँघ कर उसमें प्रवेश करना संकट को मोल लेना है। उसके मनोहर ऊँचे शिखरों पर तथा तलहटियों में वीर राजपूतों को तैनात कर दिया गया। उनके साथ विश्वासी भील लोग भी धनुष-बाण लेकर डट गये। भीलों के पास बड़े बड़े पत्थरों के ढेर पड़े हैं जैसे ही शत्रु सामने से आयेगा वैसे ही पत्थरों को लुढ़काकर उनके सिर को तोड़ने की योजना थी।

हल्दीघाटी के इस प्रवेश द्वार पर अपने चुने हुए सैनिकों के साथ प्रताप शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा। दोनों ओर की सेनाओं का सामना होते ही भीषण रूप से युद्ध शुरू हो गया और दोनों तरफ के शूरवीर योद्धा घायल होकर जमीन पर गिरने लगे। प्रताप अपने घोड़े पर सवार होकर द्रुतगति से शत्रु सेना के भीतर पहुँच गया और राजपूतों के शत्रु मानसिंह को खोजने लगा। वह तो नहीं मिला परन्तु प्रताप उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ सलीम अपने हाथी पर बैठा हुआ था। प्रताप की तलवार से सलीम के कई अंगरक्षक मारे गये और यदि प्रताप के भाले और सलीम के बीच में लोहे की मोटी चद्दर वाला हौदा नहीं होता तो अकबर अपने उत्तराधिकारी से हाथ धो बैठता। प्रताप के घोड़े चेतक ने अपने स्वामी की इच्छा को भाँप कर पूरा प्रयास किया और तमाम ऐतिहासिक चित्रों में सलीम के हाथी की सूँड पर चेतक का एक उठा हुआ पैर और प्रताप के भाले द्वारा महावत की छाती का छलनी होना अंकित किया गया है।[6] महावत के मारे जाने पर घायल हाथी सलीम सहित युद्ध भूमि से भाग खड़ा हुआ। इस समय युद्ध अत्यन्त भयानक हो उठा था। सलीम पर प्रताप के आक्रमण को देखकर असंख्य मुगल सैनिक उसी तरफ बढ़े और प्रताप को घेरकर चारों तरफ से प्रहार करने लगे। प्रताप के सिर पर मेवाड़ का राजमुकुट लगा हुआ था। इसलिये मुगल उसी को निशाना बनाकर वार कर रहे थे। राजपूत सैनिक भी उसको बचाने के लिये प्राण हथेली पर रख कर संघर्ष कर रहे थे परन्तु धीरे धीरे प्रताप संकट में फँसता जा रहा था। स्थिति की गंभीरता को परख कर

झाला सरदार ने स्वामिभक्ति का एक अपूर्व आदर्श प्रस्तुत करते हुए अपने प्राणो का बलिदान कर दिया। झाला सरदार मन्नाजी तेजी के साथ आगे बढा और प्रताप के सिर से राजमुकुट उतार कर अपने सिर पर रख लिया और तेजी के साथ कुछ दूरी पर जाकर घमासान युद्ध करने लगा। मुगल सनिक उसे ही प्रताप समझ कर उस पर टूट पडे और प्रताप को युद्धभूमि से दूर निकल जाने का अवसर मिल गया। उसका सारा शरीर अगणित घावो से लहूलुहान हो चुका था। युद्धभूमि से जाते-जाते प्रताप ने मन्नाजी को मरते देखा। राजपूतो ने बहादुरी के साथ मुगलो का मुकाबला किया परन्तु मैदानी तोपो तथा बन्दूकधारियो से सुसज्जित शत्रु की विशाल सेना के सामने समूचा पराक्रम निष्फल रहा। युद्धभूमि पर उपस्थित बाईस हजार राजपूत सनिको मे से केवल आठ हजार जीवित सैनिक युद्धभूमि से किसी प्रकार बच कर निकल पाये।

बिना किसी सहायक के प्रताप अपने पराक्रमी चेतक पर सवार हो पहाड की ओर चल पडा। उसके पीछे दो मुगल सनिक लगे हुए थे परन्तु चेतक ने प्रताप को बचा लिया। रास्ते मे एक पहाडी नाला बह रहा था। घायल चेतक फुर्ती से उसे लाघ गया परन्तु मुगल उसे पार न कर पाये। चेतक नाला तो लाघ गया परन्तु अब उसकी गति धीरे धीरे कम होती गई और पीछे से मुगलो के घोडो की टापें भी सुनाई पडी। उसी समय प्रताप को अपनी मातृभाषा मे आवाज सुनाई पडी, 'हो, नीला घोडा रा असवार''। प्रताप ने रुक कर पीछे देखा तो उसे एक ही अश्वारोही दिखाई पडा और वह था, उसका भाई शक्तिसिह। प्रताप के साथ व्यक्तिगत विरोध ने उसे देशद्रोही बना कर अकबर का सेवक बना दिया था और युद्ध स्थल पर वह मुगल पक्ष की तरफ से लड रहा था। जब उसने नीले घोडे को बिना किसी सेवक के पहाड की तरफ जाते देखा तो वह भी चुपचाप उसके पीछे चल पडा, परन्तु केवल दोनो मुगलो को यमलोक पहुँचाने के लिए। जीवन मे पहली बार दोनो भाई प्रेम के साथ गले मिले। इस बीच चेतक जमीन पर गिर पडा और जब प्रताप उसकी काठी को खोल कर अपने भाई द्वारा प्रस्तुत घोडे पर रख रहा था, चेतक ने प्राण त्याग दिये। बाद मे उस स्थान पर एक चबूतरा खडा किया गया जो आज भी उस स्थान को इंगित करता है जहा चेतक मरा था।

प्रताप को विदा करके शक्तिसिह खुरासानी सनिक के घोडे पर सवार होकर वापस लौट आया। सलीम को उस पर कुछ सन्देह पैदा हुआ जब शक्तिसिह ने कहा कि प्रताप ने न केवल पीछा करने वाले दोनो मुगल सनिको को मार डाला अपितु मेरा घोडा भी छीन लिया। इसलिए मुझे खुरासानी सनिक के घोडे पर सवार होकर आना पडा। सलीम ने वचन दिया कि अगर तुम सत्य बात कह दोगे तो मैं तुम्हे क्षमा कर दूगा। तब शक्तिसिह ने कहा, 'मेरे भाई के कधो पर मेवाड राज्य का बोझा है। इस सकट के समय उसकी सहायता किये बिना मैं कैसे रह सकता था। सलीम ने अपना वचन निभाया परन्तु शक्तिसिह को अपनी सेवा से हटा दिया। राणा

प्रताप की सेवा मे पहुँच कर उसे अच्छी नजर भेंट की जा सके, इस ध्येय से उसने भिनसोर नामक दुर्ग पर आक्रमण कर जीत लिया। उदयपुर पहुँच कर उस दुर्ग को भेंट मे देते हुए शक्तिसिंह ने प्रताप का अभिवादन किया। प्रताप ने प्रसन्न होकर वह दुर्ग शक्तिसिंह को पुरस्कार मे दे दिया। यह दुर्ग लम्बे समय तक उसके वंशजों के अधिकार मे बना रहा।[7]

संवत् 1632 (जुलाई 1576) के सावन मास की सप्तमी का दिन मेवाड के इतिहास मे सदा स्मरणीय रहेगा। उस दिन मेवाड के अच्छे रुधिर ने हल्दी घाटी को सींचा था। प्रताप के अत्यन्त निकटवर्ती पाच सौ कुटुम्बी और सम्बन्धी, ग्वालियर का भूतपूर्व राजा रामशाह और साढे तीन सौ तोंवर वीरो के साथ रामशाह का बेटा खाण्डेराव मारा गया। स्वामिभक्त झाला मन्नाजी अपने डेढ सौ सरदारो सहित मारा गया और मेवाड के प्रत्येक घर ने बलिदान किया।

विजय से प्रसन्न सलीम पहाडियो से लौट गया क्योंकि वर्षा ऋतु के आगमन से आगे बढना सम्भव न था। इससे प्रताप को कुछ राहत मिली। परन्तु कुछ समय बाद शत्रु पुन चढ आया और प्रताप को एक बार पुन पराजित होना पडा। तब प्रताप ने कमलमीर को अपना केन्द्र बनाया। मुगल सेनानायकों—कोका और शाहबाज खा ने इस स्थान को भी घेर लिया। प्रताप ने जमकर मुकाबला किया और तब तक इस स्थान को नही छोडा जब तक पानी के बडे स्रोत नोगन के कुऐ का पानी विषाक्त नहीं कर दिया गया। ऐसे घृणित विश्वासघात का श्रेय आबू के देवडा सरदार को जाता है, जो इस समय अकबर के साथ मिला हुआ था। कमलमीर से प्रताप चावड चला गया और सोनगरे सरदार भान ने अपनी मृत्यु तक कमलमीर की रक्षा की।

कमलमीर के पतन के बाद राजा मानसिंह ने धरमेती और गोगुन्दा के दुर्गों पर भी अधिकार कर लिया। इसी अवधि मे मोहब्बत खा ने उदयपुर पर अधिकार कर लिया और अमीशाह नामक एक मुगल शाहजादा ने चावड और अगुणा पानोर के मध्यवर्ती क्षेत्र मे पडाव डाल कर यहा के भीलो से प्रताप को मिलने वाली सहायता को अवरुद्ध कर दिया। फरीद खा नामक एक अन्य मुगल सेनापति ने छप्पन पर आक्रमण किया और दक्षिण की तरफ से चावड को घेर लिया। इस प्रकार, प्रताप चारो तरफ से शत्रुओ से घिर गया और बचने की कोई उम्मीद न थी। वह रोजाना एक स्थान से दूसरे स्थान एक पहाडी से दूसरी पहाडी के गुप्त स्थानो मे छिपा रहता और अवसर मिलने पर शत्रु पर आक्रमण करने से भी न चूकता। फरीद ने प्रताप को पकडने के लिये चारो तरफ अपने सैनिकों का जाल बिछा दिया परन्तु प्रताप की छापामार पद्धति से असंख्य मुगल सैनिकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पडा। वर्षा ऋतु ने पहाडी नदियों और नालो को पानी से भर दिया जिसकी वजह से आने

जान के माग अवरुद्ध हो गये। परिणामस्वरूप मुगलो के आक्रमण स्थगित हो गये।

इस प्रकार समय गुजरता गया और प्रताप की कठिनाइयाँ भयकर बनती गईं। पवत के जितने भी स्थान प्रताप और उसके परिवार को आश्रय प्रदान कर सकते थे, उन सभी पर बादशाह का अधिकार हो गया था। राणा को अपनी चि ता न थी। चि ता थी अपने परिवार की ओर छोटे छोटे बच्चो की। वे किसी भी दिन शत्रु के हाथ म पड सकते थे। एक दिन तो उसका परिवार शत्रुओ के पजे में पहुच गया था, पर तु बावा के स्वामिभक्त भीलो न उसे बचा लिया। भील लोग राणा के बच्चो को टोकरो म छिपा कर जावरा की खानो मे ले गये और कई दिनो तक वहीं पर उनका पालन पोषण किया। भील लोग स्वय भूखे रहकर भी राणा और उसके परिवार के लिए खान की सामग्री जुटाते रहते थे। जावरा और चावड के घने जगल क वृक्षो पर लोहे के बडे बडे कीले अब तक गडे हुए मिलते है। इन कीलो मे बेंतो के बडे-बडे टोकरे टाग कर उनमे राणा के बच्चो को छिपा कर वे भील राणा की सहायता करते थे। इससे बच्चे पहाडो के जगली जानवरो से भी सुरक्षित रहते थे। इस प्रकार की विषम परिस्थिति मे भी प्रताप का विश्वास नही डिगा। अकबर न भी इन समाचारो को सुना और सत्य का पता लगाने के लिये अपना एक गुप्तचर भेजा। वह किसी तरकीब से उस स्थान पर पहुँच गया जहा राणा और उसके सरदार एक घने जगल के मध्य एक वृक्ष के नीचे घास पर बठे भोजन कर रहे थे। खाने मे जगली फल, पत्तियाँ और जडें थी। पर तु सभी लोग उसे उसी उत्साह के साथ खा रहे थे जिस प्रकार कोई राजभवन मे बने भोजन को प्रसन्नता और उमग के साथ खाता हो। गुप्तचर ने किसी के चेहरे पर उदासी और चि ता नही देखी। उसने वापस आकर अकबर को पूरा वृत्तान्त सुनाया। सुनकर अकबर का हृदय भी पसीज गया और प्रताप के प्रति उसम मानवीय भावना जागत हुई। उसने अपने दरबार के अनेक सरदारो से प्रताप के तप त्याग और बलिदान की प्रशसा की। अकबर के विश्वासपात्र सरदार खानखाना ने भी अकबर के मुख से प्रताप की प्रशसा सुनी थी। उसने अपनी भाषा म लिखा, इस ससार मे सभी नाशवान है। राज्य और धन किसी भी समय नष्ट हो सकता है, पर तु महान् व्यक्तियो की ख्याति कभी नष्ट नही हो सकती। पुत्ता ने धन और भूमि को छोड दिया है, पर तु उसने कभी अपना सिर नहीं झुकाया। हि द के राजाओ मे वही एक मात्र ऐसा राजा है, जिसने अपनी जाति के गौरव को बनाये रखा है।" पर तु कभी कभी ऐसे अवसर आ उपस्थित होते, जब अपने प्राणो से भी प्यारे लोगो को भयानक अभाव से ग्रस्त देखकर वह भयभीत हो उठता था। उसकी पत्नी किसी पहाडी या गुफा मे भी असुरक्षित थी और उसके उत्तराधिकारी जि हे हर प्रकार की सुविधाओ का अधिकार था भूख से बिलखते उसके पास आकर रोने लगते थे। मुगल सनिक इस प्रकार उसके पीछे पड गये थे भोजन तयार होने पर कभी कभी खाने का अवसर

न मिलता था और सुरक्षा के लिये भोजन छोडकर भागना पडता था। एक दिन तो पाच बार भोजन पकाया गया और हर बार भोजन को छोडकर भागना पडा। एक अवसर पर प्रताप की पत्नी और उसकी पुत्र वधू ने घास के बीजा को पीस कर कुछ रोटियाँ बनाई। उनमे से आधी बच्चा को दे दी गई और बची हुई आधी दूसरे दिन के लिए रख दी गई। इसी समय प्रताप को अपनी लडकी की चिल्लाहट सुनाई दी। एक जगली बिल्ली लडकी के हाथ से उसके हिस्से की रोटी को छीन कर भाग गई और भूख से व्याकुल लडकी के आसू टपक आये।[8] जीवन की इस दुरावस्था को देखकर राणा का हृदय एक बार विचलित हो उठा। अधीर होकर उसने ऐसे राज्याधिकार को धिक्कारा जिसकी वजह से जीवन मे ऐसे करुण दृश्य देखन पड और उसी अवस्था म अपनी कठिनाइयो को दूर करने के लिये उसन एक पत्र के द्वारा अकबर से माग की।

प्रताप के पत्र को पाकर अकबर की प्रसन्नता की सीमा न रही। उसन इसका अर्थ प्रताप का आत्मसमपर्ण समझा और उसन कई प्रकार के सावजनिक उत्सव किये। अकबर न उस पत्र को पृथ्वीराज नामक एक श्रेष्ठ एव स्वाभिमानी राजपूत को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर नरेश का छोटा भाई था। बीकानेर नरेश न मुगल सत्ता के सामने शीश झुका दिया था। पृथ्वीराज केवल वीर ही नही अपितु एक योग्य कवि था। वह अपनी कविता से मनुष्य के हृदय को उ मादित कर देता था। वह सदा से प्रताप की आराधना करता आया था। प्रताप के पत्र को पढ कर उसका मस्तक चकराने लगा। उसके हृदय मे भीषण पीडा की अनुभूति हुई। फिर भी, अपने मनो भावो पर अकुश रखते हुए उसने अकबर स कहा कि यह पत्र प्रताप का नही है। किसी शत्रु ने प्रताप के यश के साथ यह जालसाजी की है आपको भी धोखा दिया है। आपके ताज के बदले मे भी वह आपकी अधीनता स्वीकार नही करेगा। सच्चाई को जानने क लिये उसन अकबर से अनुरोध किया कि वह उसका पत्र प्रताप तक पहुचा दे। अकबर न उसकी बात मान ली और पृथ्वीराज ने राजस्थानी काव्य शली मे प्रताप को एक पत्र लिख भेजा। अकबर ने सोचा कि इस पत्र से असलियत का पता चल जायगा और पत्र था भी ऐसा ही। पर तु पृथ्वीराज न उस पत्र के द्वारा प्रताप को उस स्वाभिमान का स्मरण कराया जिसकी खातिर उसने अब तक इतनी विपत्तियो को सहन किया था और अपूर्व त्याग तथा बलिदान के द्वारा अपना मस्तक ऊचा उठा रखा था। पत्र मे इस बात का भी उल्लेख था कि हमारे घरो की स्त्रियो की मर्यादा छिन्न भिन्न हो गई है और बाजार मे वह मर्यादा बेची जा रही है। उसका खरीददार केवल अकबर है। उसने सीसोदिया वश के एक स्वाभिमानी पुत्र को छोडकर सबको खरीद लिया है पर तु प्रताप को नही खरीद पाया है वह ऐसा राजपूत नही जो नौ रोजा के लिये अपनी मर्यादा का परित्याग कर सकता है। क्या अब चित्तौड का स्वाभिमान भी इस बाजार मे बिकेगा ?[9]

राठौड पृथ्वीराज के ओजस्वी पत्र ने प्रताप के मन की निराशा को दूर कर दिया और उसे लगा जैसे दस हजार राजपूतों की शक्ति उसके शरीर में समा गई हो। उसने अपने स्वाभिमान को कायम रखने का दृढ संकल्प कर लिया। पृथ्वीराज के पत्र में "नौरोजा के लिये मर्यादा का सौदा' करने की बात कही गई। इसका स्पष्टीकरण देना आवश्यक है। नौरोजा का अर्थ 'वर्ष का नया दिन' होता है और पूर्व के मुसलमानों का यह धार्मिक त्यौहार है। अकबर ने स्वयं इसकी प्रतिष्ठा की और इसका नाम रखा "खुशरोज' । अर्थात् खुशी का दिन और इसकी शुरूआत अकबर ने की थी। इस अवसर पर सभी लोग उत्सव मनाते थे और राजदरबार में भी कई प्रकार के आयोजन किये जाते थे। इस प्रकार के आयोजनों में एक प्रमुख आयोजन स्त्रियों का मेला था। एक बडे स्थान पर इस मेले का आयोजन किया जाता था जिसमें केवल स्त्रियां ही भाग लेती थी। वे ही दुकानें लगाती थी और वे ही खरीददारी करती थी। पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध था। राजपूत स्त्रियां भी दुकानें लगाती थी। अकबर छद्म वेष में बाजार जाता था और कहा जाता है कि कई सुन्दर बालाएं उसकी काम वासना का शिकार हो अपनी मर्यादा लुटा बैठती। एक बार राठौड पृथ्वीराज की स्त्री भी इस मेले में शामिल हुई थी और उसने बडे साहस तथा शौर्य के साथ अपने सतीत्व की रक्षा की थी। वह शक्तावत वंश की लडकी थी। उस मेले में घूमते हुए अकबर की नजर उस पर पडी और उसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर अकबर की नियत बिगड गई और उसने किसी उपाय से उसे मेले से अलग कर दिया। पृथ्वीराज की स्त्री ने जब कामुक अकबर को अपने सम्मुख पाया तो उसने अपने वस्त्रों में छिपी हुई कटार को निकाल कर कहा, 'खबरदार अगर इस प्रकार की तूने हिम्मत की! सौगंध खा कि आज से कभी किसी स्त्री के साथ में ऐसा व्यवहार न करेगा।" अकबर के क्षमा मांगने के बाद पृथ्वीराज की स्त्री मेले से चली गई। अब्बुल फजल ने इस मेले के बारे में अलग बात लिखी है। उसके अनुसार बादशाह अकबर वेष बदल कर मेले में इसलिये जाता था कि उसे वस्तुओं का भाव ताव मालूम हो सके।

पृथ्वीराज का पत्र पढने के बाद राणा प्रताप ने अपने स्वाभिमान की रक्षा करने का निर्णय कर लिया। परन्तु मौजूदा परिस्थितियों में पर्वतीय स्थानों में रहते हुए मुगलों का प्रतिरोध करना सम्भव न था। अतः उसने रक्तरंजित चित्तौड और मेवाड को छोडकर किसी दूरवर्ती स्थान पर चले जाने का विचार किया। उसने तैयारियां शुरू की। सभी सरदार भी उसके साथ चलने को तैयार हो गये। चित्तौड के उद्धार की आशा अब उनके हृदय से जाती रही थी। अतः प्रताप ने सिन्ध नदी के किनारे पर स्थित सोगदी राज्य की तरफ बढने की योजना बनाई ताकि बीच का मरुस्थल उसके शत्रु को उससे दूर रख सके। अरावली को पारकर जब प्रताप मरुस्थल के किनारे ही पहुंचा था कि एक आश्चर्यजनक घटना ने उसे पुनः वापस लौटने के लिये विवश कर दिया। मेवाड के वृद्ध मंत्री भामाशाह ने अपने जीवन में काफी सम्पत्ति अर्जित की थी। वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति के साथ प्रताप की सेवा में आ

उपस्थित हुआ और उससे मेवाड के उद्धार की याचना की । यह सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि उससे पच्चीस वर्षों तक 25,000 सनिको का खर्चा पूरा किया जा सकता था ।[10] भाभाशाह का नाम मेवाड के उद्धारकर्ताओ के रूप मे आज भी सुरक्षित है। भामाशाह के इस अपूव त्याग से प्रताप की शक्तियाँ फिर से जागृत हो उठी । उसन वापस आकर राजपूतो की एक अच्छी सेना बना ली जबकि उसके शत्रुओ को इसकी भनक भी नही मिल पाई । ऐसे मे प्रताप न मुगल सेनापति शाहबाजखा को देवीर नामक स्थान पर अचानक जा घेरा । मुगलो न जमकर सामना किया पर तु वे परास्त हुए। बहुत से मुगल मारे गये और बाकी पास की छावनी की ओर भागे । राजपूतो न आमेट तक उनका पीछा किया और उस मुगल छावनी के अधिकाश सनिको को भी मौत के घाट उतार दिया गया । इसी समय कमलमीर पर आक्रमण किया गया । वहा का सेनानायक अब्दुल्ला मारा गया और दुग पर प्रताप का अधिकार हो गया । थोडे ही दिनो मे एक के बाद एक करके बत्तीस दुर्गों पर अधिकार कर लिया गया और दुर्गों मे नियुक्त मुगल सनिको को मौत के घाट उतार दिया गया । सवत 1586 (1530 ई) मे चित्तौड अजमेर और माडलगढ को छोडकर सम्पूर्ण मेवाड पर प्रताप ने अपना पुन अधिकार जमा लिया ।[11] राजा मानसिह को उसके देशद्रोह का बदला देने के लिए प्रताप ने आमेर राज्य के समृद्ध नगर मालपुरा को लूटकर नष्ट कर दिया। इसके बाद प्रताप उदयपुर की तरफ बढा । मुगल सेना बिना युद्ध लडे ही वहा से चली गई और उदयपुर पर प्रताप का अधिकार हो गया। अकबर ने थोडे समय के लिय युद्ध ब द कर दिया ।

सम्पूर्ण जीवन युद्ध करके और भयानक कठिनाइयो का सामना करक प्रताप न जिस तरह से अपना जीवन व्यतीत किया उसकी प्रशसा इस ससार से मिट न सकेगी। पर तु इन सबके परिणामस्वरूप प्रताप मे समय से पहले ही बुढापा आ गया था। उसन जो प्रतिज्ञा की थी उसे अ त तक निभाया । राजमहलो का छोडकर प्रताप न पिछोला तालाब के समीप अपन लिये कुछ झोपडिया बनवाई थी ताकि वर्षा और सर्दी म आश्रय लिया जा सके । इ ही झोपडिया मे प्रताप न सपरिवार अपना जीवन व्यतीत किया । अब जीवन का अ तिम समय आ पहुचा था । प्रताप न चित्तौड क उद्धार की प्रतिज्ञा की थी पर तु उसमे सफलता न मिली । फिर भी, उसने अपनी थोडी सी सेना की सहायता स मुगलो की विशाल सेना को इतना अधिक परेशान किया कि अत म अकबर का युद्ध ब द कर देना पडा।

अकबर के युद्ध ब द कर देने से प्रताप को महादु ख हुआ । कठोर उद्यम और परिश्रम सहन कर उसने हजारो कष्ट उठाये थे पर तु शत्रुओ से चित्तौड का उद्धार न कर सके । वह एकाग्रचित से चित्तौड के उस ऊचे परकोटे और जयस्तम्भो को निहारा करते थे और अनक विचार उठकर हृदय को डावाडोल कर दते थे । एस म ही एक दिन प्रताप एक साधारण कुटी मे लेटे हुए काल की कठोर आज्ञा की प्रतीक्षा

कर रहे थे। उनके चारो तरफ उनके विश्वासी सरदार बैठे हुए थे। तभी प्रताप ने एक लम्बी सांस ली। सलूम्बर के सामन्त ने कातर होकर पूछा, 'महाराज ! ऐसे कौन से दारुण दुःख ने आपको दुःखित कर रखा है और अन्तिम समय में आपकी शांति को भंग कर रहा है।' प्रताप का उत्तर था—'सरदार जी ! अभी तक प्राण अटके हुए हैं केवल एक ही आश्वासन की वाणी सुनकर यह अभी सुखपूर्वक देह को छोड़ जायगा। यह वाणी आप ही के पास है। आप सब लोग मेरे सम्मुख प्रतिज्ञा करें कि जीवित रहते अपनी मातृभूमि किसी भी भांति तुर्कों के हाथ में नहीं सौंपेंगे। पुत्र अमरसिंह हमारे पूर्वजों के गौरव की रक्षा नहीं कर सकेगा। वह मुगलों के ग्रास से मातृभूमि को नहीं बचा सकेगा। वह विलासी है वह कष्ट नहीं झेल सकेगा।' इसके बाद राणा ने अमरसिंह की बातें सुनाते हुए कहा "एक दिन उस नीची कुटिया में प्रवेश करते समय अमरसिंह अपने सिर से पगड़ी उतारना भूल गया था। द्वार के एक बांस से टकराकर उसकी पगड़ी नीचे गिर गई। दूसरे दिन उसने मुझसे कहा कि यहां पर बड़े बड़े महल बनवा दीजिये।" कुछ क्षण चुप रहकर प्रताप ने कहा 'इन कुटियों के स्थान पर बड़े-बड़े रमणीक महल बनेंगे मेवाड़ की दुरवस्था भूल कर अमरसिंह यहां पर अनेक प्रकार के भोग विलास करेगा। अमर के विलासी होने पर मातृभूमि की वह स्वाधीनता जाती रहेगी जिसके लिये मैंने बराबर पच्चीस वर्ष तक कष्ट उठाये सभी भांति की सुख सम्पत्ति को छोड़ा। वह इस गौरव की रक्षा न कर सकेगा। और तुम लोग—तुम सब उसके अनर्थकारी उदाहरण का अनुसरण करके मेवाड़ के पवित्र यश में कलंक लगा दोगे।" प्रताप का वाक्य पूरा होते ही समस्त सरदारों ने उससे कहा "महाराज ! हम लोग बप्पा रावल के पवित्र सिंहासन की शपथ करते हैं कि जब तक हम में से एक भी जीवित रहेगा उस दिन तक कोई तुर्क मेवाड़ भूमि पर अधिकार न कर सकेगा। जब तक मेवाड़ भूमि की पूर्व स्वाधीनता का पूरी तरह से उद्धार नहीं हो पायेगा तब तक हम लोग इन्हीं कुटियों में निवास करेंगे।" इस संतोषजनक वाणी को सुनते ही प्रताप के प्राण निकल गये।[12] इस प्रकार एक ऐसे राजपूत के जीवन का अवसान हो गया जिसकी स्मृति आज भी प्रत्येक सीसोदिया को प्रेरित कर रही है। इस संसार में जितने दिनों तक वीरता का आदर रहेगा, उतने दिन तक प्रताप की वीरता, माहात्म्य और गौरव संसार के नेत्रों के सामने अचल भाव से विराजमान रहेगा। उतने दिन तक वह हल्दीघाट मेवाड़ की थर्मोपोली और उसके अन्तर्गत देवीर क्षेत्र मेवाड़ का मैराथान नाम से पुकारा जाया करेगा।

सन्दर्भ

1 कपासन नामक दुर्ग सागर के अधिकार में था। उसके वंशज सागरौत कहलाये।

2 टाड का यह कथन कि मालदेव भी अकबर की शरण मे चला गया था, सही नही है । 1562 ई म मालदेव की मृत्यु हुई और 1564 ई मे उसका बडा लडका राम मौजूदा मारवाड नरेश च द्रसेन के विरुद्ध सहायता प्राप्त करन के लिय अकबर के पास गया था । मालदेव और चन्द्रसेन ने कभी भी अकबर की अधीनता स्वीकार नही की थी।

3 उदयसिह को 4 अगस्त, 1583 ई का मारवाड राज्य का अधिकार दिया गया था । 1564 ई मे मुगलो ने जाधपुर पर अधिकार कर लिया था और चन्द्रसेन की मृत्यु (जनवरी 1581 ई) के बाद लगभग तीन वर्ष तक अकबर ने जोधपुर राज्य को अपने ही अधिकार मे रखा था जबकि मालदेव के पुत्र उसकी सेवा मे उपस्थित थे ।

4 उदयसिह ने अपनी जोधाबाई (भानीबाइ) नामक पुत्री का विवाह सलीम से किया था । वह "जगत गुसाई' के नाम से प्रसिद्ध थी । इसी के गभ से सम्राट शाहजहा का ज म हुआ था ।

5 इस कथा को लगभग सभी लेखको ने मा यता दी है । पर तु डा गोपानाथ शर्मा इसे सही नहीं मानते । उनके मतानुसार दोनो की मुलाकात गागु दा म हुई थी न कि उदयसागर पर । टॉड ने यह कथा ख्यातो से ली है जो विश्वसनीय नहो है ।

6 डा गापीनाथ शर्मा इस कथा का भी सही नही मानते । प्रताप ने सलीम क हाथी पर नही अपितु मानसिह के हाथी पर आक्रमण किया था । सलीम ता युद्धस्थल पर उपस्थित ही नही था ।

7 शक्तसिह की कथा भी अ य प्रमाणो से सिद्ध नही हा पाता । शक्तसिह पहल ही चित्तौड के आक्रमण के समय काम आ चुका था । सभवत दोना भाइया का मिलान की कथा भाटो ने गढ ली है ।

8 इस प्रकार के कथानक असत्य है । प्रथम तो राणा प्रताप के कोई पुत्री ही नही थी इसलिए उसका रोना अप्रासगिक है । दूसरा, जिस पहाडी भाग म राणा घूमत फिरत थे वह भाग इतना उपजाऊ था कि उ ह खान पीन मे कठिनता का सामना करना पडा यह समझ मे नही आता । पिछल खाता मे भी इस कथा का कोई उल्लेख नही मिलता । ये तो कनल टॉड क मस्तिष्क की उपज मात्र है ।

9 डा गापीनाथ शमा का इस पत्र व्यवहार के बार म भी शका है । क्योकि इसका उल्लेख फारसी तवारीखो मे नही है ।

10 डा ओझा और डा गोपीनाथ शर्मा दोनो ही इस कथा को भी कल्पित मानते हैं कि भामाशाह ने अपनी निजी सम्पत्ति प्रताप को दी थी । उनके मतानुसार यह राजकीय द्रव्य था अथवा मालवा से लूटकर लाया हुआ धन था ।

11 कर्नल टॉड ने जो तिथि दी है वह गलत है । 1576 ई में तो हल्दीघाटी का युद्ध ही लडा गया था । अत यह 1580 ई के बाद का समय होना चाहिए ।

12 प्रताप का स्वर्गवास 19 जनवरी 1597 ई को हुआ था ।

अध्याय 21

महाराणा अमरसिंह

प्रताप के सत्रह पुत्रो मे ज्येष्ठ अमरसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। आठ वर्ष की आयु से लेकर अपने पिता की मृत्यु होने तक अमरसिंह अपने पिता के सुख दु:ख, विपत्ति और संकट में निरन्तर सहभोगी रहा था। प्रताप की वीरता से उत्साहित और उसके महामन्त्र से दीक्षित अमरसिंह ने युवावस्था के मध्याह्न काल में मेवाड राज्य का भार ग्रहण किया था।[1] उस समय अमरसिंह के भी कई पुत्र हो गये थे जो वीर होने के साथ साथ राजकार्य मे भी काफी दक्ष हो चुके थे।

मेवाड का सबसे बडा शत्रु अकबर, प्रताप के बाद आठ वर्ष तक जीवित रहा। जिस विचार को लेकर अकबर ने धन को नष्ट किया, अत्यन्त परिश्रम किया और हजारो मनुष्यो का रक्त बहाया, वह पूरा न हो पाया और उसके सभी प्रयास व्यर्थ रहे। अतः इस महान् शासक के अन्तिम वर्षों मे अमरसिंह ने शान्ति के सुख का भोग किया। अमरसिंह ने भी शान्ति मे विघ्न डालना उचित नही समझा और मुगलो के विरुद्ध संघर्ष नही छेडा। अर्द्ध-शताब्दी से भी अधिक समय तक के अपने शासनकाल मे अकबर ने सुन्दर राजनीति के अनुसार अपने विशाल साम्राज्य को सुसगठित किया और सरकार का ढाचा खडा किया जिसकी जानकारी अब्बुल फजल से मिलती है और जिससे अकबर की महान् प्रतिभा का पता चलता है। वह उस समय के यूरोपीय शासको—फ्रास के हेनरी चतुर्थ, स्पेन के चार्ल्स पचम और इंग्लैण्ड की एलिजाबेथ के समकक्ष ही था। एलिजाबेथ के साथ तो उसके पत्रो का आदान प्रदान भी हुआ था। सौभाग्य से अकबर को भी उनके समान ही सुयोग्य मन्त्री मिले जिससे अकबर को अपूर्व शक्ति मिली। परन्तु दुर्भाग्यवश अकबर ने अपनी शक्ति का उपयोग मेवाड के विनाश के लिये किया। फिर भी राजपूत भट्टकवियो ने उसके गुणो से प्रभावित होकर उसे अपने राजा के साथ एक जैसा स्थान प्रदान किया है। परन्तु यदि बून्दी के भट्टकवियो का विश्वास किया जाय तो अकबर के अन्तिम कार्य को पढने से हृदय पर चोट सी लग जाती है। जिस अकबर की महानता के बहुत से वर्णन पाये जाते हैं, उसी अकबर ने आमेर के राजा मानसिंह को विष देकर मार डालने का विचार किया। बून्दी के भट्टकविगणो ने इस वर्णन को खोलकर अपने

काव्यो म किया है। उनके काव्य ग्र था म लिखा है कि राजा मानसिंह का प्रताप दिन-प्रतिदिन ऐसा बढने लगा कि अकबर को उससे जलन होने लगी। अकबर ने गुप्त भाव से मानसिंह का सहार करने का निश्चय किया। उसने एक प्रकार की "माजून" बनवाई, जिसके आधे भाग मे मानसिंह को देने लिए विष मिलवा दिया। पर तु भ्रमवश अकबर स्वय विष मिली माजून खा गया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। अकबर द्वारा अपनी ख्याति के सर्वथा प्रतिकूल कृत्य सम्बन्धी विचारो के बारे मे हमारे पास कुछ सूत्र हैं। राजा मानसिंह ने उसके वास्तविक उत्तराधिकारी सलीम की जगह उसी के पुत्र और अपने भानजे खुसरो को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने की चेष्टा की थी। फिर भी, अकबर जसे शासक को इस प्रकार का घिनौना कृत्य नही करना चाहिए था।[2]

अमरसिंह ने सिंहासन पर बठते ही अपने राज्य के विभागो का पुनगठन किया, भूमि का नये सिरे से सर्वेक्षण कर नया भूमिकर लागू किया और सामन्तो को नई नई जागीरें दी। उसने अन्य बहुत से नियम भी बनाये जिनमे पगडी[3] बाधने की प्रथा विशेष प्रसिद्ध है। इन नये नियमो की जानकारी आज भी मेवाड राज्य के स्तम्भो की शिलालिपि म प्राप्त की जा सकती है।

प्रताप ने अमरसिंह के बारे म जो शका की थी वह शीघ्र ही फलवती हुई। विश्राम देने वाली शाति वास्तव म अमरसिंह के लिए अनथकारिणी हो गई। वह अपने पिता की आज्ञा को भूल गया। उसने पिछोला तालाब पर बनी झोपडियो के स्थान पर अपने नाम पर "अमर महल" का निर्माण करवाया और उसमे विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा। जहागीर को सिंहासन पर बठे चार वष हो चुके थे और इस समय तक वह आ तरिक विद्रोहो का दमन कर अपनी सत्ता को सुदृढ कर चुका था। अब उसने राजस्थान के एकमात्र स्वत त्र राजा को परत त्र बनाने का निश्चय किया और शाही सेना को मेवाड पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

इस अवसर पर राणा अमरसिंह कोई निर्णय नही कर पाये। एक तरफ सुख-सुविधापूर्ण विलासी जीवन था तो दूसरी ओर कठोर परिश्रम और सघषमय जीवन। उसके कुछ स्वार्थी चाटुकार भी उसे अनेक प्रलोभन दिखाकर समझाने लगे। राणा को उस विमूढ और उत्साहहीन अवस्था मे समय बिताता हुआ देखकर मेवाड के सरदार लोग बहुत ही दु खित हुए और वे सब मिलकर अमर महल पहुँचे। सलूम्बर सरदार ने वहा पहुचकर राणा की बाह को पकडकर उससे निवेदन किया 'प्रताप के बडे पुत्र होने के नाते कुल गौरव की रक्षा के लिए घोडे पर सवार हो। देश का प्रचण्ड शत्रु सहारक बनकर आपके सामने खडा हुआ है और आप कायर के समान समय बिता रहे हैं। यदि पूवजो के पवित्र यश को अचल रखने की सामर्थ्य नही थी तो क्या इस पवित्र सीसोदिया कुल म ज म लिया।'

सलूम्बर सरदार की तजस्वी वाणी से सभी सरदार प्रसन्न हुए और सभा ने राणा से घोडे पर बठने को कहा। राणा उनके साथ सेना सहित पवत से उतरने लगे। इस समय जहा पर श्री जगन्नाथजी का मंदिर बना हुआ है उस स्थान पर आकर राणा का मनाविकार दूर हो गया और अपनी मूछो पर ताव देते हुए सलूम्बर सरदार से कहा, मुझको मोह निद्रा से जगाकर आपने वास्तव मे बहुत बडा उपकार किया है। समर भूमि मे चलिये। फिर देखना कि अमर प्रतापसिंह का योग्य पुत्र है अथवा नही।' राणा के उत्साह से हर्षित होकर राजपूत सेना देवीर की तरफ बढी जहा शत्रु सेना ने पडाव डाल रखा था। वहा पहुचते ही राजपूतो ने प्रचण्ड वेग से शत्रु पर आक्रमण किया। खानखाना का भाई इस समय मुगल सेना का सेनापति था। उसने भी बहादुरी के साथ युद्ध लडा परन्तु अन्त मे राजपूतो की विजय हुई। राजपूतो की विजय का सेहरा राणा के चाचा कानसिंह के सिर पर बधा जिसने अपूर्व पराक्रम का परिचय दिया था। उसके वशज कानावत कहलाये। युद्ध के बाद थोडे समय तक शान्ति रही परन्तु सवत् 1666 की बसत ऋतु मे दिल्ली मे पुन युद्ध की तयारी की गई और एक विशाल सेना के साथ अब्दुल्ला नामक सेनापति को मेवाड पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। अमरसिंह को आक्रमण की सूचना मिलते ही उसने युद्ध की तयारी की और शत्रु की तरफ बढा। घमासान युद्ध के बाद राजपूतो को पुन विजय प्राप्त हुई। अधिकाश मुगल सैनिक मारे गये और बचे हुए युद्ध से भाग गये।

निरन्तर पराजयो से दिल्ली मे अनेक प्रकार की चिंतायें होने लगी। जहागीर ने अमरसिंह की शक्ति को कमजोर बनाने की दृष्टि से चित्तौड के सिंहासन पर एक नया राणा बठाने का निश्चय किया। इसके लिए सागरजी जो प्रताप का साथ छोड कर मुगलो की सेवा मे चला गया था का चयन किया गया। जहागीर ने स्वय सागरजी का अभिषेक किया और उसे चित्तौड का राणा घोषित किया। परन्तु जहागीर ने जिस आशा से यह कदम उठाया था, उसमे उसे सफलता नही मिली। मेवाड की जनता सागरजी से घृणा करने लगी। सागर ने सात वर्ष तक राणा पद का भोग किया परन्तु उसको स्वय इस दशा पर सतोष और सुख न था। प्रजा की घृणा से वह रात दिन असतुष्ट रहने लगा। वह यह बात समझता था कि मेरा यह वभव मुगल सम्राट की गुलामी का परिचय देता है। चित्तौड का सिंहासन भी मुगलो का दिया हुआ है। उसे इस सिंहासन के आस पास अपना कोई न दिखायी देता था। सभी उसको देशद्रोही और पापी समझते थे। यहा के लोग अमरसिंह को ही अपना राणा मानते थे। इन सब बातो से सागर बहुत अधिक दुखी रहने लगा। एक दिन उसने अपने भतीजे अमरसिंह को बुलवा भेजा और उसे चित्तौड का राज्याधिकार सौंपकर कधार के पहाड की तरफ चला गया।[4] कुछ दिनो बाद वह दिल्ली जा पहुचा। जहागीर ने उसका बहुत तिरस्कार किया। इससे दुखी होकर सागरजी ने बादशाह की उपस्थिति मे ही तलवार से अपने प्राणो का वध कर दिया।

अमरसिंह ने अपने पूर्वजो की राजधानी को तो प्राप्त कर लिया परन्तु अब उसकी सुरक्षा को मजबूत करने का सवाल उठ खडा हुआ। इसलिए राणा ने चित्तौड राज्य के असली महत्वपूर्ण दुर्गों और नगरो पर भी अपना अधिकार जमाया। इनको प्राप्त करने मे अनेक लडाइयाँ लडी गई। इन दुर्गों मे अन्तला नामक दुर्ग को प्राप्त करने मे राणा के दो प्रमुख सामन्तो मे भयकर प्रतिस्पर्धा हुई थी। इस अवसर पर मेवाड वश की दो प्रमुख शाखाओ—चूण्डावतो और शक्तावतो के मध्य सेना के हरावल (अग्रिम पक्ति) के नतृत्व को लेकर झगडा उठ खडा हुआ जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठो मे किया जा चुका है। इस तूफानी प्रतिस्पर्धा मे दोनो ही शाखाओ के सरदार अपने अनेक स्वजनो के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। यहा हम शक्तावतो के उदय के बारे मे लिखेंगे क्योकि मेवाड के भावी इतिहास के साथ उनका सम्बन्ध काफी अर्थपूर्ण रहा है।

उदयसिह के चौबीस पुत्रो मे शक्तसिंह दूसरा पुत्र था। पाच वर्ष की आयु से ही वह वीर पुरुषो के समान तेजस्वी और निर्भीक स्वभाव का परिचय देने लग गया था। उसकी छोटी अवस्था मे ही ज्योतिषियो ने राणा से कहा था कि यह लडका मेवाड के लिए कलक होगा। उदयसिह ने एक बार तो उसे मार डालने की योजना बनाई थी परन्तु सलूम्बर सरदार ने शक्तसिंह को बचा लिया। युवावस्था मे शिकार खेलते समय प्रताप और शक्तसिंह मे झगडा हो गया और दोनो ने द्वन्द्व युद्ध के द्वारा अपनी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का निश्चय किया। परन्तु वृद्ध पुरोहित ने अपने प्राण देकर दोनो को उस प्राणघातक सघर्ष से विमुख किया। दोनो का सघर्ष तो बन्द हो गया पर न्तु प्रताप ने उसी समय शक्तसिंह को मेवाड छोडकर चले जाने का आदेश दिया। शक्तसिंह मेवाड को त्याग कर अकबर की सेवा मे चला गया। हल्दीघाटी के युद्ध मे शक्तसिंह ने खुरासानी तथा मुलतानी सैनिको को मारकर राणा प्रताप की रक्षा की और उस घटना के बाद वह मुगलो की नौकरी को छोडकर मेवाड आकर रहने लगा। प्रताप ने उसका सम्मान किया तथा उसे जागीर प्रदान की।

शक्तसिंह के सत्रह पुत्र थे। भैंसरोडगढ उनकी जागीर थी। सबसे बडे पुत्र के अलावा सभी भाई शक्तसिंह के दाह सस्कार मे उपस्थित हुए। कार्य सम्पन्न कर जब वे वापस लौटे तो दुर्ग के द्वार बन्द मिले। बडे भाई ने उन सभी को कही और जाकर अपना भाग्य आजमाने का आदेश दिया। इस पर अचलसिंह अपने शेष पन्द्रह भाइयो के साथ ईडर की तरफ चल दिया। इस राज्य पर कुछ दिनो पूर्व ही मारवाड के राठोडो की एक शाखा ने अधिकार किया था। मार्ग मे ही अचलसिंह की गर्भवती पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम 'आशा' रखा गया। इसके बाद सभी ईडर पहुँचे जहा उनका उचित सम्मान किया गया और वे वही रहने लगे। जब अमरसिंह ने मुगलो के विरुद्ध सघर्ष शुरू किया तो उसने ईडर से शक्तावत बधुओ को वापस मेवाड बुलवा लिया। अन्तला दुर्ग पर आक्रमण के समय 'हरावल' के प्रश्न

मौके को हाथ से जाने देना मैंने मुनासिब नही समझा। इसलिए फौरन अपने लडके को इख्तियारात देकर भेजा और राणा को माफी दी। साथ ही एक फरमान भेजकर राणा को लिख दिया कि आप मेरे साथ बिना किसी फिक्र के रहेगे। उस फरमान पर मैंने अपना पंजा भी लगा दिया।'

"मेरे लडके ने यह फरमान और एक चिट्ठी सूपकरण और हरिदास नामक सरदारो के साथ भेजी और उनके साथ शुक्रउल्ला व सुन्दरदास को भी भेजा। उसने राणा को कहला भेजा कि बादशाह के इस दस्तखती परवान को कबूल करे। बाद इसके कुछ तारीख को राणा साहब का शाहजादे के पास आना करार पाया।'

शिकार खेलने के लिए जब मैं अजमेर गया, उस वक्त शाहजादे खुरम का मुहम्मद बेगनामी नौकर मेरे पास आया। उसने खुरम की दस्तखती एक चिट्ठी देकर मुझसे कहा कि राणा ने शाहजादा साहब से मुलाकात की थी। इस खबर को सुनते ही मैंने मुहम्मद बेग को एक हाथी, एक घोडा और एक तलवार इनाम में दी और उसको जुल्फिकारखा की पदवी दी।"

राणा अमरसिंह ने तारीख 26 इकशम्बा के रोज बादशाहत के दूसरे मातहत राजाओ की तरह इज्जत और लियाकत के साथ शाहजादा से मुलाकात की। मुलाकात के समय राणा ने शाहजादा को एक बेशकीमती पदमराग बहुत से हथियार बडी कीमत के हाथी और नौ घोडे खिराज में दिये। राणा ने शाहजादे के घुटनो को पकडकर माफी मागी। खुरम ने उन्हे दिलासा दिया तथा एक हाथी, कई घोडे और एक तलवार और खिलत भेंट में दी। राणा के साथ जो राजपूत थे उनको भी इनाम बाटा गया। इन राजा लोगो मे एक रिवाज चला आता है कि बाप बेटे दोनो एक साथ हम लोगो से मुलाकात को नही आते।[6] वक्त पर करण आया। उसको भी हाथी, तलवार और दूसरे हथियारो के सिवाय तरह तरह के खिलत दिये गये।'

सुलतान खुरम ने मुझसे मुलाकात करते हुए कहा कि अगर हुजूर हुक्म दें तो राजकुमार करण आपकी कदमबोसी हासिल करे। मैंने उसको लाने का हुक्म दिया। वह आजजी और अदब के साथ आया। सुलतान खुरम की सिफारिश पर मैंने उसको अपनी दाहिनी तरफ बैठाया और एक उम्दा खिलत दी। राजकुमार इसलिए शरमाया कि वह सख्त पहाडी मुल्को मे रहने के सबब दरबार के कायदा से महज नावाकिफ और ऐश आरामो के सामानो से बिल्कुल महरूम था। दरबार शाही के दबदबे को उसने कभी नही देखा था। उसके मुकरर होने से एक दिन बाद मैंने उसको जवाहिरात से जडी हुई एक छुरी और तीसरे दिन एक ईराकी घोडा दिया। नूरजहां ने भी राजकुमार को सजा सजाया हाथी, घोडा, तलवार और बहुत से जवाहरात इनाम मे दिये।

'दसवाँ साल[1] इस वक्त करण को उसकी जागीर म जाने के लिए छुट्टी थी।[7] उस बार करण जितने दिन तक मेरे दरबार मे रहा, उतने अरसे मे उसको जितना सामान मरे यहाँ स मिला उसकी कीमत दस लाख से ज्यादा होगी उसमे उस इनाम और सामान की कीमत नही लगाई गई है जो शाहजादे खुरम न राजकुमार को दिया था।'

' तारीख 28 रवि उल अव्वल। आज मेरी सल्तनत का ग्यारहवा साल है। मेरे हुक्म से राणा साहब और उनके लडके करण की दो मूर्तिया बनायी गयी ये मूर्तिया सगमरमर की बनी थी। जिस दिन वह दोना मूर्तिया तयार करके मेरे पास लाई गयी, उसी दिन की तारीख उन पर खुदवाकर उ हे आगरा क बाग म फरोखश करन का हुक्म दिया।'

' मेरी सल्तनत के ग्यारहवें वष म एतमादखाँ न मुझको लिख भेजा कि सुल्तान खुरम राणाजी के मुल्क मे गये। वहाँ पर राणा और उनके लडके न सात हाथी, मस्ताईम घोडे जवाहरात और तिलाई गहने वगैरा नजराने मे दिये थे। इस नजराने मे सुल्तान खुरम ने केवल तीन घोडे लकर बाकी सब सामान फेर दिया। उस दिन यह बात भी करार पाई गई कि राजकुमार करण मय प द्रह सौ राजपूतो के मैदान जग म शाहजादा खुरम के पास रह।"

"चौदहवा साल। तारीख 17 रवि उल अव्वल हिजरी सन् 1029 को मुझे राणा अमरसिह के बहिश्त नशीन होने की खबर मिली। राणा का बेटा भीमसिह और पोता जगतसिह यह खबर लेकर मेरे पास आये थे। मैंने उन्हे खिलत दी और राजा किशोरीदास के माफत एक चिट्ठी जिसमे नये राणा के अभिषक की स्वीकृति तथा तख्तनशीन होने का जरूरी सामान भेजा।'

शाही इतिहासकार की उपरोक्त पक्तिया की एकपक्षीय आलोचना स्वय मेवाड राज्य के गौरव को कम कर सकती है इसलिए उन पर निष्पक्ष भाव से प्रकाश डालन की आवश्यकता है। यह ठीक है कि उसकी प्रत्येक पक्ति और प्रत्यक शब्द स उसकी महानता और उच्च हृदय का पूरा परिचय दिखाई देता है। तथापि एक दो स्थानो पर भ्रमवश कुछ दूसरी ही बात लिख गया। उसे इस बात का जानकारी नही थी कि कौन सी महाशक्ति के प्रभाव म गुहिलात वश के राजा लोग यवनो के भयकर आक्रमण को व्यथ कर देत थे इस ही कारण भ्रमवश हो बादशाह न उनके आत्मसमपण का दूसरा कारण निर्देश किया है। ऐसा करन पर भी उसन सीसोदिया वीर अमरसिह के वीर गव की अवमानना नही की है और लिखा है कि स्वदेश छूटगा अथवा कद होना पडेगा यह जानकर विवश हो राणा न अ त म मस्तक झुकाया था। राणा पर विजय पाकर जहाँगीर न अपने को गौरवान्वित समझा था। इस कारण से ही उसने राजकुमार करण को अपनी दाहिनी ओर स्थान दिया था।

दया तथा न्यायप्रियता जसे गुणो के कारण उसके साम त तथा प्रजा के लोग उसे चाहते थे। उसके इन गुणो का वृत्ता त अनेक स्तम्भ तथा पहाडो पर लिखा हुआ बहुतायत स पाया जाता है।

सन्दभ

1 अमरसिंह सवत् 1653 (1597 ई) म मेवाड के सिंहासन पर बठा था।

2 बू दी के भट्ट कवियो के इस विवरण की पुष्टि अय साक्ष्यो से नही होती।

3 यह पगडी अमरशाही पगडी" के नाम से प्रसिद्ध हुई। काफी वर्षो तक मेवाड मे इसका प्रचलन रहा।

4 यह स्थान पावती और चम्बल के सगम स्थान मे रणथम्भौर क्षेत्र मे है। कहा जाता है कि जहागीर का सुप्रसिद्ध सेनापति महावत खाँ इसी सागरजी का पुत्र था जिसने हिन्दू धम को त्याग कर इस्लाम स्वीकार कर लिया था।

5 यह युद्ध 1611 ई मे हुआ था।

6 टॉड साहब के मतानुसार मुसलमानो की विश्वासघातकता से शकित हो हिन्दू राजा लोग पुत्र के साथ शत्रु के यहाँ नही जाते थे ताकि एक के सकट मे फँस जाने पर दूसरा सुरक्षित रहे।

7 भट्ट ग्रन्थो के अनुसार राणा को मनसबदारी के समय सैरार, फूलिया, बदनौर, माडलगढ, जीरन नीमच और भिन्सरोट इत्यादि परगने मिल थे। इसके अलावा उनको देवला और डूँगरपुर के भागो का भी अधिकार मिला था।

8 अमरसिंह का स्वगवास 26 जनवरी, 1620 ई को हुआ था।

अध्याय 22

महाराणा कर्णसिंह, जगतसिंह और राजसिंह

कर्णसिंह सवत् 1677 (1621 ई०) मे मेवाड के सिंहासन पर बैठा। इस समय तक हम इस वश के 1500 वर्षों के इतिहास का उल्लेख कर चुके हैं। कर्ण के शासन काल में मेवाड राज्य ने जिस प्रकार करवट बदली और उसके फलस्वरूप उस राज्य मे जो परिवर्तन हुए उन पर अब प्रकाश डाला जायेगा।

कर्ण म साहस और व्यवहार का अभाव न था और अपने इन दोनो गुणों का प्रमाण भी वह दे चुका था। अपने पिता को प्रारम्भिक कठिनाइयो से राहत पहुचाने के लिए अपनी छोटी सी सेना के साथ द्रुतगति से शत्रुओ के मध्य से सूरत जा पहुँचा और वहा जाकर लूटमार की तथा लूट की सम्पत्ति को लेकर वापस लौटा। इस सम्पत्ति की सहायता से बुरे दिनो म अपने देश की सुरक्षा की थी। परन्तु स्वय अपने शासन काल मे राजपूती शौर्य के प्रदर्शन का उसे विशेष क्षेत्र नही मिल पाया। जहागीर और खुरम के साथ मैत्री की वजह से उसे अपनी प्रजा तथा राज्य का उद्धार करने का पर्याप्त अवसर मिला और इस दिशा मे उसने बहुत से काम भी किये। उसने राजधानी के आसपास के ऊंचे शिखरो की किलेबन्दी की और शहर के चारो तरफ एक परकोटा तथा खाई का निर्माण करवाया। पिछोला तालाब को और अधिक बडा किया गया तथा रनिवास की स्त्रियों के लिये 'रावला' का निर्माण करवाया।

जब राणा अमर ने जहागीर के साथ समझौता किया था, तब उसने अपने तथा अपने उत्तराधिकारियो के मान-सम्मान की रक्षा के लिये यह तय किया था कि मेवाड के राणा को शाही दरबार मे उपस्थित होने से मुक्त रखा जायगा और सीसोदिया राजकुमार भी तभी तक शाही दरबार मे उपस्थित रहेगे जब तक कि वे सिंहासन पर अभिषेकित नही होगे। इस नियम का पालन होता रहा और राजकुमार शाही दरबार मे हाजरी देते रहे परन्तु किसी राणा ने शाही दरबार मे हाजरी नही दी। इस रीति से अपने ऊंचे स्थान से नीचे खिसक आने के बाद भी वे ऊंचे स्थान से च्युत नही हुए। मुगल दरबार मे सीसोदिया राजकुमार को अन्य राजाओं से उच्च स्थान मिला और सीसोदिया सरदारो को भी शाही सेवा मे अन्य राजपूत

मरदारो के समान महत्व प्राप्त हुआ। राणा न भी अपने सोलह प्रतिष्ठित सरदारो का मान बनाये रखा।

थोडे दिनो मे ही सीसोदिया सरदारो न मुगलो के राजपूत सरदारो मे अपनी प्रतिष्ठा कायम कर ली और सत्ता के पूर्ण भागीदार बन गये। इनमे भी, महाराणा कर्ण के छोटे भाई भीम ने विशेष ख्याति अर्जित की। वह बादशाह की सहायतार्थ मेवाड सेना का सेनानायक था। वह शीघ्र ही सुल्तान खुरम का मित्र और परामर्शदाता बन गया। अपने पुत्र की सिफारिश पर बादशाह ने उसे 'राजा' की पदवी और उसके निवास के लिए बनास नदी के किनारे छोटा सा इलाका प्रदान किया। टोडा उस क्षेत्र की राजधानी थी। अपने नाम को चिरायु बनाने की अभिलाषा से उसने एक नये नगर तथा राजमहल का निर्माण करवाया जो "राजमहल" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज से चालीस वर्ष पहले तक यह नगर उसके वशजो के अधिकार मे बना रहा। परन्तु आज उसके वशज एक रुपये प्रतिदिन के वेतन पर शाहपुरा नरेश की सेवा कर जीवनयापन कर रहे हैं।

जहाँगीर सैकडो अनुग्रह दिखाकर भी भीम को अपने वश मे न कर सका। वह भीम को सुल्तान खुरम से पृथक करना चाहता था क्योकि खुरम अपने बडे भाई परवेज के स्थान पर मुगल सिंहासन पर बैठना चाहता था। बादशाह ने भीम को गुजरात का शासन सभालने का आदेश दिया जिसे भीम ने अस्वीकार कर दिया। परवेज ने समझौते के पूर्व मेवाड पर आक्रमण किया जिसे विफल कर दिया गया था। अब भीम ने अपने मित्र को सलाह दी कि यदि वह बादशाह बनने की इच्छा रखता हो तो बिना विलम्ब के कार्यवाही करे। एक युद्ध मे परवेज को मौत के घाट उतार दिया गया और खुरम न अपने पिता के विरुद्ध प्रकट विद्रोह कर दिया। खुरम को राजपूतो के एक शक्तिशाली दल का गुप्त समर्थन प्राप्त था। उनमे मारवाड का राजा गजसिंह, जो खुरम का नाना था, मुख्य था। परन्तु जहागीर को सन्देह न हो इसलिये उसन प्रकट मे तटस्थता प्रदर्शित की। इस विद्रोह को दबाने के लिये जहागीर स्वय आगे बढा, परन्तु राठौडो के प्रति सन्देह होन के फलस्वरूप उसन जयपुर वालो को सेनापतित्व सौपा। इस पर गजसिंह न चुपचाप तमाशा देखने का निश्चय किया। परन्तु भीमसिंह यह सहन न कर पाया। जब दोनो पक्षो की सेनाए आमने सामने आ डटी तो भीम न राठौड को कहला भेजा कि या तो साथ दो अन्यथा विरोध करो। भीम की इस बात से गजसिंह न अपने आपको अपमानित अनुभव किया और वह सेना सहित भीम के विरुद्ध बढा। भीम की सेना नष्ट हो गई और वह स्वय भी मारा गया। खुरम और उसके सेनापति महावत खा न भागकर उदयपुर म आश्रय लिया। वहा पर राणा कर्ण न उनके रहन की अच्छी व्यवस्था कर दी और कुछ दिनो क बाद उसके रहन के लिये एक अच्छा-सा महल बनवा दिया। शाहजादा खुरम बहुत दिनो तक उस महल म बना रहा। इसके बाद वह ईरान की तरफ चला गया।[1]

संवत् 1684 (1628 ई०) में राणा कर्ण का स्वर्गवास हो गया और उसका लड़का जगतसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। इसके कुछ दिनों बाद जहांगीर की भी मृत्यु हो गई और खुर्रम इस समय अज्ञातवास में था। महाराणा जगतसिंह ने अपने भाई के साथ अनेक राजपूतों को खुर्रम के पास सूरत भेजा ताकि उसे इस घटना की जानकारी मिल जाये। राणा का संदेश मिलते ही खुर्रम सूरत से सीधा उदयपुर चला आया।[2] यहीं पर बादल महल में पहली बार साम्राज्य के करद राजाओं और सरदारों के द्वारा उसका "शाहजहाँ" की उपाधि से अभिनन्दन किया गया। यहाँ से जाने के पूर्व वह राणा को अपने राज्य के पांच जिले और एक मूल्यवान मणि भेंट में देकर चित्तौड़ के टूटे हुए दुर्ग की मरम्मत करने की स्वीकृति देता गया।

जगतसिंह ने छब्बीस वर्ष तक शासन किया और उसका सम्पूर्ण समय शांति के साथ व्यतीत हुआ। किसी प्रकार का कोई उपद्रव नहीं हुआ। इस अवधि का उपयोग शांतिप्रिय कलाओं विशेषत स्थापत्य की उन्नति के लिए किया गया। उदयपुर जगतसिंह के प्रति कृतज्ञ है, जिसने कितने ही नये स्थानों की प्रतिष्ठा करायी जिनमें जग निवास और जगमन्दिर अधिक प्रसिद्ध है। इन दोनों स्थानों का निर्माण पिछोला झील के निकट कराया गया। इनके निर्माण में संगमरमर का प्रयोग किया गया और इनके निर्माण में बहुत सा धन व्यय किया गया। यह दोनों ही स्थान सुन्दर और नयनों को तृप्त करने वाले अलंकारों से शोभायमान हैं। दीवारें ऐतिहासिक चित्रों से शोभायमान हैं।

जगतसिंह एक बहुत ही आदरणीय राजा थे और मुगलों के निर्दयी आक्रमणों से राज्य का जो विनाश हुआ था, सभी तरह से उसकी पूर्ति का प्रयास किया। उसके इन कार्यों और गुणों की प्रशंसा कई विदेशी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में की है। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उसने मेवाड़ को फिर से नया जीवन प्रदान किया। मारवाड़ की राजकुमारी से उसके दो पुत्र हुए। उनमें से बड़ा उसका उत्तराधिकारी बना।

राजसिंह संवत् 1710 (1654 ई०) में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा।[3] उसके व्यक्तिगत चरित्र तथा विभिन्न कारणों ने मिलकर उस शांति को नष्ट कर दिया जिसका उपभोग उसका देश लम्बे समय से करता आ रहा था। मुगलों का बादशाह काफी वृद्ध हो चला था और उसके पुत्रों में उत्तराधिकार को प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो चुकी थी और प्रत्येक राजपूत अपने हित के अनुसार किसी न किसी शाहजादे के पक्ष में आ डटा था। राजसिंह का झुकाव सिंहासन के वैधानिक उत्तराधिकारी दारा की तरफ था और सम्पूर्ण राजपूत जाति ने भी लगभग ऐसा ही प्रदर्शित किया। परन्तु फतेहाबाद के युद्ध मैदान ने प्रत्येक विरोध को शान्त करते हुए

औरंगजेब को बढ़त दे दी और उसने अपनी इस बढ़त को सभी प्रकार के विरोध के उपरांत भी कायम रखा। सत्ता की प्राप्ति के लिये उसने सभी मानवीय सम्बन्धों को भुला दिया। उसका पिता भाई और यहां तक कि उसकी अपनी संतान भी उसकी उस सत्ता लोलुपता के शिकार बने जिसने अंत मे मुगलो के राजवंश को ही नष्ट कर दिया।

मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने जिस नीति का सूत्रपात किया और उसका पालन करते हुए अकबर, जहांगीर और शाहजहां ने बहुत से लाभों का उपभोग किया, औरंगजेब ने उस नीति को छोड़ दिया जिसके द्वारा राजपूत लोग उसके परिवार के साथ जुड़े हुए थे। अकबर की नीति जहांगीर और शाहजहां तक कायम रही। दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर दोनों ने अकबर के कायम किये हुये विशाल साम्राज्य को कमजोर नहीं होने दिया और उन्होंने हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं माना था। जहांगीर आमेर की राजकुमारी से उत्पन्न हुआ था और शाहजहां मारवाड़ की राजकुमारी से। परन्तु औरंगजेब की रगों मे राजपूतानी का खून नहीं था। इसलिए उसे राजपूतों की सहानुभूति न मिल सकी। इसके विपरीत प्रत्येक उच्च राजपूत कुल ने शाहजहां के अधिकारों की रक्षा के लिये तथा उसे सत्ता से दूर रखने के लिये अपना रक्त बहाया था। चतुर औरंगजेब इस सत्य से अनभिज्ञ न था और अपने उत्तराधिकारियों के मामले मे उसने अपनी भूल को सुधारने का प्रयास किया था। उसके दो पुत्र—शाहआलम और अजीम तथा उसका प्रिय पुत्र कामबख्श—ये सभी रजपूतानियों की संतान थे। परन्तु वह स्वयं इन सम्बन्धों से अप्रभावित रहा और उसकी धर्मान्धता उसकी नीति पर हावी हो गई और उसने राजपूतों के प्रति प्रतिशोधात्मक कटुता की नीति को अपनाया।

औरंगजेब के शासनकाल मे जितने तेजस्वी और साहसी हिन्दू राजा हुए उतने पहले कभी न हुए थे। आमेर का राजा जयसिंह (मिर्जा राजा), मारवाड़ का जसवंत सिंह, बूंदी और कोटा के हाडा राजा, बीकानेर का राठौड़ राजा, ओरछा और दतिया के बुंदेले–सभी शक्तिशाली एवं पराक्रमी थे और उनके सहयोग से साम्राज्य को कायम रखा जा सकता था परन्तु औरंगजेब ने अपनी धर्मान्धता से सभी को विमुख कर दिया। इससे प्रेरित होकर महाराष्ट्र मे शिवाजी ने स्वतंत्रता की योजना बनाई और उसकी इस भावना को राजस्थान के राजाओं से समर्थन का संकेत मिला। इसमे कोई सन्देह नहीं कि औरंगजेब के समान वीर और विद्वान् शासक उसके वंश मे शायद ही कोई हुआ हो परन्तु उसकी धर्मान्धता ने उसका विनाश कर दिया। उसका एक मुख्य दोष यह था कि वह किसी का विश्वास नहीं करता था। अपने मित्रों तथा शुभ चिन्तकों से भी वह अपनी बातों को छिपाकर रखता था। परिणामस्वरूप लोगों का उसके प्रति अविश्वास बढ़ता गया और उसका अपना कोई न रहा। उसने हिन्दुओं के साथ निर्दय व्यवहार किया और तलवार के बल पर धर्म परिवर्तन के लिए हिन्दुओं को विवश

किया था। याय के अभाव मे उसके राज्य मे अराजकता वढ गई थी। अधिक सख्या मे हिन्दुओ के भाग जाने से राज्य के नगर ग्राम और वाजार सून हो गये थे। कृपको के पलायन स कृपि व्यवसाय को भी गहरा आघात पहुचा था। सरकारी कोप मे धन का अभाव हो गया और चारो तरफ अशान्ति वढ गई थी। काल की विधि के नियमानुसार जिस समय धीरे धीरे उसकी आयु क्षय होने को हुई, उस समय औरंगजेव को महाकष्ट होने लगा। शोक म दु खित और निराश हो सहसा चिल्ला उठा! "यह क्या है ? जिस ओर को मैं देखता हू उसी ओर केवल दवता दिखलाई देते हैं।"

राजसिंह ने अपने राज्याभिषेक की शुरुआत 'टीकादौर' की पुरानी और लडाकू प्रथा को पुन लागू करके की और अजमेर के सीमान्त पर स्थित मालपुरा को लूटा। जब शाहजहा को अपराधी को सजा देने की सलाह दी गई तो उसने उत्तर दिया 'मेरे भतीजे ने नादानी मे यह काम किया है।" उसकी शूरवीरता को की गइ अपील ने उसे औरंगजेब, जो अब तक अत्यन्त बलवान हो चुका था, के विरुद्ध तलवार धारण करने को प्रेरित किया और उस मुगलो के साथ बहुत से युद्ध करने पडे। इन युद्धो मे औरंगजेब भी कई बार पराजित हुआ, यहा तक कि कई बार उसका प्राण तक सकट मे पड गया था। औरंगजेब ने मारवाड घराने की छोटी शाखा रूपनगर की राज कुमारी के साथ विवाह करने का निश्चय किया और उसका डोला लाने के लिए दो हजार सैनिको को रूपनगर भेज दिया। परन्तु उस गर्वीली राजकन्या ने इस प्रकार के प्रस्ताव से क्षुब्ध होकर अथवा राणा की वीरता से मुग्ध होकर औरंगजेब के प्रस्ताव को ठुकराकर अपने देश के रोमांचपूर्ण इतिहास मे एक और अध्याय जोड दिया। उसने अपने कुल पुरोहित के हाथ एक पत्र राणा राजसिंह के पास भिजवाया। पत्र म लिखा था कि क्या राजहंसी को बगले की सहेली होना होगा ? अथवा पवित्र राजपूत कुल कामिनी मलेच्छ की अंकशायिनी होगी ? महाराज! मैं आपसे निश्चय कहती हूँ कि जो आप इस विपत्ति से उद्धार नही करेंगे तो मैं अवश्य ही आत्मघात करके प्राणो को त्याग दूगी।" राजकुमारी की करुणामय पुकार तथा कुछ अन्य कारणो स राजसिंह ने उसका उद्धार करने का निश्चय कर लिया। अपने चुने हुए सैनिको को साथ लेकर राजसिंह अरावली की तलहटी म स्थित रूपनगर जा पहुँचा और मुगल सैनिको को खदेड कर राजकुमारी प्रभावती के साथ उदयपुर वापस आ गया।[4] उसके इस साहसी कदम का प्रत्येक शूरवीर राजपूत ने स्वागत किया।

राजस्थान के इतिहासकार इस समय के इतिहास के प्रति उदासीन है परिणामस्वरूप इस युग की घटनाओ की वास्तविक जानकारी नही मिल पाती। फिर भी मारवाड के जसवन्तसिंह और जयपुर के जयसिंह की मृत्यु के बाद ही औरंगजेब अपनी धर्मान्धता का खुलकर प्रदर्शन कर पाया। औरंगजेब ने उन दोनो को विप खिलवा दिया जिससे उन दोनो की मृत्यु हो गई। जसवन्तसिंह सुदूर काबुल म मरा तो जयसिंह की मृत्यु दक्षिण म हुई। इसके बाद ही, सम्पूर्ण हिन्दू जाति पर जजिया नामक घृणित

कर लगान की अपनी योजना को वह मूर्त रूप दे सका। परन्तु उसने अपने कार्यों का गलत अनुमान लगाया था। उपर्युक्त राजाओं की हत्याओं से उसे प्रचण्ड विरोध का सामना करना पड़ा। उसने मारवाड नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात उसके बच्चों को अपने जाल में फसाने का प्रयास किया परन्तु राठौड सरदारों ने उसकी योजना को विफल बना दिया। मारवाड के शिशु उत्तराधिकारी अजीत की माता मेवाड की राजकुमारी थी और उसने अपने हितों की रक्षा के लिये राणा राजसिंह से प्रार्थना की और शिशु अजीत को मेवाड में आश्रय दिये जाने की माग की। राणा ने उसकी प्रार्थना को तत्काल स्वीकार कर लिया और अजीत की माता के पास सदेश भिजवा दिया कि वह बच्चे को केलवा भिजवा दे। राणा का सदेश मिलते ही अजीत की मा ने दो हजार सैनिकों की देखरेख मे अजीत को मारवाड से भिजवा दिया और वह स्वय मुगलों के विरुद्ध संघर्ष को जारी रखने के लिये मारवाड में ही रही। राठौडों और सीसोदियो के मिलन से मुगल सिंहासन के लिए भयकर सकट उत्पन्न हो गया।

औरगजेब द्वारा समस्त हिन्दुओं से जजिया कर वसूल करने का फरमान जारी करने पर राणा राजसिंह ने हिन्दू राष्ट्र के अध्यक्ष की हैसियत से औरगजेब को एक लम्बा पत्र लिख भेजा।[5] इस पत्र मे उसने उसके सारे कारनामो का उल्लेख किया जो मुगल साम्राज्य मे हिन्दुओं के विरुद्ध चल रहे थे। इस पत्र ने राजसिंह द्वारा प्रभावती के साथ विवाह और अजीतसिंह को आश्रय देना आदि कार्य औरगजेब को चुनौती थे और ये सभी औरगजेब के लिये असह्य थे। वह अत्यधिक क्रोधित हो उठा और उसने मेवाड पर आक्रमण करने का निश्चय किया और इसके लिये जोरदार सैनिक तैयारी की। बगाल से शाहजादा अकबर और काबुल से अजीम को बुलाया गया। मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारी शाहजादा मुअज्जम को भी दक्षिण से सेना सहित बुलाया गया। इस विशाल सेना के साथ औरगजेब ने मेवाड की तरफ कूच किया। राजसिंह ने भी युद्ध की तैयारी की। मुगल सेना के आने की सूचना मिलते ही प्रजा अपने अपने स्थानों को छोडकर पहाडी स्थानो मे चली गई। प्रजा के पलायन से मेवाड के बहुत से स्थान सुनसान हो गये और उन पर मुगलो का अधिकार हो गया। थोडे ही समय मे चित्तौड, माडलगढ मदसौर, जीरन आदि नगरो के साथ साथ दुर्ग भी मुगलो के अधिकार मे चले गये और उन पर मुगलो का प्रबन्ध शुरू हो गया। इस बीच, राजसिंह ने अरावली के पहाडो मे शत्रुओं का सामना करने की तैयारी कर ली थी। मुगलो से संघर्ष करने के लिये अनेक पहाडी जातियो के लोग अपने धनुष-बाणों के साथ राणा की सहायता के लिये आ पहुचे। दोनो तरफ से युद्ध की जोरदार तैयारियां की गई। राणा ने अपनी सेना को तीन भागो मे विभाजित किया और उनको अलग अलग सेनापतियों के अधिकार में रखा। उसने अपने बडे लडके जयसिंह को अरावली के शिखर पर नियुक्त किया ताकि वह आवश्यकतानुसार पहाड के दोनो तरफ शत्रु पर आक्रमण कर सके। पश्चिम की तरफ राजकुमार भीमसिंह को नियुक्त

किया गया। राजसिंह स्वय मुख्य सेना के साथ पहाडा के बीच मे जाकर शत्रु का रास्ता देखन लगा। औरगजेब अपनी सेना के साथ देवारी नामक स्थान तक आगे बढा परन्तु घाटी के भीतर प्रवेश करने के स्थान पर वही डेरा डाल दिया और अपने पुत्र अकबर को पचास हजार सनिको के साथ उदयपुर की तरफ भेजा। माग मे पडन वाले ग्रामो को उजाडती हुई अकबर की सेना उदयपुर की तरफ बढने लगी। इन गावो के लोग पहले से ही पहाडो मे भाग गये थे। अत मुगल सेना को किसी प्रकार के प्रतिरोध का सामना नही करना पडा। उम सुनसान इलाके मे शाहजादे अकबर न अपना डेरा डाल दिया। राजकुमार जयसिंह अकबर की गतिविधियो पर निगाह रखा हुआ था। वह अपनी सेना के साथ उस तरफ बढा जहा अकवर न पडाव डाला था। वहा पहुचते ही राजपूतो न मुगलो पर जोरदार हमला बोल दिया। उस समय का उल्लख करते हुए भट्टग्रन्थो मे लिखा है कि जिस समय राजपूतो ने आक्रमण किया था, उस समय मुगलो मे कुछ नमाज पढ रह थे और कुछ शतरज के खेल मे दत्तचित थे। आक्रमण होते ही मुगलो ने भागने का प्रयास किया लेकिन चारो तरफ से घिर जान की वजह से उ हे रास्ता नही मिला और उनमे से अधिकाश को अपने प्राणो से हाथ धाना पडा। शाहजादे अकबर ने अपनी सेना सहित औरगजेब की मुख्य सेना तक जान का निश्चय किया पर तु जयसिंह ने उसका रास्ता रोक दिया। इस पर शाहजादे ने गोगु दा हाते हुए मारवाट की तरफ जाने का निश्चय किया। यह माग और भी कष्टप्रद सिद्ध हुआ और उसे भयकर सकट का सामना करना पडा। आसपास के राजपूत माम तो न भीलो की सहायता से शाहजादे के आगे बढने का माग रोक दिया और पीछे स जयसिंह की सेना ने रास्ता रोक रखा था। इस प्रकार, शाहजादा अकवर लम्बे मकीए पहाडी माग मे घिर गया। इसी अवस्था मे कुछ दिन बीत गये। विवश होकर उसन जयसिंह से प्राणा का बचाने की प्राथना की। अकबर ने युद्ध को समाप्त करवान का वचन दिया। तब जयसिंह ने उसको जाने दिया।[6]

शाही मना की एक दूसरी टुकडी दिलेरखाँ के नतृत्व मे मारवाड की तरफ से देसूरी घाटी के रास्त से आग बढी। राजपूतो न उसे बिना किसी प्रतिरोध के आगे बढा दिया। जब यह सेना पहाडा के मध्य सकरे माग से गुजर रही थी, तब विक्रम सोलकी और गोपीनाथ राठौड[7] के नतृत्व म मवाड की सेना न उस पर अचानक आक्रमण कर नष्ट कर दिया। मुगलो की बहुत सी युद्ध सामग्री राजपूतो के हाथ लगी।

अकबर और दिलरखाँ के पराजित होने के बाद राणा राजसिंह न बादशाह औरगजेब पर आक्रमण किया। औरगजेब इस समय अपन पुत्र अजीम के साथ देवारी नामक स्थान पर डेरा डाल हुए था और अकबर तथा दिलरखाँ की पराजय की सूचना उसे मिल चुकी थी। दोनो तरफ से घमासान युद्ध हुआ। औरगजेब न जिस राठोड राजवश का नाश करने का प्रयास किया था उसी वश के राठौड राज

पूत अपने नेता दुर्गादास के अधीन बादशाह के लिए प्राणघातक सिद्ध हुए। वे अपने राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु को भूले न थे और उसका बदला चुकाने के लिए मुगल सेना पर बाघ की तरह झपट पडे। बादशाह इस आक्रमण का सामना न कर पाया, उसकी तोपो ने कुछ देर तक तो कोहराम मचाया परन्तु वे भी राजपूतो के भीषण आक्रमण से शान्त हो गई और विवश होकर औरगजेब को अपनी बची हुई सेना के साथ प्राण बचाकर भागना पडा। उसकी तोपो और शिविर का बहुत सा सामान राजपूतो के हाथ लगा। बादशाह के बहुत से हाथी राजपूतो के कब्जे मे आ गये। यह युद्ध सवत् 1737 (1681 ई०) के फाल्गुन मास मे हुआ था। इस युद्ध मे राजसिंह विजयी रहा।

देवारी से भागकर औरगजेब ने चित्तौड के निकट अपना शिविर लगाया। उसने दक्षिण से अपने पुत्र मुअज्जम का भी बुलवा भेजा। इस बीच जयमल के वशज सावलदास ने अपनी सेना के साथ बादशाह की सेना पर आक्रमण कर दिया। औरगजेब अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए वहा स अजमेर की तरफ चला गया और अपने लडके अकबर और अजीम को युद्ध के लिए छोड गया। अजमेर से उसन अपने दोनो लडको की सहायता के लिए खान रोहिला के नेतृत्व मे एक बडी सेना भेजी। सावलदास को जब इसकी सूचना मिली तो वह मारवाड के राठौडो के साथ रोहिला खा की तरफ बढा और पुरमडल नामक स्थान पर उस पर जोरदार आक्रमण किया। कुछ देर के सघर्ष के बाद मुगल सेना अजमेर की तरफ भाग गई।

इस समय तक राजकुमार भीम न गुजरात पर आक्रमण कर दिया था। उसन ईडर पर अधिकार कर लिया और वहाँ के अधिकारी हुसन को मार भगाया। वहा से वह प्रान्त के सूबेदार के निवास स्थान पट्टन नगर की तरफ बढा और उस नगर को लूटा। उसके बाद कई एक दूसरे स्थानो को लूटकर वह सूरत की तरफ बढा। परन्तु राणा के आदेश से उसे वापस लौटना पडा। राणा के एक अन्य अधिकारी दयालशाह सवारो की एक सेना के साथ मालवा की तरफ बढा और उसन नवदा तथा बेतवा नदी के किनारे तक लूटमार की और उसके बाद मारगपुर देवास, सिरोज, माडू उज्जन और चदेरी को लूटा और इन नगरो के रक्षको का मौत के घाट उतार दिया। दयालशाह ने मुगलो से भयानक बदला लिया और मालवा का श्मशान मे बदल दिया। लूट के माल सहित दयाल राजकुमार जयसिंह के पास पहुचा। उस समय शाहजादा अकबर चित्तौड के पास पडाव डाले था। दोनो न मिलकर अकबर पर आक्रमण किया। अकबर पराजित होकर अपने सैनिको के साथ रणथम्भौर की तरफ भाग गया। भागते हुए अकबर का राजपूतो ने पीछा किया और उसके बहुत से सनिको को मार डाला। इसके बाद राजकुमार भीम न अपनी सेना के साथ शाहजाद अकबर पर आक्रमण किया और उसे बुरी तरह से पराजित किया। बार बार की पराजयो से अकबर विचलित हो गया और उसने राणा से मिलकर मित्रता कायम

करने का प्रयास किया । राजपूत सामन्तो ने भी औरगजेब को हटा कर सिंहासन पर अकबर को बैठान की योजना बनाई । योजना का कार्यान्वित करन क लिए जोरदार तयारिया आरम्भ कर दी गई । शीघ्र ही यह समाचार गुप्त भाव स अक्बर को कहला भेजा । परम धार्मिक वृद्ध शाहजहा को सिंहासन से उतार कर पिता से द्रोह करने वाल दुष्ट औरगजेब ने ससार मे जो अत्यन्त घृणित उदाहरण स्थापित किया था, शाहजादा अकबर भी उस उदाहरण के अनुसार उस सुयोग को त्याग न कर सका इस कारण उसने राजपूतो के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । एक ज्योतिषी ने आकर अकबर के अभिषेक का दिन भी निश्चित कर दिया । परन्तु वह ज्योतिषी विश्वास घातक निकला । वह औरगजेब के पास गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त उसे सुना दिया । औरगजेब एक बार तो घबरा गया पर तु उत्साहरहित नही हुआ । उसने अपनी स्थिति पर विचार किया । इस समय वह अकेला था, मात्र कुछ अगरक्षक उसके साथ थे । मुअज्जम और अजीम बहुत दूर थे और विद्रोही शाहजादा अकबर एक दो दिन के माग पर ही था । इस विपत्ति मे भी कुटिल औरगजेब ने अपनी रक्षा का उपाय ढूढ निकाला । उसने अक्बर के नाम एक पत्र लिखा और अपने गुप्त दूत के हाथ उस पत्र को राजपूतो के सेनापति दुर्गादास के डेरे मे डलवा दिया । पत्र मे अक्बर की प्रशसा करते हुए बादशाह ने लिखा था हे पुत्र ! तुम्हारी इस चतुरता के वृत्तान्त को जानकर मैं अत्यन्त ही सतुष्ट हुआ, परन्तु सावधान रहना । देखो कही राजपूत लोग इस हमारे गुप्त षडयन्त्र को न जान सकें जब वह हमारे साथ युद्ध करने लगे उसी समय तुम अपनी सेना को साथ लेकर भली भाति उनका सहार करना । ऐसा करने से ही हमारी अभिलाषा सिद्ध होगी । औरगजेब का यह पत्र दुर्गादास के हाथ लगा। पत्र को पढकर दुर्गादास का विश्वास अक्बर से हट गया और वह अपनी सेना सहित वापस लौट आया । राजपूतो के एक बार ही बदल जान का कारण अकबर ने जाना और वह अपने दुर्भाग्य पर आसू बहान लगा । इस बीच मुअज्जम और अजीम औरगजेब के पास आ गये थे जिससे वह निष्कटक हो गया । अकबर न पुन राजपूतो का आश्रय लिया । राजपूतो को भी बादशाह की कुटिलता का पता चल गया । अत उन्होने अकबर को आश्रय और आश्वासन दिया । राठौड दुर्गादास उसे महाराष्ट्र मे वीर शम्भाजी के पास ले गया । अक्बर कुछ दिनो वहा पर रहा । फिर वहाँ से वह फारस को चला गया ।

अमने ने लिखा है कि अपने भाई शुजा को पठानो के बीच मे देखकर औरगजेब जसी चिंता से पीडित हुआ था आज शम्भाजी के पास अक्बर के जाने का वृत्तान्त सुनकर भी उसे उसी प्रकार का दुख हुआ और राजपूतो से अक्बर की मित्रता होना उसके लिए और भी दुखदायी हो गया । उसकी इच्छा राजपूतो के साथ सधि करने की हुई ।" मुगल सेनापति दिलर खा के अधीन एक प्रतिभा सम्पन्न राजपूत सरदार काम करता था । उसने बादशाह की समस्या का हल किया । भट्ट

ग्र-थो मे उसका नाम राजा श्याममिंह दिया गया है। उसी कीमध्यस्थता से राणा राजसिंह और औरगजेब म स धि की बात तय हो गई। पर-तु उस होने वाली स धि के पहले ही सवत् 1737 (1681 ई०) मे राणा राजसिंह की मृत्यु हो गई। सिंहा सन पर बठने के बाद उसने लगातार युद्ध किये थे और उसके शरीर मे बहुत से जख्म हो गये थे। उ-ही के कारण उसकी मृत्यु हुई।

राणा राजसिंह ने अपने बल विक्रम से मेवाड के नष्ट हुए गौरव का पुनरुद्धार किया तथा राज्य के वभव के लिए बहुत से काम किये।

राज सम-द झील—गोमती नामक पहाडी नदी की धारा को रोककर महा राणा राजसिंह ने एक बहुत बडी झील का निर्माण करवाया और अपने नाम के आधार पर उसका नाम राजसम-द" रखा। यह झील राजधानी से लगभग 25 मील उत्तर की ओर स्थित है। यह झील बहुत गहरी है और उसका घेरा लगभग बारह मील का है। यह सगमरमर का बना हुआ है। इसके किनारे से नीचे तक सगमरमर की सीढिया बनी हुई हैं, जि होने चारो ओर से इस झील को घेर रखा है। झील के दक्षिणी ओर राणा ने एक नगर और किला बनवाया। उसे राज नगर" के नाम से विख्यात किया। बधे के ऊपरी भाग म श्रीकृष्ण का एक सु दर म दिर बनवाया जिसमे समस्त काय सगमरमर से हुआ। उसके बनवाने मे अठानवें लाख रुपये खच किये गये थे। इस मन्दिर के निर्माण मे साम तो, सरदारो और प्रजा ने भी राणा को आर्थिक सहयोग दिया। भयकर दुर्भिक्ष से पीडित हुई प्रजा के असीम कष्ट को ध्यान मे रखकर राजसिंह ने इस झील का निर्माण करवाया था। यह सात वष मे बनकर तैयार हुई। इसके प्रारम्भ और उपसहार मे देवताओ की पूजा की गई तथा नाना प्रकार के बलिदान किये गये थे।

सवत् 1717 के भयानक दुर्भिक्ष और महामारी के लोमहषण वृत्ता त प्रकट हुआ। जिस समय यह दोनो कुग्रह मेवाड भूमि को पीडित कर रहे थे उसी समय औरगजेब ने भी यह युद्ध किये थे। उसके कठोर अत्याचारो से दुर्भिक्ष से पीडित मेवाड की दुदशा और भी अधिक बढ गई थी, इसका अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है। कि-तु मुगल बादशाह को उसका फल भोगना पडा। मुगलो के हाथ से शासन सत्ता जाती रही।

सन्दर्भ

1 शाहजादा खुरम उदयपुर से माण्डू के माग से दक्षिण की तरफ गोलकुण्डा गया था न कि इरान।

2 शाहजहाँ को सही सूचना भेजने वाला व्यक्ति उसका ससुर ग्रासफ खाँ था जो कि नूरजहा का भाई था ।

3 डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार राजसिंह सन् 1652 ई मे सिंहासन पर बैठे थे ।

4 औरंगजेब अपनी अप्रसन्नता को पी गया और कुछ समय तक दोनो के सम्बन्ध पूर्ववत् बने रहे ।

5 डा गोपीनाथ शर्मा का मानना है कि जजिया कर को लेकर मुगल मेवाड सबध बिगडे हो, ऐसा प्रमाणित नही होता । जहा तक इस पत्र का सवाल है, वह विवादास्पद है ।

6 अमन ने लिखा है कि औरंगजेब स्वय भी अपनी सेना के साथ ऐसी विपत्ति म फँस गया था ।

7 विक्रम सोलकी रूपनगर का राजा था और गोपीनाथ गानोर नगर का सरदार था ।

अध्याय 23

महाराणा जयसिंह और अमरसिंह द्वितीय

राणा राजसिंह की मृत्यु के बाद उसका दूसरा लडका जयसिंह सवत् 1737 (1681 ई०) मे मवाड के सिंहासन पर बैठा। जयसिंह के जन्म के समय मे जिस प्रकार की घटना घटित हुई उसका यहा उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है जो राजस्थान के राजवश मे प्रचलित बहु विवाह के प्रति सकेत करती है और उसके दुष्परिणाम उजागर करती है। जयसिंह के जन्म होने के कुछ ही देर पहले उनकी सौतेली माता के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम भीम था। राजवश मे नवीन कुमार के जन्म लेने पर सौवर मे ही उसके हाथ म अमरधव नामक एक प्रकार का स्वास्थ्यकर कडा पहना दिया जाता था, जो तिनको का बनता था। महाराणा राजसिंह ने छोटे पुत्र की माता के प्रति विशेष प्रेम होने के कारण उसी के पुत्र के हाथ मे पहले 'अमरधव" पहना दिया। धीरे धीरे दोनो भाई बडे होने लगे। राणा का प्रेम आरम्भ से ही जयसिंह के साथ अधिक था। अब राणा को ख्याल हुआ कि इन दानो मे आगे चलकर राज्याधिकार के लिये सघर्ष पैदा होगा। इस शका से शकित हो राणा ने एक समय भीमसिंह को अपने पास बुलाया और अपनी तलवार उसके हाथ मे देकर कहा कि, 'इस तलवार का लेकर शीघ्र ही अपने छोटे भाई को मार दे, अन्यथा आगे इस राज्य मे घोर विपत्ति के होने की सभावना है।' राजकुमार भीम अपने पिता का आशय समझ गया। उसने अचल भाव से उत्तर दिया, 'आप कुछ भी शका न करे। मैं आपके सिंहासन का स्पर्श करके कहता हू कि आज से मैं अपने समस्त स्वत्व को त्याग कर जयसिंह को दे दूगा। इस समय के बाद से मैं आपके राज्य मे कही पर पानी पीऊँ तो मै आपका लडका नही। यह कहकर भीम अपने साथी सैनिको और नौकरो के साथ उदयपुर से चला गया।

गर्मी के दिन थे। राजकुमार भीम अपने दल के साथ उदयपुर से चलकर देवारी के पहाडी माग से गुजर रहा था। दोपहर की तेज धूप म कुछ विश्राम करने के उद्देश्य म वह एक घन वृक्ष की छाया म ठहर गया। अपनी अवस्था को विचार कर अपनी जन्मभूमि को देखने लगे। उसी समय सेवक शीतल जल ले आया। भीम ने पानी के पात्र को मुह से लगाया ही था कि सहसा उसे अपना वचन याद आ गया

और उसने पात्र को फेंक दिया। इसके बाद वह घोड़े पर सवार होकर तेजी के साथ राणा के राज्य की सीमा से बाहर चले गये। इसके बाद उसने बादशाह के बेटे बहादुरशाह के पास जाने का निश्चय किया। बहादुरशाह ने सम्मान के साथ उसे अपनी सेवा मे रख लिया और उसे तीन हजार सवारो का सरदार बना दिया। उसके भरण पोषण के लिये अपनी जागीर के बारह जिले दिये। बाद मे एक मुगल सेनानायक के साथ भीम का झगड़ा हो गया। तब बहादुरशाह ने भीम को सिन्धु नदी के उस पार भेज दिया। वही पर राजकुमार भीम की अकाल मृत्यु हुई।

इस समय हम महाराणा जयसिंह के चरित्र की समालोचना करेंगे। सिंहासन पर बैठने के कुछ दिनो बाद ही उसने औरंगजेब के साथ सधि कर ली। वैसे सधि की बहुत सी बातो का निर्णय राजसिंह के समय मे ही हो गया था। बादशाह का पुत्र अजीम और मुगल सेनानायक दिलेर खा उस सधि पत्र को लेकर राणा के पास आये। पिछले युद्ध मे अरावली पर्वत के कठिन स्थानो मे बादशाह की फौज सकट म पड गई थी। उस समय जयसिंह न दिलेर खा और बादशाह के लडके साथ अत्य त उदारता का व्यवहार किया था। दिलेर खा जयसिंह की उस उदारता को भूला न था। सधि के अनुसार राणा को अपने राज्य के तीन जिले बादशाह को देने पडे और यह तय हुआ कि सधि के बाद राणा को लाल रग के डेरे और छत्र के प्रयोग का अधिकार न रहेगा। सधि का काम समाप्त हो जाने के बाद भी उदयपुर मे राणा के हजारो सनिको का जमाव देखकर अजीम के मन मे जो स देह उत्पन्न हुआ, वह बराबर बना रहा और उसे दूर करने के लिये दिलेर खा न उदयपुर से बिदा होते समय राणा से कहा, आपके सरदार और साम त स्वाभाविक रूप से कठोर हैं और मेरा पुत्र आपके मगल के लिये बधक रखा गया है पर तु उसके जीवन के बदले मे यदि आपके देश की पूर्ण स्वाधीनता को पूर्णोद्धार कर सकू तो मैं इसमे भी न्यूनता नही करूगा आप अपने चित्त को स्थिर रखिये। यह सधि उस मित्रता की परिचायक है जो आपके पिता और मेरे बीच म कायम हुई थी।

यद्यपि दिलेर खा का उद्देश्य महान् था पर तु उसका उद्योग सफल न हुआ। चार पाच वर्ष बाद ही राणा जयसिंह को अपनी तलवार का विश्वास करना पडा। मुगलो के भीषण आक्रमणो से अपनी रक्षा के लिये उसे बार बार पर्वतो का आश्रय लेना पडा और अनेक बार युद्ध करने पडे। राज्य की इस प्रकार दुर्दशा के समय और लगातार युद्धो के कारण राणा का बहुत सा धन खर्च करना पडा, पर तु इन कठिनाइयो और धन हानि के बाद भी राणा ने कुछ ऐसे काम किये जो उसकी योग्यता का परिचय देते हैं। उसने जयसम द नाम की एक बहुत बडी झील का निर्माण पहाडियो के मध्य एक विशाल बाध को बाधकर करवाया। भट्ट ग्र थो म लिखा है कि उस समय देश मे जितनी झीलें थी यह झील सबसे बडी और दर्शनीय थी। इसका घेरा तीस मील से अधिक है। इस झील के एक किनारे पर राणा ने अपनी प्रिय पत्नी कमलादेवी के लिये एक भ य महल बनवाया था।

राणा जयसिंह एक विलासी व्यक्ति थे और इस विलासिता ने उसको स्त्री-परायण बना दिया और उसकी इस कमजोरी न उसके पारिवारिक जीवन को कष्ट-दायी बना दिया। उसकी इस चारित्रिक कमजोरी ने उसके सम्मान को भी काफी क्षति पहुँचाई। *जयसिंह के बहुत सी रानिया थी जिनमे सबसे बडी बूदी के हाडा* वश की राजकुमारी थी। वह उसके सबसे बडे लडके अमर सिंह की मा भी थी। धर्मानुसार राणा को अपनी बडी रानी के ऊपर ही अधिक अनुराग और सम्मान करना था। परन्तु काम वासना से प्रेरित जयसिंह अपनी सबसे छोटी और सुन्दर रानी कमलादेवी पर विशेष रूप से आसक्त थे। इस कारण जयसिंह के परिवार म ईर्ष्या भाव की वृद्धि हुई और इस ईर्ष्या न धीरे धीरे राणा के परिवार म शत्रुता पैदा कर दी जिसके परिणामस्वरूप राणा क सम्मान को ही धक्का नही लगा अपितु मेवाड राज्य की मर्यादा भी नष्ट हो गई। यह सब बहु विवाह प्रथा का फल था।

कमलादेवी के प्रति जयसिंह के विशेष अनुराग से अमरसिंह की माता म अपनी सौत के प्रति घृणा बढती गई। राणा जयसिंह जिसने अपने पिता के समय म तथा कुछ वर्षो बाद तक औरगजेब के विरुद्ध अद्भुत वीरता का परिचय दिया अपन अन्त पुर की आग को न बुझा पाया। उल्टे उसन सभी रानियो को छोडकर कमलादेवी के साथ अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया। राजधानी का उत्तरदायित्व अमरसिंह को सौपकर तथा अमरसिंह को पचोली नामक मन्त्री के सरक्षण म देकर जयसिंह अपनी रानी कमला के साथ जयपुर चला आया और यहाँ एकान्त म भोग विलास म समय बिताने लगा। परन्तु वह अधिक दिना तक चैन से न रह सका। अमरसिंह के उपद्रवो तथा मन्त्री के साथ उसके झगडे का समाचार सुनकर उसे वापस अपनी राजधानी लौटना पडा।

जयसिंह के वापस आते ही अमरसिंह न अपनी माता स विचार विमर्श किया और अपन पिता का विरोध करन का निश्चय किया। अत वह अपन मामा के पास बूदी जा पहुँचा और वहा स दस हजार सवारो की सेना के साथ अचानक अपन पिता के राज्य म घुस आया। इस अवसर पर मेवाड के बहुत स सरदारो न भी अमरसिंह का साथ दिया जिससे झगडा अनिवार्य हो गया। राणा भारी सकट मे फस गये। झगडे का कोई समाधान न मिलने पर वह राजधानी छोडकर गोडवार की तरफ चला गया और पुत्र को सावधान करने के लिए वहा के प्रधान साम न को उसके पास भेजा। परन्तु राज्य के बहुत से सरदारो की सहायता पाकर अमरसिंह काफी गर्वित हो गया था, इसलिए उसन अपन पिता की बात को अनसुनी कर दिया और राज्य के खजाने पर अधिकार जमाने की दृष्टि स कुम्भलगढ की तरफ बढा। कुम्भलगढ का सरदार राणा के प्रति निष्ठावान था और यद्यपि अमरसिंह तब अपनी सेना के साथ गया था फिर भी उस सरदार न अमरसिंह का मनोरथ विफल कर दिया। इस प्रकार के अन्य कुछ कारणो के उत्पन्न हो जाने से राजकुमार की [illegible]

क्षीण पडने लगी और उसका आत्म विश्वास भी लडखडाने लगा। विवश होकर उसने अपने पिता के साथ समझौता कर लिया। यह निश्चय हुआ कि राणा तो राजधानी लौट आय और अमरसिंह अपने पिता के जीवनकाल में उस निजन महल मे जाकर निवास करे।

राणा जयसिंह ने बीस वष तक शासन किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका बडा पुत्र अमरसिंह (द्वितीय) सवत् 1756 (1700 ई) म राज सिंहासन पर बठा। पिता के जीवनकाल म वह अपने व्यवहारो के कारण अनेक प्रकार की हानियाँ उठा चुका था, जिससे वह अपनी शक्तियो का सचय न कर सका। फिर भी उसमे वीरता और समझदारी की कमी न थी। उन दिनो मे मुगल साम्राज्य भी आन्तरिक झगडा का केन्द्र बना हुआ था। परिस्थितियो को देखकर अमरसिंह ने सम्राट के उत्तरा धिकारी शाहआलम के साथ सधि कर ली।[2] यह सधि चुपचाप हुई थी। जिस समय शाहआलम सिन्धु नदी के पश्चिम पार हो गया था, उस समय मेवाड की सह कारी सेना ने उसकी सहायता करन के लिये वहा गमन किया। ऐसा कहा गया है कि उस सुअवसर मे उस दूर देश के बीच शाहआलम के साथ यह सधि स्थापित की गई थी।

इस युग की उन घटनाओ का अध्ययन बहुत ही महत्वपूण है जो मुगल सत्ता को उखाडने मे सहायक सिद्ध हुईं और जिन्होन एक ऐसे समाज को खडा किया जिसने इस सुदूर देश म ब्रिटिश राज्य की स्थापना का माग प्रशस्त कर दिया। इन घटनाओ ने स्पष्ट कर दिया है कि नीतिबल की सहायता न लेकर केवल तलवार के बल मे भारत का शासित करना विपत्ति मे पडना होगा।

जिस नीति से अकबर को अपने राज्य को बढान मे सफलता मिली थी औरगजेब ने जीवन भर उसके विपरीत काय किया। जब औरगजेब न राजपूतो की अवहेलना की तो उसन अपनी सत्ता के प्रमुख आधार पर ही कुठाराघात किया और यद्यपि उसने अपने अथक परिश्रम से साम्राज्य को बनाये रखन का प्रयत्न किया तथापि उसकी मृत्यु के पूव ही अकबर द्वारा निर्मित साम्राज्य का ढाचा चरमराने लग गया था। इससे यह विश्वास दृढ होता है कि राज्य शासन करने मे चाहे कोई कितना ही चतुर और युद्ध करन म कितना ही कुशल हो परन्तु जब तक प्रजा के हृदय का अनुराग नही प्राप्त करेगा तब तक वह कभी भी अपने राज्यपद का अखण्ड अथवा दृढ नही रख सकता है। आज भारत में ब्रिटिश राज्य जितनी दूर तक फला हुआ है औरगजेब के समय म मुगलो का राज्य उसकी अपेक्षा अधिक था और उसकी रक्षा के साधन भी अत्यन्त सुदृढ थे तथा राजपूतो के साथ उनका रक्त का सम्बन्ध कायम हो चुका था। राजपूत लोग सताये जाकर भी साम्राज्य की सुरक्षा लिए अपन प्राणो का बलिदान करने के लिय सदा तत्पर रहते थे और सिन्धु नद

के उस पार बर्फीले पहाडो मे जाकर भी साम्राज्य के लिये युद्ध मे विजय प्राप्त करते रहते थे। औरगजेब न यहाँ के लोगा की राजभक्ति को न पहचाना। पुरस्कार के स्थान पर उसने राजपूतो के साथ बुरा आचरण किया तथा जजिया कर लगाया जिससे मुगल साम्राज्य का विनाश हुआ। वह मुस्लिम धम का प्रबल पक्षपाती था। अपने कठोर शासन क द्वारा उसन हि दुओ को इस्लाम धम स्वीकार करने के लिए विवश किया था।

यदि कोई हि दू अपने धम को छोडकर इस्लाम धम को ग्रहण करता तो उसे शीघ्र ही औरगजेब की सहानुभूति और कृपा प्राप्त हो जाती थी। औरगजेब का समस्त शासन इस प्रकार के पक्षपात से भरा पडा है। मुगल साम्राज्य के पतन की शुरूआत यही स हुई और इसी पक्षपात न उस विशाल साम्राज्य को सब प्रकार से कम-जोर बना दिया। धम परिवतन करने वाले पाखडियो मे से हम केवल एक का वृत्ता त लिखते हैं। सीसोदिया वश की एक छोटी शाखा मे राव गोपाल नामक एक राजपूत उत्पन्न हुआ था। वह चम्बल नदी के किनारे पर बसे हुए रामपुर के इलाके का एक साम त राजा था। साम्राज्य की सेवा मे दक्षिण के युद्ध मे जाते समय वह रामपुर का शासन अपने पुत्र का सौंप गया था। उसके पुत्र ने रामपुर का कर अपने पिता के पास न भेजकर अपने पास ही रख लिया। तब राव गोपाल ने बादशाह के यहा अपने पुत्र के विरुद्ध अभियोग चलाया। पिता और बादशाह की क्रोधाग्नि स बचने के लिए पुत्र ने इस्लाम धम स्वीकार कर लिया। औरगजेब को इससे इतना सतोष मिला कि उसने न केवल उसे क्षमा ही कर दिया अपितु रामपुर की जागीर भी उसके नाम कर दी। अपने पुत्र के इस आचरण से राव गोपाल को अत्य त घृणा हुई और उसने अपनी सेना के साथ रामपुर पर चढाई कर दी। पर तु उसका मनो रथ पूरा न हो पाया। बादशाह के क्राध से अपन प्राण बचाने के लिए उसने राणा अमरसिंह का आश्रय लिया। पर तु औरगजेब इस बात का सहन न कर सका। राव गोपाल को आश्रय देने के कारण वह अमरसिंह को विद्रोही समझने लगा और राणा पर आक्रमण करने की दृष्टि से शाहजादे अजीम को एक बडी सेना के साथ मालवा भेज दिया। बादशाह के दुष्ट अभिप्राय का जानकर ही अमरसिंह न उसके विरुद्ध तलवार पकडी थी। राणा ने अजीम के विरुद्ध युद्ध की तयारी की। इस युद्ध मे उसका साथ देने के लिये मालवा का राजा भी आया था। अजीम उस समय नमदा नदी के दूसरी तरफ था। वहा पर महाराष्ट्र के लोगो ने नीम सि धिया नामक सेनानायक के नेतृत्व मे भयकर उत्पात मचा रखा था।[3] उनके उत्पात को शा त करने के लिये औरगजेब न राजा जयसिंह को सेना क साथ अजीम की सहायताथ भेजा। पर तु उसका काई फल न निकला। उन दिना म मुगला का शासन डावाडोल हो रहा था। साम्राज्य मे चारा तरफ मुगला के विरुद्ध विद्रोह हा रहे थे और कितन ही राजा तथा सरदार लोग मुगला के दासत्व की जजीर तोडने का प्रयास करने लगे थे। दक्षिण मे मराठा लोगा ने शिवाजी के नतृ

औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। बादशाह की इस निबल अवस्था म उसके लडको और भतीजो ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। इससे उसकी कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ गई थी। इन सम्पूर्ण झगडो से भयभीत होकर वह अपने नाम पर बसाये नगर औरंगाबाद चला गया और वही पर 1707 ई म इस ससार से विदा हो गया। उसके मरते ही उसके लडको और भतीजो मे सिंहासन के लिए सघष शुरू हो गया।

सभी सिंहासन को प्राप्त करने के लिये दिल्ली की तरफ दौड पडे। सवप्रथम बादशाह के दूसरे पुत्र आजीम ने बादशाहत को अपने अधिकार मे किया। यह देख कर उसका बडा भाई मुअज्जम अपनी सेना के साथ उस पर आक्रमण करने के लिए आगे बढा। आजीम दतिया और कोटा के राजपूतो की सहायता लेकर आगरा जा पहुचा। मेवाड, मारवाड और पश्चिमी राजस्थान के सभी राजपूत राजाओ ने मुअज्जम का साथ दिया। जाजाऊ के मदान पर दोनो भाइयो के मध्य घमासान युद्ध हुआ जिसमे कोटा और दतिया के राजाओ तथा अपने लडके बेदारबख्त के साथ आजीम भी मारा गया। मुअज्जम युद्ध मे विजयी रहा और वह शाहआलम बहादुर शाह की पदवी के साथ मुगल सिंहासन पर बठा। मुअज्जम म बहुत से स्वाभाविक गुण थे। उन गुणो से मोहित होकर ही राजपूत उसमे स्नेह करते थे। उसका जन्म भी राजपूत स्त्री के गभ से हुआ था। यदि मुअज्जम धर्मात्मा शाहजहाँ के बाद ही सिंहासन पर बैठता तो तमूर का स्थापित किया हुआ वशवृक्ष इतनी शीघ्रता से उखड न पाता और एशिया के बीच एक प्रबल राजवंश के नाम से विख्यात होता। पर तु शाहजहाँ के बाद औरंगजेब सिंहासन पर बठा और उसने अपने जीवनकाल म हिन्दुओ के साथ जिस प्रकार घृणित और पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया उसके परिणामस्वरूप मुगलो के साथ राजपूतो के जो सुदृढ सम्बन्ध बहुत दिनो से चले आ रहे थे वे ढील पड गये और धीरे धीरे विरोधी होते गये।

बहादुरशाह ने सिंहासन पर बैठने के बाद राजपूतो के साथ टूटते हुए सम्बन्धो को पुन जोडने का प्रयास किया पर तु उसे सफलता न मिली। इसी समय बहादुर शाह को अपने छोटे भाई कामबख्श के विद्रोह को दबाने के लिए दक्षिण की तरफ जाना पडा। कामबख्श ने अपने आपको दक्षिण भारत का स्वतन्त्र बादशाह घोषित कर दिया था। माग मे उसे सूचना मिली कि सिक्खो ने साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है। अत उसने पहले सिक्खो का दमन करने का निश्चय किया। उन दिनो मे सिक्खो का सगठन काफी मजबूत हो रहा था और उनकी भाषा मे सिक्ख का अर्थ शिष्य होता है। गुरु नानक से जिन लोगो ने दीक्षा पायी वे सभी सिक्खो के नाम से विख्यात हुए। इन दिनो वे मुगल शासन से मुक्त होने की चेष्टा कर रहे थे। जब बहादुरशाह पजाब की तरफ बढ रहा था तो आमेर और मारवाड के राजाओ ने आकर उससे भेंट की पर तु बिना कुछ जाहिर किये दोनो राजा उसके शिविर से

लौट आये। इतिहासकारा का अनुमान है कि वे लोग विद्रोही सिक्खो का अनुकरण करके मुगलो की परतन्त्रता से अपन को मुक्त करने का विचार कर रहे थे।

बादशाह से इन हिन्दू राजाओ की भावना छिप न पाई। उनको सावधान करने तथा उनके भावो को बदलने के लिए उसने अपने बडे पुत्र को उनके पास भेजा परन्तु बादशाह का प्रयास सफल नही हुआ। बादशाह के शिविर से लौटकर दोनो राजा राणा अमरसिह से मिलन उदयपुर चले गये और वहाँ तीनो के बीच एक समझौता हो गया। यह तय हुआ कि आज से कोई किसी मुगल बादशाह के साथ पारिवारिक अथवा राजनतिक किसी प्रकार का कोई सम्ब ध न करेगा। इस सधि के द्वारा राठौडो और कच्छवाहो के सीसोदिया वश के साथ वैवाहिक सम्ब धो की प्रतिष्ठा हुई जो पिछले दिनो मे भग कर दिये गये थे। यह भी तय हुआ कि इस प्रकार के सम्ब धो के परिणामस्वरूप सीसोदिया राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र ही सिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। कन्या हुई तो उसको मुगलो के हाथ मे अपण नही किया जायेगा। इस सधि के द्वारा राजपूत मुगल सम्ब ध काफी निर्जीव पड गये और राजपूतो को मुगलो की अधीनता से मुक्त होने का माग मिल गया। पर तु इ ही दिनो मे मराठो ने राजस्थान मे प्रवेश करके उसको रौद डाला।

रामपुर के राजा राव गोपाल के लडके रतनसिंह ने इस्लाम धम स्वीकार कर औरगजेब का सरक्षण प्राप्त कर लिया था और राव गोपाल ने महाराणा अमरसिह की शरण ली थी। राणा ने राव गोपाल को सहायता देने का आश्वासन दिया और समय मिलते ही राणा ने रामपुर पर आक्रमण कर दिया। इस्लाम धम स्वीकार करने के बाद रतनसिह का नाम गाज मुस्लिम खा हो गया था। उसने राणा का डटकर मुकाबला किया और राणा को विफल होकर वापस लौटना पडा। बादशाह को जब इसकी सूचना मिली तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मुस्लिम खाँ को उचित पुरस्कार दिया। कुछ दिनो बाद बादशाह को यह समाचार मिला कि राणा के एक सरदार सावलदास ने फिरोजखाँ पर आक्रमण करके उसे खदेड दिया है। इस युद्ध मे सावलदास का लडका जयमल मारा गया। मारवाड का शूरवीर दुर्गादास उदयपुर चला आया था। उसका अपने राजा से मन मुटाव हो गया था। राणा ने आदर सम्मान के साथ उसको अपने यहा रखा और प्रतिदिन पाच सौ रुपये नियत कर दिये। पर तु दुर्गादास की सेवाओ का राणा कोई लाभ उठा पाता उसस पहले ही शाहआलम बहादुरशाह की मृत्यु हो गई। सन् 1712 ई० मे राज्य के विरोधियो ने विष देकर उसके प्राणो का अ त कर दिया। बादशाह शाहआलम एक सरल स्वभाव वाला बादशाह था, परन्तु उसको अपने पिता के पापो का फल भोगना पडा। औरगजेब के अत्याचारो ने समस्त देश मे असतोष उत्पन्न कर दिया था और चारो तरफ अधीनस्थ राजाओ ने स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह कर रखा था। यदि शाहआलम

कुछ दिन और जीवित रहता तो मुगल साम्राज्य का इतनी शीघ्रता से अध पतन न होता।

शाहआलम की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य की स्थिति अचानक भयानक हो गई। उसके उत्तराधिकारियो ने एक दूसरे का रक्त बहाकर सिंहासन पर बठना आरम्भ किया पर तु कोई भी उसे स्थिरता प्रदान न कर सका। अ त म, गगा यमुना के बीच के बेरा नगर के दो सैयद ब धुओ ने आकर मुगल राज्य मे अपना प्रभुत्व स्थापित किया और शासन व्यवस्था को यापार बनाकर दोनो भाइयो न जिसको चाहा उसको सिंहासन पर बैठाया। धन और अधिकार देकर जो उन दोनो भाइयो के मन को आनंदित कर सके थे वही थोडे समय के लिए सिंहासन पर बठ पाय थ। इस प्रकार, राजसिंहासन पर बठने के लिए मुगलो मे अब तक जो परिपाटी चली आ रही थी वह समाप्त हो गई। जिस समय मे राजस्थान का त्रिबल (जयपुर जोधपुर और उदयपुर) मुगल राज्य के विरुद्ध सगठित हुआ था, उसी समय मे सयद ब धुओ[4] ने फर्रुखसियर को सिंहासन पर बठाया था। उसकी ओट मे सैयदो न आतक का राज्य कायम कर रखा था। इस कारण राजपूतो मे उनके विरुद्ध प्रतिशोध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी थी।

बहुत दिनो से राजपूत मुगलो के कठोर अत्याचारो को जिस शान्ति और सतोष के साथ सहन करते आ रहे थे वह अब कायम न रह सकी। सयद ब धुओ के अत्याचार तथा देश की शोचनीय अवस्था को देखकर वे लोग अधिक स्थिर न रह सके और उनकी सहनशीलता समाप्त हो चली। स्थान स्थान पर राजपूतो न मुल्ला और काजियो के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न किया। फलस्वरूप मस्जिदें तोडी जाने लगी और मुल्लाओ को अपमानित किया जाने लगा। इन दिनो मे राठौडो ने मुगलो के विरुद्ध शानदार सफलताए प्राप्त की थी। अजीतसिंह ने मारवाड मे मुगलो को भली भाति परास्त कर दिया था। सम्पूर्ण मारवाड पर राठौडो की सत्ता पुन स्थापित हो गई। उदयपुर मे तीनो राजाओ के मध्य जो समझौता हुआ था, उसके अनुसार तीनो न साभर झील को अपने अपने राज्यो की सीमा मान लिया और उससे होने वाली आय को तीनो राज्यो मे बाटने का निश्चय किया गया था।

राजपूतो की इस बढती हुई शक्ति को बादशाह फर्रुखसियर न अ त मे रोकने का निश्चय किया और इसके लिए अमीरुल उमरा को एक शक्तिशाली सना के साथ अजीतसिंह के विरुद्ध भेजा गया। इसी के साथ बादशाह की तरफ से एक गुप्त पत्र भी अजीतसिंह को मिला जिसमे बादशाह ने अजीतसिंह से मगरूर सयद को सबक सिखाने का आग्रह किया था।[5] बादशाह द्वारा भेजे गय इस पत्र का वास्तविक कारण यह था कि सयदो की बढती हुई शक्ति और प्रतिष्ठा के कारण वह नाम मात्र का बादशाह रह गया था और उसके मन म हमेशा उनका भय बना रहता था। परन्तु

इस पत्र से बादशाह का कोई लाभ न हुआ। मारवाड के अजीतसिंह ने अमीरूल उमरा के साथ सधि कर ली। उसने मुगलो को कर देने तथा अपनी लडकी का विवाह बादशाह से करना स्वीकार कर लिया।

विवाह के कुछ दिनो पहले बादशाह की पीठ मे भयकर फोडा निकल आया। काफी चिकित्सा के बाद भी फोडा ठीक नही हो पाया और इस बीच विवाह का तय दिन भी निकल गया। उन्ही दिनो मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत मे व्यवसाय करने के लिये आयी थी और कम्पनी के बहुत से लोग सूरत मे थे। उनमे एक डाक्टर भी था—हेमिल्टन। उसने जब बादशाह की बीमारी की खबर सुनी तो उसने बादशाह की चिकित्सा करने की इच्छा व्यक्त की और बादशाह की आज्ञा पाकर उसने बाद शाह की चिकित्सा की। उसके इलाज से बादशाह कुछ ही दिनो मे रोग मुक्त हो गया। जब बादशाह न उसे पुरस्कार देने की इच्छा प्रकट की तो डाक्टर ने कहा कि 'मुझे बादशाह एक लिखा हुआ फरमान दे दे जिससे हमारी कम्पनी को इस राज्य मे रहने का अधिकार मिल जाय और हमारे देश इगलैण्ड से आने वाले माल पर जो चुगी ली जाती है, वह माफ कर दी जाय।" बादशाह उसकी बात से बहुत प्रभावित हुआ और उसने हेमिल्टन की माग को स्वीकार कर लिया। इसके बाद बादशाह ने अजीतसिंह की पुत्री के साथ विवाह किया। यह विवाह बहुत धूमधाम के साथ हुआ था।[6] इस विवाह के होने से बहुतो को यह विश्वास हुआ कि अब बादशाह हिन्दुओ के साथ उत्तम व्यवहार करेगा। परन्तु फरूखसियर ने उनकी आशा के विरुद्ध जजिया' कर पुन लागू करके हिन्दुओ को उत्तेजित कर दिया।[7]

फरूखसियर दोनो सैयद बधुओ से अत्यधिक असतुष्ट था और उनसे छुटकारा पाना चाहता था। उसने औरगजेब के पुराने मन्त्री इनायत उल्लाखाँ को अपना मन्त्री नियुक्त किया। उसने मन्त्री बनते ही हिन्दुओ पर नाना प्रकार के कर लगाकर उन्हे परेशान करना शुरू कर दिया।

जैसाकि पहले लिखा जा चुका है कि मुगलो के विरुद्ध जिन तीन राजपूत राजाओ ने समझौता किया था उनमे मारवाड का अजीतसिंह भी एक था। समझौते का उल्लघन करते हुये अजीतसिंह ने मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार की तथा उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। उसके इस काय ने मारवाड नरेश को राणा अमरसिंह से पुन अलग कर दिया फिर भी इससे राणा अमरसिंह के उत्साह म कोई भी कमी नही आई और उसने अपने ही बल पर मुगलो का मुकाबला करने का निश्चय किया। बादशाह फरूखसियर ने राणा के साथ एक सधि कर ली।[8] इस सन्धि की दूसरी धारा म ही जजिया कर के रहित करने का लेख है। यद्यपि सधि का नाम सुनते ही राणा अमरसिंह के सम्बन्ध मे अपमानसूचक चिन्ता हृदय के बीच उदय होती है परन्तु विशेष विचार के साथ देखा जाय तो यह चिन्ता दूर हो जाती

है । आठवीं धारा मे राणा को बादशाह के रक्षक के रूप मे सूचित किया गया है। "सात हजारी मनसवदारी' से अवश्य ही राणा की अधीनता का पता चलता है। परन्तु इस समय तक राजपूत जाति की भीतरी अवस्था मे काफी बदलाव आ चुका था। लौकिक सम्मान मे दूसरे राज्य मेवाड के बराबर हो गये थे। पद के तुच्छ लालच से सब ही ने मुगलो को सम्मान का खजाना समझा था। परन्तु मेवाड के राणा ने इस प्रयोजन से सधि नही की थी।

मुगल बादशाह की इस शोचनीय अवस्था मे दिल्ली के समीप रहने वाले जाटो ने भी विद्रोह करके मुगल सत्ता से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। जाट लोग प्राचीन जिट वश के शाखा कुल मे उत्पन्न हुए थे और चम्बल नदी के पश्चिमी किनार पर बसे हुए थे।

फरूखसियर के साथ किया गया समझौता ही राणा अमरसिंह के जीवन का अन्तिम महत्वपूर्ण काय था। जिस दिन यह सन्धि हुई उसके थोडे दिनो बाद ही उसका देहान्त हो गया। अमरसिंह चतुर स्वाभिमानी और उन्नतिशील राजा था। भारत के सवव्यापी विप्लव और मुगल राज्य की भयकर अराजकता म भी वे अपने राज्य की सुख-सम्पत्ति को बढाते रहे। उसने अपने जीवन मे कितने ही ऐसे काय किये थे, जिनके द्वारा वह सवथा प्रशसा का अधिकारी हुआ।

सन्दर्भ

1 कमलादेवी परमार कुल की थी। अपन देश मे वह 'रूठा रानी' नाम स पुकारी जाती थी।

2 अमरसिंह ने जो सधि की थी उसकी महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार थी—(1) चित्तौड की प्रतिष्ठा का अधिकार राणा को होगा। (2) गौ हत्या न की जाय। (3) शाहजहा के समय जो जिले मेवाड राज्य म शामिल थे, वे राणा के अधिकार मे रहगे। (4) धार्मिक बातो मे हिन्दुओ को पूरी स्वतन्त्रता रहगी।

3 यह उत्पात सवत् 1706-07 मे हुआ था।

4 सयद हुसेन अली "अमीरुल उमरा के नाम स और उसका भाई अब्दुल्लाखा "कुतबुलमुल्क" के नाम स प्रसिद्ध हुआ।

5 शायद कछुग्रा को इसकी जानकारी न थी कि बादशाह ने अजीतसिंह को गुप्त पत्र लिखा है। अन्यथा वे उसको दबाने के लिये कभी अभियान नहीं करते।

6 सर वाल्टर स्कॉट ने लिखा है कि अमीमल्ल उमर ने कन्या की ओर से सम्पूर्ण उत्सव किया था।

7 फर्रुखसियर ने दो हजार की आय वाले हिन्दुओं पर तेरह रुपया वार्षिक जजिया कर लगाया था।

8 यह संधि पत्र "प्रार्थना पत्र" के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इसमें कुल मिला कर ग्यारह धाराए हैं।

अध्याय 24

महाराणा सग्रामसिह और जगतसिह

अमरसिंह द्वितीय के बाद सग्रामसिह द्वितीय सिहासन पर बठा। उसी समय के आसपास मुहम्मदशाह दिल्ली के सिहासन पर बठा था। सग्रामसिह के शासनकाल (1716 से 1734 ई) मे मुगलो का यह विशाल साम्राज्य विघटित हो गया। एक केन्द्रीय सत्ता के अभाव मे अनेक स्वत त्र राज्यो का उदय हुआ और उसका परिणाम सामूहिक रूप से भयानक हुआ। साम्राज्य की बढी हुई शक्ति औरगजेब के शासन काल से ही कमजोर पडने लगी थी और उसके बाद जितने भी बादशाह मुगल सिहासन पर बैठे, उस कमजोरी को दूर करने मे असमथ रहे। परिणामस्वरूप केन्द्रीय सत्ता का नियन्त्रण लगातार नष्ट होता गया और एक समय वह आया जब मुसलमानो मराठो और राजपूतो ने साम्राज्य के विरुद्ध खुलकर विद्रोह किया। विद्रोह के समय म अनेक शक्तियो न उन्नति की पर तु उन शक्तियो म कोई भी इतनी सबल न थी कि वह दूसरी शक्तियो पर नियन्त्रण रख सके। इसलिय इस विशाल देश का शासन, एक सौ वर्षो के अन्दर ही, इगलण्ड से आए हुए मुट्ठी भर आदमियो के हाथो मे चला गया। किसी बडी शक्ति के विघटन का यही परिणाम सामने आता है। ससार का प्रत्येक इतिहास इस स्वाभाविकता को बिना किसी विवाद के स्वीकार करता है। विशाल और समृद्ध भारत का कभी पतन न हुआ होता यदि इस विस्तृत देश म राजाओ और शासको की सख्या सीमित रही होती और विशाल मुगल साम्राज्य का पतन न होता, यदि अकबर के उत्तराधिकारियो ने अनियत्रित अवस्था मे स्वत त्र होकर राज्याधिकार के लिये विद्रोह न किया होता।

बादशाह फर्रुखसियर का शासन अपन जीवन की अ तिम घडिया से गुजर रहा था, उसका पतन उन्ही साधनो स हुआ जिनके द्वारा उसने सयद बधुओ को अपने माग से हटान की चेष्टा की थी। इसी उद्देश्य से उसने इनायतउल्ला को अपना मन्त्री बनाया था पर तु वह मयदा की सत्ता का नष्ट करन मे असफल रहा। उल्टे उसन जजिया कर को पुन लागू करक बादशाह को राजपूतो की रही सही सहानुभूति से भी वचित कर दिया। जब बादशाह को अपने प्रयास मे सफलता न मिली तो उसन हैदराबाद राज्य क सस्थापक निजामउलमुल्क को अपनी सहायता

के लिये बुलाया। उस समय वह मुरादाबाद का सूबेदार था। बादशाह ने उसे मालवा का राज्य देने का प्रलोभन दिया और सयद बधुग्रो से राहत दिलवाने का अनुरोध किया। सैयदो को बादशाह की कायवाही की सूचना मिल गई। उ होने मराठो की दस हजार सेना के सहयोग से फरूखसियर को ही सिंहासन से उतार दिया।[1] उस अवसर पर राजधानी मे आमेर और बूदी के राजाओ के अलावा बादशाह का कोई सहायक न था। उन दोना राजाग्रा ने स्थिनि से निपटने के लिये बादशाह को जो परामश दिया उसके अनुसार काम करने का साहस बादशाह नही जुटा पाया। इस पर दोनो राजा बादशाह का साथ छोडकर चले गये।[2]

फरूखसियर ने सयदो के प्रकोप से बचने के लिए अपने जनानखान का आश्रय लिया और अपनी बेगमो के साथ रहन लगा। उसके मित्रो के लिय दुग के द्वार बन्द कर दिये गये और सैयद तथा अजीतसिंह ने दुग के भीतर ही डेरा जमा लिया। बाहर वालो को इस बात का पता ही नही चला कि महल मे क्या हो रहा है। दूसरे दिन फरूखसियर को सिंहासन से हटा दिया गया और उसके स्थान पर रफीउशदरजात को सिंहासन पर बैठाया गया। नये शासन का पहला काम अजीत-सिंह और दूसरे राजपूत राजाग्रो को सतुष्ट करना था। इस दृष्टि से 'जजिया कर को हटा दिया गया।[3] इनायतउल्ला को मत्री पद से हटाकर राजा रत्न च द को मत्री नियुक्त किया गया।

कुछ दिनो बाद ही नये बादशाह रफीउशदरजात की मृत्यु हा गई और उसका उत्तराधिकारी भी कुछ दिनो के बाद स्वग सिधार गया। तब बहादुरशाह क बडे लडके रोशन अरतर को 1720 ई मे मुहम्मदशाह की पदवी के साथ दिल्ली के सिंहासन पर बठाया गया। उसने तीस वप तक शासन किया। उसके समय मे मुगल साम्राज्य का पतन पूरा हा गया और दक्षिण से मराठे तथा उत्तर पश्चिम से पठाना ने साम्राज्य को जी भर के लूटा। सयद बधुग्रो के अहकार और निरकुश व्यवहार के कारण उनके मित्रो का भी उनके साथ काम करना कठिन हो गया था। उन मित्रो मे निजामउलमुल्क भी था। वह एक चतुर तथा पराक्रमी सेनानायक था। सयद बधुग्रा ने उसकी बढती हुई शक्ति स घबराकर उसे कमजोर बनान का प्रयास किया तब निजामउलमुल्क को अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करने के लिये विवश हो जाना पडा। वस्तुत सयद बधु जिस प्रकार से अपने कठपुतला को बादशाह बनात जा रहे थे, वे कठपुतले मुगल तथा राजपूत सरदारा की स्वामिभक्ति प्राप्त नही कर पाये। सैयदा की स्वाथपूण राजनीति से साम्राज्य नष्ट हो रहा था ग्रार इस समय ऐसा कोई न था जो उनसे साम्राज्य की रक्षा कर सके। निजामउलमुल्क न असीर-गढ और बुरहानपुर के अजेय दुर्गो को अपन अधिकार मे लेकर अपनी स्थिति का सुदृढ बना लिया। इससे सयद भयभीत हो उठे और अपनी सहायता के लिए उ होन राजपूत राजाग्रा से प्राथना की। कोटा और नरवर के राजाग्रा न अपनी सेनाग्रा के

साथ निजाम के विरुद्ध प्रस्थान किया और नवदा नदी के किनारे जा पहुचे । दोना पक्षा के मध्य लडे गये युद्ध मे निजाम विजयी रहा । कोटा का राजकुमार लडते हुए वीरगति का प्राप्त हुआ । हैदरावाद की आजादी के बाद अवध भी साम्राज्य से अलग हा गया । वहा का नवाब सादत खाँ, पहले बयाना का सनिक अधिकारी था । मुहम्मदशाह ने सयद भाइयो के विरुद्ध सहायता देने के लिये उसे दिल्ली बुलाया था। बादशाह के आदेशानुसार उसने अमीरूल उमरा को मारने की चेष्टा की और हैदर खा ने उसे मौत के घाट उतार दिया ।[4] अमीरूल उमरा की मृत्यु की सूचना मिलते ही बादशाह ने उसके भाई अब्दुल्ला को गिरफ्तार करने का प्रयास किया । इस पर अब्दुल्ला ने विद्रोह कर दिया । उसने इब्राहीम नामक राजकुमार को दिल्ली के सिंहासन पर बठा दिया और बादशाह मुहम्मदशाह के विरुद्ध युद्ध करने के लिये चल पडा । युद्ध मे सादतखा ने अब्दुल्ला को बन्दी बना लिया । बादशाह के आदेश से उसे मृत्यु दड दिया गया । सादतखा की इस कायवाही से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे बहादुर जग की पदवी तथा अवध की सरकार प्रदान की । राजपूत राजा भी बादशाह को बधाई देने गये । बादशाह राजपूत राजाओ की तटस्थता से भी प्रसन्न था । उसने जोधपुर और आमेर के राजाओ को पुरस्कृत किया । जयपुर के जयसिंह को आगरा का सूबेदार तथा जोधपुर के अजीतसिंह को गुजरात तथा अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया । मराठो का मुकाबला करने के लिए गिरधरदास को मालवा का सूबेदार बनाया गया[5] । हैदराबाद के निजामउलमुल्क को साम्राज्य के वजीर पद को सभालने के लिये दिल्ली बुलाया गया ।

मुगल साम्राज्य की बिगडती हुई इस स्थिति के दिनो मे भी मेवाड की नीति उदासीन बनी रही जबकि उसके पडौसी राज्यो ने अपनी उन्नति के लिये हर अवसर का लाभ उठाया । आमेर के राज्य की सीमा यमुना नदी के किनारे तक बढ गई थी और मारवाड ने अजमेर के किले पर अपना झण्डा फहराकर गुजरात के राज्य को तहस नहस करके अपने वश वालो का प्रभुत्व मरुभूमि के आखिरी किनारे तक पहुँचा दिया था । पर तु मेवाड क राणा ने इस प्रकार का कोई काम नही किया । सीसोदिया वश अपने पूवजो के सिद्धा ता तथा राज्य से चिपका रहा । मुगल राज्य के पतन के दिनो मे भी मवाड का राणा कुछ भी करना नही चाहता था । उसके अनुसार अवसरवादिता शूरवीरो के आदश के विपरीत बात थी । एसे अवसरो का लाभ उठाना अयोग्य और कायरो का काम था । सीसोदिया वश सिद्धा तवादी बनकर रह गया । उसकी इस नीति का एक कारण सीसोदिया वश की दो प्रमुख शाखाओ की आपसी प्रतिस्पर्द्धा भी था । शक्तावत सरदार जतसिंह न राठौडो को ईडर से खदेड कर कोलीवाडा के पहाडी भागो तक सम्पूण भूमि को अपने अधिकार मे कर लिया था और अपनी विजयी सेना के साथ और आगे बढना चाहता था । परन्तु ज्योंही महाराणा को इसकी जानकारी मिली उसने जतसिंह को अपनी सेना सहित उदयपुर वापस लौटन का आदेश भिजवा दिया । इसके कारण चुण्डावतो का अप्रसन्न हो जाना

था। इसी प्रकार के अन्य कारणो से मेवाड की आतरिक नीति मे एक महत्वपूण परिवतन आ चुका था। इस समय तक मेवाड के सामन्त राजाओ को राज्य की सीमा मे अपने दुग बनाने का अधिकार नही था। उन्हे राज्य की तरफ से जो इलाका दिया जाता था वह केवल तीन वष की अवधि के लिये ही दिया जाता था। अरावली पवत के ऊँचे पहाडी स्थान ही मेवाड राज्य के लिये दुर्गों का काम करते थे और राज्य के सीमान्तो पर जो दुग बने थे, शत्रुओ के आक्रमण के समय उन्ही दुर्गों का युद्ध के समय प्रयोग होता था। राज्य मे यही व्यवस्था प्रचलित थी। मुगल साम्राज्य के क्षीण पड जाने पर सामान्य सुरक्षा पद्धति को त्याग दिया गया और सरदारो ने अपने अपने क्षेत्रो की सुरक्षा के लिये नये नये दुग बनवाने शुरू कर दिये ताकि मेवाड राज्य मे प्रवेश कर रहे मराठो और पठानो के आक्रमण तथा विद्रोहियो के हमलो को विफल किया जा सके।

राणा सग्रामसिह ने अठारह वष तक शासन किया। उसके समय मे मेवाड का सम्मान कायम रहा और उसके पूव जो क्षेत्र मेवाड के अधिकार से निकल गये थे उन पर पुन अधिकार कर लिया गया और उन्हे मवाड राज्य से मिला दिया गया। बिहारी दास पचोली को अपना मत्री बनाकर राणा ने अपनी योग्यता और निर्णायक बुद्धि का परिचय दिया। उस जसा मत्री मेवाड राज्य मे पहले शायद ही हुआ हो। वह तीन राणाओं के शासन काल मे मत्री पद पर बना रहा, फिर भी बिहारीदास का चातुय राणा सग्राम सिह की मृत्यु के बाद होने वाले मराठा आक्रमणो को रोकने मे विफल रहा।

राणा सग्राम सिह एक उज्ज्वल चरित्र का श्रेष्ठ शासक था। प्रजा के अधिकारो को सुरक्षित रखने मे उसन विशेष ख्याति अर्जित की। वह एक न्यायप्रिय शासक था और अपने वचनो का पालन करना, वह भली भाति जानता था। शासन मे वह जितना चतुर था अपने व्यवहार मे वह उतना ही कुशल भी था। यहा पर इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि राज्य की प्रजा उसके प्रति सदा आस्था रखती थी और उसके सरदार तथा सामन्त हमेशा उसके लिये प्राण उत्सग करने के लिय तत्पर रहते थे। सग्रामसिह को अपने राज्य की सुरक्षा के लिये अठारह बार शत्रुओ से युद्ध लडना पडा था। उसकी मृत्यु के बाद ही मेवाड म मराठो का प्रवेश हुआ था।

सग्राम सिह की मृत्यु के बाद सवत् 1790 (1734 ई०) मे उसका बडा लडका जगतसिह द्वितीय सिहासन पर बठा। इन दिनो मुगल साम्राज्य की स्थिति निरन्तर कमजोर होती जा रही थी। साम्राज्य के अनेक क्षेत्रो म विद्रोह हो रह थ। ऐसी स्थिति मे महाराणा जगतसिह ने तीन राजाओ के उस सघ को पुनर्जीवित करन का निश्चय किया जो अजीतसिह के कारण विघटित हो गया था। इस बार छोटे

राजपूत राजाओ को भी सम्मिलित किया गया। इन सभी राजपूत राजाओ का एक सम्मेलन अजमेर की सीमा पर स्थित हुरदा नामक नगर मे हुआ जो मेवाड राज्य की सीमा मे था।[6] राजपूतो मे एकता बनी रहे, इस दृष्टि से राणा को सर्वोच्च नियत्रण सौपा गया और उसे सम्पूर्ण राजपूत सेना का सर्वोच्च सेनापतित्व सौपा गया। यह तय हुआ कि वर्षा ऋतु के बाद मुगलो के विरुद्ध अभियान शुरू किया जायेगा। वर्षा ऋतु समाप्त भी न हुई थी कि नवनिर्मित राजपूत सघ के बधन ढीले पडने लग गये। कारण यह था कि मुगलो की निबलता का लाभ उठा कर जोधपुर और जयपुर के राजाओ ने अपने राज्यो को काफी बढा लिया था और वे दोनो मेवाड के समान स्तर पर पहुच चुके थे। अब वे मेवाड से अपने को कम नही समझते थे। उधर राणा जगत सिंह पहले की परिस्थितियो के आधार पर अपना गौरव अधिक समझता था। इस प्रकार की धारणा के कारण तीनो राजाओ मे कोई भी अपने आपको छोटा अथवा निबल नही समझता था। उस सधि के शिथिल होने का यही कारण हुआ और कुछ समय बाद हुरडा मे स्थापित राजपूत सघ छिन्न भिन्न हो गया।

निजामउलमुल्क ने अपने आपको मुगलो की अधीनता से पूर्ण रूप से मुक्त कर लिया था और अपने विरुद्ध भेजी गई शाही सेना के सेनापति[7] का सिर काट कर मुगल बादशाह की सेवा मे भेज कर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए बादशाह को कहला भेजा कि बादशाह के साथ बगावत करने के कारण इसको पराजित करके और उसका सिर काट कर भेजा है। असहाय और विवश बादशाह मुहम्मदशाह को यह सब बर्दाश्त करना पडा। उसने राजपूतो के साथ गठबधन किया और मालवा तथा गुजरात मे मराठा का झडा फहराने के लिये बाजीराव को उकसाया। मालवा की रक्षा करते हुए दयाबहादुर[8] मारा गया और जब इस प्रान्त की सूबेदारी आमेर के जयसिंह को सौपी गई तो उसने यह प्रान्त हमलावर मराठो को सौंप दिया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य के अधिकार से मालवा जाता रहा। गुजरात के विशाल प्रान्त का भी यही हाल हुआ। शाही दरबार की दलबन्दी के कारण गुजरात का राठौडो को देने का वचन भग किया गया और अजीत सिंह के पुत्र अभय सिंह, जिसने भयकर सघर्ष के बाद सर बुलन्द खा को गुजरात से खदेडा था, ने अपने बधु आमेर नरेश का अनुकरण करते हुए मराठा हमलावरो से गठबधन करते हुए इस प्रान्त के अधिकाश उत्तरी भाग को मारवाड राज्य मे मिला लिया। बगाल बिहार और उडीसा मे शुजाउद्दौला अपने सहायक अलीवर्दी खा के साथ मिल कर अपनी स्थिति मजबूत बना चुका था और अवध मे सादत खा का पुत्र सफदर जग शासन कर रहा था। मुगल बादशाह के साथ विश्वासघात करके इस परिवार ने अपनी उन्नति की थी। यह सादत खा ही था जिसने नादिरशाह को आमन्त्रित किया था और जिसके आक्रमण ने मुगल साम्राज्य पर प्राणघातक प्रहार किया था।

मालवा और गुजरात को केन्द्र बनाकर मराठा न दूसर क्षेत्रो को जीतने का इरादा किया और टिड्डी दल के समान नवदा नदी के पार उतर कर उत्तरी भाग के स्थाना और नगरो पर आक्रमण करन लगे। होल्कर, सिंधिया, पवार और अन्य बहुत स सेनानायक अपन अनातवास से निकल कर चारो तरफ लूटमार करन लगे।[9] इनम से अधिकाश मराठे सरदार बाजीराव क आदमी थे। इन लोगो ने कमजोर राजपूत राज्या को लूटने और बरबाद करन का काम आरम्भ किया और कुछ स्थानो पर अधिकार करके वही पर बस भी गय। मराठो न राष्ट्रीयता के आधार पर अपना सगठन किया था। अत वह काफी मजबूत था। 1735 ई० म बाजीराव ने पहली बार चम्बल को पार करके राजधानी दिल्ली का घेर लिया था।[10] उसके अत्याचारा म घबरा कर बादशाह को उसकी वापसी खरीदनी पडी। उसे अपन साम्राज्य की आमदनी की चाथ (चौथाई भाग) देकर अपनी जान बचानी पडी। मुगल बादशाह की इस सौदेबाजी स निजाम चिंतित हो उठा क्योकि मराठा क बढते हुए प्रभाव से उसक राज्य का भी क्षति पहुच सकती थी। अत उसन मराठा को मालवा से खदेडन का निश्चय किया। उसका विश्वास था कि यदि मराठा न मालवा म अपन पर जमा लिय तो उनको वहा से निकालना कठिन हा जायगा और उत्तर भारत क साथ उसक राज्य का सम्पर्क टूट जायगा। अत उसने मालवा पर आक्रमण किया और एक भीषण युद्ध मे बाजीराव को पराजित किया। इसी समय उसे सूचना मिली कि नादिरशाह एक शक्तिशाली सेना क साथ हिंदुस्तान पर आक्रमण करन क लिय आ रहा है। इससे उसकी चिंता बढ गई और वह मराठा को मालवा म छोडकर अपने राज्य का लौट आया। काबुल को अपने अधिकार म लेकर नादिरशाह अपनी सना सहित हिन्दुस्तान मे घुस आया। इस नाजुक अवसर पर सभी का राजपूतो के शौय मे अगाध विश्वास था परंतु मुगल बादशाहा की नीति से राजपूत साम्राज्य स विमुख हा चुके थे और इस अवसर पर वे चुप होकर बठ गय। मुगल बादशाहत निबल पड चुकी थी और उसके प्रमुख अधिकारी अपन अपन स्वार्थो के लिये आपस म लड रहे थे। देश के सावजनिक हितो की किसी का कोई चिंता न थी। फिर भी, निजामउलमुल्क तथा सादतखा ने मिलकर मोर्चा लेन का निश्चय किया। बादशाह की तरफ से अमीरुल उमरा एक विशाल सेना के साथ आगे बढा। 1740 ई म करनाल के मदान पर दोनो पक्षो के मध्य युद्ध लडा गया[11] जिसम मुगल सेना बुरी तरह से पराजित हुई। अमीरूल उमरा मारा गया। सादतखा गिरफ्तार हो गया और मुहम्मदशाह तथा उसका राज्य नादिरशाह के अधिकार मे आ गया। अमीरूल उमरा क मारे जाने के बाद नादिरशाह न निजाम को अमीरूलउमरा का पद प्रदान किया। वजीर सादतखा का इसस ईर्ष्या उत्पन्न हुई और नादिरशाह की कृपा प्राप्त करने क उद्देश्य स उसने नादिरशाह को भडकाया कि दिल्ली के शाही काप म अपार धन सम्पत्ति भरी पडी है। निजाम न आपको जितना धन देन का वचन दिया है, उतना तो वह अकेला ही दे सकता है। सादतखा की बातो से नादिरशाह का

लालच बढ गया और उसने निजाम द्वारा जारी मधिवार्ता को तोड दिया। उसने शाही खजाने की चाभी की माग की। 8 माच, 1740 ई को नादिरशाह दिल्ली के सिहासन पर जा बैठा और उसने अपना नया सिक्का जारी किया। सिक्के पर निम्न पक्तियाँ अकित करवाई गई—ससार के बादशाहो का बादशाह, युग का शहशाह बादशाह नादिरशाह। शाही खजाने की सम्पत्ति तो पहले ही खच की जा चुकी थी। फिर भी, नादिरशाह को 40 करोड की धन मम्पत्ति हाथ लगी। परन्तु इससे नादिरशाह की भूख नही मिटी और उसका क्रोध भडक उठा। उसने ढाई करोड रुपयो की और माग प्रस्तुत की और इस धन को प्राप्त करन के लिये उसने लूटमार शुरू कर दी। अनेक भले लोगो ने उसके अत्याचार तथा सवनाश से छुटकारा पाने के लिये आत्म हत्याए कर ली। इस अवसर पर उसके कुछ ईरानी आदमी मारे गये। उत्तेजित नादिरशाह ने अपने सनिको को कत्ले आम का आदेश दे दिया। फलस्वरूप लाखो नागरिक मारे गये। सारे शहर को लूटा गया और कई स्थानो पर आग लगा दी गई। इस भयानक नरसहार के बाद नादिरशाह ने वजीर सादतखा को ढाई करोड रुपये दाखिल करन का हुक्म दिया। उसकी कृतघ्नता ने मुगल साम्राज्य का सवनाश किया था। अब वही उसके सवनाश का कारण बन गई। उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली। उसके दीवान मजलिस राय ने भी ऐसा ही किया ताकि नादिरशाह के कोप से छुटकारा मिल सके। इसके बाद नई सन्धि की गई जिसके अनुसार समस्त पश्चिमी सूब, काबुल, ठट्टा सिन्ध और मुल्तान मुहम्मदशाह की तरफ से नादिरशाह को सौप दिये गये। मुगलो की राजधानी को बर्बाद करके नादिरशाह स्वदेश लौट गया। नादिरशाह की सेना द्वारा किये गये नरसहार का उल्लेख कई ग्रन्थो मे पाया जाता है। उनम हाजिन नामक मुसलमान का ग्रन्थ अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

भारत के राजनतिक इतिहास के इस घटना प्रधान समय मे राजपूत राज्यो की कोई विशेष हानि नही हुई। इस्लामी राज्य की स्थापना के छ सौ वष इस देश म बीत चुके थे और इन वर्षों म उनके सामने ऐसे कितने ही तूफान आये थे। उन सभी का सामना करते हुए मेवाड मारवाड आमेर और कुछ अन्य राज्यो ने अब तक अपने अस्तित्व को बनाये रखा था। मारवाड और आमेर के राज्यो ने तो अपनी सीमाओं का काफी विस्तार भी कर लिया था। गजनवी के आक्रमण के समय मेवाड राज्य की जो सीमा थी आज भी वह कायम है। मराठो के हमला और लूट खसोट का इस राज्य पर क्या प्रभाव पडा और पिछले पचास वर्षों म इन सबका क्या प्रभाव पडा, उनका हम नीचे लिखने की चेष्टा करेंगे।

राजस्थान म मराठो के प्रवेश का सही अध्ययन करने के लिये हम बीते समय की तरफ ध्यान देना होगा। 1735 ई म मुहम्मदशाह ने अपनी आय का चौथाई भाग मराठो को देना स्वीकार किया था। चूकि राजस्थान के सभी राज्य मुगलो के अधीन थे, अत मुहम्मदशाह की भाति वे भी मराठो को कर म निश्चित धन देने लगे।

जिस तीव्र गति से मराठो के झुण्ड विजय पर विजय प्राप्त करते गये उससे राजपूत शासक सतर्क हो उठे और उन्होंने मिलकर पुन एक नयी सधि की। इस अवसर पर राणा जगतसिंह ने मारवाड के उत्तराधिकारी राजकुमार विजयसिंह के साथ अपनी लडकी का विवाह कर दिया। इसके अलावा दिल्ली दरवार की राजनीति को लेकर मारवाड और आमेर के घरानो मे पिछले कई वर्षो से जो वैमनस्य चला आ रहा था उसको दूर करके दोनो घराना मे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करवाये गये। इस प्रकार उदयपुर मे एकत्र होकर राजपूत राजाओ ने अपनी एकता को सुदृढ बनाने का प्रयास किया। परन्तु जसाकि अवसर देखन मे आया है इस प्रकार की एकता अधिक दिनो तक कायम न रह सकी और कुलीय विवादा के कारण थोडे ही दिनो मे वह छिन्न-भिन्न हो गई।

मालवा की प्राप्ति के बाद ही मराठा का चौथ वसूल करने का अधिकार भी मिल गया। तब उनका नेता बाजीराव मेवाड जा पहुचा। उसके आगमन से सभी आशकित हो उठे। राणा ने मराठा नेता से व्यक्तिगत मुलाकात को टालते हुए अपने प्रधानमत्री विहारीदास और सलूम्बर सरदार को बाजीराव से मिलने भेजा। काफी विचार विमर्श के बाद बाजीराव के साथ सधि सम्पन्न हो गई जिसके अनुसार राणा ने चौथ देना स्वीकार कर लिया। इस चौथ के नाम पर राणा न 1,60 000 रु वार्षिक देना प्रारम्भ किया। इस रकम को होल्कर, सिंधिया और पवार बराबर के हिस्सो म बाट लेते थे। मेवाड राज्य की तरफ से चौथ की यह रकम आगामी दस वर्षो तक नियमित रूप से मराठा को दी जाती रही। राजपूतो के वैवाहिक सम्बन्धो को लेकर आगे चलकर जो विवाद उत्पन्न हुआ उसने मराठो को उनके आतरिक मामला मे हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान कर दिया। जसाकि पहले बताया जा चुका है कि मेवाड के राणा ने अपनी लडकी का विवाह आमेर के राजा के साथ किया था। उस समय यह तय हुआ था कि मेवाड की राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र को ही वडे लडके के अधिकार प्राप्त होगे। समय आने पर उसके लडका हुआ जिसका नाम माधोसिह रखा गया। परन्तु जयसिह की वडी रानी से उत्पन्न लडका ईश्वरीसिह उससे बडा था। नादिरशाह के आक्रमण के दो वष बाद जयसिह की मृत्यु हो गई[12] और ईश्वरीसिह आमेर के सिंहासन पर बठा। यही सघष की शुरूआत होती है। राज्य के कुछ लोगो न राणा के भानजे माधोसिह का राजा बनान की चष्टा की। जयसिह न अपन वचन का निभाने के लिये क्या कदम उठाय थे इस बारे मे हम निश्चित तौर पर कुछ नहीं कह सकत। परन्तु इतना सत्य है कि माधोसिह का लालन पालन उत्तराधिकारी के रूप मे नही किया गया था। उस बचपन से ही मेवाड मे रखा गया और राणा सग्रामसिह ने उसे गुजारे के लिय रामपुरा की जागीर दे दी थी। ईश्वरीसिह का सिंहासन पर बठे पाच वष बीत गये तब तक माधोसिह को कोई सफलता न मिली थी। परन्तु अब राणा ने अपने भानजे माधोसिह का उसके अधिकार दिलवाने के लिय सेना सहित ईश्वरीसिह पर आक्रमण कर दिया। ईश्वरीसिह ने मराठा की सहायता

से राजमहल के युद्ध मे राणा को पराजित कर दिया ।[13] इस युद्ध मे कोटा और बूदी के राजाओ ने राणा की सहायता की थी । युद्ध के बाद, उन्हे सजा देने के लिये ईश्वरीसिंह ने आपाजी सिंधिया के साथ उन पर आक्रमण किया । हाडाओ ने इस आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया । युद्ध म सिंधिया का एक हाथ कट गया । युद्ध अनिर्णायक रहा । आमेर के राजा का अनुसरण करते हुए राणा ने एक दूसरे मराठा सेनानायक मल्हारराव होल्कर की सहायता प्राप्त की और ईश्वरीसिंह को हटा कर माधोसिंह को राजा बनाने के लिये उसे 64 लाख रुपये देने का वचन दिया । ईश्वरीसिंह ने जब यह समाचार सुना तो वह घबरा उठा और अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर उसने जहर खाकर आत्म हत्या कर ली । उसकी मृत्यु के बाद माधोसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा । होल्कर को उसकी घूस मिल गई और राजस्थान म मराठो के पैर जम गये । तब से लेकर अंग्रेजो के साथ संधि करने के समय तक राजपूतो का इतिहास आपसी संघर्ष और मराठो की लूट खसोट की कहानी है । संवत् 1808 (1752 ई) मे राणा जगतसिंह की मृत्यु हो गई । उसकी विलासिता तथा उसका आचरण मेवाड के राणा के अनुकूल न थे । मराठो का दमन करने के स्थान पर हाथियो की लडाई का आनन्द लेना उसके लिये अधिक महत्वपूर्ण था । फिर भी, अपने पूर्वाधिकारियो की भांति उसने कला और साहित्य को संरक्षण दिया तथा पिछोला की सुन्दरता को बढाने के लिये काफी धन खर्च किया ।

सन्दर्भ

1 सैयद हुसेनअली ने 1719 ई मे पेशवा बालाजी विश्वनाथ के साथ संधि की थी । उस संधि के अनुसार ही पेशवा अपनी सेना सहित सैयद हुसेन अली के साथ ही दक्षिण से दिल्ली आया था ।

2 टॉड साहब को राणा के दफ्तरखाने मे जयपुर नरेश जयसिंह का एक पत्र मिला था जिसमे जयसिंह ने फर्रुखसियर की दुर्दशा का भली भांति वर्णन किया है । जयसिंह ने यह पत्र राणा के दीवान बिहारीदास को भेजा था ।

3 जजिया कर इनायतउल्ला ने पुन जारी करवाया था ।

4 सादतखा (सआदतखा) एक खुरासानी सौदागर था । वह अपनी कोशिश से ही सेनापति बना और फिर अवध का नवाब बना । सादतखा ने सैयद हुसैन अली को अपने सैनिक हैदर के हाथ से मरवाया था ।

5 गिरधरदास राजा रत्नचन्द के मुख्य अधिकारी जुबीलराम का पुत्र था । वह नागर ब्राह्मण था ।

6 इसी सम्मेलन मे सवत् 1791 श्रावण सुद तेरस को एक सधि पत्र पर हस्ताक्षर किये गये थे ।

7 इस सेनापति का नाम मुबारिजखा था । वह पहले निजामउलमुल्क का सहयोगी रह चुका था ।

8 दयाबहादुर मालवा के पहले सूबेदार गिरधरदास का भतीजा था । गिरधर दास की मृत्यु के बाद उसे मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया था ।

9 सिंधिया के पूवज किसान थे और होल्कर गडरिया था । समय पाकर ये लोग प्रसिद्ध हो गये और एक एक विख्यात वश की प्रतिष्ठा की ।

10 बाजीराव का यह आक्रमण 1737 मे हुआ था ।

11 नादिरशाह का आक्रमण 1738 के अन्त मे हुआ था और 1739 ई मे उसने दिल्ली मे प्रवेश कर लिया था । 16 मई, 1739 को वह दिल्ली से वापस लौट गया था ।

12 सवाई जयसिंह की मृत्यु 21 सितम्बर, 1743 ई को हुई थी ।

13 ईश्वरीसिंह ने रानोजी सिंधिया और मल्हारराव होल्कर की सहायता से राणा को पराजित किया था । बाद मे राणा ने होल्कर को अपने पक्ष मे फोड लिया था ।

अध्याय 25

महाराणा अरिसिंह और हम्मीर द्वितीय

महराणा जगतसिंह द्वितीय की मृत्यु के बाद प्रतापसिंह द्वितीय 1752 ई० मे मेवाड के सिंहासन पर बैठा। उसने तीन वर्ष तक शासन किया। इसके समय में कोई वर्णन करने योग्य बात नही हुई। हा, तीन वर्ष की अवधि मे मराठो ने तीन बार मेवाड पर आक्रमण कर राणा से कर वसूल किया।[1] राणा का विवाह आमेर के जयसिंह की पुत्री के साथ हुआ था। इससे उसे एक पुत्र हुआ। यह पुत्र राजसिंह द्वितीय के नाम से उसका उत्तराधिकारी बना।

राजसिंह द्वितीय ने सात वर्ष तक शासन किया। उसके शासनकाल म दक्षिण के मराठो ने सात बार[2] मेवाड पर चढाई की और राज्य को इतना अधिक लूटा कि राणा को राठौड राजकुमारी से विवाह करने के लिये अपने ही एक ब्राह्मण अधिकारी से कर्जा लेना पडा। उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार की पुरानी पद्धति पलट गई और उसके चाचा अरिसिंह को मेवाड के सिंहासन पर बठाया गया।

सवत् 1818 (1762 ई) मे अरिसिंह अपने भतीजे के सिंहासन पर बठा। राणा जगतसिंह की चपलता और प्रतापसिंह द्वितीय तथा राजसिंह द्वितीय की अकमण्यता और नये राणा के उग्र स्वभाव ने मिलकर मेवाड को शोचनीय अवस्था मे पहुचा दिया। इसके पूव भी मराठा के आक्रमण हुए थे परन्तु अभी तक मेवाड को अपनी एक फुट भूमि से भी वचित न होना पडा था। पचौली मन्त्रिया की बुद्धिमता और मेवाड राजवश के प्रति सतारा के राजा के सम्मान ने राज्य को सुरक्षित रखा था। परन्तु मेवाड के आन्तरिक सघष ने मराठो को किसी न किसी पक्ष का पक्षधर बनकर राज्य की भूमि हथियाने का अवसर प्रदान किया। राणा प्रतापसिंह द्वितीय को हटा कर उसके चाचा नाथाजी को सिंहासन पर बैठाने की चेष्टा ने अनेक विद्रोहो को जन्म दिया और मल्हारराव को घरेलू झगडे मे हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान किया।

राजनीति मे आवश्यकता पडने पर रक्त सम्बन्धो तथा उपकारो को भुला देना और कृतघ्न बन जाना पाप नही समझा जाता, विशेषकर तब जब ऐसा करने से व्यक्ति का काय सिद्ध होता हो। माधोसिंह को आमेर का सिंहासन दिलवाने के

लिये राणा ने अपनी कोई शक्ति उठा न रखी थी उसी माधोसिंह ने राजा बन जाने के बाद राणा के सभी उपकारों को भुलाते हुए रामपुर का इलाका मल्हारराव होल्कर को सौंप दिया।[3] राणा ने यह इलाका उसको गुजारे के लिए दिया था और इस इलाके को किसी दूसरे को सौंपने का उसे कोई अधिकार नहीं था। इस प्रकार मेवाड़ का यह समृद्ध इलाका उससे छिन गया। बाजीराव द्वारा मेवाड़ पर आरोपित कर की वसूली का अधिकार भी होल्कर को मिल गया था। होल्कर ने निश्चित नियमों को तोड़कर कर वसूली का कार्य शुरू किया जिससे वह सन्धि टूट गई।[4] परन्तु मल्हारराव होल्कर ने उसी सन्धि के आधार पर बकाया कर की वसूली के लिये दबाव डालना शुरू कर दिया और अन्त में उसने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राणा ने 51 लाख रुपये देकर उससे छुटकारा पाया। इसी वर्ष मेवाड़ को भयंकर दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा। खान पीने की चीजें बहुत अधिक महंगी हो गई और लोगों को भयानक कष्टों का सामना करना पड़ा। चार वर्ष बाद मेवाड़ राज्य में आन्तरिक झगड़े उठ खड़े हुए जिनसे राज्य की शासन व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई।

राणा अरिसिंह के विरुद्ध उसके ही कुछ सामन्तों ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का वास्तविक कारण आज भी रहस्य बना हुआ है। कुछ के अनुसार मराठों के बढ़ते हुए आक्रमणों और अत्याचारों को रोकने में राणा की असफलता से असंतुष्ट होकर सामन्तों ने उसे सिंहासनच्युत करके दूसरे व्यक्ति को राणा बनाने के लिये विद्रोह किया था। जबकि कुछ दूसरों के अनुसार सामन्तों की स्वार्थपरता तथा राज्य की दो प्रमुख शाखाओं के आपसी संघर्ष ने इसको जन्म दिया था। महाराणा अरिसिंह पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने अपने भतीजे राजसिंह को मार कर सिंहासन प्राप्त किया था। इसके पूर्व वह मेवाड़ राज्य का एक साधारण सा सामन्त था और गुजारे के लिये उसे जो जागीर मिली थी उसकी आय तीस हजार रुपया वार्षिक थी। प्रथम श्रेणी के सोलह सरदार तो उससे श्रेष्ठ थे ही दूसरी श्रेणी के बहुत से सरदार भी उससे बढ़े चढ़े थे। अरिसिंह के राणा बन जाने से इन सभी सरदारों को उससे जलन होने लगी थी। इस प्रकार सामन्तों के विद्रोह के लिये अलग अलग कारण बतलाये जाते हैं। सही कारण इंगित करना कठिन है। परन्तु कोई न कोई कारण तो अवश्य रहा होगा। अरिसिंह की अयोग्यता ने विद्रोह को बढ़ावा ही दिया। उसके रूखे व्यवहार ने उसके सरदारों और राज्य के शक्तिशाली व्यक्तियों को उसका शत्रु बना दिया था। राणा ने मेवाड़ के एक प्रमुख सरदार सादड़ी के सामन्त को उसके पद से अलग कर दिया। जिस झाला सरदार ने हल्दी घाटी के युद्ध में प्रताप के प्राणों की रक्षा करके सीसोदिया राजवंश का उपकार किया था, अरिसिंह ने उसके अहसान को भी भुला दिया। इसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसने दूसरे सरदारों के साथ भी किया। देवगढ़ के शक्तिशाली सरदार जसवन्तसिंह के साथ भी उसने अपमानजनक व्यवहार किया था। चूंडावत सरदार जसवन्तसिंह राणा के कृत्य को न भुला पाया और अवसर मिलते ही उसने करारा जवाब दिया। इन सामन्तों

ने मिलकर अपना एक गुट बना लिया जिसमें अन्य बहुत से छोटे सरदार भी शामिल हो गये और उन्होने अरिसिंह को सिंहासनच्युत करने के लिए रत्नसिंह नामक युवक को मृत राणा राजसिंह द्वितीय का पुत्र घोषित करके उसके पक्ष मे प्रचार शुरू कर दिया। कहा जाता है कि वह गोगु दा सरदार की लडकी से राजसिंह की मृत्यु के कुछ समय के बाद हुआ था। उस समय यह बात विवाद का विषय बन गई थी कि रत्न सिंह वास्तविक उत्तराधिकारी है अथवा विरोधी गुट का कठपुतला मात्र है। यह लडकी राणा को ब्याही गयी थी, इस बात के सत्य और असत्य होने का कोई भी निर्णय वहा के लोगो के सामने नही आया। सत्य जो भी रहा हो, विद्रोही सामन्तों ने अरिसिंह को पदच्युत करने के लिये रत्नसिंह को आधार बनाया। मेवाड के प्रमुख सोलह सरदारो मे से केवल पाच ने राणा का पक्ष लिया।[5] इनमे सलूम्बर का सरदार भी था। प्रारम्भ मे उसने रत्नसिंह का पक्ष लिया था परन्तु जब उसने देखा कि विरोधी गुट[6] पर शक्तावतो का नियन्त्रण है तो वह राणा का पक्षधर बन गया। शक्तावतो और चूडावतो की आपसी स्पर्धा ही इसका मुख्य कारण थी।

कुम्भलगढ का सरदार बसनपाल भी विद्रोहियो के साथ था। रत्नसिंह जिसे राणा 'फितूरी' कहता था ने भी कुम्भलगढ को अपना केन्द्र बनाया और विद्रोही सरदारो ने भी यही पर बठकर अपनी रणनीति तय की। इसके अनुसार मराठा सरदार सिंधिया से सैनिक सहायता प्राप्त करने का निश्चय किया गया और उसको इस सहायता (रत्नसिंह को सिंहासन पर बठाने) के बदले मे सवा करोड रुपये देने का आश्वासन दिया।[7] मेवाड के विद्रोही सरदारो की इस राजनीतिक भूल ने उस राज्य को पतन की तरफ धकेल दिया।

इस सघर्ष के दौरान पहली बार भारत के प्रतिष्ठित सरदार कोटा के जालिम सिंह का नाम सामने आया। आगे चल कर उसने बडी प्रतिष्ठा अर्जित की। उसके जीवनवृत्त पर अन्यत्र विचार किया जायेगा। यहा इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि अपने राजा से अनबन हो जाने के कारण वह कोटा छोडकर राणा के पास उदयपुर चला आया था। राणा ने उसको अपने राज्य मे एक सरदार का पद देकर उसका सम्मान किया और उसके भरण पोषण के लिये छत्रसरी का जागीर प्रदान की। राणा ने उसको "राज राणा" की उपाधि भी प्रदान की। जालिमसिंह की सलाह पर राणा ने भी मराठो का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया और इसके लिये राघू पागेवाला और दौला मिया नाम के दो मराठा सरदारो को उनके सैनिक दस्ता सहित बुलाया गया।[8] इस बीच महाराणा न राज्य के पुराने मन्त्री पचौली को हटा कर मेहता उग्रजी को नया मन्त्री नियुक्त किया। इस समय (सवत् 1824) महादाजी सिंधिया उज्जैन मे था। उसने पहले से ही रत्नसिंह के पक्ष का समर्थन दे दिया था और वह भी क्षिप्रा नदी के किनारे पडाव डाला हुआ था। राणा को महादाजी से सहायता न मिल पाई।

राणा ने रत्नसिंह का सामना करने के लिये सलूम्बर सरदार के नेतृत्व मे एक सेना भेजी। इस सेना मे शाहपुरा और बनेडा के राजा, जालिमसिंह और दानो मराठा सेनानायक सम्मिलित थे।[9] मेवाड की सेना ने क्षिप्रा नदी को पार कर रत्नसिंह और सिंधिया की सम्मिलित सेना पर जारदार आक्रमण किया और उस खदेडते हुए उज्जैन नगर के दरवाजे तक जा पहुची। रत्नसिंह और सिंधिया की सेना पराजित हुई और उसने उज्जैन के दूसरी तरफ पडाव डाला।[10] कुछ दिना बाद सिंधिया ने असावधान मेवाडी सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया। इस लडाई म सलूम्बर, शाहपुरा और बनेडा के सरदार मारे गये। दौला मिया नरवर का भूतपूव राजा मान और सादडी का उत्तराधिकारी बुरी तरह से घायल हुए। जालिमसिंह भी घायल हुआ और ब दी बना लिया गया। अम्बाजी के पिता त्रिम्बकराव ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया। मेवाड की पराजित सेना वापस उदयपुर चली आई। रत्नसिंह और उसके साथी सरदार सिंधिया के पास ही बने रह और उससे राजधानी पर आक्रमण करके रत्नसिंह को सिंहासन पर बैठाने का अनुरोध करते रहे। कुछ समय बाद सिंधिया न एक विशाल सेना के साथ मेवाड मे प्रवेश किया और राजधानी को घेर लिया।[11] इस सकट के समय सलूम्बर का सरदार भीमसिंह (उज्जन के युद्ध मे मारे गये सरदार का चाचा जो उसका उत्तराधिकारी बना था) और बदनौर का राठौड सरदार ही राणा के साथ थे। पर तु एक व्यक्ति की चतुराई ने राणा को इस विनाश से बचा लिया। वह था अमरचन्द बरवा।

अमरच द बरवा का जन्म वैश्य कुल मे हुआ था। काफी वर्षो पूव वह मेवाड का मन्त्री रह चुका था। वह अत्य त बुद्धिमान और राजकार्यो मे दक्ष था। स्वर्गीय राणा के समय मे मेवाड मे होने वाले उपद्रवो को रोकने मे उसने अपनी बुद्धिमता का परिचय दिया था। पर तु राणा अरिसिंह ने उसके साथ भी दुर्व्यवहार किया था और उसे मन्त्री पद से हटा दिया था। उसे म त्री पद से हटे दस वष बीत चुके थे और इस अवधि मे मेवाड म बहुत से परिवतन हो चुके थे। जिन सरदारो ने राणा का पक्ष छोडकर रत्नसिंह का पक्ष लिया था उनके स्थान म वेतनभोगी सिंधी लोग नौकर रखे गये। इन सिंधी लोगो न पूर्वोक्त सरदारो की छूटी हुई भूमि पर अपना अधिकार करके राज्य म माना अप्रसन्नता का बीज बो दिया। राणा अरिसिंह अपनी अयोग्यता और निबलता के कारण इन झूठे प्रशसको की अनुचित कायवाहिया को चुपचाप सहन करते रहे। अमरच द बरवा राज्य की इस पतनोन्मुख अवस्था को चुपचाप देख रहा था। इन दिना वह राज्य के किसी पद पर न था। फिर भी उसने इस सकट को दूर करन के उपाय सोच रखे थे। उसने देखा कि उदयपुर के चारो तरफ रक्षा के लिए कोई खाई नही है। उदयपुर स दक्षिण की तरफ कुछ दूरी पर एकलिंगगढ नाम का एक ऊचा पहाड था। वह उदयपुर का एक प्रमुख द्वार था। राणा अरिसिंह न इसको सुरक्षित बनाने के लिये कुछ निर्माण काय प्रारम्भ करवाया था। पर तु वहा की पहाडी जमीन ऊँची नीची होने की वजह से निमाण काय करवाना

बहुत असुविधाजनक था। इसलिये राणा को सफलता नही मिल पा रही थी। एक दिन राणा निर्माण काय का निरीक्षण करने उस पहाडी स्थान पर गया हुआ था। अमरचन्द बरवा भी वहा उपस्थित था। राणा उसकी योग्यता को जानता था। अत उसने उससे विचार विमश किया और पूछा कि इस काय को पूरा करवाने मे कितना धन और समय चाहिए। अमरचन्द ने सहजभाव से उत्तर दिया—काम करने वाला के लिये खाने-पीने का सामान और कुछ दिनो का समय। प्रसन्नचित्त राणा ने यह काम अमरचन्द बरवा को सौप दिया। अमरच द ने उस काय को आरम्भ करवा दिया और उदयपुर से एकलिगगढ तक एक रास्ता तैयार करवा दिया। थोडे दिना बाद इस काय को पूरा करके अमरचन्द ने उस पहाड से तोप छोडकर राणा अरिसिंह का अभिवादन किया।

महादाजी सिन्धिया और रत्नसिंह की सेना ने उत्तर दक्षिण और पूव की तरफ से उदयपुर को घेर लिया। केवल पश्चिम की तरफ वाला माग सुरक्षित रह गया था। इस समय राणा भयकर सकट मे फस गया था। राज्य के अधिकाश सरदार उसके विरोधी बन चुके थे। केवल सिंधी सेना उसके साथ थी परन्तु वह भी वेतन न मिल पाने की वजह से विरोधी बनती जा रही थी। ऐसी स्थिति म उसके दूध भाई रघुदेव ने (जो झाला सरदार का उत्तराधिकारी होकर मन्त्री का काय कर रहा था) राणा को सलाह दी कि आप उदयपुर छोडकर माण्डलगढ चले जायें। पर तु राणा को इससे सतोष नही हुआ। उसने सलम्बर सरदार से विचार विमश किया। सलूम्बर सरदार न राणा को उदयपुर मे ही रहने की तथा अमरचन्द बरवा को बुलाने की सलाह दी। अमरचन्द को बुलाया गया। उसन राणा से कहा, 'इस समय राज्य भीषण सकट म फस गया है और मैं सहज ही साहस नही कर सकता। मेरे स्वभाव मे भी एक दोष है और वह यह है कि मै जो सही समझता हू वही करता हूँ। मै किसी का आदेश पसन्द नही करता। मैं अपने इस अपराध को स्वय स्वीकार करता हूँ। मवाड राज्य मे इस समय धन की कमी है। सरदार शत्रु पक्ष से मिल गये हैं फिर भी मैं जो कुछ कर सकता हूँ वह करन को तयार हूँ। लकिन मेरी एक शत है कि मेरे कार्यो मे बाधा और अविश्वास उत्पन न किया जाय और मेरे आदेश का पालन किया जाय।' राणा के सामन और कोई विकल्प न था। अत उसने अमरच द की शत का स्वीकार कर लिया और अपने कुलदवता एकलिंग की शपथ ले अमरच द को वचन देत हुए कहा, "मै किसी प्रकार का अविश्वास नही करूगा। यदि तुम रानी का रत्नहार और नथ भी मागोग तो उसको देन से भी इ कार नही करूगा।'

इसके बाद अमरच द ने सिंधी सेना क बकाया वतन को चुकान की व्यवस्था की। उसन मवाड राज्य का खजाना अपन अधिकार मे ल लिया। उससे सिंधी सेना का वतन चुकाया गया। उसी धन स अस्त्र शस्त्र खरीद गये। गोला बारूद

एकत्र किया गया। बडी तादाद म खाने पीने की सामग्री का सग्रह किया गया। अपने इन सभी उपायो से अमरच द ने छ महीने तक शत्रु सेना को आगे नही बढने दिया। इससे नागरिको मे भी असताप नही फला।

रत्नसिंह तथा उसके साथी सरदारो ने इस समय तक राज्य के कई स्थानो पर अपना नियन्त्रण कर लिया था और उदयपुर की घाटी तक अपना प्रभाव बढा चुके थे। उन्होने सिंधिया को सवा करोड रुपया देने का वायदा किया था परन्तु अभी तक वे उस रकम को नही दे पाये थे। ऐसी स्थिति मे सिंधिया ने अमरच द के साथ सधि करने की सोची और सधि के लिये सत्तर लाख रुपयो की माग रखी गई। सिंधिया की तरफ से यह वायदा भी किया गया कि वह रत्नसिंह का पक्ष त्याग कर वापस चला जायेगा। अमरचन्द ने सिंधिया की शर्तो को स्वीकार कर लिया। इस पर सधि पत्र लिखा गया और दोनो पक्षो की तरफ से उस पर हस्ताक्षर भी कर दिये गये। परन्तु इसके तत्काल बाद ही सिंधिया ने सधि पत्र के 70 लाख रुपया के अतिरिक्त बीस लाख रुपयो की और माग प्रस्तुत कर दी। सिंधिया के इस आचरण से अमरच द बहुत अधिक क्रोधित हो उठा और उसने सधि पत्र को फाड कर उसके फटे हुए टुकडे सिंधिया के पास भिजवा दिये। इस प्रकार जो सधि हुई थी, वह समाप्त हो गई। इस सकट के समय अमरच द का साहस बढ गया और उसने अपने सनिको तथा सरदारो मे नई शक्ति फूक दी। उसम चरित्र का बल था। योग्यता और दूरदर्शिता थी। उसने राज्य की सम्पत्ति, राज्य की सुरक्षा तथा प्रजा म सुख तथा सताप उत्पन्न करने के लिये खच की थी। राज्य के खजाने मे अब तक जो बहुमूल्य हीरे जवाहरात बेकार पडे थे उन सबको बेच कर उसने खाने के अनाजो का सग्रह किया ताकि लोगो को पेट भर भोजन मिल सके। सिंधियो पर इसका अच्छा प्रभाव पडा। उन्होने सावजनिक रूप स घोषणा की कि वे आखिरी समय तक राणा के पक्ष मे लडते रहगे। बहुत से राजपूत सरदार भी राणा की सहायता के लिये आ पहुँचे। इन सब बातो की सूचना सिंधिया तक भी पहुची जिससे वह निराश हो गया और उसने नये सिरे से अमरच द के साथ सधि वार्ता करने का निश्चय किया। अमरच द इस समय मेवाड राज्य को पहले की तरह निबल नही समझता था। उसके प्रयासो से मेवाड की परिस्थिति बदल चुकी थी और चारो तरफ नवजागरण हो चुका था। अत उसने सिंधिया को कहला भेजा कि विगत 6 महीने से सिंधिया की घेरा ब दी से जो क्षति पहुची है उसको काटकर शेष धन के बदले सधि की जा सकती है। विवश होकर सिंधिया को अमरच द की बात माननी पडी। नई सधि के अनुसार मराट ने सिंधिया को 63,50,000 रुपये देना स्वीकार किया।[12] अमरच द ने राज्य के खजाने का बचा हुआ सोना रत्न और जवाहिरात देकर सधि के रुपया म 33 लाख अदा कर दिये और बाकी रुपयो के लिये जावद, जीरण, नीमच, मोरवण इत्यादि जिलो को गिरवी मे रखा। यह तय हुआ कि इन जिलो की आमदनी से शेष रुपयो की वसूली के बाद य वापस राणा को लौटा दिये जायेग। इस प्रकार सिंधिया

के साथ समझौता सम्पन्न हुआ। परन्तु आगे चलकर सिंधिया ने उपरोक्त जिलों से राणा के कर्मचारियों को निकाल दिया और उन पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार, ये सभी इलाके हमेशा के लिये मेवाड राज्य के हाथ से निकल गये। यद्यपि सिंधिया की निर्बलता के समय में थोड़े दिनों के लिए राणा ने उन पर पुनः अपना अधिकार जमा लिया था, परन्तु वह अधिक दिनों तक अपना अधिकार कायम न रख पाया। मराठों ने उन पर पुनः अधिकार जमा लिया। संवत् 1831 में मराठा संघ के बड़े अधिकारी पेशवा के नियन्त्रण से मुक्त होने लगे। सिंधिया ने अपने अधिकृत क्षेत्र को अपने स्वतन्त्र राज्य में परिवर्तित कर दिया और मोरवण नामक गांव होल्कर को दे दिया। होल्कर ने मेवाड के इस गांव को अपने अधिकार में लेकर दूसरे वर्ष राणा से मेवाड राज्य के नीमबहेडा नामक इलाके की मांग की। राणा को विवश होकर यह इलाका सौंपना पड़ा।

इस प्रकार, संवत् 1826 में उदयपुर का घेरा समाप्त हुआ परन्तु मेवाड के चार समृद्ध इलाके उसके हाथ से निकल गये। परन्तु ये इलाके गिरवी रखे गये थे और मेवाड उनकी वापसी की बराबर मांग करता रहा। 1817 ई. में ब्रिटिश सरकार के साथ संधि करते समय भी राणा के प्रतिनिधियों ने इनकी मांग की थी, परन्तु हमें न तो इनके बारे में पूरी जानकारी थी और सिंधिया के साथ अच्छे संबंध होने के कारण हम राणा को आश्वासन देने की स्थिति में भी न थे।

अमरचंद द्वारा राजधानी की सुरक्षा और मराठों का पलायन रत्नसिंह की आशाओं के लिए प्राणघातक प्रहार था। उसने न केवल कई महत्वपूर्ण नगरों और दुर्गों पर अधिकार कर रखा था अपितु राजधानी की घाटी में भी अपने पैर जमा लिये थे। परन्तु उन पर उसका अधिकार बहुत दिनों तक कायम न रह पाया। राजनगर, रायपुर और अन्तला पर राणा ने पुनः अधिकार कर लिया। रत्नसिंह के साथी सरदारों में से बहुत से सरदार उसका साथ छोड़कर राणा की सेवा में उदयपुर चले आये। राणा ने उनके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और उनकी जागीरें उनको वापस कर दी। अब रत्नसिंह के पक्ष में केवल देवगढ, भिण्डर और आमेट के प्रमुख सरदार ही रह गये थे। ये लोग भी थोड़े दिनों के बाद राणा की सेवा में चले आये।

विद्रोह के इन दिनों में जब रत्नसिंह ने कुम्भलगढ को अपना निवास स्थान बनाया था, राणा अरिसिंह ने गौडवार का इलाका जोधपुर के राजा विजयसिंह को सौंप दिया था। राणा ने सोचा था कि रत्नसिंह गौडवार पर अधिकार कर सकता है। यह इलाका काफी उपजाऊ था। इसलिये इसकी सुरक्षा की दृष्टि से राणा ने एक इकरारनामा तैयार करवाकर इस इलाके को विजयसिंह के अधिकार में दिया था।[13] यह तय हुआ था कि इस इलाके की आय से विजयसिंह तीन हजार सैनिक

राणा की सेवा मे रखेगा । परन्तु मारवाड ने इस इलाके को अपने राज्य मे मिला लिया ।

अरिसिंह की दुमति उसे अहेरिया उत्सव म भाग लेने के लिए बूदी ले गई यद्यपि सती ने भविष्यवाणी की थी कि वह इसमे न जाय । यह उत्सव मेवाड के लिये कई बार अनथकारी सिद्ध हो चुका था और तीन राणा इस उत्सव मे अपने प्राण गवा चुके थे । जव राणा अरिसिंह इस उत्सव से वापस लौटने वाला था तब माग मे बूदी के हाडा राजकुमार अजीत ने उस पर अचानक भाले का प्रहार किया। राणा जख्मी हो गया । तभी अजीत के एक साथी सरदार ने राणा का अ त कर दिया । अजीत के इस कुकृत्य की उसके पिता सहित सभी हाडा सरदारो ने निंदा की। राणा अरिसिंह की हत्या के पीछे कुछ कारण थे । कुछ के अनुसार मेवाड के विद्रोही सरदारो ने अजीत को इसके लिए प्रेरित किया था । वे राणा की सेवा म पुन लौट तो आये थे परन्तु राणा के साथ आतरिक मन से काम नही कर पा रह थे और राणा के पूव व्यवहार तथा आचरण को भुला नही पा रहे थे । इस सम्ब ध म केवल एक घटना का उल्लेख ही पर्याप्त होगा । जिस सलूम्बर सरदार के पिता न मेवाड राज्य के लिये उज्जन के युद्ध मे अपने प्राणो की आहुति दे दी थी उसी के प्रति शका उत्पन हो जाने पर राणा ने उसे तत्काल राज्य से निकल जाने का आदेश दिया और कहा कि यदि तुमने मेरा आदेश नही माना तो तुम्हारा सिर कटवा दूँगा । सलूम्बर सरदार ने जाते समय राणा से कहा था कि आपकी आज्ञा से मैं जा रहा हू परन्तु इसका फल आपको और आपके परिवार को अच्छा न मिलेगा ।" राणा की मृत्यु के सम्ब ध मे इसी प्रकार से कई अनुमान लगाये जात हैं । यह भी कहा जाता है कि मेवाड की सीमा मे स्थित विलौना गाव पर बूदी के शासक ने अधिकार कर लिया था । यह घटना भी झगडे का कारण बन गई थी । परन्तु राणा की हत्या के सही कारण क बारे म निश्चित तौर पर कुछ भी नही कहा जा सकता ।

अहेरिया उत्सव के समय राणा का वध होत ही उसके साथी सरदार और सनिक उसको छोडकर भाग खड हुए थे । केवल उसकी एक छोटी रानी उसके पास रह गई थी । उसने चिता तयार की और अपन पति के मृत शरीर के साथ भस्मीभूत हो गई ।

राणा अरिसिंह अपने पीछे दो पुत्र छोड गया—हम्मीर और भीमसिंह । सवत् 1828 (1772 ई) म बडा लडका हम्मीर मेवाड के सिंहासन पर बठा । उस समय उसकी आयु केवल बारह वष की थी । अत राजमाता न शासनसूत्र अपन हाथ मे ले लिया । राजमाता महत्वाकाक्षी थी । उधर सलूम्बर का सरदार भी शासन काय म अपनी प्रमुखता को कायम रखन के लिए दृढ सकल्प था । शक्तावता

के प्रति उसके मन मे घोर शत्रुता थी क्योंकि वे राजमाता के समर्थक बन गये थे। ऐसी स्थिति म मेवाड का पूर्ण विनाश निश्चित था। उसके मदान रक्तरंजित हो उठे और उसके द्वार प्रत्येक आक्रमणकारी के लिये खुल गये।

भडत सिंधी सैनिको ने मेवाड राज्य को निबल पाकर उसकी राजधानी को अपने अधिकार मे लेकर अपने बाकी वेतन की माग की। इस समय राजधानी की सुरक्षा का भार सलूम्बर सरदार के पास था। सिंधियो ने उसको पकड लिया और उसके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार करना शुरू कर दिया। सलूम्बर सरदार द्वारा उनका वेतन न चुकाये जाने पर सिंधी सैनिको ने उसे जलते हुए लोहे पर बठान एव उसको दण्ड देने की व्यवस्था करने लगे। ऐसे समय पर अमरचन्द बरवा बूदी से लौटकर आया और उसने सिंधियो के अत्याचार से सलूम्बर सरदार को मुक्त करवाया। इस स्वामिभक्त मन्त्री ने सत्ता के लोलुप सभी लोगो के विरुद्ध अवयस्क राणा के अधिकारो को सुरक्षित रखने का निश्चय किया। उसने अपने पास की समस्त सम्पत्ति की सूची तयार की और उसे राजमाता के पास भेज दिया। बहुमूल्य मोती सोना, चादी, हीरा, जवाहिरात के साथ अमरचन्द ने वह सूची भिजवाई थी। राजमाता उसको देखकर आश्चर्यचकित रह गई और उसने यह सामग्री अमरचन्द को वापस देनी चाही, परन्तु अमरचन्द ने उसे स्वीकार नही किया। ऐसा उसने राजमाता का पूर्ण विश्वास प्राप्त करने के लिये किया था और उस समय राजमाता पर उसका प्रभाव पडा भी। परन्तु कुछ दिनो बाद ही राजमाता की भावना बदल गई। राजमाता रामप्यारी नामक एक स्त्री से अत्यधिक प्रभावित थी और वह स्त्री एक चरित्रहीन राजकर्मचारी से सम्बन्ध रखती थी। वह राजकर्मचारी अमरचद बरवा के विरोधियो का साथी था। अत रामप्यारी अमरचन्द के विरुद्ध राजमाता को नित्य प्रति उकसाने लगी। अमरचन्द को इन सब बातो की जानकारी थी। परन्तु वह निस्वार्थ भाव से राणा के हितो की रक्षा करता रहा। राजमाता ने अब चूण्डावतो का सहारा लेकर मन्त्री के कार्यों का विरोध करना शुरू कर दिया। उसे इस बात का जरा भी ध्यान न रहा कि वह उसी के अवयस्क पुत्र के हितो की देखभाल कर रहा है। जो भी व्यक्ति उससे अमरचन्द के विरुद्ध जो कुछ भी कहता राजमाता उस पर विश्वास कर लेती थी। एक दिन रामप्यारी ने अमरचन्द के पास जाकर राजमाता की तरफ से एसी बातें कही जो मन्त्री के सम्मान के सवथा विपरीत थी। अमरचन्द ने उसे डाट कर भगा दिया। रामप्यारी ने राजमाता के पास जाकर अनेक झूठी बातें कह डाली जिन्हे सुनकर राजमाता अत्यधिक क्रोधित हो उठी और उसी समय सलूम्बर सरदार के पास जाने की तयारी की। अमरचन्द ने माग मे ही नौकरो को रोककर राजमाता की पालकी को राजमहल ले जाने का आदेश दिया। महल के पास पहुचने पर अमरचन्द ने अत्यन्त विनम्रता के साथ राजमाता को समझाया। परन्तु उसकी बातो का राजमाता पर कोई असर नही हुआ। वह तो अमरचन्द को अपना शत्रु मान

बैठी थी। ग्रमरचन्द के प्रति उसका ग्रविश्वास बढ़ता ही गया ग्रौर ग्रन्त म उसने विप खिलवाकर मन्त्री ग्रमरचन्द के प्राण ले ही लिये। राजमाता खुशामदपसन्द थी। वह ग्रमरचन्द की योग्यता का लाभ न उठा पाई। ग्रमरचन्द ने राज्य के लिये ग्रपना सवस्व ग्रर्पित कर दिया था। उसके ग्रन्तिम सस्कार के लिय उसके घर से पूरे पैसे नही मिले ग्रौर लोगो ने चन्दा एकत्र कर उसका ग्रन्तिम सस्कार किया। उसके जीवन का यह पीडादायक दृश्य मेवाड राज्य के सवनाश का कारण बना।

ग्रमरचन्द ने बडी बुद्धिमता से राज्य के स्वार्थी सरदारो ग्रौर ग्रधिकारियो को नियन्त्रण मे रख छोडा था ग्रौर मराठा तथा ग्रन्य शत्रुग्रो से राज्य को सुरक्षा प्रदान की थी। उसकी मृत्यु के बाद विद्रोही सक्रिय हो उठे। सवत् 1831 (1775 ई) म बेगू सरदार ने राज्य पर ग्राक्रमण कर दिया। उसको रोकने के लिय मेवाड मे ग्रब कोई शूरवीर न था। इसलिये उसके विद्रोह को दबाने के लिए राजमाता को सिन्धिया से सहायता मागनी पडी। बेगू का सरदार चूण्डावतो की मेघावत शाखा का था। उसन राज्य के बहुत से इलाको पर ग्रधिकार जमा लिया। सिन्धिया न बेगू सरदार का दमन कर दिया ग्रौर उसने राज्य के जिन इलाका पर ग्रपना ग्रधिकार किया था व भी उससे छीन लिये ग्रौर उससे बारह लाख रुपये हर्जाना वसूल किया। उससे छीने हुए इलाको को सिन्धिया ने मेवाड का वापस नही लौटाये। रतनगढ, खेडी सिंगोली के प्रसिद्ध स्थान तो ग्रपन दामाद वीरजी प्रताप को दे दिये ग्रौर इनिया जाठ बिचून, नदाई इत्यादि स्थान हाल्कर को दे दिये। इन सभी इलाका की वार्षिक ग्राय लगभग 6 लाख रुपये थी। मराठो की भूख यही पर समाप्त नही हुई थी। सवत् 1830 31 ग्रौर 1836 मे युद्ध की सहायता की कीमत मे ग्रत्यधिक धन की माग की गई ग्रौर माग पूरी न होन पर मेवाड राज्य के बहुत से इलाको पर मराठा ने बलात् कब्जा कर लिया। मेवाड की इस शाचनीय ग्रवस्था मे 18 वप की ग्रायु मे ही हमीर की मृत्यु हो गई।

मेवाड के राणाग्रो से मराठो ने समय समय पर जो धन वसूल किया उसका विवरण इस प्रकार है—

66 लाख रुपये सवत् 1808 (1752 ई) म राणा जगतसिंह न हाल्कर को दिये।

51 लाख रुपये सवत् 1820 (1764 ई) मे ग्ररिसिंह ने हाल्कर को दिय।

64 लाख रुपय सवत् 1826 (1769 ई) मे ग्ररिसिंह न महादाजी सिन्धिया का दिये।

इस प्रकार केवल तीन ग्रवसरो पर ही मराठा ने मेवाड राज्य से एक करोड इक्यासी लाख रुपये वसूल किय। इनक ग्रलावा मराठा ने मेवाड राज्य के जिन इलाको को हडप लिया था उन सबकी वार्षिक ग्रामदनी 28 लाख 50 हजार रुपय

अध्याय 26

महाराणा भीमसिंह

महाराणा हमीर द्वितीय की मृत्यु के बाद आठ वर्षीय भीमसिंह सवत् 1834 (1778 ई०) मे मेवाड के सिंहासन पर बैठा। उसने पचास वर्ष तक शासन किया। उसके शासन के पचास वर्षों मे राज्य मे जो अनर्थ और उत्पात हुआ उससे इस राज्य की बची हुई शक्तियाँ भी छिन्न भिन्न हो गइ। वयस्क हो जाने के बाद भी भीमसिंह को बहुत समय तक अपनी माता के नियन्त्रण मे रहना पडा। इस नियन्त्रण ने उसके चरित्र को काफी प्रभावित किया। वह उत्साहहीन हो गया। उसमे स्वय समझने और विचार करने की शक्ति का विकास न हो पाया। इसलिये दूसरे लोग उसे सरलता से अपने अनुकूल बना लेते थे।

सवत् 1840 (1784 ई०) मे चूडावतो ने अपनी निष्ठा से प्राप्त सत्ता और प्रधानता का अपनी प्रतिस्पर्धी शाखा शक्तावतो के विरुद्ध दुरुपयोग किया। इस समय सलूम्बर सरदार अपने सम्बन्धी कोरावाड के अर्जुनसिंह और आमती के प्रताप सिंह के साथ राजदरबार मे सत्तारूढ था।[1] सिंधिया की भाडेत सेना उनके नियन्त्रण मे थी। उन्होने मिलकर शक्तावतो के सरदार मोहकम के दुर्ग भीदर को चारो तरफ से घेर लिया। दुर्ग के आस पास तोपें लगा दी गईं। यह आक्रमण अकस्मात किया गया।

शक्तावत वश की एक छोटी शाखा मे उत्पन्न सग्रामसिंह जिसने मेवाड की भावी घटनाओ मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, इन दिनो मे लोगो की नजरो मे आने ही लगा था। कुछ दिनो पूर्व ही उसने पुरावत सरदार से लावा नामक दुर्ग जीत लिया था। जब उसे भीदर दुर्ग के घेरे का पता चला तो उसने अर्जुनसिंह के कोरावाड पर आक्रमण कर दिया। अर्जुनसिंह का पुत्र सालिमसिंह इस चढाई मे मारा गया। जब उसकी मृत्यु का समाचार अर्जुनसिंह को मिला तो वह भीदर के घेरे को छोडकर सग्रामसिंह के गाव शिवगढ की तरफ बढा और उस पर धावा बोल दिया। उस समय शिवगढ मे सग्रामसिंह का बूढा पिता लालजी परिवार की स्त्रियो और बच्चो के साथ अकेला था। फिर भी, वृद्ध लालजी ने साहस के साथ युद्ध किया और

थी। इन इलाकों के नाम हैं—रामपुरा, भानपुरा जावद, जीरण, नीमच, निम्बेहरा, रतनगढ, खेडी, मिंगोली इंनिया, जाठ, बिचूर और नदोई तथा कुछ अन्य छोटे इलाके।

सन्दर्भ

1 इन आक्रमणों के नेता थे—सतवाजी, जनकोजी और रघुनाथ राव।

2 (1) सवत् 1812 मे राजा बहादुर (2) सवत् 1813 मे मल्हारराव होल्कर और विट्ठल राव (3) सवत् 1814 मे राणाजी बोरटिया (4) सवत् 1813 मे तीन बार युद्ध के लिये धन की माग की गई। माग करने वाले थे—सदाशिव राव, गोवि द राव और का हजी जाधव।

3 यह घटना सन् 1752 की है। इस घटना के बाद रामपुर इलाके के कुछ गाव ही मेवाड राज्य के पास रह गये।

4 बाजीराव के साथ सम्पन्न सधि मे यह तय हुआ था कि आज के बाद मराठे मेवाड राज्य पर आक्रमण नही करेंगे। परन्तु मराठो ने आक्रमण कर सधि की शर्तो को तोड दिया।

5 ये पाच सरदार थे—सलूम्बर, बिजौलिया, आमेट धानराव और बदनौर के सरदार।

6 विरोधी गुट मे भीडर देवगढ, सादडी, गोगू दा, देलवाडा, वेदला, कोठारिया और कानोड के सरदार थे।

7 मराठा स्रोतो मे केवल 50 लाख रुपये देने की बात कही गई है।

8 इन लोगो को अरिसिंह ने बीस लाख रुपये देने का वायदा किया था और उन्होंने रतनसिंह को कुम्भलगढ से निकाल देने का वचन दिया था।

9 राणा की इस सना के साथ जाने वाले सरदारो ने महादाजी सिन्धिया को रत्नसिंह का पक्ष छोडने के लिये काफी समझाया था और इसके लिये उसे 35 लाख रुपये देने का भी वचन दिया। परन्तु सिन्धिया ने उनकी बात नही मानी। ऐसी स्थिति मे युद्ध लडा गया था।

10 यह युद्ध 16 जनवरी, 1769 ई० को लडा गया था।

11 सिन्धिया ने 1769 के अप्रल म राजधानी को घेरा था।

12 60 लाख सिन्धिया का और 3 50 000 सिन्धिया के दफ्तर खर्च के लिये।

13 वस्तुत गोडवार इलाके म रत्नसिंह ने काफी उत्पात मचा रखा था।

अध्याय 26

महाराणा भीमसिह

महाराणा हमीर द्वितीय की मृत्यु के बाद आठ वर्षीय भीमसिह सवत् 1834 (1778 ई०) मे मेवाड के सिहासन पर बठा। उसन पचास वप तक शासन किया। उसके शासन के पचास वर्षों मे राज्य मे जो अनथ और उत्पात हुआ उससे इस राज्य की बची हुई शक्तियाँ भी छिन्न भिन्न हो गईं। वयस्क हो जाने के बाद भी भीमसिह को बहुत समय तक अपनी माता के नियत्रण मे रहना पडा। इस नियत्रण न उसके चरित्र को काफी प्रभावित किया। वह उत्साहहीन हो गया। उसने स्वय समझने और विचार करने की शक्ति का विकास न हो पाया। इसलिये दूसरे लोग उसे सरलता से अपन अनुकूल बना लेते थे।

सवत् 1840 (1784 ई०) मे चूडावतो ने अपनी निष्ठा से प्राप्त सत्ता और प्रधानता का अपनी प्रतिस्पर्धी शाखा शक्तावतो के विरुद्ध दुरुपयोग किया। इस समय सलूम्बर सरदार अपन सम्ब धी कोरावाड के अजु नसिह और आमेतो के प्रताप सिह के साथ राजदरबार मे सत्तारूढ था।[1] सिंधियो की भडैत सेना उनके नियत्रण मे थी। उन्होने मिलकर शक्तावतो के सरदार मोहकम के दुग भीदर को चारो तरफ से घेर लिया। दुग के आस-पास तोपें लगा दी गइ। यह आक्रमण अकस्मात किया गया।

शक्तावत वश की एक छोटी शाखा मे उत्पन्न सग्रामसिह जिसन मेवाड की भावी घटनाओ म महत्वपूण भूमिका अदा की था, इन दिनो म लोगा की नजरा म आन ही लगा था। कुछ दिना पूव ही उसने पुरावत सरदार से लावा नामक दुग जीत लिया था। जब उसे भीदर दुग के घेरे का पता चला तो उसने अजु नसिह के कोरावाड पर आक्रमण कर दिया। अजु नसिह का पुत्र सालिमसिह इस चढाई म मारा गया। जब उसकी मृत्यु का समाचार अजु नसिह को मिला तो वह भीदर के घेरे को छोडकर सग्रामसिह के गाव शिवगढ की तरफ बढा और उस पर धावा बोल दिया। उस समय शिवगढ म सग्रामसिह का बूढा पिता लालजी परिवार की स्त्रियो और बच्चो के साथ अकेला था। फिर भी, वृद्ध लालजी न साहस के साथ युद्ध किया और

थी । इन इलाको के नाम हैं—रामपुरा, भानपुरा, जावद, जीरन रतनगढ, खेडी, सिगोली इंनिया, जाठ, बिचूर और नदोई ‹ इलाके ।

सन्दर्भ

1 इन आक्रमणो के नेता थे—सतवाजी, जनकोजी और रघु

2 (1) सवत् 1812 मे राजा बहादुर (2) सवत् 1813 मे और विट्ठल राव (3) सवत् 1814 मे राणाजी बोरटिया मे तीन वार युद्ध के लिये धन की माग की गई । माग कर शिव राव गोविन्द राव और कान्हजी जाधव ।

3 यह घटना सन् 1752 की है । इस घटना के वाद रामपु गाव ही मेवाड राज्य के पास रह गये ।

4 वाजीराव के साथ सम्पन्न सधि मे यह तय हुआ था कि आ मेवाड राज्य पर आक्रमण नही करेंगे । परन्तु मराठो ने आः की शर्तों को ताड दिया ।

5 ये पाच सरदार थे—सलूम्बर, बिजालिया, आमेट, घानरा के सरदार ।

6 विरोधी गुट मे भीडर, देवगढ सादडी, गोगू दा, देलवाडा, वेद और कानोड के सरदार थे ।

7 मराठा स्रोता म केवल 50 लाख रुपये देने की बात कही गई है

8 इन लोगो को अरिसिंह ने बीस लाख रुपये देने का वायदा कि उन्होंने रत्नसिंह को कुम्भलगढ से निकाल देने का वचन दिया थ

9 राणा की इस सेना के साथ जाने वाले सरदारो ने महादाजी रत्नसिंह का पक्ष छोडने के लिये काफी समझाया था और इसके लि लाख रुपय देन का भी वचन दिया । परन्तु सिंधिया ने उनक मानी । ऐसी स्थिति म युद्ध लडा गया था ।

10 यह युद्ध 16 जनवरी, 1769 ई० को लडा गया था ।

11 सिंधिया न 1769 के अप्रल मे राजधानी को घेरा था ।

12 60 लाख सिंधिया का और 3,50,000 सिंधिया के दफ्त लिये ।

13 वस्तुत गोडवार इलाके म रत्नसिंह न काफी उत्पात मचा रखा

अधिकार जमाना शुरू कर दिया। इस अवसर पर मेवाड का राणा भी पीछे न रहा और उसन भी मेवाड के उन इलाको जो सिंधिया के अधिकार मे चले गये थे वापस लन का प्रयास किया। इस समय राणा की सेवा म दो सुयोग्य अधिकारी थे–माल दास मेहता और उसका सहायक मोजीराम। उ हाने सबसे पहले निम्बहरा और उसके आसपास के दुर्गों पर आक्रमण किया और वहा नियुक्त मराठा सैनिको को खदड कर उन पर अपना अधिकार जमा लिया। जावद का मराठा अधिकारी शिवाजी नाना पराजित होन के बाद अपने सैनिको सहित भाग गया। इसी समय बेंगू सरदार के पुत्र मेघसिंह[2] ने बेंगू सिंगौली और आस पास के स्थानो से मराठो को पराजित करके भगा दिया। चू डावतो ने भी रामपुर इलाके से मराठो को निकाल बाहर किया। कुछ समय के लिये मेवाड ने अपन बहुत से इलाके मराठा के अधिकार से वापस ले लिय। अपनी सफलताओ से उत्साहित होकर राजपूत सरदारो की एक सयुक्त सेना मेवाड और मालवा की सीमा पर बहन वाली रिरकिया नामक नदी के किनार चई नामक स्थान पर जा पहुची और मराठो के दूसरे इलाको को अपने अधिकार म करने की सोची। पर तु राजपूतो की सफलता ने होल्कर राज्य की राजमाता अहिल्याबाई को चिंतित कर दिया और अवसर की नाजुकता को देखकर वह सिंधिया से मिल गई। उसन तुलाजी सिंधिया और श्रीभाई के नेतृत्व मे पाच हजार सैनिक शिवाजी नाना की सहायता के लिये भेज दिये। शिवाजी नाना न इस समय मदसौर मे शरण ल रखी थी। राजपूतो ने उसे चारो तरफ से घेर रखा था। मराठा सेना ने वहा पहुच कर राज पूतो से युद्ध किया। यह युद्ध सवत् 1844 की माघ शुक्ल चतुर्थी को लडा गया जिसम मेवाड की सेना बुरी तरह से पराजित हुई और उसके बहुत से सनिक मार गय। कानोड और सादडी के सरदार घायल हुए। घायलावस्था मे ही सादडी सरदार को ब दी बना लिया गया। वह दा वष तक मराठा की कैद मे रहा और अ त मे अपन अधिकृत राज्य के चार नगरो को देकर मुक्ति पाई। मेवाड के सरदारो ने सिंधिया के जिन स्थानो पर अधिकार कर लिया था, जावद को छोडकर शेष सभी पर मराठा का पुन अधिकार हो गया। माडलगढ के दीपच द ने साहस के साथ एक महीने तक जावद की रक्षा की और मराठो को कामयाब नही होने दिया। मराठा के विरुद्ध लडे गय इस युद्ध म चू डावता के अलावा अ य सभी सरदारो न राणा का साथ दिया था। राजमाता और नये म श्री सोमजी न चू डावतो को नियत्रित करन का प्रयास किया पर तु सफलता न मिलन पर अ त म सलूम्बर सरदार से समझौता करना ही उचित समझा गया। तदनुसार सलूम्बर सरदार राणा का अभिवादन करने उदयपुर आया और दिखावे के तौर पर उसन राणा तथा राजमाता की काफी खुशामद की और सामजी के साथ मिलकर काम करन की इच्छा व्यक्त की। पर तु वह सामजी की हत्या करन की योजना बना चुका था। याजनानुसार एक दिन बाराबाड सरदार अजु नसिंह और भ्म्मर सरदार सरदारसिंह म त्री क कक्ष म जा पहुचे और उससे बातचीत करत समय उसकी हत्या कर दी। उस समय राणा सहेलिया की बाडी म था। सामजी क

मारा गया। अर्जुनसिंह ने सग्रामसिंह के परिवार के अधिकाश सदस्यो को मौत के घाट उतार दिया। लालजी की वृद्धा स्त्री अपने पति के मृतक शरीर के साथ सती हुई। कोरावाड के अर्जुनसिंह द्वारा किये गये इस नरसहार का परिणाम घातक निकला। चूडावतो और शक्तावतो मे प्रतिशोध लेने की जो अग्नि प्रज्ज्वलित हुई उसने मेवाड राज्य को ही जला डाला। राणा की अवयस्कता तथा दोनो प्रमुख शाखाओ की आपसी फूट तथा सघर्ष ने मराठो को स्वर्ण अवसर प्रदान किया। शिवगढ के नरसहार के बाद दोनो की शत्रुता ने भयानक रूप धारण कर लिया। राणा के दरबार म चूडावतो की प्रधानता थी और सलूम्बर सरदार को राज्य की सुरक्षा का अधिकार सौंपा हुआ था। इन दिनो मेवाड मे शूरवीरो की कमी हो गई थी। सदियो से शत्रुओ से सघर्ष करते करते लाखो शूरवीर अपने प्राणो की आहुति दे चुके थे। जो बाकी बच गय थे उन्हे मौजूदा राणा की अकर्मण्यता ने भीरू बना दिया था। इसी कारण राज्य की रक्षा के लिये वेतन पर सिंधी सैनिको को रखा गया था और चित्तौड से उदयपुर का मध्यवर्ती समृद्ध इलाका उनको भरण पोषण के लिये दे दिया गया था। चूडावत भीमसिंह इन दिनो मत्री पद पर था। उसकी कुटिल राजनीति ने मेवाड को बर्बाद करन का काम किया। उसने अपने पद और अधिकारो का दुरुपयोग किया और राज्य का धन पानी की तरह बहाया। राणा भीम के पास धन की इतनी कमी रही कि जब वह ईडर की राजकन्या के साथ विवाह करने गया तो खर्च के लिये कर्जा लेना पडा था। परन्तु मत्री भीम ने इस स्थिति म भी अपनी लडकी के विवाह पर दस लाख रुपये खर्च किये थे। मत्री इतना अहकारी हो गया था कि राणा तथा राजमाता की अवहेलना करते समय उसे कुछ भी भय न होता था। मत्री की इसी उद्दण्डता स पीडित राजमाता ने चूडावतो के स्थान पर शक्तावतो को प्रतिष्ठित करने का निश्चय किया और अपनी सहायता के लिये उन्हे बुला भेजा और भीदर तथा लावा के सरदारो को अधिकार सौंपे। शक्तावतो को अपनी सीमित शक्ति का पता था और वे जानते थे कि चूण्डावतो का पराजित करके उनके प्रमुत्व को अपने अधिकार में लेना उनकी अपनी शक्ति के बाहर है। अत उन्होने अपनी सहायता के लिये बाह्य मित्रो की तरफ देखा और कोटा के झाला जालिमसिंह से सहायता का अनुरोध किया। जालिमसिंह चूडावतो से पहले से ही अप्रसन्न था और शक्तावतो के साथ उसके वैवाहिक सम्बन्ध भी थे। इसलिये उसने शक्तावतो को सहयोग देना स्वीकार कर लिया। वह अपने मराठा साथियो सहित सहायतार्थ आ पहुचा। इस समय शक्तावतो के सामने दो मुख्य काम थे। एक, चूडावतो का दमन करना और दूसरा कुम्भलगढ से विद्रोही रत्नसिंह को निकालना।

मेवाड की इस शोचनीय अवस्था में, मारवाड और जयपुर की सेनाओ ने मिलकर महादाजी सिंधिया के बढते हुए प्रभाव को नियन्त्रित करने का निश्चय किया और लालसोट के मैदान पर लडे गये युद्ध म मराठो को बुरी तरह से पराजित किया। जो इलाके सिंधिया के अधिकार म चले गये थे उन पर राजपूतो ने फिर से अपना

दोनो भाई अपने प्राण बचाने के लिये राणा की शरण मे जा पहुचे। उनका पीछा करता हुआ अजु नसिंह भी वहा जा पहुचा। शक्तिहीन राणा मे हत्यारे को सजा देने की सामर्थ्य भी न थी। परन्तु उसके क्रोध ने अजु नसिंह को वापस लौटने के लिये विवश कर दिया। इस घटना के बाद दोनो सरदार सलूम्बर सरदार के साथ चित्तौड चल गय। मृत मन्त्री के दानो भाइयो—शिवदास और सतीदास को मन्त्री पद सौपा गया। उन्होने शक्तावतो के साथ मिलकर चू डावतो के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। अकाला के युद्ध मे मन्त्रियो को सफलता मिली पर तु बाद मे खैरोद नामक स्थान पर लडे गये युद्ध मे शक्तावतो को पराजय का सामना करना पडा। इन आपसी झगडो ने प्रजा के सामन अनेक सकट पैदा कर दिये। जो भी पक्ष विजयी होता था वह उन्मत होकर पराजित पक्ष की प्रजा का सवनाश कर डालता था। ऐसे मे सम्पूर्ण राज्य अराजकता का शिकार बन गया था और राणा मे विद्रोहो को दबाने की शक्ति न थी। किसानो म लेकर सभी प्रकार के व्यवसायी भयानक सकट का सामना कर रहे थे। राज्य मे चोरो लुटेरो और डाकुओ की सख्या भी काफी बढ गई थी। चू डावतो के अत्याचारो से प्रजा परेशान हो उठी थी और लोग अपने अपने घर द्वार छोडकर भागने लगे थे। जो लोग खेती करते थे वे इस अराजक स्थिति मे सदा अनिश्चित रहते थे। राज्य के इस आन्तरिक विद्रोह के कारण कुछ ही वर्षो मे मेवाड की आबादी घटकर आधी रह गई। व्यवसाय नष्ट हो गया था और बेकारो की सख्या निर तर बढती जा रही थी। ऐसी अवस्था मे शूरवीर राजपूतो न प्रजा की रक्षा का भार अपने कधो पर लेना शुरू किया। पर तु इसके लिये सुरक्षा चाहने वालो को शुल्क देना पडता था। ऐसी शोचनीय अवस्था मे लुटेर मराठो के गिरोह मेवाड म प्रवेश कर लूटमार करने लग। परिणामस्वरूप मेवाड की दशा इतनी अधिक शोचनीय हो गई कि उसका उल्लेख करना सम्भव नही है।

अन्त मे राणा और उसके मन्त्रियो ने चू डावतो को चित्तौड से निकाल बाहर करने के लिय सिंधिया को बुलान का निश्चय किया। इसके लिए जालिमसिंह न सुझाव दिया था। सिंधिया उन दिनो अपनी सेना सहित पुष्कर मे था। उसन अपनी सेना को प्रशिक्षित करन के लिय डि बोग्न नामक एक फ्रासीसी सेनानायक को नियुक्त कर रखा था। उसक प्रशिक्षण से सिंधिया की सना काफी शक्तिशाली बन गई थी। इस सना की सहायता से सिंधिया न राजस्थान मे अपने खोये हुए प्रभुत्व को पुन प्राप्त किया। मेडता और पट्टन के युद्धो म अपरिमित शौय और पराक्रम का प्रदशन करने के बाद भी राठौड सेना सिंधिया से बुरी तरह से परास्त हुई। इसके बाद सिंधिया की शक्तिया फिर से भयानक हो उठीं। उसन राणा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

पिछले कुछ वर्षो से जालिमसिंह कोटा के राजा का सरक्षक बना हुआ था। अपने आपको सत्ता मे बनाये रखन के लिय उसने ऐसा आचरण किया कि उसके चारो

तरफ विद्यमान शत्रु भी उसका सम्मान करते थे। परन्तु कोटा जैसा छोटा क्षेत्र उसकी महत्वाकांक्षा के लिये पर्याप्त नहीं था। मेवाड की दयनीय स्थिति और राणा की अकर्मण्यता से लाभ उठाकर मेवाड पर अपना स्थायी प्रभाव स्थापित करना चाहता था। जयपुर के शासक का उसे कोई भय न था। वह अपने ही बलबूते पर जयपुर की सेना को पराजित कर चुका था। मारवाड के प्रमुख सरदारों के साथ उसने मनीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। अतः उस तरफ से विरोध की आशंका न थी। अब यदि मेवाड पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो जाता है तो वह हाडौती और मेवाड की संयुक्त सेना के सहारे समूचे राजस्थान पर अपना नेतृत्व स्थापित कर सकता था।

राणा की सत्ता को पुनः स्थापित करने तथा चित्तौड से चूंडावतों का दबदबा खत्म करने के लिये धन की आवश्यकता थी। इस धन का प्रबन्ध करने के लिये जालिमसिंह ने उन चूंडावत सरदारों जिन्होंने खालसा भूमि पर बलात् अधिकार जमा रखा था उस भूमि के बदले 64 लाख रुपये वसूल करने की सोची। इसके लिये उसने सिंधिया से सहयोग लेने का विचार किया और दोनों में तय हुआ कि इस प्रकार जो धन वसूल किया जायेगा उसका तीन भाग सिंधिया को मिलेगा और शेष राणा के खजाने में जायेगा। सिंधिया ने अम्बाजी इंगले के नेतृत्व में एक सेना जालिमसिंह के साथ चित्तौड की तरफ भेज दी और खुद मारवाड की सीमा पर डट गया। मार्ग में पड़ने वाले सभी गावों और नगरों को लूटती हुई यह सेना आगे बढती गई। हमीरगढ का सरदार चूंडावतों का मित्र था। जालिमसिंह ने हमीरगढ पर आक्रमण कर दिया। डेढ महीने के संघर्ष के बाद हमीरगढ का पतन हो गया। उसके आस पास के दुर्गों को जीतकर वह मराठा सेना के साथ चित्तौड की तरफ बढा। रास्ते में चूंडावतों के बसी नामक इलाके को भी जीत लिया गया। इसके बाद यह सेना चित्तौड पहुँची। कुछ दिनों बाद सिंधिया भी अपनी सेना के साथ चित्तौड पहुच गया।

मेवाड के महाराणा का किसी से मिलने जाना बहुत सम्मान की बात समझी जाती थी। सिंधिया के मन में भी यह सम्मान प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई और उसकी इच्छा को पूरी करने के लिये जालिमसिंह उदयपुर से महाराणा को लिवा लाया। राजधानी से कुछ दूर व्याघ्रमरू नामक पहाडी के समीप राणा और सिंधिया की मुलाकात हुई। सिंधिया ने राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। इस प्रसंग में सिंधिया और जालिमसिंह दोनों चित्तौड से चले आये थे और अम्बाजी इंगले अकेला ही चित्तौड में रह गया था। अम्बाजी ने अवसर पाकर चूंडावत सरदार के साथ मैत्री करने की चेष्टा की और उसे जालिमसिंह के खतरनाक इरादों से अवगत करा दिया। तब चूंडावत भीमसिंह जो पहले राणा का मन्त्री रह चुका था ने अम्बाजी से मिल कर कहा कि यह राणा का आत्मसमर्पण करने तथा बीस लाख रुपये देने को तैयार है यदि राणा जालिमसिंह को अपने पट्टे से निकाल दे। वस्तुतः यह सुझाव अम्बाजी ने ही उसे दिया था। जालिमसिंह अम्बाजी को अपना हितैषी समझता था। उसके

पिता त्रयम्बकजी न उज्जैन के युद्ध के समय उसकी मदद की थी। परन्तु राजनीति मे इस प्रकार की मैत्री का सुदृढ आधार नही होता है। स्वार्थो के टकराव ने इस मैत्री को समाप्त कर दिया। दोनो ही मौजूदा परिस्थितियो से फायदा उठाना चाहते थे। अम्बाजी के मुख से भामसिंह के प्रस्ताव को सुनकर जालिमसिंह ने सहजता स कहा कि यदि मेरा चला जाना राणा का स्वीकार है तो मैं मेवाड छोडकर कोटा चले जाने को तैयार हू। इस पर अम्बाजी ने कहा कि आपका यह उत्तर सुनने म बडा अच्छा लगता है। लेकिन इस पर वही लोग विश्वास करेंगे जो आपको जानते न हो। इसके तत्काल बाद अम्बाजी ने पूछा कि क्या आप वास्तव मे जाने के लिये तैयार हैं। जालिमसिंह ने कहा—निश्चित रूप से। अम्बाजी ने जालिमसिंह को सोचने विचारने का समय नही दिया और वह तेजी के साथ सिन्धिया से बातचीत करने के लिये वहा से चल दिया। जालिमसिंह ने सोचा था कि सिधिया चूडावतो का प्रस्ताव स्वीकार नही करेगा। क्योकि उसके साथ सम्पन्न सधि के अ तगत सिन्धिया यहा तक आया था। अब यदि वह अपनी शर्तो को तोडता है ता उसे वायदानुसार रुपया कहा से मिलेगा। यदि सिंधिया मान भी ले तो भी राणा चूडावतों का प्रस्ताव स्वीकार नही करेगा। परन्तु अम्बाजी इन सभी बातो पर पहले से ही विचार कर चुका था और उनका समाधान भी ढूढ निकाला था। सिंधिया के पास पहुँचकर अम्बाजी न चूडावतो का प्रस्ताव रखा और जब सिंधिया न उनको चित्तौड से निकालने के बदले म मिलन वाले बीस लाख[3] रुपयो के बारे मे पूछा ता अम्बाजी ने तत्काल दक्षिण मे स्थित अपनी रियासत के नाम बीस लाख की हुण्डी लिखकर सिंधिया का सौंप दी। सिंधिया को पूना जाने की जल्दी थी और उसे सिर्फ अपने लाभ की चिंता थी। अत वह अम्बाजी की सहायता के लिये अपनी एक सेना उसके अधीन छोडकर चला गया। तब अम्बाजी ने जालिमसिंह को सूचित किया कि वह कोटा जा सकता है। उसी समय राणा के सेवक न भी जालिमसिंह के पास आकर उसे सूचित किया कि उसकी विदाई का सामान तयार है। जालिमसिंह को अचानक बदलती हुई स्थिति का गहरा आघात लगा परन्तु अपन मनोभावो का किसी पर प्रकट किये बिना वह चित्तौड से चला गया। इसके तत्काल बाद अम्बाजी राणा के मन्त्रिया शिवदास और सतीदास से मिला और उन्हे मेवाड की अशान्ति दूर करने का आश्वासन दिया। उधर जालिमसिंह के चले जाने के बाद चूडावत सरदार (सलूम्बर सरदार) चित्तौड दुर्ग स नीचे आया और राणा के चरण स्पर्श कर उनस क्षमा याचना की। इस प्रकार अम्बाजी न बिना किसी रक्तपात के सफलता प्राप्त कर ली। परिणामस्वरूप मेवाड की अशान्ति और अराजकता मे अपने आप भारी कमी आ गई, क्योकि यह चूडावतो की ही पैदा की हुई थी। अम्बाजी ने अपनी सूझबूझ से चूडावतो को अपन प्रभाव मे लेकर जालिमसिंह के स्थान पर मेवाड म अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसका स्थान मेवाड की राजनीति मे सर्वेसर्वा हो गया।

सिंधिया के प्रतिनिधि की हैसियत म अम्बाजी आठ वष तक मेवाड म रहा और इस अवधि म उसन मेवाड के साधनो का शोषण करके बारह लाख रुपये जमा किय। इस बीच सिंधिया न उस मेवाड की शासन-व्यवस्था के सम्बध म निम्न निर्देश लिख भेजे—(1) विद्रोही रत्नसिंह को कुम्भलगढ से निकाल बाहर किया जाय। (2) मारवाड क राजा से गोडवार का इलाका छीनकर मवाड राज्य मे सम्मिलित कर दिया जाय। (3) विद्रोहियो और सिंधी सेना न मवाड के जिन इलाको पर कब्जा कर रखा है, उनको उनसे छीनकर राणा के अधिकार मे रखा जाय और (4) अरिसिंह की हत्या से उत्पन्न विवाद को समाप्त किया जाय।

अम्बाजी की तरफ से सिंधिया को जो बीस लाख रुपये दिये गय थे उनकी वसूली के लिय यह तय हुआ कि बारह लाख[4] रुपये चूडावत सरदार देंगे और शेष शक्तावत सरदार। इस प्रकार बीस लाख वसूल हुये। राणा ने अम्बाजी को वचन दिया कि राज्य के सभी काम पूरे हो जान पर उसे सेना के खच के अलावा साठ लाख रुपय दिय जायेंगे। अम्बाजी न दो वष के भीतर रत्नसिंह को कुम्भलगढ स खदेड दिया। विद्रोही चूडावतो तथा अन्य सरदारो द्वारा अधिकृत खालसा इलाको को उनसे छीनकर पुन राणा के अधिकार मे रख दिय गये।[5] लेकिन राज्य की अन्य समस्याएँ अभी तक सुलझ न पाई थी। गोडवार का इलाका अभी तक मारवाड के अधिकार मे बना हुआ था बूदी और मेवाड का विवाद भी सुलझ न पाया और मराठा के पास गिरवी रखे गये इलाको की समस्या भी ज्यो की त्यो बनी हुई थी। इसी समय अम्बाजी न अपने आपको मेवाड के सूबेदार होन की घोषणा कर दी। इस समय तक राज्य के सभी काय उसके आदेशानुसार ही सम्पन्न हो रहे थे। चूडावतो को दरबार मे पुराने अधिकार प्राप्त हो गये थे। उनके सत्ता मे आने की आशका से शक्तावतो और मत्रियो को भय उत्पन्न हो गया क्योकि वे उनके पिछले अत्याचारो को अभी तक भूले न थे। अत दोनो मत्रियो न अम्बाजी से निवेदन किया कि मेवाड मे विशेष प्रब ध करन के लिये एक सना की आवश्यकता है। अम्बाजी ने इस बात को मान लिया और नई सना के खच क लिये आठ लाख रुपय वार्षिक आय के इलाके निर्धारित कर दिये गये। राज्य की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन बिगडती जा रही थी क्योकि राजकीय आय का उपयोग सदुपयोगी कार्यो पर खच नही किया जा रहा था। सवत 1851 मे राणा ने अपनी बहिन का विवाह जयपुर के राजकुमार के साथ किया। विवाह खच के लिये राणा को अम्बाजी से पाच लाख रुपये कज लन पडे। विवाह के दूसरे वष मे राजमाता की मृत्यु हो गई और राणा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी वष उदयसागर का बाध टूट गया जिससे खेती को काफी क्षति पहुँची।

सवत् 1851 मे सिंधिया न अम्बाजी को उत्तरी भारत मे अपना वायसराय नियुक्त किया। अम्बाजी ने अपनी तरफ से गणेशपत नामक मराठा सरदार को मवाड राज्य का प्रबध सौपा। उसकी सहायता के लिये राणा के दो अधिकारी

सवाई और श्रीजी महता नियुक्त किये गये। इन तीनो ने मिलकर प्रजा पर मनमाने अत्याचार किये और उसे जी भरकर लूटा। अम्बाजी को जब इसकी जानकारी मिली तो उसने गणेशपत को हटा दिया और उसके स्थान पर रायचन्द को नियुक्त किया। वह इतना सीधा था कि कोई उसकी नही सुनता था और लोगो म शासन का जो भय था, वह भी जाता रहा। परिणाम यह निकला कि मेवाड म फिर से उपद्रव और उत्पात शुरू हो गये और दुराचारी लोग प्रजा को लूटने लगे। राज्य की यह अवस्था देख कर मराठा, रुहेलो और दूसरे लोगो के दल के दल मेवाड म घुसकर लूटमार करने लगे। अब तक चुपचाप बैठे चूडावतो ने भी सिंधिया के साथ मिलकर राज्य म उत्पात मचाना शुरू कर दिया। तब राणा ने राज्य की सेना को चूडावतो की जागीरो को अधिकृत करने का आदेश दिया। राजकीय सेना ने कारावाड को अपने अधिकार मे ले लिया और सलूम्बर के दुर्ग को नष्ट करने के लिये तोपें लगा दी। अब चूडावत घबरागये और अम्बाजी की शरण मे जाकर प्रार्थना की और दस लाख रुपये देने का वायदा कर उसका सहयोग क्रय किया। अम्बाजी ने शिवदास और सतीदास को मन्त्री के पदो से हटवा दिया और चूडावतो को राणा के दरबार मे उनका पहले वाला स्थान दिलवा दिया। अगरजी मेहता को मन्त्री बनाया गया। इसके बाद चूडावतो ने नये सिरे से शक्तावतो पर आक्रमण शुरू कर दिया और उनसे दस लाख रुपये वसूल करके अम्बाजी को दिये।

इन्ही दिनो मे महादाजी सिंधिया की मृत्यु हो गई और उसका भतीजा दौलत राव सिंधिया उसका उत्तराधिकारी बना। सिंधिया का लडका अभी नाबालिग था। दौलतराव ने सिंधिया की विधवा पत्नियो के साथ लडना-झगडना शुरू कर दिया और शनवी ब्राह्मणो को मरवा डाला।[6] ऐसी स्थिति मे अम्बाजी ने उत्तरी भारत म अपनी स्थिति को सुदृढ बनाने का प्रयास किया। परन्तु कुछ सरदारो ने सिंधिया की विधवा रानियो का पक्ष लेकर अम्बाजी को चुनौती दी और उससे युद्ध किया। उन सरदारो म लखवा दादा खीची राजकुमार दुर्जनसिंह और दतियाँ का राजा मुख्य थे। लखवा दादा ने राणा को लिखा कि वह अम्बाजी के प्रभुत्व को उतार फेंके और उसके सहायको को मेवाड म निकाल दे। दूसरी तरफ अम्बाजी ने गणेशपत को लिखा कि लखवा के समर्थक शनवी ब्राह्मणो के पास मेवाड राज्य की जो जमीनें है वह सब उनसे छीन लो। गणेशपत ने राणा के मन्त्रियो और सरदारो से इस सम्बन्ध मे विचार विमर्श किया। वे पत की हाँ मे हा मिलाते रहे। परन्तु भीतर ही भीतर उसके पतन की कामना करते रहे। उन्होने गुप्त रूप से शनवी सरदारो को गणेश पत पर आक्रमण करने का सदेश भिजवाया और उन्हे अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया। तदनुसार शनवी लोग चढ आये। साला नामक स्थान पर दोनो पक्षो मे युद्ध हुआ जिसमे गणेशपत पराजित होकर अपने सैनिको के साथ भाग गया। उसका सारा सामान शनवी लोगो के हाथ लगा। चूडावतो द्वारा सहायता का आश्वासन मिलने पर गणेश पत ने शनवी लोगो से पुन युद्ध किया। परन्तु चूडावतो

न उसको सहायता नहीं दी। वह पुन पराजित हुआ और हमीरगढ की तरफ चला गया। परन्तु शनवी ब्राह्मणा और चूंडावतो न मिलकर उसे हमीरगढ म घेर लिया। यहाँ लडे गये युद्ध म गणेश पत को असफलता ही हाथ लगी। अम्बाजी को ज्यो ही इन घटनाओ की सूचना मिली उसने गुलाब राव कदम की अधीनता मे अपने नियमित सैनिको की एक टुकडी गणेश पत की सहायता के लिये भिजवा दी जिसकी सहायता से गणेश पत अजमेर की तरफ चला गया। परन्तु रास्ते म मूसा भूसी नामक स्थान पर उसके शत्रुओ न उसे पुन लडने के लिये विवश कर दिया। इस बार पत विजयी रहा और बहुत बडी सख्या म चूडावत मारे गये। फिर भी गणेश पत मेवाड पर अपना प्रभुत्व कायम न कर पाया क्योकि मेवाड के सभी सरदार उसके आधिपत्य से मुक्त होने की चेष्टा करने लगे थ। मेवाड म प्रधानता पाने के लिये अब अम्बाजी और लखवा दादा के मध्य झगडा पदा हो गया था। मेवाड के अधिकाश सरदारो न लखवा दादा का पक्ष लिया। लखवा दादा ने हमीरगढ जो अभी तक गणेश पत के अधिकार मे था को घेर लिया। परन्तु इसी समय पत की सहायता के लिए एक मराठा सेना और जालिमसिंह की सेना आ पहुची। तब लखवा की सेना ने हमीरगढ से हटकर चित्तौड की सीमा पर पडाव डाला। गणेश पत भी अपने सहायको के साथ उससे थोडी दूर पर जा जमा। परन्तु नई सेना के सेनापति बाला राव इगले के साथ आपसी विरोध उत्पन्न हो जाने पर गणेश पत उस स्थान से हट गया। कई कारणो से बालाराव इगले लखवा दादा से युद्ध नही करना चाहता था। इस पर अम्बाजी ने सदरलण्ड नामक एक अग्रेज को सेना देकर गणेश पत की सहायता को भेजा। परन्तु पत को यह सहायता नही मिल पाई।

ऐसी स्थिति मे गणेश पत ने जाज थामस नामक एक अग्रेज सेनानायक की सहायता प्राप्त की और युद्ध के लिए तयार हो गया। राणा और उसके सरदार जो अभी तक लखवा दादा के पक्ष मे थे अब दोनो पक्ष की बातें करने लगे। मराठा सेनानायको के इस आपसी सघर्ष मे गणेश पत को काफी हानि उठानी पडी। अत उसने मेवाड के सरदारो से बदला लेने का निश्चय किया। उसने चारो तरफ लूटमार और लोगो को मारना शुरू कर दिया। अरावली पहाड की तलहटी मे स्थित चूडावतो की जागीरो को बुरी तरह से बर्बाद किया। कई गावो मे आग लगा दी गई और घरो को छोडकर भागने वालो को घेर कर मौत के घाट उतार दिया गया। जाज थामस ने देवगढ और आमेट पर आक्रमण करके वहा के सरदारो को कर देने के लिए विवश किया। उसने लुमानी के दुर्ग को तो मिट्टी म ही मिला दिया। सिंधिया को जब इन अत्याचारो की सूचना मिली तो उसने अम्बाजी को अपने पद से हटा दिया और उसके स्थान पर लखवा दादा को नियुक्त किया।[7] परिणामस्वरूप गणेश पत को अपने अधिकार वाले मेवाड राज्य के तमाम दुर्ग और इलाके लौटाने पडे।

सिंधिया के हस्तक्षेप का मेवाड को कोई लाभ न मिला। उल्टे इस समय स सिंधिया मेवाड को अपना एक अधीन राज्य समझने लगा। लखवा दादा सिंधिया के आदेश से ही मेवाड का अधिकारी बना था। लखवा दादा एक बडी सेना के साथ मेवाड आया और उसने अग्रजी मेहता को पुन मन्त्री नियुक्त किया। चूडावता को पहले के पदो पर प्रतिष्ठित किया गया और उन्होंने राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। लखवा दादा ने 6 लाख रुपये में अपना जहाजपुर का इलाका जालिमसिंह के पास गिरवी रख दिया। जालिमसिंह ने इस इलाके के 36 गावा को अपने अधिकार मे ले लिया। इसके बाद लखवा दादा ने सैनिक शक्ति के सहारे सम्पूर्ण मेवाड राज्य के नागरिकों से 24 लाख रुपये कर के वसूल किये। फिर वह जयपुर की तरफ चला गया और यशवन्तराव भाऊ को अपनी तरफ से मेवाड का अधिकारी नियुक्त कर गया। इन दिनो कई राजाओं पर यूरोपियन सैन्य प्रणाली का प्रभाव पड रहा था। अग्रजी मेहता के सहायक मन्त्री मौजीराम ने भी एक ऐसी ही अनुशासित सेना रखने की बात सोची। परन्तु इसके खर्च के लिये जब सरदारों से परामर्श किया गया तो उन्होंने इस प्रकार की सेना का समर्थन नही किया। सरदारों ने अग्रजी मेहता को कैद कर लिया और उसके स्थान पर सतीदास को फिर से मन्त्री बनाया। कोटा से उसके भाई शिवदास को भी वापस बुला लिया गया।

1802 ई मे लडे गये इन्दौर के युद्ध जिसमे लगभग डेढ लाख मराठा सैनिकों ने भाग लिया था ने मराठा साम्राज्य के नेतृत्व का फसला कर दिया। सिंधिया की सेना ने होल्कर को बुरी तरह से पराजित कर दिया और पराजित होल्कर मेवाड की तरफ भागा। सिंधिया के दो सेनानायकों–सदाशिव राव और बालाराव ने उसका पीछा किया। मेवाड की तरफ भागते हुए होल्कर ने मार्ग में रतलाम दुर्ग को लूटा और शक्तावतो के भीडर दुर्ग को घेरकर रुपयो की माग की। परन्तु सिंधिया की सेना के आ जाने से भीडर बच गया और होल्कर नाथद्वारा चला गया। वहा उसने निर्दयता के साथ तीन लाख रुपये वसूल किये। इसके बाद वह बनडा और शाहपुरा को लूटता हुआ अजमेर गया और वहाँ से जयपुर की तरफ चला गया। मेवाड मे प्रवेश करने के बाद सिंधिया की सेना ने राणा से तीन लाख रुपये की माग की। असहाय राणा को अपने तथा अपनी रानियो के आभूषण देने के लिये विवश होना पडा। परन्तु मराठों का इससे भी सतोष न हुआ और उन्होंने नाना प्रकार के अमानवीय उपायो से प्रजा से धन वसूल किया।

उधर सिंधिया के अपमानजनक व्यवहार से उत्पीडित लखवा दादा ने सलूम्बर मे दम तोड दिया। उसकी मृत्यु के बाद अम्बाजी के भाई बालाराव को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। वह शक्तावतो का मित्र था। मन्त्री सतीदास भी उसके साथ मिल गया। इस नये गुट ने अब चूडावतो पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। उन्हें राज्य के महत्वपूर्ण कार्यों से पृथक कर दिया गया। चूडावता

का शत्रु जालिमसिंह भी इस गुट से जा मिला और चूडावतो के समर्थक मन्त्री देवीचन्द को कद मे डाल दिया गया। बालाराव इगले ने चूडावतो की जागीरो को निर्दयता के साथ लूटा। इसके बाद बालाराव सेना सहित राणा के महल की तरफ बढा और मन्त्री के सहकारी मौजीराम की माग की। राणा ने उसकी माग को ठुकरा दिया। तब बालाराव ने अपनी सेना को महल मे प्रवेश करने की आज्ञा दी। इसी समय मौजीराम की अपील पर उदयपुर की जनता शस्त्र हाथ मे ले मराठो पर टूट पडी। बहुत से आदमी मारे गये। गणेश पत जमालकर, ऊदाजी कुवर और बालाराम—सभी मराठा अधिकारी पकड लिये गये। दूसरी तरफ चूडावतो ने एकत्र होकर पहाडी के ऊपर स्थित सिंधिया के शिविर पर आक्रमण कर वहा की समस्त सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया।

जालिमसिंह बालाराव इगले को इस सकट से मुक्ति दिलवाने की सोचने लगा। वह भीडर और लावा के शक्तावतो की सेना के साथ चजाघाट नामक पहाडी रास्ते की तरफ बढा। राणा भी सिन्धी अरबी गुसाई इत्यादि अनेक जातियो की सेना को लेकर उसका सामना करने के लिए आगे बढा। जयसिंह खीची भी अपनी सेना के साथ था। चजाघाट पर पाँच दिन तक दोनो पक्षो मे घमासान युद्ध हुआ। अन्त मे राणा की सेना पराजित हुई और राणा को बालाराव को रिहा करना पडा। युद्ध के हर्जाने के नाम पर जहाजपुर का दुर्ग और इलाका जालिमसिंह ने अपने अधिकार में ले लिया। मराठो ने भी राणा से युद्ध के खर्चे की माग की। राणा के पास उनकी माग की अदायगी का कोई साधन न था। अत मराठो ने मेवाड की प्रजा को लूटकर अपनी माग की पूर्ति की।

अपनी सैनिक शक्ति को पुनर्गठित करने के बाद होलकर ने पुन मेवाड मे प्रवेश किया। 1804 ई के इन्दौर युद्ध मे पराजित होकर जब होल्कर ने भीडर से सहयोग मागा था, उस समय भीडर ने उसे एक रुपया भी नही दिया। अत होल्कर ने इस बार सबसे पहले भीडर पर आक्रमण कर वहा से दो लाख रुपये वसूल किये। यहा से वह उदयपुर की तरफ बढा। भयभीत राणा ने उससे सधि करने के लिये अजीतसिंह को भेजा। होल्कर ने चालीस लाख की माग की। राणा ने उसे स्वीकार कर लिया परन्तु देने के नाम पर कुछ नही था। फिर भी राणा के पास जो कुछ रह गया था उसे लेकर, राणियो के आभूषण बेचकर तथा प्रजा से वसूली—सब मिला कर बारह लाख रुपये जमा किये गये। बाकी रुपयो की अदायगी के लिए राज-परिवार और नगर के कितने ही सभ्रान्त नागरिको को गिरवी रखा गया। बाकी रुपया की अदायगी होने तक उन्हे होल्कर के शिविर मे रहना था। इसके बाद होल्कर ने लावा और बदनौर पर आक्रमण किया और वहा के सरदारो से अपनी इच्छानुसार रुपया वसूल किया। देवगढ पर आक्रमण कर वहा से साढे चार लाख रुपये वसूल किये गये। होल्कर आठ महीने मेवाड मे रहा और इस अवधि मे उसने

राज्य को कगाल बना दिया। राणा मे जो रुपये बाकी रह गये थे उसकी वसूली का काम बलराम सेठ को सौंपकर होल्कर शाहपुरा की तरफ चला गया। इसी समय सिंधिया ने मेवाड मे प्रवेश किया। दानो न अपन शिविर आस पास ही लगाये और अग्रेजो की बढती हुई शक्ति का राकने के उपाय पर विचार करन के लिये दाना न एक दूसर से मुलाकात की। इसके कुछ समय पूव ही मराठा सेना को अग्रेजा स परास्त होना पडा था। अत दोना ही अग्रेजो से भयभीत थे। दोनो न लडन का निश्चय किया और सन् 1805 की वर्षा ऋतु म सिंधिया और होल्कर क सनिक बदनौर के पास एकत्र हुए। अग्रेजो से पराजय का बदला लन का उत्सुक भी थ और पराजय के भय स सहम हुए भी थे। उत्तरी भारत मे सभी प्रकार की शक्ति स वचित और नबदा के उत्तर और दक्षिण के समृद्ध इलाका के हाथ से निकल जान के परिणामस्वरूप दोनो की आय के स्रात सूख गये थे। अभी तक उन्हान लूटमार क द्वारा धन सम्पत्ति अर्जित की थी और उससे अपने सनिका का वेतन चुकात रहे थ। अब उनके वेतन चढ गये थे और वेतन न मिलने पर वे कभी भी विद्रोह कर सकत थे। लूटमार के अभ्यस्त मराठा सैनिको म अनुशासन की भारी कमी थी। इसलिए सिंधिया और होल्कर का फिर से लूटमार की नीति अपनानी पटी। मराठा सनिको के झुण्ड के झुण्ड आस-पास के गावो मे जाकर निदयता के साथ धन एकत्र करन लगे। ब्रिटिश सफलता की कीमत राजस्थान को चुकानी पडी।

मराठो न अग्रेजा के साथ युद्ध की तयारिया शुरू कर दी। उन्होंने इस युद्ध क परिणाम के बारे मे कई प्रकार की शकायें थी। इसलिय उन्हाने अपनी धन सम्पत्ति और परिवार के सदस्यो को मेवाड के दुर्गों मे रखना अधिक ठीक समझा। इसी समय सिंधिया न अम्बाजी को फिर से अपना मन्त्री नियुक्त किया।[8] अम्बाजी राणा तथा उसके सरदारा से पहले से ही अप्रसन्न था। अब उसने बदला लेने का निश्चय किया। उसने मेवाड राज्य को कई भागो मे विभाजित कर तथा प्रत्यक को मराठा के अधिकार मे रखकर सम्पूर्ण मेवाड पर आधिपत्य कायम करन का प्रयास किया। परन्तु शक्तावत सरदार सग्रामसिंह और सिंधिया की पत्नी बायजाबाई न उसकी योजना को सफल नही होन दिया। बायजाबाई राजपूतो के गौरव तथा समय की गति को समझन वाली स्त्री थी। उसन मेवाड के सरदारो की पारस्परिक फूट दूर करने का सफल प्रयास किया। परिणामस्वरूप चूडावतो और शक्तावता न मिलकर अम्बाजी का विफल बनाने का निश्चय किया। सग्रामसिंह के कहन पर होल्कर न भी अम्बाजी की योजना को असफल बनान के लिए मेवाड के सरदारो म एकता स्थापित करने मे अपना सहयोग प्रदान किया। वह मेवाड के सरदारा को साथ लेकर सिंधिया के पास गया और उसस मेवाड राज्य को सकट स उबारने की अपील की। उसने मेवाड का निम्बेहडा इलाका भी राणा का वापस लौटा दिया और सिंधिया से भी अनुरोध किया कि वह भी गिरवी रखे गय इलाके राणा का वापस लौटा दे। होल्कर न यह तक भी दिया कि राणा की मित्रता से हम उसके दुर्गों का

लाभ उठा सकेंग। पर तु उसकी प्रयुना म इन दुर्गों का लाभ नही उठाया जा सकेगा। होल्कर की बाता स प्रभावित होकर सिंधिया न राणा के दूता को बुला कर अपन शिविर म सम्मानपूर्ण स्थान दिया। परन्तु कुछ दिना बाद ही होल्कर को अपने एक अधिकारी से पत्र मिला जिसम उसे सूचित किया गया कि राणा का भैरवबख्श नामक एक दूत टौंक म स्थित अग्रेज अधिकारी से मुलाकात कर मराठो को मेवाड से निकालने के सम्ब ध म ब्रिटिश सरकार स सहायता प्राप्त करन की चेष्टा कर रहा है। इस सूचना स होल्कर क्रोधित हो उठा और उसने राणा के दूतो को बुलाकर बहुत से अपशब्द कह और अपने सरदारो का परामश मानकर सिंधिया के साथ मिलकर काम करन का निश्चय किया। यहाँ से वह अग्रेजो के साथ युद्ध करन के लिय उत्तर की तरफ चला गया जहाँ पराजित होन क बाद उसे लाड लेक के साथ सधि करनी पडी।

उत्तर भारत की तरफ जान के पूव होल्कर न सिंधिया से मेवाड के विरुद्ध कोई कदम न उठाने का अनुरोध किया था। लेकिन होल्कर के पराजित होन की सूचना मिलने के बाद सिंधिया न मेवाड से 16 लाख रुपय वसूल करन के लिय सदाशिव राव को मेवाड भेज दिया। इसके अलावा उसे दूसरा काम उदयपुर से जयपुर की सेना को हटान का सौपा गया था। राणा की बेटी कृष्णा कुमारी के साथ जयपुर के राजा का विवाह होना निश्चित हुआ था और इसी प्रसग म जयपुर की सेना इन दिना उदयपुर मे टिकी हुई थी।

भाग्य न राणा के साथ काफी खिलवाड किया था और अब वह उसके राजकीय गौरव और पिता की भावनाओ के साथ क्रूर उपहास करने वाला था। उसकी सुन्दर सोलहवर्षीय पुत्री कृष्णा कुमारी के विवाह की बात जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ तय हो चुकी थी और जयपुर क तीन हजार सनिक उदयपुर के समीप ही डेरा डाले हुए थे। पर तु मारवाड के राजा मानसिंह ने कृष्णा कुमारी की माग करके राणा के लिय सकट उत्पन्न कर दिया। मानसिंह की दलील थी कि कृष्णा कुमारी के विवाह की बात पहले जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा से तय हो चुकी थी। अत उनकी मृत्यु के बाद उसका विवाह जोधपुर राजघरान मे ही होना चाहिए। उसने राणा को चेतावनी दी कि यदि उसके अधिकार की अवहेलना की गई तो वह भयकर प्रतिशोध लेगा। राजा मानसिंह न चूडावतो को मिलाकर अपन पक्ष मे कर लिया था। कहा जाता है कि उसन चूडावतो के नेता अजीतसिंह को भारी घूस दी थी। सिंधिया न भी मानसिंह का पक्ष लिया और राणा को कहला भेजा कि वह कृष्णा कुमारी का विवाह जगतसिंह के साथ नही होने देगा। जगतसिंह से वह काफी अप्रसन्न था क्योकि उसने सिंधिया को रुपय देने से साफ मना कर दिया था। पर तु राणा न उसकी बात पर ध्यान नही दिया। इस पर सिंधिया आठ हजार सनिको के साथ उदयपुर की तरफ बढा। जयपुर तथा राणा की सेना

ने उसका मार्ग रोकने का प्रयास किया। परन्तु उनके विरोध को कुचलता हुआ सिंधिया उदयपुर पहुच गया। विवश होकर राणा को जगतसिंह को ना कहना पडा और जयपुर के सैनिको को विदा करना पडा। लगभग एक मास तक वहाँ रुक कर सिंधिया वापस लौट गया।

राजा जगतसिंह ने अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए मेवाड पर आक्रमण कर दिया। ज्योही मानसिंह का इसकी सूचना मिली वह भी अपनी सेना के साथ जगतसिंह से युद्ध करने के लिए चल पडा। परन्तु इसी समय मारवाड मे उत्तराधिकार की बात को लेकर आन्तरिक झगडा उठ खडा हुआ। इससे राठौडो की सैनिक शक्ति कमजोर पड गई। मानसिंह के जात ही उसके विरोधी सरदारो ने एक को कल्पित राजा घोषित कर दिया और एक सेना तैयार करके मानसिंह के शत्रुओ की सहायता के लिये चल पडे। जगतसिंह ने एक लाख बीस हजार सनिक के साथ चढाई की थी। उसके मुकाबले मे मानसिंह के पास आधे सनिक भी न थे। परबतसर के निकट दोनो मे युद्ध लडा गया। मानसिंह अपने सरदारो के विश्वासघात से पराजित हुआ। शत्रु सेना ने आगे बढकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया और शहर का लूटा। शत्रु सेना मे मानसिंह के विरोधी राठौड सरदार भी थे। उनसे अपने नगर की दुदशा न देखी गई और शीघ्र ही कच्छवाहो और राठौडो का कुलाय वैर उभर आया। अत वे अलग हो गये और कच्छवाहो पर टूट पडे। जोधपुर की लूट से प्राप्त सारी सम्पत्ति और सामग्री जगतसिंह ने जयपुर भिजवा दी। मारवाड के विरोधी सरदारो को यह पस द न आया और उ होने धावा मार कर रास्ते म ही उसे लूट लिया। मानसिंह विरोधी सरदारो की सेना के साथ सघप मे जयपुर के बहुत से सनिक मारे गये और जगतसिंह युद्ध से भाग खडा हुआ। उसन हजारो लोगो को अपनी सेना मे तो भर्ती कर लिया था पर तु उनका वेतन न चुका पाने के कारण भयकर सकट मे फस गया। परिणाम यह निकला कि मारवाड मे मानसिंह के विरोधियो का पक्ष कमजोर पड गया।

भारत ने अब तक जितने उत्पातकारी खलनायक पदा किये उनमे से सर्वाधिक महान् नवाब अमीर खा की सहायता से राजा मानसिंह ने अपने विरोधी कल्पित राजा का विनाश करन मे सफलता प्राप्त की। अपनी शक्तिशाली घुडसवार सेना और तोपखाने के साथ वह राजा मान के शत्रुओ मे सबसे अधिक प्रबल था। परन्तु मानसिंह न उसे भारी घूस देकर अपने पक्ष मे मिला लिया। अमीर खा न जगतसिंह का साथ छोडकर, कल्पित राजा की सेवा स्वीकार करके एक दिन धोखे से उसका और उसके साथियो का काम तमाम कर दिया। उसकी मृत्यु के साथ ही राजा मानसिंह को अपने विरोधियो से राहत मिल गई।

कृष्णा कुमारी सोलह वष की हुई ही थी। उसकी मा चावडा वश की थी। वह अत्य त रूपवती गुणवती स्वस्थ और सुशील थी। उसके गुण ही उसके

दुर्भाग्य का कारण बन गया। रोम की प्रसिद्ध वर्जीनिया[9] और यूनान की महान् सुन्दरी इफीजीनिया[10] का भी अपना अटूट रूप और लावण्य के कारण अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा था। जगतसिंह और मानसिंह—इन्हीं को ही उसको प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प थे।

मारवाड़ के पदच्युत राजा का धागे से वध करने के बाद अमीर खां उदयपुर आया। अवसरवादी अजीतसिंह भी उससे मिल गया। अमीर खां ने राणा के सामने दो विकल्प रखे और उनमें से एक को चुनने की धमकी दी। पहला था, कृष्णा कुमारी का राजा मानसिंह के साथ विवाह। दूसरा था कृष्णा कुमारी के प्राणों का अन्त करके राजस्थान में शान्ति स्थापित करना। अमीर खां के प्रस्तावों को सुनकर राणा का हृदय कांप उठा। वह मानसिंह के साथ उसका विवाह करने के लिये किसी भी स्थिति में तैयार न था। उसने अपने नेत्रों के सामने अपनी सुकुमार पुत्री के जीवन का अन्त ही उचित समझा। परन्तु ऐसे घृणित कार्य का दायित्व किसको सौंपा जाय? यह एक कठिन समस्या थी। सबसे पहले राणा के पारिवारिक सदस्य दौलतसिंह को कहा गया। परन्तु उसने कांपते हुए स्वर में कहा कि मेरी तलवार कृष्णा कुमारी के प्राण नहीं ले पायगी। मैं इस प्रकार का लज्जापूर्ण कार्य नहीं कर सकूंगा। इसके बाद स्वर्गीय राणा की उपपत्नी से उत्पन्न जवानसिंह से कहा गया और उसके ही कहने पर कृष्णा कुमारी को बुलाया गया। खिले हुए फूल के समान उसके मुख को देखकर जवानसिंह भी साहस नहीं जुटा पाया। अन्त में तय किया गया कि यह काम किसी स्त्री को सौंपा जाय और विष देकर कृष्णा कुमारी के प्राण लिये जाय। अब तक कृष्णा कुमारी को भी सारी बात का पता चल गया था। उसने अपनी रोती हुई मां को समझाया और हंसते हंसते विष का प्याला पी गई। जब पहले प्याले का कोई असर नहीं हुआ तो उसे दूसरा और तीसरा प्याला पिलाया गया। इसके बाद कृष्णाकुमारी हमेशा के लिये चिर निद्रा में सो गई। उसकी मृत्यु के कुछ दिनों बाद उसकी मां भी स्वर्ग सिधार गई।

पत्थर दिल अमीर खां को जब अजीतसिंह ने कृष्णा कुमारी की मृत्यु का विस्तृत विवरण बताया तो वह भी क्रोधित हो उठा और उसने अजीतसिंह को धिक्कारते हुए कहा, "क्या यह कार्य शूरवीर राजपूतों के योग्य था? सीसोदिया वंश में इस प्रकार का लज्जापूर्ण कार्य कभी नहीं हुआ था। इस समाचार को मुझसे कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई।" परन्तु इससे भी अधिक तिरस्कारपूर्ण शब्द उसे अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी शक्तावत सरदार संग्रामसिंह से सुनने पड़े। इस घटना के चार दिन बाद संग्रामसिंह राजधानी आया और उसने अजीतसिंह से कहा, "नराधम, तेरा यह कार्य सीसोदिया वंश के माथे पर अमिट कलंक है। इसमें सम्पूर्ण राजपूत जाति का नाम तेरी मृत्यु के साथ मिट जायेगा। हमारे वंश के सर्वनाश का समय अब निकट आ गया है।" संग्रामसिंह ने अजीतसिंह को जो श्राप दिया था, वह

पूरा हुआ। राजकुमारी की मृत्यु के बाद एक महीना भी न बीता था कि उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया और उसके दो पुत्र भी मर गये। इस विनाश से उसका जीवन सूना हो गया। ईश्वर की भक्ति म मन लगाकर वह अपने पापा का प्रायश्चित करने लगा।

अजीतसिंह का सहयोगी अमीर खा इस समय भारत की सर्वोच्च सत्ता के साथ हितपूर्ण मैत्री एव एकता वाले सधि समझौते से बधा हुआ है। यद्यपि उसने राजस्थान के प्रत्येक राज्य को आतकित करके अपना स्वार्थ पूरा किया था परन्तु कृष्णा कुमारी जसे अनमोल रत्न का नष्ट करवाने मे सहयोग देकर उसने बहुत बडा अपराध किया है। प्रारम्भ मे वह होल्कर का सरदार था। अपने स्वार्थों के ही कारण होल्कर का छोडकर वह अग्रेजो के पक्ष म चला गया जिनसे उसने सिरोंज, टोंक रामपुरा और निम्बेहडा के इलाके प्राप्त किये थे।

1806 ई की बसन्त ऋतु म अग्रेजा के दूत ने मेवाड म प्रवेश किया। इस समय तक सम्पूर्ण मेवाड उजड चुका था। उसके पराक्रमी शूरवीर वीरगति को प्राप्त कर चुके थे। उसकी धन सम्पत्ति लूटी जा चुकी थी और उसके विशाल भव्य महल खडहरो मे बदल चुके थे। व्यापार वाणिज्य चौपट हो चुका था। किसान कगाल बन चुके थे। मराठो की लूटमार ने सभी का बर्बाद कर दिया था। जिस अम्बाजी ने मेवाड का इस दशा मे पहुचाया था उसको अपने पापा की सजा मिली। सिंधिया के विरुद्ध विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करने पर सिंधिया ने उसको कठोर सजा दी। उसके हाथो और पाँवा की उगलिया को जलाकर नष्ट कर दिया गया और उसके पास जमा पचपन लाख का धन छीन लिया गया। इसके बाद सिंधिया ने उसे पुन मेवाड का सूबेदार बनाकर भेजा परन्तु कुछ दिनो बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके मित्र जालिमसिंह ने उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति को अपने अधिकार मे कर लिया।

इन्ही दिनो म राणा के मत्री सतीदास ने सत्तर हजार रुपये देकर यशवन्त राव भाऊ से कुम्भलगढ का दुर्ग वापस ले लिया। 1809 ई० मे अमार खा ने सेना सहित मेवाड मे प्रवेश किया और ग्यारह लाख रुपये की माग की। विवश राणा ने नौ लाख रुपये देना मजूर किया परन्तु वह अदायगी न कर सका। इस पर अमीर खा ने मेवाड के लोगो पर भयानक अत्याचार किये।

सवत् 1867 (1811 ई०) म बापूजी सिंधिया को मेवाड का सूबेदार बना कर भेजा गया। अमीर खा की सेना उस समय भी मेवाड मे लूटमार कर रही थी। अब मराठो ने भी लूटमार शुरू कर दी। इन लुटेरो को रोकने वाला कोई न था। उनके अत्याचारो से राज्य का अन्तिम विनाश हुआ। कृषि का बचा खुचा व्यवसाय

भी चौपट हो गया। बडे-बडे नगर भी उजाड हो गये। काफी लोग अपने घर द्वार छोड कर भाग गय। मेवाड के सरदारो का पतन हो गया। एसी स्थिति मे बापूजी सिंधिया ने बकाया कर की माग की और अदा न किये जाने पर राज्य के बहुत से सरदारो कृपको और व्यवसायियो को पकड कर अजमेर ले गया जहा उ ह कारागार मे डाल दिया गया। उनमे से बहुत से कारागार मे ही मर गये और बाकी की रिहाई मेवाड और अंग्रेजो के मध्य सम्पन्न मधि क बाद हुई।

सन्दभ

1 आमेट के प्रताप सिंह का ज म जुगावत वश मे हुआ था। मराठो के साथ लडते हुए उसने वीरगति प्राप्त की थी।

2 मेघसिंह को 'काला बादल' भी कहा जाता था। उसके चू डावत वशज 'मेघावत' कहलाय।

3 चित्तौड दुग से चू डावतो को निकालन के बदले म राणा न सिंधिया को बीस लाख रुपये देने को कहा था।

4 चू डावता स बारह लाख रुपये इस प्रकार से वसूल किये गये थे—सलूम्बर स तीन लाख, देवगढ से तीन लाख, सिंगिनगढ के मत्रियो से दो लाख कोशीतल से एक लाख, आमेट से दो लाख और कोरावाड से एक लाख।

5 सिंधी सेना से रायपुर एव राजनगर, पुरावत लोगो से गुरला, गादरमाला सरदार सिंह से हमीरगढ, और सलूम्बर से कुजकोवारियो नामक इलाक लिये गये।

6 मराठा ब्राह्मण तीन भागो मे विभाजित है—शैनवी पूर्वी और महारत। शनवी ब्राह्मणो मे लखवा दादा, बल्लभा, जीव दादा, शिवाजी नाना लालजी पडित और जसवन्त सिंह भाऊ आदि थे। राणा न मेवाड क जिन इलाको को मराठा के पास गिरवी रख छोडा था, उसकी व्यवस्था इ ही लागा के जिम्मे थी।

7 सिंधिया के दोनो मत्री—बालोबातातिया और बक्सी नारायण राव शनवी ब्राह्मण थे। लखवा दादा के साथ उनका वशगत सम्बध था। उसकी नियुक्ति मे इन मत्रिया का भी हाथ रहा था।

8 अम्बाजी बापू चितनवीस, नाधव हजूरिया और अन्नाजी भास्कर—य सिंधिया के मत्री रहे।

9 वर्जीनिया रोम के विख्यात ल्यूसियम की खूबसूरत लडकी थी। एपियस क्लाडियस नामक एक चरित्रहीन व्यक्ति न वर्जीनिया को उसके घर से वल पूवक ले जाने का प्रयास किया। उसके पिता ने जब पुत्री को बचाने का कोई उपाय न देखा तो उसने अपनी पुत्री को ही मारकर उस नराधम से उसकी रक्षा की।

10 इफीजीनिया यूनान के एगेमेनन की लडकी थी। एक बार एलिस नामक टापू के पास यूनानियो का एक जगी जहाज फस गया। डायना देवी को प्रसन्न करने के लिये एगेमेनन ने उस देवी की मूर्ति के सामने अपनी पुत्री इफीजीनिया की वलि दी थी।

अध्याय 27

अंग्रेजों के साथ सन्धि अव्यवस्था का अन्त

दूसरी सदी स लेकर उन्नीसवी सदी तक राणा के वश का इतिहास उसके सौभाग्य एव दुर्भाग्य से सबधित सभी घटनाओ का उल्लेख किया जा चुका है। पाधियना, भीला, तातारियो और मराठा न समय समय पर अपने निरन्तर आक्रमणो से इस वश और उसके राज्य को जिस प्रकार मृत प्राय बना दिया उसका विवरण भी दिया जा चुका है। मराठो की लूटमार के दिनो मे अंग्रेजो के साथ सम्पन्न सधि से इस राज्य का उद्धार हो सका। देशी राज्या की शक्तियाँ पहले से ही छिन्न भिन्न हो चुकी थी। अंग्रेजो ने लुटेरी प्रवृत्तियो की रोकथाम के लिये देशी राज्यो को मिलाकर एक महान शक्ति का निमाण किया। तदनुसार राजपूत राज्यो को इस महान् शक्ति के साथ सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया गया। जयपुर के अतिरिक्त शेष राज्या के प्रतिनिधि दिल्ली जा पहुचे और उ होन अंग्रेजा के सरक्षण को स्वीकार कर लिया। उनके साथ सधिपत्र तयार किये गये जिनम यह स्वीकार किया गया कि राजपूत राजा अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखे, लुटेरे शत्रुओ से उनकी रक्षा का दायित्व अंग्रेजो का होगा और इसके लिये राजपूत राज्य अंग्रेजो को एक निश्चित राशि कर के रूप मे देनी होगी।

भारत के राजनीतिक इतिहास के इस सकटमय काल मे जिन राजाओ न अंग्रेजो का सरक्षण स्वीकार किया, उनमे इसकी सबसे अधिक आवश्यकता उदयपुर के राणा को थी। 13 जनवरी, 1818 ई को सधि[1] पर हस्ताक्षर हुए और फरवरी मे अंग्रेजो के एक प्रतिनिधि को मनोनीत किया गया।[2] वह तत्काल राणा के दरबार के लिये रवाना हो गया। उससे पहले एक सशस्त्र सेना भेजी जा चुकी थी और उसे यह निदेश दिया गया था कि राणा के उन सभी इलाको को जिन पर सरदारो तथा लुटेरो ने कब्जा कर रखा है वापस राणा के अधिकार मे कर दिये जाय। तदनुसार रायपुर, राजनगर आदि दुर्गों को विद्रोहियो से छीनकर राणा के अधिकार म दे दिये गय। कुम्भलगढ म रहन वाली सना का बहुत दिना स वेतन नही मिला था। उसका वतन चुकाकर उस दुग को अंग्रेजो ने अपने अधिकार म ले लिया।

9 वर्जीनिया रोम के विख्यात ल्यूसियस की खूबसूरत लडकी थी। एपियस क्लाडियस नामक एक चरित्रहीन व्यक्ति न वर्जीनिया को उसके घर से बल पूर्वक ले जाने का प्रयास किया। उसके पिता ने जब पुत्री को बचाने का कोई उपाय न देखा तो उसने अपनी पुत्री को ही मारकर उस नराधाम से उसकी रक्षा की।

10 इफीजीनिया यूनान के एगेमेनन की लडकी थी। एक बार एलिस नामक टापू के पास यूनानियो का एक जगी जहाज फस गया। डायना देवी को प्रसन्न करने के लिये एगेमेनन ने उस देवी की मूर्ति के सामने अपनी पुत्री इफीजीनिया की बलि दी थी।

उठते ही सरदारो ने भी खडे होकर हमारा स्वागत किया। हम लोगो को सिंहासन के सामने स्थान दिया गया। दरबार का यह स्थान सूय महल के नाम से विख्यात है। राणा का सिंहासन बहुत ही कीमती और मजबूत बना हुआ है। राज्य के प्रमुख सोलह सरदार राणा के दायें और बायें बैठते है। उनके नीचे एक तरफ राजकुमार जवानसिंह का स्थान है। राणा के सामने मन्त्री का और पीछे की तरफ प्रधान अधिकारी और विश्वासी लोगो के स्थान हैं। राणा ने हमारे आने पर प्रसन्नता प्रकट की तथा कुछ देर तक अपने सकटो के बारे मे बताते रहे। मैंने उत्तर मे कहा 'हमारे गवनर-जनरल को आपके वश की श्रेष्ठता की जानकारी है। आपके सकटो के प्रति हमारी सहानुभूति है। हमारे गवनर जनरल का इरादा है कि आपके सकट दूर किये जाय और सहायता करके आपके गौरव की वृद्धि करे।"

बिदाई के समय राणा ने भेंट मे बहुमूल्य चीजें प्रदान की जिनम एक सजा हुआ हाथी, एक उम्दा घोडा, जवाहिरात जडे हुए आभूषण मोतियो की एक माला एक कीमती शाल और कुछ वस्त्र थे। हम लोग लौटकर वापस अपने स्थान आ गये तब राणा अपने लोगो के साथ हमसे मिलने आया। मैंने थोडी दूर जाकर उसका स्वागत किया और अपनी सेना से सलामी करायी। वापसी मे मैंने भी भेंट मे राणा को एक हाथी, दो घोडे और कुछ कीमती वस्तुए दी। राणा का लडका जवानसिंह भी आया था। उसे भी भेंट मे एक घोडा और कुछ चीजे दी। राणा के कमचारियो को भेंट मे रुपये दिये।

राज्य की दुदशा के दिनो मे बहुत से सरदार राणा के विरोधी हो गये थे। नई व्यवस्था का प्रथम काम इन सभी सरदारो से राणा के अधिकार मनवाना था। इसके लिये उन्हे राणा के दरबार मे लाना जरूरी था। बहुत से सरदारो ने तो राजसभा को आखो से भी नही देखा था और जिन्होने देखा था व लोग भी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये ही आते थे। परन्तु मेवाड वालो ने विस्मय से देखा कि कुछ दिनो म ही राज्य के समस्त सरदार और सामन्त राणा की सभा मे उपस्थित होने लगे। यहा तक कि उपद्रवकारी दुष्ट हमीर जिसने कुछ दिनो पहले हाडी रानी का दहेज लूट लिया था[3] और सगावत सरदार जिसने गर्व से कहा था कि "चाहे मैं स्त्री के आगे सिर झुका दू परन्तु राणा को नही झुकाऊगा—व दोनो भी आये थे।"

दूसरा महत्वपूर्ण काय मेवाड को पुन आबाद करना था। मराठा के अत्याचारो से पीडित होकर जो लोग भाग गये थ उनको वापस बुलाना। परन्तु इसमे कुछ समय की आवश्यकता थी। जो लोग राज्य छोडकर दूसरे राज्यो मे बस गये थे, उन्होने वहा के लोगो के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। अब आसानी के साथ उन सम्बन्धो को तोडा नही जा सकता था। अत राणा ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करवाई और उनसे वापस लौटने की अपील की। राणा की इस अपील का उन लोगो

कुम्भलगढ के उत्तर मे जहाजपुर था। इस स्थान से मैं एजेन्ट की हैसियत से राणा के दरबार के लिये रवाना हुआ। यहा से उदयपुर 140 मील था। इस लम्बी यात्रा मे मुझे केवल दो नगर मिले। चारो तरफ बहुत कम आबादी थी। जगलो को देखकर पता चलता था कि यहा पर मनुष्यो की आबादी नही है। राजमार्ग नष्ट होकर जगली रास्ता म बदल गये थे। मार्ग म भीलवाडा पडा। यह एक प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर था और इसमे 6 हजार घर थे। परन्तु अब सुनसान पडा था। एक भी आदमी नही मिला। एक मदिर म एक कुत्ता बैठा हुआ अवश्य दिखाई दिया।

मैं अपने दल के साथ उदयपुर के निकट नाथद्वारा म ठहरा। वहा पर राणा के एक प्रतिनिधि ने मुझसे मुलाकात की। फिर राणा का पुत्र जवानसिंह राज्य के सरदारो तथा अधिकारियो के साथ आया और हम राजधानी ले गया। उदयपुर से दो मील की दूरी पर एक स्थान पर हम लोगो का स्वागत किया गया। हमने सूरजपोल से होकर नगर मे प्रवेश किया। वहा का दृश्य देखकर इस बात का सहज ही आभास होता था कि जहा से हम गुजर रहे हैं वह बुरी तरह से उजड चुका है। रामप्यारी का महल भी इसी मार्ग पर था। यह महल कई मजिलो का था। उसकी सुन्दरता और श्रेष्ठता प्रशसनीय थी। यहा पर हम लोगो के स्वागत की तयारियाँ थी। बाद म यही महल हम लोगो को रहने के लिये मिल गया। राणा से भेंट के लिये दूसरा दिन निश्चित हुआ परन्तु उसी शाम को समाचार मिला कि राणा ने मुझ से आज ही मिलने की व्यवस्था कर दी है।

हम लोग राजभवन के लिये चल पडे। भीड के लोग दूर से हमें देख रहे थे और जय जय फिरगीराज' के नारे लगा रहे थे। उनका भाट कवि मेरा नाम भी अपनी कविता म ले रहा था। स्थान स्थान पर बाजे बज रहे थे और स्त्रियाँ गीत गा रही थी। हम लोगो को देखने के लिए सारे रास्ते मे लोग उमड रहे थे। राजभवन के समीप हम लोग हाथी-घोडो से उतर पडे और पदल चल कर राजभवन म प्रवेश किया।

राजभवन जमीन से एक सौ फुट की ऊचाई पर है और उसकी बनावट अत्यन्त सुन्दर और सुदृढ है। उसमे सगमरमर और दूसरे मजबूत पत्थर लगे हुए हैं। प्रत्येक पार्श्व मे आठ कोन के बुर्जो पर गुम्बज बने हुये है। बुर्ज के ऊपर चढकर देखने से आसपास का सारा दृश्य साफ दिखाई देता है। महल के प्रथम द्वार पर सिंधी सिपाहियो का पहरा था। दीवानखाने तक सशस्त्र राजपूत खडे थे। गणेश दरवाजे से होकर दीवानखाना जाना पडता है। वहा चोबदार मिले जो किसी के आगमन की सूचना राणा को देते थे। हम लोगो के पहुँचने की सूचना भी राणा को दी गई। उसी समय राणा ने सिंहासन से उतर कर हमारी तरफ कदम उठाये। राणा के

उठते ही सरदारो न भी खडे होकर हमारा स्वागत किया। हम लागो को सिंहासन के सामने स्थान दिया गया। दरबार का यह स्थान सूय महल के नाम से विख्यात है। राणा का सिंहासन बहुत ही कीमती और मजबूत बना हुआ है। राज्य के प्रमुख सोलह सरदार राणा के दायें और बायें बठत है। उनके नीचे एक तरफ राजकुमार जवानसिंह का स्थान है। राणा के सामने मन्त्री का और पीछे की तरफ प्रधान अधिकारी और विश्वासी लोगो के स्थान हैं। राणा ने हमारे आने पर प्रसन्नता प्रकट की तथा कुछ देर तक अपने सकटा के बारे मे बताते रहे। मैंने उत्तर मे कहा हमारे गवनर-जनरल को आपके वश की श्रेष्ठता की जानकारी है। आपके सकटो के प्रति हमारी महानुभूति है। हमार गवनर जनरल का इरादा है कि आपके सकट दूर किये जाय और सहायता करके आपके गौरव की वृद्धि कर।"

विदाई के समय राणा न भेंट मे बहुमूल्य चीजें प्रदान की जिनमे एक सजा हुआ हाथी, एक उम्दा घोडा, जवाहिरात जडे हुए आभूषण मोतियो की एक माला एक कीमती शाल और कुछ वस्त्र थे। हम लोग लौटकर वापस अपने स्थान आ गय तब राणा अपने लोगो के साथ हमसे मिलने आया। मैंने थोडी दूर जाकर उसका स्वागत किया और अपनी सेना से सलामी करायी। वापसी म मैंने भी भेंट मे राणा को एक हाथी, दा घोडे और कुछ कीमती वस्तुए दी। राणा का लडका जवानसिंह भी आया था। उसे भी भेंट मे एक घाडा और कुछ चीजें दी। राणा के कमचारियो को भेंट मे रुपये दिये।

राज्य की दुदशा के दिना म बहुत से सरदार राणा के विरोधी हा गय थे। नई व्यवस्था का प्रथम काम इन सभी सरदारो से राणा के अधिकार मनवाना था। इसके लिये उन्ह राणा के दरबार मे लाना जरूरी था। बहुत से सरदारो ने तो राज-सभा को आखो से भी नही देखा था और जिन्होने देखा था वे लोग भी अपनी स्वाथ-सिद्धि के लिये ही आते थे। परन्तु मेवाड वालो ने विस्मय से देखा कि कुछ दिनो मे ही राज्य के समस्त सरदार और सामन्त राणा की सभा म उपस्थित होने लगे। यहा तक कि उपद्रवकारी दुष्ट हमीर जिसने कुछ दिना पहले हाडी रानी का दहेज लूट लिया था[3] और सगावत सरदार जिसने गव से कहा था कि "चाहे मैं स्त्री के आगे सिर झुका दू परन्तु राणा को नही झुकाऊगा—वे दोना भी आये थे।'

दूसरा महत्वपूर्ण काय मेवाड को पुन आबाद करना था। मराठो के अत्याचारो से पीडित हाकर जो लोग भाग गये थे उनको वापस बुलाना। परन्तु इसम कुछ समय की आवश्यकता थी। जो लोग राज्य छाडकर दूसरे राज्या मे जम गय थे उन्होने वहा क लागो के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिय थे। अब आसानी के साथ उन सम्बन्धो को तोडा नही जा सकता था। अत राणा ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करवाई और उनसे वापस लौटने की अपील की। राणा की इस अपील का उन लागा

पर अच्छा प्रभाव पडा और वे लोग वापस लौटने लगे। अपने घरो को वापस आने का उन्हे अपार आनन्द हो रहा था। लोग अपने घरो का सामान छकडा पर लादकर मेवाड आने लगे। अंग्रेजो के साथ सधि होने के आठ महीने बाद ही मेवाड के नगर और गाव आबाद हो गये। जो स्थान पहले सुनसान पडे थे अब वहा फिर से मनुष्या का कोलाहल सुनायी देने लगा। अत्याचारो के दिनो मे जो लोग भाग गये थे, व सभी सुख तथा स्वाभिमान के साथ लौट कर आ गये। लेकिन वापस आना ही पर्याप्त न था। उनके पास कोई काय अथवा व्यवसाय न था। राणा के पास उनकी सहायता करने लायक धन भी न था। सकट के दिना मे जिन लागो ने किसी प्रकार स अपनी धन सम्पत्ति बचा ली थी उन लोगो से राणा न कर्जा मागा। परन्तु वे लाग 36 रु प्रति सैकडा का ब्याज मागन लगे। विवश होकर राणा ने भारी ब्याज दर से ऋण लिया।

राणा पहले से ही कज डूबा हुआ था। अब और अधिक कज हा गया। इन दिनो बाहर के व्यापारियो न मेवाड मे आकर कज देने का व्यवसाय शुरू कर रखा था और राज्य के कई स्थानो पर उन्हाने अपनी शाखाए कायम कर रखी थी। परन्तु राज्य की ओर से व्यवस्था लागू किये जान के बाद उनका प्रभाव और आतक धारे धीरे समाप्त हो गया। राज्य का प्रमुख व्यापारिक नगर भीलवाडा जो कुछ दिनो पूव तक उजाड हो चुका था, वहा फिर से चहल पहल शुरू हो गई और लगभग बारह सौ दुकानें फिर से काम करने लगी। नगर के टूटे फूटे मकाना की मरम्मत कर ली गई और यह नगर फिर से उन्नति की ओर अग्रसर होने लगा। घरेलू उद्योग धन्धो के उत्पादनो के लिय साप्ताहिक हाट बाजार लगाया जाने लगा और राणा ने पहले वर्ष के लिये उन उत्पादनो से कोई कर न लेने की घोषणा की। उसने अन्य बहुत सी सुविधाए भी प्रदान की। राज्य के कमचारियो के हस्तक्षेप से बचान की दृष्टि स उन्हे अपना मुख्य मजिस्टेट और जूरी के सदस्यो को चुनने की सुविधा प्रदान की गई। वे लाग निष्पक्षता के साथ अपना काम कर सके, इसके लिये उन्हे सरक्षण प्रदान किया गया।

उपरोक्त सुविधाओ के बाद भी राज्य की उन्नति मे अनक बाधायें भी आ पडी। प्रतिस्पर्धा और स्वार्थो के कारण व्यवसायी लोग आपस मे एक दूसरे से विद्वेष करने लगे। सभी ये चाहन लग थे कि अमुक अमुक वस्तु का व्यापार कोई दूसरा न करने पाय। जब इस विषमता को दूर कर दिया गया तो उन लोगो मे धम को लेकर विवाद चल पडा। इससे इस नगर की उन्नति रुक गई।

सामन्तो के स्वार्थो की समस्या को हल करना सबसे कठिन काम था। कृषक एव व्यवसायी वर्गो को केवल उत्साह एव सरक्षण देना ही पर्याप्त था। परन्तु सामन्तो की बात दूसरी थी। उनमे से कइयो ने सकट के समय अपने इलाको की

सुख समृद्धि के लिए बहुत कुछ बलिदान किया था। कोठारिया जसे सरदारो के लिए खोने की कोई बात न थी पर तु देवगढ मलूम्बर बदनौर जसे सरदारो जिन्होने विदेशी सहायता पडयन्त्र या अपने गठबल से अपनी सत्ता को बनाये रखा था, नवीन सधि व्यवस्था द्वारा प्रदत्त सुरक्षा की भारी कीमत चुकाने क विचार से भयभीत थे। इनके अलावा कुलीय सघष को शान्त करना भी एक कठिन काम था। सकट के दिनो म जिन सरदारो न खालसा भूमि तथा एक दूसरे के इलाको पर जो बलात् अधिकार कर रखा था उसे भी पुन व्यवस्थित करना था। चूडावतो और शक्तावता के आपसी सम्बधो न पुन उग्र रूप धारण कर लिया था। शक्तावत सरदार जोरावर सिंह न तो यहा तक कह डाला था कि 'यदि परमेश्वर भी आ जाय तो वह मेवाड को नही सुधार सकता।"[4]

27 अप्रल को सब साम तो और सरदारो की एक सभा मे ब्रिटिश सरकार के साथ की गई सधि को पढकर सुनाया गया। इस बीच राणा और उसके सरदारा के आपसी अधिकारो एव कत्तव्यो से सबधित एक चाटर तैयार किया गया। बडी उलझना और आलोचनाग्रा के बाद जो निणय हुआ उस पर राणा और सरदारो ने हस्ताक्षर कर दिय।[5] इसके बाद राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप स आरम्भ हुई। जो सरदार निकाल दिये गय थे उन्ह बुलाकर उनके इलाको मे उन्हे प्रतिष्ठित किया गया और जिन्होने अभी तक नवीन व्यवस्था का पालन नही किया था उनका दमन किया गया। व्यवसाय की उन्नति के लिये सभी साधन जुटाये गये और सरदारो के अधिकार से खालसा इलाको को वापस अधिकृत किया गया। इस सम्बन्ध मे राणा न बडी बुद्धिमानी से काम किया और वह अपने ध्येय मे सफल रहा। इससे सबधित कुछ घटनाओ का सक्षेप मे विवरण देना आवश्यक है।

मेवाड के एक दुग का नाम है अरझा। पुरावत गोत्र के सरदारो ने राणा के इस दुग को बलात् अधिकृत कर लिया था। पन्द्रह वष बाद शक्तावता ने उस दुग को अपने अधिकार म ले लिया और राणा को दस हजार रुपये देकर अपने अधिकार को नियमित करवा लिया। अब शक्तावता से यह दुग लेना जरूरी समझा गया। जब शक्तावतो को इसकी जानकारी मिली तो वे चिंतित हो उठे और आपस मे परामश करने लगे। राणा को उनके सभावित विद्रोह की चिन्ता सतान लगी। जिन सरदारो के विद्रोही होने की सभावना थी, उनमे दा प्रमुख थे और उनम से एक था जतसिंह जो मेडतिया राठौड था। राणा जब जैतसिह को समझान मे विफल रहा तो उसन सारा मामला मुझे सौंप दिया। मेरे समझाने पर उसने विरोध त्याग दिया और दुग पर अपने अधिकारो को समाप्त करने सम्बन्धी राणा के नाम पत्र लिख कर दे दिया।[6]

भदेश्वर के हमीर का वृत्तान्त पहले दिया जा चुका है। वह चूडावत वश का था और मेवाड के दूसरी श्रेणी का एक सरदार था। मत्री सोमजी की हत्या

इसी सरदार के पिता ने की थी। राणा के विरुद्ध विद्रोह करने वाले सरदारो मे वह भी सम्मिलित था। उसकी पतृक जागीर की आय तीस हजार रुपये से अधिक न थी परन्तु सकट के दिनो मे अन्य जागीरो पर अधिकार जमा कर उसने अपनी आय अस्सी हजार रुपये वार्षिक की बना ली। लावा का शक्तावत सरदार उसका अभिन्न मित्र था। खरोदा का दुग भी उन दिनो मे उसी के पास था। जिन दिनो म राणा ने अन्य सरदारो से अनाधिकृत इलाके वापस ले लिये थे, ये दोनो तब तक उनका भाग कर रहे थे। कुछ दिनो बाद राणा न लावा सरदार को चेतावनी दी कि जब तक खरोदा दुग और अन्य अनाधिकृत इलाके आप वापस नही करेंगे तब तक आपको राज दरबार म आने की मनाही रहेगी। इससे हमीर उत्तेजित हो उठा और उसने राणा का कई अपशब्द कह डाले। तब राणा ने उसका दमन करने का काम मुझे सौंपा। इस बीच जब राणा के सैनिक उस दुग की व्यवस्था सभालने गये तो उन्हें अपमानित करके भगा दिया गया। इस पर मुझे उसके विरुद्ध कठोर कदम उठाना पडा। राणा ने उसे राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। लेकिन फिर यह तय हुआ कि उसके सभी इलाको को अधिकार मे लेकर तब तक राज्य के अधीन रखे जाय जब तक वह बलात् अधिकार मे लिये गये इलाको से अपना अधिकार छोडने के लिये तैयार नही हो जाता। इस निर्णय से हमीर बहुत उदास हो गया। वह उसी दिन उदयपुर से चला गया और अपने अधिकार की समस्त भूमि जिसमे भदेश्वर का दुग भी सम्मिलित था राणा को सौंप दी।

एक अन्य घटना है—आमली दुग की। पिछले 27 वर्षों से आमेट के सरदार इस पर अधिकार किये हुए थे। आमेट का सरदार मेवाड के सोलह प्रमुख सरदारो म से एक था। चदतौर के सरदार के बाद उन्ही लोगो का स्थान है। इस दुग पर भी राणा न टाड की सहायता से अधिकार प्राप्त किया था।

मेवाड म भूमि का स्वामी किसान (रय्यत) माना जाता है। किसान लोग भूमि पर अपने इस अधिकार को बपोता" मानते हैं। उनकी मातृभाषा म पतृक अधिकार का समझाने के लिये इस बापोता के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द नही है। मनु के शब्दो का दोहराते हुए वे कहते हैं "जिन्होंने वन को काट छाट कर खेतो को साफ किया और जोता वह भूमि उनकी ही है। केवल मेवाड के ही क्या समस्त राजस्थान के लोग अति प्राचीन काल से कहते आये है कि 'भोग रा धनी राज हो, भोम रा धनी मा छो।' अर्थात् भूमिकर का अधिकारी राजा है, भूमि के मालिक हम हैं। दादा परदादा की अधिकार की हुई भूमि को राजपूत किसान बापोता के नाम से पुकारते हैं। परन्तु बापोता का वह अधिकारी यदि युद्धजीवी हो तो भोमिया" नाम से पुकारा जाता है। दिल्ली के मुसलमान बादशाह करद हिन्दू राजाओं को जमीदार कहते थे। भूमि के यथार्थ अधिकारी ही उस समय जमीदार के नाम से पुकारे जाते थे।

जापोता के ऊपर राजपूत किसानो का अधिकार कहा तक दृढ है, इस बात का हम कई एक पुराने प्रमाणो से प्रमाणित करेंगे। किसी समय मे एक गुहिलोत राजकुमार का विवाह मारवाड की राजकुमारी के साथ हुआ। राजपूता मे ऐसी रीति थी कि विवाह के दिन जामाता दहेज के लिये कुछ माग करता तो ससुर को उसकी माग पूरी करनी पडती थी। गुहिलोत राजकुमार ने अपने राज्य मे बसाने के लिये दस हजार जाट (खेती करने वाले किसान) मागे। मारवाड के राजा ने तुरन्त आदेश दे दिया कि दस हजार जाटो को मारवाड से मेवाड जाना होगा। इस आदेश से किसान लोग घबरा गये क्योकि वे अपना देश छोडकर जाना नही चाहते थे। उन्होने महाराज से निवेदन किया कि आप चाहे तो हमारा वध करा सकते हैं, परन्तु प्राण रहते हम लोग जपोत को नही छोड सकते। तब मेवाड के राणा ने उन किसानो को अपनी बहुत सी जमीनें सदा के लिये लिख देने का वचन दिया, तो किसानो ने वहा जाना स्वीकार कर लिया।

मेवाड मे किसानो से किस प्रकार से वसूल किया जाता था यहा पर उस सम्बन्ध मे कुछ कहेगे। अनाज के ऊपर मेवाड मे दो तरह का कर लिया जाता है। एक कनकूत और दूसरा मुट्टाई के नाम से प्रसिद्ध है। गन्ना, पोस्त, सरसो सन, तम्बाकू, रुई नील और फल फूलो पर दो रुपये प्रति बीघा से लेकर 6 रुपये तक लिया जाता है। खेतो मे खडी फसल के अनुमान से राज कर्मचारी जो कर लगा देते थे, उसको कनकूत कहा जाता था। बहुधा यह अनुमान सही होता है। परन्तु यदि खेत का मालिक किसान उसे अधिक समझे तो वह उस अनुमान के विरुद्ध राजा के यहा प्रार्थना पत्र दे सकता है। मुट्टाई (बटाई) कर के लिये भी वह प्रार्थना कर सकता है। फसल कटने के बाद खलिहान मे एकत्र अनाज से राज्य के रूप मे जो हिस्सा प्राप्त करता है, उसे मुट्टाई अथवा बटाई कहते हैं। इसमे दोनो पक्ष सतुष्ट रहते हैं। यह बहुत ही पुरानी रीति है और इस रीति के अनुसार जौ, गेहूँ तथा रबी की अन्य फसलो की पदावार का एक-तिहाई अथवा 2/5 वा भाग राज्य को मिलता है। कनकूत और मुट्टाई रीति के अनुसार तय अनाज का बाजार दर से अनाज का मूल्य नियत किया जाता है। कनकूत प्रथा मे कभी कभी अन्याय भी हो जाता है। किसान लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये राजकर्मचारियो को घूस दे देते है और वे उसकी फसल को बहुत कम आक कर मामूली कर निर्धारित कर देते हैं। इसी प्रकार पटवारी तथा पहरेदार को भी सतुष्ट रखना पडता है। रिश्वत न पाने पर वे पदावार को अधिक जाहिर करते हैं। कर सम्बन्धी यह व्यवस्था किसानो के लिये बडी घातक है।

अग्रेजो के साथ सन्धि होने के बाद से मेवाड राज्य उन्नति की तरफ बढा। तीन वर्षों मे उसकी आबादी काफी बढ गई। खेती और दूसरे व्यवसायो मे भी उन्नति हुई। कमलमीर रायपुर, राजनगर, मादडी और कुनडा मराठो से लेकर तथा

कोटा से जहाजपुर और बिद्रोही सरदारो से बहुत सी भूमि और पहाडी लोगो से मेरवाडा लेकर मेवाड राज्य मे मिलाये गये। लगभग एक हजार गाव फिर से राणा के अधिकार मे आ गये। इस उत्तम व्यवस्था से मेवाड की उन्नति हुई।

सन् 1818 स 1822 ई० तक मेवाड राज्य म जो राजकर वसूल हुआ उसकी जानकारी नीचे दी जा रही है। उससे मवाड की प्रगति का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है

रवी की फसल से	सन् 1818 म	40,000 रु
, ,,	1819 मे	4 51 281 रु
,, ,,	1820 मे	6 59,100 रु
,, ,	1821 मे	10,18,478 रु
,, ,,	1822 म	9,36,640 रु
वाणिज्य से हाने वाली आमदनी	1818 मे	नाम मात्र की।
, ,	1819 मे	96,683 रु
,, ,,	1820 मे	1 65,108 रु
,, ,,	1821 मे	2,20,000 रु
,, ,	1822 मे	2,17,000 रु

स्पष्ट है कि सधि के बाद राज्य मे शान्ति की स्थापना से उन्नति आरम्भ हुई। मेवाड राज्य को अपनी खाना से भी काफी आमदनी होती थी। परन्तु अराजकता के काल मे खानो की खुदाई ब द हो गई। उनमे पानी भर गया और वे नष्ट हो गईं। एक बार इसके लिये चेष्टा की गई पर तु उससे लाभ होने की आशा न होने के कारण उस काय को ब द करना पडा।

सन्दर्भ

1 13 जनवरी, 1818 ई के दिन दिल्ली म अग्रेजा की तरफ स चार्ल्स मेटकॉफ और महाराणा की तरफ से ठाकुर अजीतसिह ने इस स धि पर हस्ताक्षर किय, जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार थी—

(1) दोनो राज्यो के मध्य मैत्री सहकारिता तथा स्वाथ की एकता सदा पीढी दर पीढी बनी रहेगी और एक के शत्रु तथा मित्र दूसरे के शत्रु तथा मित्र रहगे।

(ii) अग्रेज सरकार उदयपुर राज्य और मुल्क की रक्षा का जिम्मा लेती है।

(iii) उदयपुर के महाराणा अंग्रेज सरकार की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए उसके अधीन रहकर उसके साथ सहयोग करेंगे और दूसरे राजाओं तथा राज्यों से कोई सम्बन्ध न रखेंगे।

(iv) अंग्रेज सरकार की स्वीकृति और जानकारी के बिना उदयपुर के महाराणा किसी राजा या रियासत के साथ कोई समझौता नहीं करेंगे परन्तु अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ सामान्य पत्र-व्यवहार जारी रख सकेंगे।

(v) उदयपुर के महाराणा किसी पर ज्यादती नहीं करेंगे और यदि दवसंयोग से किसी के साथ विवाद उठ खड़ा हो जाय तो उसे मध्यस्थता तथा निर्णय के लिये अंग्रेज सरकार के सामने प्रस्तुत किया जायेगा।

(vi) पांच वर्ष तक वर्तमान उदयपुर राज्य की आय का एक चौथाई भाग प्रतिवर्ष अंग्रेज सरकार को खिराज में दिया जायेगा और इस अवधि के बाद हमेशा 3/8 वां भाग दिया जायेगा। खिराज के विषय में महाराणा किसी और राज्य से कोई सम्बन्ध न रखेंगे और यदि कोई इस प्रकार का दावा करेगा तो अंग्रेज सरकार उसका जवाब देगी।

(vii) महाराणा का कथन है कि उदयपुर राज्य के बहुत से जिले दूसरों ने बलपूर्वक दबा लिये हैं और वे उन स्थानों को वापस दिलाये जाने के लिये प्रार्थना करते हैं। ठीक ठीक हाल मालूम न होने से अंग्रेज सरकार इस बात का पक्का कौल करार करने में असमर्थ है, परन्तु उदयपुर राज्य की फिर से उन्नति करने का वह सदा ध्यान रखेगी और हर एक मामले का हाल ठीक-ठीक मालूम हो जाने पर उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जब जब ऐसा करने का अवसर आयेगा तब तब वह भरसक कोशिश करेगी। इस प्रकार अंग्रेज सरकार की सहायता से उदयपुर रियासत को जो जो स्थान वापस मिलेंगे उनकी आमदनी का 3/8 वां भाग वह हमेशा अंग्रेज सरकार को देती रहेगी।

(viii) आवश्यकता पड़ने पर रियासत उदयपुर को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अंग्रेज सरकार को सेना देनी होगी।

(ix) उदयपुर के महाराणा हमेशा अपने राज्य के पूर्ण मालिक रहेंगे और उनके राज्य में अंग्रेज सरकार का दखल न होगा।

2 इस पद के लिये कनल टॉड को नियुक्त किया गया। उन्हे पश्चिमी राज्यो के पोलिटिकल एजेन्ट होने के साथ साथ राणा के दरबार का एजेन्ट भी बनाया गया। इससे पूर्व कनल टॉड ने होल्कर और बूंदी के राजा के साथ युद्ध किया था और कोटा के राजा से संधि की थी।

3 भदेसर के रावत हमीरसिंह ने महाराणा की बरात को जो कोटा से लौट रही थी, लूट लिया था।

4 कनल टाड ने लिखा है कि भेडिये और बकरी का एक घाट पर पानी पिलाना आसान था किन्तु चूडावतो और शक्तावतो से यह आशा करना कठिन था कि व राज्य और महाराणा के हित के लिये काय करेंगे।"

5 यह समझौता पत्र जो कोलनामा कहलाता है, 1 मई, 1818 को दरबार म विचाराथ रखा गया था और 5 मई, 1818 का प्रात तीन बजे स्वीकृत हुआ। इस कोलनामे पर स्वय महाराणा ने, कनल टाड ने तथा मेवाड के 33 सामन्तो ने हस्ताक्षर किये। इस कोलनामे के अनुसार सामन्ता को खालसा की भूमि जो उनके अधिकार मे थी, छोडनी थी, "भोम रखवाली" नामक कर, जो सामन्तो ने खालसा की रैयत से वसूल करना आरम्भ कर दिया था त्यागना था, मेवाड मे अथवा बाहर महाराणा की आज्ञानुसार उन्हे महाराणा की सेवा मे उपस्थित होना था। सामन्तो न इसकी भी स्वीकृति दी कि वे चोर, लुटेरो आदि को अपनी जागीर मे शरण नही देंगे। महाराणा ने इस बात की स्वीकृति दी कि वह सामन्तो के प्राचीन सम्मान और विशेषाधिकारो को बनाये रखेगा तथा सामन्तो की भूमि को बिना उचित कारण के जब्त नही करगा। कनल टॉड द्वारा कोलनामा स्वीकृत कराना, उसकी एक महान् उपलब्धि थी।

6 1808 मे पानसल के शक्तावतो ने मराठा सरदार वाले राव की सहायता से इस दुग पर अधिकार किया था। उन्हे डर था कि यह इलाका पुन पूरावतो को दे दिया जायगा। टाड न उन्हे जब यह आश्वासन दिया कि यह दुग पूरावता को नही दिया जायेगा तब शक्तावतो ने अरझा (अर्ज्या) दुग सौंपा था।

अध्याय 28

मेवाड मे धर्मप्रतिष्ठा, पर्वतोत्सव व आचार-व्यवहार

सभी युगा म धम प्रधाना का प्रभुत्व देखने मे आता है यह धम के प्रति सम्मान की अभिव्यक्ति है। राजस्थान मे विविध धार्मिक प्रतिष्ठाना को अर्पित दान को यदि यहा के लोगा की नैतिकता की कसौटी मान लें ता कहना पडेगा कि इस क्षेत्र म वे अग्रनीय रह्। राजस्थान मे शायद ही कोई ऐसा राज्य हो जिसकी 1/5वी भूमि मन्दिरा, ब्राह्मणा चारणो और भाटो के भरण पोषण के लिए न दी गई हा। पर तु यह बुराई पहल इतनी व्यापक कभी नही रही, यह मौजूदा समय की विकसित बुराई है।

ब्राह्मण, सन्यासी और गुसाई लोग भी व्यावसायिक चाटुकार भाट चारणो से पीछे नही है और कई राजाग्रा के नाम ही विस्मृत हो जाते यदि उ हाने भूमि दान मे न दी होती। मेवाड मे शासन मे दी गई भूमि (धार्मिक अनुदान) की आय राज्य के राजस्व के पाचवें हिस्स क बराबर है। पिछली सदी की अ यवस्था के कारण इसमे अधिक वृद्धि हुई है। 1818 मे शा ति की स्थापना के समय इस प्रकार की भूमि पुन अवाप्त की जा सकती थी पर तु राणा का विश्वास था कि ऐसा करने पर उसे 6 लाख वप तक नरक म रहना पडेगा। यूरोपीय इतिहास के अन्धकारमय दिनो मे वहा भी इसी प्रकार की भावना प्रचलित थी। पर तु वहा पुराहित वग अ य साम ता की भाति एक साम त समझा जाता था और उसे साम तीय सवाए करनी पडती थी। राजस्थान की इन धार्मिक जातियो को राजा की वैसी सेवा नही करनी पडती थी और विगत वर्षों मे अनुदान मे भूमि देते समय प्रादेशिक एव यापारिक दृष्टि से राज्य के हिता का भी ध्यान नही रखा गया था। यूरोप के राजाओ म दान वृत्ति मे दी गई भूमि को वापस लेन का साहस था। राजपूत राजाओ मे वसा साहस नही था। केवल राणा का पूवज जोगराज ही ऐसा निकला जिसने न केवल ब्राह्मणो को दी गई भूमि ही वापस ली अपितु उनमे से कइया को मौत के घाट भी उतार दिया था। सम्भवत अहकार अथवा श्रम के कारण राजपूत राजा ऐसा करने से हिचक रह थे। धम प्रधानो की पदविया और

कानून द्वारा स्थापित उनके अधिकार तथा अन्य सुविधाओं का आज भी धर्मपूर्वक पालन किया जा रहा है।

इन ब्राह्मणों का राजनैतिक प्रभाव कई बार समाज के हितों और राजा के निजी कल्याण के विरुद्ध भी काम करता है। राजा प्राय साधारण ब्राह्मणों से घिरा रहता है। विश्वस्त सेवकों, रसोइये, वश-भूषा की देख रेख करने वाला, पारिवारिक कर्मकाण्डों एव संस्कारों को सम्पन्न करने वाले गुरुओं, ज्योतिषी एव चिकित्सक तथा शिक्षक के रूप में ये ब्राह्मण राजपरिवार में अपना विशेष स्थान बनाये हुए हैं। उनमें से प्रत्येक अपने लिये अथवा अपने मंदिर के लिये भूमि अनुदान की मांग करता रहता है। ये ब्राह्मण अपने मंदिरों की धन-सम्पत्ति को व्यक्तिगत उपयोग में लेने से भी नहीं चूकते। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नाथद्वारा को जो अनुदान पत्र जारी किया गया था वह फर्जी था। मेवाड के तीन उपजाऊ जिलों के सर्वेक्षण से पता चला कि लगभग बीस हजार एकड भूमि इन लोगों को अनुदान में दी गई। कुछ धार्मिक प्रतिष्ठान और विशेषकर नाथद्वारा का मंदिर अभी तक अपने सदाव्रत को जारी रखे हुए है। राजकीय अनुदानों के अलावा ब्राह्मणों को किसानों और व्यवसायियों से भी भेंट पूजा में बहुत कुछ प्राप्त हो जाता है।

मैं अब शैवों और जैनों के विशेषाधिकारों की चर्चा करूंगा। उसके बाद वैष्णवों का उल्लेख करूंगा। राजस्थान में महादेव की पूजा होती है। मेवाड के राजपूत उसे एकलिंग भगवान के नाम से भी पुकारते हैं। एकलिंग के जितने भी मंदिर हैं उनमें महादेव की मूर्ति के आगे पवित्र नन्दी (वृषभ) की मूर्ति भी पाई जाती है। युद्ध में नंदी महादेव का वाहन था। गुहिलोत वंश के राणा एकलिंग को अपना आराध्य देव मानकर उसकी पूजा करते हैं।

उदयपुर से 6 मील उत्तर की तरफ एक पहाडी मार्ग के बीच में भगवान एकलिंग का प्रसिद्ध मंदिर है। आस पास पानी के अनेक छोटे स्रोत हैं जो घाटी की फूलदार बेलों तथा पौधों को जीवनदान देते हैं और घाटी में खिलने वाले फूल एकलिंग भगवान को चढाये जाते हैं। अन्य प्राचीन शिव मंदिरों की भांति यह भी शिखराकार नमूने का है और पिरामिड आकृति का है। एकलिंग के पुजारियों को गुसाई अथवा गोस्वामी कहा जाता है। ये लोग अपना विवाह नहीं करते। उनके शिष्य ही उनके उत्तराधिकारी बनते हैं। शैव पुजारी अपने शरीर में भस्म लगाते हैं और गेरुये वस्त्र पहनते हैं। मृत्यु के बाद उनका अग्नि संस्कार नहीं किया जाता बल्कि मृत शरीर को समाधि दी जाती है। मेवाड में ऐसे बहुत से गुसाई लोग पाये जाते हैं, जो केवल पुजारी ही नहीं होते बल्कि वे जीवन के दूसरे व्यवसाय भी अपनाते हैं। गुसाई व्यापारी भारत के धनाढ्य लोगों में गिने जाते हैं। मराठा लोग उन्हें बहुधा बंधक बनाकर ले जाते थे। बहुत से गुसाइयों ने शस्त्र धारण कर रखे हैं और

अनुदान मे दी जाती है, वह उनसे फिर लौटाई नही जाती, अपितु वह भूमि पीढी दर पीढी उनके वशजो के अधिकार मे ही बनी रहती है ।

राणा के पूवजो की राजधानी वल्लभी थी और व जैन धम को मानन वाल थे । यही कारण था कि वहा पर जनियो को सभी प्रकार का सम्मान प्राप्त था । वल्लभी से बहुत से जैनी मेवाड म आ बसे । गुहिलोत वश के प्रारम्भिक राजाओ न भी इस सम्प्रदाय को प्रोत्साहन दिया था । चित्तौड मे स्थित "पार्श्वनाथ का स्तम्भ' इस बात का प्रमाण है । राजस्थान के अन्य बहुत से राज्य भी जन सम्प्रदाय के पोषक रहे है । यहा के राजा वष्णव धम मे भी आस्था रखते हैं । मेवाड के नाथद्वारा म जो प्रसिद्ध मदिर बना हुआ है उसम श्रीकृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित है । औरगजेब के अत्याचारो स पीडित होकर बृजभूमि के पुजारी श्रीकृष्ण (कन्हैया) की मूर्ति को लेकर भाग खडे हुए । उस अवसर पर राणा ने उनका आश्रय दिया था । उदयपुर से पच्चीस मील उत्तर पूव की तरफ स्थित नाथद्वारा म वष्णव पुजारियो ने कन्हैया की मूर्ति को प्रतिष्ठित किया । नाथद्वारा के मदिर की सीढिया मजबूत सगमरमर पत्थर की बनी हुई ह । उसके समीप ही बनास नदी बहती है । इस मन्दिर म श्रीकृष्ण की मूर्ति के अलावा अन्य कोई मूर्ति नही है । उस मन्दिर की ख्याति श्रीकृष्ण के नाम से ही है ।

अकबर जहागीर और शाहजहा ने हिन्दू विचारधारा का सम्मान किया था । जहागीर का जन्म राजपूत कन्या से हुआ था । इसीलिए उसके विचारो मे हिन्दू सस्कृति का पुट था । कहा जाता है कि शाहजहा शव विचारधारा की तरफ अधिक रुचि रखता था । उसके समय मे शिव क उपासको ने कन्हैया के उपासको को तग करना शुरू किया और उन्हे बृज से खदेड दिया । राणा ने उन्हे बृज मे पुन बसाया । औरगजेब के समय मे श्रीकृष्ण की मूर्ति की रक्षा के लिये राणा राजसिंह ने उससे युद्ध लडा । इस अवसर पर वष्णव पुजारी अपनी मूर्ति क साथ कोटा होकर रामपुर की तरफ चले गय और वहा से मेवाड म आ गये । राणा का विचार कृष्ण की मूर्ति को उदयपुर म स्थापित करने का था । परन्तु माग मे एक घटना के घटित हो जान से एसा नही हो पाया । जब पुजारी लोग मूर्ति का रथ मे रखकर उदयपुर की ओर ले जा रहे थे तो रास्ते म शियार नामक एक गाव के समीप रथ का पहिया जमीन मे ऐसा धसा कि निकाला ही नही जा सका । तभी एक ज्योतिषी ने आकर कहा कि कन्हैया का विचार यही रहन का है, इसीलिये रथ का पहिया ऊपर नही आ रहा है । घटना की जानकारी मिलने पर राणा ने उसी गाव के बाहर मदिर बनवाने की आज्ञा दे दी । यह गाव देलवाडा सरदार के इलाके मे था । वह भी उस गाव म आया और मदिर की सहायताथ उस गाव की भूमि अनुदान मे देने की इच्छा प्रकट की । राणा ने स्वीकृति प्रदान कर दी । मदिर के तैयार हो जाने पर श्रीकृष्ण की मूर्ति उसम स्थापित कर दी गई । तब स वह गाव नाथद्वारा के नाम से प्रसिद्ध

हुआ। थोडे ही समय के वीच यह गाव एक नगर म परिवर्तित हो गया है। लोगो का विश्वास है कि घोर पापी भी यहा आकर पवित्र हो जाता है। इसकी सीमा के भीतर राजदण्ड का भी प्रवेश नही हो सकता। घोर अपराधी भी यदि नाथद्वारे म चला जाय तो राजा उसको दड नही दे सकता। राजपूत लोग यदि महादेव के विकट धम को छोड कर केवल शाति म वष्णव धम का आचरण करें तो राजपूत जाति का विशेष उपकार हो सकता है।

मेवाड मे पर्वो और उत्सवो का बहुत महत्व है। बस त ऋतु के साथ ही मवाड के घर घर मे पर्वोत्सव आरम्भ हो जाते है। सक्षप मे उन सभी का विवरण दिया जा रहा है।

बसन्त पचमी—माघ शुक्ला पचमी को यह उत्सव मनाया जाता है और समूचे देश मे इस उत्सव का महत्व है। इस अवसर पर सरस्वती की पूजा की जाती है। नृत्य सगीत के आयोजन होते है। बहुत स लोग मादक द्रव्यो का सेवन कर गीत गाते हुए नगर म चारो तरफ घूमते रहते है। इस दिन ऊच नीच का अ तर नही रहता। नाच गान मे अश्लीलता का भी प्रयोग किया जाता है। आस पास के आदि-वासी भील लोग भी इस उत्सव मे सम्मिलित होने के लिये आते है।

भानु सप्तमी—बस त पचमी के दो दिन बाद ही भानुसप्तमी का उत्सव मनाया जाता है। लोगो का विश्वास है कि इसी दिन भगवान सूय का ज म हुआ था। सूयवशी राजपूत इस उत्सव को बडे धूमधाम से मनाते हैं। इस अवसर पर राणा अपने सरदार सामन्तो के साथ चौगा नामक पवित्र स्थान पर जाकर सूय भगवान की पूजा करता है। जयपुर मे यह उत्सव कुछ विशेष उल्लास के साथ मनाया जाता है। कच्छवाह राजा उस दिन आठ घोडे वाले सूय के रथ को मदिर स बाहर लाते हैं और नगरवासी उस रथ को नगर के चारो तरफ घुमाते हैं तथा आनद मनाते हैं।

शिवरात्रि—यह पव फाल्गुण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है। राणा परिवार तथा प्रत्येक हिन्दू इस पव को पवित्र मानता है और शिव भगवान की पूजा अचना करता है। राणा लोग तो अपने को शिव का प्रतिनिधि मानकर धूमधाम के साथ शिवजी की पूजा करते हैं। शिव के उपासक इस दिन व्रत रखते हैं और किसी प्रकार का कोई सासारिक काय नही करते तथा रात्रि म भजन कीतन करते हैं।

अहेरिया—मवाड के राजपूत और विशेषकर राणा के यहा म यह उत्सव बडी धूमधाम से मनाया जाता है। यह शिकार म सम्बन्धित उत्सव है। पहले दिन

राणा अपने सरदारो तथा सेवको का हर रग का अगरगा दिया करते हैं। सभी लोग इसे पहन कर ज्योतिषी के बतलाय हुए शुभ मुहूत पर राणा के साथ वाराह का शिकार करन के लिये निकल पडत ह। शिकार म मारे गये जगली सूअर को भगवती पावती के सामने उत्सग कर दिया जाता है। इस महान् शिकार के दिन राजपूत लोग अपने अपने भाग्य की परीक्षा किया करते हैं। जो इस दिन सफल नही हो पाता उसके लिये आन वाला समय शुभ नही माना जाता। इस उत्सव मे राणा का रसोइया भी साथ जाता है। मारे गये वाराह को पकाकर भोजन बनाया जाता है और राणा अपन सरदारो के साथ वही पर भोजन करत हैं। उस अवसर पर "मनोआ का प्याला" प्रस्तुत नही किया जाता।

फागोत्सव—यह उत्सव फाल्गुण मास मे मनाया जाता है। ज्यो ज्यो फाल्गुण माम के दिन बीतते जाते है त्यो त्यो उत्सव रगीन होता जाता है। लोग आनन्द मे उन्मत हाकर चारो ओर फाग खेलते फिरते हैं। एक दूसरे पर रग डालत हैं, अबीर लगाते है। राणा भी रनिवाम मे जाकर अपनी रानियो तथा उनकी सहेलियो के सग रग खेलता है और इस अवसर पर सभी प्रकार के बधन टूट जाते हैं। सरदार ओर माम त लोग घाडो पर सवार हाकर महलो के मैदान म फाग खेला करते हैं। जिस दिन इस होली लीला की समाप्ति होती है, उस दिन किले के एक ऊचे मकान की छत स नगाडा बजाया जाता है। उसको सुनते ही सरदार लोग अपन अपन सरदारो के साथ राणा के पाम जाते हैं। उन सब लोगो को साथ लेकर राणा चौगान महल जाते है जहा पर नृत्य और सगीत का आयोजन होता है। प्रजा भी इस आनन्दोत्सव मे भाग लेती है। इसके बाद चाचर का त्यौहार मनाया जाता है। चाचर नगर के चारो ओर अग्नि क्रीडा हुआ करती है। सभी लोग उस अग्निक्रीडा के चारो ओर नृत्य करते फिरते है। सारी रात इस प्रकार के खेल म बीत जाती है।

शीतलाष्टमी—चैत्र मास के शुक्ल पक्ष मे छठे दिन यह उत्सव मनाया जाता है। लोगो का विश्वास है कि शीतलादेवी बच्चो की रक्षा करती है। इसलिये स्त्रिया अपने बच्चो की मगल कामना से इस दिन माता के मन्दिर मे जाती है। यह मन्दिर उदयपुर के पास एक पहाडी पर बना हुआ है। राजपूतो की स्त्रिया यहीं आकर शीतलादेवी का पूजन करती हैं। पूजन के बाद घरो मे खुशिया मनाई जाती हैं।

फूलडोल—वर्षा ऋतु के आरम्भ मे इस त्यौहार का उत्सव होता है। त्यौहार की शुरुआत खड्ग (तलवार) पूजा मे होती है। यह पूजा साधारण राजपूत के घर से लेकर राणा के महल तक होती है। राजपूत कन्याएँ तथा युवक फूलो के गहनो से

अपने अगो को सजाकर फुलवाडियो म जाते है। ऊँचे वृक्षो की डालियो पर झूला डाला जाता है और आनन्द के साथ झूला झूलते है।

अन्नपूर्णा—जब सूय मेष राशि मे प्रवेश करता है उस दिन राजपूत लोग भगवती अनपूर्णा की पूजा करते है। देवी की मूर्ति के सामने थोडी सी जमीन खोदकर उसमे जौ बोया जाता है। बोये हुए बीज कुछ ही दिनो म अकुरित हो जाते हैं। राजपूत कयाए मूर्ति तथा उपजे हुए जौ के चारा तरफ परिक्रमा करती हैं तथा भगवती से आशीर्वाद मागती हैं। उपजे हुए जौ को उखाड कर अपने सबधियो म बाट देते है।

अशोकाष्टमी—इस त्यौहार पर सभी राजपूत लोग भगवती की पूजा किया करते है। राणा अपने सरदारो एव साम तो के साथ चौगान महल मे जाकर दिन भर वही रहकर आन द मनाते हैं।

रामनवमी—अशोकाष्टमी के दूसरे दिन रामनवमी का उत्सव मनाया जाता है। इसी दिन भगवान श्रीराम का ज म हुआ था। राम के वशज राजपूत इस त्यौहार को धूमधाम से मनाते हैं। इस दिन हाथी घोडे अस्त्र शस्त्रो की पूजा भी की जाती है। हिन्दू धम ग्र था मे लिखा है कि इस दिन राम की पूजा से बहुत पुण्य प्राप्त होता है। इसलिये लोग उपवास रखते है तथा जागरण करते हैं।

नवगौरी पूजा—हि दू शास्त्रो के अनुसार वशाख का मास बहुत पवित्र माना जाता है। राजपूत लोग इस मास मे नवगौरी पूजा का उत्सव मनाते है। पूजा के पहले राणा अपन प्रमुख सोलह सरदारो के साथ पिछोला झील जाता है और वहाँ पर भगवती गौरी की पूजा करता है तथा उत्सव मनाता है। मेवाड के लोग इस उत्सव को धमविरुद्ध मानते है। वैस इसे राणा भीमसिंह ने 1817 ई० म ही आरम्भ किया था।

सावित्री व्रत और रम्भा तृतीया—ज्यष्ठ मास की कृष्णपक्ष की चतुदशी को सावित्री व्रत किया जाता है। इसमे स्त्रियाँ व्रत रखती है और सावित्री की कथा को सुनती हैं और उसकी पूजा करती हैं। ज्यष्ठ शुक्ल की तृतीया को स्त्रियाँ रम्भा का व्रत करती हैं। रम्भा भगवती गौरी की ही दूसरी मूर्ति है। स्त्रियो का विश्वास है कि सावित्री व्रत से वे सदा सुहागिन रहगी और रम्भा के व्रत से धन की कभी कमी नही रहगी।

अरण्यषष्ठी—ज्येष्ठ शुक्ल की षष्ठी क दिन भगवती षष्ठी देवी की पूजा की जाती है। पुत्र की कामना और पुत्र की मगल कामना को लेकर स्त्रियाँ भगवती की पूजा करती हैं। वट या पीपल की जड मे देवी की पूजा की जाती है।

रथ यात्रा—आषाढ शुक्ल तृतीया का भगवान विष्णु की रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव म कुछ विशेष धूमधाम नही होती क्योकि प्रत्यक मास म रथ यात्रा होती है।

पावती तृतीया—श्रावण मास की शुक्ल तृतीया का पावती तृतीया का व्रत रखा जाता है। राजपूता का इस व्रत म बहुत विश्वास है। स्त्रियो का विश्वास है कि व्रत करने से पावती मनोकामना पूरी करती है। राजपूता का विश्वास है कि इस दिन जो भी नया काम शुरू किया जायेगा उसमे अवश्य सफलता मिलेगी। इस दिन राजपूत लाग लाल रग क वस्त्र पहिनते हैं। उदयपुर की अपेक्षा जयपुर म यह उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है।

नागपचमी—श्रावण शुक्ल पचमी को नागमाता भगवती मनसा की पूजा की जाती है। वर्षा ऋतु मे साँपो का भय अधिक रहता है। भगवती मनसा नागेश्वरी और विषहरी मानी जाती है। इसकी पूजा स नाग भय दूर हो जाता है। इसी कारण से हिन्दू लोग मनसा देवी की पूजा करते हैं।

राखी पूर्णिमा—श्रावण की पूर्णिमा का मेवाड के राजपूत लोग इस उत्सव को मनाते हैं। जनसाधारण के विश्वास के अनुसार राखी बाधन का अधिकार केवल स्त्रिया तथा धमयाजको को ही है। राजपूता की स्त्रिया जिसको अपना भाई बनाना चाहती है उसको अपनी सखियो अथवा कुल पुराहित के हाथ राखी भिजवाती हैं। राखी पाने वाले अपनी हैसियत के अनुसार अपनी धम बहिन को धन सम्पत्ति तथा वस्त्र देते है। समूचे राजस्थान म राखी बधन का एक पवित्र और दृढ सम्बन्ध माना जाता है।

जन्माष्टमी—भादो कृष्ण अष्टमी को श्रीकृष्ण भगवान का जन्म दिवस माना जाता है। समस्त हिन्दू इस दिन का अत्य त पवित्र मानकर भगवान कृष्ण की पूजा करत है तथा व्रत अथवा उपवास रखत है। भादो कृष्ण तृतीया का ही राणाजी अपन सरदार साम ता के साथ चौगान महल चले जाते है और फिर अष्टमी तक वहा धूमधाम के साथ कृष्ण की पूजा होती रहती है। अष्टमी के दिन घर घर उत्सव मनाया जाता है।

खड्ग पूजा—नवरात्रि उत्सव के दिना म राजपूत लोग खड्ग की पूजा करते हैं। यह उनके समर देवता की पूजा का उत्सव है। आश्विन शुक्ल की प्रतिपदा से यह उत्सव शुरू होता है। प्रात काल हात ही खड्ग पूजा शुरू हो जाती है और राणा उपवास करते हैं। गुहिलोत वश की प्रसिद्ध दुधारी तलवार को शस्त्रागार से बाहर निकाला जाता है और विधिपूवक उसकी पूजा की जाती है। इसके बाद इस खड्ग को कृष्ण पौर नामक तोरण द्वार पर ले जाया जाता है। वहाँ भगवती अष्टभुजा का

मंदिर है। खड्ग को देवी के सामने रख दिया जाता है। तीसरे पहर देवी के सामन एक भैंसे की बलि दी जाती है और फिर नियमित रूप स खड्ग की पूजा होती है। इस त्योहार का सिलसिला लगातार ग्यारह दिनो तक चलता है। प्रतिदिन भैंसा तथा बकरा की बलि दी जाती है। दशमी तिथि का विशेष महत्व है। ग्यारहवें दिन सामरिक व्यापार कुछ अधिकता मे होता है। प्रत्येक व्यापारी अपनी अपनी दुकान सजाता है।

गणेश पूजा—इस त्योहार का महत्व समूचे देश म है। कोई भी हिन्दू गणेशजी का नाम लिये बिना किसी शुभ काय का आरम्भ नही करता है। वीर लोग भी उन्ही को मनाते हैं इसलिये भी अपने बही खाते म पृष्ठ के ऊपर उनका नाम लिखते हैं। घर अथवा मंदिर बनाने के समय भी उनकी प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया जाता है। राजस्थान मे राजपूतो का ऐसा कोई घर नही दिखाई देगा जिसके द्वार की चौखट पर अथवा किवाड म गणेश की मूर्ति नही बनी होती है। गणेश की पूजा के साथ उनके वाहन चूहा की भी पूजा की जाती है। इन त्योहारो के सम्बन्ध म अनेक प्रकार के विश्वास हिन्दू समाज म पाये जाते हैं। राजपूत लोगो इन विश्वासो को और भी अधिक महत्व देते हैं। जसे खड्ग पूजा के बारे मे राजपूतो का विश्वास है कि भगवती चतुर्भुजा ने विश्वकर्मा से निर्माण कराकर यह खड्ग बाप्पा रावल को दिया था। तब से यह खड्ग गुहिलोत वश के पास है।

लक्ष्मी पूजा—कार्तिक शुक्ल की पूर्णिमा को राजपूत लोग भक्ति के साथ सौभाग्यदायिनी लक्ष्मी की पूजा करते है। वसे इस त्यौहार का सम्बन्ध वश्य लोगो मे अधिक है।

दीपावली—कार्तिक की अमावस्या को दीपावली का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन रात्रि के समय स पूरे देश मे दीप जलाकर प्रकाश किया जाता है। गाँव स लेकर बडे बडे नगरो तक—दीपावली का त्यौहार बडी धूमधाम से मनाया जाता है। राजा से लेकर निधन भिखारी तक भी अपने अपने निवास स्थान पर दीपक जलाते हैं। मेवाड मे सभी लोग इस दिन नवेद्य लेकर लक्ष्मी के मंदिर मे जाते है और देवी की पूजा करते हैं। राजपूत लोग दीपावली के दिन जुआ भी खेलते हैं। जनसाधारण का विश्वास है कि आज के दिन जिसकी जीत होती है उसके लिये पूरा वर्ष लाभदायक सिद्ध होता है।

भाई दूज—दीपावली के बाद ही भाई दूज (भ्रातृ द्वितीया) का उत्सव होता है। कहा जाता है कि इस दिन सूर्य की पुत्री यमी ने अपने भाई यम को बुलाकर अपने यहाँ भोजन कराया था। इसी आधार से इस उत्सव की शुरुआत हुई है। हिन्दू शास्त्रो मे लिखा है कि जो स्त्री कार्तिक शुक्ला द्वितीया को अपने भाई को

अपने घर भोजन कराती है, उसे कभी वैधव्य का दुःख नहीं भोगना पडता और उसका भाई भी दीर्घायु होता है ।

अन्नकूट—श्री कृष्ण की पूजा से सम्बन्धित सभी उत्सवो मे अन्नकूट का महत्व अधिक है। नाथद्वारा मे यह उत्सव विशेष धूमधाम से मनाया जाता है। समृद्धि के दिनो मे अन्नकूट उत्सव के समय राजपतो के चार प्रधान राजा नाथद्वारा मे आकर अमूल्य मणिरत्न दान करत थे। जनसाधारण भी पीछे नही रहता था। एक बार सूरत की एक विधवा स्त्री ने 70,000 रुपये ठाकुरजी को चढाये थे ।

मकर सक्रांति—कार्तिक मास की सक्रांति का दिन भी पवित्र माना जाता है। इस दिन भी राणा अपन सामन्त सरदारो के साथ चौगान महल जाता है। सरदारो के साथ घोडे पर चढकर उस दिन राणाजी गोलक नामक खेल करते हैं। (टॉड साहब ने भ्रमवश इसको मकर सक्रान्ति समझ लिया है। मकर सक्रान्ति प्रति वर्ष 14 जनवरी को पडती है, जब सूर्य मकर राशि मे प्रवेश करता है।)

अध्याय 29

आचरण और व्यवहार

किसी भी राष्ट्र के आचरण और व्यवहार उसके इतिहास का अत्यधिक रुचिकर अंग होता है लेकिन उनकी सही जानकारी प्राप्त करने के लिए अत्यधिक श्रम और खोज की जरूरत होती है। राजपूतों के व्यवहार और आचरण का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिये अत्यधिक अध्ययन और साधना की जरूरत है ताकि उनके सिद्धान्तों और नैतिक आचरणों को ठीक से समझा जा सके। राजपूतों ने जीवन के बारे में जो सिद्धान्त अपना लिये थे उनका पालन वे अपने जीवन में भी करते थे। युद्ध के समय अथवा युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद अपने शत्रुओं के साथ भी उन सिद्धान्तों और व्यवहारों को लागू करते थे। बाप दादों की चाल छोड़ देने वालों से वे घृणा करते हैं और कहते हैं कि "कैसी बुरी चाल चलते हो, बाप दादों की चाल छोड़ दी।" कुछ जातियों के अलावा और सब जातियों का धर्म समान है। मनु मुहम्मद और ईसा—इन सभी का धर्म एक मूल अर्थ का बोधक था। वे मनुष्य को जीवन के एक ही मार्ग पर ले जाने के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन मे प्रयत्नशील रहे। उनके अनुयायियों ने अपना अपना प्रभुत्व कायम करने के लिये नये नये सम्प्रदायों तथा रास्तों का प्रचार किया लेकिन मौलिक बातों मे सभी एक हैं। एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। सभी ने एक ही सत्य का प्रचार किया है। हजरत मूसा के सिद्धान्तों के आधार पर कुरान का जन्म हुआ और मनु के द्वारा जो मनुस्मृति तैयार की गई उसमें यहूदी विश्वासों का पुट था।[1] इन सभी सम्प्रदायों से एक-दूसरे के विरोधी आचरणों को हटा दिया जाये तो इनके मूल सिद्धान्तों मे किसी प्रकार की भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है। सभी ने एक ही सत्य का प्रतिपादन किया है और उसी सत्य से मनुष्य को नैतिक प्रकाश मिलता है। उस सत्य से मनुष्य समाज विभाजित नहीं होता, जातीयता की उत्पत्ति नहीं होती और एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विरोधी नहीं बनता। जीवन के नियमों और व्यवहारों की असमानता ने सबको अलग अलग कर दिया है और अलग अलग संगठन देखने मे आते हैं। इस प्रकार के अन्तर दूरवर्ती देशों में ही नहीं अपितु एक ही देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोगों के आचरण और व्यवहारों में भी देखने को आते हैं। राजस्थान में अनेक राज्य हैं और जीवन के नियमों व्यवहारों और सिद्धान्तों की दृष्टि से उनमें काफी अन्तर है।

मेवाड और मारवाड पडौसी राज्य हैं पर तु सीसोदियो और राठौडो के जीवन दशन मे समानता नही है । यहा हम उनके जीवन के वही वृत्ता त देना चाहत हैं, जिनको इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत करता है और जिनकी प्रामाणिकता मे स देह नहा किया जा सकता । उ ही के आधार पर राजपूतो के चरित्र का निर्माण भी हुआ है। पर तु उनके चरित्र को समझने के लिये उनके पूवजो के उन चरित्रो और विश्वासा का अध्ययन करना होगा जिनसे उनके व्यक्तिगत और सावजनिक जीवन का स्रोत प्रवाहित हुआ है । विख्यात विचारक गोगेट का कहना है कि मनुष्य का व्यवहार और आचरण ही उमकी उ नति और अवनति का सूचक होता है । इस हिसाव स देखें ता हमे मानना पडेगा कि राजपूतो का पतन हुआ है । उनके पूवज यूनानियो क समान उन्नत थे । उनके जीवन मे बहुत सी अच्छी वाता की सृष्टि हुई थी जिसकी वजह से राजपूत लोग बहुत समय तक सजीव और शक्तिशाली बने रह ।

राजस्थान मे स्त्रियो को जो सम्मान दिया गया है, वैसा किसी दूसरे देश म नही दिया गया है । दुर्भाग्यवश यूरोपीय ससार मे उच्चकुल की महिलायें स्वभाव स अ त पुर मे ब द रही हैं । समाज के ऊपर उनकी प्रभुत्वशक्ति कहा तक पहुँची है, उसका मूल्याकन करना कठिन काम है । राजपूतो मे स्त्री का स्थान बहुत ऊचा रहा है । वे स्त्री को लक्ष्मी और देवी का रूप मानते हैं । यहा के लागो का विश्वास है कि स्त्री के द्वारा पुरुप को सुख और शान्ति मिलती है । मानव जीवन मे घर का विशेप स्थान है और इस घर की रचना स्त्री के द्वारा होती है जिसे "गहिणी" कहा जाता है । वही इस घर की अधिकारिणी मानी गई है । हिन्दू धमग्र थो[2] मे लिखा है कि वह घर घर नही कहलाता जिसमे स्त्री नही होती । ससार के सभी रत्नो में स्त्री को सवश्रेष्ठ रत्न माना गया है । जीवन मे भी स्त्री को प्रधानता दी गई है। स्त्री विरोधी व्यक्ति को जीवन के किसी भी क्षेत्र मे पूण सफलता नही मिलता। राजपूत समाज इस सिद्धान्त मे विश्वास रखता है और अपन जीवन म स्त्री को पर्याप्त सम्मान देता है ।

प्राचीन जमनी और स्कण्डीनविया के पुरुपो की भाति राजपूत लाग भी अपने प्रत्येक काय मे स्त्रियो से सलाह करते हैं । प्राचीन काल मे यहूदी लोग स्त्रिया को घरो मे ब द नही रखते थे । राजस्थान म साधारण और नीच जाति की स्त्रिया घर के कामकाज के लिए बाहर कुओ से पानी भर कर लाती थी और वहा जाकर पुरुपो के साथ वातचीत भी करती थी । ऐस अवसरो पर कभी कभी वे अपना पति भी चुन लेती थी । इसी प्रकार, प्राचीन यहूदी लडकियाँ भी जल लान के समय म विवाह सम्ब ध तय कर आती थी । काला तर मे नील नदी के किनारे रहने वाला मानव समूह पृथक हो गया और वहाँ (मिस्र मे) स्त्रिया को अ त पुर म रखने की रीति प्रचलित हुई । इस रीति के प्रचलन से समाज के ऊपर स्त्रियो का प्रभाव लोप हो गया । स्त्रियो का सम्मान यदि सभ्यता का लक्षण है तो राजपूत जाति सवश्रेष्ठ

है। राजपूत स्त्रियो का जीवन घरो के भीतर बहुत कुछ सीमित है, फिर भी उनके जीवन मे दासता जसी कोई बात नही है।

राजपूत स्त्री पति की आज्ञाकारिणी होकर पति की प्रत्येक याययुक्त आज्ञा का पालन करती है। दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने का यह सवश्रेष्ठ उपाय है। स्त्रिया अपने पति और ससुर कुल के प्रति सदा शिष्ट और सुशील सिद्ध हो इस उद्देश्य के निमित्त राजपूत अपनी पुत्रियो का विवाह ऊँचे और सम्पन्न घरानो मे करते है। उनमे यह प्रथा बहुत लम्बे समय से चली आ रही है। यदि ससुराल पक्ष पितृ पक्ष से हीन हो तो लडकी के व्यवहार म अशिष्टता आन की आशका रहती है। ऐसा ही एक उदाहरण लिखते है। मेवाड के राणा ने अ या य राजाओ को छोडकर अपनी लडकी का विवाह सादडी के सरदार के साथ कर दिया। वह सरदार राणा का ही एक सरदार था। विवाह के बाद राजकन्या ससुराल आ गई। एक दिन सयोगवश सादडी सरदार ने राजकन्या से पीने के लिये पानी मागा। उत्तर मे राजक या ने कहा कि सैकडो राजाओ के स्वामी राणा की पुत्री सादडी जैसे साधारण सरदार को पानी का पात्र देने वाली नही हो सकती। पत्नी के इस अहकार भरे उत्तर को सुनकर सादडी सरदार ने तत्काल आदेश दिया कि यदि तुम से मेरा कुछ भी उपकार नही होता तो तुम इसी समय अपने पिता के यहाँ चली जाओ।' इसके बाद सरदार ने अपने एक दूत के साथ अपनी पत्नी को राणा के यहा भिजवा दिया और दूत से कहा कि वह राणा को सारा वृत्ता त भी सुना दे। कुछ दिना बाद राणा ने अपने जामाता को बुलवा भेजा और उसका पर्याप्त मान सम्मान किया तथा उससे कहा कि अब अपनी पत्नी को ले जाओ। वह कभी तुम्हारी आज्ञा का उल्लघन न करेगी। ऐसा ही हुआ।

राजपूतो मे पति और पत्नी के मध्य का व्यवहार पूणत आदश का प्रतीक है। दाम्पत्य जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिये पति का सम्मान और स्त्री का अनुराग आवश्यक है और यह बात राजपूतो के जीवन मे देखी जा सकती है। पति और पत्नी का यह आदश किसी भी देश म और किसी भी समय मे मानव समाज का सुखी एव स तोषपूर्ण बना सकता है। ऐसा आदश राजपूत स्त्रिया मे आज भी विद्यमान है और उतना अन्यत्र कही देखने को नही मिलेगा। पति के प्रति एक राजपूत स्त्री म जो अनुराग है, वसा ससार के इतिहास म कही नही मिलेगा। यह अनुराग उनके जीवन म कभी कम नही होता। स्त्रिया की रक्षा मे जहा राजपूत अपन प्राणो की बाजी लगाने को उद्यत रहता है, वही राजपूत रमणी भी ऐसे अवसर पर अपने प्राण उत्सग करन मे पीछे नही रहती। मनु स्मृति म स्त्री के सम्ब ध म बहुत सी प्रशसनीय बातें लिखी गई हैं। उसम साफ साफ लिखा है "स्त्री का मुख जितना सु दर होता है, उतना ही वह पवित्र भी होता है। स्त्री का जीवन गगा के जल और सूय की किरणो के समान स्वय पवित्र है और दूसरा मे

मे यहा के नासक चन्देलवंशी परिमाल ने नष्ट कर दिया। अपने सैनिकों की हत्या का बदला लेने के लिये पृथ्वीराज ने अपनी सेना सहित परिमाल के राज्य पर आक्रमण कर दिया। सिरसा[3] नामक स्थान पर परिमाल की सेना बुरी तरह से पराजित हुई। जब परिमाल को मालूम हुआ कि पृथ्वीराज की सेना महोबा की तरफ बढने वाली है तो उसने अपनी पत्नी मालिनी देवी से परामर्श किया और उसकी सलाह से एक दूत पृथ्वीराज के पास भेज कर कहलाया कि हमारे दो सरदार अनुपस्थित है अत आप एक महीने तक युद्ध विराम का पालन करें। दूत से यह सदेशा मिलने पर पृथ्वीराज ने परिमाल की प्रार्थना स्वीकार कर ली और एक महीने तक आक्रमण न करने का वचन दिया।

दूत के जाने के बाद पृथ्वीराज ने अपने कवि चन्द से पूछा कि आल्हा और ऊदल नामक दोनो सरदार कौन हैं और वे महोबा छोडकर क्यो चले गये है? कवि चन्द ने उसे बताया कि परिमाल की सेना का सेनापति वत्सराज नामक पराक्रमी योद्धा था। एक बार किसी बाह्य शत्रु ने महोबा पर आक्रमण किया। राजा परिमाल राजधानी छोडकर भाग गया। परन्तु वत्सराज ने डट कर शत्रु का सामना किया और अन्त मे उसे पराजित करके खदेड दिया और परिमाल को वापस बुलाया। इसी वत्सराज के दो पुत्र हैं—आल्हा और ऊदल जिनका लालन पालन रानी मालिनी देवी ने बडी सावधानी के साथ किया। बडे होने पर दोनो को कालिंजर दुर्ग की सुरक्षा का भार सौपा गया। एक दिन राजा परिमाल कालिंजर गये। आल्हा के पास एक बहुत ही अच्छी नस्ल का घोडा था। राजा ने आल्हा से उस घोडे की माग की। राजपूतो को अपना घोडा बहुत प्रिय होता है। अत आल्हा ने अपना घोडा देने से मना कर दिया। इससे परिमाल को बहुत क्रोध आया और उसने दोनो भाइयो को तत्काल अपने राज्य से चले जाने का आदेश दिया। दोनो भाई महोबा छोड कर कन्नौज चले गये। वहा के राजा ने उन्हें सम्मानपूर्वक अपनी सेवा मे रख लिया। तब से दोनो भाई कन्नौज मे ही है।

रानी मालिनी ने तत्काल अपना एक विशेष दूत आल्हा और ऊदल को लाने के लिये कन्नौज भेज दिया। दूत ने जाकर दोनो भाइयो को रानी का सदेश दिया और उन्हें बताया कि इस समय महोबा सकट मे फसा हुआ है। सिरसा के युद्ध मे नरसिंह और वीरसिंह नामक दोनो पराक्रमी सरदार मारे जा चुके है और राजा की प्रार्थना पर पृथ्वीराज ने एक महीने तक आक्रमण न करने का वचन दिया है। जिस रानी ने आपका इतने स्नेहपूर्वक पालन किया है उसी ने आप लोगो को इस विपत्ति से उबारने के लिये बुलाया है। दूत की बात को सुनकर आल्हा ने कहा कि राजा परिमाल ने हमे देश छोडने का आदेश दिया और हमने उसकी आज्ञा का पालन किया। परिमाल आदेश देते समय यह बात क्या भूल गया था कि बाह्य आक्रमण के समय वह राज्य छोडकर भाग गया था और मेरे पिताजी ने शत्रु को परास्त कर

उसका राज्य उसे वापस लौटाया था। हमने देवगढ और चादवारी को जीत कर महोवा का राज्य बढाया। यादुना को परास्त किया और हिंडौन का विध्वस किया।[4] कच्छवाहो की विजयी सेना को रोका। गया के युद्ध मे विजय प्राप्त की और पुरस्कार मे राजा परिमाल ने हमे देश निकाला दिया। अब महावा जाना सम्भव नहीं है। इस पर दूत ने पुन निवेदन किया कि आप ठीक कह रहे है। पर तु इस समय प्रश्न परिमाल का नही है प्रश्न महावा की प्रतिष्ठा का है, आपकी मालिनी दवी का है, जिसे आप मा कहते है। दूत की बातें आल्हा की मा देवला देवी भी सुन रही थी। वह चुप न रह सकी। उसने अपने पुत्रो की तरफ दखकर दूत स कहा 'सक्ट म एस शत्रु की सहायता करना भी राजपूत का धम होता है। मै नही समझ पाई कि मेरे पुत्र राजपूतो की मर्यादा के विरुद्ध इतनी बातें कैसे कह गये। जिस महोबा का विनाश होन जा रहा है उसी महोवा न मेरे परिवार का पालन किया है। हमने वहा का नमक खाया है। ऐसे समय मे वहा के लागो की सहायता न करना राजपूतो क धम के विरुद्ध होगा। यदि मै आज पुत्रहीन होती तो मुझको इतना दु ख न होता जितना इस समय हो रहा है।'

आल्हा और ऊदल न अपनी माता के वचन सुने। उ होने दूत स कहा अब आप जाइये। महोबा की रक्षा के लिये मा का आदेश मिल चुका है।" इसके बाद दोना भाई महोवा जाने की तैयारी करने लगे। उन्होने कन्नौज के महाराजा से महोवा जाने की इजाजत मागी।[5] राजा न भी उनको महावा जाने की सलाह दी। दोनो भाई अपने सैनिको सहित दूत के साथ महोवा के लिये चल पडे। माग म बहुत से अपशकुन हुए जिनकी वजह से दूत घवरान लगा। जब दोनो भाइयो को दूत की घबराहट का कारण मालूम हुआ तो आल्हा ने कहा कि 'राजपूतो के जीवन म शकुन और अपशकुन का कोई प्रभाव नही पडता। जो युद्ध के लिये प्रस्थान करता है वह अपनी मृत्यु की बात पहले से ही मानकर चलता है। इसलिये उसके सामने अप शकुन का क्या अर्थ है।"

आल्हा, ऊदल और उनकी माता महोवा पहुच गये। मालिनी देवी न जब उनके आने का समाचार सुना तो उसन तुर त देवलादेवी को अपन महल म बुलाया और उसका उचित सम्मान किया। आल्हा-ऊदल को आशीर्वाद दिया तथा दूत को पुरस्कार मे चार ग्राम प्रदान किय' आल्हा ऊदल के आन का समाचार पृथ्वीराज के शिविर मे भी जा पहुचा। कवि चन्द ने पृथ्वीराज को सलाह दी कि परिमाल को आक्रमण न करन की जो अवधि दी गई थी वह समाप्त हो गई है। अब एक दूत भेजकर उसे कहलवा दीजिये कि या तो युद्ध के लिय तैयार हो जाये अथवा महोबा खाली करके चला जाय। प्रत्युत्तर मे पृथ्वीराज न कहा कि अवधि समाप्त होन क सात दिन बाद तक आक्रमण करना धमविरद्ध होगा। यह राजपूता की पुरानी मर्यादा है। सात दिन बाद पृथ्वीराज न परिमाल के पास अपना दूत भेजा। परिमाल

ने कहला भेजा कि महीने के प्रथम रविवार को मै युद्ध के मदान पर चौहानराज से अवश्य मिलू गा। इसके बाद दोनो पक्ष अपनी तयारियों मे लग गये।

राजपूतो का यह विश्वास है कि समरभूमि मे जो मनुष्य प्राण त्याग करते है, उन्ह स्वग की अप्सरा बडे आदर से आकर ले जाती है। च द कवि न इस अवसर पर वीर और अप्सराओ के सजने का विस्तृत वणन किया है। कवियो के इन ग्रन्थो का राजपूत लोग बडे मनोयोग से अध्ययन करते है और उन बातो मे पूरा विश्वास भी रखते हैं। वे मानते हैं कि वास्तव मे स्वग की अप्सराए वीरगति प्राप्त करन वालो के स्वागत मे तयार रहती है।

युद्ध के पहले परिमाल ने अपने सभी सरदारो के साथ पुन विचारविमश किया। इस अवसर पर मालिनीदेवी ने कहा कि पृथ्वीराज के पास विशाल सेना है। परिणाम उसके पक्ष मे रहेगा। ऐसी स्थिति मे हम सभी को महोबा छोडना होगा। यदि चौहानराज के साथ सधि कर ली जाय तो सभी झगडा का अन्त हो जायगा। इस पर आल्हा न कहा कि 'दुष्परिणाम के भय से जो राजपूत अपन कत्तव्य का पालन नही करता वह राजपूत कहलाने का अधिकारी नही है। महोबा के गौरव की रक्षा के लिये हमेयुद्ध करना ही चाहिए। यह हमारा नतिक धम है। यदि हम इसका पालन नही करेंगे तो राजपूती मर्यादा के विनाश के दायी होगे।' देवलादेवी न भी अपन पुत्र की बातो का समथन किया। अन्त मे युद्ध लडन का निश्चय किया गया।

आल्हा ऊदल युद्ध म जान के लिये तैयार थ। उस अवसर पर उन दोनो की पत्नियो ने आकर उनसे कहा, "शत्रुओ का सहार करना राजपूतो का धम है। युद्ध म यदि वे वीरगति को प्राप्त होते हैं तो उनकी स्त्रियें अपने मृत पति के साथ सती होकर अपने धम का पालन करती है।' राजपूतो मे जितना शौय था, उतना ही उनकी स्त्रियो मे अपने धम के पालन का उत्साह था। राजपूत स्त्रियो की श्रेष्ठ मर्यादा का प्रमाण देने वाल अनेक उदाहरण इतिहास मे भर पडे है। अपन पिता को सिंहासनच्युत करने वाले औरगजेब के विरुद्ध राजपूतो न तलवार उठाई थी। राठौड राजा जसवन्तसिंह उसके विरुद्ध दक्षिण की तरफ गया था। नर्मदा के किनारे लडे गये युद्ध मे जसवन्तसिंह हार गया[6] और वह अपनी बची हुई सेना क साथ अपने राज्य मे पहुच गया। इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि जसवन्तसिंह का विवाह उदयपुर के राणा की लडकी के साथ हुआ था। राणा की पुत्री को जब मालूम हुआ कि उसका पति युद्ध मे पराजित होकर भाग आया है तो उसन उसको नही अपनाया और दुग के दरवाजे ब द करा दिये।

इतिहासकार बर्नियर न इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जब जसवन्तसिंह की रानी जो राणा की पुत्री थी को मालूम पडा कि उसका पति चार पाच सौ सैनिको के जीवित रहत रणभूमि से पीठ दिखाकर भाग आया है तो उसन

दुखित होकर महल के द्वार बंद करवा दिये और अपने पति को महल में नहीं घुसने दिया। उसने अपने पति के व्यवहार पर आक्षेप किया कि महाराणा के जामाता को यह याद रखना चाहिए था कि उनका सम्बन्ध एक श्रेष्ठ वंश के साथ हुआ है। अतः उनके लिये श्रेष्ठ कार्य करना ही उचित था। यदि जय न प्राप्त कर सके तो शत्रुओं से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त करते। क्रोधित रानी ने चिता तैयार करने की आज्ञा दी और जलती चिता में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने का निश्चय किया। राणा की पुत्री ने आठ-नौ दिन तक अपने स्वामी का दर्शन नहीं किया। जब इन सभी बातों की जानकारी उसकी माता को मिली तो वह तत्काल उदयपुर से जोधपुर आई और अपनी पुत्री को समझाया कि राजा जसवंतसिंह शीघ्र ही नई सेना एकत्र कर औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध के लिये प्रस्थान करेंगे। बर्नियर लिखता है कि यह उपाख्यान राजपूत नारियों के साहस और वीरता का उदाहरणस्वरूप है। माता के इस प्रकार विश्वास दिलाने पर रानी ने अपना अनशन समाप्त किया।

राजस्थान के इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। पृथ्वीराज चौहान ने जब कन्नौज के राजा जयचंद की पुत्री संयोगिता का हरण किया था, उसके विवरण में हम केवल वीराङ्गना संयोगिता का चरित्र ही नहीं बल्कि राजपूत रमणी मात्र का शुद्ध चित्र अंकित देखते हैं। जब संयोगिता ने स्वयंवर में उपस्थित राजाओं में से किसी एक के गले में वरमाला न डालकर द्वार पर प्रतिष्ठित पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में वरमाला डाली उस समय से उसका चरित्र किस प्रकार से चित्रित देखते हैं। उसके इस कार्य से पांच दिन तक राजपूतों में भयंकर युद्ध लड़ा गया जिसमें पृथ्वीराज विजयी रहा। इसके बाद पृथ्वीराज संयोगिता के प्रेम में डूबता गया। परन्तु जब गोरी ने भारत पर आक्रमण किया तो संयोगिता की प्रेम विलास की निद्रा भंग हो गई। उसने उसी समय से विलास वृत्ति को त्याग कर राजपूत वीरांगना के स्वाभाविक साहस और वीर भाव से अपने पति पृथ्वीराज को समर के लिये विदा किया। संयोगिता के जीवन की अनेक बातें उसके श्रेष्ठ चरित्र का परिचय देती हैं। गोरी के आक्रमण से पूर्व पृथ्वीराज ने एक बुरा स्वप्न देखा। उससे उसे चिंता हुई। तब संयोगिता ने कहा 'आप शूरवीर और बुद्धिमान हैं। शूरवीर राजपूतों को शकुन अपशकुन पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इस पृथ्वी पर कौन ऐसा है, जिसकी मृत्यु नहीं होती। अधिक समय तक निर्बल और अपमानित होकर जिन्दा रहने की अपेक्षा स्वाभिमान के साथ मर जाना अधिक श्रेष्ठ होता है।' इसके बाद चौहानराज का दरबार लगा और रणनीति तय करने के लिये सभी सरदारों से परामर्श किया गया। परामर्श के बीच में ही पृथ्वीराज दरबार छोड़कर संयोगिता से भी परामर्श लेने के लिये महल में जा पहुंचा। तब संयोगिता ने उससे कहा कि 'भला स्त्रियों से भी कोई परामर्श लेता है? पुरुषों का विश्वास है कि स्त्रियां मूर्ख होती हैं। वे सही बात भी कहती हैं तो पुरुष उसका महत्व नहीं देते। जबकि स्त्री स्वयं शक्ति का रूप है। ज्योतिषी ग्रहों की चाल के आधार पर मानव जीवन की बहुत सी

बातो को जान लेता है, पर तु उसके ग्र थो मे भी स्त्रियो को समझने की सामथ्य नही है। क्योकि पुरुपो ने स्त्रियो को समझने योग्य ही नही समझा है। फिर भी स्त्रिया पुरुपो के सुख-दु ख का हमेशा ध्यान रखती हैं। सकट की स्थिति मे भी वह पुरुप का साथ नही छोडती। स्त्रिया यदि सरोवर है तो पुरुप राजहस है।" उस अवसर पर सयोगिता ने इस प्रकार की बातें किस अभिप्राय से कही, समझ मे नही आता। क्योकि वह अपना परामश तो पहले ही दे चुकी थी। फिर दुबारा उससे पूछने का क्या अभिप्राय था ?

पूरी तयारी के साथ दिल्ली की सेना गोरी के विरुद्ध चल पडी। सयोगिता न स्वय पृथ्वीराज को अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित कर विदा किया। दोनो पक्षो मे घमासान युद्ध हुआ जिसमे हजारो सनिक मारे गये। पृथ्वीराज पकडा गया और मारा गया। सयोगिता ने चिता तैयार करवाई और अपने मृत पति के साथ उस चिता मे बैठकर सयोगिता न अपन प्राण उत्सग कर दिये।[7]

अग्रेजी साहित्य मे लुकेशिया नामक युवती का चरित्र चित्रण प्रशसा के योग्य है। ठीक उसी प्रकार की घटना गानोर की रानी के जीवन म मिलती है। गानोर की रानी न शत्रुओ के प्रबल आक्रमण से अपने पाच दुर्गो की रक्षा की और इन पाचो स्थानो पर उसने असीम साहस और शौय का प्रदशन किया। इसके बाद उसने नमदा नदी के किनारे वाले दुग का आश्रय लिया। पर तु उसी समय शत्रु सेना आ पहुची। रानी के पास उस समय काफी कम सेना थी इसलिये शत्रुओ ने आसानी के साथ उस दुग पर अधिकार कर लिया। उन्ही के वशज अब भोपाल पर शासन करते हैं। शत्रुओ का सेनापति खान रानी के सौन्दय पर मोहित हो गया और उसन रानी को सदेश भिजवाया कि आप हमारे निवेदन को स्वीकार कर हमारे साथ इस राज्य पर शासन करें। अन्यथा इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। रानी ने सदेशा सुनकर खान को कहला भेजा कि वह सेनापति की वीरता से प्रभावित है और अपना सवस्व उसको सौपने के लिये तैयार है। पर तु सभी काम विधिपूवक होने चाहिए। मुझे विवाह की तयारी के लिये दो घटे का समय चाहिए। विवाह का आयोजन दुग म ही होगा। तयारी होते ही म खान को बुलवा भेजू गी।

उस थोडे स समय म ही विवाह की समस्त तयारिया हो गईं। मगल ध्वनि और मधुर बाजे बजने शुरु हो गये। रानी न वर के लिये मूल्यवान आभूपण और वस्त्र भेजे तथा खान को कहला भेजा कि हमारी रीति के अनुसार आपको यही पहन कर विवाह के लिये आना चाहिए। सेनापति खान तो प्रसन्नता क मारे सभी बातें भूल गया। उसे केवल रानी की मूर्त्त ही दिखलाई द रही थी। खान न वर के पहनने योग्य समस्त वस्त्राभूपणो को पहन लिया और रानी का बुलावा आने ही विवाह

खडी हो गई। शूकर उस स्त्री को पकडने की कोशिश करने लगा। तब वह स्त्री वृक्ष के चारो ओर घूमने लगी। शूकर भी उसके पीछे पीछे चक्कर लगाने लगा। अन्त मे उस स्त्री ने अपने दानो हाथो से शूकर की गर्दन को इस प्रकार पकड लिया कि वह अपनी गर्दन ही न घुमा सका। इसी समय उस स्त्री ने एक सैनिक को जाते हुए देखा। उसने चिल्लाकर उस सैनिक को सहायता के लिए पुकारा। सैनिक ने वहा पहुचकर अपने दोनो हाथो मे शूकर को पकड लिया। स्त्री दो चार कदम ही भाग पाई थी कि सैनिक ने आवाज लगाकर कहा कि इस बलशाली शूकर को काबू मे रखना मेरे लिए कठिन है। स्त्री तेजी से अपने खेत की तरफ गई और अपने पति की तलवार लेकर वापस आई और शूकर पर जोरदार प्रहार किया जिससे वह घायल होकर गिर पडा और सैनिक को मुक्ति मिली। राजपूत स्त्रियो के साहस और पराक्रम के इस प्रकार के कई उदाहरण पाये जाते है।

ऐसा ही एक उदाहरण जैसलमेर का है। यह राज्य मरुभूमि की सीमा पर है। इस राज्य की एक जागीर थी पूगल, जहा का राजा था नरसदेव। उसका उत्तराधिकारी पुत्र साधु के नाम से विख्यात था। साहसी और शूरवीर होने के साथ साथ वह अत्याचारी भी था। इसलिये उसका आतंक दक्षिण मे सिंध नदी तक और पश्चिम मे नागौर तक व्याप्त था। लूटमार करना ही उसका काम था। एक बार लूटमार करता हुआ वह माणिकराव की राजधानी अरिन्त नगर की ओर चला गया। माणिकराव को जब पता चला कि साधु अपने साथियो सहित इधर से जा रहा है तो उसने अपना दूत भेज कर साधु को अपने निवास पर आमंत्रित किया। माणिकराव के कर्म देवी नामक एक युवा सुन्दर कन्या थी। कर्म देवी ने साधु की शूरवीरता सुन रखी थी और वह उसे मरुभूमि का सर्वश्रेष्ठ अश्वारोही मानती थी। अब कर्म देवी ने उस शूरवीर को अपनी आँखो से देखा। माणिकराव ने उसका विवाह मंडौर के राठौड वंश मे करना तय कर रखा था। परन्तु कर्म देवी ने साधु के साथ ही विवाह करने का संकल्प कर लिया। उसने अपने पिता को अपना संकल्प बताया। माणिकराव ने उसका विरोध न करके साधु के साथ उसका विवाह करने का निश्चय कर लिया। यद्यपि उसने यह अनुमान लगा लिया था कि इससे राठौड अप्रसन्न होंगे और दुष्परिणाम भुगतने पडेंगे।

माणिकराव ने साधु के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे उसने स्वीकार कर लिया। विवाह का दिन निश्चित हो गया और साधु अपने साथियो सहित घर लौट गया। दोनो तरफ विवाह की तैयारियाँ होने लगी। निश्चित दिन दोनो का विवाह हो गया। माणिकराव ने दहेज मे बहुत सा सामान और तरह दासियाँ दी। इस विवाह का समाचार मंडौर भी पहुचा। युवराज अरण्य कमल जिसके साथ कर्म देवी का विवाह पहले तय हो चुका था ने भी इसको सुना। अपने इस अपमान से वह क्रोधित हो उठा और उसने चार हजार राठौड सैनिको को साधु के विरुद्ध भेजा। इनमे

कई लोग ऐसे थे जो साधु के अत्याचारा के शिकार बन चुके थे। उन्हे आज बदला लेन का अवसर जान पडा।

माणिकराव जानता था कि राठौड माग मे उपद्रव करेंगे। अत उसने पुत्री और जामाता की रक्षा के लिये चार हजार सैनिक भिजवा दिये। परन्तु साधु न उन्हें वापस लौटा दिया और कहा कि आक्रमणकारी का सामना करने के लिये मरे पास सात सौ सनिक हैं। मैं सुरक्षित मरुभूमि पहुच जाऊगा। फिर भी, माणिकराव न पचास शूरवीरा को उनके साथ कर दिया। माग म चन्दन नामक स्थान पर साधु ने सभी के साथ विश्राम किया। इसी अवसर पर राठौड सेना वहा आ पहुची। उसक दूत न आकर साधु का अभिवादन किया और युद्ध के लिये अनुमति मागी। साधु ने सहज भाव से युद्ध का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। परन्तु उसन दूत से कहा कि मेरे साथ जो अफीम थी वह खो गई है। आप थोडी अफीम भिजवा दीजिये। फिर युद्ध करेंगे। दूत ने अपने शिविर म आकर अफीम भिजवा दी। साधु ने थोडी सी अफीम खाई और कुछ देर विश्राम किया। उठकर उसने अपने साथियो को तयार होने का आदेश दिया और स्वय भी अस्त्र शस्त्रो स सुसज्जित हुआ। दोनो तरफ से घमासान युद्ध लडा गया। कुछ दूरी पर खडे रथ मे बठी कम देवी अपने पति का पराक्रम देख रही थी और प्रसन्न हो रही थी। अनेक बार उसने अपने पति की जय जयकार की। काफी समय बीत गया। दोनो पक्षो की सेनायें थोडे समय के लिये पीछे हट गइ। अनेक सनिक मारे जा चुके थे। तभी साधु कम देवी के रथ के पास आया। उसके शरीर के कई घावा से रक्त बह रहा था। कम देवी ने मुस्करा कर उसकी प्रशसा की। साधु न कम देवी को बताया कि युद्ध की स्थिति उनके अनुकूल नही है। युद्ध पुन शुरू होने वाला है। अब मैं अन्तिम बार तुमसे विदा लेन आया हू। कम देवी न ओजस्वी शब्दो मे कहा कि राजपूत का गौरव उसके युद्ध की वीरता मे है। आज मैंन अपनी आखो से आपका पराक्रम देखा। मुझे आपकी विजय म पूरा विश्वास है। यदि आप युद्ध म मारे गय तो मैं यही पर चिता तयार कर आपके साथ ही स्वग चलूगी।

कम देवी से विदा लेकर साधु पुन युद्ध के लिए लौट आया। दूसरी तरफ अरण्य कमल भी साधु की तलाश म था। शीघ्र ही दोनो शूरवीर एक दूसर से उलझ पडे। साधु ने अपना भाला अरण्य कमल पर दे मारा। भाला उसकी गदन मे धस गया। परन्तु अरण्य कमल ने भी साधु पर भीषण प्रहार किया। कम देवी न देखा कि भाले के प्रहार ने उसके पति के मस्तिष्क का भेदन कर दिया है। इस भयकर प्रहार से साधु गिर पडा और उसके साथ ही उसके जीवन का अन्त हो गया। अरण्य कमल केवल मूर्छित ही हुआ। इसक साथ ही युद्ध बन्द हो गया। कम देवी चिता बनान की तयारी करने लगी। चिता पर चढन के पूव उसन अपन पक्ष के बचे हुए आदमियो के बीच म अपनी तलवार से अपनी बाईं भुजा को काट कर कहा, अपने

पति के पिता के पास मैं अपनी यह भुजा भेजती हूँ । उनसे कहना कि आपकी पुत्री ने अपने हाथ से काटकर यह भुजा भेजी है ।' फिर उसने अपनी दूसरी भुजा को काट कर कहा, 'विवाह का कंकण पहने हुए मेरी यह दाहिनी भुजा हमारे भट्ट कवि को दे देना ।' इसके बाद कर्मदेवी अपने पति के मृत शरीर के साथ चिता में भस्म हो गई । थोडे दिनों के बाद घायल अरण्य कमल की भी मृत्यु हो गई । इस प्रकार सैकडो लोगों के सर्वनाश के बाद कलह का अंत हुआ ।

परन्तु दोनों परिवारों मे प्रतिशोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी । साधु के पिता राजा नरगदेव ने अपने पुत्र की मृत्यु का बदला लेने के लिए जोरदार तैयारियाँ शुरू कर दी । ठीक उसी समय मडौर का राजा चण्ड भी नरगदेव के विरुद्ध युद्ध की तैयारी मे लगा हुआ था । दोनों के पुत्र मारे गये थे और दोनों अपने बेटों की मृत्यु का बदला लेने के लिये उतावले हो रहे थे । मडौर राज्य के अधीन सकल नामक जागीर के राजपूतों ने साधु के विरुद्ध लडे गये युद्ध मे अरण्य कमल का साथ दिया था । इसलिये नरगदेव ने पूगल की सेना के साथ सकल पर आक्रमण किया । उसके बहुत से सरदारों को मौत के घाट उतार दिया और लूट मे बहुत सा धन सम्पत्ति प्राप्त कर वापस पूगल की तरफ बढा । पूगल पहुंच पाता उससे पूर्व ही उसने देखा कि मडौर के राजा चण्ड ने अपनी विशाल सेना के साथ उसका रास्ता रोक दिया है । फिर क्या था । दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ । वृद्ध नरगदेव लडते हुए मारा गया । चण्ड की सेना ने युद्ध जीत लिया ।

नरगदेव के शेष बचे पुत्रों—तनू और महीर को अपने पिता की मृत्यु का गहरा आघात लगा और वे बदला लेने का उपाय सोचने लगे । चूंकि मडौर के राठौडों की तुलना मे वे काफी निर्बल हो चुके थे, अतः दोनों भाइयों ने मुसलमानों से सहायता लेने का निश्चय किया । इस समय बादशाह खिजर खां[8] मुल्तान में ही था । दोनों भाई उसके पास पहुंचे । इस्लाम धर्म को स्वीकार किया और बादशाह की एक सेना के साथ अपने पिता के हत्यारे से बदला लेने के लिए चल पडे । मार्ग में उन्हें जयशाल का राजकुमार कल्याण मिला । उसने दोनों भाइयों को सलाह दी कि राजा चण्ड को धोखे से मारना अच्छा रहेगा । तदनुसार तीनों ने मिलकर एक योजना बनाई । योजनानुसार राजकुमार कल्याण ने अपनी पुत्री का विवाह राजा चण्ड के साथ करने का प्रस्ताव चण्ड को भेजा । प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि यदि चण्ड को किसी प्रकार का संदेह हो तो वह अपनी पुत्री और दहेज के सामान के साथ नागौर आने को तैयार है । राजा चण्ड नागौर आकर विधिपूर्वक विवाह करने की कृपा करे । उन दिनों मे मारवाड राज्य की सीमा नागौर तक फैल चुकी थी । इसलिए चण्ड ने विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । षडयन्त्रकारियों ने जल्दी से पांच सौ रथ तैयार करवाये । प्रत्येक रथ मे पर्दे के भीतर सशस्त्र पूगल के

शूरवीरो को बठा दिया गया। रथा की रक्षा के लिय रथो के आगे चुने हुए अश्वारोही चले और रथो के पीछे सैकडो ऊँटो पर खाने पीने की सामग्री तथा दहेज का सामान और उसके पीछे उसकी रक्षा के लिए सैनिक चल पडे। दूसरी तरफ से राजा चण्ड भी अपनी बरात सजाकर चल पडा। नागौर के समीप चण्ड ने कन्या पक्ष के काफिले को देखा। निकट आने पर उसकी निगाह रथो पर गई और उसे स देह उत्पन हो गया। उसने तत्काल वहा से भागने का प्रयास किया। तभी रथो से सैनिक निकल पडे। उ हाने भागते हुए चण्ड को चारो तरफ से घेर कर मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार तनू और महीर ने धम का सौदा कर अपने पिता की हत्या का बदला ल लिया। इसके बाद वे पू गल को छोडकर आभोरिया के भाटियो के पास चले गये। अब तक उनके वशधर मूमान मुसलमान भाटी के नाम से विख्यात हैं। राजकुमार कल्याण पू गल का नया राजा बना।

हि दू जाति के इतिहास का प्रत्येक पन्ना स्त्रियो के प्रभाव से भरा पडा है। सीता के उद्धार के लिए राम को रावण का वध करना पडा। द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए महाभारत का युद्ध लडा गया। स्त्री के खातिर राजा भतृहरि ने अपना राजसिंहासन त्याग दिया। कन्नौज की सयोगिता के हरण से चौहानो और राठौडी मे कलह उत्पन्न हो गई और गोरी के विरुद्ध पृथ्वीराज को अकेले ही लडना पडा और अपने प्राणो की आहुति देनी पडी। यहा के इतिहास मे इस प्रकार के हजारों उदाहरण हैं। फिर भी, राजपूतो के शौय और विक्रम के बारे मे किसी को स देह नही हो सकता और जिसने यहा का सच्चा इतिहास देखा है, वह राजपूत स्त्रिया के श्रेष्ठ चरित्र की अवश्य प्रशसा करेगा। उनकी सुन्दरता और गुणो को कवि लोग आज तक गाते आ रहे हैं। वे शूरवीरो को अपना जीवन साथी बनाती थी और अपने पुत्रो को बचपन से ही शूरवीरता का पाठ पढाया करती थी। जितनी प्रशसा राजपूतो की करी जा सकती है, उतनी ही प्रशसा की पात्र राजपूत स्त्रिया भी हैं, इसमें किसी प्रकार का विवाद नही हो सकता।

स दर्भ

1 अधिकाश विद्वान टाड साहब के इस मत से सहमत नही हैं।

2 मनुस्मृति मे पत्नी के घरेलू व्यवहार के लिए विस्तृत नियम दिये हुये हैं।

3 यह स्थान दतिया के बु देल राज्य के अ तगत है।

4 उस समय हिंडोन बयाना के यादवो के अधिकार मे था। उनके वशज करौली पर शासन करते रहे।

5 इस समय कन्नौज का महाराजा जयचन्द था। वह पृथ्वीराज के समान ही वीर और पराक्रमी था।

6 धरमत के युद्ध में औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को पराजित किया था। जसवन्तसिंह मुगल सेना के साथ शाहजहाँ के आदेश से औरंगजेब के विरुद्ध गया था।

7 पृथ्वीराज का अन्त कैसे और कहाँ हुआ? यह काफी विवादास्पद है। इस लिये संयोगिता का पति के मृत शरीर के साथ सती होना भी संदिग्ध है।

8 खिज्रखां 1414 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था।

अध्याय 30

सामाजिक जीवन

अब हम राजपूता के चरित्र से सवधित अ य वाता का उल्लख करेंगे । उनम
सती प्रथा सबसे महत्वपूण है । प्राचीन राजपूत स्त्रियो म सती दाह की रीति
प्रचलित थी । इसम राजा दश प्रजापति की क या सती ही प्रधान आदश के स्थान
पर थी । राजा दक्ष ने एक महायन का आयोजन किया और उसम सम्मिलित होन
के लिय चारा दिशाआ के लोगा को आमन्त्रित किया पर तु अपन जामाता शिव
(महादेव) को नही वुलाया । दक्ष की क या सती को जब यह मालूम हुआ कि उसक
पिता एक वहुत वडा यन करने जा रहे हैं तो वह बिन बुलाय ही पिता क घर जा
पहुची । वहाँ राजा दश न भरी सभा म जामाता शिव की नि दा की । पतिव्रता सती
उन शब्दो का सहन न कर पाई और वही पर प्राण त्याग दिय । सती न राजा हिमालय
के घर म नया ज म लिया और पुन शिवजी को पति रूप म प्राप्त किया । राजपूत
स्त्रिया मे यह विश्वास है कि जो स्त्री अपन पति क लिय अपन प्राण उत्सग करती
है उस अगले ज म म वही मनुष्य पति के रूप म मिलता है । इस रीति का प्रचार
सबसे पहल शव लोगा न किया । उसक वाद दूसरे लागा म उसका प्रचार हुआ ।
प्राचीन समय म सीथियन जित अथवा जट जाति के लोगा म जब किसी वीर पुरुष
की मृत्यु होनी थी तो उसक मृत शरीर के साथ उसकी स्त्री उसके घोडे तथा अस्त्र-
शस्त्रा को चिता की अग्नि म जला दिया जाता था । वाद म यह प्रथा स्कण्डीनविया,
फिजियन फँक तथा सक्सन जाति के लोगा म भी प्रचलित हो गई । सती प्रथा क
वार मे यह विश्वास प्रचलित था कि इसम स्त्री न क्वल अपन पापा से छुटकारा पा
लती है अपितु उसका पति भी पापा से मुक्त हो जाता है और अगल ज म म उस
स्त्री को वही व्यक्ति पति के रूप म मिलता है । यह विश्वास वहुत पुरान समय स
चला आ रहा है । इस विश्वास के कारण स्त्रिया को सती होने म वल मिलता था
और यही कारण है कि वगाल की स्त्रियाँ जो विना कारण ही भयभीत हो जाती
थी, अपन पति के मृत शरीर क साथ सहज भाव स चिता की अग्नि म प्रवश कर
जाती थी ।

सती प्रथा के सम्ब ध म हि दू ग्र थो मे बडा मतभेद है। महर्षि वेद व्यास 'महाभारत'' म इस प्रथा का समथन करत हैं। पर तु मनु न इस प्रथा का समथन नही किया है। मनु स्मृति मे विधवा स्त्रिया के लिय बहुत सी नैतिक बातो का उल्लेख किया गया है। उसम लिखा है विधवा स्त्री अपने जीवन का केवल कदमूल ही खाकर बिता दे और अपन स्वामी के परलोक जाने पर भूल से भी वह दूसरे पुरुप का नाम न ले।'' एक ग्र य स्थान पर कहा गया है पति की मृत्यु के बाद जो साध्वी स्त्री पवित्र हाकर रहती है और धम का आचरण करती है अ त मे उसका स्वग प्राप्त होता है कि तु जो विधवा स्त्री फिर विवाह करके अपने मृतक पति की अवज्ञा करती है, इस लोक मे वह अपने को कलुपित कर अ त मे अपने पति के निकट स्थान से वचित रहती है।' हि दू समाज क प्रधान शास्त्रकार विधवाओ के पवित्र आचरण शुद्धता से रहना सासारिक इच्छाओ को त्यागना इत्यादि के बारे मे बहुत सी बातें लिख गये है लेकिन उनमे से किसी न सती प्रथा के निदय और अमानुपिक प्रेम का उपदेश नही दिया है। सती प्रथा सवथा प्रकृति के विरुद्ध और अमानुपिक निदयता है। इस प्रथा के साथ न तो धार्मिक दृढता है और न दाम्पत्य प्रेम है। यह तो एक ऐसी दासता है जो सती होने वाली स्त्रियो को स्वीकार करना पडता है।[1]

सती प्रथा से भी अधिक अमानुपिक प्रथा—क याओ को मारने की प्रथा राजपूतो मे व्याप्त थी। यद्यपि सती प्रथा की रीति समाज विधि और धमविधान के अनुकूल थी, इस बारे मे बहुत कुछ कहा जा सकता है पर तु नवीनज मा क या की हत्या कदापि धममगत नही हो सकती। राजपूतो मे यह रीति बहुत समय से चली आ रही थी। राजपूत स्त्रियाँ जिस प्रकार पति के गौरव की रक्षा के लिये चिता मे प्रवेश कर जाती थी, उसी प्रकार पिता के गौरव की रक्षा के निमित्त शिशु क या को ज म लेते ही प्राण छोडने पडते थे। ऐसा क्यो होता था इसको सावधानी के साथ समझने की आवश्यकता है। अपनी सतान के प्रति स्नेह होना, एक स्वाभाविक बात है। यह बात पशु पक्षिया मे भी पाई जाती है। फिर राजपूत लोग ऐसा नृशस काय क्यो करते थे? अ य देशो मे भी इससे मिलती जुलती नृशस रीतिया थी।" फ्रास के फ्रीजियन के लोगो, इटली के लोमावार्डी लोगो और स्पन के कुछ लोगो मे अपनी क याओ को जीवनपय त धमशालाओ म ब दी बनाकर रखने की प्रथा थी और इसी प्रकार की प्रथा गाथ लोगो मे भी रही थी। राजपूतो और जमनो मे स्त्रिया के अपवाद के भय से ऐसी प्रथाएँ प्रचलित रही। इन लागो को यह पस द न था कि उनकी स्त्री पर कोई अ य व्यक्ति अपना अधिकार जताय। प्राचीन काल मे इस प्रकार की प्रथाओ के विभिन्न रूप देखने को मिलत हैं और उन सबके कुछ निश्चित कारण थे।

इस समय शिशु क या वध की रीति दूर हो गई है पर तु इसका मूल कारण अभी तक दूर नहीं हुआ है। राजपूत जाति मे प्रचलित विवाह की रीति न इस प्रथा

को बढावा दिया है । राजपूत लोग अपनी शाखा और गौत्र मे विवाह नही कर सकते । यद्यपि छिन्न भिन्न शाखायें भिन्न भिन्न स्थानो पर आबाद हो चुकी हैं और उनके आदि पुरुषो के नाम भी लोप हो गये है, फिर भी ये लोग किसी प्रकार से भी आदि वश के साथ विवाह का सम्ब ध नही कर सकते । इसलिये प्रत्येक राजपूत अपनी अपनी कन्याओ के लिये भिन्न गोत्र मे सुयोग्य पात्र की खोज करते थे । यह काम काफी कठिन था । राजपूता के इतिहास मे सवनाश की जितनी दुघटनायें मिलती हैं, उनमे अधिकाश उनके विवाहो से सम्ब ध रखती हैं । उस सवनाश स सुरक्षित रहने के लिये राजपूत अपनी नवजात क या का मार डालत थ । क याओ को मारने के अनेक तरीके थे । अधिकाश लोग कया को अफीम खिलाकर मार डालते थे ।

जिन लडकियो का विवाह सकुशल हो जाता था, उसमे भारी धन खच हो जाता था । आपसी सघर्षो ने राजपूतो की आर्थिक परिस्थितियाँ शोचनीय बना दी थी । धन-अपव्यय के साथ साथ अनेक प्रकार की वैवाहिक कुरीतिया का प्रचलन भी था । उ ह सुधारने का कोई प्रयास नही किया गया और यदि किसी ने किया भी तो उसे सफलता न मिली । इसका मूल कारण राजपूतो म सगठन की कमी थी । सभी राजपूत स्वतन्त्र थे और स्वाभिमानी भी । वे सवनाश को सहन कर सकत थ पर तु किसी के आगे सिर झुकाने को तैयार न होते । कुछ लोगो न विवाह से सबधित कुरीतिया को दूर करने का प्रयास किया था । आमेर के राजा जयसिंह ने धन के अपव्यय पर नियत्रण लगाने का प्रयास किया था । उसने अपने समकालीन राजाओ के सामन प्रस्ताव रखा था कि कोई भी राजा अपनी मर्यादा के बाहर विवाह पर धन खच न कर और प्रत्येक राजा अपने साम तो को सुझाव दे कि व अपन एक वष की आमदनी से अधिक खच विवाहो मे न करे । उसने ऐसा प्रस्ताव इसलिय रखा था कि उस समय मे राजपूत राज्यो की आर्थिक स्थिति काफी शोचनीय हो चुकी थी । जयसिंह के इस प्रस्ताव का प्रभाव कवियो और भाटो की आजीविका पर पडा।[3] य लोग राजाओ सरदारा और साम तो की झूठी प्रशसाए कर उनसे काफी धन ऐंठ लेत थे। विवाह के समय पर तो उन्हे मनचाहा अवसर मिल जाता था । ये लोग कन्या के पूवजो की दानप्रियता का बखान कर कन्या के पिता को अधिक धन व्यय करन तथा दान पुण्य के लिय प्रोत्साहित करते थे । यदि क या का पिता उनकी उस प्राथना को पूरा न करता ता कविगण उसके अपमान की कविता बनाकर उसका तिरस्कार करते थे । इसी डर से सामथ्य न होने पर भी लडकी के पिता को अधिक धन खच करना पडता था । पृथ्वीराज के साथ अपनी कन्या के विवाह के समय मे दाहिमा ने अपना खजाना खाली कर दिया था । उस अवसर पर राजकवि को एक लाख रुपये पुरस्कार मे मिले थे । मेवाड के राणा भीमसिंह ने अपनी शोचनीय आर्थिक स्थिति के उपरान्त राजकवि का एक लाख रुपये दान म दिये थे । अधिक धन व्यय की रीति क

बढ जाने पास मे धन न होने पर राजपूत लोग कन्या को उत्पन्न होते ही मार डालते थे ।

सती प्रथा और कन्या वध के समान ही एक और भयानक प्रथा राजपूतो मे प्रचलित थी । यह प्रथा 'जौहर" के नाम से प्रसिद्ध थी । इसमे एक ही समय मे, सकडो और हजारो स्त्रियाँ तथा लडकियाँ अग्नि मे प्रवेश कर अपने प्राण उत्सर्ग कर देती थी । मेवाड के इतिहास मे जौहर का उल्लेख किया जा चुका है । अन्य देशो की तुलना मे राजपूत स्त्रियो का भाग्य अत्यन्त ही शोचनीय विदित होता है । जीवन के एक एक कदम पर मानो मृत्यु उनके सामने बाहे पसारे खडी हो । जन्म लेते ही बहुत सी मार दी जाती थी, जिनका विवाह होता उनमे से कइयो को कई कारणो से विष खाकर प्राण त्यागना पडता जो बच जाती उन्हे पति की मृत्यु पर चिता मे प्रवेश करना पडता और सकट उपस्थित होने पर सभी को जौहर की आग मे समा जाना पडता । राजपूत स्त्रियो का जीवन बलिदानो का जीवन था । बडे आश्चर्य की बात है कि जो सभ्य राजपूत स्त्रियो के सम्मान की रक्षा के लिये इतना यत्न करते थे, उन्होने अपनी जाति मे ऐसी व्यवस्था नही की जिससे युद्ध के समय मे स्त्रियो के ऊपर ऐसे अन्याय के अत्याचार दूर हो सकते थे ।

युद्ध का समय राजपूत स्त्रियो के लिये और भी भयानक होता था । आक्रमणकारी शत्रु विजय के बाद न केवल लूटमार करता था अपितु वह स्त्रियो को बन्दी बनाकर अपने यहा ले जाता था और उन्हे अपने सरदारो तथा सैनिको मे बाट देता था, ठीक वैसे ही जैसे कि धन सम्पत्ति का बटवारा किया जाता था । यह प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है । मनुस्मृति मे लिखा है, 'युद्ध के बाद कैद की गई लडकियो के साथ विवाह वैधानिक है ।" यहूदी लोगो मे भी ऐसी ही प्रथा थी । इस प्रकार के विवाह को राक्षस विवाह कहा जाता था । धर्मग्रन्थो मे लिखा है यदि आक्रमणकारी किसी स्त्री का अपहरण करे और उस स्त्री के चीत्कार करने पर कुटुम्बी और दूसरे सहायक लोग आक्रमणकारी द्वारा मार जाय और उसके बाद आक्रमणकारी उस स्त्री के साथ विवाह करे, उसे राक्षस विवाह कहा जाता है ।" स्वाभिमानी राजपूतो को अपनी लडकियो के लिये इस प्रकार का विवाह मजूर न था । इसलिये उन्होने उपरोक्त प्रकार की कठोर प्रथाओ का सहारा लिया । ये प्रथाए नि स देह भयानक थी परन्तु उनके अभाव मे जीवनपर्यन्त असह्य तिरस्कार का सामना करना पडता जिसकी तुलना मे इस प्रकार का कोई भी बलिदान सम्मानपूर्वक तो हो सकता था ।

मनु स्मृति मे स्त्रियो के सम्मान की रक्षा मे साफ साफ लिखा है 'मार्ग मे किसी स्त्री को देखकर वृद्ध पुरोहित और राजा को भी उसके लिए रास्ता छोड देना चाहिए । नव विवाहिता वधू गर्भवती स्त्री और दूसरे परिवारो से आयी हुई किसी भी स्त्री को सबसे पहले भोजन कराना चाहिए । एक समय था जब इस

देश मे स्त्रियो को घरो के भीतर ब द करके नही रखा जाता था । मुस्लिम काल म हि दुओ न मुसलमानो से पदा प्रथा ली और उसका पालन आज तक कर रहे हैं।

मनु ने स्त्रियो के विरोध मे भी कुछ लिखा है । उनका मत है कि इस ससार मे स्त्री केवल मूर्खो को ही नही अपितु ऋषिया को भी पुण्य माग से हटाकर पाप की ओर ले जा सकती है। इस प्रकार का विश्वास स्त्रियो को अ त पुर मे रखन अथवा परदे मे रखने की प्रथा का समथन करता है ।

क याओ को मार डालने, सती होने और जौहर जसी प्रथाओ को अपना कर राजपूतो ने अपने जिस स्वाभिमान और स्वात त्र्य का परिचय दिया था वह ससार मे कही अ यत्र दखन को नही मिलेगा । ये प्रथाए राजपूता के बलिदानो की प्रतीक है । बलिदान की भावना के बिना स्वत त्रता को बनाये रखना सम्भव नही होता । इसलिये राजपूतो की उन प्रथाओ की अवमानना बिना सोचे समझे नही करनी चाहिए । उन प्रथाओ के मूल मे भी कुछ कारण थ । भावी अपमान से बचन का एक साधन थी । आक्रमणकारी शत्रु जिस प्रकार के अत्याचार करते थे, उ ह उनकी स्त्रियो को भोगना न पडे, इसीलिये राजपूतो ने ऐसी कठोर प्रथाओ को आश्रय दे रखा था अ यथा य प्रशसनीय नही थी । राजस्थान की परिस्थितियाँ तेजी के साथ बदल रही है और अब इन प्रथाओ को भी समाप्त हो जाना चाहिए । अग्रेजों न ऐसा करने का प्रयास किया भी है ।

हि दू स्त्रियो के बार मे बहुत सी भ्रमोत्पादक बातें उन लोगो के द्वारा लिख दी गई है जि होन कभी गगा के इस पार आने का प्रयास ही नही किया । वे लिखन हैं कि कई कई हजार स्त्रियो में एक स्त्री भी ऐसी नही ह, जो पढना लिखना भी जानती हो । मैं ऐस यात्रिया से पूछना चाहता हूँ कि वे राजपूतो के सम्ब ध मे कुछ जानते भी हैं ? क्योकि साधारण सरदारा मे भी ऐसे लोग बहुत कम हैं जिनकी लडकिया पढना लिखना न जानती हो । यह ठीक है कि वे लिखन का काम कम करती हैं और उनके नाम से जो पत्र वगरा लिखे जाते ह, उन पर व अपना हस्ताक्षर ही करती हैं । पर तु अ य सभी सासारिक कार्यो म पूरी योग्यता रखती है । नाबालिग शासको के समय मे राजमाता को ही सम्पूण शासन काय सचालित करना पडता था । इसमे भी उ होन अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है ।[4] इस प्रकार क उदाहरणो से भारत का इतिहास भरा पडा है ।

उच्च कोटि का साहस, देशभक्ति स्वामिभक्ति, स्वाभिमान, उदारता, धार्मिकता और सादगी तथा शुद्ध आचरण इत्यादि अनक गुण राजपूता मे विद्यमान हैं । यह प्रकृति का नियम है कि सभी मनुष्यो क गुण और स्वभाव एक से नहीं होते । एक ही माता पिता की सतति म अलग अलग स्तर की योग्यताएँ होती हैं, एक जाति के सभी मनुष्य भी एक से नही होत और एक राज्य म विभिन्न श्रेणी के

लोग पाये जाते हैं। राजस्थान मे कई राज्य थे और आचरण की दृष्टि मे उनमे समानता न थी। जयपुर, उदयपुर जसा नही हो सकता और सीसोदिया वश की योग्यता अन्य राजपूत वशो म नही मिल सकती। इतना सब कुछ होने पर भी कोई भी तटस्थ मनुष्य राजपूतो के चरित्र की प्रशसा करेगा। अब्बुल फजल ने लिखा है कि, "धार्मिकता, व्यवहार की मधुरता स्नेह परायणता न्यायप्रियता, कार्यकुशलता, सभ्यता और लोकप्रियता की तरह के बहुत से गुण राजपूतो मे पाये जाते है। इन गुणो के साथ ही वे युद्धप्रिय होते है। पराजित होने पर भाग कर प्राण बचाने की अपेक्षा वे रणभूमि मे मर जाना अधिक श्रेष्ठ समझते हैं।"

अब राजपूतो की परिचित आदतो एव घर के अन्दर तथा बाहर मनोरजन के कुछ साधनो के उल्लेख के साथ ही यह अध्याय समाप्त करूँगा।

तरबूज और अगूर के प्रचार के लिये यह देश मुगल साम्राज्य के सस्थापक बाबर का ऋणी है। उसके पोते जहागीर ने तम्बाकू का प्रचार किया। परन्तु इस देश के लोगो मे अफीम के सेवन की आदत कब से शुरू हुई यह ठीक से नही कहा जा सकता। राजपूतो मे आमतौर से अफीम सेवन करने की आदते पायी जाती है और इस आदत ने उनका सर्वनाश करने मे बहुत काम किया है। राजपूत लोग इसका सेवन क्यो करते थे, इसे मै नही समझ सका। यह ठीक है कि अफीम खाने के कुछ देर बाद कुछ समय के लिये शरीर मे अपूर्व शक्ति का सचार होता है। सम्भव है कि लडाकू राजपूतो ने इस प्रलोभन से प्रेरित होकर अफीम का सेवन करना शुरू किया हो और फिर समय के साथ साथ वे इसके अभ्यस्त हो गये हो। उनकी इस आदत के बारे म यही अनुमान लगाया जा सकता है।

राजपूत लोग अफीम को पानी मे घोल कर सेवन करते हैं।[5] अपने जीवन के विशेष अवसरो पर राजपूत लोग अफीम का सेवन करते थे और अफीम सेवन के समय वे सभी प्रकार की प्रतिज्ञाएँ भी करते थे। किसी का आदर या सत्कार करना हो तो पानी म घोल कर अफीम प्रस्तुत की जाती थी। पुत्र उत्पन्न होने की खुशी के अवसर पर तथा विवाहोत्सव के समय बडे बडे पात्रो मे अफीम घोलकर तैयार रखी जाती थी और आने वाले मेहमानो को बडे आदर के साथ पिलाई जाती थी। अफीम पीने वालो को बाद मे मीठे लड्डू दिये जाते थे। अफीम के बिना राजपूत लोग आलसी बन जाते थे। मेरे राजपूत कर्मचारी जब काम करते समय शिथिल पड जाते थे तो मैं उन्हे अफीम सेवन करने की छुट्टी दे देता था। इन लोगो मे अफीम का इतना अधिक व्यसन था जैसे यह खाने पीने की सामान्य चीज हो। एक दूसरे से मुलाकात करते समय भी दोनो साथ बैठकर अफीम का सेवन करते थे। बिना अफीम के वे लोग कोई काम ही नही कर सकते। मैं चाहता हूँ कि राजपूतो मे विशेषकर उनके जवान लडको को अफीम के सेवन से रोका जा सके। मैंने राणा

को भी समझाया, परन्तु राणा ने मेरे परामर्श को पसन्द नहीं किया। शायद मेरे समझाने का यह परिणाम था कि बहुत से राजपूत युवकों ने अफीम न खाने की प्रतिज्ञा की थी।

राजपूत लोग किसी भी महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने की जब प्रतिज्ञा करते थे तो उस सम्बन्ध में उन्हें तीन बातों में से कोई एक बात करनी होती थी। पहली बात, लोगों के बीच में बैठकर अफीम का सेवन करके उस कार्य को सम्पन्न करने की प्रतिज्ञा करना। दूसरी, परस्पर पगड़ी बदलना। तीसरी, आपस में हाथ मिलाना। इसके बाद वे उस कार्य को पूरा करने का प्रयास करते थे, चाहे उसके लिए प्राण ही क्यों न उत्सर्ग करना पड़े। वचन को निभाना वे अच्छी तरह से जानते थे।

राजपूतों के शिकार सम्बन्धी मनोरंजन का उल्लेख किया जा चुका है। एक राजपूत अपने कुत्ते और अपनी बन्दूक को बहुत अधिक प्यार करता है। कुत्ते से शिकार का पता लगाने तथा पीछा करने में बहुत मदद मिलती है। राजपूत दक्ष घुड़सवार थे और वे सामान्यतः अपने घोड़ों पर सवार होकर शिकार खेलने जाया करते थे। वे लोग शिकार के शौकीन थे। शिकार खेलने के लिये राज्यों में बड़े बड़े जंगल सुरक्षित रखे जाते थे और बाकायदा उनकी देखरेख की जाती थी। उन जंगलों में केवल राजा को ही शिकार खेलने का अधिकार था। यदि कोई अन्य व्यक्ति शिकार खेलते हुए पकड़ा जाता तो उसे सजा दी जाती थी। सुरक्षित जंगलों में कई प्रकार के जंगली जानवर पाये जाते थे। राजा अपने सरदारों तथा सामन्तों के साथ उन जंगलों में शिकार खेलने जाया करते थे। वे लोग प्रायः भाले और तलवार से शिकार करते थे। बन्दूक चलाने में भी राजपूत लोग काफी निपुण होते थे। शिकार के पीछे घोड़ों पर सवार तेजी के साथ भागते हुए शिकारियों के दृश्य बहुत ही आनन्ददायक होते थे। इस प्रकार के कार्यों के लिए शक्ति और अभ्यास की जरूरत होती है और राजपूतों में इनकी कमी न थी। उन लोगों में लड़ने, युद्ध करने, शिकार खेलने और शत्रु पर आक्रमण करने का जितना महत्व दिया जाता था, उतना दूसरी बातों पर नहीं दिया जाता था और बहुत कम उम्र से ही इन सबका अभ्यास कराया जाता था। माता पिता भी अपने पुत्रों का साहस बढ़ाते थे। वे लोग जन्म और मृत्यु को अधिक महत्व नहीं देते थे। युद्ध अथवा अन्य विवाद में मारा जाना—दुःख का कारण नहीं माना जाता था। परिवार वाले मृत व्यक्ति के लिए रोने धोने नहीं बैठ जाते थे। युद्ध और युद्ध में वीरगति प्राप्त करना उनके जीवन की साधारण बात थी।

राजपूत के जीवन का मुख्य आकर्षण लड़ना और लड़ने की कला में निपुणता प्राप्त करना था। अन्य सांसारिक बातों का उन्हें ज्ञान न था। प्रत्येक राजपूत अपना और अपने पुत्रों की सैनिक योग्यता को बढ़ाने की तरफ ही अधिक ध्यान देता था।

बच्चा को अल्पायु से ही शस्त्र सचालन की शिक्षा दी जाती थी और इस काय के लिये सुयोग्य लोगो को नौकर रखा जाता था। जिस दिन कोई राजपूत बडा शिकार करके घर लौटता था उस दिन उसके परिवार मे आन दोत्सव मनाया जाता था। ऐसे उत्सवो से उनके बच्चो को भी प्रेरणा मिलती थी। राजपूतो के जीवन मे और भी अनेक बातें थी। वे सगीत के प्रेमी थे। नृत्य के शौकीन थे। मल्ल युद्ध भी प्रिय विषय था और वे प्राय कुश्तिया लडते भी थे। प्रत्येक राज्य मे अच्छी व्यायाम-शालाएँ थी। राज्य की तरफ से उन्ह आर्थिक अनुदान मिलता था।

राजाओ, सरदारो और साम ता को अपने अपन अस्त्रागार रखने का शौक था। इसमे वे किसी प्रकार की लापरवाही नहीं करते थे। अस्त्रागारो मे तलवारें भाले, धनुष बाण और ब दूकें रखी जाती थी। अस्त्रागारो की सुरक्षा का दायित्व अत्य त विश्वासपात्र सेवको को दिया जाता था। सिरोही और बूदी की तलवारें अधिक प्रसिद्ध थी। कुछ राज्यो मे ब दूको के कारखाने भी थे जहा ब दूकें बनायी जाती थी। ढालें कई किस्म की होती थी। बडे आकार की ढालो को अधिक पस द किया जाता था। गेंड के चमडे की ढाल ज्यादा मजबूत समझी जाती थी। ब दूका के प्रचलन के पहल तीरो का विशेष महत्व था।

राजपूतो को सगीत से भी प्रेम था। वे स्वय भी गाना बजाना जानते थ और अच्छे सगीतकारो का पर्याप्त सम्मान भी करते थे। राजा शिवधनसिह प्राय मेरे पास आता था। वह एक अच्छा सगीतज्ञ और अचूक निशानेबाज था। उसके गाने की सभी लोग प्रशसा करते थे। उसक पास हमेशा सगीतज्ञा का जमघट लगा रहता था। उनमे पुरुष और स्त्रिया दोनो थी। उनमे एक स्त्री गायन विद्या मे बहुत निपुण थी। उज्जैन से आने वाली एक स्त्री भी बहुत अच्छा गाती थी। मैंने उन दोनो के गाने सुने थे। पुत्र ज मोत्सवो और विवाहोत्सवो पर गाने बजाने के आयाजन प्राय होते रहते थे। मैंने सुना है कि उदयपुर के श्रेष्ठ सगीत कलाकारा को सि धिया अपने साथ लाया था। राजपूतो को अनेक प्रकार के गानो मे टप्पा अधिक पस द है। राणा भीमसिंह को भी गाने बजाने मे काफी रुचि है। उसके पास कुछ लोग बशी बजाने मे काफी निपुण थे। यूरोप की कल्टिक जातिया मे बैडपाइप नाम के बाजे की बहुत प्रसिद्धि थी। राजपूत लागा को इसकी जानकारी थी। य लाग उसे 'मीशेक' कहते थे। यह बाजा एक प्रकार स बशी की सी ध्वनि निकालता है। राजपूतो म कई प्रकार के बाजा का प्रचार था।

राजपूत राजाओ की शिक्षा-दीक्षा पर पूरा ध्यान दिया जाता है। यहाँ पर कोई राजा ऐसा न था जिसको लिखना पढना न आता हो। इग्लण्ड के राजवश म ऐसे कई लोग हुए जिन्हे पढना लिखना नही आता था और व केवल राजवशी हान का ही अभिमान किया करत थे। उदयपुर के राणा म लिखन की अच्छी शक्ति था। उसके लिखे हुय पत्रो को पढकर कोई भी व्यक्ति उसकी प्रशसा करेगा। राणा के

पत्रो मे शिष्टाचार ग्रौर वधुत्व की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। राजाग्रा ग्रौर साम तो मे ग्रापसी पत्र व्यवहार की प्रतियाँ सुरक्षित रखने की उत्तम व्यवस्था है ग्रौर इससे पता चलता है कि वे पत्र व्यवहार के महत्व से सुपरिचित थे। सुरक्षित रखे गये इन पत्रो के द्वारा इतिहास की बहुत सी बातो की सत्य जानकारी मिलती है ग्रौर इतिहास रचना म महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इसका यह भी ग्रथ है कि यहा के राजा ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित रखने की तरफ विशेष ध्यान देते थे। राज्यो की राजनैतिक ग्रौर सामाजिक परिस्थितियो की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने के लिये राजाग्रो के यह सग्रह प्रशसनीय है।

सन्दर्भ

1 मुगल सम्राट जहागीर ने सती प्रथा को सीमित करने के लिये एक ग्राज्ञा प्रसारित की थी कि जिस हि दू विधवा के पुत्र ग्रथवा पुत्री है वह ग्रपने मृत पति के साथ सती नही हो सकती। पर तु बाद मे उसने ग्रपनी ग्राज्ञा को रद्द कर दिया था। राजा राममोहन राय के प्रयासो से लाड विलियम बैंटिक के शासनकाल मे भारत मे सती प्रथा को कानूनन ब द कर दिया गया था।

2 सि धु नदी के किनारे धिक्कर नामक एक सीथियन जाति मे भी क या क उत्पन्न होते ही उसे मार डालने की प्रथा प्रचलित थी। इतिहासकार फिरिश्ता न उन लोगो की इस प्रथा का विस्तार से उल्लेख किया है।

3 चारण ग्रौर भाट लोग लडकी के विवाह के ग्रवसर पर बिन बुलाये ही पहुच जाते थे ग्रौर लडकी के पिता से काफी दान दक्षिणा प्राप्त करते थे।

4 टाड साहब न बू दी के ग्रल्पायु राजा की माता की काफी प्रशसा की है। वह शासन कार्यों मे काफी दक्ष थी।

5 बालचाल की भाषा मे "ग्रमल पानी" कहा जाता है।

मारवाड का इतिहास

अध्याय 31

मारवाड मे राठौड वश की प्रतिष्ठा से पूर्व का इतिहास

मारवाड "मारुवार" का विकृत रूप है। इसका वास्तविक नाम 'मरुस्थल" या मरुस्थान" (मृत्यु का प्रदेश) है। इसे मरुदेश भी कहा जाता है। कवियो ने अपनी सुविधाग्रो के ग्रनुसार इसको भिन्न भिन्न नामो से पुकारा है और कभी केवल 'मारू" (मरू) नाम मात्र से। यद्यपि ग्रब इसका उपयोग राठौड वश के ग्रधिकार मे राजस्थान की जितनी भूमि है उसी के लिये किया जाता है, पर तु प्राचीन समय मे सतलज से समुद्र तक फली हुई हुई समस्त भूमि को मारवाड कहा जाता था।

मारवाड के राठौड वश के राजाग्रो का तिथिक्रम पहले लिखा जा चुका है। ग्रब हम उन्ही के प्रसिद्ध ग्र थो के ग्राधार पर यहा लिखने का प्रयास करेंगे जिनम इस वश के राजाग्रो का इतिहास ग्रधिक प्रामाणिक माना जाता है। मेवाड राज्य के इतिहास के स दभ मे दूसरे राज्या की बहुत सी बातो का उल्लेख किया है पर तु मारवाड का इतिहास लिखते मभय ऐसा नही करेंगे।

हम उन ग्र थों से ग्रारम्भ करते हैं, जिनम राठौड वश के राजाग्रा के एति हासिक वृत्ता त पाये जाते हैं। सबसे पहले हमार ध्यान मे नाडौल जन म दिर क पुजारी यती की बनाई हुई वशावली है। यह वशावली पचास फुट लम्बी है। इसम प्रथम राठौड की उत्पत्ति इन्द्र के मेरुदण्ड से बताई गई है। इसमे पारलीपुर के राजा यवनाश्व को राठौडो का कल्पित पुरुष माना गया है। पर तु स्वय राठौडा को इस राज्य के बारे मे विशेष जानकारी नही है। ग्रनुमान के ग्राधार पर वे कहते हैं कि यह राज्य उत्तर की तरफ रहा होगा। राजा यवनाश्व के पूवज ग्रश्व ग्रथवा ग्रसि जाति के थे ग्रौर यह जाति सीथियन जाति की एक शाखा थी, इसक प्रमाण हमारे पास हैं।[1] वशावली कान्यकुब्ज या क नौज की स्थापना से ग्रारम्भ होती है ग्रौर इसके शासको की उपाधि "कमध्वज" की व्याख्या के साथ राठौडा की

तेरह शाखाओ और उनके गोत्रो के आचार्यों का वरणन करने के बाद समाप्त हो जाती है।

प्राचीनकाल की एक और वशावली है जिसमे बिना किसी तथ्य के अनेको नाम दिये हुये हैं। राठौडो के लिये इसका चाहे जो महत्व हो, हम लाग नयनपाल के पहल के नामो को छोड सकते हैं। नयनपाल ने सवत् 526 (470 ई) मे कन्नौज को जीता था और उसी दिन से वे लोग कन्नौजिया राठौड के नाम से पुकारे जाने लग। कन्नौज का अतिम राजा जयचन्द हुआ। वशावली मे उसके भतीजे सोहा का अपने कुछ सरदारो के साथ कन्नौज छोडकर मरुदेश मे आकर बसने से लेकर जसवतसिंह की मृत्यु तक का विवरण है। मरुदेश मे राठौडो के प्रसार का भी उल्लख मिलता है।

वश परम्परा सम्बन्धी बहुत सी बातें पाठको का नीरस मालूम होती हैं परन्तु उनके भीतर बहुत सी रहस्यमय बातें निहित होती हैं और जो लोग किसी वश के विस्तार का देखना और समझना चाहते हैं, उनके लिये ये बातें बहुत महत्व पूर्ण सिद्ध हाती है। 1193 ई० मे जयचन्द का सिंहासन उलट गया और उसका भतीजा अपने कुछ सैनिको और परिवारजनो के साथ मरुभूमि म चला आया और वहा के एक सामान्य सरदार के यहा आश्रय लिया। चार सौ वर्षों के भीतर ही उसके वशजो ने मरुप्रदेश की सम्पूर्ण भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया। यहाँ पर इन्होने तीन राजधानियाँ कायम की। बडे बडे दुर्गों तथा प्रासादो का निर्माण करवाया। दिल्ली के सम्राट के विरुद्ध युद्ध म एक ही बाप के पचास हजार बेटो को एकत्र किया। इन चार शताब्दियो मे बहुत कुछ बदल गया परन्तु कन्नौज के विजता के वशजो के प्रति जयचन्द के वशजो मे शत्रुता का भाव बना रहा। बादशाह शेरशाह की अभिलापा ने उस भाव को पुन जाग्रत कर दिया और पचास हजार राठौड कन्नौज का प्रतिशोध लने के लिये युद्धक्षेत्र म जा पहुचे। उनके पराक्रम को देखकर बादशाह को कहना पडा कि उसने मुट्ठी भर बाजरे के लिये दिल्ली का ताज खो दिया होता।

इतनी जल्दी थी कि उसने जयचंद की पराजय और मृत्यु का उल्लेख करना भी उचित नही समझा। उसने जयचंद के वंशजों का विवरण भी बहुत संक्षेप में दिया है, यद्यपि प्रमुख घटनाओं का संकेत अवश्य दिया गया है। अन्त में वह जसवंतसिंह के समय में पहुंच जाता है।

मारवाड के इतिहास की जानकारी का एक अन्य स्रोत है—राजरूपाख्यात[2] (शाही सम्बन्ध)। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में सूर्यवंश का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है—जब से राजा इक्ष्वाकु के वंशजों ने अयोध्या को अपना केन्द्र बना कर शासन शुरू किया था। इसके बाद सीहाजी के कन्नौज छोडने के समय से लेकर राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु तक सभी प्रमुख घटनाओं का संक्षेप में विवरण दिया गया है। परन्तु इसके बाद अजीत के शैशव काल से लेकर अभयसिंह द्वारा सर बुलन्दखां के विरुद्ध लडे गये युद्ध तक की घटनाओं का विस्तृत इतिहास लिखा गया है। संवत् 1735 से 1787 (1679 से 1734 ई) तक की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इन दोनों ग्रंथों के अलावा एक लाख छन्दों वाले 'विजय विलास' का एक भाग मुझे देखने को मिला था। इसमें बख्तसिंह के पुत्र विजयसिंह के समय की घटनाओं का विवरण है। इसमें विजयसिंह और उसके चचेरे भाई (अभयसिंह का लडका रामसिंह) के मध्य लडे गये गृह युद्ध और तदनुसार मराठों का मारवाड में प्रवेश का उल्लेख है।

भट्ट कवियों द्वारा रचित 'ख्यात' से मैंने अकबर के मित्र राठौड राजा उदयसिंह उसके बेटे गजसिंह और पौत्र जसवन्तसिंह के जीवन चरित्रों से सम्बन्धित सामग्री ली है।[3] इन जीवन चरित्रों से राठौडों के जीवन का सही चित्र हमारे सामने आता है। इनके अलावा, एक बुद्धिमान व्यक्ति जिसका जीवन जोधपुर दरबार मे व्यतीत हुआ था और जिसने अजीतसिंह की मृत्यु से लेकर इस राज्य की अंग्रेजों के साथ संधि के समय तक की घटनाओं के संस्मरण लिखे थे उससे भी सहायता ली। इस लेखक के पूर्वज जोधपुर राज्य मे ऊँचे पदों पर थे और उसमें ऐतिहासिक घटनाओं को लिखने की अच्छी योग्यता थी।

उपर्युक्त साधनों वर्तमान राजा और उसके सरदारों के साथ बातचीत अन्य लोगो के साथ मिलकर सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा आदि अनेक साधनों से जो कुछ मिल सका, उन सभी को मिलाकर मैंने मारवाड का ऐतिहासिक वर्णन करने का प्रयास किया है।

राठौड राजपूत सूर्य के वंशज है अथवा नही, इस प्रश्न को हल करने का प्रयास हम नही करेंगे और न ही इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयास करेंगे कि उनकी उत्पत्ति इन्द्र के मेरुदण्ड से हुई अथवा नही। उनके पूर्वजों की राजधानी उत्तर में कहां थी इस विषय में जानने का प्रयास भी नही करेंगे। हमे तो यहा पर इतना ही लिखना है कि उनका पूर्वज पारलीपुर का राजा यवनाश्व, अश्व अथवा अमी शाखा

अ त हो गया । नयनपाल से लेकर इस समय तक सात सौ वर्ष बीत गये है और इस दीर्घावधि मे इक्कीस राठौड राजाओ का विवरण मिलता है जिन्होने राव" की पदवी धारण की थी । उनके बाद के शासको ने ' राजा" की उपाधि धारण की । किन्तु ' राव ' की पदवी सबसे पहले किस राजा ने ग्रहण की इसकी जानकारी नही मिलती।

अपने पतन के पूर्व कन्नौज का वैभव बहुत बढा-चढा था । इसकी पुष्टि न केवल कवि चन्द की रचना से होती है अपितु मुस्लिम इतिहासकारो के द्वारा भी होती है । राठौड इतिहासकारो ने तो कन्नौज के वैभव की प्रशसा की ही है परन्तु उनके विरोधी चौहानो ने भी उसकी प्रशसा की है । कन्नौज नगर तीस मील की परिधि मे फैला हुआ था और उसकी अपरिमित सेना ने अपने स्वामी के लिये दल पुगल की उपाधि अर्जित की थी । इसका अभिप्राय यह है कि वह विशाल सेना जब किसी स्थान के लिये प्रस्थान करती थी तो उसे मार्ग मे ही पडाव डालना पडता था । कवि चन्द ने भी इस बात की पुष्टि की है । वह लिखता है कि सेना इतनी विशाल थी कि उसका प्रथम भाग निश्चित स्थान पर पहुँच जाता तब तक आखिरी भाग चलने की तैयारी ही कर रहा होता था । सूरज प्रकाश" मे लिखा है कि राठौडो की इस सेना मे अस्सी हजार कवचधारी सैनिक, तीस हजार बखतर पहने हुये सवार सैनिक, तीन लाख पदाति सैनिक और दो लाख धनुषधारी तथा फरशाधारी योद्धा थे । इनके अतिरिक्त बादलो की तरह उन्मत हाथियो का एक विशाल समूह रणबाकुरा को लेकर चलता था । जब गोर तथा इराक के बादशाह ने अटक को पार कर लिया तो यह विशाल सेना सिन्धु के उस पार यवनो का विरोध करने के लिये गई थी । वहा पर जयसिंह ने यवनो से युद्ध किया था और सिन्धु के नीले जल को रक्त वर्ण मे बदल दिया था । कन्नौज की सेना ने यवनो को पराजित कर दिया था ।

राठौडो के जन्मजात शत्रु चौहानो के इतिहासकार भी कन्नौज के राजा की महानता का उल्लेख करते है और उसे "माण्डलिक" की उपाधि देकर सम्मान दर्शाते है । वे इस बात की पुष्टि करते है कि उसने उत्तर के बादशाह को पराजित किया और उसके आठ करद् राजाओ को बन्दी बनाया कि उसने अनहिलवाडा पट्टन के राजा सिद्धराज को दो बार पराजित किया और नर्बदा के दक्षिण तक अपनी सीमाओ को बढाया और अपने उत्कर्ष की चरमावस्था मे राजसूय यज्ञ करने का विचार किया । इस यज्ञ की मर्यादा बहुत अधिक मानी जाती थी । यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिये भारत के समस्त राजाओ को निमन्त्रित किया गया । इसी अवसर पर जयचन्द ने अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयवर का भी आयोजन किया था । समूचे देश मे यज्ञ और स्वयवर की चर्चा होने लगी । कवि चन्द ने इस यज्ञ की तैयारी का विस्तृत वर्णन अपने ग्रन्थ मे किया है । भारत के अधिकाश राजा अपने चुने हुए सैनिको के साथ इसमे भाग लेने के लिये कन्नौज आये । परन्तु चौहान राज (पृथ्वीराज) द्वार

मेवाड का समरसिंह नही आये । पृथ्वीराज और उसके बहनोई समरसिंह का अपमान करने की दृष्टि से जयचन्द ने उन दोनो की स्वर्ण मूर्तियाँ बनवाईं और उन मूर्तियो को वहाँ रखवाया जहाँ द्वारपाल तैनात किये जाते हैं। पृथ्वीराज ने जब यह समाचार सुना तो उसने तत्काल कार्यवाही करने का निश्चय किया। उसने ऐसा दोहरे उद्देश्य से किया था । एक संयोगिता से प्रेम और दूसरा अपने अपमान का प्रतिशोध। पृथ्वीराज दिल्ली की सेना के साथ कन्नौज पहुँच गया और दिन दहाडे राजकुमारी संयोगिता का अपहरण करके चल पडा । उसके इस कृत्य से चौहानो और राठौडो मे पाच दिन तक भयकर युद्ध होता रहा जिसमे दोनो पक्षो के हजारो शूरवीर सैनिक मारे गये। यह सघर्ष भारत के विनाश का कारण बना । देश कमजोर हो गया और अवसर का लाभ उठाकर शहाबुद्दीन गोरी ने आक्रमण कर दिया । इस आक्रमण ने पृथ्वीराज और बाद मे जयचन्द—दोनो को समाप्त कर दिया और भारत की स्वतन्त्रता का ग्रहण लग गया ।

इस अवसर पर हिन्दुस्तान की स्थिति का सक्षिप्त विवरण देना अच्छा रहेगा । मुहम्मद के आक्रमण के पूर्व चार प्रमुख राज्यो के नाम इस प्रकार थे— (1) तोमर और चौहानो के अन्तर्गत दिल्ली का राज्य। (2) राठौडो के अन्तर्गत कन्नौज। (3) गुहिलोतो का मेवाड राज्य और (4) चावडा और सोलकियो का राज्य—अनहिलवाडा। भारत के अन्य छोटे बडे राजा इन चारो मे से ही किसी एक की अधीनता मे रहकर राजाओ की भाति शासन करते थे । दिल्ली और कन्नौज के राज्यो को काली नदी (यूनानियो की कालिन्दी) पृथक करती थी । दिल्ली का राज्य काली नदी से सिन्धु नदी के पश्चिमी किनारे तक और हिमालय से लेकर मरुभूमि में अरावली पहाड तक फैला हुआ था । इस विशाल राज्य का स्वामी अनगपाल तोमर था ।[4] पृथ्वीराज उसी का उत्तराधिकारी बना । पृथ्वीराज की सेवा मे 108 छोटे बडे राज्य थे ।

कन्नौज का राज्य उत्तर मे बर्फीले पहाडो तक पूर्व मे काशी (बनारस) और चम्बल के उस पार बुन्देलखण्ड तक फैला हुआ था । दक्षिण मे इसकी सीमाए मेवाड से जा मिली थी और पश्चिम मे अनहिलवाडा राज्य की सीमा तक विस्तृत थी। मेवाड अर्थात् केन्द्रीय क्षेत्र उत्तर मे अरावली और दक्षिण मे परमारो के धार राज्य और पश्चिम मे अनहिलवाडा तक विस्तृत था । अनहिलवाडा दक्षिण मे समुद्र तक, पश्चिम मे सिन्धु और उत्तर मे मरुभूमि तक फैला था ।

इन सभी राजाओ मे भयानक युद्ध होते रहते थे—इस बात के प्रमाण मिलते हैं । चौहान और गुहिलोतो—जिनकी सीमाएँ मिलती थी मे मित्रता थी । राठौडो और तोमरो (चौहानो के पहले) मे हमेशा शत्रुता बनी रही । कभी कभी वैवाहिक सम्बन्ध इस शत्रुता की अग्नि को मन्द कर देते थे परन्तु उनका आन्तरिक वैमनस्य कभी समाप्त नही हो पाया । उनकी आपसी शत्रुता ने देश को भारी क्षति पहुँचाई ।

गोर के शासक शहाबुद्दीन ने भारतीय राजाओ की इस आन्तरिक फूट का लाभ उठाते हुए आक्रमण कर दिया और युद्ध मे सबसे पहले दिल्ली के चौहान शासक पृथ्वीराज का पराजित किया। दिल्ली पर अधिकार कर लेने के बाद उसने जयच द पर आक्रमण किया। कन्नौज ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ मुकाबला किया परन्तु पराजित हुआ। उसके शासक जयच द की उस समय मृत्यु हो गई जब कि वह गगा को पार कर भागने की चेष्टा कर रहा था। उसकी नाव गगा नदी मे उलट गई और जयचन्द गगा मे डूब कर मर गया। यह घटना सवत् 1249 (1193 ई०) की है। कन्नौज के पतन के बाद उसकी अधीनता मे रहने वाले 36 राजा भी स्वतन्त्र हो गये। राठौडो का विशाल राज्य छिन्न भिन्न हो गया। परन्तु उसका अ त नही हुआ। इस विनाश के बाद नयनपाल के वशजो ने मरूभूमि की ओर पलायन किया। वहा उ होने अपना शासन स्थापित किया। उनकी इक्तीसवी पीढी मे राजा मानसिंह हुआ जिसने राठौडा की प्रतिष्ठा का उसी शिखर तक पहुँचा दिया जसा कि कन्नौज के दिनो मे थी।

सन्दर्भ

1 राठौडो की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है। अत टाड के मत को ही सही मानना उचित नही होगा।

2 इस ग्र थ का नाम है "राजरूपक'। इसका लेखक रतनू चारण कवि वीरभाण अभयसिंह का समकालीन था।

3 दुर्भाग्यवश कर्नल टॉड को 'नैणसी की ख्यात" पढने का अवसर नही मिला। अन्यथा उनकी रचना की बहुत सी भूलो म सुधार हो गया होता।

4 हम पहले लिख आये हैं कि कर्नल टाड न पृथ्वीराज को भूल से तोमर राजा अनगपाल की पुत्री का पुत्र मान लिया है और इस नाते पृथ्वीराज को दिल्ली राज्य का मिलना लिखा है। यह सत्य नही है।

अध्याय 32

सीहाजी और मारवाड मे राठौड वश की उन्नति

सवत् 1268 (1212 ई) म, अर्थात् कन्नौज के पतन के ठीक अठारह वर्षो बाद कन्नौज क अन्तिम शासक के पौत्र सीहाजी और सेतराम न अपन दो सौ सेवकों के साथ अपनी जन्मभूमि को छोडकर पश्चिम की तरफ, मरुभूमि की तरफ प्रस्थान किया। उनक कन्नौज छोडन का क्या कारण था इस विषय म उपलब्ध ग्रन्थ एक मत नही हैं। कुछ के अनुसार व द्वारिकाधीश के दशन के लिय यात्रा पर निकल थ। जबकि अन्यो के अनुसार कन्नौज क पतन के बाद दूरवर्ती क्षेत्रो म अपना भाग्य आजमान को निकले थ।

यमुना से सिधु और गारा नदी स अरावली तक विस्तृत जिस भू भाग पर गगा के किनार स आय प्रवासियो न अपना प्रभुत्व स्थापित किया, उस क्षेत्र म आबाद विभिन्न जातियो की भौगोलिक समीक्षा करना उचित होगा। पूव म कछवाहो का राज्य था। इस समय मलसी उनका राजा था। उसका पिता पजोन, कन्नौज के युद्ध मे मुसलमानो द्वारा मारा गया था। अजमेर साभर और चौहानो क कुछ समृद्ध इलाके मुसलमानो क अधिकार मे चले गय थे। परन्तु अरावली के अनेक दुग अब भी राजपूतो के अधिकार म थ। नाडौल म वीसलदेव का एक वशधर स्वतन्त्र शासक की हैसियत स शासन कर रहा था। परिहार वश की एक शाखा इदा का मानसिह अब भी मडौर पर शासन कर रहा था और आसपास क अनक भौमिया सरदार उसको कर चुकात थे। उत्तर की तरफ नागौर क आसपास मोहिल लाग रहते थ। आरोन्त नामक नगर उनकी राजधानी थी और उनके राज्य के अधीन 1440 गाव थ। बीकानेर से लेकर भटनेर तक की विस्तृत मरुभूमि अनेक छोटे छोटे राज्यो म विभाजित थी। यह सम्पूर्ण भूमि जिट अथवा जाट लोगो के अधिकार म थी। उनके पूव की तरफ गारा की रतीली भूमि पर कई जगली जातियो—जोहिया दहिया, केथे लगा आदि का अधिकार था। जसलमेर तथा उसके आस पास के क्षेत्रो म विगत कई शताब्दियो से भाटी लोगो का अधिकार बना हुआ था। भाटियो क दक्षिण म सोढा शासको का और सिध की घाटी तथा कच्छ म जाडेचाओ का अधिकार था। उनके बीच म सोलकी भी थ। आबू और चद्रावती मे परमार लोग थे। इनके अलावा प्राचीन

जातियो के कई सरदार स्वतन्त्र शासकों की भांति अपने अपने क्षेत्रों मे अपना प्रभुत्व जमाये हुए थे और आवश्यकता पड़ने पर वे अपने किसी पडौसी की नाममात्र की अधीनता भी स्वीकार कर लेते थे। इस प्रकार के सरदारो मे ईडर और मऊ के डाभाया, खेडधर के गोहिल, साचौर के देवडा, जालौर के सोनगरे, और ... के मोहिल और सिनली के मायला मुख्य थे। इनमे से अधिकांश को राठौडो के कारण अपना पैतृक अधिकार खोना पड़ा और जो बच गये उन्हे राठौडो के करद सामन्त बन कर शासन करना पडा।

सीहाजी ने मरुभूमि मे अपना पहला पडाव बीकानेर से पश्चिम मे बीस मील की दूरी पर स्थित कालूमठ नामक स्थान पर किया, जहा सोलंकी वंश का एक सरदार शासन करता था। उसने सीहाजी और उसके साथियों का उदारता के साथ स्वागत किया और बदले मे सीहाजी ने उस सरदार को उसके शत्रु लाखा फूलाणी के विरुद्ध अपनी सेवाएँ देने का वचन दिया। लाखा फूलाणी जाडेचा वंश का था और उसका आतंक सतलज से लेकर समुद्र तक फैला हुआ था।[1] मरुभूमि मे उसका एक अजेय दुर्ग था—फूलडा। समय पर सीहा की मदद मिलने से सोलंकी को लाखा पर विजय प्राप्त हुई परन्तु युद्ध मे सेतराम राठौड तथा अन्य बहुत से राठौड सैनिक मारे गये। इस मदद के प्रति कृतज्ञ सोलंकी सरदार ने अपनी बहिन का विवाह सीहाजी के साथ कर दिया और दहेज मे काफी धन दिया। इसके बाद सीहाजी द्वारका के लिये चल पडे। रास्ते मे वह अनहिलवाडा पट्टन मे रुका, जहा के राजा ने उसका सत्कार किया। सीहाजी का सौभाग्य था कि उसे लाखा से दुबारा लडना पडा। लाखा लूटमार करता हुआ अनहिलवाडा की सीमा मे घुस आया था। सीहा को अपने भाई सेतराम की मृत्यु का बदला लेना था।[2] इसके अलावा वह लाखा के आतंक को समाप्त करके यहा के लोगों की सहानुभूति को भी प्राप्त करना चाहता था। इस बार सीहा को सफलता मिली, यद्यपि उसका एक भतीजा मारा गया। आमने सामने के युद्ध मे सीहा ने लाखा को मार डाला।[3] इससे लाखा द्वारा आतंकित क्षेत्र मे सीहा का नाम विख्यात हो गया।

लाखा पर विजय प्राप्त करने के बाद सीहाजी ने अपनी तीर्थयात्रा को जारी रखा अथवा नही इसका उल्लेख भट्ट ग्रन्थो मे नही मिलता। केवल इतना पता चलता है कि इसके बाद वह लूनी नदी के किनारे चला आया। वहा एक दावत के अवसर पर उसने महवा नगर के ...[4] राजा को मारकर उस नगर पर अपना अधिकार कर लिया। इसके कुछ दिनो बाद ही खेडधर का गोहिल राजा महेशदास जयचन्द के पोते की तलवार से मारा गया। खेड के इस रेतीले क्षेत्र मे सीहाजी ने राठौडो का ध्वज फहराया।

इन दिनो मे पाली नगर[5] मे पालीवाल ब्राह्मणो का एक समूह रहता था। उनके अधिकार मे बहुत बडी भूमि थी। उन लोगो को मेर और मीना जाति के पहाडी

लोग बहुत सताते थ । उनके अत्याचारो स दु खी होकर ब्राह्मणो न सीहाजी की सहायता लन का निश्चय किया । सीहाजी न ब्राह्मणो की प्राथना को स्वीकार कर लिया और पहाडी जातियो का दमन कर पाली के ब्राह्मणो को जगली जातियो की लूटमार स राहत दिलवा दी । फिर भी ब्राह्मणो को यह भय बना रहा कि समय पाकर व लोग पुन परशान करेंगे, अत उन्होने सीहाजी को बहुत सी भूमि दकर उनसे प्रार्थना की कि वह उ ही के बीच बस जाय । सीहाजी न उनकी प्राथना स्वीकार कर ली और वे वही रहन लगे । यही पर सोलकी पत्नी स सीहाजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम आसथान रखा गया । पाली म रहत हुए सीहाजी के विचारो म परिवतन आ गया और वह पाली की समस्त भूमि को अपने अधिकार म लान की बात सोचन लगा । होली क पवित्र दिन अवसर हाथ लगा और उसन ब्राह्मण समूह के मुखियाओ को मौत के घाट उतारकर सम्पूण जिल पर अपना अधिकार कायम कर दिया । इस विश्वासघात के बाद सीहाजी बारह महीन और जीवित रहे ।[6] उसके तीन लडके थे- आसथान सोनग और अजमल ।

एक भट्ट लेखक ने लिखा है कि गोहिलो से खेड की भूमि सीहा के उत्तराधिकारी आसथान ने जीती थी । जिस प्रकार उसके पिता ने विश्वासघात करके पाली पर अधिकार किया था ठीक उसी प्रकार से आसथान ने अपने भाई सोनग को ईडर का राज्य दिलवाया । यह छोटा सा राज्य गुजरात की सीमा पर स्थित था । वहा के राजा की मृत्यु के बाद जब उसके परिवार वाले उसका मातम मना रहे थे, उस अवसर पर युवा राठौड न एक नया राज्य प्राप्त करने का निश्चय किया । सोनग के वशज हातौदिया राठौड के नाम स प्रसिद्ध हुए । तीसरा भाई अजमल भी शूरवीर तथा लडाक् था । उसने सौराष्ट्र के पश्चिम मे स्थित ऊखा मण्डल के चावडा राजा भीयम शाह को मारकर उसके राज्य पर अधिकार जमाया । उसके वशज बाढेला नाम से प्रसिद्ध हुये ।

आसथान अपने पीछे आठ पुत्र छोडकर मरा ।[7] इन आठो—धूहड, जोपसी खीमसी भूपसी धाधूल जतमल, बांदर और ऊदड ने अपने अपने अलग राज्य सगठित किये । इन आठ मे से केवल चार—धूहड, धाधूल जतमल और ऊन्ड क वशो का पता चलता है ।

धूहड आसथान का उत्तराधिकारी बना । उसने कन्नौज को पुन प्राप्त करन का असफल प्रयास किया । इसके बाद उसने परिहारो से मडौर जीतने का प्रयास किया । इस प्रयास म वह मारा गया । वह सात पुत्रो को छोडकर मरा । उनके नाम थे—रायपाल, कीतपाल बेहड, पीलूल, जोगिल डालू और बेगुर ।

रायपाल अपने पिता का उत्तराधिकारी बना और अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया । उसने मडौर के प्रतिहार राजा को मारकर मडौर पर अपना अधिकार

कायम किया । परन्तु थोडे दिनो बाद परिहारो ने उसे वहा से खदेड दिया । उसके तेरह पुत्र थे । इन तेरहो ने मरुभूमि मे अपने वश की प्रतिष्ठा का विस्तार किया । रायपाल के बाद कनहुल गद्दी पर बठा । उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र जाल्हण जाल्हण के बाद उसका पुत्र छाडा और फिर छाडा का पुत्र टीडा क्रम से उत्तराधिकारी बने । इन सभी के बारे मे विशेष विवरण नही मिलता । केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ये लोग अपने पडौसी छोटे छोटे राज्यो से निरन्तर सघर्ष करते रहे । कभी जीतते तो कभी हारते रहे । छाडा और टीडा ने अवश्य अपने राज्य का विस्तार किया था । उन्होने सोनगरे चौहानो से भीनमाल जीता और देवडो तथा बालेचाओ से भी कुछ इलाके जीते । टीडा के बाद सलखा सिंहासन पर बैठा । उसके वशज सलखावत के नाम से प्रसिद्ध हुए । सलखा के बाद उसका लडका वीरमदेव उसका उत्तराधिकारी बना । उसने उत्तर के जोहियो पर आक्रमण किया और युद्ध म मारा गया । वीरमदेव का उत्तराधिकारी चूडा बना । राठौडो के इतिहास मे उसका नाम महत्वपूर्ण है ।

साहसी राजपूतो का भाग्य इतना अधिक परिवर्तनशील है कि अपनी उन्नति के पूर्व चूडा को उन सभी स्थानो से निकाल दिया गया जिन्हे उसके पूर्वजो ने अधिकृत किया था । विपत्ति के उन दिनो मे उसे कालू नामक गाव के एक चारण के यहाँ आश्रय लेना पडा था । एक बार मडौर मे स्थापित हो जाने के बाद चूडा ने नागौर की रक्षक बादशाही सेना पर हमला किया और सफल रहा । इसके बाद उसने अपने शस्त्रो को दक्षिण की तरफ मोडा और गौडवार की राजधानी नाडोल मे अपनी सेना नियुक्त करने मे सफल रहा । उसने एक परिहार राजा की पुत्री से विवाह किया । उससे चौदह लडके और एक लडकी हुई । रिडमल सबसे बडा लडका था । लडकी का नाम हसा था । उसका विवाह मेवाड के राणा लाखा से हुआ । हसा के कुम्भा नामक पुत्र हुआ ।[8] इसी विवाह के कारण मेवाड के मामलो मे हस्तक्षेप बढा जिसका परिणाम दोनो राज्यो के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ ।

चूडा के अन्तिम दिनो के बारे मे विशेष जानकारी नही मिलती । राठौड ख्यातकार केवल इतनी ही जानकारी देते हैं कि वह एक हजार मनिरो के साथ नागौर मे मारा गया । परन्तु जसलमेर के भट्ट कवि पर्याप्त जानकारी देते हैं, जिसका उल्लेख उस राज्य के इतिहास मे किया जायेगा । चूडा सवत् 1438 (1382 ई०) म सिंहासन पर बठा था और सवत् 1465 (1409 ई०) म मारा गया ।

उसके बाद रिडमल उत्तराधिकारी हुआ । उसकी माँ मोहिल वश की थी । चूडा की मृत्यु के साथ ही नागौर राठौडो के हाथ से निकल गया । राणा लाखा ने रणमल (रिडमल) को धनला नामक नगर और चालीस गाव जागीर मे दिये । वह

चित्तौड म ही रहन लगा ग्रौर राणा भी उसे ग्रपने प्रथम श्रेणी के सरदारो म से एक समझता था। एक वार रणमल ग्रपनी ग्रौर मवाड की सेना को लेकर ग्रजमेर की तरफ वढा। उसन ग्रजमर क सूवदार को एक लडकी ग्रपित करने का वहाना किया ग्रौर वहा पहुच कर दुग रक्षको को मौत के घाट उतार कर दुग पर ग्रधिकार कर लिया। इस प्रकार ग्रजमर पुन मवाड को प्राप्त हो गया। इस योजना के सलाहकार नीमसी पचौली को राणा न कटा नामक नगर पुरस्कार म दिया। इसके वाद रणमल गया की तीथ यात्रा को गया। वहा तीथ यात्रिया स कर वसूल किया जाता था। रणमल ने उस समय वहा उपस्थित सभी यात्रिया का कर ग्रदा किया।

भट्ट कवि ने ग्रपन ग्रन्थ मे शासन कार्यो का ग्रधिक विवरण नही दिया है, कभी कभी प्रसगवश ही उल्लख किया है। फिर भी, इतनी जानकारी मिलती है कि उसन ग्रपन राज्य म एक समान तौल ग्रौर माप क वाट निश्चित किय। उसन प्रजा के कल्याण के लिय कुछ ग्रय काय भी किय। राव रणमल का ग्राखिरी काय विश्वासघात करके मेवाड के ग्रल्पायु राणा का सिहासन प्राप्त करना था। ग्रपन इस प्रयास म वह स्वामिभक्त चूडा के द्वारा मारा गया।[9] इस घटना का उल्लख मवाड के इतिहास म किया जा चुका है। इस झगडे ने दाना राज्या को पृथक कर दिया ग्रौर उनके ग्रापसी सम्बन्धो म भी भारी ग्रन्तर ग्रा गया। दानो के मध्य जो सीमा रेखा कायम हुई वह ग्रव तक कायम है।

राव रणमल के चौबीस लडके थे। उन्होन ग्रार वडे लडके जोधा क वशजो न मारवाड क विशाल राज्य का निर्माण किया। पाठका की जानकारी के लिये उसके वशजो ग्रौर उनके द्वारा जीत गय क्षेत्रो की सूची दी जा रही है, जिससे इस वश के ग्रभ्युदय का पता चलता है।

नाम	शाखा	जागीर
1 जोधा (सिहासन पर)	जोधावत	
2 काधल	काधलोत	
3 चम्पा	चम्पावत	बीकानर जीता
4 ग्रखराज (इसक सात वेट थ। कूपा सवसे वडा था)	कूपावत	ग्रावा कटी पालरी हरमोला, राहट जावुला सथलाना सिगरी। ग्रासोप, कटालिया चडावल, सिरी यारी, खारला, हरसोर बल्लू,
5 मडला	मडलात	वजौरिया सूरपुरा ग्रौर देवरिया। मरौना

6 पाता	पत्तावत	बूनिचरी, बरोह और देसनोख
7 लाखा	लाखावत	—
8 वाला	वालावत	धूनारा
9 जतमल	जतमलोत	पालासनी
10 करन	करनोत	लूनावास
11 रूपा	रूपावत	छोटला
12 नाथू	नाथावत	बीकानेर (काधल के साथ)
13 डूंगर	डूंगरोत	
14 माडा	साडावत	
15 माडन	माडनोत	
16 वीरो	वीरोत	
17 जगमल	जगमलोत	इनकी जागीरो का कोई वर्णान नही पाया जाता । इन लोगो ने अपने से बडे वशो की अधीनता स्वीकार कर ली थी ।
18 हम्पा	हम्पावत	
19 शक्ता	शक्तावत	
20 कमच द	कमचन्द्रोत	
21 अरिवाल	अरिबालोत	
22 केतसी	केतसीओत	
23 शत्रुशाल	शत्रुशालोत	
24 तेजमल	तेजमालोत	

सन्दर्भ

1 लाखा फूलाणी अपने समय का एक शक्तिशाली स्वच्छन्द प्रवृत्ति का सरदार था और लूटमार करन की वजह से उसका आतक चारा तरफ फला हुआ था । पर तु उसने साधारण जनता को कभी नही सताया । वह अपने दान-पुण्य के लिए भी प्रमिद्ध था । लोग उसकी प्रशसा करते थे । उसके अधिकार मे 6 नगर थे ।

2 जोधपुर स्यात के अनुसार सेतराम सीहा का भाई न होकर सीहा का पिता था ।

3 डा ओझा के अनुसार लाखा सीहा के 200 वर्ष पूर्व हो गया था जिसे मूलराज ने मारा था न कि सीहा न ।

4 डाभी (दावी) राजस्थान के 36 राजवशो मे एक था ।

5 पाली नगर उस समय मे पश्चिमी राजस्थान का प्रमुख व्यवसायिक नगर था ।

6 बीठू गाव के पास एक देवल के लेख से पता चलता है कि सीहा की मृत्यु 9 अक्टूबर, 1273 ई को हुई थी ।

7 आसथान पाली के निकट शाही सेना स लडता हुआ मारा गया । यह घटना 1291 ई की है ।

8 इस सम्ब घ मे टाड न बहुत बडी भूल की है । हसा से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम मोकल था । कुम्भा इसी मोकल का पुत्र था न कि राणा लाखा का ।

9 सन् 1438 ई म रणमल की हत्या की गई थी ।

अध्याय 33

राव जोधा और मालदेव

मेवाड राज्य के अ तगत अपने पिता की जागीर धनला मे सवत् 1484 के वैशाख मास मे जोधा का ज म हुआ था ।[1] 1511 ई० मे उसे सोजत हाथ लगा और सवत् 1515 (1459 ई०) मे उसने जोधपुर नगर की नीव रखी और मडौर से अपनी राजधानी को इसी नगर मे ले आया । कहा जाता है कि इसके लिये किसी जोगी ने उसको परामश दिया था । वह जोगी मडौर से चार मील दक्षिण की तरफ विहुगकूट[2] नामक एक पहाड की गुफा मे रहा करता था । उसन जोधा से कहा था कि मडौर नगर मे अनेक प्रकार के सकट उत्पन्न होगे । इसलिये वकरचीरा की सीमा पर आप एक नगर की स्थापना करें । जोगी क परामश के अनुसार ही जोधा न विहगकूट पवत की ऊची चट्टानो के ऊपर दुग की नीव रखी और उसका निर्माण काय शुरू करवाया ।[3] इस दुग पर आक्रमण करना आसान न था । ऊचे पवत के चारो तरफ घना जगल था ' पवत की ऊची चोटियो से सम्पूण मारवाड दिखायी देता था । मारवाड के तीन तरफ विस्तृत रेतीले मदान थे । रेतीले क्षेत्रो मे जल का स्वाभाविक रूप से अभाव था । उस समय जोधा अथवा उसके सलाहकार स यासी ने इस समस्या की तरफ काई ध्यान नही दिया । नगर का निर्माण काय पूरा हो जान के बाद सभी को जल की समस्या का ध्यान आया । मारवाड के भट्ट लागो ने इसके लिये उस स यासी को दोपी करार दिया । सभी लोग यह कहन लग कि नगर निर्माण की सलाह दन वाले जोगी न नगरवासियो पर अत्याचार किया है । नगर निर्माण के समय स यासी की गुफा को भी नगर क्षेत्र मे सम्मिलित कर लिया गया । इसस स यासी का बहुत दु ख हुआ । उसने राज्य के अधिकारिया स प्राथना की पर तु किसी न उसकी बात न सुनी । अत उसन शाप दिया कि यह नगर सदा पर्याप्त जल क लिय तरसता रहगा । वास्तव म भट्ट कवियो ने जोधा और उसके अधिकारियो को दोपमुक्त करन की दृष्टि से इस प्रकार का प्रचार किया । जब शुद्ध जल की कोई व्यवस्था न हो सकी तो उसके लिये अनक कदम उठाये गय । दुग के नीचे पहाड पर एक सरोवर बनाया गया और उससे जल लान की व्यवस्था की गई । उस सरोवर मे ऐसी कलें लगवाई ग‌ई जिससे ऊचाई पर स्थित दुग म भी पानी पहुँचन लगा । जल प्राप्ति के लिय उठाय गये अ य कदम विफल रहे । सभी लोगा न यही विश्वास कर लिया कि स यासी क

अभिशाप से इस नगर में हमेशा जल संकट बना रहेगा और यह समस्या कभी हल न होगी। सोजत में पर जमाने के बाद जोधपुर नगर का निर्माण राठौडों के भाग्योदय की तीसरी महत्वपूर्ण घटना थी।

राठौड राजाओं के वंशज इतनी अधिक संख्या में हुए कि अब तक विजयों के द्वारा अधिकृत की गई भूमि भी सीमित लगने लगी। पिछले तीन शासकों की संतति—चूंडा के चौदह पुत्र, रणमल के चौबीस और जोधा के चौदह, ने मरुप्रदेश में फल फूल कर वहां की समस्त उत्तम भूमि पर अधिकार कर लिया था। अब और नई भूमि अधिकृत करने की आवश्यकता थी ताकि राठौड वंश सुविधा के साथ फल फूल सके।

जोधा के चौदह पुत्र थे जिनके नाम इस प्रकार थे—

नाम	शाखा	जागीर	विशेष विवरण
1 सातल	—	सातलमेर	पोकरण के समीप
2 सूजा	—	—	जोधपुर राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।
3 जोगा	—	—	वंशहीन
4 दूदा	मेडतिया	मेडता	दूदा ने चौहानो से सांभर भी ले लिया था। उसका पुत्र वीरन हुआ। वीरन के दो लडका—जयमल और जगमल से जयमलोत और जगमलोत नामक शाखाएं निकली।
5 बरसिंह	बरसिंहोत	नोलाई	मालवा मे
6 बीका	बीकावत	बीकानेर	स्वतन्त्र राज्य
7 भारमल	भारमलोत	बिलाडा	जोधपुर से लगभग 30 मील दूर
8 शिवराज	शिवराजोत	दुनाडा	लूनी नदी पर
9 कर्मसिंह	कर्मसिंहोत	खींवसर	—
10 रायपाल	रायपालोत		
11 सावतसिंह	सावतसिंहोत	दावरो	
12 बीदा	बीदावत	बीदावती	नागौर जिले मे
13 बनवीर			दोनो की शाखाओं तथा जागीरों का विवरण नही मिलता।
14 नीमबो			

बूंदी की स्त्री से उत्पन्न सातल जोधा का सबसे बडा पुत्र था। वह उत्तर पश्चिम की तरफ भाटियों की भूमि पर बस गया। वहां उसने एक दुर्ग बनवाया

जिसका नाम "सातलमेर" रखा। यह पोकरण से केवल पाच मील दूर था। मरूभूमि की एक यवन जाति सराई के सरदार के साथ युद्ध करते हुए वह मारा गया। उसकी सातो स्त्रिया उसके मृत शरीर के साथ सती हुईं। इस सघर्ष मे खान सरदार भी मारा गया था।

चौथे पुत्र दूदा न मेडता के मैदानी भाग मे अपने वश की प्रतिष्ठा की। उनके वशज मेडतिया कहलाये। उनकी सख्या मे आशातीत वृद्धि हुई और उन्होने हमेशा अपने आपको मरूभूमि के श्रेष्ठ सनिक सिद्ध कर दिखाया था। राणा कुम्भा की पत्नी[4] विख्यात मीरा बाई उसकी पुत्री थी और जिस शूरवीर जयमल ने अकबर के विरुद्ध चित्तौड की रक्षा की थी वह उसका पोता था और उसके वशज बदनौर के सरदार आज भी मेवाड के प्रथम श्रेणी के सोलह सरदारो मे एक है।

छठे पुत्र बीका न अपने चाचा काधल के पदचिह्नो पर चलत हुए और उसके साथ मिलकर छ जाट जातियो की अधिकृत भूमि को जीता। उसने एक नगर का निर्माण करवाया और अपने नाम पर उस नगर का नाम बीकानेर रखा।

अपनी नई राजधानी के निर्माण के बाद जोधा तीस वष तक और जीवित रहा। उस समय तक उसके पुत्र पौत्र मरूभूमि मे अपने वश का काफी विस्तार कर चुके थे। सवत् 1545 म इकसठ वष की आयु मे जोधा का देहा त हो गया। मारवाड के विशाल क्षेत्र मे जोधा ही राठौड कुल का दूसरा सस्थापक था। जीवन की प्रथम अवस्था मे उसे जिन सकटो का सामना करना पडा, उन्होने उसकी उन्नति के माग को साफ कर दिया। जिन शूरवीर राठौडो से उसे सहयोग मिला उनको वह समस्त जीवन न भूल सका। हरबू साखला[5] पाबूजी[6] और रामदेव राठौड[7] की मूर्तिया पत्थर मे कटवाकर जोधा ने प्राचीन मडोर के सम्मुख भाग मे स्थापित की।

सूजा (सूरजमल) उत्तराधिकारी बना[8] और उसने जोधा की गद्दी पर बठकर सत्ताईस वष तक शासन किया। उसे भी सीहाजी के राज्य का बढाने का श्रेय था। सवत् 1572 (1516 ई०) मे तीज के त्यौहार के दिन पठाना के एक सनिक समूह न पीपाड[9] पर आक्रमण किया और एक सौ चालीस मारू स्त्रिया को पकड कर ले गये।[10] सूजा को जब राजपूत स्त्रियो पर किये गये इस बलात्कार की जानकारी मिली तो वह तुरन्त उनके उद्धार के लिये चल पडा। उस समय जो सरदार और सनिक उसकी सेवा म उपस्थित थे, उन्ही को साथ लेकर वह पठाना के पीछे गया, उन्हे पकडा और पराजित करके खदेड दिया और स्त्रियो का उद्धार किया। परन्तु परन्तु इसके लिये उसे अपने प्राणो की आहुति देनी पडी। उसके इस साहसी काय के गीत आज भी मारवाड मे गाये जाते हैं।

सूजा के पाच लडके थे—(1) बाघा जिसकी असमय मे ही मृत्यु हो गई था उसका लडका गागा राठौडा का राजा बना। (2) ऊदा जिसके ग्यारह लडके हुए जो

ऊदावता क नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी मुख्य जागीरें थी–निमाज, जतारण, गूदाज वराठिया रायपुर इत्यादि। इनके अलावा कुछ जागीरें मेवाड राज्य म भी थीं। (3) तीसरे पुत्र सागा को मारवाड मे ही वराह नगर मिला। उसक वशज सागावत कहलाये। (4) चौथ पुत्र प्रयाग से प्रागदास शाखा की उत्पत्ति हुई। (5) वारमदव[11] पाचवा पुत्र था। उसके नारा[12] नाम का एक पुत्र पैदा हुआ था। सोजत म उसकी पूजा होती है। उसके वशज नारावत जोधा कहलाय।

सवत् 1572 (1516 ई) म सूजा की मृत्यु के वाद उसका पोता गागा जोधपुर के सिहासन पर वैठा। उसके चाचा सागा ने उसके उत्तराधिकार का विरोध किया और दौलतखा लादी[13] जिसन कुछ दिना पूव ही राठौडो को नागौर स निकाल वाहर किया था की सहायता प्राप्त की। इसके फलस्वरूप मारवाड म एक भयानक उत्पात शुरू हो गया और जोधा के वशज को दो पक्षा मे विभाजित कर दिया। आखिर एक भयकर युद्ध म सागा मारा गया और उसका सहयोगी पठान परास्त होकर भाग गया।

गागा क राज्याभिषक क वारह वप वाद, तुर्किस्तान स आय मुगला के आक्रमण का विरोध करने के लिये जोधा के पुत्रा को मेवाड का साथ देन का निमत्रण मिला। राणा सागा न हिन्द क राजाआ का नतृत्व किया और गागा ने उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए मवाड के ध्वज के नीचे शत्रु से युद्ध करने के लिय अपनी सेना भेजी। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये राजपूतो का यह अतिम सयुक्त प्रयास था। वयाना के निकट लडे गये युद्ध म राजपूत सघ की पराजय हुई। गागा का पाता रायमल[14] मेडतिया मरदार खरतो और रत्ना तथा अनेक शूरवीर राठौडो के साथ युद्ध म मारा गया।

इस घटना के चार वप वाद गागा की मृत्यु हो गई और सवत् 1588 (1532 ई) म मालदेव उसक मिहासन पर वैठा। मारवाड के इतिहास मे उसकी प्रतिष्ठा अन्य किसी भी राजा स कम न थी। इस समय राज्य के साधनो को सगठित करने तथा उसका विस्तार करने के लिय मारवाड की स्थिति काफी अनुकूल थी। सम्राट वावर को उसक रेतील मदाना क प्रति कोई आकपण न था और उसका ध्यान गगा क उपजाऊ मदानो पर केंद्रित था। इसलिय मालदेव को मारवाड की उन्नति करन का अवसर मिल गया। उसन दिल्ली और मारवाड की सीमा के कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया और दूढाड के भीतरी भाग मे अपने सनिक दस्ते कायम कर दिये। राणा सागा की मृत्यु और मवाड घराने के दुर्भाग्य–अल्पायु राणाओं का शासन उत्तर स मुगलो क आक्रमण और दूसरी तरफ से गुजरात क वादशाहो के अभियानो ने मालदेव को विना किसी विरोध के अपनी शक्ति वढान का अवसर प्रदान किया। उसन एक सच्चे राजपूत की भाति मित्र और शत्रु दोनो के

विरुद्ध तलवार उठाई और निःसन्देह राजवाड़े का सब शक्तिशाली राजा बन गया। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता ने उसको 'हिन्दुस्तान का सबसे शक्तिशाली राजा" कहा है।

सिंहासन पर बैठने वाले वर्ष में ही उसने अपने घराने के दो प्रमुख इलाके— नागौर और अजमेर पर पुनः अधिकार कर लिया। सवत् 1596 में उसने सींधला से जालोर सिवाना[15] और भाद्राजून छीन लिया और दो वर्षों के बाद ही उसने बीका के वंशजों को बीकानेर से निकाल दिया। लूनी नदी के तटवर्ती जिन क्षेत्रों को सीहा ने अपने अधिकार में कर लिया था वहां के राजाओं ने राठौड़ों की अधीनता को त्याग कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। मालदेव ने उन सबको पराजित करके उन्हें पुनः राठौड़ों की अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया। उसने मरुभूमि के भोमिया सरदारों को पराजित कर अपनी सेवा में उपस्थित होने के लिए विवश किया। इसके बाद उसने भाटियों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया जो काफी लम्बा चला और अन्त में उसने विक्रमपुर को जीत लिया। विक्रमपुर में राठौड़ों की ही एक शाखा रहती थी परन्तु वे लोग भाटियों में मिल गये थे। अब वे लोग मालदोत के नाम से प्रसिद्ध हैं। मारवाड़ में मालदोतों को साहसी और पराक्रमी समझा जाता है। उसने अपने वंश की कुछ शाखाओं को मेवाड़ और ढूंढाड़ में भी प्रतिष्ठित करवाया और कच्छवाहों की राजधानी से केवल बीस मील की दूरी पर स्थित चाकसू पर अधिकार कर वहां अपने सैनिक तैनात किये। उसने देवड़ाओं से सिरोही छीनकर अपने राज्य में मिला लिया यद्यपि उसकी माँ इसी वंश की थी। परन्तु मालदेव इन स्थानों को जीत से ही सतुष्ट होने वाला नहीं था अपितु उन्हें हमेशा के लिये अपने अधिकार में बनाये रखने की दृष्टि से उसने अपने राज्य के सभी भागों में अनेक दुर्गों का निर्माण करवाया। उसने जोधपुर के चारों तरफ एक मजबूत प्राचीर बनवाई, एक विशाल महल का निर्माण करवाया और जोधपुर दुर्ग में भी कई निर्माण कार्य करवाये। उसने सातलमेर के दुर्ग को तुड़वाकर उसकी सामग्री से पोकरण[16] को सुदृढ़ बनाया। इसको उसने भाटियों से जीता था। उसने भाद्राजून, गूंदोज, रियाँ, पीपाड़ और दुनाड़ा स्थानों पर भी दुर्गों का निर्माण करवाया। सिवाना में उसने कुंडल कोट का निर्माण करवाया और फलौदी के दुर्ग में भी अतिरिक्त निर्माण कार्य करवाये। उसने गढ़ बीटली (अजमेर दुर्ग) में कोट बुर्ज का निर्माण करवाया और एक यन्त्र के द्वारा दुर्ग के ऊपर पानी ले जाने की व्यवस्था की। भट्ट कवियों का कहना है कि साभर झील से मारवाड़ राज्य को होने वाली आय से उसने उपरोक्त सभी कार्य पूरे करवाये।

मालदेव के शासनकाल में मारवाड़ की सीमाओं का काफी विस्तार हुआ। उसके राज्य में सोजत साभर मेड़ता, खाटू बदनोर, लाडनू, रायपुर, भाद्राजून नागौर, सिवाना, लाहगढ़, झागलगढ़ बीकानेर भीनमाल, पोकरण बाड़मेर, कसौली रवासी, जोजावर जालोर बवली, मलार, नाडौल फलौदी साचोर डीडवाना, चाकसू लावा

मलेरना, देवरा, फतहपुर, उमरसीर, ग्राबर वनियापुर टाक, टोडा, अजमेर, जहाजपुर और परमास्का, उदयपुर (शेखावाटी मे) कुल मिलाकर अडतालीस जिले सम्मिलित थे। इनमे से जालोर अजमेर, टोंक, टोडा और बदनौर जसे प्रत्येक जिले मे 360 नगर थे और कोई ऐसा जिला न था जिसम 80 स कम नगर रहे हो। परन्तु उपयुक्त सभी 38 जिलो पर उसका अधिकार अधिक समय तक नही रहा। चाक्सू, लावा, टोंक, टोडा और जहाजपुर थोड समय के बाद ही उसके हाथ से निकल गये। बदनौर का भी यही भाग्य रहा। यद्यपि बदनौर म उसके अन्तगत 308 गावो मे जयमल के वशज मेडतिया राठौड रहा करते थे, परन्तु व हमेशा अपनी जन्मभूमि के स्थान पर मेवाड के शत्रु के विरुद्ध तलवार धारण किया करते थे। जोधा के परिवार की यह शाखा पिछले कुछ समय से बहुत अधिक शक्तिशाली हो गई थी, अत मेडता उनके अधिकार स लेकर राज्य मे मिला दिया गया। इस अवस्था मे मेवाड न यहा के सरदार को आश्रय दिया। इसी बीच मारवाड के कुछ अन्य सरदारो की बढती हुई शक्ति को उनकी जागीरो को जब्त करके नियन्त्रित करने की चेष्टा की गई। कूम्पावता से जैतारण छीन लिया गया। साम तो के अधीन जागीरो को कभी नियमित नहीं किया गया और राजाओ के नये नये वशजो को उनके जन्म के साथ ही प्रत्येक को जागीर दी जाती रही और अन्त म सम्पूर्ण मरुभूमि ही असख्य टुकडो मे विभाजित हो गई। मालदेव ने इस विभाजन की प्रक्रिया को रोकने की आवश्यकता अनुभव की और उसने जागीरो की श्रेणिया निर्धारित की और कुछ शाखाओ को उन जागीरो पर वशानुगत अधिकार प्रदान किया। रणमल और जोधा के पुत्रो के अधिकार को कभी नहीं बदला गया। वे आज भी उन पर काबिज हैं।

मालदेव न अपने शासन के प्रारम्भिक दस वष अपन राज्य की उन्नति और विस्तार मे लगा दिये। बाद का समय इसकी सुरक्षा म व्यतीत किया। मुगल वश के सस्थापक बाबर की इन्ही दिनो म मृत्यु हो चुकी थी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी को थोडे वर्षो बाद ही शेरशाह ने नव निर्मित साम्राज्य स निकाल दिया था। कहा जाता है कि इस अवसर पर हुमायूँ ने मालदेव स आश्रय की याचना की थी। परतु मालदेव ने उसे आश्रय नही दिया। इसका कारण था। बयाना के भीषण युद्ध मे मालदेव का बडा पुत्र मारवाड की सेना का नेतृत्व कर रहा था। मेवाड के सागा की सहायताथ लडे गये इस युद्ध मे वह मारा गया। मालदेव अपने पुत्र के शोक को न भुला पाया।[17] परिणामस्वरूप चगताई का ... सौभाग्य में और चाहे सकट में, उसके लिये कभी रुचिकर नही रहा ... न कभी सोचा भी न होगा कि उसके अपने ... किम ... से जुड जायेगा और उसकी इस ... का बदला लेगा।[18] उस समय ... किया ... के लडके उदयसिंह को मारवाड ... होगा। बया उस मालदे...

हुमायू का सहायता न देन से मालदेव का काई लाभ न मिला। क्या शेरशाह न यह सोचा कि मालदेव न भगोडे हुमायू को व दी बनान का प्रयास न करके अच्छा नही किया अथवा यह कि दिल्ली के पडौस म मालदेव जसे शक्तिशाली राजा की उपस्थिति मे उसका दिल्ली का सिहासन असुरक्षित रहेगा। जो भी कारण रहा हो, वह अस्सी हजार सनिको के साथ मारवाड पर चढ बठा। मालदेव न उन्ह आगे बढने दिया और उनका विरोध करने के लिए पचास हजार सनिक एकत्र किये। उसने जिस सतकता और निर्णायक बुद्धि से कदम उठाये कि युद्ध कला मे दक्ष शेरशाह को हर पडाव पर सुरक्षात्मक कदम उठाने के लिये विवश होना पडा। अपनी छावनी म वठकर शेरशाह सम्पूण स्थिति पर विचार करन लगा। वह राठौडो की शक्ति से अपरिचित न था और उन्ह म मुख युद्ध म परास्त करना आसान न था। इसलिय मालदेव को परास्त करन के लिय वह अनक प्रकार के उपाय सोचता रहा। उसने अपने जीवन मे राजनीतिक चालो द्वारा सदा सफलता पाई थी। इसी उधेडबुन मे एक महीना गुजर गया। दोना सेनाए आमने सामने पडी थी और दिन प्रतिदिन शेरशाह की स्थिति नाजुक होती जा रही थी। इस स्थिति से निकलन का कोई माग दिखाई नही दे रहा था। ऐसी स्थिति मे उसने एक चाल चली जा राजपूता पर प्राय सफलतापूवक काम मे लाई जाती रही थी। वह चाल थी—राजा के मन मे अपन सामन्ता के प्रति अविश्वास की भावना को उत्पन्न कर उनकी एकता का भग करना। उसने वडी बुद्धिमानी के साथ एक पत्र तयार किया जिसको पढते ही मालदेव को अपने सामन्ता की निष्ठा के प्रति स देह उत्प न हो जाय। यह पत्र तयार करके किसी युक्ति से मालदेव के हाथो मे पहुचने की व्यवस्था कर दी गई। फिर क्या था, शेरशाह को अपने षडय त्र मे सफलता मिल गई। मालदेव उसके षडयन्त्र को न समझ सका और उस पत्र को पाने के बाद उसका अपन सरदारो से विश्वास उठ गया। उसन अपने सरदारा से इस सम्बन्ध म न ता कोई बातचीत की और न युद्ध करने का कोई कायक्रम बनाया। कुछ सरदारा न उसके भ्रम को दूर करन की चेष्टा की पर तु मालदेव न युद्ध को स्थगित कर वापस लाटन का निश्चय कर लिया। एसी स्थिति मे दो प्रमुख सरदारो[19] जिन पर स देह किया जा रहा था अपने बारह हजार सनिको के साथ शत्रु सेना पर टूट पडे और मारकाट मचाते हुए शेरशाह के निजी शिविर तक जा पहुचे। पर तु अधिक सख्या वाले विजयी रहे और अपनी स्वामि-भक्ति का परिचय देन वाले राजपूत नष्ट हो गय। मालदेव का शेरशाह की चाल समझ मे आ गई। पर तु अब समय हाथ से निकल चुका था। सीहा के वशजा न अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा म अपन प्राणा की आहुति दे दी थी। शेरशाह न उनकी शूरवीरता का उल्लेख करत हुए कहा था, मुट्ठी भर बाजरे के लिय उसने हिन्दुस्तान का साम्राज्य लगभग खा दिया हाता।

भाग्यवश मालदेव शेरशाही वश क पतन के बाद भी जीवित रहा और उसन देखा कि दिल्ली का ताज एक बार पुन भगोडे हुमायू पर दयालु हो गया था।

मालदेव ने अपने खोये हुए क्षेत्रों को प्राप्त कर लिया था, परन्तु उसके भाग्य में अधिक दिनों तक उनका सुख-उपभोग नहीं लिखा था। अकबर की माँ ने अपने पुत्र को पुरानी स्मृतियों की—हुमायूँ के मारवाड़ जाने और उसके साथ मालदेव के दुर्व्यवहार की याद दिलाई थी और उसका बदला लेने के लिये अथवा एक सूझबूझ वाली नीति के अन्तर्गत राजपूतों की शक्ति का दमन करने के निमित्त, युवा अकबर ने सवत् 1617 (1561 ई) में मारवाड़ पर आक्रमण कर दिया। उसने मेड़ता के शक्तिशाली दुर्ग को घेर लिया। मेड़तिया राजपूतों ने जमकर संघर्ष किया। उनमें से अधिकांश मारे गये और बचे हुए किसी प्रकार अपने राजा के पास पहुँच गये। मेड़ता पर अकबर का अधिकार हो गया। उसके बाद नागौर भी जीत लिया गया। अकबर ने इन दोनों महत्वपूर्ण इलाकों का शासन राठौड़ों की छोटी शाखा के राजा बीकानेर के रायसिंह को सौंप दिया। बीकानेर अब अपने पैतृक राज्य—जोधपुर से स्वतन्त्र हो चुका था।

सवत् 1625 (1569 ई) में मालदेव ने समय की आवश्यकता का अनुभव करते हुए अपने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को उपहारों के साथ अकबर के पास भेजा,[20] जो उन दिनों अजमेर में ठहरा हुआ था। अजमेर का इलाका अब मुगल साम्राज्य का अंग बन चुका था। परन्तु अकबर इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। मालदेव का स्वयं न आना अकबर के असन्तोष का कारण बना। उसने मालदेव के अहम् को तोड़ने के लिए रायसिंह को जोधपुर का राज्य प्रदान कर राठौड़ वंश पर उसकी सर्वोच्चता को स्थापित करने का प्रयास किया। चन्द्रसेन को मुगलों के व्यवहार से गहरा आघात लगा। उसमें राठौड़ों के स्वाभिमान के सभी गुण थे और उसने अकबर के विरोध तथा अपने बड़े भाई उदयसिंह के अधिकारों की परवाह न करते हुए अपने देश की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिये संघर्ष करने का निश्चय किया। दूसरी तरफ, उदयसिंह[21] ने अकबर का संरक्षण प्राप्त कर लिया। अकबर ने उसे एक हजार का मनसब देकर अपनी सेवा में भर्ती कर लिया। उस युग के इतिहास में वह "मोटा राजा" के नाम से विख्यात हुआ, क्योंकि उसकी देह काफी स्थूलकाय थी।

मारू के असंख्य शूरवीरों के साथ चन्द्रसेन ने निरंकुश अकबर की अधीनता स्वीकार करने के स्थान पर मरुभूमि की परम्परा को कायम रखने का निश्चय किया। जोधपुर से खदेड़े जाने के बाद उसने सिवाना के पहाड़ी दुर्ग का आश्रय लिया और अपनी मृत्युपर्यन्त उस पर अपना अधिकार बनाये रखा। सतरह वर्षों तक वह अपनी पदवी और सिंहासन पर अपने दावे को बनाये रखने तथा राठौड़ वंश के अनुयायियों को विभाजित करने में सफल रहा। यद्यपि उदयसिंह को अकबर का पूर्ण समर्थन प्राप्त था, फिर भी वह दोनों की संयुक्त शक्ति के तूफान का सामना करता रहा और इसका सामना करते करते ही वीरगति को प्राप्त हुआ। वह अपने पीछे तीन पुत्र—उग्रसेन, आसकरण और रायसिंह छोड़ गया। रायसिंह सिरोही के राव सुरताण के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया।

मालदेव, जिसने यद्यपि बादशाह की सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया था मुगलो के साथ ववाहिक सम्बन्ध कायम करन के अपमान से बचा रहा।[22] उसके लडके को मारवाड के राजा की पदवी मिलन के कुछ दिनो बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके अंतिम दिन घोर निराशा म बीते। यदि वह कुछ दिन और जीवित रहता और उसम पहल जसी वीरता कायम रही होती तो वह प्रताप की नवोदित शक्ति के साथ मिलकर मुगलो की नवोदित शक्ति से राजपूत स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकता था।

सवत् 1625 (1569 ई०) म मालदेव की मृत्यु हो गई।[23] उसके निम्नलिखित बारह लडके थे—

1 रामसिंह—उसे मालदेव ने अपने उत्तराधिकार से वचित कर निकाल दिया था। वह मेवाड के राणा की शरण म चला गया। उसके सात लडके थे। पाचवें पुत्र केशवदास का कुछ उल्लेख पाया जाता है। उसने चोली महेश्वर को अपना निवास स्थान बनाया था।
2 रायमल—बयाना के युद्ध म मारा गया।
3 उदयसिंह—मारवाड का राजा बना।
4 चन्द्रसेन—झाला वश की स्त्री से उत्पन्न हुआ था। उग्रसेन बडा लडका था। उग्रसेन को भिनाय नामक स्थान की जागीर मिली थी। उसके भी तीन लडके पैदा हुए।
5 आसकरण—इसके वशज आज भी जूनिया नामक स्थान पर आबाद हैं।
6 गोपाल दास—ईडर नगर मे मारा गया।
7 पृथ्वीराज—इसके वशज् आज भी जालोर मे पाये जाते हैं।
8 रतनसिंह—इसके वशज भाद्राजून म पाये जाते है।
9 भोजराज—इसके वशज अहारी मे पाय जाते हैं।
10 विक्रमाजीत, 11 भान और 12 (नाम नही मिलता) इन तीनो के बारे मे कोई उल्लख नही मिलता।

मालदेव की मृत्यु के बाद उसका बेटा उदयसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। उसने कुछ ही समय बाद अपनी बहिन का विवाह मुगल राजघराने मे कर दिया।

सन्दर्भ

1 जोधा मडोर के राव रणमल (रिडमल) का लडका था। मेवाड म रिडमल और राठौड सरदारो के नरसहार से वह बच निकला और अपने कुछ सनिको

के साथ मारवाड भाग ग्राया । वहा उसने ग्रपनी शक्ति को सगठित कर काफी ममय तक मेवाड के ग्रधिकारियो से सघप किया ग्रौर ग्रत मे उह मारवाड से खदेड कर ग्रपने पतृक राज्य को प्राप्त करने म सफल रहा ।

2 इस पहाडी को चिडियाटू क पहाडी भी कहा जाता है ।

3 जोधपुर दुग की नीव मे एक निम्न जाति के जीवित व्यक्ति को चुना गया था ।

4 मीरा बाई राणा कुम्भा की पत्नी नही थी । वह राणा सागा क बडे पुत्र भोजराज का विवाही गई थी । वह राव दूदा की पुत्री नही थी । वह दूदा के दूसरे पुत्र रतनसिंह की पुत्री थी ।

5 हरबू साखला एक वीर पुरुष हुए । मेवाड से भाग कर ग्राये जोधा को उहान पूरा पूरा सहयोग दिया ग्रौर उसी के फलस्वरूप जोधा ग्रपना राज्य प्राप्त करने मे सफल रहा ।

6 पाबूजी चारणा की गायो की रक्षा करते हुय मारे गये थे । उह 'लोक देवता' के रूप मे पूजा जाता है । वे जोधा से काफी पहले पदा हुये थे ।

7 रामदेवजी राठौड नही थे । वे तवर वश के थे । उन्हे भी "देवता" के रूप म पूजा जाता है । ग्राज भी "रूणेचा' (रामदेवरा) मे उनके नाम का बडा भारी मेला लगता है जिसमे लाखो श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं ।

8 ग्रधिकाश विद्वानो की मान्यता है कि जोधा के बाद सातल गद्दी पर बठा था ग्रौर उसके बाद सवत् 1548 मे उसका भाई सूजा सिंहासन पर बठा था ।

9 जोधपुर से 56 मील की दूरी पर है । यहा बनियो के घर ग्रधिक थे ।

10 140 राजपूत स्त्रियो को ले जान की घटना सही नही है । व स्त्रिया ग्रय जातियो की थी । इसके ग्रलावा यह घटना सूजा के समय मे न होकर राव सातल के समय म हुई थी जब उसन ग्रजमेर के मल्लू खाँ के शिविर पर ग्राक्रमण कर उन स्त्रियो का उद्धार किया था ।

11 वीरमदेव सूजा का पुत्र नही था । वह सूजा के बेटे बाणाजी का पुत्र था जो ग्रल्पायु मे ही मर गया था ।

12 नारा वीरम का पुत्र नही था । वह सूजा का पुत्र था ग्रौर बाणाजी से बडा था ।

13 यह दौलत खाँ लोदी वश वाला नही था । ग्रपितु एक स्वत त्र सरदार था ग्रौर नागौर पर उसके पूवजो ने ग्रधिकार किया था ।

14 यह रायमल राव गागा का पोता नही था वल्कि दूदाजी मेडतिया का लडका था । गागा के पोते रायमल का जन्म तो इस युद्ध के बाद हुग्रा था । गागा का मवसे बडा पोता राम था । उसका जन्म भी इस युद्ध के बाद हुग्रा था ।

15 मालदेव ने ये तीनो स्थान मीधला स नही जीत थे । जालौर बिहारी पठानो से और सिवाना जेतमालात राठोडा से जीता था ।

16 पोकरण राठौडा की चाम्पावत शाखा के अधिकार म था । उस समय वहा का सरदार सालमसिंह था । यद्यपि चाम्पावत जोधपुर राज्य के अधीन थे किन्तु राठौड राजा इनके भय स कापत ही रहते थ । सालमसिंह का परदादा देवीसिंह प्राय यह कहता रहता था कि मारवाड का सिंहासन तो मेरी तलवार के म्यान के अन्दर है ।"

17 बयाना के युद्ध मे जो रायमल मारा गया था वह मालदेव का पुत्र नही था । अत पुत्र शोक का सवाल ही नही उठता ।

18 अकबर का ज म हुमायू के मारवाड आने और वापस जाने के काफी बाद हुआ था ।

19 नणसी ने लिखा है कि मेडता के वीरम ने 20 हजार रुपये मालदेव के सेनानायक कू पा के पास भिजवा कर कहलवाया कि वह उसके लिए कम्बल खरीद ले । इसी तरह उसने जेता नामक सरदार के पास भी तलवारें खरीदने के लिए रुपये भिजवाये थे । इन दोनो सरदारो ने शेरशाह पर आक्रमण किया था ।

20 टाड का यह कथन गलत है । मालदेव तो इस समय से बहुत पहले मर चुके थे । उन दिनो चन्द्रसेन राठौडो का राजा था । वस्तुत चन्द्रसेन का लडका रायसिंह अकबर की सेवा म उपस्थित हुआ था ।

21 उदयसिंह मालदेव का बडा सगा भाई था । पर तु उसकी माता के कहने पर मालदेव ने उसके स्थान पर उसके छोटे भाई चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया और उदयसिंह को फलौदी की जागीर प्रदान की । तभी से उदयसिंह चन्द्रसेन स वैमनस्य रखन लगा था ।

22 यह कथन सही नही है । पहले ही लिखा जा चुका है कि मालदेव 1562 ई मे ही मर गया था ।

23 मालदेव की मृत्यु 1562 ई० मे हुई थी ।

अध्याय 34

राव उदयसिंह

मालदेव की मृत्यु के बाद राठौड़ो के इतिहास मे एक नया अध्याय शुरु हुआ। अब तक राठौड़ो ने सीहाजी के वशधरो की आज्ञा का पालन किया था। अब वे अपने से कही अधिक शक्तिशाली के आदेशो का पालन करने लगे। अब राठौड़ो के पचरगे झण्डे[1] जिसके अन्तगत उन्होने अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त की थी, के ऊपर मुगल साम्राज्य का ध्वज फहराने लगा। इस समय के बाद से राठौड़ शासको ने मुगलो की सेवा करते हुए धीरे धीरे शाही कृपा प्राप्त करने की चेष्टा शुरू कर दी। उन्हें अपने प्रमुख सरदारो सहित युवराज के नेतृत्व म मुगलो की सेवा म एक सेना रखनी पड़ी। उनकी शूरवीरता शाही दरबार का अनुग्रह प्राप्त करने मे सफल रही। परतु उदयसिंह को प्रारम्भ मे एक हजार का मनसब ही मिल पाया। यद्यपि वहा से आने वाली धन सम्पदा ने मरुभूमि के ऊसर प्रदेश को सम्पन्न बना दिया, बीजापुर और गोलकुण्डा की लूट के कुछ अश से उसका राजकोष भर गया, कई भव्य भवन भी बन और उनके राजा को दरबार मे सम्मानित स्थान भी मिला, फिर भी राठौड़ो को अपनी परतन्त्रता का दुख बना रहता था।

सवत 1625 म मालदेव की मृत्यु[2] हो गई, परन्तु इतिहासकार चन्द्रसेन की मृत्यु के पहले उदयसिंह के राजा बनने की बात को स्वीकार नही करते। उन दिनो म उसके पिता और सरदारो ने अकबर के सामने उसके आत्मसमपरण को असम्मानजनक मानते हुए उस उत्तराधिकार के योग्य नही समझा था।[3]

उदयसिंह ने जो माग अपनाया था और सवत् 1640 (1584 ई) म मालदेव के सिंहासन पर बठ गया था उसकी चर्चा करने के पूव सीहाजी के मारवाड प्रवेश स अब तक की घटनाओ की समालोचना करना उचित होगा। शुरू से लेकर उदयसिंह के समय तक मारवाड के इतिहास का हम तीन प्रमुख कालो मे विभाजित कर सकते हैं—1 1212 ई मे खेड मे सीहाजी के बसने से लेकर 1381 ई मे चूडा द्वारा मडोर की विजय तक। 2 मडोर विजय से लेकर 1459 ई मे जोधपुर की प्रतिष्ठा के समय तक। 3 जोधपुर की प्रतिष्ठा से लेकर सन् 1584 ई तक, उदयसिंह के राजसिंहासन पर बैठने तथा मुगलो की अधीनता स्वीकार करने तक।

इन चार सौ वर्षों की अवधि में राठौड़ों के ऐतिहासिक जीवन की स्पष्ट समीक्षा की आवश्यकता है। आरम्भ का दीर्घ समय मरूभूमि के भोमिया सरदारों से मारवाड का पश्चिमी भाग हस्तगत करने में व्यतीत हुआ और जितनी भूमि अधिकार में ला पाये उसी से संतोष करना पड़ा। उसके बाद मंडोर उनके अधिकार में आया और उसी समय लूनी नदी के दोनों तरफ की उपजाऊ भूमि पर भी उनका अधिकार कायम हुआ। जोधा ने जोधपुर बसाया और यह नगर राठौड़ों की नई राजधानी बना। राजपूतों में राजधानी का परिवर्तन हमेशा राज्य के आन्तरिक संगठन का प्रतीक होता है और कई बार इसके साथ जाति अपनी पदवी भी बदल देती है। जोधपुर की स्थापना एक नये युग की शुरूआत थी और अब से मारू के सिंहासन पर केवल जोधा के वंशज ही बैठ सकते थे। दूसरी शाखाएं जो ताज से संबंधित न थीं उन्हें उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया। यह राजपूत राजनीति का एक विशेष लक्षण है और सम्पूर्ण जाति पर लागू होता है। इसका वर्णन आगे भली प्रकार से किया गया है।

एक राज्य निर्माता की सभी महत्वाकांक्षाओं के साथ, जोधा ने अपने देश की सामन्ती व्यवस्था को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उसके पिता रणमल के चौबीस लड़के थे और उसके स्वयं के चौदह पुत्र थे। इन सबको देखकर उसको इस बात का ख्याल हुआ कि इन सबके जो संतानें पैदा होंगी, उनकी संख्या बहुत बढ़ जायेगी और जागीरदारी प्रथा की पुरानी व्यवस्था के अनुसार जो जागीरें दी जायेंगी तो राज्य की सम्पूर्ण भूमि टुकड़ों में बंट जायेगी। उस स्थिति में भूमि को लेकर विवाद होना बहुत स्वाभाविक हो जायेगा। यह सोच विचार कर जोधा ने जागीरों की संख्या और उनकी सीमा को निश्चित कर दिया। उसके बड़े भाई काधल ने बीकानेर में जाकर अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी। उसके वंशज काधलोत के नाम से प्रसिद्ध हुये और उन लोगों ने स्वतंत्रता के साथ वहां शासन किया। जोधा के बाद के दो भाई चांपा और कूंपा, दो पुत्र दूदा और करमसिंह तथा पौत्र ऊदा अपने अपने नामानुसार चांपावत, कूंपावत, मेड़तिया (दूदा के वंशज) करमसोत और ऊदावत नामक छह गोत्रों के अधिपति हो मारवाड के स्तम्भ स्वरूप राज करने लगे।[4] मारू के प्रथम सामन्त की पदवी चांपा और उसके वंशजों को दी गई। अन्य भाइयों, भतीजों और पोतों को भी कम आय वाली जागीरें प्रदान की गई। ये जमीनें उन्हें सांस्मी मुस्त हकुम (जो छीनी न जाय) दी गई। राजा जैसे अपने सिंहासन को पवित्र जानता है, वैसे ही भूमि के अधिकारी भी अपनी भूमिवृत्ति को पवित्र जानते हैं। राजा के साथ अति निकट का रक्त सम्बंध होने से वे अपने को उसका वृत्ति भोगी कहने में कुण्ठित नहीं होते, वरन् वे स्वयं गर्वित होकर कहा करते हैं 'जब तक हम सेवा करते हैं तब तक वह हमारा स्वामी है और जब सेवा की आवश्यकता नहीं होती, तो हम उसके भाई और कुटुम्बी हैं और पतृक राज्य में समान हकदार भी हैं।'

राव मालदेव ने जोधा द्वारा किये गये विभाजन को स्वीकार कर लिया, यद्यपि उसने द्वितीय श्रेणी की जागीरों में वृद्धि की थी और चूँकि उसके शासनकाल में मारवाड राज्य की सीमाएँ पूरी हो चुकी थी अत जागीरो की सीमा की पुष्टि करना आवश्यक हो गया था। मारवाड के जागीरी इलाके जोधा से लेकर मालदेव के वशजो के अधिकार में वशानुक्रम से है, परन्तु उनमें और बाद में प्रदान की गई जागीरो में भिन्नता विद्यमान है। पहली जागीरें विजय करके प्राप्त की गई थीं और उसके लिये यह नियम रखा गया था कि यदि जागीरदार के कोई पुत्र न हो तो गोद लिया हुआ लडका भी उत्तराधिकारी बन सकता है। परन्तु बाद में दी गई जागीरो के बारे मे यह नियम था कि पुत्र के न होने पर उन्हें वापस राज्य में मिला लिया जाता था। राजपूतो की जागीरें मालगुजार अर्थात् कर देने वाली थी। जागीरें किसी व्यक्ति को केवल उसके जीवन तक के लिये ही दी जाती थी।

यद्यपि यह उत्तम नियम उनके प्राचीन इतिहास में देखा जाता है, परन्तु जब तब प्रबन्ध न होने के कारण इस नियम के पालन में कभी कभी उपेक्षा भी हो जाती जाती थी। ये जागीरें दो प्रकार की थी। कुछ जागीरो में राजा को कर देना पडता था और कुछ में कर नही देना पडता था। सीहाजी से लेकर जोधा तक बहुत सी वश शाखाओं ने जो उस राज्य के उत्तरी और पश्चिमी भाग में निवास करते थे अपनी आर्थिक अवस्था कमजोर होने के कारण और बहुत ने अपने पूर्व पुरुषों के अभिमान के कारण उन जागीरो को स्वतन्त्र रूप से भोगा है। इतना सब होने पर भी सभी जागीरदार मारवाड के राजा को प्रधानता देते रहे और जब कभी उनके राज पर सकट आता तो वे सहायता देते रहे। ये लोग राजा को किसी प्रकार का कर नही देते थे, इसलिये उनकी जागीरें बिना कर वाली कहलाती थी। इस प्रकार की जागीरें बाडमेर कोटडा से फलसूद तक फैली हुई थी। दूसरी जागीरें यद्यपि पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नही हैं फिर भी उन्हें काफी सुविधाएँ प्राप्त थी। आवश्यकता पडने पर उनके स्वामियो को निर्धारित सैनिकों के साथ सेवा देनी पडती थी और विशेष अवसरो पर उन्हें अपने राजा को भेंट देनी पडती थी। महवा और सिन्दरा इसी श्रेणी की जागीरें हैं और उन्हें माफीदार जागीर कहा जाता था। इस क्षेत्र में आबाद प्राचीन वशो के लोग अपने पूर्वजो की उपाधियो से अपना परिचय देते हैं जैसे कि दुहडिया, मागलिया, ऊहड धावल आदि। उन्हें पता नही कि वे राठौड है भी अथवा नही। विवाह के अवसरो पर भाट लोग ही उनके गोत्रो आदि का परिचय दिया करते है।

इस योद्धा जाति के लिये किसी उपाधि से क्यो न पुकारा जाय, हमने समझने की सुविधा के लिये जागीरदार के नाम से याद किया है और आगे भी इसी नाम से उल्लेख करेंगे। जागीरदारी की उपाधि की परम्परा राठौड जाति में प्राचीन काल से अर्थात् सीहाजी के समय से प्रचलित है और वे इस कन्नोज से लाये थे।

राजस्थान के सभी राज्यो की जागीरदारी प्रथा एक सी थी और वह यूरोप की जागीरदारी प्रथा से बहुत मिलती-जुलती थी। अकबर जो हिंदू धर्म का पक्ष करता था ने अपने राज्य के बहुत से नियम इन प्रथाओ को देखकर ही बनाये थे।

पश्चिमीय राजनीति और भारतीय राजनीति की तुलना करते समय एक बात का ध्यान रखना उचित होगा कि जागीरदारी के नियम सब देशो मे जैसे कि राजपूतो मे पाया जाता है राजपूतो मे सब जागीरदार कुटुम्बी होते हैं (सिवाय बाहर के जागीरदारो के) और जिस प्रकार यूरोप मे राजा के प्रभुत्व को मानते हैं उसी प्रकार राजपूतो के जागीरदार भी मानते हैं। इस प्रकार, चापा के पुत्र (जो बडा राजा था) से लेकर एक निर्धन राजपूत तक सब राजा के साथ वंश सम्बंध रखते हैं। यह जानना कठिन है कि इससे लाभ है अथवा हानि। परंतु जोधा की संतानो मे से 1 20 000 राजपूतो का राजा मालदेव के लिये युद्ध मे उतरना एक प्रशंसनीय उदाहरण है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि उदयसिंह के सिंहासन पर बैठने के सम्बंध मे भट्ट ग्रंथो मे अलग अलग विवरण मिलते हैं। किसी ग्रंथ मे संवत 1625 (1569 ई) मे मालदेव की मृत्यु के बाद वह सिंहासन पर बैठा। जबकि ग्रंथो मे लिखा है कि सिवाना की घेरेबन्दी के समय उसके बडे भाई चन्द्रसेन[5] के मारे जाने के बाद वह सिंहासन पर बैठा था। इसमे सही क्या है कुछ नही कहा जा सकता। राजस्थान के इतिहास मे "उदय" नाम मे एक महाअनर्थकारी शक्ति देखी जाती है। जो कोई उदय नाम धारण कर जिस किसी सिंहासन पर बैठा, उसके ही द्वारा उस राज्य का सर्वनाश हुआ। सीसोदिया उदयसिंह की कायरता से मेवाड की स्वतंत्रता नष्ट हुई और जोधा के अयोग्य वंशज उदयसिंह के कारण मारवाड मुगलो की अधीनता मे चला गया।

अकबर के साथ जोधाबाई के विवाह मे जोधपुर शाही घराने के साथ पारिवारिक सम्बंध की डोर से बंध गया। अकबर ने मारवाड राज्य के जितने इलाके जीते थे, उनमे से अजमेर को छोडकर बाकी सभी उदयसिंह को लौटा दिये। इसके अलावा उसने मोटे राजा को मालवा मे कई उपजाऊ जागीरें भी प्रदान की जिससे उसके राज्य की आय दुगुनी हो गई। अपने शाही बहनोई की सहायता से उसने सामंतो की सत्ता को कुचल कर उनके पंख काट दिये। उसने कई पुरानी शाखाओ की जागीरें छीन ली। राव दूदा के वंशजो जो मेडतिया कहलाते थे की लगभग सभी जागीरें हस्तगत कर ली गई। उसने ऊदावतो मे जैतारण और चापा तथा कूपा के वंशजो की कई जागीरो को भी खालसा कर दिया।

बादशाह द्वारा किये गये उपकारो के प्रति उदयसिंह कृतघ्न नही निकला। राठौडो ने उसकी सेवा मे अनेक शौर्यपूर्ण कृत्य सम्पादित किये थे, क्योंकि उनका

राना इतना मोटा था कि कोई भी घोडा उसका भार वहन करने में असमर्थ था। अकबर उसे मरुभूमि का राजा कहा करता था। उसके चौतास लडके लडकियां थी। उनके द्वारा मारवाड की सामन्त प्रथा में कितनी ही नई शाखायें और जागीरों की वृद्धि हुई जिनमे गोविन्दगढ और पीसागढ मुख्य थी। इनमें से कुछ जागीरें उनके राज्य के बाहर थी। किशनगढ और मालवे में रतलाम। बाहरी जागीरों के नाम उनके संस्थापकों के नाम पर रखे गये थे और दोनो ही स्वतन्त्र राज्यों में परिवर्तित हुई।

उदयसिंह अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्षों बाद अर्थात् मालदेव की मृत्यु के तैंतीस वर्ष बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ। ख्यात ग्रन्थों मे उसकी मृत्यु का जो विवरण दिया गया है वह राजपूतों के व्यवहार में विद्यमान अंधविश्वास का एक ऐसा उदाहरण है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उस विवरण में राठौड राजकुमारों को दी जाने वाली नैतिक शिक्षा का भी विवरण है जिससे पता चलता है कि उन्हें बचपन से ही चुने हुये सरदारों की देखरेख मे कई प्रकार के प्रतिबन्धों के साथ जीवन व्यतीत करना पडता था। ख्यात का विश्वास किया जाय तो राठौड राजकुमार बीस वर्ष की आयु तक के स्त्री के वासनामय रूप से सर्वथा अपरिचित रहते थे। उदयसिंह को इस प्रकार की शिक्षा मिली थी अथवा नहीं—यह कहना कठिन है। क्योंकि अपने जीवन के अन्तिम दिनों मे जब वह बादशाह अकबर के दरबार से लौट कर अपने राज्य को आ रहा था तो मार्ग में बिलाडा नामक गाव के समीप उसने एक अत्यन्त रूपवती लडकी को देखा। उसने उससे विवाह करने का निश्चय कर लिया जबकि उसके सत्ताईस रानियां थी और वह एक ब्राह्मण (आयापंथी—देवी के उपासक) की लडकी थी।[6] ये ब्राह्मण बंगाली ब्राह्मणों से भिन्न किस्म के होते हैं और तान्त्रिक विद्या पर विश्वास करते है, मदिरा और मांस का सेवन करते हैं तथा सांसारिक जीवन के सभी सुखों का भोग करते है। राजा उदयसिंह ने लडकी के पिता को विवाह के लिये धमकाया अथवा बलात् विवाह करने की इच्छा प्रकट की—इस बारे में ख्यात ग्रन्थ मौन है। जो भी हो, लडकी के पिता ने अपनी पुत्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिये एक भयंकर कदम उठाया। उसने एक बडा होमकुण्ड खोद कर तैयार किया और अपनी लडकी के शरीर के कई टुकडे किये और उन्हें जलते हुए होमकुण्ड मे डाल दिया। उस ब्राह्मण ने उदयसिंह को श्राप देकर जलते हुए होमकुण्ड मे छलांग लगा कर अपनी जीवन लीला भी समाप्त कर दी। यह भयंकर समाचार उदयसिंह ने भी सुना। उसे अपनी अभिलाषा एक भयानक अपराध दिखाई देने लगी। वह अपनी मानसिक शान्ति को खो बैठा और कुछ दिनों बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।[7] कर्म भी कभी कभी सदाचारी बना देता है। बिलाडा के उस ब्राह्मण के ब्रह्मराक्षस होने का भय बहुत समय तक छाया रहा और यह भय राजकुमारों को सदाचारी बनाता रहा। उदयसिंह के प्रपौत्र प्रसिद्ध जसवन्तसिंह के साथ ऐसा ही हुआ। वह अपने किसी अधिकारी की लडकी

से प्रेम करने लगा और उसे देवी बावडी ले गया जहा उस ब्रह्मराक्षस का निवास था। जसव तसिंह ने जब उस लडकी का सतीत्व हर करन का प्रयास किया तो वह ब्रह्मराक्षस बाधक बन गया। वह जसव त के शरीर म प्रवेश कर गया और उसे आधा पागल बना दिया। बाद मे बडी मुश्किल से उस ब्रह्मराक्षस से राजा का पीछा छुडाया गया पर तु इसके लिये आसाप के सरदार को राजा के बदले मे अपने प्राणो की आहुति देनी पडी थी।

हम उदयसिंह का वृत्ता त उसके स ताना की सूची देकर उदयसिंह के शासन के इतिहास का समापन करेंगे। पहले लिखा जा चुका है कि उदयसिंह के चौतीस सतानें थी जिनमे सत्रह लडके और सत्रह ही लडकियाँ थी। उसके पुत्रो का विवरण निम्न प्रकार से पाया जाता है—

1 सूरसिंह—उसका उत्तराधिकारी बना।

2 अखैराज

3 भगवानदास—इसके तीन लडके हुए—बल्लू गोपालदास और गोवि द सिंह जिसने गोवि दगढ बसाया।

4 नरहरदास
5 शक्तिसिंह } इनके कोई सतान नही हुई।
6 भापत

7 रूपसत—इसके चार पुत्र हुय—महशदास जिसके पुत्र रतना न रतलाम बसाया जसव तसिंह प्रतापसिंह और कुनीरैन।

8 जयत—इसके चार लडक थ—हरसिंह, अमर क हीराम और प्रेमराज। इनकी सतानो को ब दा और खरवा की भूमिवृत्ति मिली थी।

9 किशनसिंह—इसन सवत् 1669 (1613 ई०) मे किशनगढ बसाया। इसके तीन लडके थे—सहसमल, जगमल और भारमल। भारमल के लडके हरीसिंह के लडके रूपसिंह न रूपनगर बसाया।

10 जसव तसिंह—इसके लडके मानसिंह न मानपुर बसाया। उसके वशज मानपुरा जोधा कहलाये।

11 केशव—इसन पीसानगढ बसाया था।

12 रामदास 13 पूरनमल 14 माधोदास 15 मोहनदास 16 कीरतसिंह 17 × (कोई विवरण नही मिलता)। उपयु क्त विवरण राजाओ की पुस्तक नामक ग्र थ म लिखा हुआ पाया जाता है।

सन्दर्भ

1 पचरगा झण्डा राठौडो का नही है । जयपुर के कच्छवाहो का है ।

2 टाड साहब ने मालदेव की मृत्यु का समय किसी स्थान पर सवत् 1627, कही सवत् 1625 और एक स्थान पर दत्तानी के युद्ध (स 1640) के बा॰ लिखा है । ये सभी तिथियाँ गलत हैं । उसकी मृत्यु सवत् 1619 म हुई थी ।

3 मालदेव ने चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था ।

4 सब मिलाकर आठ बडी-बडी जागीरें थी, उनमे से प्रत्येक की आय पचास हजार रुपया वार्षिक है । ये जागीरें आठ ठकुरायता के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

5 चन्द्रसेन उदयसिंह का बडा भाई नही था । उदयसिंह चन्द्रसेन से बडा था ।

6 यह कहानी सत्य प्रतीत नही होती । बिलाडा मे आई माता का मदिर जरूर है परन्तु आईपन्थी ब्राह्मण नही पाये जाते । सीरवी जाति के किसान विशेष कर आई माता के अनुयायी हैं ।

7 उदयसिंह की मृत्यु लाहौर मे बीमारी से हुई थी ।

अध्याय 35

राजा सूरसिह और गजसिंह

सवत् 1651 (1595 ई) मे सूरसिंह[1] जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। वह सवत् 1648 से ही शाही सेना के साथ लाहौर म नियुक्त था। उसने बहादुरी और निष्ठा के साथ साम्राज्य की सेवा की थी और उसकी सेवाओ से प्रसन्न होकर अकबर ने उदयसिंह के जीवनकाल मे ही उसके लडके सूरसिंह को सवाई राजा' की उपाधि और उच्च मनसब प्रदान किया था। कुछ दिनो बाद ही अकबर ने उसको सिरोही के उद्दण्ड राजा राव सुरतान का दमन करने का आदेश दिया। वह एक सुदृढ पहाडी दुग का स्वामी था और उसका राज्य चारो तरफ से पहाडियो से घिरा हुआ था। उसका विश्वास था कि बादशाह की सेना उसके पवतीय क्षेत्र मे आगे बढने का साहस नही जुटा पायेगी। इससे उसका स्वाभिमान उसे मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के विरुद्ध उत्साहित करता रहा। सूरसिंह के लिये अपने पुराने प्रतिशोध का हिसाब चुकाने के लिये एक अच्छा अवसर मिल गया। उसने सिरोही पर आक्रमण किया और उस नगर को बुरी तरह से लूटा। भट्ट ग्र थो मे लिखा है कि इस लूट के बाद राव सुरतान के पास चारपाई पर बिछाने के लिये कपडे तक न रहे। उसका सम्पूण अभिमान मिट्टी मे मिल गया और उसने मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली तथा अपने सैनिक दस्ते के साथ साम्राज्य की सेवा करने का वचन दिया।

इ ही दिनो मे बादशाह ने सूरसिंह को गुजरात के शाह मुजफ्फर के विरुद्ध युद्ध करन का आदेश दिया। भट्ट ग्र थ मे लिखा है, सूरसिंह युद्ध के लिये रवाना हुआ। उसके साथ सिरोही का राव सुरतान भी अपनी सेना के साथ गया। धुधुका नामक स्थान पर गुजरात की सेना के साथ युद्ध लडा गया। इस युद्ध म बहुत से राठौड सनिक मारे गये परन्तु विजय सूरसिंह की हुई। शाह पराजित हुआ और उसका दप चूर चूर हो गया। सूरसिंह ने गुजरात के अ к नगरो और गावो को लूटा और लूट मे प्राप्त समस्त धन सम्पत्ति बादशाह की सेवा मे दिल्ली भिजवा दी।[2] बादशाह उसकी सफलता से बहुत अधिक प्रसन्न हुआ और उसने सूरसिंह को एक बहुमूल्य तलवार तथा बहुतसी भूमि देकर पुरस्कृत किया।

ऐसा लगता है कि गुजरात की लूट से प्राप्त धन-सम्पत्ति से सूरसिंह ने उदारतापूर्वक कवियों को पुरस्कृत किया। उसने मारवाड के 6 भट्ट कवियों को पुरस्कार दिये। प्रत्येक कवि को पुरस्कार में टट लाख रुपये दिये गये। कवियों ने उसकी गुजरात विजय पर अनेक कविताएं लिखी।

गुजरात विजय के बाद सूरसिंह को दक्षिण में जाने का आदेश मिला। उसने आज्ञा का पालन किया और तरह हजार सवारों दस बडी तोपों और बीस हाथियों के साथ उसने तीन बडे युद्ध लडे। नर्बदा नदी के किनारे रीवा के निकट उसने अमर बलेचा[3] पर आक्रमण किया। उसके पास पांच हजार घुडसवार थे, जिन्हें सूरसिंह ने मौत के घाट उतार दिया और उसके राज्य को पदाक्रान्त कर डाला। इस सेवा के उपलक्ष्य में बादशाह ने उसके पास नावत भेजी और धार तथा उसके आस पास का इलाका उसको पुरस्कार में दिया।

अकबर की मृत्यु और जहांगीर के राज्याभिषेक पर सूरसिंह अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी गजसिंह के साथ दरबार में उपस्थित हुआ। गजसिंह को देखकर जहांगीर बहुत प्रसन्न हुआ और जालौर युद्ध मे उसकी बहादुरी के उपलक्ष्य मे, अपने हाथ से गजसिंह को तलवार बधाई और उसकी प्रशंसा की। जालौर पर गुजरात के बादशाह ने अपना अधिकार कर लिया था।[4] गजसिंह ने उसको परास्त कर जालौर पुनः मुगल साम्राज्य मे मिलाया था। भट्ट ग्रन्थ मे लिखा है, "गजसिंह को बिहारी पठानो के विरुद्ध जाने का आदेश मिला। गजसिंह ने युद्ध की तैयारी की। उसने जालन्धर जिसका नाम जालौर है—पर आक्रमण किया। युद्ध मे बहुत से राठौड सैनिक मारे गये लेकिन गजसिंह ने सात हजार पठानो को मारकर शहर को लूटा और लूट मे प्राप्त सम्पत्ति बादशाह के पास भिजवा दी।"

गुजरात की विजय के बाद सूरसिंह अपनी राजधानी मे ही रहा। जबकि उसका उत्तराधिकारी गजसिंह बादशाह के आदेशों का पालन करता रहा। जालौर अभियान के बाद उसे मारवाड की सेना के साथ मेवाड के राणा अमरसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश मिला। यहां यह बतलाना उचित होगा कि भट्ट कवियों ने तमाम घटनाओं के बारे में केवल अपने राजाओं की उपलब्धियों का ही उल्लेख किया है जबकि जिनके अन्तर्गत रह कर उन्होंने काम किया था उनका उल्लेख तक नही किया है। इससे अनजान पाठक को ऐसा लगेगा जैसे उन सभी का श्रेय राठौडों को है।

संवत् 1676 (1620 ई.) में दक्षिण मे राजा सूरसिंह की मृत्यु हो गई। उसने राठौडो की प्रतिष्ठा को बढाया, बादशाह द्वारा सम्मान प्राप्त किया और जैसा कि भट्ट ग्रन्थ मे लिखा है 'दक्षिणवालों के लिये उसका भाला भयानक था। उसने दक्षिण में बहुत ख्याति प्राप्त की। परन्तु उस दक्षिण के दीर्घकालीन युद्ध पसन्द न

आय। इसलिये अपनी मृत्यु के पूर्व अपने वंश वालों को हिदायत देता गया कि वे नर्वदा के उस पार न जाय[5]। बचपन से ही वह अपनी जन्मभूमि के लिये परदेशी बन गया था। उसके पिता जहाँ कहीं भी मारवाड की सेना के साथ साम्राज्य की सेवा के लिए मारवाड से बाहर गये, वह हमेशा उनके साथ रहा था। अपने राज्याभिषेक के समय वह लाहौर में कार्यरत था और मृत्यु के समय दक्षिण में। उसके शासन काल में जोधपुर का गौरव बढा। उसने बहुत से कुए तालाब और अनेक भव्य भवनों का निर्माण करवाया। उसके इन निर्माण कार्यों में सूर सागर बहुत प्रसिद्ध है। इससे नगरवासियों का जल संकट थोडा कम हुआ। सूरसिंह अपने पीछे छह पुत्र और सात कन्यायें छोड गया। उसके पुत्रों के नाम थे—गजसिंह सबलसिंह वीरमदेव, विजयसिंह प्रतापसिंह और यशवंतसिंह।

राजा गजसिंह जो 1620 ई में अपने पिता का उत्तराधिकारी बना का जन्म लाहौर में हुआ था और बुरहानपुर के शाही शिविर में उसका राजतिलक हुआ। वहीं पर बादशाह की तरफ से साम्राज्य का एक बडा अमीर खानखाना का पुत्र दराबखां उसके पास पहुचा था और उसके सिर पर ताज रखकर उसके ललाट पर राजतिलक कर उसकी कमर में तलवार बांधी थी। नौ दुर्गों (नवकोटि मारवाड) वाले पैतृक राज्य के साथ उसके पट्टे में गुजरात के सात इलाके ढूढाड की भिलाड जागीर और अजमेर के अंतर्गत मसूदा की जागीर भी सम्मिलित थी।[6] इन सभी विशेष अनुग्रहों के अलावा उसे अत्यधिक विश्वसनीय उच्च पद—दक्षिण की सूबेदारी[7] प्रदान की गई और शाही कृपा के प्रमाण के रूप में राठौड घुडसवारों के घोडों को दागने की प्रथा से छूट दे दी गई। इस नियम से बादशाह ने राठौड सामन्तों का एक घोर अपमान से रक्षा की थी। उसका बडा लडका अमरसिंह शुरू से ही अपने पिता के पास रहा और उसके द्वारा लडे गये सभी युद्धों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। खिडकीगढ गोलकुण्डा, केलिया पन्नाला कंचनगढ असीर और सतारा—इन सभी स्थानों पर राठौडों को अपने गौरव के अनुकूल सफलता मिली थी। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर बादशाह ने उनके राजा 'दल थम्मन" की उपाधि प्रदान की थी। हम पहले यह बता चुके हैं कि मुगल राजवंश के साथ राजपूत राजकुमारियों के विवाहों के परिणामस्वरूप राजपूत राज्यों को किस प्रकार के लाभ मिलते रहे। जहांगीर का बडा लडका और उत्तराधिकारी सुलतान परवेज मारवाड की एक राजकुमारी से पैदा हुआ था, जबकि दूसरा लडका खुरम आमेर की राजकुमारी का लडका था।[8] ये शाहजादे अलग अलग माताओं के पुत्र थे और उनमें स्वाभाविक बंधुत्व का अभाव था। उनकी मातायें भी अपने अपने पुत्र को सिंहासन पर बठा देखने की महत्वाकांक्षाएं रखती थीं। अत उनके बच्चों में बचपन से ही एक दूसरे के प्रति वैमनस्य की भावना उत्पन्न कर दी जाती था और वे सदा एक दूसरे को अपने मार्ग से हटाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। खुरम अपने आपको आयु के अलावा अन्य सभी बातों में अपने बडे भाई परवेज से श्रेष्ठ समझता था। वह हर दृष्टि से परवेज से अधिक

बुद्धिमान, युद्धनिपुण तथा पराक्रमी मैनिक था। मेवाड के भीमसिंह और महावतखा[9] द्वारा उत्तेजित किये जाने के फलस्वरूप उसने अपने और ताज के मध्य की बाधा परवेज को हटाने का निश्चय कर लिया था। जिन दिनो वह दक्खिन मे था, तभी सबसे पहले उसके मन म इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए थे। उसने अपने मन की बात मारवाड के राजा गजसिंह का बताई जो उन दिनो शाहजादे के बाद दरबार का सबसे अधिक सम्मानित एव प्रभावशाली पद पर आसीन था। बादशाह क उपकारों तथा परवेज के प्रति रक्त सम्बधी भावना ने गजसिंह को खुरम की बात पर ध्यान नही देने दिया। उसकी उदासीनता से खुरम को निराशा हुई। तब उसने मारवाड के एक विदेशी सामन्त गोविन्द दास भाटी[10] से सहयोग मागा। गोविन्द दास योग्य और दूरदर्शी था और खुरम प्राय उससे परामश किया करता था। खुरम की बात का गोविन्ददास पर भी कोई प्रभाव न पडा। इससे खुरम क्रोधित हो उठा और उसने किशनसिंह नामक राजपूत के द्वारा उसकी हत्या करवा दी।[11] इस हत्या स गजसिंह को गहरा आघात लगा और वह अपने पद तथा काय का छाडकर दक्खिन से अपने राज्य को लौट गया। परवेज की हत्या[12] ने जहागीर और खुरम के बीच दीवार खडी कर दी। खुरम ने अपने साधनो पर भरोसा करते हुए अपने पिता को सिंहासन से हटाकर उस पर स्वय बठने की चेष्टा की। ऐसे नाजुक अवसर पर जहागीर ने स्वामिभक्त राजपूत राजाओ से सहायता की अपील की। इस अपील को स्वीकार किया गया क्योकि राजपूत हमेशा से ताज के प्रति निष्ठावान रहे थ। मारवाड, आमेर कोटा और बूदी के राजा लाग अपनी अपनी सेनाओ के साथ बादशाह की सहायता के लिये जा पहुचे।

इस समय पर जहागीर राठौड राजा के उत्साह स इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने न केवल उससे हाथ ही मिलाया परन्तु उसके हाथ को चूम भी लिया जो कि एक असाधारण बात थी। जब बनारस के पास राजपूत लोग विद्रोहियो क करीब जा पहुचे तो बादशाह[13] न शाही सेना का हिरोल (अग्र भाग) आमेर के मिर्जा राजा को सौंप दिया। बादशाह का यह कदम आमेर की राजकुमारी से उत्पन्न खुरम क विरुद्ध आमेर के राजा का सहयोग प्राप्त करने की नीति का ही एक अश था अथवा जैसा कि मारवाड के भट्ट ग्रन्थ मे लिखा है कि चूकि वह सबसे बडी सेना ले गया था, अत उसे हिरोल प्रदान किया गया। जो भी कारण रहा हो, इसके परिणाम अच्छे नही रहे। गजसिंह ने इसको अपमान समझा क्योकि वह इसे राठौडो का अधिकार समझता था। अत उसन शाही शिविर को छाड दिया और उससे कुछ दूर हट कर अपना शिविर कायम किया। उसने पिता पुत्र के मध्य लडे जाने वाले इस युद्ध म किसी भी पक्ष का साथ न देने तथा तमाशा देखने का निश्चय कर लिया। परन्तु मेवाड के भीमसिंह के तिरस्कारयुक्त व्यग्यपूर्ण पत्र ने उसे अपना निश्चय बदलने के लिये विवश कर दिया अन्यथा उस दिन खुरम को सिंहासन प्राप्त हो गया होता। उसने महाराजा गजसिंह को लिख भेजा था कि या तो हमारा (खुरम का) पक्ष लो

अन्यथा वीरो की भाँति तलवार निकाल कर हमसे युद्ध करो। राठौड गजसिंह बादशाह द्वारा किये गये अपमान को भूल गया और सेना सहित युद्ध मे सम्मिलित हो गया। भीमसिंह मारा गया गोविन्ददास की मृत्यु का बदला ले लिया गया और खुरम को युद्ध से भागने के लिये विवश कर दिया गया। यह सब कुछ राठौडो और हाडाओ के कारण सभव हो सका था।

सवत् 1694 (1638 ई) मे गुजरात के एक अभियान के समय गजसिंह मारा गया।[14] यह अभियान शाही आदेशानुसार किया गया था अथवा वह स्वय ही अपने राज्य के दक्षिणी क्षेत्र मे लूटमार करने वाले हिंसक डाकुओ का दमन करने के लिए गया था—इस सम्बन्ध मे भट्ट ग्रथो से जानकारी नही मिलती। वह इस देश के इतिहास मे अपना नाम अमिट कर गया और इस परम्परा को सुरक्षित रखने के लिये अपने पीछे दो पराक्रमी पुत्र—अमरसिंह और जसवन्तसिंह छोड गया। तीसरा लडका अचल बचपन मे ही मर गया था।

दूसरा लडका जसवन्तसिंह उसका उत्तराधिकारी बना और राजस्थान के इतिहास मे ऐसे उदाहरणो मे एक और वृद्धि हो गई जिनमे परम्परागत उत्तराधिकार नियमो को ताक पर रख दिया गया। इस प्रकार की घटनाओ के लिये कई कारण उत्तरदायी रहे हैं—कभी मा बाप का किसी पुत्र विशेष के लिये विशेष आकर्षण कभी बच्चे की अयोग्यता और इस मौजूदा उदाहरण मे अमरसिंह का प्रचण्ड उग्र स्वभाव जो किसी प्रतिबन्ध को मानने के लिये तैयार न था और ऐसे व्यक्ति द्वारा पचास हजार राठौडो का नेतृत्व करने के प्रति शका का उत्पन्न होना था। परन्तु अमरसिंह पराक्रमहीन अथवा कायर नही था। उसकी तेजस्विता और पराक्रम के सामने उसके शत्रु तृण के समान जल जाते थे। गजसिंह ने दक्षिण मे जितने भी युद्ध लडे थे, उन सभी मे अमरसिंह ने अपने शौर्य का परिचय दिया था। उसके पास उसी के स्वभाव से मिलते जुलते कई राजपूत युवक जमा हो गये थे। शान्तिकाल मे अमरसिंह अपने इन्ही साथियो के साथ मिलकर बिना कारण ही इधर उधर उपद्रव मचाया करता था जिससे प्रजा हितैषी राजा गजसिंह को बहुत दुख होता था। अन्त मे गजसिंह ने उसे अपने उत्तराधिकार से वचित कर अपने राज्य से निकल जाने का आदेश दिया।[15]

सवत् 1690 (1634 ई) के वैशाख मास मे गजसिंह की मृत्यु के चार वर्ष पहले मारवाड के समस्त सरदारो की सभा मे अमरसिंह को उत्तराधिकार से वचित करने और देश निकाला की सजा सुनाई गई। इस प्रकार की घटना वाले दिन को राजपूतो मे शोक दिवस की भाति मनाया जाता है। इस कठोर घोषणा के होते ही अमरसिंह के राज्य से निकाल जाने की तैयारी होने लगी। उसके वस्त्र और आभूषण उतार दिये गये। उसके पहनने के सभी कपडे काले रग के थे। काला पायजामा काला अगरखा, काले रग की टोपी और काले ही रग की ढाल और तलवार उसको

दी गई। जाने के लिए घोड़ा भी काने रंग का दिया गया। उस पर बैठकर बिना मुंह मोड़े वह राज्य से निकल गया।

अमरसिंह अकेला नहीं गया था। उसके वंश के बहुत से युवक जो उसे जैसे ही थे और बहुत से वे लोग जो उसे वास्तविक उत्तराधिकारी समझकर उसका सम्मान करते थे अपनी स्वेच्छा से मारवाड़ का राज्य छोड़कर उसके साथ ही चल पड़े थे। उन सबको साथ लेकर अमरसिंह मुगल बादशाह की सेवा में जा पहुंचा था। बादशाह को इस घटना की जानकारी मिल चुकी थी और उसने भी अमरसिंह के देश निकाले पर सहमति दे दी थी। फिर भी, उसने अमरसिंह को आश्रय दिया और मुगल सेना में उसको एक अधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया। अमरसिंह पराक्रमी और युद्ध निपुण तो था ही, थोड़े ही दिनों में उसे अपनी योग्यता दिखाने के अवसर मिले और उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे "राव" की उपाधि से विभूषित किया। उसका मनसब बढ़ा कर तीन हजारी कर दिया गया और नागौर का जिला उसको प्रदान किया गया। परन्तु उद्दण्डता तथा कर्त्तव्यहीनता की जिस प्रवृत्ति के कारण उसको अपना जन्मसिद्ध अधिकार खोना पड़ा था, उसी प्रवृत्ति के कारण उसके जीवन का दुखान्त अन्त भी हुआ। वह पन्द्रह दिनों तक दरबार से अनुपस्थित रहा और इस अवधि में शिकार के द्वारा अपना मनोरंजन करता रहा। बादशाह शाहजहां ने उसको कर्त्तव्यपालन की उपेक्षा के लिये ताड़ना दी और उस पर जुर्माना करने की धमकी भी दी। परन्तु अमर ने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया कि "मैं केवल शिकार के लिये गया था और इसलिये दरबार में नहीं आ सका। जहां तक जुर्माना अदा करने की बात है मेरी तलवार ही मेरी सम्पत्ति है।"

अमरसिंह का यह संक्षिप्त उत्तर बादशाह को शिष्टाचार के विरुद्ध लगा और उसने जुर्माना कर दिया और इस जुर्माने को वसूल करने के लिये बख्शी[16] सलावतखां को अमरसिंह के निवास स्थान पर भेजा। अमरसिंह ने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया। इस पर बादशाह ने अमरसिंह को तुरन्त हाजिर होने का आदेश भिजवाया। अमर ने आदेश का पालन किया और दीवाने आम में पहुंच कर बादशाह का अभिवादन किया। सलावत खां भी वहां पर उपस्थित था। अमरसिंह को लगा कि वह उसी के बारे में बादशाह को अपमानजनक शब्दों में कुछ कह रहा है और बादशाह के नेत्र लाल हो उठे। यह दृश्य देखकर अमर का खून खौल उठा। उसे लगा कि सब उपद्रवों की जड़ यह बादशाह ही है। इसके बाद वह पांच हजारी और सात हजारी मनसबदारों के बीच में से निकल कर शीघ्रता से बादशाह की तरफ बढ़ा मानो वह कुछ कहना चाहता हो। परन्तु उसने छलांग मार कर सलावत खां पर आक्रमण किया और उसके सीने में कटार उतार दी। इसके बाद उसने तलवार से बादशाह पर आक्रमण किया परन्तु वह बच गया। भयभीत बादशाह अपने महल में भाग

गया । दरबार मे कोहराम मच गया । अमर ने पाच अधिकारियो का मौत के घाट उतार दिया । इस भयानक दृश्य को देखकर उसके साले अर्जुन गौड ने उसको रोकने की चेष्टा की । जब सफलता न मिली तो उसने धोखे से अमर पर आक्रमण कर उसे घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया । परन्तु अन्तिम साम तक अमर अपनी तलवार को चलाता रहा । उसकी मृत्यु का बदला लेने के लिये उसके सैनिको ने बल्लू चापावत और भाऊ कू पावत के नेतृत्व मे केसरिया वस्त्र पहनकर लाल किले की तरफ बढे और एक दूसरा घमासान सघर्ष शुरू हो गया । कुछ समय के लिये राठौडो ने भयकर मारकाट की परन्तु सख्या म अधिक मुगल सेना से लडते हुए सभी मारे गय । अमरसिंह की पत्नी जो बूदी की राजकुमारी थी ने चिता तयार की और अपने पति के मृत शरीर के साथ सती हो गई । अमरसिंह के सरदारो और सनिको ने जिस बुखारा नामक द्वार स लाल किले मे प्रवेश किया था, उसे इटो मे ब द करा दिया गया और उसी दिन से वह द्वार "अमरसिंह का फाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । यह फाटक बहुत वर्षो तक बन्द रहा । 1809 ई० मे जाज स्टील नामक अग्रेज अफसर के आदेश से उसे खोला गया था ।

सन्दर्भ

1 सूरसिंह उदयसिंह का बडा पुत्र नही था । वह कई भाइयो से छोटा था ।

2 मुजफ्फर के विरुद्ध जो युद्ध लडा गया था उसमे मुगल सेना का सेनापति खानेखाना था और यह युद्ध सूरसिंह के राज्याभिषेक के 6 महीने पहले लडा गया था जिसमे सूरसिंह और उसका पिता उदयसिंह भी शामिल थे । सूरसिंह ने अकबर की मृत्यु के बाद जहागीर के शासन काल मे मुजफ्फर के बेटे को हराया था । भट्ट ग्र था के वृत्तान्त को टाड ने जसे के तैसे स्वीकार कर लिया । परन्तु उनका कथन इतिहास से मेल नही खाता ।

3 बलेचा, चौहान कुल की एक शाखा थी । इस युद्ध का अकबर तथा मारवाड के पिछले इतिहासो म कुछ पता नही लगता । बालेचा चौहान मारवाड और मेवाड की सीमा पर गोडवार क्षेत्र मे रहते थ और उनमे कोई ऐसा पराक्रमी नही निकला जो नबदा तक अपने प्रभुत्व को कायम कर अकबर से लडने की सामर्थ्य अर्जित कर सके । सम्भव है कि भाट लोगो ने मलिक अम्बर को बमसभी से अमर बालेचा समझ लिया हो । कनल टॉड ने भट्ट ग्रन्थो को परखे बिना ही उनकी नकल कर दी है ।

4 उस समय मे जालोर एक स्वतन्त्र राज्य था और उस पर बिहारी पठानो का अधिकार था ।

5 उसके बाद उसका बेटा गजसिंह और पोता जसवन्तसिंह आदि दक्षिण में बादशाह की नौकरी बजाते जाते रहे। इससे उन्हें काफी धन का लाभ होता था।

6 जब से मारवाड़ ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की थी तभी से मारवाड़ का राज्य मुगल साम्राज्य की एक जागीर के रूप में गिना जाने लगा और प्रत्येक नये राजा को अपने अभिषेक के समय बादशाह के पास से अपने राज्य (जागीर) का नया फरमान (पट्टा) लेना पड़ता था। बादशाह जागीर को कम ज्यादा कर सकता था।

7 दक्षिण की सूबेदारी का प्रदान किया जाना सत्य प्रतीत नहीं होता।

8 टाड साहब का कथन गलत है। राठौड़ राजकुमारी से परवेज नहीं खुर्रम पैदा हुआ था। यह भी गलत है कि परवेज जहांगीर का बड़ा लड़का था। बड़े पुत्र का नाम सुल्तान खुसरो था जो आमेर की राजकुमारी से पैदा हुआ था।

9 कर्नल टॉड ने महावत खाँ को सीसोदिया वंश के कुलांगार सागर का पुत्र बतलाया है जिसने बाद में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और महावत खाँ के नाम से विख्यात हुआ। उनका यह कथन गलत है। महावत खाँ काबुल निवासी गयूरबेग का लड़का था और उसका नाम जमाना बेग था। महावत खाँ की उपाधि मिलने के बाद वह इसी नाम से विख्यात हुआ।

10 विदेशी नहीं देशी सरदार था।

11 गोविन्ददास तो सूरसिंह के शासन काल में ही मारा जा चुका था। खुर्रम ने जब इस प्रकार की चेष्टा की थी उन दिनों में तो वह जीवित ही नहीं था। अतः किशनसिंह द्वारा उसकी हत्या करवाने का सवाल ही नहीं उठता।

12 जहांगीर के इतिहास से पता चलता है कि परवेज की हत्या नहीं हुई थी। वह दक्षिण में बीमारी से मरा था और उस समय में विद्रोही खुर्रम इधर उधर भागता फिर रहा था।

13 इस युद्ध के अवसर पर बादशाह जहांगीर स्वयं उपस्थित नहीं था। मुगल सेना का नेतृत्व शाहजादा परवेज कर रहा था। उसी ने हिरोल का दायित्व मिर्जा राजा जयसिंह को सौंपा था।

14 टाड का यह कथन भी गलत है। महाराजा गजसिंह की मृत्यु आगरा में बीमारी से हुई थी।

15 अमरसिंह के देश निकाल की यह कथा इतिहास से सिद्ध नही होती । वास्तव मे जसवन्तसिंह की मा के कहन पर गजसिंह ने उसको राज्य से दूर रखन की दृष्टि से बादशाह की सेवा मे पहले से ही नौकर रख दिया था। अपनी मृत्यु के कुछ दिनो पूव गजसिंह न उसे लाहौर मे बुला कर अलग रखा था ।

16 बख्शी का काम केवल वेतन बाटने का ही नही था परन्तु देखभाल व जाच-पडताल का काम भी उसी के हाथ मे था । सलावत खा और अमरसिंह म शुरु से ही अनबन रही थी ।

अध्याय 36

राजा जसवन्तसिंह

अमरसिंह के देश निर्वासन के बाद मारवाड का सिंहासन प्राप्त करने वाला जसवन्तसिंह[1] मेवाड की राजकुमारी से पैदा हुआ था। यद्यपि इस सम्बन्ध ने उत्तराधिकार को प्रभावित नही किया था फिर भी राजस्थान मे राणा के परिवार के साथ इस प्रकार के सम्बन्ध को अत्यन्त गौरव के साथ देखा जाता था।

भाट कवि कहते हैं कि 'जसवन्त अपने समय के राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ था। उसके जगमगाते हुए ऐश्वर्य से देश से मूर्खता और अज्ञानता दूर हो गई थी। जहा पर उसने राज किया था, वहा ज्ञान विज्ञान की उन्नति हुई। उसके सरक्षण मे बहुत से ग्रन्थ लिखे गये थे।''

दक्षिण भारत इस समय भी युद्धप्रिय राजपूतो के लिये प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला क्षेत्र बना रहा। परन्तु मुगल बादशाह शाहजहाँ इस समय अपने रनिवास के भोग विलास मे डूबा हुआ था और उसने अपने पुत्रो का साम्राज्य के विशाल भागो का शासन करने के लिये सूबेदार नियुक्त कर रखा था। जसवन्तसिंह को सबसे पहले गोलकुण्डा के युद्ध मे भेजा गया जहा उसने बाईस विभिन्न सैनिक दस्तो का औरंगजेब के अन्तर्गत नेतृत्व किया था। इसमे तथा अन्य सेवाओ मे राठौडो ने अपनी वीरता और योग्यता का अच्छा परिचय दिया। सन् 1658 ई तक जसवन्तसिंह को इसी प्रकार की महत्वहीन परिस्थिति मे रहते हुये काम करना पडा। इस वर्ष शाहजहा बीमार पडा और उसकी तरफ से दारा सम्पूर्ण शासन का सचालन करने लगा था। शाहजादा दारा ने उसका मनसब बढाकर पाच हजारी कर दिया और अपनी तरफ से उसे मालवा की शासन व्यवस्था का भार सौंपा।

शाहजहा की बीमारी के परिणामस्वरूप उसके पुत्रो मे राज्याधिकार प्राप्त करने के लिये सघर्ष शुरू हो गया। इस स्थिति मे राजपूत राजाओ की स्वामिभक्ति और समर्थन का महत्व और भी अधिक बढ गया। मिर्जा राजा जयसिंह को शाहजादा शुजा का विद्रोह दबाने के लिये नियुक्त किया गया।[2] वह अपने बगाल के सूबे से राजधानी की तरफ बढ रहा था। राजा जसवन्तसिंह को औरंगजेब की योजना को

विफल बनाने का दायित्व सौपा गया। वह धर्म की ओट में साम्राज्य को हथियाने की योजना बना चुका था। इस समय वह दक्षिण का सूबेदार था।

राठौड राजा को औरंगजेब के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना का प्रधान सेनापति बनाया गया। उसकी अधीनता मे संयुक्त राजपूत सनिक दस्तो के अलावा शाही सेना के कुछ दस्ता को भी रखा गया। जसवन्तसिंह आगरा से नर्बदा की तरफ चला। उज्जैन पहुंचने पर उसे सूचना मिली कि औरंगजेब अपनी सेना सहित युद्ध के लिये प्रस्थान कर चुका है और उसकी सेना उज्जैन से अधिक दूरी पर नही है। इस सूचना को सुनने के बाद उसने पास ही उसे फतेहबाद[3] मे पडाव डाल दिया और शत्रुपक्ष के आने की प्रतीक्षा करने लगा। दोनो के मध्य लडे जाने वाले इस युद्ध का बर्नियर ने वर्णन किया है। राठौड सेनापति ने अपनी अदूरदर्शिता से इस युद्ध को खो दिया। उसने मुराद को औरंगजेब के साथ मिलने का समय देकर अपनी पराजय का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उसने दोनो शाहजादो को एक साथ परास्त करने की महत्वाकांक्षी योजना बनाई थी। परन्तु उसे अपनी इस योजना की महँगी कीमत चुकानी पडी। इस अवधि मे षडयन्त्रकारी धूर्त्त औरंगजेब को शाही शिविर मे फूट के बीज बोने का अवसर मिल गया। परिणामस्वरूप युद्ध आरम्भ होते ही मुगल घुडसवार और सनिक[4] राजा जसवन्तसिंह को उसके तीस हजार राठौड सनिको के भाग्य भरोसे छोडकर भाग खडे हुये। फिर भी राठौड राजा ने शत्रु से निपटने के लिये अपनी सेना को ही पर्याप्त समझा। अपने प्रिय घोडे "मेहबूब" पर सवार होकर उसने शाही भाइयो की सेना पर भयानक आक्रमण किया। कुछ ही समय की मारकाट मे दस हजार मुस्लिम सनिक मारे गये जबकि राठौडो को सत्रह सौ सनिको से हाथ धोना पडा। औरंगजेब और मुराद केवल इसलिये बच गये थे कि उनके जीवन का अन्त अभी दूर था। मेहबूब और उसका सवार खून से लथपथ थे और उस समय जसवन्त एक क्रोधित शेर की भाति प्रतीत हो रहा था। भाट कवियो के अलावा मुस्लिम इतिहासकार और बर्नियर भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि शत्रुओ की विशाल संख्या और फ्रासीसी तोपचियो की देखरेख मे शक्तिशाली तोपखाने से तनिक भी विचलित हुए बिना वह शूरवीर मदान मे अपना शौर्य दिखाता रहा। रात्रि के अधेरे ने ही युद्ध विराम का सकेत दिया और दोनो तरफ की सेनाए युद्धभूमि पर ही डटी रही। यद्यपि भट्ट कवियो ने राठौडो के अलावा केवल मेवाड के गुहिलोतो और शिवपुर के गौडो की वीरता का ही यशोगान किया है, परन्तु इस युद्ध मे राजस्थान की प्रत्येक राजपूत शाखा ने अपने शौर्य का प्रदर्शन किया था और यदि मुस्लिम इतिहासकारो का विश्वास किया जाय तो उस दिन पन्द्रह हजार राजपूत सनिक मारे गये जिनमे अधिकतर राठौड थे। यह घटना राजपूतो के गौरव का प्रदर्शित करने वाली घटनाओ मे एक थी। जिस वृद्ध और बीमार बादशाह का उत्थान नमक खाया था, उसके प्रति अपने स्वामी धर्म का प्रदर्शन था। एक महत्वाकांक्षी युवक शाहजादे के द्वारा दिये जाने वाले समस्त प्रलोभनो को ठुकराते हुए कर्त्तव्य पालन की भावना का एक ज्वलन्त

उदाहरण था। इसके विपरीत बादशाह के सैनिकों ने उगत सूय को प्रणाम कर विश्वासघातक आचरण का परिचय दिया था। राजपूतो ने बादशाह के विश्वास को अपना खून देकर सत्य सिद्ध करने का प्रयास किया था और इसमे कोटा और बूंदी के हाडा राजपूतो ने सबसे अधिक कुर्बानी दी थी। उनमे बूंदी राजवश के छह राज कुमारो[5] ने अपने प्राण उत्सग किये थ, केवल एक जीवित बच गया था। इस युद्ध म रतलाम के रतनसिंह राठौड ने भी अद्भुत पराक्रम का प्रदशन किया था। सभी इति हासकारो ने उसकी प्रशसा की है। "रासो राव रतन" नामक ग्रन्थ मे उसकी वीरता का विस्तारपूर्वक वणन किया गया है। रतनसिंह मारवाड के प्रथम राजा उदयसिंह का प्रपौत्र था। उसन सिद्ध कर दिया कि मालवा मे बस जान के बाद भी राठौड रक्त दूषित नही हुआ है। ऐसा ही एक उदाहरण जसवत की रानी का है। जब जसवन्तसिंह अपनी पराजय के बाद बची हुई सेना के साथ जोधपुर पहुचा तो उसकी रानी ने महल के द्वार बद करवा दिये और युद्ध से पीठ दिखाकर आने वाले पति को भीतर नही आने दिया।[6] इसका वणन पहले किया जा चुका है।

जसवन्तसिंह के पलायन के बाद औरगजेब ने विजयोत्सव के साथ मालवा की राजधानी मे प्रवेश किया और इसके बाद शाही राजधानी की तरफ कूच किया। परन्तु आगरा के दक्षिण मे तीस मील दूर स्थित जाजाऊ नामक गाव के निकट राजपूतो की स्वामिभक्ति ने वृद्ध बादशाह और उसके लडके के कुचक्र के मध्य एक बार पुन बाधा उत्पन्न कर दी। परन्तु इस बार लडे गये युद्ध का भी आशाजनक परिणाम नही निकला सिवाय राजपूतो की कर्तव्यनिष्ठा के प्रदशन के। राजपूत परास्त कर दिये गये, दारा को साम्राज्य के सरक्षक पद से खदेड दिया गया और वृद्ध बादशाह को सिंहासनच्युत कर दिया गया।[7]

सिंहासन हस्तगत करने के तत्काल बाद औरगजेब ने आमेर के राजा के द्वारा जसवन्तसिंह को क्षमायाचना का आश्वासन भिजवाया और उसे सेना सहित उप स्थित होने का सम्मन भेजा। उसे कहा गया कि शुजा के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना म सम्मिलित हो। शुजा ने भी अपने बाप के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। शाहजहाँ के अपदस्थ किये जाने के बाद वह औरगजेब का विद्रोही बन गया था और सिंहासन पर अधिकार करने के लिये अपनी सेना के साथ आगे बढता आ रहा था। राठौड राजा ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिये इस अवसर का लाभ उठाने का निश्चय कर औरगजेब के आदेश को स्वीकार कर लिया और शुजा को भी अपने निश्चय से अवगत करा दिया। इलाहाबाद से तीस मील दूर खजुआ नामक स्थान पर दोनो पक्षो की सेनाओ का आमना-सामना हुआ।[8] युद्ध शुरू होते ही जसवन्तसिंह ने अपने राठौड सनिको के साथ शाहजादा मुहम्मद के नतृत्व म नियुक्त पाश्व सेना पर जोरदार आक्रमण किया और शाही सेना के इस अग को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद वह असुरक्षित बादशाही डेरे की तरफ बढा और

वहाँ की बहुमूल्य सामग्री को लूटा और लूट का माल अपने ऊटो पर लदवाकर कुछ चुने हुए सैनिकों के साथ रवाना करवा दिया। दोनों भाइयों को अपने-अपने भाग्य का फैसला करने के लिये छोडकर वह स्वयं भी अपनी सेना सहित आगरा की तरफ चला गया। जिस समय वह आगरा के निकट पहुँचा उसके पहले ही औरंगजेब की पराजय की अफवाह फैल चुकी थी और आगरा की रक्षा के लिए औरंगजेब ने जो सेना रख छोडी थी, वह बुरी तरह से घबरा गई थी। यदि इस अवसर पर जसवंत सिंह ने उस पर आक्रमण किया होता तो वह बंदी शाहजहां को रिहा करवाकर उसे पुन सिंहासन पर बैठा सकता था। परन्तु इस तरफ उसका ध्यान ही नहीं गया।

जसवन्तसिंह आगरा में नहीं रुका। इसका भी कारण था। यदि युद्ध में औरंगजेब को विजय मिल गई तो आगरा में उसकी स्थिति संकटपूर्ण हो सकती थी। इसके अलावा उसने अपनी समस्त योजनाएं दारा के साथ परामर्श करके बनायी थी। उसने दारा को सन्देश भिजवाकर तुरन्त घटनास्थल पर आने को कहा था। परन्तु दारा नहीं आया और जसवन्तसिंह की योजना विफल हो गई। दारा इन दिनों मारवाड के दक्षिण में व्यर्थ ही समय गवा रहा था। वस्तुत वह औरंगजेब से बहुत अधिक भयभीत हो गया था। जसवन्तसिंह भी कुछ दिनों के बाद लूट के माल सहित अपनी राजधानी की तरफ चल पडा। मेडता नामक स्थान पर दारा ने उससे मुलाकात की। परन्तु अब समय हाथ से निकल चुका था। औरंगजेब ने युद्ध में शुजा को पराजित कर दिया था और वापस लौट आया था। अब वह अपने विरोधी दारा को भी निर्णायक रूप से परास्त करना चाहता था और इस काम में उसे बहुत से राजपूत राजाओं का सहयोग भी मिल गया। चतुर औरंगजेब शस्त्र बल के स्थान पर हमेशा कूटनीतिक चालों को महत्व देता था। अत उसने जसवंत को एक पत्र लिखा जिसमें उसने जसवंत के सभी अपराधों को क्षमा करने तथा गुजरात की सूबेदारी देने का वचन दिया यदि वह दारा को अपना समर्थन देना बंद कर दे और दोनों भाइयों के भावी संघर्ष में तटस्थ रहने का वचन दे। जसवन्तसिंह ने औरंगजेब की शर्त को स्वीकार कर लिया और शाहजादे मुअज्जम के अंतर्गत महाराष्ट्र में शिवाजी के विरुद्ध अपनी सेना सहित प्रस्थान करना स्वीकार किया।

परिस्थितियों में विवश होकर जसवन्तसिंह को दारा का पक्ष त्यागना पडा। परन्तु उसके हृदय में औरंगजेब के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति न थी। दक्षिण पहुँचने[9] ही उसने शिवाजी के साथ सम्पर्क कायम किया और बादशाह के प्रमुख सेनानायक शाइस्ता खां की मृत्यु की योजना बनाई। उसका विश्वास था कि योजना के सफल होने पर दक्षिण के सूबेदार और शाही सेना पर उसका प्रभुत्व कायम हो जायगा। औरंगजेब को इस षडयन्त्र के बारे में अधिकृत सूचना मिल गई और उसे यह भी पता चल गया कि इसमें जसवंत ने क्या भूमिका अदा की थी परन्तु उस

समय उसने संयम से काम लिया और जसवन्तसिंह को दक्षिण की शाही सेना के सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किये जाने पर बधाई दी। परन्तु कुछ दिनों बाद ही उसने जसवन्त को निलम्बित कर आमेर के राजा जयसिंह को उसके स्थान पर नियुक्त किया[10] जिसने शिवाजी को बन्दी बना कर युद्ध को समाप्त कर दिया। इस अभियान से जो गौरव मिला, वह शीघ्र ही अपमान में बदल गया, इसलिये कि जब आमेर नरेश ने देखा कि औरंगजेब उसके बन्दी के प्राण लेने का विचार कर रहा है जिसे उसने स्वयं प्राण रक्षा का वचन दिया है, तो वह बहुत दुःखी हुआ और उसने अपने बन्दी के भाग जाने में सहयोग दिया।[11] इस घटना से जसवन्त को एक बार पुनः बादशाह का प्रधान सेनापति बनवा दिया।[12] जसवन्त ने फिर शाहजादे मुअज्जम को उकसाने का काम किया और एक बार पुनः बादशाह को उसके विरुद्ध कदम उठाना पड़ा। इस बार दिलेरखां को प्रधान सेनापति बनाकर भेजा गया। वह औरंगाबाद पहुंच गया और उसकी वह रात उसके जीवन की आखिरी रात होती, परन्तु अचानक उसे सूचना मिली और वह तुरन्त वहां से चला गया। औरंगाबाद से उसके चलते ही जसवन्तसिंह और मुअज्जम ने उसका नवदा तक पीछा किया।[13] औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को इस खतरनाक पद से हटाने की आवश्यकता का अनुभव किया और उसके नाम एक फरमान भेजा जिसमें उसे बिना विलम्ब के गुजरात की सूबेदारी सम्भालने के लिए कहा गया। जसवन्त ने शाही फरमान का पालन किया और अहमदाबाद पहुंचा। वहां उसे पता चला कि औरंगजेब ने उसके साथ धोखा किया है।[14] अतः वह वहां से अपने राज्य की तरफ चला गया और संवत् 1726 (1670 ई.) में वहां पहुंच गया।

धूर्त षडयन्त्रकारी औरंगजेब ने उपर्युक्त सभी परिवर्तनों के समय राठौड़ राजा को धोखा देने की चेष्टा की थी और यदि भाटों की बात पर विश्वास किया जाय तो पता चलेगा कि अपनी चेष्टाओं को पूरा करने में उसने अति नीच और हिंसक उपायों का सहारा लिया था। अनेक बार विपदाओं में पड़कर भी अपने विश्वासी सामन्तों की सहायता से उन विपदाओं से छुटकारा पाया और बादशाह की चेष्टाओं को विफल बनाया। भाट के शब्दों में, 'अश्वपति औरंगजेब ने विश्वासघात से अपने अभिप्राय को पूरा न कर सकने के कारण उसके गले में कल्पित बान्धव सम्बन्ध की फांस डाल उसको अटक के पास मरने को भेज दिया।'

बादशाह ने देखा कि जसवन्त के विरोध का सामना करने का एक ही मार्ग बच गया है, उसे ऐसी जगह पर नियुक्त करना जहाँ वह कम से कम खतरनाक सिद्ध हो सके। इन्हीं दिनों में काबुल में अफगानों ने विद्रोह कर दिया और औरंगजेब ने इस अवसर का लाभ उठाया तथा जसवन्तसिंह को असभ्य अफगानों का दमन करने का कार्य सौंपा तथा उसे कई प्रकार के आश्वासन भी दिये। जसवन्तसिंह ने काबुल जाना स्वीकार कर लिया। अपने राज्य की देखभाल का दायित्व अपने बड़े पुत्र

पृथ्वीसिंह को सौंपकर वह अपन परिवार और चुने हुए राठौड सैनिको को लेकर *काबुल की तरफ रवाना हुआ जहा से लौटकर न आ सका ।*

जसवन्तसिंह के चले जाने के बाद औरंगजेब न उसके उत्तराधिकारी राजकुमार पृथ्वीसिंह को दरबार मे उपस्थित होने का परवाना भिजवाया । बादशाह का सन्देश मिलते ही पृथ्वीसिंह औरंगजेब के दरबार म उपस्थित हो गया, जहा उसका पूरा सम्मान किया गया । एक दिन जब वह दरबार मे पहुचा और बादशाह को सलाम किया तो बादशाह न उसे अपन समीप बुलाया और उसके दानो हाथो को पकडकर गम्भीरता के साथ कहा "राठौड मैंने सुना है कि तुम्हारे हाथो मे वही ताकत है जो कि तुम्हारे पिता के हाथो मे है । अच्छा यह बताओ कि तुम क्या कर सकते हो ?" पृथ्वीसिंह ने राजपूती गौरव के साथ स्वाभाविक उत्तर दिया, ईश्वर आपको सुरक्षित रखे । जब बादशाह प्रजा को आश्रय देता है तो प्रजा की शक्तिया बढ जाती हैं । आपने तो आज मेरे दोनो हाथो को पकडा है । इससे मुझे विश्वास होता है कि मैं अब सम्पूर्ण ससार को जीत सकता हू । उसके हाव भाव उसके शब्दा का समथन कर रह थे । बादशाह न आश्चयचकित होकर कहा, यह दूसरा कुट्टन मालूम होता है ।' (जसवन्तसिंह के लिय वह हमेशा यही शब्द इस्तेमाल करता था) पृथ्वीसिंह की स्पष्टवादिता पर प्रसन्नता का दिखावा करते हुए औरंगजेब न उसको खिलअत प्रदान की । *रिवाज के अनुसार उसने खिलअत (वस्त्र) को पहना और बादशाह को सलाम* कर प्रसन्नतापूर्वक दरबार से विदा ली । वह उसका अन्तिम दिन था । अपन डेरे पर पहुचते ही वह बीमार पड गया और भयकर कष्ट का सामना करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ । आज भी लोगो का मानना है कि उसकी मृत्यु बादशाह द्वारा दी गई खिलअत जो जहर मे डूबी हुई थी को पहनने से हुई थी ।[15]

पृथ्वीसिंह अपन पिता के युग की उपज था और मरुभूमि की तलवारा को नेतृत्व प्रदान करने योग्य सभी गुण उसमे विद्यमान थे । उसकी मृत्यु की सूचना ने जसवन्त के अन्तिम दिना को अन्धकारमय बना दिया । इस क्रूर कृत्य स उसे मालूम हुआ कि उसके शत्रु न उससे पहले अपना बदला ले लिया था । पृथ्वीसिंह के बलिदान के बाद उसके दोनो जीवित पुत्र जगतसिंह और दलथम्मनसिंह भी मृत्यु के ग्रास बन गये । काबुल म तनात राठौडो के जीवन पर दु ख की घनी छाया मडराने लग गई । उत्तर के पहाडो मे, बिना किसी उत्तराधिकारी को छोडे सवत् 1737 (1681 ई) मे उसकी मृत्यु हो गई । *उसने बयालीस वर्ष तक मरु के कुलो पर शासन किया था ।* कुछ महीनो बाद ही शिवाजी की भी मृत्यु हो गई । इस वष प्रकृति न औरंगजेब को अपने दो प्रचण्ड शत्रुओ स राहत द दी । मेवाड के राणा राजसिंह का जीवन चरित्र लिखन वाले न राठौड वीर के सम्बन्ध म कहा है जसवन्त जब तक जीवित रहा तब तक औरंगजेब का दीघ निश्वास एक दिन के लिय भी न थमा ।

राजपूताना के इतिहास मे जसव तसिंह का जीवन एक अत्यधिक असाधारण बात है और इसके विस्तृत अध्ययन से हमे उस युग के आचरण और इतिहास की वास्तविक जानकारी मिलती है। यद्यपि जसव त की कायकुशलता उच्च कोटि की थी, कितु यदि वह उसके अमित पराक्रम, साहस और प्रतिष्ठा के समान होती तो वह औरगजब के प्रबल शत्रुओ की सहायता से मुगल सिंहासन को उलट सकता था। उसका जीवन अपूर्व घटनाओ से परिपूर्ण था। नबदा के किनारे औरगजेब के साथ प्रथम सघष से लेकर अफगानो के विरुद्ध—एक के बाद एक घटनाए घटित होती गइ। यद्यपि वह शाहजहा के सब पुत्रो मे से दारा को अधिक चाहता था, फिर भी सम्पूर्ण जाति से घृणा करता था और उसे वह अपने स्वधम तथा स्वत त्रता का शत्रु समझता था। उत्तराधिकार के लिये लडे गये युद्ध के समय उसके मन मे यह दृढ निश्चय था कि इस प्रकार के घरेलू झगडो के अ त मे उन सभी का नाश हो जायेगा। नबदा के युद्ध मे यदि अपनी शक्ति पर अत्यधिक विश्वास करके समय न बर्बाद करता तो उसका श्रम निश्चित रूप से साथक हुआ होता और दारा के विलम्ब ने खजुआ मे उसके द्वारा किये गये विश्वासघात को भी व्यथ कर दिया। पहली घटना ने जसव त के साधनो और प्रतिष्ठा को कम कर दिया और इससे उसके मन मे विजेता के प्रति घृणा दुगुनी हो गई। जसव त ने ऐसे किसी अवसर को हाथ से न जाने दिया जिसके द्वारा वह बदला ले सके। औरगजेब ने उसे जिस पद पर भी नियुक्त किया, जसव त उस पद को ग्रहण कर अपनी कायसिद्धि के यत्न मे तत्पर हुआ। जिस शिवाजी के विरुद्ध उसे भेजा गया था, जसव त ने उसी के साथ गुप्त सम्पक कायम किया। शाइस्ता खा का मारा जाना[16] दिलेर खा पर आक्रमण और मुअज्जम को उकसाना—ये सभी उसके बदला लेने की प्यास के ज्वल त उदाहरण है। बादशाह जसव त की गतिविधियो से भलीभाति परिचित था पर तु परिस्थितिवश चुप रहा और सावधानी के साथ उसके सब कपट जाल का छि न भिन्न कर वह ऊपरी तौर पर जसव त के साथ सदाचरण करता रहा। पर तु भीतर ही भीतर वह जसव त से डरता रहा और इसीलिये उसके समस्त काय विलक्षण रीति से रद्दोबदल होने रहे। औरगजेब ने उसको ऊचे ऊचे पदो पर नियुक्त किया। गुजरात, दक्खिन मालवा अजमेर और काबुल, इन सभी प्रदेशो मे क्रमश उसको सूबेदार नियुक्त किया, कही स्वत त्र रूप से, कही सेनापति के रूप मे और कही किसी शाहजादे की अधीनता मे। पर तु उसने इन सभी कृपाओ को अपने जीवन के सबसे बडे अभिप्राय सिद्धि का प्रधान साधन समझ कर स्वीकार किया। उसके इस प्रकार के आचरणो पर विचार करने से तो यही प्रतीत होगा कि वह एक विश्वासघातक व्यक्ति था। पर तु यदि औरगजेब के चरित्र को भी ध्यान मे रखा जाय तो जसव त विश्वासघाती प्रतीत नही होगा। बादशाह ने एक दिन के लिये भी जसव त का विश्वास नही किया था। उसे जो भी मान सम्मान दिया गया उसका अभिप्राय जसव त को अपने अधीन बनाये रखना मात्र था। अ यथा उसके मन मे तो अवसर मिलते ही जसव त को समाप्त कर देना था। जसव त की सावधानी

से ही बादशाह की सभी कुचेष्टाए विफल हो गई थी । इसमे सन्देह नही कि कभी कभी जसवन्तसिंह बादशाह के उन सलूको से जो वह उसके पुरुषार्थ देखने के निमित्त करता था आश्चर्य मे आ जाता था और जब कभी उसके साथी राजा बादशाह के कृपापात्र बनना चाहते थे तो उस समय राजपूताने के राजाओ मे जसवन्त अग्रणी समझा जाता था । इसी प्रकार इन विवादो मे दोनो का इतना समय व्यतीत हो गया जो मनुष्य जीवन के लिये पूरा होता है । बादशाह ने इन राजाओ को दूर दूर के प्रान्तो की सूबेदारी देकर अपना गुलाम बना लिया था अन्यथा उसके सहयोगी आमेर नरेश जयसिंह, मेवाड नरेश राजसिंह और शिवाजी—ये सब मिलकर अपने जाति शत्रु औरगजेब को समाप्त कर सकते थे । जसवन्त के पुत्र की हत्या और उसके निरपराध वश के साथ पशुसम व्यवहार प्रकट करता है कि बादशाह को जसवन्त से कितना भय रहता था ।

जसवन्त की मृत्यु के बाद उसके परिवार के साथ औरगजेब ने जिस प्रकार का बुरा व्यवहार किया उसका वर्णन करने के पहले मैं विश्वस्त राठौड सरदारो मे से एक दो के बारे मे कुछ लिखना चाहता हूँ । जो सामन्त औरगजेब के विरुद्ध जसवन्त की सहायता देने मे तत्पर हुए थे उनमे नाहरराव सबमे प्रमुख था । वह आसोप जागीर का सरदार था और उसका वास्तविक नाम मुकुन्ददास था । नाहरराव नाम बादशाह का दिया हुआ था । एक बार बादशाह ने मुकुन्ददास को दरबार मे बुलाया । बुलाने के लिये जिसे भेजा गया था उसके व्यवहार से नाराज होकर मुकुन्ददास ने उसे डपट कर भगा दिया । बादशाह बहुत नाराज हुआ और जब मुकुन्ददास दरबार मे आया तो बादशाह ने उसे दण्डस्वरूप बिना किसी अस्त्र के बाघ के पिंजडे मे जाने की आज्ञा दी । इस कठोर आज्ञा से वह भयभीत नही हुआ और मुस्कराता हुआ बाघ के पिंजडे मे प्रवेश कर गया । उस समय बाघ पिंजडे मे घूम रहा था । मुकुन्ददास ने बाघ के सम्मुख जाकर उसे ललकारा 'ऐ मुगल के बाघ आ और जसवन्त के बाघ का सामना कर ।' बाघ और मुकुन्ददास की नजरें मिली और [illegible] बाद बाघ मुकुन्ददास के सामने से हटकर एक कोने मे चला गया । इस पर मुकुन्ददास ने [illegible] कर कहा, 'देखो बाघ मेरे साथ युद्ध न कर सका और युद्ध से भागे हुए शत्रु पर आक्रमण करना राजपूत धर्म के विरुद्ध है ।' औरगजेब के विस्मय का ठिकाना न रहा । उसी समय से उसने उसका नाम "नाहरराव" रखकर उसे पुरस्कृत किया । फिर बादशाह ने उससे पूछा 'राठौड इस असीम बाहुबल के अधिकारी होने के निमित्त तुम्हारे कितने पुत्र उत्पन्न हुए हैं ?' मुकुन्ददास ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'बादशाह ! जब आपने मुझे मेरी पत्नी से [illegible] कर [illegible] के पार भेज दिया तब मेरे किस प्रकार पुत्र हो सकते हैं ।' बादशाह [illegible] [illegible] पर [illegible] कुछ कह न सका ।

अब औरगजेब बादशाह था तब एक बार उसने मुकुन्ददास [illegible] [illegible] [illegible] पाडे पर चढकर उसका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सकते हैं।' प्रश्न को सुनकर मुकुन्ददास ने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया, "मैं व दर नहीं हूँ। राजपूत हूँ। राजपूत के सभी काय तलवार के द्वारा होते हैं। राजपूत का खेल उम समय देखना चाहिए जब शत्रु सामने हो।" औरगजेब को उसके उत्तर से प्रसन्नता नहीं हुई। वह इस स्वाभिमान को उसका अभिमान समझता था। वह उसका विनाश करना चाहता था और इसी उद्देश्य स उसने उसको देवडा राजा सुरतान के विरुद्ध भेजा। मुकुददास ने आज्ञा का पालन किया और सुरतान को ब दी बनाकर ले आया।[17] बाद मे औरगजेब ने राव सुरतान को अचलगढ जाने की अनुमति दे दी।

सन्दर्भ

1 जसवन्तसिंह का ज म मगलवार, 24 दिसम्बर, 1626 ई (सवत् 1683) को बुरहानपुर म हुआ था। उसका राज्याभिषेक 25 मई, 1638 ई को हुआ।

2 शुजा उम समय बगाल का सूबेदार था। उसे दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह ने बनारस के निकट परास्त कर खदेड दिया था।

3 जसवन्तसिंह न उज्जन से 14 मील की दूरी पर धरमत नामक गाव के समीप अपना पडाव डाला था।

4 बर्नियर और खाफीखा दोना ने लिखा है कि कासिमखा जिसे जसवन्त के अधीन मुगल सना को सेनापति बनाकर भेजा गया था उसके विश्वासघात के कारण ही जसवन्त पराजित हुआ था।

5 कोटा राज्य के अनुसार इस युद्ध मे कोटा का राजा और उसके पाचो भाई मार गये थे। यह युद्ध शुक्रवार 16 अप्रल 1658 ई को लडा गया था।

6 इस घटना का कोई विश्वसनीय प्रमाण नही मिलता।

7 29 मई 1658 ई को आगरा से आठ मील दूर सामूगढ के युद्ध म दारा परास्त होकर भाग गया। इसके बाद ही औरगजेब न शाहजहा को बन्दी बनाया था। जाजाऊ गलत लिखा गया है।

8 यह युद्ध 4 जनवरी, 1659 ई को लडा गया था।

9 दक्षिण जान के पूव जसवन्तसिंह 1659 स 1661 तक गुजरात का सूबेदार रहा। जनवरी 1662 मे वह दक्षिण भेजा गया था।

10 30 सितम्बर, 1664 का जसव तसिंह और मुअज्जम को दक्षिण से वापस लौट आने का आदेश हुआ।

11 19 अगस्त 1666 को शिवाजी बडे विचित्र ढग से भाग निकले थे।

12 23 मार्च, 1667 को जसव तसिंह और मुअज्जम को पुन दक्षिण म नियुक्त किया गया।

13 इस घटना का कोई विश्वसनीय प्रमाण नही मिलता। हा बाद म जब दिलेर खा ने मुअज्जम के आदेश का ठुकरा दिया तब उसका पीछा किया गया था।

14 किसी प्रकार का धावा नही था। जसव त 1671–72 की अवधि मे गुजरात का सूबेदार बना रहा।

15 यह घटना सत्य नही है। जसव त जब दक्षिण मे था तभी 8 मई 1667 को चेचक निकल आने से पृथ्वीसिंह की मृत्यु हुई थी न कि काबुल जाने के बाद जसाकि टॉड साहब न लिखा है।

16 शाइस्ताखां नही मारा गया था बल्कि उसका पुत्र मारा गया था।

17 यह भी गलत है। राव सुरतान बहुत पहले मर चुके थे। उस समय उसका प्रपौत्र अखैराज सिरोही का राव था।

अध्याय 37

जसवन्तसिह के बाद का इतिहास

अटक के उस पार जब जसव न की मृत्यु हो गई तो उसकी पत्नी[1] (अजीत की भावी माता) ने पति के मात सती होने का विचार किया पर तु चू कि उसके गभ मे साथ मास का शिशु था अत ऊदा कू पावत ने उसे सती होने से रोका, क्योकि जसव त का कोई पुत्र जीवित न बचा था।[2] उसकी एक अ य पत्नी सात उपपत्नियो के साथ सती हुई। जब उसकी मृत्यु की सूचना जोधपुर पहुची तो उसकी च द्रावती पत्नी अपने पति की पगडी के साथ सती हुई।

जसव त की विधवा रानी ने एक पुत्र को ज म दिया जिसका नाम अजीत रखा गया।[3] ज्यो ही उसकी मा चलने फिरने योग्य हुई त्यो ही राठौड सरदार उसको, उसके शिशु को और अ य सभी लोगो के साथ काबुल से मारवाड की तरफ रवाना हुए। जब व लाग दिल्ली पहुचे तो प्रतिशोधी औरगजेब ने उ ह आदेश दिया कि जसव न के बच्चे का उसकी निगरानी मे दे दिया जाय। उसने राठौड सरदारो को प्रलोभन देत हुए कहा कि "यदि तुम राजकुमार को मुझे सौंप दोगे तो म सम्पूण मारवाड तुम लागा मे बाट दूँगा।" पर तु उ होने जवबा दिया 'हमारी मातृभूमि हमारी अस्थि मज्जा के साथ मिली हुई है और वह हमारी ज मभूमि और उसके राजा की रक्षा करेगी।" लाल नेत्रो के साथ राठौड सरदार दीवानेखास से निकल कर अपने डेरे पर चले आये। थोडे समय के बाद ही उनके डेरे को मुगलो क एक सैनिक दस्त ने आकर घेर लिया। मिठाई के एक टोकरे मे उ होने शिशु राजकुमार को डेर से बाहर भिजवा दिया और उसके बाद अपन सम्मान को बचाने की तयारी की। उ होने ईश्वर को प्रणाम किया अफीम की दुगुनी खुराक ली और घोडो पर सवार हुये। इसके बाद एक ही समय म पाच वीरो—रणछोड गोवि द च द्रभान, ऊ पावत भारमल और भूजावत रघुनाथ ने अपन साथियो से कहा, 'आओ, ममर सागर से पार हो जायें और इस असुर पुत्र का नाश करें। मरन पर हम अप्सराए सूय लाक ले जायेंगी।' तभी भाट कवि सूजा न उत्साह के साथ कहा, 'आज आप

लोगो का राजानुग्रह भोग करना साथक होगा। आज अपने राजा और स्वदेश के लिए तलवार धारण कर प्राण त्याग कर स्वग मे जान के लिए ही इतने दिनो से जागीरो का भोग करत आये है। मैं भी आपके साथ चलता हू। मैंने भी महाराज की वधुता और अनुग्रह का भोग किया है। आज उसकी साथकता को पूरा करूगा। आन वाले कवि अमृतमय गीतो के साथ हमार यश का गान करेंगे।" इसके बाद आशा के पुत्र वीर दुर्गादास ने कहा, 'हिन्दुआ के अस्थि मास का भक्षण कर यवनो की दाढें अत्यन्त तीक्ष्ण हो गई हैं किन्तु यह सब थाडे दिनो के लिए है। आज हम सब उनको इसका दण्ड देंगे आज हमारी तीक्ष्ण तलवारो से जो चिनगारिया निकलेंगी उनसे समस्त दिल्ली जल जायेगी। आज दिल्ली हमारी वीरता देखेगी। आज राजपूतो के कोप स मुस्लिम सेना भस्म हो जायगी।" इसके बाद राजपूतो ने काबुल से साथ आई हुई स्त्रियो की मान रक्षा करन की दृष्टि से उन्ह स्वग म बिदा कर दिया।[4] फिर हाथो मे तलवारें और भाले लेकर वे अपने शत्रुओ पर टूट पडे। युद्ध भूमि मे रुधिर की धारा से कीचड ही कीचड हो गया। दिल्ली के राजमाग मे दूहड[5] के वशजो ने युद्ध किया, मुण्डधारी शकर न स्वय उस युद्धभूमि मे विचरण कर अपन भयानक मुण्डमाल को पूण किया। रत्ना ने नौ हजार शत्रुओ का सहार किया, परन्तु वह मारा गया और रम्भा उसको लेकर चली गई। अनेक राठौड सरदार मारे गये। दुर्गादास ने अपूव पराक्रम से शत्रु को पीछे धकेल कर अपनी प्रतिष्ठा रख ली।

मुगल सेना के साथ थोडे से राठौडो का यह युद्ध श्रावण कृष्ण पक्ष सवत् 1736 (1680 ई) म हुआ। भट्ट ग्र था म इसका विस्तार म वणन किया गया है। मिष्ठान के जिस टोकरे मे अजीत को छिपा कर भेजा गया था—उस टोकर को ले जान का दायित्व एक विश्वस्त मुसलमान का दिया गया था। जब वह टोकरा लेकर रवाना हुआ तो उस पर किसी भी शाही सनिक न सदेह नही किया। राठौडों न इस सम्बन्ध म दूरदर्शिता से काम लिया था। इसम कोई स देह नही कि उस मुसलमान न अजीत के प्राण बचान म सहायता की थी। वह मुसलमान पहले स निर्धारित स्थान पर टोकरा लेकर पहुच गया और कुछ समय के बाद दुर्गादास युद्ध मे बचे हुये राठौड वीरो के साथ वहा पहुच गया। दुर्गादास के शरीर पर अनका जख्म हो गये थे जिनसे खून टपक रहा था। परन्तु उस इस बात की चिन्ता न थी। वह किसी प्रकार अजीत को सुरक्षित देखना चाहता था। उस मुसलमान को बाद मे मारवाड राज्य म एक जागीर प्रदान की गई जो अब तक उसके वशजो के पास है। बड होने पर अजीत न भी उसका काफी सम्मान किया और उसे 'चाचा' कहकर पुकारता था।

जसवन्त के एक मात्र शिशु उत्तराधिकारी को लेकर दुर्गादास कुछ चुने हुये वीरो के साथ आबू पहाड की तरफ चला गया और साधुओ के एक मठ म रहते हुए उसका पालन पोषण करने लगा। उस एकान्त स्थान म मारवाड का उत्तराधिकारी

अपने ज म के बारे मे अनजान रहते हुए बडा होने लगा। समय के साथ साथ मारवाड के राजपूतो मे यह अफवाह फैलने लगी कि जसव त का एक पुत्र जीवित है और दुर्गादास तथा कुछ अ य राजपूतो के सरक्षण मे उसका पालन पोषण हो रहा है। स्वामिभक्त राजपूतो के लिये इतना ही बहुत था। धीरे धीरे उ ह पता चल गया कि आबू पवत पर अजीत का लालन-पालन हो रहा है। दुनाडा का सरदार तो उसे पहले से ही 'धनी" के नाम से सम्बोधन किया करता था। पर तु शीघ्र ही एक नया खतरा उत्पन्न हो गया। पुराने समय मे ईंदा नामक एक राजवश मरूभूमि पर शासन किया करता था। वे परिहार वश की शाखा थे। मारवाड पर राठौडो का शासन स्थापित हो जाने पर वे लोग मडौर छोड कर दूर चले गये थे। अपने राज्य के छिन जाने की वेदना अभी तक उन लोगो मे थी। इस समय उनको अवसर मिल गया था और थोडे ही दिनो मे परिहारो का झण्डा प्राचीन मडौर पर फहराने भी लगा। जबकि ईंदा लोग इस विजय का आन द ही मना रहे थे कि अमरसिंह (जसव त का बडा पुत्र) का पुत्र रतन जोधपुर पर अधिकार करने के लिए चढ आया।[6] उसको औरगजेब ने इस काय के लिये उकसाया था पर तु उसको सफलता नही मिली। जसव त के स्वामिभक्त सरदारो ने अजीत के नाम पर ईंदा लोगो को मडौर से और रतन को जोधपुर मे मार भगाया। रतन भागकर अपने नागौर के दुग मे पहुच गया। तब औरगजेब ने स्वय अपनी सेना के साथ मारवाड पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी को जा घेरा, जिस पर शीघ्र ही उसका अधिकार हो गया।[7] इसके बाद मुगलो ने सारे देश को रौद डाला। मरू देश के सभी बडे नगरो–मेडता, डीडवाना और रोहट का एक जैसा ही हाल हुआ। वहा के म दिर और स्तम्भ गिरा दिये गये। देव मूर्तियो को खडित किया गया और अनेको हि दुओ को बलपूवक मुसलमान बनाया गया। औरगजेब की इस असहिष्णुता और विवकहीन राजनतिक कायवाही का दुष्परिणाम न केवल उसको बल्कि उसकी सम्पूण जाति को भुगतना पडा और उसका साम्राज्य अ त म छिन भिन हो गया। औरगजेब ने सम्पूण हि दू जाति पर 'जजिया' कर लागू किया जिससे वे सभी लोग एकता मे आबद्ध हो गये जि ह देश अथवा अपने धम से प्यार था। इसी अवसर पर राठौड और सीसोदिया उसके विरुद्ध सयुक्त हुये और युद्ध शुरू हो गया।[8]

भट्ट कवि कहता है 'राजपूतो को नष्ट करने के लिये तहव्वर खाँ के नेतत्व मे सत्तर हजार शाही सनिक भेजे गये और उनके पीछे औरगजेब स्वय भी अजमेर आ पहुचा। मेडतिया सरदारो ने एकत्र होकर उससे युद्ध करने का निश्चय किया और उसका सामना करने के लिए पुष्कर की तरफ बढे। यह युद्ध वाराह म दिर के सामने लडा गया जिसमे शाही सेना से लडते हुए मेडतिया सरदारो ने वीरगति प्राप्त की। सवत् 1736 के भादो मास मे यह युद्ध लडा गया था।

तहव्वर खाँ ने अपना विजयी अभियान जारी रखा। मरूधर के निवासी पहाडो की ओर भागने लगे। गुढा नामक स्थान पर रूपा और कुम्भो नामक दो

भाइया ने अपने कुल के लोगो के साथ उसका सामना किया पर तु विशाल सेना के सामने वे सभी मारे गये । जैसे बादल धरती पर पानी बरसाते हैं वसे ही औरगजेब पृथ्वी पर सवनाश की वर्षा कर रहा था । पाच दिन तक अजमेर मे रुकने के बाद वह चित्तौड की तरफ बढा । दुग का पतन हो गया माना स्वग का पतन हो गया हो । राणा द्वारा अजीत बचा लिया गया और सीसोदियो की मेहमाननवाजी मे राठौडो ने आगे रहकर युद्ध लडा । यवनो की विशाल सना को देखकर उन्होन शिशु *अजीत को एक गुप्त स्थान मे छिपा कर रखा । दिल्लीपति देवाडी के निकट आ पहुचा* जहा कुम्भो, उग्रसन और ऊदा–सभी राठौड सरदार उसका विरोध करने को जा पहुचे । औरगजेब न उदयपुर पर आक्रमण किया और अजीम को चित्तौड छोड आया । तब उसे सूचना मिली कि दुर्गादास ने जालौर पर आक्रमण कर दिया है । उसन अपन विजय अभियान का छाड दिया और अजमेर वापस आ गया । उसने मुकरर खा को जालौर के बिहारी पठानो की सहायता के लिए भेजा । तब तक दुर्गा वहा से दण्ड वसूल कर जोधपुर पहुच गया था । वहा इस समय बादशाह की तरफ से इदरसिह का पुन कायम था । इस समय औरगजेब ने तहब्बर खा की सहायता के लिए अपन पुत्र शाहजादे अकबर को भेजा । कुछ दिनो बाद जोधपुर इदो के अधिकार म दे दिया गया पर तु चापावता ने खेतापुर के निकट उन लोगो का सवनाश कर दिया । एक बार पुन मरुधर देश के राव की पदवी उनके हाथ से निकल गई । सवत् 1736 के जेठ मास की त्रयोदशी के दिन परिहारो को प्रभुसत्ता सौपने का बादशाह का इरादा सफल नही हो पाया ।

अरावली ने राठौडो को आश्रय प्रदान किया । यहा के कठिन मार्गो से तेजा के साथ निकलकर वे अचानक मुसलमाना पर टूट पडते और उनको मारकाट कर एव लूटकर फिर अपने सुरक्षित स्थानो को भाग आते । उनके एक द ल ने जालौर पर आक्रमण किया तो दूसरे ने सिवाना पर । सभी स्थाना पर अजीत की आन' सुनाई पड रही थी । विवश होकर औरगजेब ने राणा के साथ युद्ध ब द कर दिया और अपनी सम्पूण सेना मारवाड मे भेज दी । पर तु राणा जिसन अजीत का अपन यहा आश्रय देकर औरगजेब के प्रतिशोध की अग्नि को प्रज्वलित किया था न अपने पुत्र भीम के नेतृत्व मे अपनी सेना को राठौडो के साथ सहयोग करन के लिए गोडवार म इ द्र भानु और दुर्गादास के पास भिजवा दी । भीमसिह वहा पहुच कर उनके साथ मिल गया । शाहजादा अकबर और तहब्बर खा मुगल सेना क साथ उनस युद्ध करन को आ पहुचे । नाडौल के समीप दाना पक्षा क मध्य भयकर युद्ध हुआ । दोना तरफ से अनेक लोग मारे गये । राजकुमार भीम भी मारा गया । उसकी सेना न राठौडा के साथ मिल कर मुगला से जमकर मोर्चा लिया था । इन्द्रभान और ऊदावत जेता भी मारे गये । सवत् 1737 के आसोज की चतुदशी के दिन लडे गय इस युद्ध म दुर्गादास ने अपूव पराक्रम का परिचय दिया ।

इस असमान युद्ध मे अपने देश और राजा के प्रति राजपूतो की दृढ निष्ठा और शूरवीरता ने शाहजादे अकबर की आत्मा को विचलित कर दिया और इन शूरवीर सरदारो के प्रति अपने पिता की नीति के बारे मे सोचने को बाध्य कर दिया। उसने सेनापति तहब्बरखा से अपने मन की व्यथा कही। उसने भी स्वीकार किया कि राजपूतो के इस सर्वनाश का कारण हम लोग ही हैं। तहब्बर का समर्थन मिलने के बाद शाहजादे ने दुर्गादास के पास अपना एक दूत भेजकर कहा, 'राज्य मे शांति कायम होने के लिये यह जरूरी है कि आपके साथ मेरी मुलाकात हो और इस सम्बन्ध मे बातचीत हो।" दुर्गादास ने राठौड सरदारो से अकबर के प्रस्ताव के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श किया। किसी ने इसको विश्वासघात का एक नया कदम बताया तो किसी ने इसे दुर्गादास के स्वार्थ से प्रेरित कहा। दुर्गा ने सबके सन्देहो को ध्यान मे रखते हुए कहा कि हमें शत्रु का विश्वास नही करना चाहिए। लेकिन यदि यह सन्देश सच्चाई के साथ भेजा गया है तो हमे भयभीत होने की आवश्यकता नही। यदि आप लोगो की सहमति हो तो हम सब लोग अकबर के पास जाकर उसके साथ परामर्श करें। सरदारो ने दुर्गा की बात मान ली। उन लोगो ने अकबर से मुलाकात की। बिना किसी विवाद के संधि हो गई और अकबर के सिर पर ताज रखने का निर्णय लिया गया। उसने अपने नाम का सिक्का ढलवाया और तोल एवं नाप के पमान तय किये। अजमेर मे बैठे हुये औरंगजेब ने इन सब बातो को सुना। उसकी आत्मा तिलमिला उठी। वह अधीर हो उठा। यह सुनकर कि शाहजादा और दुर्गा आपस मे मिल गये हैं वह बार-बार अपनी दाढी खुजलाने लगा। प्रत्येक राठौड अकबर के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगा। दिल्ली का राजवंश विभाजित हो गया था।

निरंकुश औरंगजेब का पदच्युत होना अवश्यम्भावी प्रतीत हो रहा था। राजपूतो का पक्ष सबल हो उठा था और वह इस समय बिल्कुल अकेला था। कहीं से सहायता की उम्मीद न थी। परन्तु उसकी बुद्धि ने उसका साथ नही छोडा था। वह अपने शत्रुओ के चरित्र से भलीभांति परिचित था और उसे विश्वास था कि उस कपट नीति से अकेले ही एक सेना का सामना करने मे समर्थ है। चूंकि इस समय की घटनाओ के बारे मे मुगल इतिहासकारो के विवरण तथा भाट कवियो के वृत्तान्तो मे बहुत अधिक भिन्नता है अत हम भाटो के वृत्तान्त के आधार पर लिखेंगे।

अकबर राजपूतो की विशाल सेना के साथ अजमेर की तरफ बढा। जबकि औरंगजेब इस तूफान के लिये तैयारी कर रहा था, अकबर संगीत और सुन्दरियो मे मस्त हो गया और उसने सभी काम तहब्बरखा को सौंप दिये। औरंगजेब ने तहब्बरखा को अपना शिकार बनाया और उसे सदेश भिजवाया कि यदि वह शाहजादा अकबर को उसे सौंप दे तो उसे बहुत बडा पुरस्कार दिया जायेगा। तहब्बरखा ने उस सन्देश पर विश्वास कर लिया और उसने रात्रि के अंधेरे मे

बादशाह से मुलाकात की और राठौडा को एक पत्र लिखा, ' आप लोगो और अकबर के मध्य होने वाली सधि म मैं एक गाठ के समान था । जिम बाध न जल के दो भाग कर दिये थे वह बाध अब टूट गया है । बाप और बेटा मिलकर एक हो गये है । इस स्थिति मे सधि की समस्त बातें अब खत्म हा जाती है और मैं आशा करता हू कि आप लोग लौटकर चल जायेंगे ।" पत्र पर अपनी मुहर लगा कर और दूत के हाथो पत्र राठौडो को भेजने की व्यवस्था कर वह अपनी इस सेवा का पुरस्कार लेने के लिये बादशाह के सामन उपस्थित हुआ । परन्तु उसका अपन विश्वासघात का कसा पुरस्कार मिला । वह कुछ कह पाता उससे पहले ही बादशाह के आदेश का पालन हुआ, बादशाह के अधिकारी की तलवार ने उसके गले पर जोरदार प्रहार करके उसके कटे हुये सिर को जमीन पर गिरा दिया ।[9] आधी रात को दूत उसका पत्र लेकर राठौडो के पास पहुचा और दूत न अपनी तरफ से यह भी बता दिया कि तहव्वरखा मारा जा चुका है । इससे अचानक गडबडी फल गई । राठौडो ने अपने घाडे तयार किये और उन पर सवार होकर अकबर के डेरे से दस कोस दूर चले गये । राठौडा के चले जान के बाद शाहजादे की सेना भी आधी मे उडने लगी परन्तु शाहजादा सगीत और विलासिता मे डूबा हुआ था । उसके होश मे आने के पहल ही उसकी सेना अपना डरा तोडकर उस स्थान से प्रस्थान कर चुकी थी ।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि राजपूतो का चरित्र कसा था ? वे बिना सोचे समझे तत्काल निर्णय कर लेते थे । राठौडो का डेरा अकबर से ज्यादा दूर न था । उन्होंने अकबर से अथवा उस पत्र की सत्यता की जाच करने की आवश्यकता भी न समझी और घोडो पर सवार होकर बीस मील दूर निकल गये । यह सत्य है कि विनाश के उन दिनो मे किस प्रकार किस पर विश्वास किया जाय– बहुत कठिन था, इसलिये राजपूतो के लिये यह समझना कठिन था कि शाहजादा किस सीमा तक इस धूर्त योजना मे सम्मिलित था ।

दूसरे दिन वे और भी अधिक आश्चय मे पड गय जबकि शाहजादा उनस आ मिला । दूसर दिन सुबह अकबर न सेनापति तहव्वरखा की मृत्यु और राठौडा तथा अपनी सेना के भाग जान का समाचार सुना । उसने बडी मुश्किल से बचे हुये एक हजार सनिको का एकत्र किया और राठौडो के शिविर की तरफ प्रस्थान किया और उनमे अपन को तथा अपन परिवार का बचान की अपील की जो बकार नही गई । कवि करणीदान न इस घटना का बहुत ही अच्छा विवरण दिया है । तहव्वरखा के पत्र ने सभी राठौड सरदारा को सन्देह मे डाल दिया था । अत अब सभी न मिलकर मौजूदा स्थिति पर विचार किया और सभी वशो के सरदारा न यह बात स्वीकार की कि शरण म आये हुये शाहजादे को सुरक्षा देना ही राजपूता का धम है । उनको औरगजेब की चाल का पता चल गया और उन्ह विश्वास हा गया कि अकबर निरपराध है । जब तक अकबर हमारा साथ नही छाडता तब तक हमे भी उसका

साथ देना चाहिए। वीरवर दुर्गादास उस चक्र का अगुवा बना। कवि ने दुर्गादास की महिमा का इस प्रकार से वर्णन किया है—

ऐ ! माता पूत ऐसा जिन, जसा दुर्गादास
बाध मरुधरा राखियो, बिन थम्बा आकाश

राजपूत का यह प्रतिनिधि जितना बुद्धिमान था उतना ही पराक्रमी था और अपने देश का रक्षक था। कई वीरतापूर्ण संघर्षों और उससे भी अधिक कठिन परिस्थितियों में देश और उसके राजा की सुरक्षा उसी के सुझावों की देन थी। दुर्गादास अपने सैनिकों के साथ युवक अकबर को साथ लेकर मारवाड़ के सुदूर पश्चिमी क्षेत्र की तरफ बढ़ा। उसका विश्वास था कि औरंगजेब उनका पीछा करता हुआ लूनी के रेतीले टीबों में आकर फंस जायेगा। परन्तु धूर्त औरंगजेब ने दूसरे उपायों का सहारा लिया जिनमें एक था दुर्गादास को पथभ्रष्ट करने का। उसने आठ हजार स्वर्ण मोहरें दुर्गादास के पास भिजवादी और उसके बाद भी अनेक प्रलोभन दिये। दुर्गा ने ये मोहरें अकबर को दे दी क्योंकि वह तंग हालत में था। अकबर उसकी निष्ठा को देखकर प्रभावित हुआ और उसने उन मोहरों को दोनों तरफ के निर्धन सेवकों में बांट दिया। औरंगजेब ने जब देखा कि उसकी चाल बेकार गई तो उसने अकबर का पीछा करने के लिये एक मुगल सेना भेज दी। इससे अकबर भयभीत हो उठा। उसे विश्वास हो गया कि यदि वह पकड़ा गया तो उसका पिता उसके साथ किसी प्रकार का उदार व्यवहार नहीं करेगा। अतः उसने बादशाही फौज से दूरी बनाये रखने का निश्चय किया। परन्तु दुर्गादास ने उसे सन्ताप देते हुए उसकी सुरक्षा का आश्वासन दिया। दुर्गादास ने राजकुमार अजीत की सुरक्षा का भार अपने बड़े भाई सोनिंग[10] को सौंप कर एक हजार चुने हुये सवारों के साथ अकबर को लेकर दक्षिण की तरफ प्रस्थान किया। कवि करणीदान ने उन सभी विश्वासी सरदारों जिन्हें अकबर की सुरक्षा के लिये साथ में लिया गया था, का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। उनमें चम्पावतों की संख्या अधिक थी। जोधा मेड़तिया यदु चौहान, भाटी, देवड़ा, सोनगरा और मांगलिया आदि सरदार भी साथ में थे।

बादशाह ने आबू से मारवाड़ आने वालों का पीछा किया। उसकी सेना ने राठौड़ों की घेराबन्दी का प्रयास किया, परन्तु दुर्गादास एक हजार सैनिकों के साथ उत्तर की तरफ बढ़ा और तेजी के साथ घेराबन्दी से निकल गया। औरंगजेब उनका पीछा करता हुआ जालौर तक गया। वहां उसे मालूम हुआ कि वह गलत मार्ग पर भटक आया है और दुर्गादास गुजरात के दक्षिण की तरफ और चम्बल नदी की ओर अकबर को लिये हुये नर्वदा के किनारे पर पहुँच गया है। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह अपने नित्य के धार्मिक कृत्यों को भी भूल गया और कुरान शरीफ को उठा कर फेंक दिया। क्रोधित अवस्था में उसने आजम को राठौड़ों का

सवनाश करने तथा अकबर को बंदी बना कर लाने का आदेश दिया। परंतु यह हिदायत भी दी कि उदयपुर को एक तरफ छोड देना। आजम के जाने के दस दिना के भीतर ही, अजमेर और जोधपुर म अपनी सनिक टुकडियो को नियुक्त करक बादशाह भी चल पडा।

खीचीवशीय शिवसिंह और मुकुंद की अपेक्षा और कौन अधिक विश्वासी होगा? जब तक शिशु अजीत आबू पहाड की कदराओ मे छिपा हुआ था तब तक एक क्षण के लिये भी उन्होने उसका सग न छोडा था। दुर्गादास ने केवल इन दोना सरदारा को और विश्वस्त सानगरा सरदार को अजीत के छिपे रहने की बात बताई थी। नवकोटि मारवाड के समस्त सामंत यह तो जानते थे कि अजीत को छिपा कर रखा गया है, परन्तु कहा और किसके आश्रय मे—इसकी जानकारी किसी को न थी। किसी के अनुसार वह जैसलमेर मे था तो किसी के विचार से विक्रमपुर म और किसी ने सोच लिया कि वह सिरोही मे छिपा हुआ है। राठौड सामंत अत्यंत ही प्रशसा के पात्र हैं क्योकि यथाथ वीरो की भाति उन्होने वनवास का व्रत लिया था। उनकी वीरता से मोहित होकर राजा, राव और राणा आदि ने मुक्तकंठ से उनकी प्रशसा की थी। उस प्रचण्ड आक्रमण मे मुसलमानो के पैशाचिक अत्याचार से सभी बबाद हो गया था। मारवाड के नौ हजार और मेवाड के दस हजार गाव वीरान हो चुके थे। जोधपुर की रक्षा के लिये इनायत खा को दस हजार सनिका के साथ छोड दिया गया था, परन्तु चापावत सरदार मरूभूमि मे मेरू के समान अटल आर दुर्गादास का भाई सोनिग निभय और दृढप्रतिज्ञ रहा। करणोत खेमकरण, जोधावशी सबल, महेचा विजयमल मूजावत जतमल करणोत केसरी और जोधावशी शिवदान तथा भीम तथा अन्य सरदारा न अपने कुल वालो को एकत्र किया और ज्यो ही उन्ह यह मालूम हुआ कि बादशाह अजमेर से चार कोस की सीमा के अन्दर है उन्होने जोधपुर नगर मे इनायत खा को घेर लिया परन्तु शीघ्र ही बीस हजार मुगल सनिक उसकी सहायताथ आ पहुँचे। जोधपुर के द्वार पर एक और घनघोर युद्ध हुआ जिसमे यदुवशी केसरी तथा अन्य राजपूत सरदार मारे गये। मुगलो के भी अनेक सनिक मारे गये। यह भयानक युद्ध वि सवत् 1737 आषाढ वदी सप्तमी के दिन हुआ था।

सोनिग ने अपनी प्रचण्ड तलवार चारो ओर चलाई। औरंगजेब न आगे बढ सका और न पीछे हट पाया। इसके बाद एक और युद्ध हुआ जिसमे हरनाथ और चार्सिंह अपने परिवार के कई लोगो के साथ मारे गये। इस युद्ध का अन्त सवत् 1738 के प्रारम्भ म हुआ।

वीर सोनिग इस युद्ध म रुद्र के समान विचरण करने लगा था। उसे औरंगजेब का तनिक भी भय न था। औरंगजेब ने अपना एक दूत उसके पास भेजा।

दूत भेजने का अभिप्राय शांति संधि करना था। बादशाह ने अजीत के लिये सात हजारी मनसब और उसके सजातीय बंधुओं को मनसबें तथा अजमेर सौंपने और सोनिंग को वहाँ का अधिकारी नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा। इस सम्बन्ध में बादशाह ने एक संधि पत्र पर अपना पंजा लगाते हुये लिखा कि 'मैं ईश्वर को साक्षी करके इस संधि पत्र पर मुहर करता हूँ कि इसके विरुद्ध कोई काम नहीं होगा।" उस संधि पत्र को लेकर दीवान असद खां मध्यस्थ होकर वहां आया। संधि पत्र को मान लिया गया, परन्तु औरंगजेब एक क्षण के लिये भी अकबर की तरफ से अपना ध्यान नहीं हटा पाया और वह दक्षिण के लिये चल पड़ा। जाने से पहले वह असद खां को अजमेर में और सोनिंग को मेंटता में छोड़ता गया। किन्तु सोनिंग औरंगजेब का कांटा था। उसने ब्राह्मणों को धन प्रदान किया जिन्होंने सोनिंग को मार डाला। यह घटना संवत् 1738 के आश्विन मास की छठी के दिन की है।

असद खां ने उसकी मृत्यु की सूचना बादशाह को भिजवा दी। इस कांटे के दूर होते ही, उसने संधि को रद्द कर दिया और प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण की ओर बढ़ने लगा। सोनिंग की मृत्यु से देश भर में अंधकार छा गया। मेड़तिया कल्याण का पुत्र मुकंदसिंह अपने मनसब को त्याग कर देशहित में आ जुटा। मेड़ता के निकट असद खां की सेना के साथ एक और युद्ध लड़ा गया जिसमें विट्ठल दास का पुत्र अजीत[11] अनेक वीरों के साथ मारा गया। यह घनघोर युद्ध संवत् 1738 की कार्तिक शुक्ला द्वितीया को हुआ था।

राजकुमार आजम, असद खां के साथ रहा इनायत खां जोधपुर में रहने लगा और उसकी सेना देश के चारों ओर फैल गई, आज भी उनकी कब्रें इधर उधर दिखाई देती हैं। अब चंडावल के स्वामी कूंपावत शम्भू ने वरणी उदयसिंह और दुर्गादास के युवक पुत्र तेजसिंह के साथ राठौड़ों का नेतृत्व संभाला। इसी समय दक्षिण से फतेहसिंह और रामसिंह भी अकबर को पहुँचा कर वापस लौट आये थे। वे लोग देश के चारों ओर यहां तक कि मेवाड़ तक फैल गये और उन्होंने पुरमंडल[1] को ध्वंस कर वहां के अधिकारी कासिम खां को मार डाला।

इन भीषण और बारबार के युद्धों से शाही सैनिकों को हर समय सतर्क रहने के लिये विवश होना पड़ा परन्तु मारवाड़ की रक्षा करने वाले वीरों की भी काफी कमी हो गई थी। अतः उस समय राठौड़ों को पुनः अरावली के पहाड़ों का आश्रय लेना पड़ा। वहां से मौका मिलते ही वे शत्रुओं पर झपट्टा मार कर पुनः घर लौट आते थे। कुछ दिनों बाद ही उन्होंने जैतारण में स्थित मुगल सेना को काट डाला और बचे खुचे सैनिकों को खदेड़ दिया। संवत् 1739 में राठौड़ों ने फिर जोर पकड़ा। चांपावत विजयसिंह ने सोजत पर धावा मारा और जोधावतों ने रामसिंह के नेतृत्व

में उत्तरी क्षेत्र म शत्रु का छकाया। उदयभान ने चिराइ के हाकिम मिर्जा नूर अली पर आक्रमण किया और अनेक यवनों को मौत के घाट उतार दिया।

उदयसिंह चापावत और मोहकमसिंह मेडतिया न गुजरात की तरफ धावा मारा और पालनपुर तक जा पहुंचे। तब गुजरात के हाकिम सय्यद मोहम्मद न उन पर आक्रमण किया और रनपुर की पहाडी तक पीछा किया। उस रात दोनो पक्ष आमने सामने खडे रह। प्रात होते ही युद्ध हुआ। भाटी गोकुल दास अपने बहुत से साथियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। रामसिंह बडी बहादुरी के साथ लडा और अन्त म वह भी मारा गया। यवनो के अधिक सैनिक मारे गय परन्तु विजय उन्ही की हुई। इसी वर्ष (सवत् 1739) के भादो महीने म पाली पर आक्रमण हुआ। इस बार नूर अली के साथ युद्ध हुआ। राठौडो के तीन सौ सैनिक मारे गये जबकि मुगलो के पाच सौ सैनिक खेत रहे जिनम अफजल खा नामक बडा अधिकारी भी शामिल था। इस स्थान म मुगलो को खदेडन म बल्लू नामक वीर ने बडी दिलेरी दिखलाई थी। इसी समय उदयसिंह ने सोजत के सिद्दी पर आक्रमण किया। जतारण पर राठौडो न पुन अधिकार कर लिया। वैशाख मास मे मोहकमसिंह मेडतिया न मेडता की शाही चौकी पर हमला किया और सैय्यद अली को मार डाला। बादशाह की सेना को वहाँ से खदेड दिया गया।

सवत् 1739 का वर्ष लगातार आक्रमणो और युद्धो जय पराजयो का वर्ष रहा जिसमे दोनो तरफ काफी नरसहार हुआ। कई अवसरो पर राठौडो ने अपूर्व पराक्रम का प्रदर्शन किया। इन युद्धो म मारे जाने वाले सैनिको की पूर्ति करना राठौडो के लिये कठिन हो गया जबकि बादशाह हर क्षेत्र मे नई सेना भेजता रहा। इस वर्ष जसलमेर के भाटी राठौडो द्वारा देशभक्ति से परिपूर्ण चलाये जाने वाले सघर्ष म उनके साथ आ गये।

सवत् 1740 म आजम और असदखा बादशाह की सहायता के लिये दक्षिण चले गये और मुगलो का नेतृत्व सभाले इनायत खा अजमेर मे रहने लगा। उसे आदेश मिला कि युद्ध को जारी रखा जाय और बरसात के दिनो मे भी बन्द न किया जाय। मेरवाडा के पहाडी क्षेत्रो न राठौड वीरो और उनके परिवारो को आश्रय दिया। इनायत खा न यहाँ पर भी आक्रमण किया। प्रत्युत्तर म उन्होने पाली सोजत और गोडवार म आक्रमण कर लूटमार की। प्राचीन मडोर इस समय ख्वाजा सालह नामक मुगल अधिकारी की देखरेख म था। माडचा भाटी ने उस पर आक्रमण करके उसे वहा से निकाल दिया। वैसाख महीने म बगडी के पास एक युद्ध लडा गया जिसम रामसिंह और सामतसिंह नामक दो भाटी सरदारो ने हजारो मुसलमानो को मार डाला। वे दोनो भी अपने दो सौ साथियो के साथ मारे गये। अनूपसिंह नामक एक कूपावत सरदार ने लूनी नदी के समीप मुसलमानो का सहार किया और

आसपास की मुगल चौकियो के रक्षकों को मार भगाया। मोहनसिंह मेड़तिया ने अपनी जन्मभूमि पर स्थापित शाही चौकी पर आक्रमण किया। सेनापति मुहम्मद अली ने उसका सामना किया। घमासान युद्ध के बाद सेनापति ने युद्ध बन्द करने की प्रार्थना की और संधि के लिये बुलाया। संधि के समय उसने छल कपट का सहारा लेकर मेड़तिया सरदार को मार डाला जिसकी सूचना मिलने पर दक्षिण में औरंगजेब ने जश्न मनाया।

संवत् 1741 के प्रारम्भ में सुजानसिंह ने दक्षिण में राठौड़ों का नेतृत्व किया जबकि लाखा चांपावत और केसर कूंपावत ने भाटियों और चौहानों की सहायता से जोधपुर की दुर्गरक्षक शाही सेना को उलझाये रखा। जब सूजा मारा गया तो बादशाह की सेवा में नियुक्त संग्रामसिंह[13] के पास चारण को भेजा गया और उसने युद्ध में सम्मिलित होने के लिये कहा गया। वह बादशाही मनसब को छोड़कर अपने देशवासियों से आ मिला। उसने सिवाना बालोतरा और पचपदरा पर आक्रमण कर लूटमार की। मारवाड़ में शाही सेना की यह स्थिति थी कि सूर्यास्त होते ही मारवाड़ के प्रत्येक नगर के द्वार बन्द कर दिये जाते थे। दुर्गों पर मुगलों का अधिकार था जबकि रेतीले मैदानों पर अजीत की जय जयकार होती थी। अपने जोधावतों के साथ उदयभान ने भाद्राजून पर आक्रमण किया और लूटमार में काफी धन सम्पत्ति बटोरी। वहां के मुस्लिम सैनिकों ने उसका सामना किया परन्तु पराजित हुए।

पुरदिलखां सिवाना में और नाहरखां मेवाटी तथा कुनारी में था। उन पर आक्रमण करने के लिये चांपावत लोग मोकलसर गांव में एकत्र हुए। उसी समय उन्हें सूचना मिली कि नूरअली अमानी[14] कुल की स्त्रियों का अपहरण करके ले गया है। यह सुनते ही रतनसिंह राठौड़ सेना सहित बढ़ा, कुनारी के निकट पुरदिलखां पर आक्रमण किया और उसे मार डाला। यह सुनते ही मिर्जा असानी सुन्दरियों के साथ टांडा की तरफ भागा और मार्ग में कोचाल नामक स्थान पर पड़ाव डाला। आसकरण के पुत्र सबलसिंह ने भी इस समाचार को सुना। उसने अफीम खाई और अपने साथियों को लेकर युद्ध करने के लिये चल पड़ा। दोनों तरफ से मारकाट हुई। सबलसिंह की कटार मिर्जा के सीने के आर-पार हो गई, परन्तु भाटी सरदार भी मारा गया।

संवत् 1742 के आरम्भ में लाखावतों और आसावतों ने मिलकर सांभर में तैनात शाही सेना पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया। गोड़वार के सरदारों ने अजमेर के द्वारों तक धावे मारे। मेड़ता के निकट एक युद्ध लड़ा गया जिसमें राठौड़ पराजित हुये। संग्रामसिंह ने इसका बदला लेने के लिये जोधपुर के बाहरी क्षेत्रों में लूटमार की और फिर दुनाड़ा चला गया। वहां से उसने जालौर की तरफ कूच किया

ग्रौर जालौर को घेर लिया। विहारी सरदार न कही स सहायता न मिलने की ग्राशा से घबराकर ग्रात्मसमपण कर दिया। इस प्रकार सवत् 1742 का वष भी वीत गया।

सन्दर्भ

1 जसवन्त की मृत्यु के समय उसकी दो रानिया उसके साथ थी ग्रौर दोनो ही गभवती थी। एक का नाम था जादम (जादमण ग्रथवा जादवाणी) ग्रौर दूसरी का नाम था—नरुकी।

2 जसवन्त के दोनो पुत्रो—पृथ्वीसिंह तथा जगतसिंह की मृत्यु क्रमश 1667 ई तथा 1676 ई मे हो चुकी थी।

3 बुधवार 19 फरवरी (चन्र वदि 4, सवत् 1736) मे जादम ने एक सतमासिया पुत्र का ज म दिया जिसका नाम ग्रजीत रखा गया। उसका ज म लाहौर मे हुग्रा। कुछ घटे वाद ही नरकी न भी एक पुत्र को ज म दिया जो दलथम्मन के नाम से पुकारा गया।

4 टॉड न लिखा है कि रनवास की स्त्रियो को एक कमरे मे व द कर बारूद से उडा दिया गया। यह गलत है। उन्हे तलवारो से काटा गया था। वसे कुछ के ग्रनुसार जादम न स्वय ग्रात्म हत्या कर ली थी।

5 राव घूहड मारवाड का एक प्राचीन राजा था। वह राठौड कुल का एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुग्रा।

6 ग्रमरसिंह के पुत्र का नाम रतनसिंह नही ग्रपितु रायसिंह था।

7 जसव त की मृत्यु के वाद ही जोधपुर पर मुगलो का ग्रधिकार हो गया था। फौजदार दीवान, ग्रमीन—सभी महत्वपूण पदो पर वादशाह के ग्रधिकारी नियुक्त कर दिय गय थे।

8 मेवाड के राणा राजसिंह न राठौडो को क्यो सहायता दी, इस बारे म ग्रनुमान ही लगाया जा सकता है। ग्रजीत उसका सम्ब घी था। इससे भी बढकर उसकी यह ग्राशका थी कि मारवाड के नष्ट होत ही ग्रौरगजेब मवाड को नष्ट करन का प्रयास करगा। ग्रत राठौडो की सहायता मे उसके ग्रपन राज्य की सुरक्षा निहित थी।

9 तहव्वरखा औरगजेब की उपस्थिति मे नही मारा गया था। अपने डर के बाहर मारा गया था।

10 सोनिग अथवा सोनग दुर्गादास का बडा भाई नही था। वह चापावत था जबकि दुर्गादास करणोत।

11 यह सोनग का भाई था।

12 पुर और माडल—दो भिन्न भिन्न स्थान हैं और दोनो मेवाड राज्य के अ तगत हैं।

13 सग्रामसिह जुझारसिह का बेटा था और बादशाह का मनसबदार था।

14 टॉड साहब के विचार से असानी भाटी लोगो की एक शाखा रही होगी।

अध्याय 38

अजीतसिंह और औरगजेब

मवत् 1743 मे चापावत, कू पावत ऊदावत, मेडतिया जोधा करमसोत तथा राठोडो की अन्य शाखाए अपने राजा को देखने के लिए अधीर हो उठी। उनके सरदारो ने खीची मुकु द के पास सदेशा भेजकर एक बार राजकुमार अजीत को देखने की प्राथना की। स्वामभिक्त मुकुन्द ने उत्तर भिजवाया कि जिसने विश्वास करके राजकुमार अजीत को मुझे सौंपा है वह इस समय दक्षिण मे है।" परन्तु मुकुन्द उनके दबाव को सहन न कर पाया। कोटा राज्य का हाडा राजा भी एक हजार सैनिको के साथ मारवाड के सरदारो के पास आ पहुचा था।[1] तब सभी लोग एक साथ आबू के पहाड की तरफ चल पडे और सवत् 1743 के चैत्र मास के अतिम दिन उन्होने अपने राजकुमार को देखा।[2] उसको देखकर सभी को बडी प्रसन्नता हुई। उस अवसर पर उदयसिंह, सग्रामसिंह, विजयपाल तेजसिंह, मुकुन्दसिंह और नाहरसिंह आदि चापावत और रामसिंह, जगतसिंह, साम तसिंह आदि कू पावत सरदार और उनके अतिरिक्त पुरोहित, खीची मुकु द, परिहार और जन श्रावक यती मानविजय भी वहा पर उपस्थित थे। एक मगलमय घडी मे ससार को अजीत की जानकारी मिल गई। हाडा राजा ने सबसे पहले राजकुमार का अभिवादन किया। उसके पश्चात् सभी सामन्तो ने अभिवादन करते हुए राजकुमार को स्वर्ण, मणि मुक्ता और घोडे भेंट मे दिये।

इनायत खा ने दरबार मे उपस्थित होकर यह समाचार औरगजेब को सुनाते हुए कहा, जहापनाह राजा के अभाव म जिन लोगो न अब तक आपके साथ युद्ध किया है, वे अब अपने राजा की उपस्थिति मे न जाने क्या करेंगे। आपको एक बहुत बडी फौज भेजनी चाहिए।

राठौड सरदार विजेता की भाति अपने राजकुमार को आउवा ले गये। वहा के सरदार ने धूमधाम के साथ उसका स्वागत किया और बहुमूल्य हीरे जवाहिरात के साथ घोडे भेंट मे दिये। उसी स्थान पर टीका दौड की रीति पूरी की गई। इसके बाद रायपुर बिलाडा और बोरून्दा होते हुये राजकुमार आसोप पहुचा जहा कू पावतो के सरदार ने उसका स्वागत किया। यहा से वह भाटियो की जागीर ग-

ग्रौर वहा से रीया, मेडता, खीवमर गया। उपयुक्त जागीरो के सरदारा न उसका ग्रादर मत्कार करत हुय भेंटें तथा घोडे प्रदान किय। इमके वाद वह पाबूराव धाधल के निवास स्थान कालू पहुचा ग्रौर ग्र त म पोकरण गया। यही पर दक्षिण स वापम लौटे दुर्गादास न मवत् 1744 के भादो माम की दशमी को उससे मुलाकात की।[3]

इनायत खा चाक्ना हो गया। उमन इम नये तूफान को रोकने के लिय एक फौज तयार की पर तु दुर्भाग्यवश मृत्यु न उसे ग्रपनी गोदी मे सुला दिया। बादशाह न एक दूसरी चाल चली। उसन मुहम्मदशाह नाम के एक बच्चे को जसवन्तसिंह का वास्तविक पुत्र घोषित कर उस मारवाड क सिंहासन पर बठाने की चेष्टा की।[4] बादशाह न ग्रजीत का पाच हजारी मनसव लेकर तथा कथित राजा की ग्रधीनता स्वीकार कर लने का प्रस्ताव रखा। पर तु मुहम्मदशाह जोधपुर नही पहुच पाया। माग मे ही उसकी मृत्यु हो गई।[5] उधर बादशाह ने इनायत खा के स्थान पर सुजात खा[6] को मारवाड का ग्रधिकारी नियुक्त किया। ग्रव राठौडो ग्रौर हाडाग्रो ने मिलकर मुगलो पर ग्राक्रमण शुरु कर दिय। मालपुरा, पुर ग्रौर माडल मे तनात शाही सेना को मात के घाट उतार दिया गया। ग्रंतिम स्थान के ग्रभियान के दौरान हाडा राजा मारा गया। यहा स राजपूतो न युद्ध खच के लिये ग्राठ हजार मुहरें वसूल की ग्रौर मारवाड लौट गय। मारवाड मे ग्रन्य ग्रधिकारी कर वसूल करन लग। इस प्रकार सवत् 1744 वीत गया।

सवत् 1745 के ग्रारम्भ म सुजात खा ने एक प्रस्ताव रखा। उसने मारवाड के कुल चुगी राजस्व का एक चौथाई भाग देना स्वीकार किया यदि राठौड विदेशी व्यापार को सरक्षण देना स्वीकार कर ले। उसकी इस शत को मान लिया गया। इनायत खा का लडका ग्रपने परिवार के साथ जोधपुर से दिल्ली के लिये चला।[7] वह रनवाल तक पहुँचा ही था कि जोधा हरनाथ न उस पर ग्राक्रमण करके उसकी स्त्रिया ग्रौर धन सम्पत्ति को छीन लिया। सूचना मिलन पर ग्रजमेर से सुजात बेग रवाना हुग्रा पर तु उसका भी वही हाल हुग्रा। चापावत मुकुन्द ने उस पर ग्राक्रमण किया, पराजित किया ग्रौर उसकी धन सम्पत्ति का लूट लिया।

सवत् 1747 म सफी खा ग्रजमेर का हाकिम था, दुर्गादास ने उस पर ग्राक्रमण करन का निश्चय किया। हाकिम न सडक की रक्षा के लिये पास क पहाडी मदान म मोर्चा जमाया, वही पर दुर्गादास न उस पर ग्राक्रमण कर उसे ग्रजमर भागन के लिए विवश कर दिया। ग्रौरगजेब का जब इसकी सूचना मिली ता उसने खान को लिखा, ग्रगर तुमन दुर्गादास का पराजित कर दिया ता वह उसको साम्राज्य के सभी खाना स ऊपर प्रतिष्ठित कर दगा ग्रौर यदि पराजित हुए ता पद-च्युत करक ग्रपमानित किया जायगा। सफी खां न पदच्युत होन क पूव राजकुमार को षडय त्र मे फसान की बात सोची ग्रौर उसे एक पत्र लिखा कि उस ग्रापका पनक

राज्य लौटान क लिए बादशाही ग्रादेश प्राप्त हुग्रा है, पर तु ग्रापको बादशाह के प्रतिनिधि के रूप म ग्राकर उसे प्राप्त करना होगा।" ग्रजीत बीस हजार राठौडो क साथ रवाना हुग्रा ग्रौर चापावत मुकु द का यह पता लगान के लिए कि कही खान का विचार धाखा दन का तो नही है, पहल भेज दिया। खान की साजिश का पता चल गया ग्रौर राजकुमार का इसकी जानकारी द दी गई। उस समय तक ग्रजीत पवत श्रेणी के निकट तक पहुँच चुका था। ग्रजीत न ग्रपन सरदारो से कहा 'जब हम लाग इतन समीप ग्रा गय है तो ग्रजय दुग की भलक देखकर खान को धयवाद तो देना ही चाहिए।' वे लोग नगर की तरफ बढे ग्रौर सफी खा के सामन ग्रजीत का ग्रादर सत्कार करन के ग्रलावा ग्र य कोई उपाय न रहा। उसकी विवशता का ग्रान द उठात हुए किसी न कहा हम नगर का भस्म कर देना चाहिए।" हाकिम काप उठा ग्रपन प्राणा की रक्षा के निमित्त उसन बहुत सी सम्पत्ति ग्रौर घोडे ग्रजीत को भेंट म दिय।[8]

सवत् 1748 म मवाड म विद्रोह हान लग। राजकुमार ग्रमरसिंह ने ग्रपने पिता राणा जयसिंह क विरुद्ध विद्रोह कर दिया ग्रौर सभी सरदारो न उसका साथ दिया। राणा गाडवार की तरफ भाग गया ग्रार घाणेराव म उसने एक सेना एकत्र की जिस पर ग्राक्रमण करने के लिए ग्रमर न तयारी का। राणा न राठाडो स इस विपत्ति म सहायता की माग की ग्रार तमाम मडतिया उसकी सहायता को पहुचने लग, इसक तुर त बाद ग्रजीत न पिता का पक्ष समथन करने के लिए दुर्गादास ग्रौर भगवान को रणमल जाधा ग्रौर मारवाड क ग्राठ सरदारो के साथ भेजा। पर तु उनके पहुँचन के पहले ही चू डावतो तथा शक्तावतो, झाला ग्रौर चौहानो न मिलकर पिता पुत्र के सघष को समाप्त कर, दोना म समझौता करा दिया। इस प्रकार राणा ग्रपन सिंहासन के लिए मारवाड की सहायता के लिए ऋणी रहा।

सवत् 1749 का वष शाहजादा ग्रकबर की पुत्री की वापसी क सम्ब ध मे बातचीत म गुजर गया। शाहजादा ग्रपनी पुत्री का दुर्गादास क ग्राश्रय मे छोड गया था। ग्रजीत ग्रब जवान हो रहा था ग्रत ग्रौरगजब की चिंता बढन लगी थी। बात चीत का मध्यस्थ नारायण दास कुलवी था। जब तक बातचीत चलती रही सफाखा न सभी प्रकार की शत्रुतापूण कायवाहियाँ ब द कर दी थी।

सवत् 1750 मे जोधपुर जालौर ग्रौर सिवाना के मुस्लिम ग्रधिकारिया न ग्रजीत क विरुद्ध ग्रपना सनाग्रो का सयुक्त करक ग्राक्रमण किया ग्रौर उस पहाडा म ग्राश्रय लन के लिए विवश कर दिया। वल्लभवशी ग्रखा न मुगला का सामना किया पर तु माघ मास म वह पराजित हुग्रा। इसी समय चापावत मुकु द दास न माकलसर गाव क समीप मुगलो पर ग्राक्रमण किया ग्रौर चाक क मुगल ग्रधिकारी को उसक सनिका सहित ब दी बना लिया।

सवत् 1751 में मुस्लिम अधिकारी इस बुरी स्थिति मे फस गये कि कई जिलो ने चौथ देना स्वीकार कर लिया अन्यो ने भेंट देना और कई अधिकारियो ने ता पेट भरने के लिये राठौडो की सेवा ही करनी शुरू कर दी। इस वर्ष कासिमखा और लश्करखा ने अजीत के विरुद्ध कूच किया। अजीत ने विजयपुर मे मोर्चा जमाया। दुर्गा के पुत्र ने आक्रमण का नेतृत्व किया और खान पराजित हुये। अजीत की आयु की वृद्धि के साथ साथ राठौडो की आशा भी बलवती होती गई। दूसरी तरफ औरगजेब को अपनी पोती की चिन्ता सताने लगी। उसने जोधपुर के हाकिम सुजातखा को लिखा, "जसे भी हो, किसी भी कीमत पर मेरे सम्मान की रक्षा करो।" औरगजेब के इन शब्दो का अभिप्राय शाहजादा अकबर की पुत्री की रिहाई से था। इसी वर्ष मेवाड के राणा ने अपने छोटे भाई गजसिंह की बेटी के साथ राजकुमार अजीत का विवाह सम्बन्ध निश्चित किया और दस्तूर मे मुक्ता जडे हुए नारियल, बहुमूल्य हीरा मोती, दो सजे हुये हाथी और दस घोडे अजीत के पास भेजे। प्रस्ताव स्वीकार किया गया और जेठ मास मे विवाह सम्पन्न हुआ। इसके एक महीने बाद ही अजीत ने अपना दूसरा विवाह देवलिया मे किया।[9]

सवत 1753 मे दुर्गादास के साथ अकबर की पुत्री के बारे म पुन बातचात शुरू की गई। दुर्गादास ने लडकी बादशाह के पास भिजवा दी[10] और जोधा के स्थान को प्राप्त कर लिया। अजीत अपने पैतृक सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने दुर्गादास को भी पाच हजारी मनसब का प्रस्ताव रखा, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। इसके बदले म उसने माग की कि जालौर सिवाना, साचौर और थिराद उसके राज्य मे पुन सम्मिलित कर दिये जाय। दुर्गादास ने अकबर की पुत्री को जिस सम्मान के साथ अपने पास रखा, उसकी औरगजेब ने भी प्रशसा की।

सवत् 1757 के पौष मास मे अजीत को अपना पैतृक स्थान पुन वापिस मिल गया। जोधपुर पहुचने पर उसने नगर के पाचो द्वारा पर क्रमश एक एक भैसे की बलि दी। तब तक सुजात की मृत्यु हो गई थी, अत शाहजादा सुल्तान ने उसका सत्कार किया।[11]

सवत् 1759 मे शाहजादा आजमशाह ने फिर से जोधपुर पर आक्रमण कर दिया अजीत ने जालोर को अपना निवास बनाया। उसके कुछ सरदार भाटुओं की सेवा मे चले गये थे कुछ राणा की सेवा मे थे और आमेर का राजा दक्षिण म बादशाह की सेवा मे था। इन दिनो असुरो के अत्याचार अपनी चरम सीमा पर थ, मथुरा, प्रयाग और ब्रजमण्डल म पवित्र गायो को काटा जा रहा था, जोगी और बरागी सरक्षण के लिय ईश्वर से प्रार्थनाए करन लगे परन्तु हिन्दुओ की शक्तिया क्षीण पड रही थीं। इस वर्ष माघ मास मे अजीत की चौहान रानी न एक पुत्र का जन्म दिया, जिसका नाम अभयसिंह रखा गया।[12]

मवत् 1761 म युसुफ क स्थान पर मुर्शिदकुली जोधपुर का हाकिम बनाकर भेजा गया। उमन बादशाह की ग्राज्ञानुसार मडता का शासन ग्रजीत को सौंप दिया। मडतिया कुशालसिंह ग्रौर धाधल गोविन्ददास का मडता की शामन व्यवस्था का काय हाथ म लेन को कहा गया। इसस इ दर का लडका मोहकिमसिंह नाराज हो गया।[13] उसन शिशु ग्रजीत की सवा की थी ग्रार इस ग्रवमर पर उसे भुला दिया गया था। उसन बादशाह का पत्र लिखा कि यदि उस मारवाड का सनापति नियुक्त कर दिया जाय तो वह हिन्दू ग्रौर मुसलमाना दाना क हिता का ध्यान रखत हुए शासन चला सकता है।

मवत् 1761 मे शत्रु का नक्षत्र टूटन लगा। मुर्शिद कुली क स्थान पर जफर खा को भेजा गया। मोहकिमसिंह का पत्र पकडा गया। वह ग्रपन राजा के साथ विश्वासघातक हुग्रा था, ग्रत भाग कर ग्राजमशाह की सना स जा मिला। ग्रजीत न उनक विरुद्ध प्रस्थान किया, दुनाडा क ममीप युद्ध हुग्रा। बादशाही सेना परास्त हुई ग्रार विद्रोही माहकिम सिंह मारा गया।[14] यह मवत् 1762 म घटित हुग्रा।

मवत् 1763 म इब्राहीम खा–जो लाहौर म बादशाह का ग्रधिकारी था को गुजरात पहुचकर शाहजादा ग्राजम से वहा का शासन सम्भालन का ग्रादेश मिला। वह मारवाड होकर गुजरा। चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की द्वितीया को बादशाह की मृत्यु का शुभ समाचार पहुचा। पचमी के दिन ग्रजीत घाडे पर मवार हो जोधा की नगरी पहुचा ग्रौर तोरण द्वार पर भैंसे की बलि दी पर तु ग्रसुरा का उसका सामना करन का साहस नही हुग्रा। कुछ भाग खडे हुए ग्रौर कुछ न भय के मारे ग्रपन चेहरे छुपा लिय। मिर्जा नीचे उतर ग्राया ग्रौर ग्रजीत ग्रपन पूवजो के महल म ऊपर चढा। जो यवन पिछले छब्बीस वर्षों से ग्रत्याचार करते चल ग्रा रहे थे, व ग्रब राजपूता क प्रतिशोध से न बच सके। व भाग खडे हुय ग्रौर उन्हान जा धन-सम्पत्ति जमा की थी वह राजा के हाथ लगी। यहा तक कि उनके नता न भी कू पावतो की शरण लकर ग्रपन प्राण बचाय। जोधपुर के बहुत म मुसलमाना ने भागत समय ग्रपन प्राणा की रक्षा क लिए हि दू वेष धारण कर लिया ग्रार दिन म राम राम तथा हर हर महादेव का नाम जप कर भीख माग कर गुजारा करत ग्रौर रात म ग्राग की मजिल तक बढत। बहुता ने ग्रपनी दाढी मुण्डवा ली। फिर भी मुसलमान बहुत बडी सख्या मे मार गय। मडता खाली कर दिया गया ग्रौर घायल माहकिमसिंह नागार भाग गया। साजत ग्रौर पाली पर पुन ग्रधिकार कायम किया गया ग्रौर वहा की भूमि जोधावतो को सौंपी गई। जोधपुर के महलो को गगाजल स शुद्ध किया गया ग्रौर फिर ग्रजीत सिंह का राजतिलक हुग्रा।

सवत् 1764 की वर्षा ऋतु बीत गइ बादशाह का सतोष न था।[15] उसन एक सेना तयार की ग्रौर ग्रजमर ग्राया। शाही सेना न बाई जिलाडा के समीप पडाव डाला ग्रौर ग्रजीत युद्ध के लिय तयार हुग्रा। पर तु बादशाह का सधि वाता का

सुझाव दिया गया और तदनुसार एक दूत भेजा गया। नाहरखां के साथ दूत को वापस बादशाह की सेवा मे भेजा गया। शिष्टमण्डल अजीत के लिये शाही फरमान के साथ वापस लौटा। अजीत ने उसको स्वीकार करने के पूर्व बादशाह से भेंट करने की अभिलाषा प्रकट की और फाल्गुन मास के पहले दिन जोधपुर मे चल कर बीसलपुर पहुच गया। यहाँ पर बादशाह की तरफ से खानखाना के लडके मुनातखां के नेतत्व मे एक प्रतिनिधिमडल ने उसका स्वागत किया। प्रतिनिधिमडल म भावर का राजा तथा बू दी का राव बुधसिंह भी थे। इनकी मुलाकात पीपाड नामक नगर मे हुई। वह रात संधि की शर्तो पर विचार-विमर्श मे बीत गई और प्रात होते ही अजीत अपने सरदारो के साथ चल पडा और आनन्दपुर नामक स्थान पर बबरा के राजा ने मरुभूमि के राजा से मुलाकात की। उसने अजीत को 'तेगबहादुर" की उपाधि प्रदान की। पर तु भावी ने बतला दिया कि बादशाह जोधपुर का प्राप्त करने का आकांक्षी है। इसी अवसर पर बादशाह ने महराबखां को जोधपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया। विश्वासघाती मोहकिम भी उसके साथ गया। अजीत को बादशाह के विश्वासघात से बहुत क्रोध आया परन्तु बादशाह ने उसे चालाकी से दक्षिण जाने और कामबरश के अधीन[16] सेवा करने के लिये विवश कर दिया। आमेर का राजा जयसिंह भी इस समय बादशाह के साथ था। उसको भी बादशाह से असंतोष था क्योंकि बादशाह ने आमेर मे शाही सेना तनात कर दी थी और उसके छोटे भाई विजयसिंह को वहा का सिंहासन दे दिया था। ज्यो ही बादशाह नर्बदा नदी के उस पार पहुचा राजपूत राजाओ ने अपनी योजना को कार्यान्वित किया और बिना किसी से कुछ कहे सुने दोनो राजा अपने सरदारो और सनिको के साथ राजस्थान की तरफ लौट पडे। वे सीधे उदयपुर पहुंचे, जहा राणा अमरसिंह न उनका स्वागत किया। इस समय से असुरो का भाग्य अस्त होने लगा और पुरुषार्थ पुन अपना प्रभाव दिखलाने लगा। उदयपुर से दोनो राजा मारवाड की तरफ चल। मार्ग मे आऊवा के चापावत सरदार उदयभानु के पुत्र संग्रामसिंह ने दोनो का आदर सत्कार किया।

संवत् 1765 का श्रावण आया और असुरो की आशाएं खत्म होने लगी। महराब को जब सूचना मिली कि अजीत अपने देश म लौट आया है तो वह घबरा उठा। सप्तमी के दिन तीस हजार राठौडो ने जोधा की नगरी को घेर लिया। द्वादशी के दिन महराबखाँ के लिये सम्मान का द्वार खोल दिया गया। उसे अपने प्राणो की रक्षा के लिये आमकरण के पुत्र का धन्यवाद देना पडा।[17] उसे सम्मान सहित जोधपुर से जाने दिया गया। अजीत ने एक बार पुन माडू की राजधानी मे प्रवेश किया।

जयसिंह सूरसागर पर डेरा डाले हुए था। इस समय वह बिना राज्य का राजा था। अत अप्रसन्न था। वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही कछवाहों के शक्तिशाली

सरदार अजयमल ने उसे पुन आमर के सिंहासन पर बठाने का प्रस्ताव रखा। जयसिंह अजीतसिंह के साथ मेडता की तरफ बढा और दिल्ली तथा आगरा कापने लगे। जब दानो राजा अजमेर पहुँचे ता वहा के सूबेदार ने दरगाह म शरण ली और जो भेंट मागी गई—राजाओ को दे दिया। इसके बाद अजीत ने तेजी के साथ साभर पर धावा मारा। यहा पर आमेर के सभी सरदार अपन राजा के झण्डे के नीचे आ जुटे। मुगल सेनानायक सयद न साभर के समीप बारह हजार सनिको के साथ राजपूतो से युद्ध किया। कूपावता ने सबसे आगे रहते हुये शत्रु से युद्ध किया। हुसन अपने छह हजार सनिको के साथ मारा गया और शेष सनिको न दुग मे जाकर प्राण बचाये। इस घटना की सूचना मिलत ही असुरा ने आमेर को त्याग दिया। साभर मे दीवान रघुनाथ भडारी को अपना अधिकारी नियुक्त करके अजीत ने आमर का राज्य जयसिंह को सौप दिया और बीकानर पर आक्रमण करने की तयारी करने लगा।

सवत् 1766 के भादो महीने म शाहआलम ने कामबख्श को मरवा डाला। जयसिंह ने बादशाह के साथ सधि कर ली। अजीत ने अब नागौर पर आक्रमण किया, परन्तु इन्द्रसिंह ने बाहर आकर अजीत के पैर चूम लिये, जिसने उसे लाडनू का इलाका प्रदान किया। परन्तु इससे उसे सतोष नही हुआ क्योकि वह नागौर का राव रह चुका था और इन्द्र अपनी शिकायत को दिल्ली ले गया। बादशाह क्रोधित हो उठा। उसकी धमकी राजाओ के पास पहुँची जिन्होने सुरक्षा के निमित्त पुन सयुक्त हो जाना उचित समझा। दोनो डीडवाना के पास कोलिया नामक स्थान पर मिले और इसके कुछ दिना बाद बादशाह भी अजमेर पहुँच गया। वहा से उसने राजाओ के पास फरमान और सधि की शर्तों के रूप मे पजा भेजा, नाहरखा उनको लेकर राजाओ के पास आया। बादशाह के सधि प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया और आपाढ के पहले दिन दोनो राजा अजमेर गय। वहाँ बादशाह ने सबके सामन उनका आदर सत्कार किया, अजीत को उसने नवकोटि मारवाड की सनद और जयसिंह को आमेर की सनद प्रदान की। बादशाह से स्वीकृति लकर दोनो राजा अजमेर से पवित्र पुष्कर आय और यहा से दोनो जुदा होकर अपन अपन राज्यो को लौट गये। सवत् 1767 के श्रावण मास मे अजीत जोधपुर पहुँच गया। इस वष उसन गौड राजकुमारी से विवाह किया और अजु न के हाथो अमरसिंह की हत्या के समय से चली आ रही शत्रुता को समाप्त कर दिया। इसके बाद उसने कुरुक्षेत्र की यात्रा की। इस प्रकार सवत् 1767 व्यतीत हुआ।

यहाँ पर कुछ देर के लिये भाटो के विवरण को छोडकर हमे सवत् 1737 जब काबुल मे जसवन्त की मृत्यु हुई, उस समय से लेकर अब तक राठौडा के क्रिया कलापो पर एक नजर डालना उचित रहेगा। इन तीस वर्षों की अवधि म राठौडा को विभिन्न प्रकार के कष्टो का सामना करना पडा। परन्तु अपन दुर्भाग्य के उन

दिनों मे भी उन्होने अपने जिस उज्ज्वल चरित्र को कायम रखा और सकटा की चरम सीमा मे भी उन्होने जिस राजभक्ति का परिचय दिया, उसकी उपमा ससार के इतिहास मे खोजने पर भी आसानी से न मिलेगी। जो लोग यह सोचते हैं कि हिन्दू योद्धाओ मे देशभक्ति का अभाव है उन्हे इन तीस वर्षो के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए। भट्ट ग्रन्थो से पता चलता है कि इस दीर्घकालीन सघर्ष के दौरान वहा के एक सामन्त ने भी स्वाभाविक मृत्यु नही पायी। इससे स्पष्ट है कि तीस वर्ष तक जो सघर्ष निरन्तर जारी रहा, उस अवधि मे मारवाड के सभी सामन्त और सरदार जिन्होने मृत्यु का वरण किया—वे केवल लडते हुए वीरगति को प्राप्त हुये थे। उनके चरित्र की कई श्रेष्ठ बातें हमारे सामने आती है। बादशाह ने उन्हें नाना प्रकार के प्रलोभन देकर अपने देश और धर्म के विरुद्ध आकृष्ट करने का प्रयास किया था परन्तु धन सम्पत्ति जागीर अथवा पद के प्रलोभन मे आकर एक भी राठौड ने देश अथवा जाति के साथ विद्रोह नही किया। उन्हे मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार था परन्तु प्रलोभन मे आकर जाति के साथ विश्वासघात करना स्वीकार न था। राठौड दुर्गादास की तरह स्वाभिमानी और चरित्रवान व्यक्ति ससार का अन्य जातियो मे बहुत ही कम मिलेंगे। पराक्रम, स्वामिभक्ति, निष्ठा और विपरीत परिस्थितियो मे भी सूझ-बूझ से कदम उठाने आदि वे गुण हैं जिन्होने उसके नाम को अमर बना दिया है। उसने न केवल धन सम्पत्ति को ही अपितु पाच हजारी मनसब के ऊँचे पद को भी ठुकरा दिया। उसने शाहजादा अकबर के प्राणो की रक्षा की और उसे सकुशल दक्षिण पहुँचा आया। अकबर के लडके और लडकी का उन्ही के धर्म के अनुसार पालन पोषण किया। बादशाह औरगजेब ने भी उसकी भूरि भूरि प्रशसा की।

सन्दर्भ

1 हाडा राजा चापावत सरदार सुजानसिंह की लडकी से शादी करने आया था।

2 राजकुमार अजीत को प्रकट करने की तिथि के विषय मे मतभेद है। इसी प्रकार खीची मुकुन्ददास ने ऐसा क्यो किया—इस विषय मे भी मतभेद हैं।

3 दुर्गादास अजीत से मिलने नही गया था बल्कि अजीत उससे मिलने उसके गाव भीमरलाई गया था।

4 जब राठौड सरदार दिल्ली से अजीत को सुरक्षित निकाल लाये तो औरगजेब ने एक बच्चे को जसवन्त का लडका घोषित कर दिया और उसका नाम मुहम्मदीराज रखा तथा उसका लालन पालन किया था।

5 सवत् 1745 म ऐनग स उसकी मृत्यु हुई थी। उसकी मृत्यु दक्षिण मे हुई थी न कि दिल्ली मारवाड क माग म।

6 सुजातखा का नाम कारतलबखा था। वह ग्रहमदाबाद का सूबेदार था। औरगजेब न जोधपुर की फौजदारी को ग्रजमेर सूबे स पृथक कर ग्रहमदाबाद सूबे के ग्र तगत रखा। इसी ग्रवसर पर कारतलब को 'सुजातखा' की उपाधि दी गई थी।

7 इसका नाम मुहम्मद ग्रली था। वह मेडता का फौजदार था। इस पद से हटा दिये जान के बाद वह दिल्ली जा रहा था।

8 इस घटना की पुष्टि नही होती। ग्रजीत उससे मिलने ग्रवश्य गया था पर तु उसे खाली हाथ लौटना पडा था।

9 यह छोटी सी रियासत मेवाड की है।

10 इस लडकी का नाम सफियतुन्निसा था। कुछ विद्वानो के ग्रनुसार ग्रजीत उसे लौटाना नही चाहता था। दुर्गादास ने भिजवा दी। तब से ही दोनो मे तनाव उत्पन्न हो गया था। इससे ग्रजीत को जोधपुर नही मिला था।

11 शाहजादा मुलतान द्वारा सत्कार की घटना की पुष्टि नही होती।

12 यह चौहान रानी साचौर के चौहान चतुभु ज दयाल दासोत की बेटी थी।

13 इन्द्रसिंह ग्रौर मोहकमसिंह तो शुरू से ही ग्रजीत से शत्रुता रखते थे।

14 यह गलत है। मोहकमसिंह मारा नही गया था, वह भाग गया था।

15 यहा बादशाह से ग्रभिप्राय शाहग्रालम से है। वह बहादुरशाह की उपाधि के साथ सिंहासन पर बठा था।

16 टाड साहब न गलती से लिख दिया है। कामबख्श तो बहादुरशाह के विरुद्ध बगावत कर बठा था।

17 दुर्गादास के कहने पर उसे जाने दिया गया था।

अध्याय 39

राजा अजीतसिंह का शेष इतिहास

सवत् 1768 मे अजीत को बर्फीले पहाडो के विद्रोही सरदारो का दमन करने तथा नाहन प्रदेश पर अधिकार करने के लिये भेजा गया, जिन्ह उसने अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया। वहा से लौटते समय उसने गगा स्नान किया और दान पुण्य करके वसन्त ऋतु मे जोधपुर लौट आया।

सवत् 1769 मे शाहआलम स्वर्ग सिधार गया। उसके लडको मे उत्तराधिकार सघर्ष छिड गया जिसमे अजीमुश्शान मारा गया और राजकीय छत्र मुईजुद्दीन के सिर शोभायमान हुआ। अजीत ने भडारी खीवसी को बादशाह की सेवा मे भेजा, जो वापसी मे गुजरात की सूबेदारी की सनद लेकर आया। सवत् 1769 के मिगसर मास मे, चगताई घराने मे जब नये सिरे से विवाद उठ खडा हुआ तो उसने गुजरात के इलाको पर अधिकार करने के लिये एक सेना तयार की। सय्यदों ने मुईजुद्दीन को कत्ल कर दिया और फर्रुखसियार को बादशाह बनाया। जुल्फिकारखा को मौत के घाट उतार दिया गया और उसी के साथ मुगलो की ताकत भी विदा हो गई। सैय्यद सर्वेसर्वा बन गये। अजीत को अपने सत्रह वर्षीय पुत्र अभयसिंह को उसके सनिक दस्ते के साथ दरबार मे भेजने का आदेश भेजा गया परन्तु अजीत को पता चला कि विश्वासघाती मुकुन्द[1] दरबार मे है और उस पर शाही कृपा भी है, तो उसने अपने विश्वस्त लोगो को दिल्ली भेजकर मरवा डाला। इस साहसिक कृत्य ने सय्यद को सेना सहित जोधपुर आने के लिये विवश कर दिया। अजीत ने अपनी धन सम्पत्ति सिवाना भेज दी और अभयसिंह तथा अपने परिवार को मरू प्रदेश के राडधडा" नामक स्थान पर भेज दिया। राजधानी को घेर लिया गया और अजीत के भावी आचरण की जमानत के लिये अभयसिंह की माग की गई और उसे दरबार मे ही बने रहने का आदेश दिया गया। अजीत इस आदेश को मानने के लिये उत्सुक नही था परन्तु दीवान के समझाने और कवि केसर के परामर्श से उसने आदेश को स्वीकार कर लिया। केसर ने उससे कहा 'बादशाह के इस आदेश को मानने मे कोई हानि नही है। दौलतखाँ लोदी ने जिस समय मारवाड पर आक्रमण किया था राव गागा ने इसी प्रकार के आदेश को मानते हुए मालदेव को दरबार मे रहने के लिये भेजा था।'

आपाढ (मवत् 1770) मास म अभयसिंह को हुसैन अली के साथ दिल्ली भेज दिया गया। मारवाड के उत्तराधिकारी को बादशाह की तरफ से पाच हजारी मनसब मिला।

अजीत शीघ्र ही अपने पुत्र के पीछे पीछे दिल्ली दरबार मे जा पहुचा।[3] अजीत की शैशव अवस्था म जिन राठौड सरदारो ने उसकी प्राणरक्षा के लिये अपने प्राणो का उत्सर्ग किया था उनकी समाधि चिह्नो को देखकर अजीत के हृदय मे प्रतिहिंसा की आग प्रज्ज्वलित हो उठी। उसके असतोष के अन्य कारण भी थे— 1 नौरोजा[4] 2 बादशाह के साथ उनकी लडकियो का विवाह 3 गौहत्या और 4 जजिया कर।

यहा हमे भट्टग्रथो के विवरण मे हस्तक्षेप करना होगा क्योकि भाट यहा पर एक बात का उल्लेख करने से चूक गये हैं और वह यह कि जब सैय्यद न मारवाड पर आक्रमण किया था तब सधि की शर्तो के अन्तगत अजीत से अपनी लडकी का विवाह बादशाह फर्रुखशियर से करने की माग की गई थी। इस घटना का विवरण पहले के अध्यायो मे किया जा चुका है। विवाह की इस बात ने अजीत की प्रतिहिंसा को बढाने का काम किया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह सय्यदो से मिल गया और अपने पिता की भाति प्रत्येक अवसर का अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये लाभ उठाने का निश्चय किया। उसने अपनी अधीनता के बदले म बादशाह से कई मागें मनवा ली जिनम नौरोजा के मेले मे राजपूत स्त्रियों और राजकुमारियो का जाना बद करना राजपूत क्षेत्रो मे हिन्दुओ के मन्दिरो म बराबर शखध्वनि हिन्दुओ के धार्मिक कार्यो मे हस्तक्षेप न करना, उनके मन्दिरो को पवित्र मानना और पैतृक राज्य प्रदान किया जाना आदि सम्मिलित थी।

सवत् 1771 के जेठ मास म अपनी सभी इच्छाओ के पूरी हो जाने के बाद और गुजरात की सूबेदारी की नई सनद् के साथ, अजीत दरबार से विदा लेकर जोधपुर लौट आया। उसके दीवान खींवसी के द्वारा जजिया कर से हिन्दुओ को मुक्ति मिली। सम्पूर्ण हिन्दू समाज इसके लिये अजीत का ऋणी बन गया।

सवत् 1772 म अजीत गुजरात के लिय रवाना हुआ, अभयसिंह अपने पिता के साथ गया। जालौर मे उसने वर्षा ऋतु बिताई। यहा से उसने आबू और सिरोही के देवडा लोगो पर आक्रमण किया। सीमाओ पर अधिकार होते ही देवडा लोगो न आत्मसमर्पण कर दिया और उसे कर चुकाया। पालनपुर से फिरोजखा उससे भेंट करने आया। थिराड के राव ने एक लाख रुपये अदा किये, मेम्बे से भी वसूली की गई और कोली सरदार क्षेमकरण को अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया गया। पाटन मे मत्तावत चापावत और बीजू भडारी जिन्ह प्रदेश की शासन व्यवस्था के लिये विगत वर्ष ही भेज दिया गया था, न आकर भेंट की।

संवत् 1773 में अजीत ने हलवद के झाला का दमन किया। इसके बाद नवानगर के जाम को परास्त किया। उसने कर स्वरूप तीन लाख रुपये और पच्चास बढ़िया घोड़िया दी। इस प्रकार प्रदेश में व्यवस्था कायम करने के बाद उसने द्वारिका जाकर पूजा की और गोमती में स्नान किया। वहा से वह जोधपुर लौट आया, जहा उसे सूचना मिली कि इन्द्रसिंह ने नागौर को पुनः प्राप्त कर लिया है, परन्तु वह अजीत के सामने नही टिक पाया।

संवत् 1774 आया। सय्यद और उनके विरोधी आपसी संघर्ष में उलझ हुए थे। हुसैनअली दक्षिण में था और अब्दुल्ला का मन बादशाह से हट गया था। अजीत को बुलावे के पत्र पर पत्र आने लगे। वह नागौर, मेड़ता, पुष्कर भारोठ और साभर होता हुआ दिल्ली गया। भारोठ से उसने अभयसिंह को जोधपुर की सुरक्षा के लिये वापस भेज दिया। दिल्ली से सय्यद मारवाड के धणी से मिलने के लिये अली वर्दी की सराय आया, जहा उसने डेरा डाला था। यहा पर सैय्यद और अजीत ने मिलकर जयसिंह और मुगलो का सामना करने का निश्चय किया, जबकि बादशाह अपने महल में छोटी सी टोकरी में बन्द साप की तरफ फुफकार रहा था। अपने विरोधियों से छुटकारा पाने के लिये सबसे पहले जुल्फिकारखा को मौत के घाट उतार दिया गया।

जब बादशाह को सूचना मिली कि अजीत दिल्ली आ गया है तो उसने उसे अपने पास बुलाने के लिये कोटा के हाडा भीम और खुदाबन्दखा को भेजा। अजीत ने आज्ञा का पालन किया। उसके साथ राठौड सरदारो के अलावा जसलमेर का राव बिशनसिंह, देरावल का पद्मसिंह, मेवाड का सरदार फतेसिंह सीतामऊ का राठौड़ सरदार मानसिंह रामपुरा का चन्द्रावत गोपाल और अन्य सरदार भी गये। बादशाह ने अजीतसिंह को सात हजारी मनसब प्रदान की और उसकी जागीर में एक करोड़ दाम की वृद्धि की। इसके अलावा बादशाह ने हाथी घोड़े सोने की म्यान वाली तलवार किरिच हीरो के सिरपेंच कीमती मोतियो की मालायें इत्यादि प्रदान कर उसका सम्मान किया। बादशाह से विदा लेकर अजीत अब्दुल्लाखा से मिलने गया। सय्यद ने आगे बढ़कर उससे भेंट की और उसके साथ आने वाले सरदारो का अभूतपूर्व आदर सत्कार किया। उन्होंने पुनः एक साथ जीने और मरने का संकल्प दोहराया। उनकी इस मुलाकात ने मुगलों में अनेक प्रकार की शकायें पैदा कर दी और उन्होंने घात लगाकर अजीत पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

संवत् 1775 के पोष मास के उज्ज्वल चन्द्र पक्ष की द्वितीया को बादशाह ने अजीत से भेंट कर उसे सम्मानित किया। अजीत ने एक लाख रुपयो की थलियो के सिंहासन पर बादशाह को बठाया और उसको हाथी घोडे तथा बहुमूल्य हीरे जवाहिरात भेंट में दिये। फाल्गुण मास में अजीत और सय्यद बादशाह से भेंट करने गये

और मुलाकात के बाद हुसन अली का भावी कार्यक्रम के बारे मे लिख भेजा तथा उसे दक्षिण से यथाशीघ्र कूच कर उनसे मिलने को कहा गया। इस समय दिल्ली का वातावरण अत्यन्त अनिश्चित रूप मे दिखाई दे रहा था। चारो तरफ प्रज्वलित दावानल दिखाई दे रहे थे। भविष्य अधकारपूर्ण हो रहा था। कुत्ते भौंक रहे थे और बिन बादल गर्जन हो रहा था। सभी चिन्ह दिल्ली म परिवर्तन का सकेत दे रहे थे। बीस दिन के भीतर ही हुसैन दिल्ली पहुच गया। उसकी उपस्थिति भयानक प्रतीत हो रही थी, शाही महल के निकट ही उसके नगाडे गिरती हुई महानता की घोषणा कर रहे थे। उसके साथ दक्षिण के घोडे भी थे। उसके घोडो की टापो से दिल्ली का वातावरण धूल से आच्छादित हो उठा। उन्होने नगर के उत्तर मे डेरा डाला और हुसैन अपने भाई तथा अजीत से जा मिला। कम्पायमान बादशाह ने हुसन के पास उपहार में बहुत सी चीजें भिजवाई, मुगल अमीर अपने अपने प्रासादो मे दुबक कर बैठे रहे। आमेर का स्वामी बिना तेल के दीपक की भाति रह गया था।

दूसरे दिन, यमुना के किनारे अजीत के शिविर मे सभी की मत्रणा हुई और आगे का कार्यक्रम तय किया गया। अजीतसिंह अपने घोडे पर सवार हुआ और अपनी राठौड सेना के साथ सीधे शाही महल की तरफ बढा और आस पास के प्रत्येक स्थान पर अपने आदमी तनात कर दिये। वह प्रलय को आहूत करने वाली अग्नि के समान प्रतीत हो रहा था। जब सूर्योदय होता है तो अधकार भाग जाता है, जब तेल खत्म हो जाता है तो दीपक बुझ जाता है, ऐसा ही बादशाहो और ताजो के साथ होता है जब विश्वास और न्याय रूपी तल की कमी आ जाती है। इस समय दिल्ली की जो भयानक स्थिति थी वसी ही स्थिति सम्पूर्ण देश की थी। बादशाह का खजाना लूट लिया गया। एक भी मुगल सरदार अपने बादशाह फर्रुखसियर को बचाने आगे नहीं आया। आमेर का राजा जयसिंह इस भयानक स्थिति को देखकर वहा से भाग गया। फर्रुखसियर मार डाला गया और उसके स्थान पर दूसरा आदमी[5] सिंहासन पर बठा दिया गया। परन्तु चार महीने के बाद ही वह चल बसा। तब रफीउद्दौला को सिंहासन पर बठाया गया। परन्तु दिल्ली के मुगल अमीरो ने आगरा म नीकोशाह को बादशाह घोषित कर दिया। अजीतसिंह और अब्दुल्ला को बादशाह की सुरक्षा के लिये छोड कर हुसन अली उनके विरुद्ध आगरा की तरफ चला।

सवत् 1776 मे अजीत और सय्यद दिल्ली से रवाना हुए। परन्तु मुगलो ने नीकोशाह को सौंप दिया जिसे सलीमगढ मे बन्दी बनाकर रखा गया। इसी समय बादशाह की मृत्यु हो गई और अजीत तथा सय्यदो ने एक दूसरे व्यक्ति मुहम्मदशाह को सिंहासन पर बठाया। अजीत के द्वारा बादशाहो को उतारे जाने की अवधि मे बहुत मे देश बर्बाद हो गये और बहुत से आबाद हो गये। फर्रुखसियर की मृत्यु के साथ ही आमेर के जयसिंह की समस्त आशायें समाप्त हो गईं और सय्यदो ने उसे

दण्डित करने का निश्चय किया। बादशाह आमेर की तरफ बढ़ा और जब वह सांभर पहुंचा तो जयपुर के सभी सामंतों ने भयभीत होकर अजीत की शरण ली। उन्होंने उससे निवेदन किया कि यदि सय्यदों से जयसिंह की रक्षा न की गई तो सबका सर्वनाश हो जायेगा। अजीत ने जयसिंह को अपने संरक्षण में ले लिया। उसने चांपावत सरदार और अपने मन्त्री को जयसिंह के पास भेजकर उसे आश्वासन दिया कि बादशाह के सामने आने में उसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। जयसिंह उन लोगों के साथ वहां पहुंच गया। अजीत ने एक राजा को सिंहासन पर बठाया और दूसरे को सर्वनाश से बचा लिया। बादशाह ने उसे अहमदाबाद प्रदान किया और अपने घर जाने की अनुमति प्रदान की। आमेर के जयसिंह और बूंदी के बुधसिंह हाडा के साथ वह जोधपुर के लिये रवाना हुआ और मार्ग में मनोहरपुर के शेखावत सरदार की पुत्री के साथ विवाह किया। आश्विन मास में वह जोधपुर पहुंचा। आमेर के राजा ने सूरसागर में और हाडा राव ने जोधपुर के उत्तर में अपने डेरे डाले।

शीत ऋतु व्यतीत हुई और बसंत आरम्भ हुआ। इन्हीं दिनों में आमेर के स्वामी ने अजीत की लड़की सूर्यकुमारी के साथ विवाह किया। इस सम्बन्ध के बारे में उसने पहले ही चांपावतों, अपने प्रधानमन्त्री कूंपावत और दीवान भण्डारी तथा अपने गुरु से परामर्श कर लिया था। इस विवाहोत्सव का सम्पूर्ण वर्णन करने से ग्रंथ का बहुत अधिक विस्तार हो जायेगा। अतः यहां संक्षेप में ही लिखा गया है।

संवत् 1777 की वर्षा ऋतु आ गई। जयसिंह और बुधसिंह अजीत के पास ही थे कि एक संदेशवाहक आया और उसने बताया कि मुगलों ने सय्यदों की हत्या करवा दी है और अब वे अजीत पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। अजीत ने अपनी तलवार निकाल कर शपथ ली कि अब वह अकेला ही अजमेर पर अधिकार करेगा। उसने आमेर के स्वामी को विदा किया। बारह दिन बाद अजीत मेड़ता पहुंचा। इसके बाद उसने अजमेर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। उसने अजमेर से मुसलमानों को मार भगाया। उसने बादशाह के अधिकारी को मार डाला और तारागढ़ के सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। एक बार पुनः अजमेर के मंदिरों से शंखध्वनि सुनाई देने लगी जबकि मस्जिदों से अजान वाली आवाजें बंद हो गईं। इसके बाद उसने सांभर और डीडवाना की नमक की झीलों पर अधिकार किया। अनेक दुर्गों पर राठौड़ों के झण्डे फहराने लगे। उसने अपने नाम का सिक्का चलाया। उसने शासन में अनेक परिवर्तन किये। अपना गज (पैमाना) और सेर चलाया, अपने न्यायालय स्थापित किये और अपने सरदारों की नये सिर से पद मर्यादा कायम की।[6] अजमेर में उसने स्वतंत्र रूप से अपना शासन आरम्भ किया। उसकी सफलता की खबरें देश के बाहर मक्का और ईरान तक पहुंच गई। मरूभूमि में अजीत ने अपने धर्म को महत्व दिया और इस्लाम के धार्मिक अनुष्ठानों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

सवत् 1778 मे बादशाह न अजमर पर पुन अधिकार करन का निश्चय किया। उसने सेना का नेतृत्व मुजफ्फर खाँ का प्रदान किया। वह वर्षा ऋतु मे ही मारवाड की तरफ चल दिया। इस बार अजीत ने युद्ध का सचालन अपन पुत्र अभयसिह को सौपा और उसकी सहायता के लिए मारवाड के आठ सरदार और तीस हजार घुडसवार दिये। सेना की दाहिनी तरफ चापावत और बायी तरफ कूपावात चले और मेडतिया जोधा, इदा भाटी, सोनगरे देवडा खीची धाधल[7] और गोगावत[8]—सभी मुख्य सेना म सम्मिलित थे। आमेर के समीप दोना सेनाए एक-दूसरे को दिखाई देने लगी। परन्तु मुजफ्फर ने युद्ध के खतरे को न उठाकर नगर के भीतर शिविर लगा दिया। अभयसिह न शाही सनापति के कायरतापूर्ण आचरण को देखकर बादशाह को दण्डित करन का निश्चय किया। उसन शाहजहानपुर पर आक्रमण किया, नारनोल को लूटा और तम्बरा घाटी तथा रेवाडी के लोगो से युद्ध का व्यय वसूल किया। उसने माग मे कई गावो को आग लगा दी और अलीवर्दी की सराय तक आतक फला दिया। दिल्ली और आगरा मे भी भय फैल गया और अभय के कारनामो को सुनकर असुर लोग नगे पर ही भागन लगे। वह लुधियाना और साभर होता हुआ वापस आया और यहा पर नरूका[9] के राजा की लडकी के साथ विवाह किया।

सवत् 1779 मे अभयसिह साभर मे ही रहा। उसन यहा की सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाया। अजमेर से उसका पिता अजीत उससे मिलन यहा आया। बादशाह न अजीत के साथ मित्रता करन की दृष्टि से चार हजार सैनिको क साथ नाहर खा को भेजा। पर तु नाहर खा की उत्तसान वाली भाषा से विवाद बढ गया और नाहर खा को परास्त करके साभर स खदड दिया गया। इसी समय चूडामण[10] जाट के लडके ने वहा आकर अजीत का आश्रय लिया। निराश और भयभीत मुहम्मद शाह ने सिहासन को छोडकर मक्का जान का विचार किया। परन्तु नाहर खा का मृत्यु का प्रतिशोध लन की इच्छा से उसन एक विशाल सेना खडी करन का निश्चय किया। उसने साम्राज्य के बाईस करद राजाओ के सनिक दस्तो को एकत्र किया और उस सेना का नतृत्व आमेर क जयसिह हैदरकुली, इरादत खा बगश आदि पराक्रमी सेनानायको को सौपा। इस सेना न तारागढ को घेर लिया। अभय सिह न दुग की रक्षा का भार अमरसिह का सौप कर शेष सेना क साथ बाहर निकल आया। चार महीने तक इस घेराव दी का सामना किया गया। तब आमर क जयसिह के समझान पर अजीत न बादशाह के साथ समझौता करना स्वीकार कर लिया। मुगल सरदारो न कुरान शरीफ हाथ मे लकर सधि की शर्तों का पालन करन का आश्वासन दिया। तब अजीत ने अजमेर लौटाना स्वीकार किया। इसक बाद राजकुमार अभयसिह, जयसिह क साथ उसके शिविर म गया। यह तय हुआ कि अपनी स्वामिभक्ति का सबूत देन के लिय उसे बादशाह के दरबार म उपस्थित होना पडगा। जयसिह न जब उसको सुरक्षा का आश्वासन दिया तो अभयसिह न

अपनी तलवार पर हाथ रखते हुए कहा, "मेरी सुरक्षा की जमानत मेरी यह तलवार है।"

मारवाड के उत्तराधिकारी ने बादशाह के यहा अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया, परन्तु अपनी जाति के स्वाभिमान की दुगनी विशेषता का गुण समाहित होने के कारण अभयसिंह ने दिल्ली दरबार मे वैसा ही दृश्य उपस्थित कर दिया होता जसाकि आगरा के दरबार मे उसके पूवज अमरसिंह ने किया था। यह समझकर कि उसके पिता को बादशाह के दाहिने, स्थान मिलता है और मैं पिता का प्रतिनिधि बन कर आया हूँ, इसलिये मैं भी उसका अधिकारी हूँ, इस सम्बन्ध मे मुगल दरबार के क्या कायदे कानून हैं, इस पर तनिक भी ध्यान दिये बिना वह सिंहासन की तरफ आगे बढा। उसी समय अमीरो मे से एक ने उसे सकेत से रोका। अभय का हाथ तुरन्त अपनी कटार पर गया परन्तु बादशाह ने बुद्धिमानी से काम लिया और अपने गले का हार उतार कर अभयसिंह को पहना दिया। इससे वह भयानक स्थिति शान्ति मे बदल गई अन्यथा दीवान रक्त से सराबोर हो गया होता।

अब हम भट्ट ग्रन्थो के विवरण को छोड देते हैं क्योकि राजस्थान के इतिहास के घृणित अपराध—अजीत की हत्या से सम्बन्धित विवरण को राजकीय भाट कवियो ने उपेक्षा कर दी है। अजीत का पुत्र उसकी इच्छा के विरुद्ध दरबार मे गया था। पिता और पुत्र के बीच इस समय कैसे सम्बन्ध चल रहे थे, इसके बारे मे भट्ट ग्रन्थो मे स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। सूर्य प्रकाश' केवल इतना कहता है, इस समय अजीत स्वर्ग सिधार गया परन्तु जिस व्यक्ति ने उसे वहा पहुँचाया उसके बारे मे कुछ नही लिखा है। इन राठौड कवियो ने अजीत का ऐतिहासिक विवरण उसके पुत्र अभयसिंह के आदेश से और उसकी देख रेख मे लिखा है। इसके सम्बन्ध में दूसरा ग्रन्थ 'राजरूपक" है। उसके लेखक ने भी अजीत की रहस्यमय मृत्यु पर कोई प्रकाश नही डाला है। उल्टे यह पता चलता है कि उसने इस रहस्य पर पर्दा डालने का प्रयास किया है।[11] इसमे लिखा है—

'अभय एक दूसरा अजीत, को अश्वपति से मिलाया गया, उसके पिता ने यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु यह ससार मिथ्या है, एक दिन सभी का विनाश होना है। आगे और पीछे सभी का यह ससार छोडकर जाना है। क्या राजा क्या बादशाह सभी को इस पथ पर जाना है। इस पृथ्वी पर कोई विनाश से नहीं बच पाया। जो जन्म लेता है उसे एक दिन मरना है। इस विश्व मे आने के पहले ही विधाता उसका समय निर्धारित कर देता है। उस समय के बाद एक क्षण भी किसी का जीवित रहना सम्भव नही होता। मनुष्य सब कुछ कर सकता है, परन्तु मृत्यु के सामने वह भी विवश है। तब अजीत बचने की आशा कम कर सकता था।"

"सवत् 1780 के ग्रापाढ मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन मरूभूमि के ग्राठ प्रतिष्ठित सरदारो के सत्रह सौ सनिक ग्रं तम बार ग्रपने स्वामी के मृतक शरीर के सामने उपस्थित हुये। उ होने उसके मृतक शरीर को ग्रर्थी पर रखा ग्रौर श्मशान भूमि को ले गये। चदन लक्डी ग्रनेक प्रकार के सुग धित द्र या ग्रौर घी कपूर से चिता तयार की गई। चू कि यह दारुण विषय था ग्रत कवि इसका विस्तृत विवरण कसे कर पाता ? जब नाजिर ने जाकर रनिवास मे यह दु ख समाचार सुनाया तब सोलह दासियो के साथ चौहानी रानी ने ग्राकर पति के साथ सती होने की इच्छा प्रकट की। सभी लोगो ने रानियो को चिता पर जाने से रोका, पर तु वे ग्रपने निश्चय पर ग्रटल रही ग्रौर ग्रजीत के मृत शरीर के साथ ही सती हो गई। इस समय ग्रजीत की ग्रायु पैतालीस वप तीन महीने ग्रौर बाईस दिन की थी।'

मारवाड़ के सिंहासन पर बठने वालो मे से एक सवश्रेष्ठ राजा के जीवन का इस प्रकार ग्र त हो गया। उसका ज म ग्रौर पालन पोषण जिस कठोर परिस्थितियो मे हुग्रा उसकी मृत्यु उतनी ही रहस्यमय परिस्थिति मे हुई। उसके ज म का समाचार मिलते ही ग्रौरगजेब ने उसका ग्र त करने का प्रयास किया। पर तु राज भक्त राठौड सरदारो की वीरता से उसकी रक्षा हो गई। उसे महाग्रपराधी की भाति ग्राबू पवत की गुफाग्रो म ग्रत्य त गोपनीयता के साथ रखा गया। ग्रजीत के ज म से लेकर जब तक उसके भाग्य ने पलटा खाया तथा जब वह ग्रपनी ज मभूमि के उद्धार योग्य हुग्रा—उस दीघ समय तक राठौड साम त मडली ग्रौर राठौड जाति ने उसके प्रति जिस प्रकार की राजभक्ति प्रदर्शित की समस्त ससार ग्रौर समस्त मानव समाज के इतिहासो म वसा उज्ज्वल चित्र ग्रौर दूसरा दिखाई नही देता।

ग्रजीत जिस प्रकार के दृढप्रतिज्ञ राजा थे, वसे ही ग्रसीम साहसी भी थ। उनके शरीर का गठन भी उसी प्रकार से समान बलवान था। उसने ग्रपन पिता के गुणो को प्राप्त किया था। तीस वष तक चलने वाले युद्धो म से कई युद्धो म ग्रजीत न स्वय समस्त राठौड साम तो के साथ ग्रपन बल विक्रम का परिचय दिया था। सवत् 1765 म ग्रामेर म दोनो सय्यद बधुग्रो के साथ जो युद्ध हुग्रा था ग्रौर बाद म गुप्त स धि ब धन हो गया था उस युद्ध म भी ग्रजीत उपस्थित था। ग्रजीत के जीवन का शेष ग्रश बादशाह के दरबार म ही व्यतीत हुग्रा था। फरूखसियर स लेकर मुहम्मद शाह तक के बादशाहो को सिंहासन पर बठाने मे उसकी भूमिका महत्वपूण रही थी। ग्रपन पिता की भाति ग्रजीत भी मुसलमानो को ग्रपना शत्रु मानकर उनस घृणा करता था ग्रौर ग्रवसर मिलते ही उनका सवनाश करन से न चूकता था। जिस फरूखसियर के साथ उसके पारिवारिक सम्ब ध कायम हो गय थ, उसी क विरुद्ध सय्यदो स मिलकर कठोर ग्राचरण किया। ग्रजीत के व्यवहारो को समालोचना की दृष्टि स नही ग्राका जा सकता।

परन्तु अजीत के जीवन म एक कलक की रखा प्रकाशमान है। उस घटना का उल्लेख न करना भूल हागी। दुर्गादास जो अजीत के शिशु जीवन के रक्षक तथा शिक्षक थ, अजीत के जीवन के उपदेशक थे, इस कहावत कि "राजा के ऊपर कभी भी विश्वास करना ठीक नही है", को साथक करन के लिय जीवित रह। दुर्गादास ने अनेक बार धन सम्पत्ति और ऊचे मान सम्मान को त्याग कर नि स्वाथ भाव से अजीत तथा उसके राज्य की सवा की थी। यदि वह चाहता तो अपन राजा अजीत के समान ही मान-सम्मान और पद प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता था। जिसने अपन बाहु बल पराक्रम तथा बुद्धिबल से मारवाड़ राज्य का उद्धार किया था, उसी दुर्गादास को मारवाड से निकाल दिया गया था।[12] अजीत ने किस समय और किस कारण से यह कलकपूर्ण काय किया—इसकी सही जानकारी नही मिलती। ऐसा जाना जाता है कि अजीत न किसी भारी कारण से यह शोचनीय व्यवहार किया था। लेखकों ने इस सम्ब ध मे एक यति स यह बात पूछी जिस सब मालूम था। उसन कविता म यह उत्तर दिया—' दुर्गा दशा काढ़िया गोला गागानी।" अर्थात् दुर्गादास को निकाल कर गागानी गाव गाला को दिया गया था।

यह गागानी गाव लूनी नदी के उत्तर की तरफ बसा हुआ था और करणोत राजपूतो का मुख्य गाव था। दुर्गादास इस शाखा का अधिनायक था।[13] इन दिनो मे यह खालसा गाव है। पर तु उन दिनो मे यह गाव दुर्गादास के अधिकार म था। करणोत वश के राजपूता न दुर्गादास की स्मृति मे गागानी गाव मे एक स्मारक बनवाया जो आज भी उस वीर की याद ताजा करता है।

सन्दर्भ

1 टाड साहब न कही मुकु द आर कही मोकम लिखा है। परन्तु सही नाम मोहकम सिंह अथवा मोहकिम सिंह था।

2 राडधडा गाव लनी नदी के पश्चिमी किनारे पर स्थित था।

3 सधि की शर्तों के अनुसार एक वष के बाद अजीत सिंह का दरबार म उपस्थित होना था।

4 इस मेले को अकबर न शुरू किया था।

5 फरूखसियर के बाद रफीउद्दाराजात का सिंहासन पर बठाया गया था।

6 अजीतसिंह ने दिल्ली के मुगलो की व्यवस्था के अनुकूल ही समस्त ध्वज दड नौबत आदि इन सबको साम तो की श्रेणी मे विभाजित कर दिये थे। उसके द्वारा कायम व्यवस्था आज तक जारी है।

7 धाधल राव ग्रासथान क बट धाधल क वशज है ।

8 प्रसिद्ध चौहान वीर गागा के वशज गागावत कहलात हु ।

9 नरुका वश जयपुर राज्य का प्रधान साम त वश था ।

10 चूडामण जाट भरतपुर के जाट राज्य के मस्थापक थे ।

11 ग्रजीत मिह की मृत्यु को लकर काफी विवाद है । राजस्थानी ग्रौर फारसी के लगभग सभी ग्र था म लिखा है कि ग्रजीतमिह की हत्या उसके दूसरे पुत्र वस्तसिह न की । पर तु क्या की–इस बारे म विभिन्न मत देखने म ग्राते हैं । उसकी हत्या बादशाह मुहम्मद की इच्छा, सवाई राजा जयसिह तथा भडारी रघुनाथ की प्रेरणा तथा ग्रभयसिह ग्रौर वस्तसिह के कुकृत्य का परिणाम थी ।

12 दुर्गादास का मारवाड से निकालन क बार म इतिहासकारा न ग्रलग ग्रलग कारणो का उल्लेख किया है ।

13 दुर्गादास कमसात शाखा के नही थे । व करणोत शाखा के थ । उनका मुख्य गाव खीमसर था । ग्रत टॉड का ग्रनुमान सही नही है ।

सूचना मिली तो वह अभयसिंह स मिला और उसन वादशाह के हस्ताक्षरो की सनद् दिखाकर कहा कि यहा का शासन वादशाह न मुझे सापा है और आमेर का राजा जयसिंह इस वात का साक्षी है। पर तु अभयसिंह न उसकी वात पर कोई ध्यान नहीं दिया और नागौर को घेर लिया। इ द्रसिंह न युद्ध न करक दुग खाली कर दिया। अभयसिंह ने यह दुग अपन छोटे भाई वरतसिंह को सौप दिया। नागौर विजय के लिए उस मवाड जैसलमेर वीकानेर और आमर स वधाइया प्राप्त हुइ। इसक वाद वह अपनी राजधानी लौट आया। यह सवत् 1781 मे हुआ।

सवत् 1782 म अभयसिंह अपन राज्य के पश्चिमी सीमा त पर आवाद उपद्रवकारी भोमिया सरदारा का दमन करन गया और सि धल, देवडा वालावोडा, वलेचा आर सोढाओ को अधीनता स्वीकार करन क लिय विवश किया गया।

सवत् 1783 म वादशाह का फरमान आ पहुँचा और उस दिल्ली दरवार मे उपस्थित होन को कहा गया। उसन आज्ञा का पालन किया। अपने सभी सरदारो को एकत्र किया और दरवार जाते समय माग मे अपन इलाको का निरीक्षण करता गया। शासन प्रव ध को मजवूत वनाया दोषो को दूर किया तथा जहाँ कही अव्यवस्था दिखाई पडी उस ठीक किया। परवतसर नामक स्थान पर उसे चचक निकल आई। रोग स मुक्ति क लिय शीतला माता[2] की मनौती मानी गई। कुछ दिनो वाद वह स्वस्थ हो गया।

सवत् 1784 मे वह दिल्ली पहुँचा। वादशाह न उसकी अगवानी के लिये साम्राज्य क प्रमुख अमीर खान दौरान को भेजा। जव वह दरवार म पहुँचा तो वादशाह न उस अपन निकट आन को कहा आर उसका स्वागत करते हुय उससे वातचीत की। वादशाह न कहा आज वहुत दिन वाद आपसे मुलाकात हुई है। आपको दखकर मुझे वहुत प्रस नता हुई। वादशाह स विदा लेकर वह अपन डेरे लौट आया। वादशाह न उसके डर पर गुलाव जल मुग ि वत तल, उम्दा किस्म के फल आदि वहुत सी वस्तुए भिजवायी।

सवत् 1784 म सर वुल दर्खां न विद्रोह कर दिया और राठोडा का अपना पराक्रम तथा उनके कवियो को काव्य रचना का अवसर मिल गया। कवि न उसका वणन इस प्रकार स किया है—"दक्षिण म कष्ट वढ गय थ। शाहजादा जगला[3] ने विद्रोह कर दिया और साठ हजार सनिका क साथ उसन मालवा सूरत और अहमदपुर क अधिकारिया पर आक्रमण करक वादशाह क सनानायका—गिरधर वहादुर इब्राहीम कुली, रुस्तमअली आर मुगल मुजात आदि का मरवा डाला। वादशाह न इस समाचार का सुनकर सर वुलन्दखा का विद्राहिया का दमन करन का आदश दिया। वह पचास हजार सनिका तथा एक करोड रुपय क साथ चला। पर तु उसकी सना का दस हजार सनिका का अग्रिम दस्ता पहली ही मुठभेड म परास्त हो

गया। सर बुलन्दखा ने संधि का प्रस्ताव किया और अन्त मे उसने वहा के राज्य के विभाजन को स्वीकार कर लिया।

इसी अवसर पर मारवाड के राजा ने बादशाह से अपने पतृक राज्य को लौटाने की अनुमति मागी थी। कवि ने इस अवसर पर दरबार के दृश्य का तथा बादशाह की निराशा का सुन्दर वर्णन किया है। वह कहता है, "बादशाह सिंहासन पर बैठा था, उसके आस पास साम्राज्य के बहत्तर श्रेष्ठ अमीर उमराव उपस्थित थे, जब सर बुलन्दखा के विद्रोह की सूचना मिली। सभी की उपस्थिति मे ऊचे स्वर से पढ कर सुनाया कि सरबुलन्दखा ने गुजरात पर अधिकार करके अपने आपको वहाँ का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया है और मण्डला, झाला, चौरसमा, बघेला तथा गोरिल जातियो को परास्त करके उनको नष्ट कर दिया है। उसके अत्याचारो से दुखी होकर भूमिया लोगो ने अपने-अपने दुर्ग छोड दिये हैं और सरबुलन्दखा के आश्रय मे पहुँच गये हैं। अब सत्रह हजार गाव उसे अपना बादशाह मानते हैं। उसने अपने आपको अहमदाबाद मे बादशाह के रूप मे प्रतिष्ठित कर लिया है और वह दक्षिण वासियो से मिल गया है।"

बादशाह ने सोचा कि यदि इस विद्रोह को नही कुचला गया, तो सभी सूबेदार अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर देंगे। उत्तर मे जोगेशखा, पूर्व मे सआदतखा[4] और दक्षिण मे मलेच्छ निजामउलमुल्क[5] पहले ही अपनी काली करतूतें प्रदर्शित कर चुके हैं। दरबार मे सोने के एक पात्र मे पान का एक बीडा रखा गया। मीर तुजक उस पात्र को लेकर दोनो पक्तियो मे बठे सरदारो-अमीरो के सामने से होकर गुजरा, परन्तु किसी ने भी उसे उठाने का साहस नही दिखाया। बीडा उठाने का अर्थ था, सरबुलन्दखा के विद्रोह का दमन करने का दायित्व उठाना। बीडा को रखे हुये कुछ समय बीत गया। कई अमीरो ने अपने सिर नीचे झुका लिये और कइयो ने उस तरफ देखने का भी साहस नही किया।

परमेश्वर पादशाह ना भिखारी को बारह हजार का उमरा बना सकता था और राजा को रक बना सकता था, आज साधनहीन था। इसी समय दरबार मे उपस्थित किसी अमीर ने कहा "जो सरबुलन्द को पराजित कर सकता हो, उसी को पान का यह बीडा उठाना चाहिये।' तभी किसी दूसरे ने कहा, सरबुलन्द को परास्त करना आसान नही है। सोच-समझ कर कदम उठाना चाहिये।" तीसरे ने कहा, जो जहरीले साँप का मुख पकडने का साहस रखता हो, उसे सरबुलन्दखा से युद्ध करने की बात सोचनी चाहिये।" बादशाह को बहुत दुख हुआ। उसने मीर तुजक को पान का बीडा अपने पास लौटा लाने का सकेत किया।

राठोड राजा ने बादशाह के दुख को समझा और ज्यो ही बादशाह दीवान खास से जाने के लिये उठा तो अभयसिंह ने अपना हाथ बढाकर बीडा उठा लिया

ग्रौर उसे ग्रपनी पगडी पर रखकर बादशाह से कहा 'ग्राप निराश न हो मै इस विद्रोही सरबुलन्द खा का दमन करूगा ग्रौर इसका सिर काटकर ग्रापके सामने लाकर रख दूगा।" सभी ग्रमीरो ने ग्रभयसिह की इस बात को सुना ग्रौर उनके मन म उसके प्रति ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हुग्रा। बादशाह ने शाति ग्रौर सताप का ग्रनुभव किया। उसने उसी समय ग्रभयसिह को गुजरात के शासनाधिकार की सनद् प्रदान की। इससे राठौड राजा के प्रति ग्रमीरो की जलन बढ गई। प्रसन्नचित्त बादशाह ने ग्रभयसिह से कहा, ग्रापके पूर्वजो ने इस सिहासन की सुरक्षा के लिये हमेशा प्रयास किया है, जहागीर के समय म उन्होने खुरम ग्रौर भीम के विद्रोह का दमन किया, दक्षिण म व्यवस्था कायम की ग्रौर इसी प्रकार मै विश्वास करता हूँ कि ग्रापके द्वारा मुहम्मदशाह के सिहासन की प्रतिष्ठा कायम रखी जायेगी।"

उसे बहुमूल्य उपहार दिये गये जिसम सात हीरो का एक ग्राभूषण भी सम्मिलित था। सैनिको के खर्चे के लिये खजाने से इक्कीस लाख रुपये दिये गये ग्रौर शाही तोपखाने से बढिया तोपें दी गईं। सवत् 1786 के ग्राषाढ मास म ग्रहमदाबाद ग्रौर ग्रजमेर सूबो के शासनाधिकार की सनद् के साथ ग्रभयसिह ने बादशाह से विदा ली। मारवाड का राजनैतिक विनाश इसी समय से ग्रारम्भ होता है क्योकि सरबुलन्द का विद्रोह साम्राज्य के विघटन का ग्रग्रज था। जून 1730 ई० मे मारवाड के राजा ने दिल्ली से प्रस्थान किया। वह सीधा ग्रजमेर की तरफ बढा। इस तरफ ग्राने के उसके दो उद्देश्य थे। प्रथम इस दुर्ग जो कि न केवल मारवाड की ग्रपितु राजपूताने के प्रत्येक राज्य की कुजी थी को ग्रपने ग्रधिकार म करना। दूसरा इस नाजुक समय पर साम्राज्य की गतिविधियो के बारे म ग्रामेर के राजा के साथ परामर्श करना। ग्रामेर के राजा की ग्रजमेर म इस समय उपस्थिति का कारण राठौड ग्रन्थो म नही दिया गया है, परन्तु दूसरे ग्रन्थो से पता चलता है कि जयसिह ग्रपने पूर्वजो का श्राद्ध करने के निमित्त पुष्कर गया था। कवि ने दोनो राजाग्रो की मुलाकात का सुन्दर विवरण दिया है। दोनो ने एक ही स्थान पर विश्राम किया ग्रौर साथ साथ भोजन किया। दोनो ने साम्राज्य के विध्वस की योजना बनाई।

ग्रजमेर म ग्रपने ग्रधिकारियो को नियुक्त करके ग्रभयसिह मेडता की तरफ बढा जहाँ उसके छोटे भाई बख्तसिह ने उससे भेंट की। इसी ग्रवसर पर उसे नागौर राज्य के शासनाधिकार की बादशाही सनद् दी गई। दोनो भाई साथ-साथ जोधपुर की तरफ बढे। वहाँ पहुच कर ग्रभयसिह ने ग्रपने सभी सरदारो को ग्रपने घरो को लौटने की ग्रनुमति दी ग्रौर उन्ह ग्रपने ग्रपने सैनिक दस्तो के साथ शीघ्र ही लौटने को कहा ताकि सरबुलन्द के विरुद्ध शीघ्र ही ग्रभियान किया जा सके। सब सामतो के वापस ग्रा जाने के बाद बडवानल, मगरमुखन ग्रौर यमराज ग्रादि तोपो की पूजा की गयी। बकरो की बलि दी गई।

फिर भी, सीधे युद्धस्थल की तरफ बढने के स्थान पर अभयसिंह ने अपने नेतृत्व म एकत्र विशाल सेना, जो गुजरात के सूबेदार की हैसियत स उपलब्ध हुई थी, का उपयोग अपने पडौसी सिरोही क वीर राजा से अपना प्रतिशोध लेने के लिये किया। सिरोही क राजा को अपनी स्थानीय शक्ति का अत्यधिक विश्वास था और उसन उन सभी सुलह प्रस्तावो जिनके द्वारा उसकी स्वत त्रता प्रभावित हा सकती थी, ठुकरा दिया था। उसका यह स्वाभिमान उसके राज्य की भौगोलिक स्थिति तथा पहाडो म आबाद लडाकू जातियो क साथ उसके गठव धन के कारण था। य जातियाँ उसक राज्य के तीनो तरफ की पहाडिया मे बसी हुई थी।

इन मीनो, अरावली के पहाडी लोगो न, अभयसिंह को उ ह दडित करन का आधार प्रदान किया था। दिल्ली से जाधपुर आते समय अपन साम तो का विदा कर जब अभयसिंह अफीम का सेवन कर आन द मे डूब गया, तब अवसर पाकर ये मीना लाग अभयसिंह के डेरे के पशुओ को हाककर अपन अधिकृत पहाडी स्थाना को ले गय थे। जब अभयसिंह का इसकी सूचना दी गई ता उसने शा त स्वर से कहा, "उ ह जाने दो उ ह मालूम है कि हमारे पास घास दान की कमी है, इसलिये व उ ह अपन खेतो पर ले गय है।" बडे आश्चय की बात है कि अभयसिंह द्वारा युद्ध के लिये प्रस्थान करन के पूव ही मीना लोगो ने उन पशुओ को अच्छी हालत मे लौटा दिया। अभयसिंह न अपन लोगो से कहा "मन पहल ही कह दिया था कि यह मीना लोग हमारी अनुगत विश्वासी प्रजा है।'

युद्ध के लिये प्रस्थान का आदेश दिया गया। कवि ने इस स्थान पर विभिन्न राजपूत कुलो के सरदारो की सनिक शक्ति का विस्तृत वणन किया है। कवि ने लिखा है, "कोटा और बू दी का हाडा स य गागरोण क खीची, शिवपुर के गौड, आमर की कच्छवाही सेना और मरूभूमि के सोढा आदि तथा दा प्रमुख मुसलमान सेनानायक इस विशाल सना के साथ थ। मारवाड क राठाड बख्तसिंह क नतृत्व म सना क बायी ओर चल।

सवत् 1786 चत्र मास की दशमी का अभयसिंह न जोधपुर से कूच किया और भाद्राजून, भालगढ सिवाना और जालौर हाता हुआ आगे बढा। रिवाडा पर आक्रमण किया गया भयकर सघष क बाद चापावत सरदार मारा गया। देवडा लोग प्राण बचाने क लिय पहाडो को छोडकर भाग गय। वहा एक सनिक टुकडी नियुक्त कर मुख्य सना पूसालिया की तरफ बढी। सिरोही के राजा ने जब रिवाडा और पूसालिया के पतन का समाचार सुना तो वह घबरा गया। सिरोही के चौहान राव न अन्य उपाय न देखकर अभयसिंह के हाथ मे अपनी पुत्री[6] का हाथ देकर राज्य की रक्षा करन का विचार किया। उसन चावडा वशी सरदार मायाराम के द्वारा अभयसिंह के पास सधि का प्रस्ताव भिजवा दिया और अपन भाई मानसिंह की पुत्री के विवाह का प्रस्ताव रखा। युद्ध के उस वातावरण म विवाह के आन द का कालाहल होने लगा। शुभ

मुहूर्त म विवाह सम्पन्न हुआ। दस माम बाद अभयसिह की इस रानी ने जोधपुर मे राजकुमार राम को ज म दिया। सिरोही न कर देना भी स्वीकार किया।

दवडा साम त भी अपन अपने सनिक दस्ता के साथ अभयसिह की सेना से आ मिले। अभयसिह न पालनपुर सिद्धपुर होत हुए कूच जारी रखा और यहा पर पडाव डालकर सरबुल द के पास एक दूत भेजकर उसे समस्त शाही सामान तोपें आदि लौटान, राजस्व का हिसाब दन और अहमदाबाद तथा प्रात के अन्य दुर्गो से रक्षक सेनाओ को हटान और उनका नियत्रण अभयसिह को सौपन को कहला भेजा। उत्तर गव तथा अहकारयुक्त था कि 'वह स्वय बादशाह है और उसका सिर अहमदाबाद क साथ है।"

सरबुल द के इस उत्तर क बाद राजपूत शिविर म एक महती सभा हुई। उसम सरबुल द क उत्तर पर विचार विमश और आगे की नीति पर चर्चा हुई जिसका कवि न विशद वणन किया है— 'सबसे पहले चापा के वशधर आऊवा के हरनाथ क पुत्र सरदार कुशालसिह जो मारवाड के राजा के दाहिनी तरफ बठने का अधिकारी था, न अपन विचार व्यक्त किय। फिर कू पावतो के नता आसाप के सरदार क हीराम जो राजा क बायी और बठन का अधिकारी था न कहा, 'आओ किलकिला[7] की भाति हम समररूपी समुद्र म कूद पडें।' इसके बाद क्रमश मडतिया साम त केसरीसिह ऊदावत सरदार जोधावत सरदार जेतावत सरदार आदि सभी ने एक स्वर से कहा— युद्ध! युद्ध!'

इसक बाद बख्तसिह खडा हुआ। उसने सरबुल द के विरुद्ध युद्ध म नेतृत्व करने और पहला आक्रमण करन के अधिकार की माग करते हुय कहा कि आप सभी लोग इस स्थान पर विश्राम कीजिय मैं अकेला ही सबसे पहले सेना को चलाकर सरबुल द के अहकार को चूण करता हूँ। तुर त ही एक बडे पात्र मे लाल जल लाया गया और उसे अभयसिह के सामन रखा गया। अभयसिह ने उस पात्र मे स जल लेकर उपस्थित वीरो पर छिडकत हुए कहा इस युद्ध मे प्राण त्याग करन स अवश्य ही अमरपुर म जाना होगा।"

इस स्थान पर कवि न इकट्ठी हुई अश्वारोही सेना क अश्वो की प्रशसा की है। दक्खिन की भीमरथाली नामक अश्व श्रेणी सबसे आग थी इसके पीछे मारवाड के अ तगत घाट और राडधडा और सौराष्ट्र क अ तगत काठियावाड के अश्वो की प्रशसा की थी।

सरबुल दखा ने अपनी रक्षा के लिय जिन उपायो का अवलम्बन किया, राठौड कवि न उनका भी वणन किया है। उसन नगर के जान के प्रत्येक माग पर दो दो हजार सनिक और पाच पाच तोपें तनात कर दी। इन तोपो के तोपची यूरोपियन लोग

थ। उसकी अपनी रक्षा के लिये भी यूरोपियन बदूकधारियों का एक दल तनात था। अभयसिंह न सभा म निर्धारित रणनीति के अनुसार शीघ्र ही युद्ध छेड दिया। तीन दिन तक दोनो ओर स तोपो से भयकर गोलो की वर्षा हुई जिसम सरबुल द का एक पुत्र मारा गया। इसके बाद बख्तसिंह ने तूफानी आक्रमण किया। भयकर सघर्ष म सभी ने अद्भुत पराक्रम का प्रदशन किया। सबसे पहले चापावत सरदार कुशालसिंह न वीरगति प्राप्त की। हम यहा कवि द्वारा वर्णित उन तमाम वीरो का उल्लेख नही कर पा रहे है जि होने अहमदाबाद की दीवारो को अपने रक्त से लाल कर दिया था। तलवारो की चमक म दोनो राजवशी भाइयो ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। दोनो ने एक से अधिक प्रतिष्ठित शत्रु सरदारो को स्वर्ग पहुचाया था। अमरा जिसने कई बार अजमेर की रक्षा करके अपनी वीरता का प्रदशन किया था, उसने शत्रुपक्ष के पाच प्रमुख सरदारो को मृत्यु लोक भेज दिया और दो तीन हजार सवारो का सफाया कर दिया।

आठ घडी दिन शेष था जब सरबुल दखा भाग निकला, पर तु उसकी अग्रवर्ती सेना का सेनापति अलियार तब भी पूरे उत्साह एव साहस के साथ युद्ध कर रहा था। बख्तसिंह न आगे बढकर अपनी तलवार से उसके मस्तक के दो टुकडे कर दिये। तत्काल ही विजय का डका बजने लगा। घायल नवाब जिस हाथी पर बठकर भागा था वह हरिणी की चाल से भागा जा रहा था। इस युद्ध म शत्रुपक्ष के 4493 लोग मारे गये जिनमे से 100 तो पालकीनशीन थे, 8 हाथीनशीन और 300 एसे थे जो दीवाने आम नामक सभा के कक्ष मे जाने पर ताजीम के हकदार थे।[8] राठौड पक्ष से 120 ऊची श्रेणी के सेनानायक और 500 अश्वारोही सनिक मारे गय।[9]

दूसरे दिन प्रभात होते ही अ य कोई उपाय न देखकर सरबुल दखा ने अभय सिंह के आगे आत्म समपण कर दिया। उसे तथा उसके सहयोगियो को ब दी बनाकर रक्षको के साथ आगरा भेज दिया गया। माग म बहुत से घायल ब दी मर गये। इस भयकर युद्ध मे राठौड सेना के अनेक सरदारो तथा अपने परिवारजनो की मृत्यु से अभयसिंह को अत्यधिक दु ख हुआ। अभयमल्ल[10] ने सत्रह हजार नगरो स पूण गुजरात और नौ हजार ग्राम नगरो से पूण मारवाड और एक हजार ग्राम नगरो से पूण एक अ य राज्य पर शासन किया। इसके अलावा ईडर भुज बागड सि ध, सिरोही फत्तेपुर के चालुक झु झनू जसलमेर, नागौर डू गरपुर बासवाडा, लूना वाडा, हलवध आदि देशो के राजा लोग भी अभयसिंह के सामने अपना मस्तक नवाया करते थे।

महाराज राम ने जिस विजयादशमी के दिन लका को विजय किया था, सवत् 1787 की उसी विजयादशमी के दिन बारह हजार सवारो वाले अमीर सरबुल द के साथ युद्ध म विजय प्राप्त की थी।

गुजरात की राजधानी तथा प्रदेश म शाति व्यवस्था बनाये रखन के लिये नजह हजार नैनिकों का वहा नियुक्त करके गुजरात की लूट म प्राप्त धन सम्पत्ति को लकर अभयसिह जोधपुर चला आया। एसा कहा जाता है कि वह चार करोड रुपय नाद, अनक प्रकार की 1400 तोपें तथा युद्ध सम्बन्धी अगणित सामग्री गुजरात से ले गया था। मुगल साम्राज्य की अवनति के इन दिनो म उसने इस धन सम्पत्ति म मारवाड के दुर्गों को भली भाति से सुदृढ बनाया और मुगल शक्ति के पतन की तथा अपन स्वाथ साधन की प्रतीक्षा करन लगा।

सन्दर्भ

1 टाड साहब ने करणीदान को कन्नौज के राजकवि का वशज बतलाया है, जो गलत है। करणीदान चारण था और चारण जाति के कवि न कभी कन्नौज म थे और न अब हैं।

2 राजपूत लाग शीतलादेवी को 'जगतरानी' कहा करते थे।

3 शाहजादा जगली से कवि का अभिप्राय शायद पेशवा बाजीराव से रहा हो जिसन मुगलो से मालवा छीन लिया था।

4 इसी ने अवध के स्वतन्त्र राज्य की नीव रखी थी।

5 आग चलकर इसने दक्षिण हैदराबाद के स्वतन्त्र राज्य की नीव रखी।

6 पुत्री का नही, अपितु अपने बडे भाई की पुत्री के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा था।

7 किलकिला एक छाटे पक्षी का नाम है जो अपने भोजन के लिये पानी की सतह पर मडराया करता है।

8 इस प्रकार के विशेषाधिकार उन लोगो को बादशाह से प्राप्त हुए थे।

9 राठौडो के जिन सरदारा और सनिको ने अपूव पराक्रम का परिचय देते हुए वीरगति प्राप्त की थी, उन सभी लोगो का कवि न विस्तार के साथ वरणन किया है।

10 कवि न छन्द के हिसाब स कही कही पर अभयसिह के लिय 'अभयमल्ल' लिख दिया है।

अध्याय 41

अभयसिंह के शासन का शेष वृत्तान्त

रात विजय से जोधपुर आने के बाद अभयसिंह आनंदपूर्वक शान्ति सुख
। परन्तु वह अधिक दिनों तक उसका भोग न कर सका। अभयसिंह आयु
थ ही साथ अफीम का अधिक से अधिक सेवन करने लगा। परन्तु उसकी
दपूर्वक एकाग्रता उसके छोटे भाई वख्तसिंह के सक्रिय साहस और सैनिक
भंग होने लगी। नागौर जैसा छोटा सा राज्य उसकी वीरता और योग्यता
से बहुत सीमित था। वख्तसिंह यह बात जानता था कि असीम साहसिक
या कठिन स्वभाव तथा वीरता के बल से उसने राठौड़ जाति के सब
ए के ऊपर अपना जो प्रबल अधिकार स्थापित किया है, उसको सभी विद्रोह
त्रों से देखते थे और उद्धत् स्वभाववाली राठौड़ जाति उसका किंचित भी
स नहीं करती थी। इस कारण विशेष सावधानी के बिना वह तीन सौ साठ
नगरों से पूर्ण नागौर राज्य की सुरक्षा करना आसान काम नहीं था। वह
शी मित्र राजाओं की सहायता से अथवा मारवाड़ में आत्मविग्रह की अग्नि
वलित करके अपनी शक्ति बढ़ाने के विरुद्ध था, परन्तु चारण कवि की सहायता
उसने एक विचित्र राजनीति का अनुसरण किया, जो राजपूत चरित्रों के नवीन
क्षण और विचित्रता को प्रकट करता है। करणीदान अपने ऐतिहासिक काव्य
सरबुलंद के साथ अभयसिंह के युद्ध के वृत्तान्त का पूरा करने के बाद जोधपुर
छोड़कर नागौर में जाकर वख्तसिंह के साथ मिल गया। अपनी जाति के अन्य लोगों
की तरह वह भी राजनैतिक षडयन्त्रों में निपुण था। वह अत्यन्त सरलतापूर्वक गुप्त
भाव से अपने षडयन्त्र का जाल विस्तृत करने लगा। उसने वख्तसिंह को अभयसिंह
के विरुद्ध आमेर के राजा का सहयोग प्राप्त करने का सुझाव दिया। इस कार्य को
पूरा करने का अवसर भी शीघ्र आ उपस्थित हुआ।

बीकानेर के राजा, मारवाड़ वंश की कनिष्ठ परन्तु स्वतन्त्र शाखा, ने अपने
अप्रीतिकारक आचरण से अपने नाममात्र के प्रभु अभयसिंह को अप्रसन्न कर दिया
था। दिल्ली के मुगल बादशाह जो सभी राजपूत राजाओं के अधीश्वर थे, की कमजोरी
का लाभ उठाते हुए अभयसिंह ने बीकानेर पर आक्रमण कर नगर को घेर लिया।
बीकानेर वालों ने कुछ सप्ताहों तक जोधपुर की राठौड़ सेना का सफलतापूर्वक

प्रतिरोध किया । बख्तसिंह ने सोचा कि इस सुअवसर मे यदि उसने बीकानेर वालो का सहयोग दिया तो सरलता मे उसकी मनोकामना पूरी हो जायेगी । इससे अच्छा सुअवसर उसे नही मिल सकता था । यद्यपि अभयसिंह ने मारवाड के सभी सरदारो की संयुक्त सेना के साथ बीकानेर पर आक्रमण किया था परन्तु उसकी राठौड सेना के कई सरदार बीकानेर वालो के प्रति सहानुभूति रखते थे और यदि ये सरदार बीकानेर वालो को अफीम नमक और युद्ध सामग्री न देते तो उन्हे अवश्य ही समर्पण करना पडता । मारवाड के राठौड सरदारो ने इस प्रकार का आचरण क्यो किया था इसको सरलता से समझा जा सकता है । बीका उन्ही का भाई बन्धु था, सीहाजी ने जिस राठौड वंश का बीज बोया था, उस वंश रूपी वृक्ष की एक शाखा से बीकानेर राजवंश उत्पन्न हुआ था । संकट काल मे दोनो शाखाएँ संयुक्त हो जाती थी । इसके अलावा राठौड अधिपति और उसके सामन्तो के मध्य बीकानेर वाले सतुलन बनाये रखने की चेष्टा करते थे ।

कवि की योजना को स्वीकार करने के बाद उसे कार्यान्वित करने की तयारी की गई और आमेर के राजा को पत्र लिखने का निश्चय किया गया । करणीदान ने बख्तसिंह का कहा कि उसके गर्व को स्पर्श करो । उसे लिखो कि बीकानेर पर अभयसिंह का आक्रमण उसका अपमान है, क्योकि आमेर के राजा ही बीकानेर के राजाओ के सरक्षक रहे है । अर्थात अभयसिंह ने आमेर नरेश की शक्ति को अस्वीकार किया है । उसे जोधपुर पर आक्रमण करने का इससे अच्छा अवसर कभी न मिलेगा ।' बख्ता ने जयसिंह को पत्र लिखा और इसके साथ ही उसके दरबार मे उपस्थित बीकानेर दूत को भी लिख भेजा कि इस समय क्या करना उचित है ।

आमेर का राजा बुढ़ापे मे अफीम के भक्त हो गये थे और इससे राजकार्य मे भी अनेक विघ्न की सभावना थी । इस बात को वह भी भली-भांति जान गये थे, इसलिये उसने यह आज्ञा प्रचारित कर रखी थी कि जिस समय वह अफीम के नशे मे हो उस समय राजनीति अथवा राजकाय का कोई विषय उसके सम्मुख प्रस्तुत न किया जाय । बख्ता के पत्र को आमेर की राज सभा मे विचाराथ प्रस्तुत किया गया और यह तय किया गया कि राठौडो के आपसी सघर्ष मे आमेर की तरफ से किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय । परन्तु बीकानेर दूत ने आमेर के शासन विभाग के मंत्री विद्याधर[1] से गहरी मित्रता कर रखी थी । उसी की सहायता से दूत ने आमेर नरेश मे जबानी निवेदन की आज्ञा प्राप्त कर ली । दूत ने विनम्रता से कहा, 'महाराज इस समय बीकानेर महान् सकट मे है और आपकी सहायता के अभाव मे उसका पतन निश्चित है और उसका स्वामी मारवाड के राजा को अपना अधिपति नही मानता वह आमेर नरेश को अपना अधिपति मानता है ।' आमेर नरेश ने कलम हाथ मे उठाई और अभयसिंह को एक पत्र लिखा । 'हम सभी एक ही महान् परिवार के अंग हैं, बीकानेर को क्षमा करके घेरा उठा लीजिये । इन पंक्तियो को लिखने के बाद जयसिंह ने अफीम का एक और प्याला पिया तथा पत्र को

व द करके दूत को दे दिया । चतुर दूत ने विनयपूर्वक कहा, महाराज एक दो बात और लिख दीजिये कि "नहीं तो मेरा नाम जयसिंह है, यह याद रखिये ।" अफीम के नशे मे धुत्त जयसिंह ने दूत की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया । दूत ने तुर त विदा ली और कुछ ही समय मे एक तेज ऊँटनी सवार के हाथ पत्र अभयसिंह क लिये रवाना कर दिया । दूत के जाने के कुछ समय बाद आमेर का एक प्रधान सरदार जयसिंह से मिलने आया । जयसिंह ने उसको पत्र के बारे म बताया तो उसने कहा कि इससे आपके सगा[2] की विरक्ति होगी । यदि आप कछवाह वश को विनाश से बचाना चाहते ह तो उस पत्र को ले जाने वाले को वापस लौटने की आज्ञा दीजिये । पत्रवाहक की खोज म कई लोग भेजे गये पर तु वह उनको कही नजर नही आया । दोपहर के समय बहुत से सरदार जयसिंह के साथ भोजन के लिये एकत्र हुए । तब वद्ध सरदार दीपसिंह ने आमेर नरेश स कहा कि आपने अत्य त ही अन्याय और अविचार का काय किया है, आपके इस अविचार से हम सभी को कष्ट भोगना पडेगा ।

यथासमय उतनी ही शीघ्रता से पत्रवाहक अभयसिंह का उत्तर भी ले आया । उसने गव के साथ लिखा, हमे आज्ञा देने का तथा हमारे सेवक के साथ हमारे विवाद म हस्तक्षेप करने का आपको क्या अधिकार है ? यदि आपका नाम जयसिंह है, तो याद रखिये कि मेरा नाम भी अभयसिंह है ।"

वृद्ध साम त दीपसिंह ने कहा, "मैंने आपको पहले ही बता दिया था कि क्या होने वाला है । जो होना था वह हो गया, अब कोई उपाय नही है, शीघ्र ही अपने मित्रो को इकट्ठा करने की आज्ञा दीजिये ।" शीघ्र ही आमेर के सभी सरदारो को अपने सनिक दस्ता के साथ आने के आदेश जारी किये गये । प्रत्येक कछवाहा को अस्त्र शस्त्र के साथ राजधानी के बाहर जयपुर की पचरगी पताका के नीचे एकत्र होने को कहा गया । बू दी के हाडाओ, करौली के यादवो, शाहपुरा के सीसोदियो खीची लोगो तथा जाटो से भी सहायता प्राप्त की गई । थोडे ही समय मे राजधानी के बाहर एक लाख सनिको का जमघट लग गया । तुर त ही इस विशाल सेना ने कूच किया और पडाव पर पडाव डालती हुई यह सेना मारवाड के सीमा त पर स्थित गगवाना नामक गाव तक जा पहुची । यहा पर पडाव डाल दिया गया और तमाम शिष्टाचार के साथ भयरहित सिंह (अभयसिंह) के आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

जयसिंह को अधिक दिनो तक प्रतीक्षा नही करनी पडी । जयसिंह सेना सहित उससे युद्ध करने आया है, यह सुनते ही अभयसिंह क्रोधित सिंह के समान उमत्त हो उठा । वह कुछ दिनो बाद बीकानेर को जीत सकता था पर तु जयसिंह के आने का समाचार पाकर उसने व्यथित मन से घेराव दी को उठाकर जयसिंह से सामना करने के लिये चल पडा ।

वख्तसिंह भी सतक हो उठा । उसके षडय न स इस प्रकार का भयकर काण्ड उपस्थित हो जायगा, यह उसने स्वप्न मे भी नही सोचा था । उसन तो केवल अपने भाई के विरुद्ध पडौसी राजाग्रों की अनबन की अभिलाषा की थी, जातीय महासमर की कल्पना नही की थी । अपन षडयन्त्र क प्रकट हो जान के भय स वह इतना चिंतित नही हुआ जितना मारवाड की प्रतिष्ठा को लकर जिस पर महान सकट आ पडा था । इसलिये वह शीघ्र ही अपन बडे भाई और अपन अधीश्वर अभयसिंह के पास जा पहुँचा और उस बीकानेर से घेरा न उठान को कहा । उसन कहा कि वह अकेला ही अपने सरदारो के साथ उस भगतिया[3] से युद्ध करूगा और ईश्वर की कृपा से उसे उचित शिक्षा दूगा । अभयसिंह इस बात से असहमत न था कि उसका भाई अपने आचरण की सजा पाये । इसलिय उस युद्ध की आज्ञा देकर भी उसक प्रति अपनी घृणा को शात न कर पाय ।

नगाडो की ध्वनि ने नागौर के शूरवीरो क इकटठा होन की सूचना दी । वख्तसिंह दिल्ली द्वार पर खडा हो गया । उसके पास ही पीतल के दो बडे पात्र रखे थे । एक मे घुला हुआ अफीम था और दूसर म कुकुम जल । आन वाल एक एक राजपूत को एक पात्र म अफीम देने लगा और दाहिने हाथ से कुकुम जल लकर उनक वक्षस्थल पर छिडकने लगा । इस प्रकार से आठ हजार राजपूत एकत्र हुये जिन्हाने उसक साथ मरने का सकल्प किया । फिर भी उसन अत्यधिक शूरवीरो को ही चुनने का निश्चय किया । वह उन सभो को पास ही बाजरे के एक बडे खेत पर ले गया और उन्हे खडा करके कहा कवल वे ही लोग साथ चलें जो जय अथवा मृत्यु के पहल वहाँ से लौटन की इच्छा न करते हो । ईश्वर के नाम पर आज्ञा देता हू कि जो वापस लौटने की इच्छा करते है वे यहाँ से ही वापस लौट जाय । इसके बाद वख्तसिंह खेत म घोडा लेकर आगे बढ गया ताकि वापस जाने वाल चुपचाप चल जाय । बाद मे उसने देखा कि पाच हजार से कुछ अधिक सनिक उसके साथ चलने को तयार हैं, शेष सब लोग चुपचाप भाग गये थे । उन्हे साथ लेकर वह युद्ध के लिये आगे बढा ।

आमेर नरेश अपनी एक लाख सेना के साथ गगवाना म राठौडा की प्रतीक्षा कर रहा था ज्योही शत्रुपक्ष की सेना सामने आई, वख्तसिंह ने आक्रमण करन का आदेश दे दिया और उसके राठौड सनिक भालो और तलवारो से चारो तरफ मारकाट मचाने लगे । उनके भयकर प्रहार स आमेर की सेना छिन्न भिन्न होने लगी । वख्तसिंह ने अपन दायें बायें आमने सामने की शत्रु सेना को काट डाला और जब वह आमेर सना के अंतिम छोर की तरफ बढा तो उसने एक बार मुडकर पीछे की तरफ देखा । पाच हजार राठौडो म से केवल साठ सवार उसके आस पास रह गये थे । इसी समय नागौर सरदारो म प्रमुख गजसिंहपुरा के सरदार ने वख्तसिंह स कहा पास ही सघन वन है । साहसी राठौड वख्तसिंह न कहा वह सामने क्या है ? हम जिस मार्ग स आये हैं उस मार्ग स होकर नही जायेंगे ।" तभी वख्तसिंह को दूर

ब द करके दूत को दे दिया । चतुर दूत न विनयपूर्वक कहा, महाराज एक दो बात और लिख दीजिय कि "नहीं तो मेरा नाम जयसिंह है, यह याद रखिय ।" अफीम के नशे मे धुत्त जयसिंह न दूत की प्रार्थना का स्वीकार कर लिया । दूत न तुरन्त विदा ली और कुछ ही समय मे एक तेज ऊँटनी सवार क हाथ पत्र अभयसिंह के लिय रवाना कर दिया । दूत क जान क कुछ समय बाद आमेर का एक प्रधान सरदार जयसिंह से मिलन आया । जयसिंह न उसका पत्र के बार म बताया तो उसने कहा कि इससे आपके सगा[2] का विरक्ति होगी । यदि आप कछवाह वश को विनाश से बचाना चाहते है ता उस पत्र को ल जान वाल का वापस लौटन की आज्ञा दीजिये । पत्रवाहक की खोज म कई लोग भेज गय पर तु वह उनका कही नजर नहीं आया । दोपहर के समय बहुत स सरदार जयसिंह क साथ भोजन क लिय एकत्र हुए । तब वृद्ध सरदार दीपसिंह ने आमेर नरेश स कहा कि आपन अत्यन्त ही अन्याय और अविचार का कार्य किया है, आपके इस अविचार स हम सभी को कष्ट भोगना पडगा ।

यथासमय उतनी ही शीघ्रता से पत्रवाहक अभयसिंह का उत्तर भी ल आया। उसन गर्व के साथ लिखा, हम आज्ञा देन का तथा हमार सेवक के साथ हमार विवाद मे हस्तक्षेप करन का आपको क्या अधिकार है ? यदि आपका नाम जयसिंह है, तो याद रखिय कि मेरा नाम भी अभयसिंह है ।"

वृद्ध साम त दीपसिंह न कहा, 'मैंन आपको पहल ही बता दिया था कि क्या होन वाला है। जो होना था वह हो गया, अब कोई उपाय नही है, शीघ्र ही अपन मित्रो को इकट्ठा करने की आज्ञा दीजिये ।" शीघ्र ही आमर क सभी सरदारो को अपने सनिक दस्ता के साथ आन के आदेश जारी किय गय । प्रत्येक कछवाहा को अस्त्र शस्त्र के साथ राजधानी के बाहर जयपुर की पचरगी पताका क नीचे एकत्र होने का कहा गया । बू दी के हाडाओ, करौली के यादवो, शाहपुरा के सीसोदियो खीची लोगो तथा जाटो से भी सहायता प्राप्त की गई । थोडे ही समय मे राजधानी के बाहर एक लाख सनिको का जमघट लग गया । तुर त ही इस विशाल सेना ने कूच किया और पडाव पर पडाव डालती हुई यह सेना मारवाड के सीमा त पर स्थित गगवाना नामक गाव तक जा पहुची । यहा पर पडाव डाल दिया गया और तमाम शिष्टाचार के साथ भयरहित सिंह (अभयसिंह) क आन की प्रतीक्षा करन लगे ।

जयसिंह को अधिक दिनो तक प्रतीक्षा नही करनी पडी । जयसिंह सेना सहित उससे युद्ध करन आया है, यह सुनत ही अभयसिंह क्रोधित सिंह के समान उ मत्त हो उठा । वह कुछ दिनो बाद बीकानर को जीत सकता था पर तु जयसिंह क आन का समाचार पाकर उसने व्यथित मन स घेराव दी का उठाकर जयसिंह से सामना करने के लिये चल पडा ।

वख्तसिंह भी सतर्क हो उठा। उसके षडय त्र से इस प्रकार का भयंकर काण्ड उपस्थित हो जायेगा, यह उसने स्वप्न मे भी नही सोचा था। उसन तो केवल अपन भाई के विरुद्ध पडौसी राजाओ की अनबन की अभिलाषा की थी जातीय महासमर की कल्पना नही की थी। अपन षडयन्त्र क प्रकट हो जान के भय से वह इतना चिंतित नही हुआ जितना मारवाड की प्रतिष्ठा को लकर जिस पर महान सकट आ पडा था। इसलिये वह शीघ्र ही अपन बडे भाई और अपने अधीश्वर अभयसिंह के पास जा पहुँचा और उस बीकानेर स घेरा न उठान को कहा। उसने कहा कि वह अकेला ही अपने सरदारो के साथ उस भगतिया[3] से युद्ध करू गा और ईश्वर की कृपा से उसे उचित शिक्षा दू गा। अभयसिंह इस बात से असहमत न था कि उसका भाई अपन आचरण की सजा पाये। इसलिय उस युद्ध की आज्ञा देकर भी उसके प्रति अपनी घृणा को शा त न कर पाये।

नगाडो की ध्वनि ने नागौर के शूरवीरो क इकटठा होन की सूचना दी। बख्तसिंह दिल्ली द्वार पर खडा हो गया। उसके पास ही पीतल के दो बडे पात्र रखे थे। एक म घुला हुआ अफीम था और दूसरे म कु कुम जल। आन वाले एक एक राजपूत का एक पात्र म अफीम देने लगा और दाहिने हाथ से कु कुम जल लकर उनके वक्षस्थल पर छिडकने लगा। इस प्रकार से आठ हजार राजपूत एकत्र हुये जि होने उसके साथ मरने का सकल्प किया। फिर भी उसने अत्यधिक शूरवीरो को ही चुनने का निश्चय किया। वह उन सभो को पास ही बाजरे के एक बडे खेत पर ल गया और उन्ह खडा करके कहा कवल वे ही लोग साथ चले जा जय अथवा मृत्यु के पहले वहा से लौटने की इच्छा न करते हो। ईश्वर के नाम पर आज्ञा देता हू कि जो वापस लौटने की इच्छा करते ह व यहा से ही वापस लौट जाय।' इसके बाद बख्तसिंह खेत म घोडा लेकर आगे बढ गया ताकि वापस जाने वाल चुपचाप चले जाय। बाद मे उसने देखा कि पाच हजार से कुछ अधिक सनिक उसके साथ चलने को तयार है, शेष सब लोग चुपचाप भाग गये थ। उ ह साथ लकर वह युद्ध के लिय आग बढा।

आमर नरेश अपनी एक लाख सेना के साथ गगवाना म राठौडो की प्रतीक्षा कर रहा था, ज्योही शत्रुपक्ष की सेना सामने आई, बख्तसिंह ने आक्रमण करने का आदेश दे दिया और उसके राठौड सनिक भालो और तलवारो से चारो तरफ मारकाट मचाने लग। उनक भयंकर प्रहार से आमर की सेना छिन्न भिन्न होने लगी। वख्तसिंह न अपन दाये बायें, आमन-सामने की शत्रु सेना को काट डाला और जब वह आमेर सना के अ तिम छोर की तरफ बढा तो उसन एक बार मुडकर पीछे की तरफ देखा। पाच हजार राठौडो म से केवल साठ सवार उसक आस पास रह गये थ। इसी समय नागौर सरदारो म प्रमुख गजसिंहपुरा के सरदार न बख्तसिंह स कहा पास ही सघन वन है। साहसी राठौड बख्तसिंह न कहा 'वह सामन क्या है ? हम जिस माग से आय हैं उस माग स होकर नही जायेंग।" तभी बख्तसिंह को दूर

पर पचरगी पताका उडती हुई दिखाई दी। वह ममभ गया कि ग्रामेर का राजा इसी स्थान पर उपस्थित है। उसने तत्काल अपन साठ साथियो का ग्रामेर नरेश क डरे पर ग्राक्रमण की ग्राज्ञा दी। बरतसिह को ग्राता हुग्रा देखकर दीपसिह न उसी क्षण जयसिह को रणक्षेत्र छोडने का सुझाव दिया, कुछ देर की ग्रानाकानी के बाद जयसिह युद्धक्षेत्र से भाग निकला। पर तु लोग यह न कह कि वह शत्रु को पीठ दिखाकर भागा है, ग्रत उसन उत्तर दिशा का माग पकडा ग्रौर कुण्डला नामक गाव मे जाकर विश्राम किया। भागते समय जयसिह ने कहा, "मने सत्रह युद्ध देखे है पर तु ग्राज क युद्ध के समान किसी भी युद्ध म तलवार के बल से किसी पक्ष का जय प्राप्त करते नही देखा।" इस प्रकार, जीवन मे ग्रतुल गौरव ग्रौर ग्रसीम यश प्राप्त करन वाला तथा परम ज्ञानी ग्रौर राजस्थान के शासको म सबसे ग्रधिक बुद्धिमान ग्रौर शक्तिशाली जयसिह मुटठीभर राठौडो के सामने भाग खडा हुग्रा। उसन यह कहावत चरिताथ कर दी कि एक राठौड दस कछवाहो के बराबर है।"

जयसिह के ग्रपने कवि भी ग्रपने शत्रुग्रो के प्रशसनीय वीरत्व का वणन करन के लोभ को त्याग नही सके। उन्होने इस ग्रवसर का वणन इस प्रकार किया है 'यह क्या काली के उस श्रवण भरव युद्ध का स्वर है? नही यह तो वीर श्रेष्ठ हनुमान के युद्ध की चीत्कार है? या यह ग्रन त की ग्रन त मुख से निकली हुई ध्वनि है! नही यह तो कपिलश्वर के रुद्र का स्वर है।" बरतसिह की उस महारमूर्ति को देखकर कवि ने लिखा है 'यह वीर क्या नसिह का ग्रवतार है? नही यह प्रचण्ड सूय की विदग्धकारी किरण है? नही यह तो त्रिनत्र के मध्य नयन से निकली हुई ग्रग्नि की राशि है? प्रलयकाल की भयकर ग्रग्नि के समान बख्तसिह की तलवार स जो ग्रग्नि की राशि निकली थी, ऐसी किसम सामथ्य थी कि जो उसको सहन कर सकता?'

बख्तसिह न भागती हुई ग्रामेर की सेना पर तीसरी बार प्रहार करन का उद्योग किया पर तु कवि करणीदान जो थोडे से बचे हुए राठौडा म से एक था, ने उस रोक दिया। जयपुर नरेश के भागने तक उसे यह पता नही था कि उसक कितने सनिक मारे गये है। पता चलत ही एक विचित्र दृश्य नजर ग्रान लगा। जो मनुष्य कुछ समय पहले युद्धभूमि के प्रत्येक क्षेत्र मे मृत्यु की भयकर मूर्ति को देखकर तनिक भी विचलित नही हुग्रा था, वह इस समय ग्रपन मनिको ग्रौर परिवारजनो को देख कर रोने लगा। उसे उनकी मृत्यु का गहरा ग्राघात लगा। कुछ समय बाद ग्रभयसिह भी सेना सहित ग्रा पहुँचा ग्रौर उसने प्रीतिपूण वचनो से ग्रपन भाई को सताप प्रदान किया। ग्राज के युद्ध म तुमन ग्रकेले ही विजय प्राप्त की है मैं तुम्हारी सहायता को न ग्रा सका।' भाई के वचनो स प्रसन्न हो बख्तसिह ने उसी समय प्रतिज्ञा की 'भागे हुए जयपुर नरश को मैं ग्रामेर के किले म स घसीट लाऊगा।'

जयसिंह ने यद्यपि अपने पुत्र की महगी कीमत चुकाई परन्तु वह अपने ध्येय-बीकानेर को मुक्ति दिलवाने म सफल रहा और उदयपुर के राणा ने दोनो पक्षो की शत्रुता को समाप्त कराने के लिये मध्यस्थता की । समझौता कराने में विशेष कठिनाई नही आई क्योकि दोनो ही पक्ष अपनी स्वार्थसिद्धि म सफल रहे यद्यपि आमेर नरेश को युद्ध मे पराजय का कलक उठाना पडा था ।

ऐसा कहा जाता है कि बख्तसिंह की कुलदेवी की मूर्ति आमेर नरेश के हाथ म पड गई थी युद्ध म प्राप्त एकमात्र इस मूर्ति को वह गर्व के साथ जयपुर ले आया और वहा जयपुर की एक देव प्रतिमा के साथ उसका धूमधाम से विवाह रचाया और इसके बाद अपनी शुभकामनाओ के साथ उस मूर्ति को बख्तसिंह के पास भिजवा दिया । यह राजपूत वीरो की सौजन्यतापूर्ण व्यवहार का एक उदाहरण है । इस युद्ध के पीछे मेवाड मारवाड और आमेर के तीनो राजाओ म मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये थे । उन्हे स्थायी बनाने के लिये मेवाड वश ने दोनो के साथ वैवाहिक सबध स्थापित किये । वहा विवाह के अवसर पर सभी अपने सामन्तो के साथ एकत्र हुये और एक साथ खाते पीते पुरानी शत्रुता को भुला बठे । ऐसे हैं राजपूत जिन्हे किसी भी नैतिक कसौटी के आधार पर नही आका जा सकता । मानव जाति के नैतिक इतिहास म उनका स्थान अलग ही है ।

उपरोक्त युद्ध ही अभयसिंह के शेष जीवन म स्मरण करने योग्य घटना हुई । सवत् 1806 (1750 ई०) म जोधपुर म उसकी मृत्यु हो गई । अभयसिंह उग्र तेजस्वी थे यद्यपि ऐसा कहा जा सकता है, परन्तु अधिक आलस्य के वशीभूत हो जाने से उनकी सम्पूर्ण उग्रता एक भ्रांति से क्षीण हो गई थी । उसके स्वभाव के सम्बन्ध म अनेक बातें प्रचलित हैं । भाट कवि कहता है "जब अजीतसिंह चौहानी से विवाह करने गये तो मार्ग म उसे दो सिंह मिले—एक सोता हुआ और दूसरा जागता हुआ । इस शगुन का यह अर्थ लगाया गया कि चौहानी से अजीत के दो पुत्र होग—एक आलसी और दूसरा पराक्रमी । यदि शगुन विज्ञापन यह भी कहते कि दोनो पुत्र पिता के रक्त से अपने हाथो को कलकित करेंगे तो वह अवश्य ही मारवाड का उद्धार कर सकते थे, क्योकि मारवाड का विनाश उसी कुकृत्य से शुरू हुआ था ।

राठौड लोग एक सैनिक के रूप म कछवाहो को साहसहीन मानकर उनसे घृणा करते थे, उनके राजा के प्रति अभयसिंह के मन म भी कम घृणा न थी । यद्यपि वह आमेर नरेश का ससुर भी था फिर भी शिष्ट भाषा म उस पर व्यंग्य करने से नही चूकता था । एक बार उसने उसी की उपस्थिति म उससे कहा आप कुशवा कहलाते हैं कुश की आघात जैसा तीक्ष्ण और कठोर होता है आपकी तलवार का आघात भी उसी प्रकार का है । आमेर नरेश अत्यधिक क्रोधित हो उठा परन्तु

उत्तर देने में असमर्थ हो उसने अभयसिंह से बदला लेने के लिए षड्यंत्र का जाल फैलाया। जबकि जयसिंह ने यूरोप के विज्ञानों के साथ प्राचीन भारत के विज्ञानों का मिलन करके अपने यश को बढ़ाया तो अभयसिंह की महत्वाकांक्षा राजवाड़े का सब श्रेष्ठ तलवार का धनी कहलाने की रही थी। आमेर के वैज्ञानिक राजा ने दिल्ली साम्राज्य के कोषाध्यक्ष कृपाराम की सेवाएं प्राप्त कर ली। वह दांव खेलने में विशेष चतुर था। कृपाराम जिस समय बादशाह के साथ शतरंज खेला करते थे उस समय अनेक राजा महाराजा खड़े रहते थे। जयपुर नरेश से साँठ गाँठ वाले कृपाराम ने एक बार अभयसिंह की उपस्थिति में उसके बाहुबल की प्रशंसा करनी शुरू कर दी। इस पर बादशाह ने अभयसिंह से कहा 'राजेश्वर मैंने सुना है कि आप तलवार चलाने में विशेष चतुर हैं।' अभय ने उसी समय उत्तर दिया 'हां हुजूर! एक दिन मैं आपको अपनी तलवार का पराक्रम दिखाऊंगा।" एक बड़ा तेजस्वी बलवान भैंसा मैदान में लाया गया। सारा दरबार राठौड़ के पराक्रम को देखने के लिए उमड़ पड़ा। अभयसिंह ने बादशाह से कुछ देर विश्राम करने की अनुमति मांगी। पास ही एक कक्ष में जाकर उसने दो गिलास भरकर अफीम जल का सेवन किया। वह भली भांति समझ गया कि जयसिंह ने मंत्री से मिल कर मुझे विपत्ति में फंसाने का कुचक्र रचा है। जब वह लौटा तो क्रोध के कारण उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उसने बलवान भैंसे के दोनों सींगों को ठोर में पकड़ कर उसे उस स्थान की तरफ खींच कर ले जाने लगा जहां जयसिंह बैठा हुआ था। सामने आती हुई विपत्ति को देखकर जयसिंह घबरा उठा और उसने बादशाह से कहा कि अभयसिंह से कहिए कि वह भैंसे को अपने दामाद की तरफ न लाये। अभयसिंह ने भैंसे की गर्दन पर इस जोर से जोरदार प्रहार किया कि उसका सिर कट कर जयसिंह के घुटने पर पड़ा जिससे वह लुढ़क कर पीछे की ओर जा गिरा। सभी काम ठीक हो गया, जैसा कि कवि ने कहा कि बादशाह ने फिर कभी अभयसिंह से दूसरे भैंसे को मारने को नहीं कहा।'

अभयसिंह के समय में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। तब बादशाह ने तैमूर के डगमगाते हुए सिंहासन की रक्षा करने के लिए राजपूत राजाओं को अपनी सेनाओं सहित आने के फरमान भेजे। परन्तु उनके फरमान का आदर नहीं किया गया। करनाल के युद्ध में एक भी प्रतिष्ठित राजपूत राजा उसकी सहायता को नहीं गया। दिल्ली पर नादिरशाह ने अधिकार कर लिया, मुहम्मदशाह को सिंहासन से उतार दिया गया और राजधानी को लूटा गया तथा हजारों को मौत के घाट उतार दिया गया। परन्तु किसी भी राजपूत राजा ने इनके लिए [illegible] का एक म्यान भी नहीं निकाला। मुगलों के प्रति उनकी घृणा का यह एक [illegible] उदाहरण है। उन्होंने अपने ही हाथों से औरंगजेब के इन कठपुतली बादशाहों को अपना दास बना [illegible] में कर डाला था।

राजपूताना के दुर्भाग्यवश, उसके राजाओं के पतन के कारण वे मुगल साम्राज्य की इस दयनीय स्थिति का कोई लाभ न उठा पाये।

सवत् 1780[4] म अजीत की हत्या के बाद से जो खूनी दृश्य उपस्थित हुए उनसे मारवाड के इतिहास को कुयश का भागी होना पडा। फिर भी, इस अवधि म शौय की गाथा को पुनर्जीवित करन के प्रयास किय गये। तो भी इस नतिक सत्य को तो मानना ही पडेगा कि सभ्यता की प्रत्यक अवस्था म ऐसे अपराधो का अन्त मे दण्ड भुगतना पडा है। अभयसिह के महापाप के फलस्वरूप मारवाड के चारो ओर भयकर आत्मविग्रह की अग्नि प्रज्वलित हो गई इसी ने राठौड जाति का सवनाश किया।

सन्दभ

1 विद्याधर बगाली ब्राह्मण थ। वह अनक शास्त्रो क पडित तथा ज्योतिषशास्त्र क विद्वान थे। उसी क सुझावानुसार जयसिह न मौजूदा जयपुर नगर का निर्माण करवाया था।

2 राजस्थान मे लडकी तथा लडक क ससुराल वाल एक दूसर को अपना सगा कहत हैं।

3 साधु सन्यासी को भगत कहा जाता है। जयसिह धार्मिक और साधु व्यक्ति थ। इसीलिये वख्तसिह ने उसके लिय "भगतिया" शब्द का प्रयोग किया।

4 कनल टॉड न अजीत की मृत्यु कही सवत् 1780 और कही 1781 मे लिखी है।

अध्याय 42

रामसिंह और बख्तसिंह

उस संकटपूर्ण समय में रामसिंह उत्तराधिकारी बना। इस दिन के ठीक बीस साल पहले सिरोही की राजकन्या[1] ने अभयसिंह के औरस से रामसिंह को जन्म देकर अपने पति के वंश को समाप्त होने से बचा लिया था। सिरोही का देवड़ा वंश, चौहानों की ही एक शाखा है और चौहान अग्निवंशी है। अग्निवंशी कन्या और उग्र राठौड़ वंशी की संतति रामसिंह को अपने माता पिता के वंशो की चारित्रिक विशेषताएं आरम्भ से ही विरासत में मिली थी और यौवनकाल में वह महातेजस्वी और उग्र स्वभाव का हो गया। राज्याभिषेक के साथ ही उसने अपनी जन्मजात विशेषताओं का परिचय देना शुरू कर दिया। राज्याभिषेक के अवसर पर उसके चाचा बख्तसिंह की अनुपस्थिति का कोई कारण कवि ने नहीं बताया जबकि उस अवसर पर मारू की प्रत्येक जाति के सरदारों ने उपस्थित होकर उसके राजत्व के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया था। अतिनिकट आत्मीय और पद में सबसे अग्रणी होने के नाते अपने राजा के मस्तक पर सबसे पहले टीका करना उसका कर्त्तव्य था। इस अवसर पर उसने अपनी धात्री को प्रतिनिधिस्वरूप भेज दिया। रजवाड़ों में धात्री का पद कम महत्व पूर्ण नहीं समझा जाता है। बख्तसिंह ने अपने भतीजे को बालक जान कर ही धात्री को भेजा था या नहीं कवि ने इस बारे में कुछ नहीं लिखा। परन्तु रामसिंह ने उसका माता के समान सम्मान न कर अत्यन्त निन्दनीय आचरण करके अपनी विशेष उग्रता का परिचय दिया। रामसिंह ने उस वृद्धा को देखकर कहा, "चाचा ने मुझे बन्दर जाना है। इसी कारण इस डाकिनी को भेज दिया है।" उसने तत्काल जालोर देश लौटा देने के लिये अपने चाचा के पास एक दूत भेज दिया। क्रोध शान्त होने के पहले ही सेना सजा कर डेरे डालने की आज्ञा देकर अपने चाचा को उचित शिक्षा देकर अपने पद और मर्यादा की रक्षा करने के लिये वह तैयार हो गया। राज्य के सलाहकारों की बुद्धिमत्तापूर्ण गम्भीर बात को न मानकर उसने राज्य के अत्यन्त नीची श्रेणी के कर्मचारी अमिया नकारची में विश्वास व्यक्त किया और उसी की सलाह से कार्य प्रारम्भ किया। यह व्यक्ति रामसिंह की भांति ही क्रोधी स्वभाव का था। चांपावतों के वृद्ध सरदार आऊवा के कुशाल सिंह ने जब पागलपन के इस कार्य के बारे में सुना तो वह रामसिंह को समझाने के लिये तुरन्त राजमहल

गया और अपने आसन पर बैठ पाता उससे पहल ही रामसिह न क्रोधित भाव से कहा आपके इस विकट कुत्सित मुख को जितना न देखे उतना ही अच्छा है।" यह सुनते ही कुशालसिंह ने क्रोधित होकर अपनी ढाल को जाजम पर उल्टी रखते हुए कहा "युवक राजा! इस ढाल को आप जिस भाति उल्टा गिरा हुआ देखते है उसी भाति राठौड वख्तसिंह समूचे मारवाड को उल्टा करने की सामर्थ्य रखता है।" लाल-लाल नेत्र करके यह शब्द कहते हुए कुशालसिंह राजा की अवना करते हुए वहा से निकल आया और अपने समस्त सनिको के साथ मुडियार चला गया। मुडियार राठौडो के राजकवि का निवास स्थान था। उसके पूवज राव सीहाजी के साथ ही कन्नौज से आये थे।[2] राजकवि का मारवाड मे कितना सम्मान था, इसके प्रमाण म हम इतना ही कह सकते है कि उसकी जागीर की वार्षिक आमदनी मारवाड के प्रमुख सरदारो की आमदनी एक लाख रुपये थी और उ ही के समान उसकी पद मर्यादा थी।

राजनीतिज्ञ वख्ता न जब सुना कि मारवाड के प्रमुख सरदार उसके राज्य की सीमा तक आ पहुँचे हैं तो वह आधी रात म ही नागौर से उनके स्वागत के लिए चल पडा। वृद्ध साम त सोया हुआ था। वख्तसिंह उसे न जगाकर उसी की शय्या के एक ओर लेट गया। सुबह होते ही कुशालसिंह ने नेत्र मलते हुये सेवक को हुक्का लाने की आज्ञा दी सेवक ने सकेत से बताया कि शय्या के ऊपर वख्तसिंह सो रहा है। कुशालसिंह तुर त ही चौक ना हो उठा पर तु तब तक वख्तसिंह भी जाग गया था। कुशालसिंह ने उसका आदर सत्कार करत हुए कहा, 'आज से यह मस्तक आपका हुआ।" सयोगवश मारवाड का राजकवि भी उन दोनो की बातचीत के समय वहा उपस्थित था। वख्तसिंह ने राजकवि का आऊवा जाकर साम त के परिवार को नागौर लाने की आज्ञा दी। कवि उसी समय जाने को तैयार हो गया और कहा कि आज से मैन भी जोधपुर के द्वार से विदा ली। इस पर वख्तसिंह ने कहा कि आप लोग जोधपुर और नागौर मे जरा भी भेद न समझिये। जब तक एक टुकडा बाजरे की रोटी का भी मिलेगा तब तक हम उसको बाट कर खायेंगे।

रामसिंह ने अपन चाचा को सना एकत्र करन का अधिक समय नही दिया और पहला मुकाबला खेरली नामक स्थान पर हुआ। इसक बाद लगातार छ स्थानो पर युद्ध लडे गये। आखिरी युद्ध मडता के मदान म लूनावास नामक स्थान पर लडा गया। दोनो पक्षो के अनेक लोग मारे गये। बार बार परास्त होकर रामसिंह को प्राण बचाने के लिये भागना पडा। इसक बाद बख्ता जोधपुर की तरफ बढा और उस पर अधिकार कर लिया। बगडी के जतावत साम त जिसके पूवज प्रत्येक नवीन राजा के मस्तक पर राजतिलक करते आये थ न वख्तसिंह को सिंहासन पर बठाकर उसके मस्तक पर राजतिलक किया। वख्तसिंह न बगडी साम तवश का राजटीका दन का अधिकारी कह कर उस मारवाड का मार किवाड" की उपाधि स विभूषित किया।

राजसिंहासन को अधिकृत कर तथा राठौड वश की अधिकाश शाखाग्रो का समथन प्राप्त कर वह अपने राज्याधिकार के बारे म निश्चित हो गये और उन्हे विश्वास हो गया कि उसका भतीजा अब कभी भी अपने उत्तराधिकार को पुन प्राप्त न कर सकेगा। यद्यपि बख्तसिंह ने तलवार के बल पर सिंहासन प्राप्त किया था और राठौड लोग भी उसके समथक थे और वह दृढता के साथ अपने सिंहासन की सुरक्षा करने मे भी समथ था, फिर भी उसने अन्य सामर्थ्यवान मनुष्यो को भी अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया। राज्य के सामरिक प्रधान शासन विभाग के प्रधान और प्रधान कवि ने भी उसके पक्ष का अवलम्बन किया। अन्य अधिकारी और कमचारी भी उसके अनुकूल हो गय थे। परन्तु राजदरबार म एकमात्र प्रधान कुल पुरोहित जगू ने रामसिंह के अनेक दोषो के उपरान्त भी राजभक्ति को अपना कत्तव्य मानकर बख्तसिंह का समथन नही किया। रामसिंह तो भागकर जयपुर नरेश के आश्रय मे चला गया परन्तु उसको उसका राज्य वापस दिलवाने का सकल्प कर जगू मराठो की सहायता प्राप्त करने के लिये दक्षिण गया। बख्तसिंह ने मारवाड के सवनाश को रोकने के लिए पुरोहित जगू को अपने अनुकूल बनाने के लिये स्वय अपने हाथ से पत्र लिख कर भेजा जिसका साराश इस प्रकार है—'हे मधुकर! जिस फूल के सौरभ पर आप मुग्ध हो रहे हैं, वह उस फूल का पेड प्रबल आंधी के आने से छिन्न भिन्न हो गया है, उस गुलाब के वृक्ष पर अब एक पत्ता भी नही रहा, फिर क्या वृक्ष काटो से बधा रहे।"

उत्तर भी अपनी विशेषता से युक्त था। "सूखे हुए गुलाब के वृक्ष पर भौंरा केवल इसी आशा से बैठा है कि नव बसन्त ऋतु के आगमन से नवीन खिले हुए फूलो की सुगधि से मन को पुन प्रसन्न करूगा।' बख्ता ने उसकी राजभक्ति को देख कर उसका सम्मान ही किया। वह उसके आचरण से तनिक भी दुखी नही हुआ।

बख्तसिंह सदान दचेता थे, असीम साहसिकता और पुण्य प्रवृत्ति ने मिलकर उसे राजपूतो का एक आदशस्वरूप बना दिया। इन गुणो के अलावा वह शात और बलिष्ठ शरीर का व्यक्ति था और अपने देश की सभी विद्याओ का जानकार था, विशेषकर उसमे काव्य रचना की क्षमता भी काफी अच्छी थी। यदि उसने पितृ हत्या का अपराध न किया होता तो रजवाडो म जन्म लेने वाले सभी राजाग्रो म सवश्रेष्ठ होता और उसका नाम भी अमर हो जाता। उसके इन गुणो ने न केवल अपने देश की सभी जातियो की प्रशसा अर्जित की थी अपितु रजवाडे की अन्य सब जातियाँ भी उसके गुणो पर मोहित थी। जिस समय सिंहासनच्युत रामसिंह का दूत मराठा सरदार सिंधिया से सहायता लेने महाराष्ट्र पहुचा और सिंधिया उसकी सहायता के लिये चला तो बख्तसिंह ने अपने प्रीतिमय आचरण और सतोषदायक व्यवहार तथा बल विक्रम से एक विशाल सेना खडी कर ली। मराठे उस सेना म रजवाडे के श्रेष्ठतम वीरो को एक साथ देखकर दहल गये। मरुभूमि की समस्त

शक्ति, सीहाजी के वशजो की प्रत्येक शाखा के राठोड माम तो के माथ बग्तसिह मिर्धिया से युद्ध करने के लिय चल पडा । मराठो का दस्यु दल केवल अपन बाहुवल को प्रकाश करके विजय तथा गौरव अर्जित करने के लिये ही नहीं आया था अपितु मारवाड की धन सम्पत्ति को लूटने का आकर्षण उ ह यहा ले आया था । पर तु बख्तसिह की म य शक्ति को देख कर वे समझ गये कि दोना म से एक भी उद्देश्य पूरा होने वाला नही है तो उ होने राजपूता की तलवारा के साथ अपन बरछा की बल परीक्षा दिखान से मना कर दिया ।

तलवार जो काम सिद्ध न कर सकी विष ने कर दिखाया । अजमेर के निकट जिस माग से मारवाड म सरलता स प्रवेश किया जा सकता था, शत्रुओं को उस माग से न आने देने की दृष्टि से बख्तसिह न सेना सहित वहीं पडाव डालकर शत्रु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा । यहा पर आमेर नरेश माधोसिह की राठौडी रानी [3] अपने कुटुम्बी से मिलने तथा बधाई देने के लिये आयी । उसे अपने भतीजे रामसिह के शत्रु को इस ससार से उठा देने का दायित्व सौपा गया था । रानी ने बख्ता को विषमय वस्त्र प्रदान किये जि हे पहनने के बाद बख्ता की मृत्यु हो गई । सवत् 1809 (1753 ई) म बख्तसिह स्वग सिधार गया । वह अपन पीछे उत्तराधिकार का विवाद छोड गया और उसके पुत्र विजयसिह को भयकर गृह युद्ध का सामना करना पडा ।

अपन शासनकाल के तीन वर्षों के समय मे ही बख्तसिह को मारवाड के दुग समूहो को दृढ और सुसज्जित करने का अवकाश और आवश्यक साधन मिल गये । उसने राजधानी की दुगबन्दी का काय पूरा करवाया और अहमदाबाद की लूट म प्राप्त धन सम्पत्ति से जोधा के महल को सजाया । मुसलमानो ने मारवाड के राठौडा पर जो अकथनीय अत्याचार किये थे, बख्तसिह न उ ह प्रत्युत्तर म उचित फल दिया । उसने अपन नागौर राज्य मे उनकी मस्जिदो को भूमिसात करके उन स्थाना पर पूर्व-काल के म दिरा को पुन प्रतिष्ठित किया । यह बख्ता ही था जिसने यह आज्ञा प्रसारित करवाई थी कि उसके राज्य म जो कोई ऊचे स्वर से खुदा को पुकारेगा उसको प्राणदण्ड दिया जायेगा । उसके इस आदेश का मारवाड मे आज तक पालन किया जा रहा है । यदि बख्तसिह कुछ वर्षो तक और जीवित रहा होता तो वह अपन समय मे उठन वाल राजनीतिक तूफान, जिसन दिल्ली के उग्र तातारा के हाथ से, कृष्णा नदी के किनारे बसन वाले कृषको क हाथ म सत्ता स्थानान्तरित कर दी थी, को अवश्य रोक देता और राजपूत जाति पहले के समान ही समस्त भारत म अपनी ख्याति को पुन प्राप्त कर लेती । अपनी स्वाधीनता को नष्ट करन वाली शक्ति का विनाश सभी राजपूत जातिया की मनोकामना थी पर तु उन देशीय राजाओ न अनेक प्रकार के राजनैतिक पापा के कारण उस अभिलाषित अवसर को पाकर भी खो दिया और वे अपन मनोरथ को सिद्ध न कर सके ।

पाठकगण इस स्थान पर एक अपराध के पीछे दूसरे अपराध, एक हत्या का बदला लेने के लिये दूसरी हत्या को देखकर यह न विचारें कि राजपूत जाति इसी प्रकार से जीवन को नाश कर अपने वंश को कलंकित करने का अभ्यास करती रही है। पाठकों को एक बार पाश्चात्य इतिहास की ओर दृष्टि उठाकर भी देखना चाहिये। ग्यारहवीं सदी में जब यवनों ने जयचन्द का सिंहासन छीना था और सीहाजी ने मरुभूमि में राठौड़ों के शासन की प्रतिष्ठा की थी उस समय यूरोप में असभ्यता और अंधकार का पर्दा उठ रहा था और उसी समय में राजपूत लोग विजातियों के आक्रमण से शक्तिहीन हो अपने प्रताप और स्वाधीनता को खो बैठे थे। यूरोप के वीरकुलीन उपाधि वाले मनुष्य जिन गुणों से विभूषित हो अपने साहस और बल विक्रम से प्रशंसा के पात्र बने थे राजपूत वीर भी उन सभी गुणों से विभूषित ही नहीं थे अपितु मानसिक उत्कर्षता की दृष्टि से उनसे कहीं आगे बढ़े हुए थे। ऐसा कोई समय न रहा जब राजपूत राजा अपने नाम के हस्ताक्षर न कर सकते हों अपितु वे सभी सुशिक्षित थे और अपने हाथ से राजनैतिक पत्र तथा मन्तव्य लिखा करते थे और आवश्यक होने पर कविता भी बना लेते थे। तब रजवाड़ों के हत्याकाण्डों का उल्लेख करके यूरोप के मध्ययुगीन अगणित हत्याकाण्ड शोचनीय नहीं हो सकते?

पाठक यह मानकर न चलें कि बख्तसिंह ने जो अपराध किया था उस सम्बन्ध में चारण कवि ने किसी प्रकार का मन्तव्य प्रकाशित नहीं किया। रजवाड़े के राजाओं से लेकर दीन दरिद्री किसान तक कवि की लेखनी से निकले हुए "विष विसर"[3] को आज तक पढ़ा करते हैं। बख्तसिंह ने अपने पिता को मार डाला था इस विषय में आज तक एक प्रवाद प्रचलित है। एक समय अभयसिंह और आमेर नरेश जयसिंह एक साथ पवित्र पुष्कर तीर्थ जा रहे थे। तीसरे पहर के समय दोनों राजा अपने अपने सरदारों के साथ बैठे हुए थे। इसी समय दोनों राजाओं ने कवि करणीदान को तत्काल नई कविता बनाकर सुनाने को कहा। कवि ने तुरन्त ही दोनों राजाओं की आज्ञा से निर्भय हो यह कविता पढ़ी—

जोधपुरा आमेरिया दोनों थाप उथाप।
कूरम[5] मारयो डीकरो कमध्वज[6] मारयो बाप॥

अर्थात् जोधपुर और आमेर के दोनों ही राजा सिंहासन पर बैठे व्यक्ति को सिंहासनच्युत करने में सक्षम हैं। कूर्मा ने अपने पुत्र की हत्या की और कमध्वज ने अपने पिता को मारा।

सन्दर्भ

1 कुछ के अनुसार रामसिंह का जन्म लदाने के ठाकुर नरूका केसरीसिंह की बेटी से हुआ था।

2 यह गलत लिखा है । मु डियार के बारहठ कन्नौज से ग्राने वाले कवि की स तान नही थ । कन्नौज से कोई कवि नही ग्राया था । सीहा की चौथी पीढी मे चादा नामक एक भाटी को बलात पोलपात बारहठ बना दिया गया ग्रौर उसका विवाह चारणो मे करा दिया । उसी क वश म मु डियार के बारहठ जोधपुर के पोलपात है ।

3 टाड न "मारवाड मे जाने का वृत्ता त"—इस ग्रध्याय म लिखा है कि ईश्वरीसिह की रानी न बख्तसिह को विषमय वस्त्र दिये थे । वहा व लिखते हैं कि माधोसिह की पत्नी न यह काम किया था । वरतसिह की मृत्यु भादो वदि तरस सवत् 1809 म हुई थी । उस समय माधोसिह ही जयपुर के सिहासन पर था ।

4 मारवाड म कविता के दा भेद हैं—सर ग्रौर विसर । सर प्रशसामयी कविता की सना है ग्रौर विसर नि दापूरित कविता की ।

5 यहा कुश्य से कूर्मा हुग्रा । जयपुर के लिये सकेत है । जिसन ग्रपने पुत्र शिवसिह की हत्या की थी ।

6 कमध्वज कन्नौज क राजा की प्राचीन उपाधि है । यहा ग्रभयसिह की तरफ इशारा किया गया है जिसने ग्रपने पिता की हत्या की थी ।

अध्याय 43

राजा विजयसिह

बीस वर्षीय विजयसिह, अपने पिता बख्ता का उत्तराधिकारी बना। उसके अभिषेक को न केवल मुगल बादशाह से ही मान्यता मिली, अपितु आस पास के सभी राज्यो से भी मिली। उसका अभिषेक सीमा त पर बसे मारोठ नगर मे सम्पन्न हुआ। वहा से मेडता आकर उसने कुछ दिन पिता के शोक मे व्यतीत किये। यही पर उसके परिवार की स्वत त्र शाखाओ—बीकानेर, किशनगढ और रूपनगर से शोक सदेश और बधाई प्राप्त हुई। यहा से वह राजधानी आया और अपने पिता का श्राद्ध किया और अभिषेक के उपलक्ष मे सभी को सतुष्ट करने योग्य दान तथा उपहार प्रदान किये।

अपने चाचा की मृत्यु ने भूतपूर्व राजा रामसिह को अपने ज मजात अधिकार पुन प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया और आमेर के राजा के साथ मिलकर उसने मराठो के साथ एक समझौता सम्पन्न किया और मराठा नेताओ ने समझौते का पालन करने का वचन दिया।[1] दक्खिनी लोग कोटा होते हुए जयपुर पहुचे जहा रामसिह अपने स्वय के सनिको तथा जयपुर के सनिक दस्तो के साथ उनसे जा मिला और वहा से यह सयुक्त सेना अपने ध्येय की पूर्ति—विजयसिह को सिंहासनच्युत करने के लिये अपनी मजिल की ओर बढी।

विजयसिह आने वाले तूफान का सामना करने के लिये तयार था और वह अपने देश के शूरमाओ को लेकर मेडता के मदान की तरफ बढा जहा अपने देश मे बाह्य हस्तक्षेप को पीछे धकेलने तथा मरुभूमि के सिंहासन के लिये प्रतिस्पर्धी दावो का निर्णय करने के लिये मराठो की प्रतीक्षा करने लगा। कवियो ने रणभूमि मे उपस्थित वीरो विशेषकर चापावत लोगो के यश का भली भाति गान किया है। पुष्कर से, जहा सयुक्त सेना ने डेरा डाला था, रामसिह ने विजयसिह को कहला भेजा कि 'मारू की गद्दी सौंप दो।' इस सभी के सामने सुनाया गया और चारो तरफ से उत्तर आया युद्ध' युद्ध"। 'यह कौन आप्पा[2] है जो हमे भय दिखाता है? हजार वज्रपात होने पर भी हम अपनी रक्षा करेंगे।' उत्तेजित किये जाने पर राजपूतो का यह उत्तर था और इसके अनुकूल ही अपना पराक्रम प्रदर्शित किया। शत्रु

सेना की सन्या राठौडो से कही अधिक थी, पर तु कछवाहा का तो उ हे तनिक भी भय न था, पर तु मेडत दक्खिनिया से विजय प्राप्त करने के लिये उ ह कई बातें सोचनी पडी ।

इस युद्ध के ममय दो आकस्मिक घटनाए घटित हुइ और प्रत्येक ने निर्णायक समय पर विजयसिह को विजय से दूर रखन म सहयाग दिया । राठौड सेना का एक दल शत्रुपक्ष क व्यूह को छिन्न भिन्न करके वापस लौट रहा था, राठौडा ने भ्रमवश उसे शत्रु सेना का समझकर उसे तीरो और गोलो की वर्षा करके नष्ट कर दिया । दूसरी दुघटना भी इसी प्रकार की थी । सिंधिया इस समय युद्धक्षेत्र से पलायन करन की तयारी कर ही रहा था, कि कुसस्कार के वशीभूत हो राठौडगण छिन्न भिन्न हो गये और सिंधिया को विजय मिल गई ।

किशनगढ के राजा न अपने कुटुम्बी रूपनगर के राजा को उसके राज्य से निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया । दोनो ही मारवाड की कनिष्ठ शाखायें थी पर तु सीधे बादशाही सनद् से शासन करते थे । वृद्धावस्था के कारण रूपनगर के राजा साम तसिह ने राज्य छिन जान के बाद वराग्य ले लिया और वृन्दावन म जाकर रहने लगे । पर-तु उसके पुत्र ने राज्य का उद्धार करने के लिये उसे बार बार उत्तेजित किया । पर तु साम तसिह पर कोई प्रभाव न पडा । उल्टे उसने अपने पुत्र को भी राज्य प्राप्ति की आशा छोड देने की सलाह दी । पिता से निराश हाकर वह सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगा । इसी समय रामसिह और विजयसिह म गृह युद्ध शुरू हुआ और उसने रामसिह के साथ मिलकर मराठो की सहायता स अपना राज्य प्राप्त करने का निश्चय किया । मराठा ने रामसिह की भाति उसको भी अपना पतृक राज्य दिलवान का आश्वासन दिया । जिस समय मेडता के युद्धक्षेत्र मे विजयसिह की सेना न मराठा को छिन्न भिन्न कर दिया और जयप्पा सिंधिया भागन की तयारी कर रहा था उस समय जयप्पा न उस युवक को बुलाकर कहा कि "रामसिह के भाग्य क साथ आपका भाग्य जुडा हुआ था । उसका भाग्य अत्य त मद देख रहा हू । इस कारण अब हम यहा स भागन के पहल आपका और क्या उपकार कर सकते हैं । ' युवक निराश हो गया, पर-तु अचानक ही उसे एक उपाय सूझा और उसने अपनी ही जाति के एक दूत को कुछ समझाकर विजयसिह के पक्ष की तरफ भेज दिया । जिस स्थान पर राठौड सेना सबसे अधिक पराक्रम के साथ युद्ध कर रही थी वहा जाकर दूत ने अपन स्वजाति वालो को कहा अब क्या व्यथ ही युद्ध कर रहे हो विजयसिह शत्रुओ की गोली से उस तरफ मारे गये हैं । ' यद्यपि राजपूत लोग इस प्रकार की चालो से वाकिफ थ पर तु दूत को अपन ही पक्ष का समझकर बिना सत्य की खोज किये, युद्ध ब द कर दिया और भागन लगे । जबकि युद्धक्षेत्र के दूसरे भाग म विजयसिह अपूव पराक्रम के साथ लड रहा था और उसे अपनी विजय म पूरा विश्वास था । तभी उसन देखा कि उसके सरदार चारा तरफ भाग रहे हैं, यहा

तक कि उसके आस पास भी कोई सरदार न रहा। इससे वह महान् विपत्ति म फस गया, परन्तु एक किसान की सहायता से किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भागा।

इस युद्ध को खोने और राठौडो की शक्ति के कमजोर पड जाने से एक के बाद एक दुर्गों का पतन होने लगा। रामसिंह का पक्ष सबल दिखलाई पडने लगा और मराठा लोग मरुदेश म फैलने लगे जबकि एक जघन्य कृत्य—जयप्पा की हत्या[3] ने उनकी प्रगति को रोक दिया। जयप्पा के मारे जाने से वे लोग रामसिंह के स्वार्थ को छोडकर उस हत्याकाण्ड का बदला लेने और अपने स्वार्थ को पूरा करने म जुट गये। काफी मारकाट और वादानुवाद के बाद जयप्पा की हत्या के दण्डस्वरूप म विजयसिंह ने अजमेर का इलाका मराठो को सौंप कर तथा उन्हें प्रवार्षिक कर के रूप म एक निश्चित धनराशि देने का वायदा कर उन्हे सतुष्ट किया। समझौता होते ही मराठो ने रामसिंह का साथ छोड दिया और अजमेर म अपनी सत्ता को सुदृढ बनाने के प्रयास म लग गये।

मारवाड के मुकुट से अजमेर रूपी मणि के छिन जाने से मारवाड की स्वाधीनता असुरक्षित हो गई। अजीत की हत्या के बाद से ही मारवाड ने प्राय एक शताब्दी तक आत्मविग्रह, विजातीय आक्रमण और अनेक प्रकार के अत्याचारो को अत्यन्त कष्ट से झेला था। विपक्ष के कवियो ने इस युद्ध के परिणाम के बारे में कहा है, "याद घने दिन आवसी, आपाचाला हल। भागा तीना नृपति, मात सजाना मेल।"

अर्थात् समस्त धन, रत्न और युद्ध के अस्त्रो को छोडकर तीनो नृपति (विजयसिंह, बीकानेर नरेश और किशनगढ नरेश) जयप्पा के भय से भयभीत होकर भाग गये यह बात हमेशा याद आती रहेगी।

रूपनगर के युवा उत्तराधिकारी की चाल से मराठो ने सामन्तो के साथ युद्ध जीत लिया। अपनी करनी से आनन्द म मग्न उसने जयप्पा के निकट जाकर कहा, "आपने देखा कि मैंने इस स्थान पर खडे होकर अपने हाथ पर सरसो के बीज बोए थे।" जयप्पा ने उसकी बात सुन कर उसे तुरन्त ही रूपनगर के सिंहासन पर बैठाने की बात कही। परन्तु उसने कहा कि पहले हमारे प्रभु रामसिंह को जोधपुर के सिंहासन पर बैठा दीजिये फिर हमारी आशा सरलता से पूरी हो जायेगी। परन्तु जब जयप्पा मारा गया तो मराठो ने अपने शिविर म उपस्थित प्रत्येक राजपूत पर सदेह प्रकट करते हुये उन पर आक्रमण किया। रूपनगर का वह उत्तराधिकारी भी उनके आक्रमण से बच न सका। यहा तक कि मराठो के शिविर म उपस्थित मेवाड राणा का प्रतिष्ठित दूत कुवरसिंह जो विजयसिंह की तरफ से संधि वार्ता के लिये प्रयास कर रहा था, वह भी मारा गया। मराठो ने जयप्पा की मृत्यु पर उसी

गाव ताऊसर[4] मे एक स्मृति मंदिर बनवाया। मराठे और राजपूत—दोनों ही उस मंदिर के प्रति समान भाव से सम्मान व्यक्त करते हैं।

अपने राज्याधिकार को प्राप्त करने के लिये रामसिंह ने अपने जीवन में जो बाईस युद्ध लडे थे उनमे यह अंतिम युद्ध था। बाद के दुर्दिनों ने उसके स्वभाव की उग्रता को काफी कम कर दिया और वह अपनी पिछली भूलों पर पश्चाताप करने लगा था, यद्यपि अब काफी देर हो चुकी थी। सवत् 1773 में जयपुर में उसकी मृत्यु हो गई। रामसिंह मे गुणों का अभाव न था परन्तु एकमात्र अपने अत्यंत उग्र स्वभाव के कारण वह मारवाड के सामंतों में अप्रिय पात्र हो गया था। यह भी स्वीकार करना होगा कि रामसिंह के अभिषेक के समय से ही मारवाड के भाग्य मे घोर काल रात्रि दिखाई दी और उसी ने मराठों को मारवाड मे लाकर मारवाड के विनाश का बीज बोया था।

रामसिंह की मृत्यु से मारवाड अथवा उसके राजा को कोई विशेष लाभ न मिला। मराठे अजमेर पर अधिकार करके मारवाड से चौथ वसूल करने लगे। रजवाड़े के प्रत्येक राज्य को लूट खसोट कर धन सग्रह करने लगे। उन्होंने अपने स्वार्थ साधन के लिये राजपूतों में विवाद उत्पन्न किये और किसी न किसी पक्ष का समर्थन कर अपनी मनोकामना पूरी करने लगे। युवक और अनुभवहीन विजयसिंह के पास कोई साधन न बचा। विनाशकारी युद्ध और उससे भी विनाशकारी समझौते ने उसके पूर्वजों द्वारा सचित धन सम्पत्ति को समाप्त कर दिया था। खालसा भूमि के किसान कृषि कार्य को छोड़कर प्राण बचाने को भाग खड़े हुए थे। व्यापार वाणिज्य भी कम हो गया था क्योंकि व्यापारियों को सुरक्षा नहीं मिल पा रही थी और सामंत लोग भी उनसे मनमाना कर वसूल करने लगे थे। उन्होंने स्थान स्थान पर अपनी चौकियां कायम कर रखी थीं और कभी कभी तो पूरे सार्थवाह को जब्त कर लेते थे। जबकि सिंहासन का दावेदार अभी जीवित था विजयसिंह ने इस घोर अव्यवस्था के प्रति अपनी आंखें बंद कर ली जिससे उसके अपने महल मे भी उसका प्रभुत्व समाप्त हो गया।

मारवाड के चारों तरफ के राज्यों की अपेक्षा मारवाड में सामंतों के पास अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त थे। कारण यह था कि उनके पूर्वजों ने मरुक्षेत्र में अपने अपने बाहुबल से अपने अपने क्षेत्रों पर अधिकार जमाया था न कि राजा की कृपा से अपने क्षेत्रों को प्राप्त किया था। उन्होंने विपरीत परिस्थितियों मे भी अपने अधिकार को बनाये रखा था, विशेषकर अजीत की अनाथावस्था मे सब प्रकार से स्वाधीन रहते हुए उन्होंने उसके पक्ष के लिये अपूर्व बलिदान भी किया था। इस समय एक अन्य कारण से भी उनके अधिकारों को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया और इसका बड़ा दुष्परिणाम भी निकला। यह कारण गोद लेने के नियमों से उत्पन्न हुआ था।

तक कि उसक ग्रास पास भी कोई सरदार न रहा । इससे वह महान् विपत्ति म फस गया पर तु एक किसान की सहायता स किसी प्रकार ग्रपन प्राण बचाकर भागा ।

इस युद्ध को नोन ग्रौर राठौडो की शक्ति क कमजोर पड जान स एक क बाद एक दुर्गों का पतन होन लगा । रामसिह का पक्ष सबल दिखलाई पडन लगा ग्रौर मराठा लाग मरूदश म फलन लग जबकि एक जघ य कृत्य—जयप्पा की हत्या[3] न उनकी प्रगति को रोक दिया । जयप्पा क मारे जाने स व लाग रामसिह क स्वाथ का छोडकर उस हत्याकाण्ड का बदला लेन ग्रौर ग्रपन स्वाथ को पूरा करन म जुट गय । काफी मारकाट ग्रौर वादानुवाद क बाद जयप्पा की हत्या क दण्डस्वरूप म विजय-सिह न ग्रजमर का इलाका मराठो को सौप कर तथा उ ह वार्षिक कर के रूप म एक निश्चित धनराशि देने का वायदा कर उ ह सतुष्ट किया । समझौता हाते ही मराठो ने रामसिह का साथ छोड दिया ग्रौर ग्रजमर म ग्रपनी सत्ता का सुदृढ़ बनाने के प्रयास म लग गय ।

मारवाड के मुकुट स ग्रजमर रूपी मणि क छिन जान स मारवाड की स्वाधीनता ग्रसुरक्षित हो गई । ग्रजीत की हत्या क बाद स ही मारवाड न प्राय एक शताब्दी तक ग्रात्मविग्रह विजातीय ग्राक्रमण ग्रौर ग्रनक प्रकार क ग्रत्याचारो को ग्रत्य त कष्ट स झला था । विपक्ष के कविया ने इस युद्ध क परिणाम क बारे मे कहा है, 'याद घने दिन ग्रावसी, ग्रापाबाला हेल । भागा तानो भूपति माल खजाना मेल ।'

ग्रर्थात् समस्त धन, रत्न ग्रौर युद्ध क ग्रस्त्रो को छोडकर तीनो भूपति (विजयसिंह बीकानेर नरेश ग्रौर किशनगढ नरेश) जयप्पा क भय से भयभीत होकर भाग गय यह बात हमेशा याद ग्राती रहगी ।

रूपनगर के युवा उत्तराधिकारी की चाल से मराठा ने ग्रासानी क साथ युद्ध जीत लिया । ग्रपनी करनी से ग्रान द म मग्न उसने जयप्पा क निकट जाकर कहा, ग्रापने देखा कि मैंने इस स्थान पर खडे होकर ग्रपने हाथ पर सरसा क बीज बोए थ । जयप्पा ने उसकी बात सुन कर उसे तुर त ही रूपनगर क सिहासन पर बठाने की बात कही । पर तु उसने कहा कि पहल हमार प्रभु रामसिह को जोधपुर के सिहासन पर बठा दीजिय फिर हमारी ग्राशा सरलता से पूरी हा जायगी । पर तु जब जयप्पा मारा गया तो मराठो ने ग्रपने शिविर म उपस्थित प्रत्यक राजपूत पर सदह प्रकट करते हुये उस पर ग्राक्रमण किया । रूपनगर का वह उत्तराधिकारी भी उनक ग्राक्राश से बच न सका । यहा तक कि मराठो के शिविर म उपस्थित मेवाड राणा का प्रतिष्ठित दूत कुवरसिह जो विजयसिह की तरफ स सधि वार्ता क लिये प्रयास कर रहा था, वह भी मारा गया । मराठो ने जयप्पा की भस्मी पर उसी

गाव ताऊसर[3] मे एक स्मृति मंदिर बनवाया । मराठे और राजपूत—दोनो ही उस मंदिर के प्रति समान भाव से सम्मान व्यक्त करते है ।

अपने राज्याधिकार को प्राप्त करने के लिये रामसिंह ने अपने जीवन मे जो बाईस युद्ध लडे थे उनमे यह अंतिम युद्ध था । बाद के दुर्दिनो ने उसके स्वभाव की उग्रता को काफी कम कर दिया और वह अपनी पिछली भूलो पर पश्चाताप करने लगा था यद्यपि अब काफी देर हो चुकी थी । संवत् 1773 मे जयपुर मे उसकी मृत्यु हो गई । रामसिंह मे गुणो का अभाव न था परन्तु एकमात्र अपने अत्यन्त उग्र स्वभाव के कारण वह मारवाड के सामन्तो मे अप्रिय पात्र हो गया था । यह भी स्वीकार करना होगा कि रामसिंह के अभिषेक के समय से ही मारवाड के भाग्य मे घोर काल रात्रि दिखाई दी और उसी ने मराठो को मारवाड मे लाकर मारवाड के विनाश का बीज बोया था ।

रामसिंह की मृत्यु से मारवाड अथवा उसके राजा को कोई विशेष लाभ न मिला । मराठे अजमेर पर अधिकार करके मारवाड से चौथ वसूल करने लगे । रजवाडे के प्रत्येक राज्य को लूट खसोट कर धन संग्रह करने लगे । उन्होने अपने स्वार्थ साधन के लिये राजपूतो मे विवाद उत्पन्न किये और किसी न किसी पक्ष का समर्थन कर अपनी मनोकामना पूरी करने लगे । युवक और अनुभवहीन विजयसिंह के पास कोई साधन न बचा, विनाशकारी युद्ध और उससे भी विनाशकारी समझौते ने उसके पूर्वजो द्वारा संचित धन सम्पत्ति को समाप्त कर दिया था । खालसा भूमि के किसान कृषि कार्य को छोडकर प्राण बचाने को भाग खडे हुए थे व्यापार वाणिज्य भी कम हो गया था, क्योंकि व्यापारियो को सुरक्षा नही मिल पा रही थी और सामन्त लोग भी उनसे मनमाना कर वसूल करने लगे थे । उन्होने स्थान स्थान पर अपनी चौकियां कायम कर रखी थी और कभी कभी तो पूरे सार्थवाह को जब्त कर लेते थे । जबकि सिंहासन का दावेदार अभी जीवित था विजयसिंह ने इस घोर अव्यवस्था के प्रति अपनी आखे बन्द कर ली जिससे उसके अपने महल मे भी उसका प्रभुत्व समाप्त हो गया ।

मारवाड के चारो तरफ के राज्यो की अपेक्षा मारवाड मे सामन्तो के पास अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त थे । कारण यह था कि उनके पूर्वजो ने मरुक्षेत्र मे अपने अपने बाहुबल से अपने अपने क्षेत्रो पर अधिकार जमाया था न कि राजा की कृपा से अपने क्षेत्रो को प्राप्त किया था । उन्होने विपरीत परिस्थितियो मे भी अपने अधिकार को बनाये रखा था विशेषकर अजीत की अनाथावस्था मे सब प्रकार से स्वाधीन रहते हुए उन्होने उसके पक्ष के लिये अपूर्व बलिदान भी किया था । इस समय एक अन्य कारण से भी उनके अधिकारो को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया और इसका बडा दुष्परिणाम भी निकला । यह कारण गोद लेने के नियमो से उत्पन्न हुआ था ।

पोकरण चापावतो की छोटी शाखा की जागीर थी, परन्तु सबसे अधिक शक्तिशाली थी। उसके सरदार ने अपनी मृत्यु के पहले अपनी पत्नी को अजीत के दूसरे पुत्र देवीसिंह[5] को गोद लेने के लिये कहा। गोद लेने के अधिकार की बात हम पहले लिख आये हैं। यह अधिकार मृतक की विधवा और वंश के बुजुर्गों में निहित होता है। यदि देवीसिंह पोकरण गोद न गया होता तो किसी भी समय उसके मन में मारवाड के सिंहासन पर बैठने का विचार पैदा न हुआ होता। परन्तु एक शक्तिशाली जागीर का सामन्त पद प्राप्त करने के बाद उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न होने लगी और वह अपने भतीजे विजयसिंह का सिंहासन हस्तगत करने की चेष्टा करने लगा।

चापावतों ने राजा और राज्य पर अपना प्रभाव स्थापित करने का निश्चय किया और देवीसिंह ने आऊवा तथा चापावतों की अन्य शाखाओं के साथ गठबंधन कर राठौड वंश की अन्य शाखाओं को सत्ता की साझेदारी से दूर रखने का प्रयास किया। उन्होंने अपने सैनिकों का एक दल बनाया जिसके आधे हिस्से को दुर्ग के भीतर और आधे को दुर्ग के नीचे नगर में तैनात कर दिया। इसी समय मारवाड में चारों तरफ अराजकता और पहाडी लोगों की लूटमार और सामन्तों की स्वच्छा-चारिता को देखकर विजयसिंह ने काफी दुःख प्रकट किया जिसके प्रत्युत्तर में देवीसिंह ने कहा "आप मारवाड के लिये इतनी चिन्ता क्या करते हैं। मारवाड मेरी तलवार की म्यान के भीतर है।" विजयसिंह अक्सर अपने धाभाई जग्गू को अपनी व्यथा सुनाता रहता था। जग्गू विशेष सावधान और दूरदर्शी मनुष्य था। उसने विजयसिंह को धीरज बंधाया। वह विजयसिंह के प्रताप, प्रभुत्व का विस्तार तथा साथ ही साथ सामन्तों की शक्ति को कम करने का उपाय करने लगा। उसने सामन्तों के निकट यह प्रस्ताव किया कि "राजधानी की रक्षा के लिये एक वेतनभोगी सेना रखी जाय, वही सब आज्ञाओं का पालन करे, आप इच्छानुसार रह सकते हैं और आपकी सेना को वृथा कार्य करना नहीं होगा।" उसने सामन्तों से नवीन सेना का वेतन उन्हीं से लेना भी स्वीकार करा लिया। इस प्रकार जग्गू ने अपनी कूटनीति से एक वेतनिक सेना खड़ी कर ली जिसमें सिंध देश के सैकडों लोगों को भर्ती किया गया। मरूदेश में राठौड शासन में मासिक वेतनभोगी विजातीय सेना का पहली बार गठन हुआ। वैसे राजपूत राज्य इस प्रकार की सेनाएं रखते रहे थे। परन्तु उसका मासिक वेतन के स्थान पर भूवृत्ति दी जाती थी। जग्गू ने जिस नवीन सिंधी सेना का गठन किया वह पदाति थी और पश्चिमी युद्ध की रीति के अनुसार शिक्षा पाई हुई थी। जिस कारण से मारवाड में इस प्रकार की सेना का गठन किया गया था उसी कारण से उदयपुर और जयपुर के राजाओं ने भी वेतनभोगी सेना का गठन किया था। वेतनभोगी सेनाओं के गठन से समस्त राजस्थान की सामन्त शासन पद्धति की मूल नीति को छोड दिया गया। जग्गू ने जिस सेना का गठन किया उसमें राजपूत, सिंधी अरब और रूहेल लोगों के सैनिक दस्ते थे। वह सेना सामन्तों के अधीन न रहकर

राजा की आज्ञा म रहने लगी। थाडे समय म ही उस नवीन सेना की शक्ति इतनी अधिक वढ गई कि साम ता को अपनी शक्ति क लोप हो जान का खतरा दिखलाई देन लगा। अत शीघ्र ही नवीन सेना के साथ साम तो का नित्य झगडा होने लगा। यद्यपि मारवाड जयपुर, उदयपुर और कोटा मे एक जसे उद्देश्य से प्रेरित होकर वेतन-भोगी सेनाओ का गठन किया गया था पर तु एकमात्र कोटा के अतिरिक्त अ य किसी राज्य को विशेष लाभ न मिला।

आतरिक झगडो से थोडी राहत मिलने के वाद विजयसिंह न धाभाई और दीवान फत्तेच द के साथ परामश करके देश मे व्याप्त अराजकता और अत्याचार को समाप्त करन की तयारी की। पर तु इसके लिये धन की आवश्यकता थी और विजयसिंह का खजाना खाली था। जग्गू को जब कही से धन मिलने की आशा न रही तो उसने अपनी मा (धात्री) से, आत्म हत्या की धमकी देकर पचास हजार रुपये प्राप्त किय। पर तु घोडो का भी अभाव था। घोडो के अभाव मे जग्गू अपनी नयी सेना को नागौर तक वलगाडियो पर वठा कर ल गया। नागौर के दुग म कई तोपें रखी हुई थी। उ ह लेकर सना सहित वह पहाडी जातिया के विरुद्ध चल पडा। जग्गू न उ ह आसानी के साथ पराजित कर दिया। वापसी म उसने शील बुकरी (थलनगरी) के दुग पर आक्रमण किया। वेतनभोगी सेना रखने का स्पष्ट अभिप्राय अब लोगो की समझ म आया। उस दुग पर जग्गू के अधिकार कर लेन पर मारवाड के सभी सामन्त भयभीत हो उठे और अपन मान सम्मान की रक्षा करन के लिय वे लाग राजधानी स बीस मील पूव म बोसलपुर म एकत्र हुए।

खीची राजपूत गोरधन न अपन वल और पराक्रम क द्वारा वरतसिंह का स्नेह प्राप्त कर लिया था। मरन स पहले वख्तसिंह ने उस अपन पुत्र विजयसिंह की सेवा करन के लिय कहा था। इसी गोरधन का विजयसिंह न बुलाकर साम तो द्वारा उत्पन्न परिस्थिति से निपटन के वार मे परामश किया। एक सच्चे राजपूत की भाति गोरधन ने कहा कि, "किसी भी दशा मे साम ता को शत्रु वनाना अच्छा नही हो सकता। इस समय उ ह उनकी मर्यादा के अनुसार सम्मान देना चाहिए तथा उनके प्रति सद्भाव प्रकट करना चाहिए।' विजयसिंह को उसकी वात समझ म आ गई। प्रात होत ही गारधन साम ता के पास जा पहुँचा और उसन कहा कि उनका राजा उनकी राजभक्ति म विश्वास रखत हुए उनसे मिलन आ रहा है। इसलिय आप लोग चल कर उसका स्वागत करें। पर तु एक भी साम त न उसकी बात पर ध्यान न दिया। तव तक विजयसिंह उनक शिविर तक आ पहुचा—विना किसी निमत्रण के और बिना किसी स्वागत के। गोरधन न समय नष्ट करना उचित नही समझा और अपने राजा का सीध आऊवा सरदार क डरे पर ल गया। यहा सभी सरदार एकत्र हो गय। विजयसिंह न शान्ति का तोडत हुए प्रश्न किया आप सब लागा न हमको क्या छोड दिया है?" चापावत सरदार ने उत्तर दिया, 'महाराज! हम सभी एक ही वश वृक्ष की शाखाए हैं यदि दूसर की होती तो वह आपक इशारे पर होती।'

इसके बाद तीव्र वाद विवाद चला । अ त म, राजा ने यह जानना चाहा कि कौनसी शर्तों पर पुन राजभक्ति के अ तगत आना चाहते हैं, तब निम्न शर्तें प्रस्तुत की गइ—

1 धाभाई की अधीनता मे जो वेतनभोगी सेना है, उसे भग किया जाय ।
2 साम ता के पट्टे समर्पित कर दे और उन्ही के अधिकार मे दे दिये जाय ।
3 यायालय दुग से हटा कर नगर म रखा जाय ।

साम तो की मागे मान लेने अथवा गृह युद्ध को पुन जीवित करन के अलावा अ य कोई विकल्प न था । अत पहली शत का तो तत्काल पालन करन का निश्चय कर लिया गया और अतिम के बारे मे भी कोई खास बाधा न थी । परन्तु दूसरी शत से तो राजा का प्रमुत्व पूरे तौर पर समाप्त हो जाता है । साम तो को जागीरा के जो पट्टे लिखे जाते हं उन पर अधिकार केवल राजा का रहता है । फिर भी, विजयसिंह ने स्थिति की गभीरता को देखते हुये सभी बातें मान ली और इसके बाद सभी साम त विसर्जित होकर अपनी अपनी जागीरो को चले गये । चापावत सरदार अपनी सेना सहित विजयसिंह के साथ जोधपुर चला आया ।

कुछ दिनो बाद विजयसिंह का आध्यात्मिक गुरु आत्माराम गभीर रूप स बीमार पड गया । विजयसिंह गुप्त रूप स उसके पास गया । मरने से पूव गुरु ने उससे कहा, "प्रसन्न रहो । मरे साथ साथ तुम्हारी सभी विपदाओ का भी अ त हो जायेगा ।" इसक तत्काल बाद उसकी मृत्यु हो गई । धाभाई ने उसकी भविष्यवाणी का अथ समझा और विजयसिंह को समझाया । राजा ने दिखावे के तौर पर खूब शोक प्रदर्शित किया और सवसाधारण को सूचित किया गया कि गुरुदेव का अतिम सस्कार दुग मे किया जायेगा । साम ता क पास भी इसकी सूचना भिजवा दी गई । निश्चित दिन और समय पर रनिवास की स्त्रिया भी गुरुदेव के अतिम दशन के लिये महलो से नीचे आई और उनकी सुरक्षा के लिये राज्य के सनिक भी उनके साथ साथ चले । साम त लोग भी गुरुदेव को श्रद्धाजलि देने के लिये राजधानी म आ पहुचे । दुग मे जाने क लिये पहाडो को खोदकर सीढिया बनायी गयी थी । अतिम सीढी पर पहुच कर पोकरण सरदार देवीसिंह ने कहा 'मुझे आज कुछ अच्छे लक्षण नही दिखायी देते ।' दूसरे साम तो न उससे कहा आप मारवाड राज्य के सवमान्य हैं । आपकी तरफ कोई आख उठाकर देखने का साहस नही कर सकता ।" साम त लोग धीरे धीरे ऊपर चढे और दुग म प्रवश किया । तभी उन्होने देखा कि नक्कार खाने का द्वार ब द हो गया । आऊवा के सरदार न चिल्लाकर कहा विश्वासघात' । उसन तत्काल तलवार निकाली और राज्य क सनिका का सहार करना शुरू कर दिया । थोडे से साम त राज्य की सेना का कब तक सामना कर सकत थे, बहुत स मारे गये और शेष धाभाई क सनिको द्वारा ब दी बना लिय गये । ब दी साम तो का अपने भविष्य का अनुमान हो गया था । जब जग्गू ने उनस कहा कि उन्ह मरना

होगा तो उ होने सच्चे राजपूतो की भाति उत्तर दिया, "तलवार के द्वारा हमारे प्राण लिये जाय न कि वेतनभोगी सैनिको की गोलियो से।" कवि हमे नही बताता कि उनकी माग पूरी की गई अथवा नही जब तीन चापावत सरदारो—आऊवा के जगतसिह, पोकरण के देवीसिह हरसोलाय के सरदार, कू पावत सरदार च द्रसिह च द्रायण के केसरीसिह निमाज के साम त कुमार रास के सरदार और ऊदावतो के प्रधान सरदार के भाग्य का फैसला किया गया था।[6] देवीसिह के अ तिम क्षण भी स्वाभिमान से भरपूर रहे। मारवाड के राजवश[7] का होने के कारण उसका रक्त बहाना उचित नही समझा गया और उस विष मिला अफीम जल एक मिट्टी के पात्र मे दिया गया। उसे देखकर उसने कहा, 'क्या देवीसिह मिट्टी के पात्र मे अमल (अफीम) लगा ? स्वण पात्र मे लाओ! मैं राजा की आज्ञा का स्वागत करू गा।" जब उसे उसी पात्र से पीने के लिये विवश किया गया तो उसने पात्र को दूर फेक दिया और दीवार के बडे पत्थर पर सिर पटक कर प्राण त्याग दिये। इसके पूव किसी ने व्यग्य के साथ उससे पूछा था कि आपकी वह तलवार कहाँ है जिसके नीचे आप मारवाड के सिहासन को समझते थे। पोकरण मे सबल की कमर मे बधी हुई है—यह था उसका गवपूण उत्तर।

सत्ता को कायम रखने के लिए यह एक महान् बलिदान था उन लोगो का जि होने देश की सुरक्षा के लिए अपना रक्त बहाया था। पर तु देशभक्ति भी जब मर्यादा का उल्लघन कर अपने राजा के अधिकारो को ग्रसने लगती है तो इस प्रकार के कृत्य राजपूतो के लिए अनजान न थे। इसमे सदेह नही कि विजयसिह ने इस प्रकार का आचरण कर अपने दुबल हृदय का परिचय दिया। पर तु यह भी कहना पडेगा कि साम तो ने उसे सामर्थ्यहीन समझ कर अपनी शक्ति बढाने तथा राजा की शक्ति को घटाने तथा चारो ओर अ यवस्था पदा करने की चेष्टा न की होती तो उ हे इस तरह से नही मरना पडता। जग्गू ने नि स्वाथ भाव से अपने राजा की सत्ता को बनाये रखने के लिए यह काय किया। अत उसे पूण अपराधी मानना ठीक नही। राजपूत जिस समाज मे रहते और काय करते है, दुभाग्यवश सत्ता को कायम रखने के लिए कई बार सिद्धा तो का बलिदान करने के लिये विवश हो जाते है पर तु ऐसा दोषपूण राजनतिक विधान के कारण ही होता है, अ यथा ऐसी बाते न तो उनकी नतिक सहिता मे है और न उनकी नतिक आदतो मे शुमार है।

चापावत के साथ जिस प्रकार का आचरण किया गया उसकी सूचना मरूभूमि के उस पार पोकरण मे उसके पुत्र तक जा पहुची। उसने उतनी ही शीघ्रता से अपने पिता की हत्या का बदला लेने की प्रतिज्ञा की। सबलसिह पोकरण के शूरवीरो को साथ लेकर बदला लेने के लिए चल पडा। उसने पहले पाली के व्यवसायिक नगर को लूटा और शहर मे आग लगा दी। इसके बाद वह बिलाडा की तरफ बढा, जहा उसके प्रतिशोध और जीवन दोनो का अ त हो गया। वह जसे ही शहर की

तरफ बढ़ा, अचानक गोला की जोरदार वर्षा हुई और वह मारा गया। दूसर दिन, लूनी नदी क किनार उसका दाह सस्कार किया गया।

कुछ समय के लिए सामन्तो को नियन्त्रित कर दिया गया, अराजकता दूर हो गई और व्यापार वाणिज्य विकसित होन लगा और सामा य समृद्धि लौट आई। विजयसिंह न अपन साम तो की निष्ठा को प्राप्त करन के लिए अच्छे उपायो का सहारा लिया और उन्हे विविध कामो म कायरत किया। इन्ही दिनो म उसन विद्रोही खोसा और सहरिया जाति के लोगो पर आक्रमण किया और उन्हे परास्त कर अमरकोट के दुग को जीत लिया, जो मारवाड की आखिरी सीमा बना हुआ है। उत्तर पश्चिमी सीमा की तरफ जसलमर के कई इलाको को अपने राज्य म मिला दिया। परन्तु इन सबसे महत्वपूण गोडवार के समृद्ध इलाके की प्राप्ति थी जो उसने मेवाड क राणा स छीना था। अकेले इस इलाके की आमदनी सम्पूण मारवाड की आय के बराबर थी। पिछली पाच शताब्दियो से यह इलाका मेवाड के राणा के अधिकार म चला आ रहा था। आ तरिक सघष के दिनो म राणा न यह इलाका विजयसिंह को सौपा था। तब से यह इलाका मेवाड के हाथ से निकल गया।

पिछले कुछ वर्षों स मारवाड म शा ति का राज्य रहा, परन्तु सम्पूण राजस्थान म मराठो की विनाशकारी लूटमार न राजपूतो को अपना अस्तित्व बनाये रखन के लिए सयुक्त हो जान को विवश कर दिया। इस समय आमेर के सिंहासन पर प्रतापसिंह था जो योग्य प्रतिभाशाली और तेजस्वी राजा था। सवत् 1843 (1787 ई) म उसन विजयसिंह के पास अपना दूत भेजकर राजपूतो के सामा य शत्रु मराठो के विरुद्ध सयुक्त रूप से कायवाही करने का प्रस्ताव रखा। उसने व्यक्तिगत रूप से सयुक्त सेना का नतत्व करन का वचन भी दिया। परिणामस्वरूप तु गा का युद्ध लडा गया जिसम राठौडो न अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप अपूव पराक्रम का प्रदशन किया। उ होन अनुशासित सनिको की भाति डिबोइन क सनिक दस्तो और गोलदाजो पर इतना जोरदार आक्रमण किया कि सि धिया को न केवल युद्ध मदान ही छोडना पडा अपितु कुछ समय क लिये अपनी समस्त विजयो स भी वचित हो जाना पडा। इस विजय स विजयसिंह न अजमर दुग पर भी पुन अपना अधिकार कर लिया और मराठो के साथ की गई पुरानी स धि का रद्द करते हुये मराठो को कर देना भी ब द कर दिया। पर तु सि धिया की बहुमुखी प्रतिभा और डिबोइन की योग्यता से मराठो न अपनी पराजय स हुई क्षति का शीघ्र ही पूरा कर लिया और चार वर्षों के भीतर ही मराठे एक एसी सना क साथ आगे बढे जो भारतीय युद्ध प्रणाली के लिये अनजान थी। मराठो का ध्यय तु गा के अपमान का बदला लना था। सवत् 1847 (1791 ई) म पाटन और मडता के विनाशकारी युद्ध हुय जिसम यूरापीय रणकौशल और असीमित साधनो जिनम कुचक्रो और विश्वासघात की कमी न थी[8] के विरुद्ध राजपूती शौय का प्रदशन हुआ पर तु राजपूतो को असफल होना

पडा । परिणाम के रूप म सिन्धिया ने मारवाड से साठ लाख रुपयो की माग की । जोधपुर के खजाने मे इतना रुपया न था जिसस दण्ड की यह भारी राशि ग्रदा की जा सके । इस स्थिति म मराठो ने जो कुछ हाथ लगा उसे वटोरा ग्रौर शेष रकम के बदले राज्य के श्रेष्ठ लोगो को व दी वनाकर जमानत के तौर पर मराठा शिविर मे रखा गया ।

तु गा की विजय के बाद ग्रजमेर मारवाड के ग्रधिकार म ग्रा गया था । ग्रब वापस मराठो के ग्रधिकार मे चला गया ग्रौर हमशा के लिए मारवाड के हाथ से निकल गया । जब डिबोइन न ग्रजमर का घेरा डाला तो स्वामिभक्त दुमराज ने ग्रफीम खाकर ग्रात्महत्या कर ली ग्रौर बिना किसी सघष के मराठो ने ग्रजमर पर ग्रधिकार कर लिया ।

विजयसिह थोडे दिना मे ही ग्रपनी पराजय ग्रौर मराठो के ग्रत्याचारो को भूल गया । राठोडा के प्राचीन गौरव का भुलाकर वह भोग विलास मे डूब गया । ग्रपन जीवन के ग्र तिम वर्षा मे वह एक ग्रोसवाल[9] जाति की एक सु दर युवती पर ग्रासक्त हो गया ग्रौर उस ग्रपना उपपत्नी बनाया । ग्रोसवाल युवती ने ग्रपन प्रभाव का नाजायज फायदा उठाया ग्रौर विजयसिह स सभी प्रकार के उचित ग्रनुचित काम करवान लगी जिससे मारवाड राज्य का सवनाश ग्रारम्भ हुग्रा । विजयसिह उसके प्रेम मे इतना ग्रधिक ग्रधा बन गया था कि जा मान मर्यादा प्रधान रानी का मिलनी चाहिए थी वह ग्रोसवाल युवती को दे दी गई । भट्ट ग्र था म लिखा है कि उस युवती न ग्रनेक बार विजयसिह को ग्रपनी जूतियो से मारा था । फिर भी, विजयसिह के स्वाभिमान को किसी प्रकार की ठेस न पहुची थी । मारवाड मे इन दिनो उसकी उपपत्नी का शासन चलने लगा था । जब उसके ग्रपना कोई पुत्र न हुग्रा तो उसने ग्रपन ग्रधिकारो को सुरक्षित रखन के लिए गुमानसिह के पुत्र मानसिह को गाद ल लिया ग्रौर उसी को विजयसिह के भावी उत्तराधिकारी के रूप मे प्रसिद्ध करन लगी ।

विजयसिह ने उपपत्नी की बात को मान लिया ग्रौर ग्रपने वधानिक उत्तरा धिकारी का उसके ग्रधिकारी स वचित कर मानसिह का ग्रपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया । इसके बाद उसन राज्य के सभी साम तो को ग्रादश दिया कि वे राजधानी मे ग्राकर नय उत्तराधिकारी का ग्रभिन दन कर तथा उसे भेट दे । स्वाभिमानी सरदारा ने स्पष्ट रूप से मानसिह का मारवाड का उत्तराधिकारी मानने से इ कार कर दिया । उनका कहना था कि वे एक दासी के दत्तक पुत्र को मान्यता नही दे सकत । तब विजयसिह न पडिता का बुलाया ग्रौर शास्त्रो क ग्रनुसार मानसिह को गोद लकर उस ग्रपना उत्तराधिकारी घोषित किया ।

विजयसिह क सात पुत्र हुय—फतहसिह (ग्रल्पायु म ही मर गया) जालिमसिह सावतसिह शेरसिह, भीमसिह गुमानसिह (मानसिह का पिता) ग्रौर सरदार-

सिंह । शेरसिंह ने मानसिंह को पहले से ही गोद ले रखा था । इस प्रकार, जालिम सिंह मारवाड राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी था ।[10] विजयसिंह ने अपनी उप पत्नी के कहे अनुसार उसे राज्याधिकार से वंचित करके अपनी हीन बुद्धि का परिचय दिया जिससे राज्य मे अराजकता की वृद्धि हुई ।

वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिए सभी शाखाओ के सरदार मलकानी नामक स्थान पर एकत्र हुये और सभी ने विजयसिंह को सिंहासन से उतारने का निर्णय लिया । सूचना मिलते ही विजयसिंह उनके शिविर मे गया । उसे पहले भी एक बार सामन्तो को अनुकूल बनाने मे सफलता मिल चुकी थी । विजयसिंह सरदारों के साथ समझौते की बातचीत मे लगा हुआ था, उसी समय सामन्तो ने रास के सरदार को एक गुप्त पत्र भेजा । रास का सरदार इस समय अपने सैनिको के साथ दुर्ग पर चाकरी बजा रहा था । रास के सामन्त को भीमसिंह को लेकर आने के लिये कहा गया था । उसने उपपत्नी को जाकर कहा कि "महाराज ने आपको बुलाने के लिए हमे भेजा है और आपके साथ चलने के लिए राज्य की सेना तैयार है ।" उप पत्नी ने उस पर विश्वास करते हुए महल से निकल कर अपनी सवारी पर बैठने लगी । उसी समय तलवार के एक जोरदार प्रहार से उसका मस्तक काट दिया गया। इसके बाद वह सामन्त भीमसिंह को साथ लेकर अपने स्थान पर चला गया । यदि वह सीधा सरदारो के शिविर मे चला जाता तो विजयसिंह का सिंहासन से उतारा जाना निश्चित था । विजयसिंह और सामन्तो ने उस युवती की हत्या का समाचार एक साथ सुना । सभी भीमसिंह के पास आये । विजयसिंह ने वहा पर सभी को प्रसन्न करने के लिए भीमसिंह को सोजत और सिवाना का अधिकार देकर सिवाना भेज दिया । बडे पुत्र जालिमसिंह को गाडवार का पूरा अधिकार देकर वहा भेज दिया । उसके जाने के बाद विजयसिंह ने उसे गुप्त रूप से सदेश भिजवाया कि तुम भीम सिंह पर आक्रमण कर उसे राज्य से खदेड दो । यद्यपि भीमसिंह को इसकी सूचना मिल गई थी और उसने जालिमसिंह का जोरदार प्रतिरोध भी किया परन्तु उसे पराजित होकर भागना पडा । उसने पोकरण मे आश्रय लिया और वहा से जैसलमेर चला गया ।

इस संघर्ष के बीच मे ही सवत् 1850 के आषाढ मास मे विजयसिंह की मृत्यु हो गई । उसने इकतीस वर्ष तक मारवाड पर शासन किया था ।[11]

सन्दर्भ

1 यह सधि 'हल्दी का बल पत्र' (पक्का कागज) के नाम से विदित है । इस पर जनकोजी सिंधिया, मालजी तातिया, चित्तेजी रघुपागिया, मुल्लायार अली, फीरोजखा आदि ने भी हस्ताक्षर किये थे ।

2 जयप्वा सिंधिया के लिए 'ग्राप्पा शब्द का प्रयोग किया गया है।

3 जयप्पा की हत्या के सम्ब ध म इतिहासकारा मे मतभेद है। कुछ के ग्रनुसार सधि वार्ता के लिए गये हुये राजपूता न उसका वध कर दिया तो कुछ के ग्रनुसार वह बीमार पड गया था ग्रौर मर गया।

4 ताऊसर नागौर परगने का एक छोटा सा गाव है।

5 टाड साहब ने भ्रम स इस राजा ग्रजीतसिंह का पुत्र मान कर गोद जाने की बात लिख दी है। वह पोकरण ठाकुर का ही बेटा था ग्रौर गोद नही गया था।

6 इतन सरदारो के मारे जान की पुष्टि नही हाती। केवल चार सरदारो— पोकरण के देवीसिंह ग्रासोप क चरणसिंह, रास के केसरीसिंह ग्रौर नीमाज के दौलतसिंह को ब दी बनाया गया था। पहल तीन कद मे मरे ग्रौर चौथे दौलतसिंह को बाद मे रिहा कर दिया गया था।

7 दवीसिंह ग्रजीत का पुत्र नही था। वह पोकरण सरदार महासिंह का पुत्र था।

8 य युद्ध राठौडा का ग्रपने ही बलबूत पर लडने पडे थे। जयपुर की सेना किसी कारणवश राठौडा से नाराज होकर पहले ही चली गयी थी।

9 कुछ क ग्रनुसार वह जाट जाति की थी। उसका नाम गुलाबराय था।

10 टाड साहब ने विजयसिंह के पुत्रो के नाम सही नही लिखे हैं। उनका बडा लडका भीमसिंह था। वह युवावस्था म ही मर गया। तब विजयसिंह ने उसके लडके भीमसिंह को ग्रपना उत्तराधिकारी बनाया। भीमसिंह पौत्र हुग्रा न कि पुत्र। जालिमसिंह तो भीमसिंह गुमानसिंह ग्रौर फतहसिंह–तीनो से छाटा था।

11 इक्तीस वष नही, इकतालीस वष राज्य किया था। उसका ज म सवत् 1788 म हुग्रा था ग्रौर सिंहासन पर बठने के समय उसकी ग्रायु बीस वष की थी।

अध्याय 44

भीमसिंह और मानसिंह

विजयसिंह की मृत्यु की सूचना द्रुतगति के सवार के हाथो जसलमेर म उसके पोते भीमसिंह के पास भिजवा दी गई और बाईस घटे के बाद ही वह जोधपुर आ पहुँचा और सीधे दुग म पहुँच कर सिंहासन पर जा बठा। जबकि उसका प्रतिस्पर्धी जालिमसिंह जो कि वैधानिक उत्तराधिकारी था, शहर के मडता दरवाजे पर शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करता ही रह गया। वह शुभ घडी कभी नहीं आई और भीमसिंह के जोधा के सिंहासन पर बठने की खबर नगाडो की आवाज से मालूम हुई। वह शहर से वापस लौटने की तयारी कर ही रहा था कि उस पर आक्रमण कर दिया गया और उसे परास्त होकर बिलाडा की तरफ भागना पडा। वहा से वह उदयपुर चला गया जहा राणा ने उसकी जीविका का प्रबन्ध कर दिया और उसने अपना शेष जीवन साहित्य की सेवा का अर्पित कर दिया।[1] परन्तु वह अधिक दिना तक जीवित न रहा। उसने अपने हाथ से अपनी एक नस काट डाली थी। उससे अधिक रक्त निकल जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। वह एक विद्वान एव पराक्रमी सनिक तथा अच्छा कवि था।

अब तक सफल, राजा भीम ने वधानिक न सही, वास्तविक राजा बनने का निश्चय किया। इस घटना के पहल ही मृत्यु ने उसके पिता तथा तीन चाचाओ का वरण कर लिया था परन्तु दो अभी जीवित थे। एक शेरसिंह जिसने उसे गोद ले रखा था और दूसरा चाचा सरदारसिंह। ये दोनो उसके माग म कटक सिद्ध हो सकते थे। अत भीमसिंह ने सरदारसिंह का मरवा डाला। इसके बाद शेरसिंह को अधा बना दिया। उस दुर्भाग्यशाली राजकुमार ने दीवार म अपना सिर दे मारा और इस जीवन से मुक्त हो गया। परन्तु अभी साम तसिंह का पुत्र सूरसिंह और गुमानसिंह का पुत्र मानसिंह—जिसे विजयसिंह की पत्नी ने गोद लिया था और जिसे विजयसिंह ने अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, अभी जीवित थे। सूरसिंह को भी अयो की भाति मौत का सामना करना पडा।

अब मारू राजवश म कवल एक ही दावदार बाकी रह गया था जो भीमसिंह की शाति म विघ्न उपस्थित कर सकता था। वह था युवक मानसिंह जिसे उपपत्नी

न गोद लिया था और शत्रु की पहुँच से बहुत दूर जालोर के अजेय दुर्ग में रह रहा था। इस अन्तिम कटक को दूर करने के लिये भीमसिंह सेना सहित जालोर की तरफ चला परन्तु उसकी सेना के लिये जालोर दुर्ग को जीतना आसान न था। कई महीने तक घेराव दी जाती रही परन्तु सफलता न मिली। अतः घेराबंदी का दायित्व अपने सेनापति को सौंप कर भीमसिंह स्वयं जोधपुर वापस लौट गया। मानसिंह दुर्ग के भीतर रहकर अपनी रक्षा करता रहा। परन्तु समय के साथ-साथ उसकी कठिनाइयाँ बढ़ती गई। खान पीने की वस्तुओं का अभाव होने लगा। ऐसी स्थिति में अवसर पाकर वह आस पास के गांवों और नगरों को लूटने लगा और आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर दुर्ग में लौट आता और फिर अपने साथियों के साथ लूटमार के लिये निकल पड़ता। जब वह पाली नगर को लूटने गया तो उसका जीवन संकट में पड़ गया। वापसी में भीमसिंह की सेना ने उस पर अचानक आक्रमण कर दिया। उस समय वह पैदल ही चल रहा था। परन्तु सौभाग्य से आहोर के सरदार ने उसे खींच कर अपने घोड़े पर बैठा कर तेजी के साथ वहाँ से पलायन कर दिया। अन्यथा उस रोज वह मारा जाता अथवा निश्चित तौर पर बंदी बना लिया जाता। दोनों भाइयों के इस संघर्ष में राठौड सरदार समय समय पर दोनों की ही सहायता कर रहे थे और इसीलिये मानसिंह इतने दिनों में सफलता के साथ प्रतिरोध कर पाया था। सामन्त लोग भी भीमसिंह को कठोर अव्यवहारिक और अत्याचारी समझते थे। भीमसिंह का व्यवहार भी सामन्तों के प्रति अच्छा न था। उसमें पदच्युत रामसिंह के सभी गुण विद्यमान थे। जो सामन्त जालोर पर आक्रमण करने के लिये गये थे उनकी असफलता से खिन्न होकर भीमसिंह ने उन्हें धमकी दी थी कि तुम नागों को घोड़ों के स्थान पर सवारी के लिये बैल देने होंगे। इसी प्रकार की कुछ अन्य बातें भी कहीं। सामन्तों ने इसको अपना अपमान समझा और वे लोग घेराबंदी का काम छोड़कर गोड़वार की प्रमुख जागीर घानेराव चले गये। मानसिंह ने उन्हें अपने पक्ष में आने का निमन्त्रण भेजा परन्तु इस गृह-युद्ध से दुःखी होकर सामन्त लोगों ने मारवाड ही छोड़ दिया और आश्रय के लिये पड़ौसी राज्यों में चले गये। भीमसिंह ने उनकी तनिक भी परवाह न की और उनकी जागीरों पर अधिकार कर लिया। ऊदावतों की प्रधान जागीर नीमाज पर आक्रमण किया गया और लम्बी घेराबंदी के बाद उस पर अधिकार कर लिया गया। यह सफलता वेतनभोगी सेना के द्वारा प्राप्त की गई थी। इसके बाद इस सेना को भी जालोर भेज दिया गया।

अपने समर्थकों द्वारा मारवाड से पलायन और दिन प्रतिदिन कम होते जा रहे साधन और जब दुर्ग के नीचे स्थित नगर पर भीमसिंह का अधिकार हो गया तो युवक मानसिंह को कहीं भी आशा की किरण न दिखाई पड़ी। इन दिनों दुर्गरक्षक सेना के खाने के लिये केवल मक्का का कुछ आटा रह गया था। अब भूख से प्राण देने अथवा आत्म समर्पण करने के अलावा दूसरा कोई मार्ग न बचा था। इस संकट की वेला में आक्रमणकारी सेना के प्रधान सेनापति के दूत ने आकर उससे कहा कि हम सब

लोग आपकी आज्ञा मानने को तैयार हैं। हम आपको मारवाड के सिंहासन पर देखना चाहते हैं। आप निर्भीक होकर दुर्ग से बाहर आ जाइये। संवत् 1860 के कार्तिक (1804 ई०) मास के दूसरे दिन मानसिंह को यह निमन्त्रण मिला और यह सूचना भी मिली कि भीमसिंह की मृत्यु हो गई है। ग्यारह वर्षों तक भयंकर विपदाओं का सामना करने के बाद उसका भाग्य चमक उठा। उसे इस सूचना पर विश्वास न हुआ यद्यपि दूत ने राजमन्त्री इन्द्रराज के हाथ का लिखा हुआ पत्र उसको दे दिया था। मानसिंह ने राजगुरु देवनाथ को शत्रु के शिविर में जाकर वस्तुस्थिति का पता लगाने को कहा। गुरु के वापस आने के बाद वह दुर्ग के बाहर निकला। जो सेना उसको बंदी बनाने के लिये आई थी, उसने बड़े सम्मान के साथ उसका अभिनन्दन किया।

कहा जाता है कि गुरु आत्माराम के उत्तराधिकारी ने बहुत पहले ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि संकट की चरम सीमा के तुरन्त बाद मानसिंह का भाग्योदय होगा। संवत् 1860 (1804 ई) में मिगसर महीने के पाचवें दिन मानसिंह मारवाड के सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठने के कुछ दिन बाद ही उसे पोकरण सरदार के विरोध का सामना करना पड़ा। इस गर्वीले सरदार जो चापावत शाखा का दूसरा और मरूभूमि का सब शक्तिशाली सरदार था का नाम सवाईसिंह था। उसने अन्य सामन्तों के साथ मिलकर एक नया कुचक्र चलाया। उसने एकत्रित सामंतों को कहा कि भीमसिंह की विधवा रानी गर्भवती है। इसलिये हम सब लोग यह प्रतिज्ञा करें कि यदि रानी के पुत्र उत्पन्न होगा तो मानसिंह को सिंहासन से उतार कर उसका राजतिलक करेंगे। सामन्तों ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह सामन्त सन्निंत दुर्ग में गया और भीमसिंह की रानी को वहां से लाकर नगर के महल में रखा। सामन्तों ने उसकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। इसके बाद उन्होंने एक सभा की जिसमें मानसिंह भी उपस्थित था। उसने भी यह बात मान ली कि यदि रानी के पुत्र हुआ तो वह मारवाड का उत्तराधिकारी होगा और उसे नागौर तथा सिवाना के परगने दे दिये जायेंगे और यदि पुत्री हुई तो ढूंढाड के राजकुमार के साथ उसका विवाह कर दिया जायगा।

इन राज्यों में राजा के मरणोपरान्त जन्म लेने वाले शिशु प्राय आंतरिक संघर्ष के बीज बोते रहे हैं। एक पक्ष उसे 'छलिया' कहकर उसको मान्यता नहीं देगा तो दूसरा पक्ष उसको 'असली' बताकर उसका पक्ष समर्थन करेगा। कुछ समय बाद विधवा रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया परन्तु उसके प्राणों के भय से उसके जन्म को छिपाकर रखा तथा उसे एक टोकरी में छिपाकर अपने एक विश्वस्त व्यक्ति के साथ उसे सवाईसिंह के पास पोकरण भिजवा दिया। उसने इस बच्चे का अशुभ नाम "धोकल" रखा और उसके पालन पोषण की उचित व्यवस्था की। दो वर्ष तक बच्चे के जन्म की बात गोपनीय रखी गई और शायद किसी को पता भी नहीं

चलता यदि मानसिंह न पिछली बातो को भुलाकर अपने साम तो के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया होता। सिंहासन पर बठन क बाद वह उन साम तो के सम्मान और अधिकारो का तो ध्यान रखन लगा जि होन जालौर की घेराव दी के समय उसे सहायता दी थी पर तु जिन साम तो न उनके विरुद्ध भीमसिंह का साथ दिया था उनके प्रति कठोर और अनुचित व्यवहार करने लगा। उसके समथक साम तो मे केवल दो सरदार ही उसके वश क थे अ या म भाटी राजपूत और कायमदास के नेतृत्व म विष्णुस्वामीनाम[2] का एक दल था।

दो साल बाद सवाईसिंह न अपने पक्ष के साम तो का नवजात राजकुमार के *बारे म सूचित कर दिया। फिर सभी मानसिंह के पास पहुचे और उस सारा वृत्ता त* सुनाकर उस बच्च (धोकलसिंह) के लिये नागौर और सिवाना की माग की। मानसिंह न उन लोगो स कहा कि जाच पडताल से यदि यह प्रमाणित हो गया कि वह वास्तव म भीमसिंह का लडका है, तो म निश्चित रूप से अपने वचन को पूरा करूंगा। विधवा रानी को अपन पुत्र की जान का भय उत्पन्न हो गया, अत उसन स्पष्ट कह दिया कि धोकलसिंह मेरा लडका नही है। साम तो का रानी का उत्तर भिजवा दिया गया। मानसिंह का अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसकी सारी चि तायें दूर हो गइ। चू कि धोकलसिंह के पदा होन के पहले इस बात का कोई प्रमाण न रखा गया था कि भीमसिंह की विधवा रानी गभवती है अत रानी के उत्तर से साम तो को विश्वास हो गया कि धोकलसिंह भीमसिंह की रानी से पदा नही हुआ।

सवाईसिंह और उसके समथको को नीचा देखना पडा। पर तु उसन शस्त्र-बल का सहारा लेकर गहन नीति का अवलम्बन किया जिसके परिणामो के बारे म उसने भी नही सोचा था और जिसके कारण न केवल उसका अपना सवनाश हुआ अपितु उसक देश की स्वत त्रता अजनबी लोगो के हाथ म स्थानातरित हो गई। उसका पहला काम धोकलसिंह क लिये पोकरण से भी अधिक सुरक्षित स्थान खोजना था और तदनुसार उसे शेखावाटी मे ले जाकर छत्रसिंह भाटी की देखरेख म खेतडी के अभयसिंह[3] की शरणस्थली म रखना था। इसके बाद वह अपनी योजना को कायरूप देने मे लग गया जिससे एक पराक्रमी सनिक के साथ साथ एक दक्ष षडय त्रकारी के रूप म उसकी प्रतिभा का पता चलता है।

मारवाड के स्वर्गीय राजा भीमसिंह ने मेवाड क राणा की पुत्री कृष्णा-कुमारी[4] के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा था, पर तु विवाह का निणय हो पाता उससे पहले ही भीमसिंह की मृत्यु हो गई। यह साधारण सी घटना सवाईसिंह के लिय अपना कुचक्र चलाने के लिये पर्याप्त थी। उसन छिप तौर पर जयपुर क विलासी राजा जगतसिंह का राजा भीम के स्थान पर कृष्णाकुमारी का हाथ मागन

के लिये उकसाया। बात तय हो जाने के बाद, चार हजार मनिको की सुरक्षा में कृष्णाकुमारी की सगाई के लिये जयपुर से आवश्यक सामान रवाना किया गया। इसी समय सवाईसिंह ने मानसिंह को उकसाया कि जगतसिंह के साथ कृष्णा का का विवाह हो जाने से उसके गौरव को भारी धक्का लगेगा। उसकी सगाई का प्रस्ताव मारवाड के सिंहासन के साथ हो चुका है, सिंहासन पर बैठने वाले के साथ नहीं। सवाईसिंह की दवा काम कर गई। मानसिंह ने तत्काल सरदारों को अपने सैनिक दस्तों के साथ उपस्थित होने के आदेश जारी किये। तत्काल तीन हजार राठौड सैनिक एकत्र हो गये। उन्हें लेकर मानसिंह आगे बढ़ा। मेवाड की सीमा पर पड़ाव डाले हीरासिंह की अडत सेना को भी साथ में ले लिया गया और जयपुर से आने वाले सैनिकों को मार कर खदेड दिया गया तथा भेंट उपहार की सभी वस्तुओं को लूट लिया गया। जगतसिंह ने मानसिंह के इस आचरण पर तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी। अब दोनों राज्यों में भावी युद्ध की तैयारी होने लगी।

इस प्रकार नाटक का पटाक्षेप करके, सवाईसिंह ने अपना नकाब हटा दिया और वह खेतडी चला गया और वहाँ से वह धोकलसिंह को साथ लेकर जगतसिंह के के पास जयपुर आया। यहाँ सवाईसिंह ने एक ही थाली में धोकलसिंह के साथ खाना खाकर उसकी वैधता का प्रमाण दिया और मारू के उत्तराधिकारी के रूप में उसके अधिकार को मान्यता दी गई, उसे भीमसिंह की एक अन्य विधवा की बाहों में देकर सार्वजनिक तौर पर उसके उत्तराधिकार की घोषणा की गई। धोकलसिंह के अधिकार को इस तरह से पुख्ता बनाकर तथा उसे आमेर का भानजा सिद्ध करके सवाईसिंह ने अपना मनोरथ पूरा कर लिया। मारवाड के वे सामन्त जो तथा कथित धोकल के अधिकार को राजा मानसिंह से अधिक सर्वोच्च मानते थे, उसके ध्वज के नीचे एकत्र होने लगे। ऐसे लोगों में बीकानेर का राजा भी सम्मिलित था। वह राठौड वंश का एक स्वतन्त्र शासक था। उसके समर्थन से धोकल का पक्ष न्याय पूर्ण प्रतीत होने लगा। मारवाड के अधिकांश सामन्त उसके पक्ष में हो गये और मानसिंह लगभग अकेला पड गया। फिर भी, अपनी जाति के वंशानुगत पराक्रम के साथ वह अपने शत्रुओं का सामना करने के लिये अपने राज्य की सीमा की तरफ बढ़ा। जयपुर राजा के नेतृत्व में जयपुर की सेना तथा धोकल के समर्थक राठौड सरदारों के सैनिक दस्तों की संयुक्त शक्ति एक लाख सैनिकों से अधिक थी। यह संघर्ष जो वास्तव में मेवाड की राजकुमारी को लेकर उत्पन्न हुआ था में भाग लेने के लिये भारत के दूरवर्ती स्थानों से भी शूरमा आ पहुंचे थे। मराठों को भी इस समय लूटमार करके लाभ उठाने का अच्छा अवसर मिला। उनके दल दोनों ही पक्षों की सहायता के लिये आ पहुंचे। दोनों दलों का उद्देश्य एक जैसा ही था। धोकल और जयपुर के पक्ष को न्यायोचित मानने वाले मराठों का सबल तर्क जयपुर का समृद्ध राजकोष था। मानसिंह का केवल होल्कर का सहारा था क्योंकि एक बार उसने होल्कर के परिवार को आश्रय देकर उस पर उपकार किया था। परन्तु सवाईसिंह

ने होल्कर जा मानसिंह के शिविर से केवल अठारह मील की दूरी पर शिविर लगाये हुए था को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। उसने होल्कर का सदेश भिजवाया कि यदि वह मानसिंह की सहायता न करके सीधा कोटा चला जाय तो उसको वहा पहुचने पर एक लाख रुपया भेट म दे दिया जायगा। अत होल्कर मानसिंह को दूसरे दिन प्रात मिलने को कहकर वहा से सेनासहित चला गया। इसके बाद जगतसिंह और उसके साथी मानसिंह की तरफ बढे जो गागोली नामक स्थान पर डेरा डाले पडा था। जब दोनो ओर की सेनाएँ एक दूसरे के सामने आ पहुँची तो मानसिंह के साम तो ने खडे होकर उसका अभिवादन किया। उसने सोचा कि साम त लोग उससे नेतृत्व ग्रहण करने का अनुरोध कर रहे हैं पर तु वे तो उसे अलविदा कहने आये थे और ज्यो ही जयपुर की सेना ने गोले दागने शुरू किये, वे लोग शत्रु पक्ष की ओर चले गये। इस सकट के समय केवल कुचामन, आहोर जालौर[5] और नीमाज के सरदार ही सैनिक दस्तो के साथ उसके पास रह गये। इसके अलावा बू दी के गोलदाज भी उसके पक्ष मे बने रहे। मानसिंह हाथी पर सवार था और अपने प्राणो को सकट म डालकर लड रहा था। यह देखकर कुचामन के ठाकुर शिवनाथसिंह ने उसके पास जाकर उसको हाथी से नीचे उतार कर एक तेज घोडे पर बिठाकर युद्ध से दूर चले जाने का अनुरोध किया। मानसिंह ने कहा कि वह अपनी जाति का पहला शासक होगा जो एक कच्छवाहे को पीठ दिखाने का कलक अपने मस्तक पर लगायेगा। पर तु उसे बात माननी पडी और वह मेडता जा पहुँचा। यद्यपि जयपुर राज्य के उनियारा ठाकुर ने उसका पीछा किया था पर तु बू दी के व दूकधारिया और राजा मानसिंह के अपने वेतनभोगी हि दालखा के सनिक दस्ते ने शत्रुओ को उससे दूर ही रखा। मेडता से वह जोधपुर चला आया। उसके समथक सरदार भी जोधपुर मे उससे आ मिले। शत्रुओ ने मानसिंह के शिविर को बुरी तरह से लूटा। सि धिया के एक सेनानायक बालाराव इगल ने अठारह बडी तोपो पर अधिकार जमाया तो शिविर का अ य सामान अमीरखा के आदमियो ने लूटा। प रबतसर और उसके आस पास के गावो को भी लूटा गया।

अब तक सवाईसिंह और धोकलसिंह की योजना पूरी सफल रही थी। जब शत्रु सेना मेडता पहुँची तो जयपुर नरेश न सवाईसिंह को जोधपुर जान तथा धोकल का सिंहासन पर बठान का काम सौपा और स्वय ने वहा से उदयपुर जाकर राजकुमारी स विवाह करने का निश्चय किया। पर तु अपने प्रतिशोध के मध्य भी सवाईसिंह म मानसिंह और मारवाड की गद्दी के हितो मे भेद करने की बुद्धि थी और यद्यपि उसी ने यह सारा कुचक्र चलाया था फिर भी उसकी योजना म जयपुर के हित की उन्नति सम्मिलित नही थी। पर तु इस द्व द्व म एक अ य घटना ने उसकी सहायता की, जिसकी उस आशा भी न थी। उसे यह स्वप्न म भी आशा न थी कि मानसिंह असुरक्षित जोधपुर म रह कर सघर्ष जारी रखेगा। उसका अनुमान था कि वह जालोर के सुदृढ दुग मे आश्रय लेगा और जोधपुर का उसके तथा धोकलसिंह के भाग्य निर्णय

छोड जायगा। वह शत्रु सेना को अपने देश के और अधिक अदर ले जाना नहीं चाहता था, अन तीन दिन तक मडता म ही रोके रखा। उसका अनुमान सत्य निकला। मानसिंह जालोर की तरफ भाग निकला और बीसलपुर तक पहुच गया परन्तु वहाँ पहुचने के बाद अपने एक अधिकारी नानमल सिंघवी क परामर्श पर उसने अपना कार्यक्रम बदल दिया। सिंघवी न उससे कहा यहा से जोधपुर अठारह मील है और जालोर बत्तीस मील आगे है।[6] दोनो तक पहुँचना सरल है। पर तु यदि आप राजधानी पर अपना अधिकार कायम नही रख पाये तो अ य स्थानो पर आपके क्या अवसर होगे। जब तक आप अपने सिंहासन की रक्षा मे कायरत रहेग, आपका पक्ष सबल माना जायगा।" मानसिंह न उसके सुझाव को स्वीकार किया और कुछ घटा म ही जोधपुर वापस पहुँच गया। इस अनपेक्षित परिवतन न सवाईसिंह की योजना को मिट्टी म मिला दिया। जगतसिंह न मेवाड जान का विचार त्याग दिया और वह अपने साथियो की सेना सहित जोधपुर की तरफ बढ चला।

मानसिंह न भी दुग की सुरक्षा की तयारी की। हि दालखा की सेना क चुने हुय तीन हजार लोग कायमदास क नेतृत्व म विष्णुस्वामी सनिक और एक हजार सैनिक अ य शाखाओ–चौहान, भाटी और ई दा कुल मिलाकर पाच हजार सनिको को दुग की रक्षा का भार सौंप दिया। इसके अलावा उसन कुछ सनिक दस्त जालोर की सुरक्षा के लिये और कुछ अमरकोट की सुरक्षा के लिय भी भिजवा दिय। मारवाड के बहुत स साम ता के विरोधी हो जान स उसका अपने सभी साम ता से विश्वास उठ गया और जिन चार साम तो ने अब तक उसका साथ दिया था उन पर भी विश्वास नही किया। जब उ होंने दुग म रहकर शत्रु का सामना करन की अनुमति मागी तो मानसिंह ने अत्यधिक उदासीनता के साथ उनके अनुरोध को ठुकरा दिया। इससे उसके शत्रुओ क पक्ष की वृद्धि ही हुई जि होंने इस समय तक शहर के पास ही डेरा डाल दिया था।

सुरक्षा रहित जोधपुर नगर पर शत्रु पक्ष न बिना किसी प्रतिरोध क अधिकार कर लिया। मराठो और पठानो न जी भर कर नगर को लूटा और प्रजा पर भयकर अत्याचार किय। फलौदी के लोगो न अवश्य ही तीन महीन तक शत्रु का प्रतिरोध किया पर तु अ त म उस नगर को भी आत्मसमपण करना पडा। यह इलाका बीकानेर को दे दिया गया क्योकि वहा की सेना भी जगतसिंह का साथ द रही थी। सवाईसिंह ने सम्पूर्ण मारवाड म धोकलसिंह के नाम की 'आन प्रसारित करवा दी। जोधपुर दुग का पतन होते ही उसके राजतिलक की घोषणा भी कर दी गई। मानसिंह को भी लगा कि जोधपुर दुग को बचाना असम्भव होगा। पाच महीन तक जयपुर की विशाल सेना घेरा डाल बठी रही। सम्पूर्ण मारवाड म लूटमार जारी रही। तभी एक घटना घटित हुई जिसने राठौडो क देशप्रेम को जगा दिया और शत्रु की आशा को निराशा म बदल दिया।

पाच महीने से घेरा जारी था और अभी तक दुग रक्षको का मनोबल नही टूटा था। यद्यपि शत्रु की गोलाबारी स दुग की उत्तर पूर्वी प्राचीर गिर गई थी परन्तु शत्रु सना अस्सी फीट ऊँची सीधी पहाडी पर नही चढ पाये। कुछ दिनो बाद ही मराठा और पठानो की भडत सेना अपना वतन मागने लगी। जगतसिह ने सवाईसिह को व्यवस्था करने के लिये कहा। उसने अपना समस्त धन और अपने समथक सरदारा से रुपया लकर व्यवस्था कर दी। परन्तु कुछ समय बाद फिर वेतन की समस्या आ खडी हुई। मराठा लाग मुख्य सेना का छोडकर चलते बने और अमीरखा न वेतन न मिलने पर पाली पीपाड बिलाडा और अन्य स्थानो को लूटना शुरू कर दिया। इस सम्बन्ध म उसने सवाईसिह के समथक सरदारो की जागीरो का भी नही बख्शा। इस पर व सभी सरदार सवाईसिह के पास गये और उससे अपने साथी अमीरखा को लूटमार से रोकने को कहा। पर तु समस्या धन की थी। जयपुर का खजाना पहले ही खाली हो चुका था और सवाईसिह के पास भी अब धन का अभाव था। अत उसने मानसिह के उन चार समथक सरदारो जिन्होने उसका पक्ष त्याग कर सवाईसिह का साथ देना शुरू कर दिया था, से रुपया देने का अनुरोध किया। इसी बात ने सारा नक्शा ही बदल दिया। उन चारो सरदारो न सवाईसिह का शिविर छोड दिया और व सीधे अमीरखा के शिविर म चले गये। उसे राजा मानसिह के पक्ष म करने तथा धोकलसिह का साथ छोडने क लिये तयार करने मे कोई खास कठिनाई नही आई। उ होने अमीरखा को समझाना कि इस समय जयपुर नरेश अपनी सम्पूण सेना के साथ जोधपुर म है। अत असुरक्षित जयपुर पर आक्रमण कर काफी धन सम्पत्ति लूटी जा सकती है। अमीरखा जगतसिह से वसे भी चिढा हुआ था क्योकि उसने मारवाड के जिन साम त्ता की जागीरो म लूटमार की थी उ होने जगतसिह से उसकी शिकायत की थी और जगतसिह ने अमीरखा की भत्सना की थी। इसलिये राठौड सरदारो के उकसाने पर वह जयपुर की तरफ चल पडा। इस पर जगतसिह न अपने सेनापति शिवलाल को खान का दमन करने के लिय भेज दिया। शिवलाल की सना अमीरखा और चारो राठौड सरदारो की सना से काफी अधिक थी, अत व लोग लूनी नदी की तरफ भाग खडे हुये। शिवलाल ने उनका पीछा किया और उ ह वहा से खदेड दिया। वे लोग हरसोर होते हुए जयपुर की सीमा पर स्थित फागी जा पहुचे। चू कि फागी जयपुर की आखिरी सीमा पर स्थित था अत शिवलाल ने उनका और अधिक पीछा करना आवश्यक न समझा और अपनी सेना को वही पर तनात कर वह अकेला जयपुर लौट गया। इस समय तक अमीरखा पीपलू नामक स्थान पर पहुच चुका था। वही पर उसे शिवलाल के बारे मे जानकारी मिली। उसने इस अवसर का लाभ उठाने की सोची। इस समय मोहम्मदशाहखा और राजा बहादुर की सेनाए इसरदा नगर का घेरा डाले पडी थी। अमीरखा ने उन दोनो को अपने साथ जयपुर आक्रमण के लिये तयार कर दिया। इसके बाद उसने हैदराबादी रिसाला दल जो इन दिनो म अपनी लूटमार के लिये काफी कुख्यात हो चला था को भी

अपने साथ मिला लिया। इन सबको साथ लेकर उसने शिवलाल की सेना पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया। पराजित सेना की समस्त युद्ध सामग्री लूट ली गई। इसके बाद विजयी सेना जयपुर की तरफ बढ़ी और राजा मानसिंह का संकट से मुक्ति मिल गई और सवाईसिंह को इसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ा।

जोधपुर का घेरा डालने वाले नेताओं में पिछले कई दिनों से तनाव पैदा हो गया था। बीकानेर और शाहपुरा के राजा तो अपनी सेनाओं सहित वापस भी लौट गये परन्तु जगतसिंह और सवाईसिंह ने उनकी कोई परवाह नहीं की। परन्तु थोड़े दिनों बाद ही कछवाहा राजा को सूचना मिली कि शिवलाल के नेतृत्व में जो सेना भेजी गई थी, वह नष्ट हो गई है और अमीरखां तथा मुट्ठी भर राठौड़ों ने राजधानी जयपुर को घेर लिया है। सवाईसिंह को इन बातों की पहले से ही जानकारी थी और उसने जगतसिंह के दीवान रामचन्द को घूस देकर अपने पक्ष में कर लिया और जगतसिंह को अंधेरे में रखा। जगतसिंह की माता ने जब अपने विशेष दूत के द्वारा जयपुर की विपदा की सूचना भिजवाई तब जगतसिंह को वस्तुस्थिति की जानकारी मिली। उसे अपने प्राणों की चिन्ता पैदा हो गई जिससे वह क्रोधित और दुःखी हो उठा। उसने तुरन्त जोधपुर छोड़ने का निश्चय कर लिया। इस अभियान के दौरान उसने लूट में जो बीस तोपें और धन सम्पत्ति प्राप्त की थी, उसे अपने सामन्तों की देख रेख में जयपुर भिजवाने की व्यवस्था करने के बाद, उसने स्वयं अपनी सुरक्षा के लिये मराठा सेनापति[7] को बारह लाख रुपये देने का आश्वासन देकर बुला भेजा। इतना ही नहीं उसने अमीरखां को भी कहला भेजा कि यदि वह उसकी वापसी में विघ्न नहीं डालेगा तो उसे नौ लाख रुपया पुरस्कार में दिया जाएगा। इसके बाद वह जोधपुर से रवाना हुआ। जाने के पूर्व वह अपने शिविर में आग लगा गया जिसमें बहुत सा मूल्यवान सामान जल कर राख हो गया। इसके बाद उसने अपने प्यारे हाथी को भी मरवा डाला क्योंकि वह जगतसिंह को उसकी इच्छानुसार तेज गति से न ले जा सका था।

इसके उपरान्त भी उसके संकट दूर न हुए। जिन चार राठौड़ सामन्तों ने अमीरखां को उकसा कर जयपुर पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया था वे जगतसिंह के शत्रु बन हुये थे। उन्होंने मेड़ता से बीस मील दूर जाकर जगतसिंह का मार्ग रोकने तथा लूट में प्राप्त धन को लूटने का निश्चय किया। इसके लिये उन्होंने अपनी जाति के लोगों की एक विशाल सेना एकत्र कर ली और इन्द्रराज सिंघवी को अपना सेनापति बनाया। यह व्यक्ति राजा मानसिंह के दो पूर्वाधिकारियों के शासन काल में मारवाड़ के दीवान के पद पर काम कर चुका था। वह भी उन चारों सामन्तों की तरह अपने प्रति राजा के मन में उठे अविश्वास को दूर करना चाहता था। वे सभी लोग अपना रक्त बहाकर जगतसिंह द्वारा लूटी गई धन सम्पत्ति को उससे छीन कर मानसिंह को अर्पित कर उसका विश्वास अर्जित करने का निश्चय कर

चुक थ । दोना राज्या क सीमा त पर दाना पक्षा का सामना हुम्रा । यद्यपि यह सघप थोडे ममय क लिये ही लडा गया था पर तु नहुत भयकरता क साथ लडा गया । कछवाह लाग राठोडा के ग्राक्रमण का सामना न कर पाय ग्रोर भाग खडे हुये । मारवाड स लूटी गई ममस्त धन सम्पत्ति तापा महित राठोडा क हाथ लग गई । लूट के इस सामान का कुचामन क दुग म रख दिया गया । विजयी राठोड किशनगढ के राजा क पास गय । वह भी राठाड था परन्तु ग्रभी तक तटस्थ बना रहा था । सरदारा न ग्रमीरखा की सहायता का ग्रपन पक्ष क लिय जारी रखन क लिये उसस धन की माग की । उसन दा लाख रुपय दिए । इन रुपया को प्राप्त करन के वाद ग्रमीरखा जाधपुर स चला गया ग्रोर भविष्य म मानसिह का समथक बन रहन का ग्राश्वासन दता गया । मानसिह न बडे सम्मान क माथ ग्रपन साम तो का स्वागत किया । उन लोगा क पुरान ग्रपराध क्षमा कर दिय गय ग्रोर उनकी जागीरे उन्ह वापस लौटा दा गइ । इन्द्रराज सिघवी का राज्य की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया ।

सन्दभ

1 टाड साहब न लिखा है कि उनक गुरु यति ज्ञानच द्र इमा जालिमसिह के विद्यार्थी थ ।

2 यह सना दल विष्णु का भक्त था । मह त क स्वाथ की रक्षा क लिय यह प्राणपण से युद्ध करता था ग्रोर मह त की ग्राना स दूमरो का साथ भी दता था ।

3 ग्रभयसिह शखावत शाखा का एक प्रभावशाली सरदार था ग्रोर दूसरा को शरण दन क लिये विख्यात था ।

4 कृष्णाकुमारी क विवाह को लेकर जा विग्रह उत्पन्न हुग्रा उसका विस्तृत विवरण पहल किया जा चुका है ।

5 इस समय जालौर खालस क ग्र तगत था, किसी भी सरदार की जागीर नही था । ग्रत जालौर का सरदार लिखना ठीक नही है ।

6 बीसलपुर स जालौर चालीम मील दूर है । पहल का एक कोस ढाई मील के वरावर था ।

7 जिस समय जगतसिह न स मराठो स सहायता मागी थी कनल टॉड स्वय सि धिया के शिविर मे उपस्थित था । टाड ने जगतसिह की सहायता क लिय भेजी जान वाली सना को भी देखा था ।

अध्याय 45

मानसिह और ईस्ट इण्डिया कम्पनी

राजा मानसिह ने अत्यधिक सम्मान के साथ अमीर खा का आदर सत्कार किया, उसे दुग मे ही रहने के लिये एक महल दे दिया गया और बहुमूल्यवान उपहार दिये गये। इसके बाद मानसिह ने उससे सवाईसिह के विद्रोह को कुचलने का बात की। अमीर खा ने सवाईसिह के समूल विनाश का आश्वासन दिया। दोनो न अपनी अपनी पगडी बदल कर आत्मीयता का परिचय दिया। मानसिह ने अमीर खा को तीन लाख रुपये भी दिये जिससे वह अपन सनिको का वेतन चुका सके।

जोधपुर से जगतसिह के चल जान क बाद सवाईसिह धोकलसिह क साथ नागौर चला आया। वह अपने समथको के साथ भावी कायक्रम पर विचार विमश करने लगा। तभी अमीर खा के एक दूत ने आकर निवेदन किया कि अमीर खा नागौर से दस मील दूर मु डियार स्थान पर ठहरा हुआ है और यदि आपकी अनुमति मिल जाय तो वह नागौर की पीर तारकीन मस्जिद म आकर नमाज पढ लिया कर। बख्तसिह ने केवल इसी मस्जिद को भूमिसात नही किया था। सवाईसिह ने अमीर खा की प्राथना को स्वीकार कर लिया और अमीर खा अपने कुछ साथियो क साथ नागौर जा पहचा। मस्जिद मे नमाज पढी और फिर शिष्टाचारवश सवाईसिह स मिलने चला गया। लौटने के पूव उसने सवाईसिह से कहा कि मैंन मानसिह का बहुत उपकार किया पर तु उसने पुरस्कार क बदले म हमार साथ बहुत ही दु यवहार किया है जिसे हम कभी नही भुला सकेंगे। इससे तो अच्छा होता कि वह अपनी सेना को किसी अ य की सेवा मे रखता। सवाईसिह न उसके सकेत को समझते हुए उसके सामन प्रस्ताव रखा कि खान अपनी शत बताये और कहा कि जिस दिन सिहासन पर धोकलसिह का अधिकार हो जायेगा खान को बीस लाख रुपया दे दिया जायेगा। खान ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कुरान को स्पश कर प्रतिज्ञा की। राजपूतो की परम्परा क अनुसार अमीर खा ने सवाईसिह से अपनी पगडी बदल कर उसका विश्वास अजित कर लिया। इसके बाद उसने धोकलसिह[1] का हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा कि मैंन जो निश्चय किया है प्राण दकर भी उसका पूरा करू गा और आपको जोधपुर के सिहासन पर बठाउगा। इसके बाद वह अपन शिविर

को लौट गया और वहा से धाकलसिह और उसके सरदारो को दूसरे दिन अपने शिविर मे दावत पर आने का निमत्रण भेजा जो स्वीकार कर लिया गया।

सवत् 1864 (1808 ई) के चत मास के उन्नीसवें दिन के प्रात सवाईसिह अपने पाच सौ सवारो के साथ अमीर खा के शिविर की तरफ चल पडा। अमीर खा ने अपनी योजनानुसार खूनी सघर्ष की सतर्कता के साथ पूरी तयारी कर रखी थी। अतिथियो के आने पर उनका अत्यधिक सम्मान के साथ स्वागत-सत्कार किया गया। एक बार पुन पगडिया बदली गई। अतिथियो के मनोरजन के लिये नाच गाना शुरू हुआ। चारो तरफ आन दोत्सव के सिवा और कोई चीज नजर नही आ रही थी। तभी अमीर खाँ उठ खडा हुआ और थोडे समय के लिये अपनी अनुपस्थिति के लिये क्षमा माग कर बाहर आ गया। नत्य सगीत चलता रहा। तभी तबले की एक जोरदार थाप के साथ ही नृत्य ब द हो गया और चारो तरफ से पठान सनिको ने अपने अतिथियो को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया। सवाईसिह सहित बयालीस प्रमुख सरदार मार गये। उनम स प्रमुख लोगो के सिर काट कर मानसिह के पास भेज दिये गये। अ य बहुत स राठौड सनिक भी मारे गये। धाकलसिह जो इस समय नागौर मे था इस हत्याकाण्ड को सुनते ही नागौर से भाग गया। नागौर को दुगरक्षक सना भी भाग खडी हुई। अमीर खा अपनी सेना सहित नागौर पहुचा और उसने वहा की सम्पूर्ण सम्पत्ति लूट ली जिसमे बख्तसिह की तीन सौ तोपे भी थी। अमीर खा ने इन तोपो को अपने अधिकृत दुगो मे भिजवा दिया। इसके बाद वह जोधपुर लौट आया। मानसिह ने उसका अपूर्व स्वागत किया। उसे दस लाख रुपये पुरस्कार मे दिये और मू डवा तथा कुचेरा नामक दो गाव जागीर म दिये। प्रत्येक गाव की आय तीस हजार रुपया वार्षिक थी। इसके अलावा उसे एक सौ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से भोजन खच दिये जाने का आदेश हुआ। इस प्रकार अमीर खा को अपने विश्वासघात का पुरस्कार मिला।

सवाईसिह और उसके समर्थको के हत्याकाण्ड से राजा मानसिह के विरुद्ध गठित सघ का अस्तित्व समाप्त हो गया। यद्यपि मानसिह अपने विरोधियो का सफाया करने म सफल रहा परन्तु जिस उपाय से उसने अपना हित साधन किया था उसके परिणामस्वरूप आगे चल कर उसे तथा उसके देश को अनेक प्रकार की विपदाओ तथा अत्याचारो को झेलना पडा। धोकलसिह के दल का सफाया हो जाने के बाद उस दल के अ य सदस्यो के विरुद्ध कठोर कदम उठाये गये। अमीर खा के सनिको ने जयपुर के समृद्ध देश को पदाक्रा त कर दिया और बीकानेर के विरुद्ध एक सनिक अभियान भेजने का निश्चय किया गया। इ द्रराज के नेतृत्व मे एक सेना भेजी गई। इस सना मे राठौडो के बारह हजार सनिको के साथ अमीर खाँ की सेना तथा पैंतीस तोपो के साथ हि दाल खाँ का फौजी दस्ता भी सम्मिलित था। बीकानेर नरेश ने शीघ्रता से अपनी सना को एकत्र किया और अपनी जाति के प्रधान राजा की सना से मोर्चा लेने के लिये चल पडा। बापरी नामक स्थान पर दोनो का

आमना सामना हुआ। प्रारम्भिक संघर्ष में ही बीकानेर के दो सौ सैनिक मारे गये। बीकानेर का राजा अपनी सेना सहित भाग कर गजनेर चला गया। दूसरा पक्ष भी उसका पीछा करता हुआ गजनेर तक बढ आया। यहां पर समझौते की बातचीत शुरू हुई और शर्तों पर सहमति हो गई। बीकानेर ने दो लाख रुपये युद्ध व्यय के तथा फलोदी का इलाका जो कि उसे मानसिंह के विरुद्ध सहयोग देने के पुरस्कार रूप में मिला था, वापस लौटाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार युद्ध का अन्त हुआ।

इन दिनों अमीरखां मारवाड का भाग्य विधाता बन बैठा था। उसने एक सैनिक दस्ते के साथ गफूरखां को नागौर में नियुक्त किया और मेडता परगने की समृद्ध भूमि अपने अनुयायियों में बांट दी। उसने नावां में भी अपनी चौकी कायम कर दी जिससे नावां और सांभर की नमक की झीलों पर उसका नियन्त्रण सुदृढ़ हो गया। इस समय इन्द्रराज और धर्मगुरु देवनाथ ही मानसिंह के मुख्य सलाहकार थे और विदेशियों के हाथों सामन्तों को जिन अत्याचारों को सहन करना पडा, उसके लिये वे इन्हीं लोगों को दोषी मानने लगे थे। उन दोनों का खात्मा करने के लिये अब सामन्तों ने अमीरखां से सांठ गांठ की। लोभी अमीरखां ने सात लाख रुपये के बदले में इस काम को करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद एक षड्यन्त्र रचा गया। उसके कुछ पठान सैनिक अपना बकाया वेतन मांगने के लिये इन्द्रराज सिंघवी के पास गये और बातचीत में तनाव बढ़ता गया और उसी माहौल में पठानों ने इन्द्रराज सिंघवी और गुरु देवनाथ की हत्या कर दी।[2]

देवनाथ की हत्या से राजा मानसिंह की विचारशक्ति को भारी धक्का लगा। उसने अपने आपको महल में बन्द कर दिया और राज दरबार में जाना भी बन्द कर दिया। मन्त्रियों, सरदारों और अपने परिवार के सदस्यों के साथ भी बातचीत करना बन्द कर दिया। इस पर सामन्तों ने उसके एक मात्र पुत्र छतरसिंह को उत्तराधिकारी नियुक्त करने के लिये उस पर दबाव डाला जिसे उसने स्वीकार कर लिया और अपने हाथ से उसके मस्तक पर राजतिलक किया। परन्तु युवक छतरसिंह भोग विलास में डूब गया। उसने भी राजकार्य की तरफ ध्यान नहीं दिया। कुछ के अनुसार वह अत्यधिक विलासिता के कारण मर गया। कुछ के अनुसार उसने एक सरदार की लडकी का धर्मनष्ट करने का प्रयास किया था। उस समय लडकी के पिता के जोरदार प्रहार से वह घायल हो गया और गहरे घाव के कारण कुछ दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई।

असमय में ही छतरसिंह की मृत्यु ने मानसिंह के मानसिक उन्माद को और अधिक बढ़ा दिया। अब उसने सभी प्रकार के राजकीय कार्यों से अपना हाथ खींच लिया। उसे अपने प्राणों की इतनी चिन्ता लगी कि उसे अपनी पत्नी पर भी विश्वास न रहा। उसने खाने पीने की सभी चीजों का लेना बन्द कर दिया। केवल एक विश्वस्त सेवक द्वारा लाया जाने वाला भोजन करता था। उसने स्नान करना तथा बाल बनवाना भी बन्द कर दिया और ऐसा लगने लगा कि वह पागल हो गया है।

अथवा पागलपन का दिखावा कर रहा है। वह किसी से कुछ नही बोलता था और एक मूक की भांति मन्त्रियो की बात सुनता रहता था। मन्त्रियो को राजकाय के बारे मे उससे बाते करनी पडती थी। परन्तु वह उनकी किसी भी बात का उत्तर न देता था। मानसिंह की इस अवस्था के बारे मे दो प्रकार की बाते कही जाने लगी। कुछ लोगो का कहना था कि गुरु देवनाथ की हत्या से उस गहरा मानसिक आघात पहुचा था। जबकि दूसरो का कहना था कि उसे किसी प्रकार का कोई रोग न था। अपने विरोधियो द्वारा उसके प्राण लेने की जो कोशिश की जा रही थी उससे बचने के लिए उसने एकान्त जीवन बिताना शुरू किया था। संक्षेप मे अमीर खा के साथ उसकी संधि ने उसे आभास करा दिया कि इन हत्याओ मे खान का हाथ रहा होगा और उसकी नीति इस समय अपने को खान के षडयन्त्रो से बचाने की थी। मारवाड के सामन्तो ने पोकरण के भूतपूर्व सरदार सवाईसिंह के पुत्र सालिमसिंह को बुलाकर शासन का प्रधान बनाया और उसने शासन का समस्त अधिकार अपने हाथ मे लेकर राज्य मे अपने प्रभुत्व का विस्तार किया। जब तक अंग्रेजो के हाथ मरुभूमि तक नही पहुचे मानसिंह वैसा ही बना रहा।

सन् 1817 ई मे जब हम लोगो ने सम्पूर्ण भारत मे शान्ति एव व्यवस्था की स्थापना के लिए राजपूत राजाओ को लूटमार करने वाली शक्तियो का साथ छोड कर हमारा साथ देने के लिए निमन्त्रित किया तो राजा मानसिंह के युवक पुत्र अथवा यो कहिये कि उसके मन्त्रियो ने दूतो को दिल्ली भेजा था। संधि की पुष्टि होने के पूर्व ही युवक छतरसिंह की मृत्यु हो गई। इस घटना से पोकरण गुट भयभीत हो उठा। यह सोचकर कि मानसिंह द्वारा सरकार का काम हाथ मे लेते ही उन पर अत्याचार किया जायेगा। अत उन्होने ईडर के राजकुमार को गोद लेकर उसे मारवाड के सिंहासन पर बैठाने का निश्चय किया। यद्यपि ईडर वालो के लिये यह प्रस्ताव बहुत आकर्षक था परन्तु वहा के राजा ने कहला भेजा कि मेरे यही एक लडका है। यदि मारवाड के सभी सामन्त सर्वसम्मति से इसका प्रस्ताव रखे तो मान्य होगा। किसी गुट विशेष का प्रस्ताव मान्य नही होगा। चूकि सर्वसम्मति प्राप्त करना सम्भव न था, अत सामन्तो ने मिलकर राज्य का भार सम्हालने के लिये पहले मानसिंह से प्रार्थना करने का निश्चय किया। उन लोगो ने उसके पास जाकर मारवाड की नई स्थिति का एक चित्र उसके सामने प्रस्तुत किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ जो संधि तैयार की गई थी उसकी स्वीकृति के लिए उसके आदेश की प्रतीक्षा इत्यादि सभी बाते बतलाई। मानसिंह मौन भाव से सब सुनता गया। उसे अपने राज्य की नवीन राजनैतिक स्थिति का शोचनीय पहलू भी समझ मे आ गया था। इस समय फिर उसको स्वाधीन भाव से राज्य शासन चलाने का सुअवसर मिल रहा था, फिर भी दिखाव के तौर पर वह ऐसा आचरण करता रहा, मानो वह उन्मादी हो। सामन्तो के विशेष आग्रह पर वह पुन राज्य भार संभालने के लिए तैयार हो गया परन्तु अंग्रेजो के साथ की जाने वाली संधि मे उसे संतोष न हुआ

उसने सधि की कुछ धाराओ के प्रति अपना असतोष प्रकट किया, विशेषकर के उस धारा का जिसके अन्तगत यह लिखा हुआ था कि उसके अधीन साम तो की सेना का आवश्यकता पड़ने पर इस्ट इडिया कम्पनी अपनी अधीनता म कर लेगी ।[3] इस बात को वह भली-भाति समझ गया था कि इस धारा से अ त म अधिक असतोषदायक अग्नि के प्रज्वलित होने की सम्भावना है ।

दिसम्बर, 1817 म विष्णुराम व्यास नामक एक ब्राह्मण ने युवराज छतरसिंह की तरफ से यह सधि सम्पन्न की थी और इसके एक साल बाद दिसम्बर 1818 म ईस्ट इडिया कम्पनी ने अपने एक प्रतिनिधि मिस्टर विल्डर को वास्तविक परिस्थिति की रिपोर्ट देने के लिए जोधपुर भेजा । इस समय राज्य का शासन भार दीवान अखयचद और साम ता के प्रतिनिधि सालिमसिंह के हाथो म था । सम्पूर्ण राज्य के सभी पदो तथा दुर्गो मे इसी गुट के अनुयायियो का वचस्व था । फिर भी मृत मत्री इन्द्रराज के भाई फतहराज के नेतृत्व म इस गुट के विरुद्ध असताप की आवाज उठ रही थी । फतहराज को नगर की व्यवस्था का भार सौंपा हुआ था । प्रतिनिधि को यह निर्देश देकर भेजा गया था कि यदि मानसिंह चाहे तो ब्रिटिश सरकार राज्य की अव्यवस्था को दूर करने म उसे सहायता देने को तयार है । प्रतिनिधि तीन दिन तक जोधपुर मे रहा और जाने से पहले राजा मानसिंह से काफी देर तक एकान्त म बात चीत की और इसी दौरान उसने राजा की सहायता के लिये सेना रखने का प्रस्ताव भी रखा ।[4] मानसिंह विचारशील और दूरदर्शी था । उसने अपने मन म विचार किया कि साम तो को नियन्त्रण म लाने के लिए अग्रेजी सेना की सहायता आवश्यक नही है । इस प्रकार की सहायता के दुष्परिणाम समझने म उसे तनिक भी विलम्ब न लगा । अत उसने प्रतिनिधि का उसके प्रस्ताव के लिए धन्यवाद दिया और कहा, "आवश्यकता पडने पर मै कम्पनी से सैनिक सहायता लूगा ।" वह अपने राज्य की व्यवस्था को स्वय ही ठीक करना चाहता था । उसे इसका विश्वास भी था । उसने एक तरफ तो अपने प्रमुख साम तो के भ्रम को दूर कर दिया और दूसरी तरफ इस प्रकार की असमान सधियो से उत्पन्न होने वाले सामान्य परिणामो को नियन्त्रित कर दिया ।

मानसिंह बचपन से ही भीषण कठिनाइयो के मध्य बडा हुआ था । वह पुरानी बातो को भुलाने की चेष्टा करने लगा और साम तो के साथ उदारता का व्यवहार आरम्भ किया । इस समय साम त भी दो गुटो म विभाजित थे । एक राजा के प्रति भक्ति भावना रखते थे और दूसरा गुट प्रतिकूल वातावरण बनाने म सलग्न था । फिर भी, मानसिंह ने दोनो गुटो के साम तो म से योग्य व्यक्तियो को चुनकर राज्य के ऊँचे पदो पर नियुक्त किया । परिणामस्वरूप अपने को असुरक्षित समझने वाले साम त भी अब सुरक्षित अनुभव करने लगे । अग्रेज प्रतिनिधि ने अपने अल्प समय म मानसिंह को यह समझाने का जोरदार प्रयास किया था कि कम्पनी की सैनिक

सहायता के बिना वह अपने राज्य म शान्ति कायम नही कर पायगा । परन्तु मानसिंह का एक ही उत्तर था कि मुझे अपने राज्य म शान्ति कायम करने के लिए बाह्य सहायता की आवश्यकता नही है । उसने अपने उदारवादी कदमो के आधार पर ही इस प्रकार का उत्तर दिया था ।

इसी समय फरवरी, 1819 ई म ईस्ट इडिया कम्पनी क गवनर जनरल की तरफ स मुझे मारवाड राज्य का भी राजनतिक एजन्ट बनाया गया । पर तु कई कारणा स मैं कुछ महीन तक मानसिंह के दरबार म न जा सका । नवम्बर मास म मैं जोधपुर गया और वहा पहुच कर मैंन देखा कि ब्रिटिश प्रतिनिधि के जाने क बाद से अब तक राज्य की व्यवस्था म किसी प्रकार का सुधार नही हो पाया है । उसी ने राजा और राज्य के सभी पदा पर अपना एकाधिकार जमा रखा था । राजा उनके कार्यो म बहुत ही कम हस्तक्षेप करता था । मिन्धिया और पठाना के जो वेतनभोगी सनिक थ उनकी स्थिति बहुत अधिक दयनीय हो चुकी थी । उन्ह पिछले तीन वष स वतन नहीं मिला था और वे लोग राजधानी म प्रजा से भीख माग कर अपना पेट भरत थे अथवा निराहार रहना पडता था । उस समय मैंन तमाम हिसाब देखकर पिछल वेतन म तीस प्रतिशत दिलान की कोशिश की । सेना न इसका स्वीकार भी कर लिया । परन्तु तीन सप्ताह के बाद जोधपुर से मेर चले आने के बाद उस सेना का जो आशा हुई थी वह भी जाती रही ।

राज्य मे याय नाम की कोई व्यवस्था न थी । यदि काई किसी की हत्या भी कर दता ता उस पर ध्यान देन वाला काई न था । कुत्तो को सावजनिक तौर पर खिलाया जाता था जबकि सनिक भूखा मर रह थे । सत्तारूढ गुट का एक मात्र ध्येय सभी लागो का मानसिंह स दूर रखना था ताकि उस पर उनका नियन्त्रण बना रहे । अपन जोधपुर निवास की तीन सप्ताह की अवधि म मैं कई बार मानसिंह स मिला । हम दाना म मत्री भाव उत्पन्न हो गया था । हमन राज्य के पुरान इतिहास तथा स्वय मानसिंह क जीवन के बार म बहुत सी बाते की । मानसिंह न बिना किसी झिझक क अपनी विपदाओ का समूचा वृत्तान्त मुझे सुनाया । मैंन प्रत्युत्तर म कहा कि ' आपकी इन विपदाओ स मै भली भाँति परिचित हू । आपन उन दिना म बडी बुद्धिमानी स काम लिया और उन कष्टा स छुटकारा पाया । अब आप अग्रेज सरकार के मित्र है । आपका हमारी सरकार का विश्वास करना चाहिय । आपकी सभी कठिनाइया थाडे दिना म दूर हा जायेंगी ।

मानसिंह न बडे ध्यान के साथ मेरी बात का सुना और प्रसन्न मुद्रा म उत्तर दिया कि इस राज्य म जो कठिनाइया आप देख रह है बारह महीन क अ दर ही उनका अन्त हा जायगा । मैंन कहा कि यदि आप चाहेंग ता आध समय म ही उनका अन्त हा जायगा । लकिन इस समय जो सुधार बहुत जरूरी थ मैंन सक्षप म उनको

राजा मानसिंह के सामने रखा। वे इस प्रकार थे–1 एक प्रभावकारी शासन व्यवस्था कायम करना। 2 राज्य की वित्तीय व्यवस्था को सुधारना, खालसा भूमि की स्थिति तथा जागीरो को जब्त करना, जो प्राय अन्यायपूर्ण होती थी, सब साधारण के लिये असतोष का कारण बन गयी है। 3 वेतनभोगी सेना की व्यवस्था तथा पुन संगठन की जरूरत क्योकि उसी के ऊपर शासन की व्यवस्था निर्भर है। 4 सामन्ता ने अन्यायपूर्वक राज्य के अनेक नगरो तथा गावो पर अधिकार कर लिया है, इस समस्या को बुद्धिमानी के साथ हल करना। 5 मारवाड के सीमान्ता पर पुलिस की समुचित व्यवस्था करना। दक्षिण की तरफ मर लोगो ने उत्तर मे लरखारी लोगो ने, मरुक्षेत्र की तरफ सराई लोगो ने और पश्चिम की तरफ खोसा लोगो की लूटमार को नियन्त्रित करना। 6 वाणिज्य पर महसूल की दर को कम करना तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा की तरफ ध्यान देना।

मुझे जोधपुर छोडे थोडा सा समय भी न गुजरा था कि सत्तारूढ गुट ने अपनी सकीर्ण नीति से अव्यवस्था को बढावा देने का कार्य किया। उनका ध्येय वित्तीय साधन जुटाना रहा अथवा अपनी पुरानी रजिश रहा, जो मार्ग उन्होने अपनाया वह उचित न था। गोडवार इलाके की प्रमुख जागीर धाणेराव को राज्य के नियन्त्रण मे ले लिया गया और उसके सरदार से जागीर की एक वर्ष की आय वसूल करने के बाद ही उसे उसकी जागीर वापस दी गई। इस उपजाऊ इलाके की छोटी जागीरो को भी इसी प्रकार के अन्याय का सामना करना पडा। चडावल की जागीर को भी जब्त कर लिया गया और भारी जुर्माना लेकर जागीर लौटाई गई। दीवान ने मारवाड की प्रमुख जागीर आऊवा पर भी हाथ डालने की चेष्टा की। परन्तु चापा के उत्तराधिकारी ने गर्व से उत्तर दिया कि मेरी जागीर आजकल की नही है और न ही इस प्रकार जब्त की जा सकती है। इस प्रकार की कार्यवाहियो से सम्पूर्ण राज्य मे असतोष भडक उठा। उन्होने अनुभव किया कि एक गुट विशेष यह मानकर कि एक शक्तिशाली सत्ता उनकी पीठ के पीछे है हमारे मान सम्मान के साथ खिलवाड करना शुरू कर दिया है और राजा के अधिकारो को अपने हाथ मे ले लिया है। ब्रिटिश एजेन्ट की अनुपस्थिति मे सत्तारूढ के अत्याचारो को देखकर मानसिंह एक बार फिर से शासन व्यवस्था से विमुख हो गया। उसने मन्त्री अखयचन्द और फतहराज जिसे बहुत से सामन्तो और उसकी चेहती रानी का समर्थन प्राप्त था, मे सुलह कराने का प्रयास किया। परन्तु अखयचन्द जिसका सेना और राज्य के सभी साधनो तथा दुर्गों पर एकाधिकार था ने सुलह की बात को ठुकरा दिया। उसने अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा का ध्यान मे रखते हुए शहर को छोडकर दुर्ग मे ही रहने तथा अपने विरोधियो को राजा से दूर रखने का निश्चय किया।

इस प्रकार, छ महीने गुजर गये। अखयचन्द का सितारा बुलन्द था। सारे राज्य मे केवल उसी की आज्ञा का पालन होता था। राजा मानसिंह दीवान के कहे

अनुसार ही कदम उठाता था। पर तु तभी अचानक लोगो ने उसके पतन का समाचार सुना। राजा मानसिंह न एकाएक शासन सूत्र अपन हाथो मे ले लिया। उसने अखयच द और उसके साथियो का ब दी बना लिया और इस शत पर जीवनदान देन का *आश्वासन दिया कि उ होने अब तक भ्रष्ट तरीको से जितनी सम्पत्ति अर्जित की* है उसका हिसाब सौप दे। अखयच द ने चालीस लाख रुपये का हिसाब प्रस्तुत किया। इस समार मे हिसाब पूरा होते ही मानसिंह ने उनके लिये दूसरे लोक की व्यवस्था कर दी। राज्य के किलदार नगजी और जागीरदार मूलजी धाधल को विष का प्याला पिलाकर मारा गया और उनके मृत शरीरा को फतहपोल द्वार के बाहर फिकवा दिय गय। धाधल के भाई जीवरा बिहारीदास खीची और एक दर्जी के सिर काट दिये गय। यास शिवदास और श्री कृष्ण ज्योतिषी को भी मृत्यु दण्ड दिया गया। मानसिंह न उन सभी लोगा के साथ कठोर व्यवहार किया जि होन अखयच द के साथ मिलकर राज्य मे अत्याचार किये थे और प्रजा को लूटकर धन-सम्पत्ति जमा की थी। कहा जाता है कि इन लोगो स मानसिंह को जो सम्पत्ति मिली वह एक करोड रुपय से कम न थी। इससे उसे अपनी अगली कायवाही के लिये आवश्यक साधन उपलब्ध हो गये। उसका उपयोग करने मे उसने विलम्ब नही किया और उन सभी का दण्डित किया जिनसे उसे अपना प्रतिशोध लेना था। यदि वह अखयच द और उसके साथियो का यायसगत आखिरी सजा देकर तथा दो तीन उद्दण्ड सरदारा की जागीरे जब्त कर सतोष कर लेता तो शेष लोगो की स्वामिभक्ति और सवाए उसे प्राप्त हो सकती थी। पर तु इस प्रथम सफलता ने उसके प्रतिशोध की अग्नि को प्रज्वलित कर दिया और उसने कुछ अ य सरदारो के साथ भी अपना पुराना हिसाब चुकाने का निश्चय कर लिया। इस सफलता से उसे राहत नही मिली अपितु इसने उसके स देह और अविश्वास को और भी सुदृढ बना दिया। बहुत से साम तो जिनको मानसिंह ने मृत्यु के लिये चुना था, उनको कुछ दिना पूव ही मानसिंह ने अतिरिक्त भूमि देकर पुरस्कृत किया था, उनम से कुछ उसके प्रति अविश्वास क कारण ही अपने प्राण बचाने मे सफल रहे थे। पोकरण के सालिमसिंह और उसका सहायक नीमाज का सुरताण और आहोर का अनाडसिह तथा उनकी शाखा के कुछ छोटे सरदारा जा दीवान के अत्याचारो म उसके साथी *सगी थे ने मानसिंह द्वारा उ हे अपने पुराने पदो पर बने रहने* की आज्ञा के कारण काफी सतक बना दिया था। राजा के सलाहकार होन के नात इन सभी को प्रतिदिन दरबार मे उपस्थित होना पडता था। इन लोगो का भय दूर करने के लिये मानसिंह ने दूत के द्वारा सदेश भेजा कि उनके विरुद्ध कोई कायवाही नही की जायगी। अखयच द और उसके साथियो न राज्य म जो अत्याचार किया था, उनको दण्ड देना आवश्यक था। इसके उपरा त भी उन साम ता का विश्वास न हुआ। मानसिंह ने पोकरण सरदार का नष्ट करने के लिय अपना जाल फलाया और अ य साम ता को भी उस जाल म फसाने से नही चूका। उसन अनाडसिंह क गोपनीय सेवक जो कि उसका मित्र भी था सभी को दरबार म बुला लाने के लिये कहा। अना-

सिंह के अविश्वास ने उसको बचा लिया। उसी रात मे आठ हजार वेतनभोगी सनिको ने बन्दूको के साथ नीमाज के सुरतानसिंह के निवास पर आक्रमण किया। वह शहर म ही रहा करता था। सुरतानसिंह ने अपने 180 सनिका के साथ राजा की सना का सामना किया और सभी लोग लडते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। बचे हुये सवक सुर तान के परिवार के सदस्यो को लकर नीमाज की तरफ भाग गय। मानसिंह ने सालिम सिंह को भी इसी भाति समाप्त करन का प्रयास किया पर तु सुरतानसिंह द्वारा किये गये प्रतिरोध न उसे हताश कर दिया और वह सालिमसिंह पर आक्रमण न कर पाया। सालिमसिंह न भी अवसर मिलत ही जोधपुर छाड दिया और पोकरण चला गया। अ न्यथा देवीसिंह की उस तलवार जिसकी म्यान म मारवाड का सिंहासन था को धारण करन वाला जीवित न बचता।

राजा मानसिंह के चरित्र की क्या टीका की जाय सिवाय उन शब्दो क जो उसन फतह राज का राज्य का दीवान बनात समय कहे थे "अब तुम समझ गये हाग कि मैंन तुम्हे तत्काल यह पद क्या नही दिया था।" यह व्यक्ति स्वर्गीय इ द्रराज का भाई था। अखयच द और उसके साथिया से प्राप्त धन सम्पत्ति स वतनिक सना का बकाया वेतन चुका दिया गया। अखयच द के मारे जान स राज्य के अ य साम त बहुत भयभीत हो उठे थे। उ हाने मिलजुल कर मानसिंह पर आक्रमण भी कर दिया हाता पर तु सारे राज्य म यह अफवाह फली हुई थी कि मानसिंह न शा ति और व्यवस्था कायम रखने के लिय ईस्ट इण्डिया कम्पनी स सनिक सहायता मागी है और यह सना कभी भी आ सकती है। केवल इस भय मात्र स साम त लाग मानसिंह के विरुद्ध किसी प्रकार की सनिक कायवाही न कर सके।

नीमाज का घेरा डाला गया और वीरता क साथ उसका सामना भी किया गया, पर तु मानसिंह के हस्ताक्षरो का एक पत्र मिलन पर सुरतान के पुत्र ने आत्मसमपण कर दिया। उस पत्र म सुरतान क अपराध का क्षमा कर नीमाज की जागीर उसको दन का आश्वासन था। आक्रमणकारी सना के सनापति न भी पत्र की सच्चाई का विश्वास दिलाया। पर तु ज्याही सुरतान का पुत्र आक्रमणकारी शिविर मे पहुचा, मानसिंह न अपन वचन का उल्लघन कर दिया। एक अधिकारी ने एक आज्ञा पत्र देकर उस लडके स कहा, "महाराज न आपको ब दी बनाकर दरबार म उपस्थित करने का आदेश दिया है।" पर तु सनापति ने कहा, "यह लडका मर विश्वास दिलान पर यहा आया है। यदि राजा अपना वचन भग करता है ता मैं ऐसा नही करू गा। मैं इसे अपनी सुरक्षा मे रख सकता हूँ।" सेनापति न अपन वचन का पालन किया। उसने उस लडके को अरावली पहाड की तरफ भिजवा दिया जहा स वह मेवाड चला गया, जहा उसे आश्रय मिल गया।

इस घटना और इसी प्रकार की कुछ अ य विश्वासघातक कायवाहियो न सभी साम ता को मानसिंह का विरोधी बना दिया। वे लाग अलग-थलग पड गये थे और

राज्य के दस हजार वतनिक सैनिको का सामना करने मे असमथ थे। इसके अलावा उन्हे इस वात का भी भय था कि ईस्ट इडिया कम्पनी की सेना कभी भी राजा की सहायता के लिये आ सकती है। मानसिह के अत्याचारा से वचने के लिये कुछ ही महीनो मे मारवाड के सभी सरदार अपनी जागीरा को छोडकर आसपास के राज्यो मे चले गये। ब्रिटिश सरकार के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही मानसिह सफलतापूवक अपनी नीति को कार्यान्वित कर सका अन्यथा वह कदापि ऐसी सफलता प्राप्त न कर पाता। उसने राज्य की भयानक अराजकता मे शाति कायम करने के लिए वह काम किया जो उसके पूववर्ती राजा करने का साहस नही जुटा सकत थे।

इन शूरवीर साम तो ने कोटा, मेवाड, बीकानेर, जयपुर के पडौसी राज्या म आश्रय लिया। यहा तक कि स्वामिभक्त अनाडसिह, जिसकी सेवाओ से मानसिह उपकृत था, को भी मारवाड छोडकर निर्वासित जीवन विताना पडा। मानसिह जब जालौर के दुग म भयकर कठिनाइयो मे फसा हुआ था और उसके पास खाने पीने लायक धन भी न वचा था, तब इसी अनाडसिह ने अपनी पत्नी के समस्त आभूषण वेचकर उसका तथा उसके परिवार का भरण पोषण किया था। पाली को लूटने के प्रयास मे जब मानसिह लगभग व दी वनाये जाने की स्थिति मे फस गया था तब इसी अनाडसिह ने उसे अपने घोडे पर वठाकर उसके प्राणो को वचाया था। जब सभी साम त उसका साथ छोडकर धोकल के पक्ष मे चले गये थे तब जो चार साम त उसके पक्ष म रह गये थ उनम से एक वह भी था। जब जगतसिह मारवाड से लूटी गई धन सम्पत्ति को लेकर वापस जयपुर जा रहा था तो इ ही चार सरदारो ने उसको परास्त करके मारवाड की उस धनसम्पत्ति को उससे छीनकर मानसिह को वापस लौटाई थी। छतरसिह की मृत्यु के वाद जिन साम तो ने मानसिह के हाथ म पुन शासन सत्ता सौंपन का प्रयास किया था उनमे अनाडसिह मुख्य था। इस प्रकार, अनाडसिह के न जाने कितने उपकारा का भार मानसिह पर था, पर तु मानसिह ने उन सभी उपकारो को भुला दिया। उसके प्रतिशोध की आग को पागलपन कहना ही उचित हागा। 1821 ई म मारवाड क प्रमुख साम त, जिन्हे राज्य से निर्वासित हो जाना पडा था, ब्रिटिश अधिकारिया की मध्यस्थता को प्राप्त करन का विचार करने लगे और एक प्राथना पत्र भी भेजा। परन्तु एक साल गुजर गया। कम्पनी की तरफ से न तो उसका कोई उत्तर दिया गया और न ही इस सम्ब ध म कोई कदम उठाया गया। इस स्थिति म उन साम ता न अपनी परिस्थितियाँ मर सामन रखी। उसके वाद मैंन उनको कम्पनी की तरफ से सतापजनक मध्यस्तथा स्वीकार करन के लिए जवाव दिलवाया। उसम यह भी लिखा गया कि यदि समय पर कम्पनी ऐसा न करे तो आप लाग अपन अधिकारा का खुद निणय कर सकत हैं।

1823 ई तक मारवाड की राजनतिक परिस्थिति इसी प्रकार वनी रही। यदि प्रतिशाध की भावना न मानसिह को अन्धा न बना दिया होता और उसन वुद्धि-

मानो से काम लेकर राज्य म शाति कायम करन का प्रयास किया होता तो मारवाड के साम तो को निर्वासित जीवन बिताने की आवश्यकता न पडती। परन्तु उसने अवसर का लाभ नही उठाया। अपन दश के सविधान का परिस्थितिया के अनुसार सशोधित करके यश अर्जित करन के स्थान पर उसने सम्पूर्ण साम ती व्यवस्था को ही छिन्न भिन्न कर दिया और केन्द्रीय सत्ता का सम्मान का पात्र बनाने की अपेक्षा घृणा और तिरस्कार का पात्र बना दिया।

राठौडो की सत्ता के प्राचीन केन्द्र कन्नौज के पतन से लकर अब तक के इतिहास पर एक विहगम दृष्टि डालने के बाद ब्रिटिश सरकार के साथ उनक सम्बन्धों के बारे म कुछ कहना अनुचित नही होगा। इस बात को स्वीकार करना पडता है कि इस राज्य के राठौडा और साम तो ने आवश्यकता पडने पर अपने जीवन क जो बलिदान किय थे और राज्य के गौरव की रक्षा की थी, वह सवथा प्रशसनीय है। यदि उनम एकता होती और उ होन एक दूसरे को समाप्त करन के प्रयास न किये होते तो उ ह बाहरा जातियो के अत्याचारा तथा अपने राज्या का विनाश न देखना पडता। अपने पतन के दिनो म राजपूत राज्या ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सरक्षण प्राप्त किया और उसक साथ ही बाहरी जातियो के आक्रमण और अत्याचारा का खात्मा हा गया। आज गजनी खिलजई, लोदी, पठान तमूर और मराठा अत्याचारी कहाँ हैं? राजपूतो के आपसी विद्रोह न इन बाहरी जातिया को आक्रमण करन का अवसर दिया था। राजपूत लोग आपस म लडत लडत शक्तिहीन हो गय थ, फिर भी एक दूसरे को समाप्त करने की भावना कायम रही जिससे बाहरी जातिया को घुस पठ करने का सुअवसर मिल गया। अग्रेजो ने उनको सरक्षण देकर पुन जीवन क सही माग पर लान की चेष्टा की। परिणामस्वरूप राजपूत राज्यो म लटमार करन वाली जातियो का साहस जाता रहा और वे भाग खडी हुइ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपन वचन का पालन करन मे कहाँ तक सफल रही, इसका निणय तो पाठक इसक पूव की अराजकता का दृष्टि म रखत हुए स्वय हा कर सकत हैं। यदि यह कहा जाता है कि हमन इन राज्या को आ तरिक प्रशासन का अधिकार देकर अपन हाथ बाध लिय हैं तो फिर उस राजा को किसी प्रकार का समथन नही दिया जाना चाहिए जो अपन साम तो के अधिकारा का हनन करना चाहता हो, और यदि हमारी मध्यस्थता का कोई परिणाम न निकले तो हम उनकी शासन पद्धति पर लगाये गये सभी प्रतिब ध हटा लेने चाहिए और उन्ह स्वतन्त्र छोड दना चाहिए। हमे ता केवल शाति एव व्यवस्था तथा जन समृद्धि की दृष्टि स ही अपन प्रभाव का प्रयोग करना चाहिए। मारवाड की वतमान दुर्व्यवस्था म ईडर राज्य के वशधर जा जाधा के ही वशज हैं का यहाँ के सिंहासन पर बठा देना आवश्यक मालूम हाता है। क्योकि इस समय अत्यधिक सूझ बूझ से कदम उठान की आवश्यकता है। राज्य क सामन्त निर्वासित जीवन बिता रह हैं और उनके प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार स कोई अच्छा परिणाम निकलन की आशा करना निरथक होगा। सामन्तो न राजा के साथ

अपने विवाद म ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मध्यस्थ बनने का अनुरोध किया है। हमारी समझ म इस विवाद को सुलझाना आवश्यक है। यदि ऐसा न हो पाया तो भविष्य मे दुष्परिणाम सामने आ सकते ह। यदि सभी राठौड साम त मिलकर एक स्थान पर बठकर ईडर के राजकुमार को सिहासन पर बठाने के प्रश्न पर विचार करें तो निश्चित रूप म उसके पक्ष म राठौडा का बहुमत रहेगा। यदि ऐसा सम्भव हो पाया तो मारवाड राज्य का भविष्य उज्ज्वल बन सकता है और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की चि ता का भी समाधान हो सकता है।

सन्दर्भ

1 धोकलसिंह तो अभी बच्चा ही था। अत अमीर खां द्वारा उसको सबोधन करना कुछ जचता नही है। सवाईसिंह ने उसके नाम से यह सब प्रपच रचा था।

2 इस हत्याकाण्ड के समय मानसिंह पास के कमरे म ही था। उसने तुर त हत्यारा को मौत के घाट उतारने का आदेश दिया पर तु दूसरे पक्ष के साम तो ने उसे अमीर खा का भय दिखलाकर शा त कर दिया।

3 स धि की आठवी धारा के अ तगत लिखा था कि, "आवश्यकता होने पर जोधपुर नरेश 1500 अश्वारोही सेना देंगे और जब तक आवश्यकता होगी तब तक राज्य की आ तरिक व्यवस्था के लिये आवश्यक सेना के अलावा अ य समस्त सेना अग्रेजी सेना के साथ मिलानी होगी।

4 अ य स्रोता से उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि मानसिंह ने ब्रिटिश सरकार से सहायता मागी थी। ब्रिटिश सरकार ने अपने प्रतिनिधि को यह आदेश दिया था कि मानसिंह के व्यवहार की पूण जानकारी के बिना उसे सहायता न दी जाय। यदि मानसिंह ब्रिटिश सरकार की सलाह को मानने का पक्का आश्वासन दे तो उसे सहायता दी जाय अ यथा नही। तब मानसिंह ने अपनी ही शक्ति से साम ता को दबाने का निश्चय किया था।

अध्याय 46

मारवाड का सामान्य वृत्तान्त

चौडाई की दृष्टि से मारवाड की राजधानी जोधपुर सभा तराल
पश्चिम मे गिराप और पूव मे अरावली के शिखर पर स्थित श्यामगढ तक
के मध्य मे स्थित है। पश्चिम से पूव तक यह समान्तर रेखा 270 मील
विस्तृत है। सिरोही की सीमा से लेकर उत्तरी सीमा तक इसकी अधिकतम ल
220 मील है। डीडवाना और जालार के उत्तर पूव से साचौर की सामा क द
पश्चिम काने तक 350 मील की लम्बाई है। मारवाड की सामाएँ इतनी अनि
हैं कि उसके क्षेत्रफल का सही हिसाब लगाना कठिन है।

मारवाड की अनेक विविधताओ की सबसे वडी विशपता लूनी नदी है,
मारवाड की पूर्वी सीमा पुष्कर से निकल कर पश्चिम को आर प्रवाहित हो
और राज्य को दो भागो मे विभाजित करती है। यह नदी मारू के उपजाऊ
अनुपजाऊ भागो की मध्यवर्ती सीमा है। इसके दक्षिणी किनारे से लेकर अरा
पवत तक का क्षेत्र मारवाड का सबसे समृद्ध क्षेत्र है। पर तु इसक समस्त उ
भाग को अनुपजाऊ कहना भी सही नही होगा। नागौर से जाधपुर और बिल
तक एक रेखा इस विविधता का स्पष्ट कर देती है। इस रखा के दक्षिण म
जिले डीडवाना, नागौर, मडता, जोधपुर पाली, सोजत, गाडवार, सिवाना जाल
भीनमाल और साचौर काफी आबाद एव उपजाऊ है। यहाँ एक मील म अ
लोग निवास करत हैं। दक्षिण पश्चिम के रेगिस्तानी क्षेत्र जिस गागा का प
कहत हैं—शिव, बाडमेर कोटरा, चौहटन आदि म एक मील म दस स अधि
मनुष्य नही रहते। मारवाड की कुल जनसख्या बीस लाख क आसपास मानी
सकती है।

निवासियों की श्रेणियां—इस सम्पूर्ण सख्या का विभाजन इस प्रकार है
प्रत्यक आठ मनुष्यो म पाच लोग जाट हैं, दो राजपूत हैं और बाकी म ब्राह्मण
व्यवसायी और दूसर लोग हैं। यदि यह हिसाब सही है तो राजपूतो का सख्या पाँ
लाख है जिनम से पचास हजार सनिक हैं।

राजपूता के छत्तीस कुला म राठौडो न सबसे अधिक सम्मान प्राप्त किया है। यद्यपि अफीम के सेवन न इन राजपूतो का गौरव बहुत कुछ नष्ट कर दिया है, फिर भी मुगलो के समय म राठौडो को अधिक सम्मान मिला। मौजूदा शासक के समय म राठौडा की इतनी अधिक क्षति हुई है कि औरंगजेब के शासनकाल म भी न हुई थी। राठौडा म स्वाभिमान अधिक था और उसी कारण आक्रमणकारियो न उन पर अधिक अत्याचार किये। लगातार आक्रमणा और अत्याचारा न उनके नैतिक जीवन का भी आघात पहुचाया। इससे पहले उनम सगठन शक्ति थी और देखते-देखत एक बाप के पचास हजार बेटे राठौड ध्वज के नीचे एकत्र हो जाते थे और युद्धभूमि म हसते-हसत प्राण उत्सग कर देते थे। परन्तु विनाश और विध्वस के समय म उनकी य शक्तिया भी निबल पड गई और उनके राजाओ को राज्य की सुरक्षा तथा शाति और व्यवस्था के लिय वेतनभोगी सनिक रखने पडे। राठौडा की अश्वारोही सेना भारत म सर्वश्रेष्ठ थी। राज्य मे घोडे के कई मेले लगत थे, विशेषकर बालोतरा और पुष्कर के मले अधिक प्रसिद्ध थे। इन मेला मे कच्छ और *काठियावाड जगली और मुल्तान से बडी सख्या म उत्तम किस्म के घोडे बिकने के* लिय आते थे। लूनी के पश्चिमी क्षेत्र म भी अच्छी किस्म के घोडो को पाला जाता था, उनम राधाधडा के घोडे अच्छे मान जाते थे। पर तु पिछले बीस वर्ष की घटनाओ न इन स्रोतो को भी सुखा दिया। राधाधडा कच्छ और जगली नस्ल के घोडे तो प्राय समाप्त ही हो गय है। सिन्धु नदी के पश्चिम से जो घोडे पहले आते थे, व अब बीच म ही सिक्ख लोग खरीद लेते है। लूटमार की पुरानी व्यवस्था के नष्ट हो जान का भी प्रभाव पडा है क्योकि उस व्यवस्था के अ तगत घोडो की माग अधिक रहती थी। अग्रेजो की सफलता न सामा य शाति के लिये बहुत बडा काम किया है।

मिट्टी कृषि और उत्पादन—मारवाड की मिट्टी की विभिन्न चार किस्मो का चार श्रेणियो म विभाजित किया जा सकता है— बकलू चिकनी, पीली और सफेद। देश के अधिकाश भाग की मिट्टी बकलू है। इसमे रेती का भाग अधिक होता है, इसलिय इसमे केवल बाजरा, मू ग, मोठ तिल, ज्वार और खरबूजा ही पदा होता है। काल रग की चिकनी मिट्टी डीडवाना, मेडता पाली और गोडवार के कई हिस्सा म पाई जाती है। इसम गहू और इसी श्रेणी के अ य अनाज पदा होते हैं। पीली मिट्टी मे भी बालू की मात्रा होती है और यह खीवसर तथा राजधानी के आसपास और जालौर तथा बालोतरा मे भी पाई जाती है। जौ तथा काठे गहू के लिय यह मिट्टी सवश्रेष्ठ है। तम्बाकू, प्याज और कई प्रकार का सब्जिया भी होती हैं। सफेद मिट्टी म खेती नही होती। अत्यधिक वर्षा होती है तो थोडी बहुत पदावार हो जाती है।

लूनी नदी के पश्चिमी किनारे के जिला—पाली सोजत और गोडवार, जिनम अरावली पहाड से आने वाली कई जलधाराए अपने बहाव के साथ पहाडो की उपजाऊ

मिट्टी बहाकर ले आती है, उस मिट्टी के कारण जिलो म बाजर के अलावा स प्रकार के खाद्यान पैदा होते है। नागौर और मेडता म कुओ के द्वारा सिंचाई कर बहुत अच्छी किस्म के अनाज पदा होते हैं। सुदूर पश्चिमी जिला—जालोर, साचो और भीनमाल जिनम 510 नगर और ग्राम आबाद है और सभी खालसा है, कं भूमि अत्यधिक उपजाऊ है। इस क्षेत्र म आबू तथा आसपास के पहाडो की मिट्टी जलधाराओ के बहाव के साथ आकर जमती रहती है। यहा बहुत अच्छी पदावार होती है पर तु राजा मानसिंह की पतनो मुख सरकार म उपज एक तिहाई ही रह गई है। दक्षिण के सराई और सिन्ध रगिस्तान के लुटर इन क्षत्रो म लूटमार करते रहते हैं। यहाँ की उपजाऊ भूमि म गहू, जौ, धान, ज्वार, मूग और तिल अधिक पैदा होते हैं। रेतील भाग म केवल बाजरा, मूँग और तिल ही पदा होते हैं। अच्छे शासन के दिनो मे राजा इस स्थान की पदावार को अभावग्रस्त क्षत्रो म पहुचाया करता था जिससे दुर्भिक्ष का भय काफी कम हो जाता था। नागौर का क्षेत्र अनेक प्रकार की सुविधाओ के लिये श्रेष्ठ माना जाता था। इस क्षेत्र म कुओ की सख्या अधिक है और इनसे सिंचाई करके यहा के किसान बहुत अधिक लाभ उठाते थे।

प्राकृतिक उत्पादन—मारवाड इस बात का गव कर सकता है कि उसके मदानो से निकलने वाली खनिज वस्तुओ की माग भारत के दूर दूर तक के क्षेत्रों म है। पचपद्रा, डीडवाना और साभर की नमक की झीलें दौलत की खानें है और यहा का नमक हिदुस्तान के अधिकाश बाजारो म पहुचता है। मारवाड के पूर्वी क्षेत्र मे मकराना नामक स्थान पर सगमरमर की खाने है। इसी खान से निकले पत्थर से इस देश की अधिकाश भव्य इमारतो तथा स्मारको का निर्माण हुआ था। दिल्ली और आगरा म बने महलो, मस्जिदो और मकबरो म लगा पत्थर मारवाड से ही ले जाया गया था। इन खानो से राज्य को पर्याप्त आय होती है। जोधपुर और नागौर के आसपास सफेद पत्थर की खानें है। सोजत म टीन और सीसा की खाने थी। पाली म फिटकरी भीनमाल और गुजरात के समीप वाले क्षत्रो म लोहे की खानें थी। इन खानो की खनिज सम्पदा से राज्य को अपरिमित आय होती थी।

कुटीर उद्योग—मारवाड के कुटीर उद्योग कभी भी महत्वपूर्ण नही रहे। सूती और ऊनी वस्त्र तयार किये जाते है, पर तु वह सब इसी देश म खप जाता है। ब दूक तलवार, युद्ध के दूसरे अस्त्र शस्त्र जोधपुर और पाली म बनते है। पाली मे निर्मित लोहे के स दूक काफी लोकप्रिय हैं। यहा पर लाहे की कढाइयाँ और कडाह भी काफी मजबूत और टिकाऊ होते है।

व्यवसायिक केन्द्र—रजवाडे म शायद ही कोई एसा राज्य हो जिसके अपने व्यवसायिक केन्द्र न हो। यदि मेवाड भीलवाडा पर, बीकानेर चूरू पर और आमेर

मालपुरा पर गव कर सकते है तो मारवाड अपने व्यवसायिक के द्र पाली पर गव कर सकता है। पाली राजस्थान के उपयु क्त स्थाना का न केवल प्रतिस्पर्धी ही था अपितु सम्पूण राजस्थान का एम्पोरियम होन का दावा भी कर सकता है। इस दावे की सत्यता को हम स्वीकार कर सकते है यदि हम यह याद रखे भारत के नब्बे प्रतिशत व्यवसायी और बैंकस मरूदेश के निवासी हैं और उनम भी जन सम्प्रदाय की प्रधानता है। खतरगच्छ सम्प्रदाय के व्यवसायी हजारो की सख्या मे भारत के विभिन्न भागो म जाते थे और लूनी के निकट ओसिया नामक गाव के ओसवाल लोगो की सख्या एक लाख के लगभग थी और उन सबका उद्यम व्यवसाय था। वे सभी राजपूत वशो म उत्पन्न होने का दावा करत हैं और व्यवसाय करने के कारण वश्य कहलान लग। सतलज से लेकर समुद्र पय त तक के विदेशो से जा धन सम्पत्ति अर्जित की जाती थी वह स्वदेश मे आ जाती थी। जनियो की प्रथा के अनुसार पिता की सम्पत्ति सभी लडको म बराबर बाटी जाती यद्यपि मध्य एशिया के जिट और केल्टर के जूट लागा की तरह सबसे छोटे पुत्र को कभी-कभी दुगना हिस्सा दिया जाता था। यह तब होता है जबकि पिता क जीवनकाल मे ही बटवारा होता है। तब पिता अपना हिस्सा लकर छोटे पुत्र के साथ रहता है और अ त म उसका हिस्सा भी छोटे पुत्र को मिल जाता है।

पाली उन दिना म पूव और पश्चिम की वस्तुआ के विनियम का एक प्रमुख के द्र था। यहाँ पर देश के विभिन्न प्रा ता के अलावा काश्मीर और चीन की बनी हुई बहुत सी चीजें बिकने के लिये आती थी और उसके बदले म लोग यूराप, अफ्रीका, ईरान और अरब देशो की बनी वस्तुए ले जात थ। कच्छ और गुजरात के ब दरगाहा से हाथीदात, नावा, खजूर, गाद, सुहागा नारियल रेशमी और बनात के कपडे, पशमीना के वस्त्र, च दन की लकडी कपूर, रग विभिन्न प्रकार की औषधिया काफी, मसाले, ग धक आदि बहुत सी वस्तुए छकडो मे भरकर पाली आती थी और उनके बदल म यहा से छीट के वस्त्र, सूखे फल जीरा, मुलतानी हीग चीनी सोडा अफीम, प्रसिद्ध बने बनाय वस्त्र, नमक, शाले, रगीन कम्बल और अ य बहुत सी चीजें ल जात थ।

व्यापारिक साथवाह सुइबाह, साचौर, भीनमाल और जालौर होते हुये पाली आते थ। उनकी सुरक्षा के लिय चारण उनके साथ चलते थ। राजपूत लोग चारण को पवित्र मानत थ। भयकर स भयकर लुटेरा और डकत भी चारण की छत्रछाया म चलन वाल काफिले को लूटने का साहस नही कर पाता था। यदि अपनी ढाल-तलवार स व काफिल की रक्षा करन म अपन को असमथ पात ता आत्मदाह की धमकी दत अथवा अपने हाथ से ही अपन शरीर पर आत्मघातक प्रहार कर बठते और आवश्यकता पडने पर अपने परिवार की स्त्रिया और बच्चा की हत्या करन पर भी उतारू हो जात तथा इन सबके लिय लुटेरे को उत्तरदायी ठहरा जाते।

पिछले बीस वर्षों की अराजकता के कारण व्यापार-वाणिज्य बिल्कुल कम हो गया है। अन्यथा शांति के दिनों में आज से दस गुणा व्यापार होता था। लुटेरे और बागी राजपूतों से भी अधिक बुरा प्रभाव एकाधिकार की दूषित प्रणाली का पड़ा। इसने आदान प्रदान की नदी को ही सुखा दिया। राजपूताने का नमक बनारस तक पसन्द किया जाता था परन्तु भारी करों ने इसको बाजार से ही गायब कर दिया। हम लोगों की नीति ने भी कई चीजों के निर्यात को नियन्त्रित करके व्यवसाय को हानि पहुँचाई है।

मेले—इस राज्य में दो वार्षिक मेले लगते थे–मूंडवा और बालोतरा। पहला मुख्यतः पशु मेला था। आस पास के राज्यों के लोग यहाँ आकर देश विदेश की व्यापारिक वस्तुएं खरीदते थे। यह मेला मिगसर मास लगते ही शुरू हो जाता और लगभग 6 सप्ताह तक चलता था। दूसरा मेला भी एक तरह से पशु मेला ही था। इस मेले में सभी प्रकार के घोड़े, बैल, ऊंट और पालों से देश विदेश की वस्तुओं का क्रय विक्रय होता था। आजकल वह धूमधाम नहीं रह गई है।

न्याय व्यवस्था—इन राज्यों में न्याय का काम काफी शिथिल पड़ गया है। राजनैतिक अपराधों के प्रति तो तत्काल कार्यवाही की जाती थी परन्तु अन्य अपराधों के प्रति दण्ड देने की व्यवस्था काफी कमजोर पड़ गई थी। राजनैतिक अपराधों के लिए तो मृत्युदण्ड दिया जाता था परन्तु यदि कोई नागरिक किसी की हत्या कर देता तो उसे साधारण दण्ड दिया जाता था। जैसे कुछ दिनों के लिये कारावास की सजा अथवा आर्थिक जुर्माना। कभी कभी देश निर्वासन की सजा भी दे दी जाती थी। चोरी तथा अन्य प्रकार के अपराधों को गंभीरता से नहीं लिया जाता था। ऐसे अपराधियों को कुछ दिनों की कैद की सजा अथवा आर्थिक जुर्माना लेकर रिहा कर दिया जाता था। जिन अपराधियों को कारावास में रखा जाता था उनके भोजन तथा वस्त्रों का व्यय अपराधी की सम्पत्ति से वसूल किया जाता था। यदि ऐसा संभव नहीं हो पाता तो अपराधी की कैद की अवधि को बढ़ा दिया जाता था। राजा विजयसिंह की मृत्यु के बाद न्याय व्यवस्था और भी अधिक बिगड़ गई। लोगों की आर्थिक स्थिति भी दयनीय हो गई थी और पेट भर भोजन जुटाना भी कठिन हो रहा था जबकि कारावास में बंदियों को भरपेट भोजन मिलता था। अपराधियों के खाने पीने, वस्त्र आदि की व्यवस्था के लिये राज्य के व्यावसायिक लोग चंदा एकत्र करते थे तथा सम्पन्न लोग दान दिया करते थे। इसका मुख्य कारण व्यावसायिक समाज का जैनधर्म का अनुयायी होना था। इस प्रकार से आने वाली धनराशि सीधे कारागार के अधिकारी को सौंप दी जाती थी। इस प्रकार कारागार की व्यवस्था दान पुण्य से चलती थी। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, राजपुत्र का जन्म, राजा का अभिषेक आदि अनेक अवसरों पर अपराधियों को रिहा कर दिया जाता था।

पचायतें—दीवानी के मामलो का निणय पचायतें करती थी। पचायत के निणय क विरुद्ध राजा से अपील की जाती थी। परन्तु इसके लिये अपील करने वालो को नियमानुसार राजा के पास निश्चित रुपये जमा कराने पडते थे। इस प्रकार की प्राथना, प्रार्थी के गाव का पटेल राजा के सामन उपस्थित करता था। वाद मे यह तय किया जाता था कि वे कहा किस ग्राम म अपने मामले की फिर से सुनवाई करवाना चाहते हैं। इसके वाद उस गाव के भूमि अधिकारी को राजा की तरफ से सूचना दी जाती थी कि वह अपन गाव के विचारालय मे वठकर उस मामले की फिर से सुनवाई करके न्याय प्रदान करे। गवाह लोग पहले शपथ लेते थे और उसके वाद गवाही देते थे। इतिहासकार हेरोडोटस ने लिखा है कि सीथियन लोगो मे भी शपथ लेकर गवाही देने की प्रथा प्रचलित थी। गवाह लोग "गद्दी की आन' के नाम पर शपथ लते थे। राजा के नाम पर शपथ लेने का अधिकार केवल राजपूतो को था। अन्य जातिया क लोग अपन अपन धम के नाम पर शपथ लेकर गवाही देते थे। दोनो पक्षा को सुनन के वाद निर्णायक अपना निणय देता था और निणय पर अपनी मुहर लगा देता था। वह निणय सभी को मानना पडता था।

आय के साधन—राज्य को विविध स्रोतो से आय होती थी। मुख्य स्रोत इस प्रकार थे—1 खालसा भूमि का भूमिकर 2 नमक की झीलें। 3 आयात-निर्यात और चुगी कर। 4 राज्य के अन्य कर जो हासिल कहलाते थे।

इन दिना मारवाड की सम्पूण आमदनी दस लाख रुपये से अधिक की नही है परन्तु पचास वप पहले राजा विजयसिंह के समय म राज्य की आय सोलह लाख रुपये वार्षिक थी। इसका आधा भाग तो केवल नमक की झीलो से प्राप्त होता था। जागीरी भूमि की अधिकतम औसत आमदनी पचास लाख रुपये वार्षिक वताई जाती है पर तु आजकल इसकी आधी आय की वसूली पर भी स देह होता है। साम तो के सनिक दस्ता म पदाति सनिको के अलावा पाच हजार घुडसवार हैं। साम ता को अपनी वार्षिक आय के एक हजार रुपय पर एक अश्वारोही और दो पदल सनिक रखने का अधिकार है।[1]

राजा की सम्पूण आमदनी जो खजान द्वारा वसूल की जाती है, उसका अनुमान दस लाख रुपये है। राजदरवार के कमचारिया को जो भूमि दी जाती है, उसकी मालगुजारी इस राशि म सम्मिलित नही है।

रय्यत स जो राजस्व वसूल किया जाता है, वह जि स अथवा वस्तु के रूप म किया जाता है। इस देश म वहुत प्राचीन काल से अनाज कर, वटाई अथवा विभाजन क आधार पर लिया जाता रहा है। पुरान समय म कुल उत्पादन का $\frac{1}{4}$ अथवा $\frac{1}{6}$वा भाग राजा को दिया जाता था परन्तु अव किसान जितना अनाज पदा करता है, उसका आधा भाग राजा ल लेता है और आधा किसान के पास रह जाता है। इसके

अलावा किसान को फसलों की निगरानी के लिये नियुक्त रखवाला का खर्चा भी देना पड़ता है। यह प्रत्यय दस मन अनाज पर दो रुपय के हिसाब से लिया जाता था। इन रुपयों से निगरानी करने वाला तथा किसानों से राजस्व वसूली करने वाले कर्मचारियों का वतन चुकाया जाता था। शेष रुपयों में ग्राम पटेल तथा पटवारी का भी हिस्सा रहता था। राजा के पशुओं के लिये प्रत्येक किसान से एक एक भूसा गाडी (ज्वार और बाजरे का) वसूल किया जाता था। परन्तु अब उसके बदले में प्रत्येक किसान से एक-एक रुपया लिया जाता है। अकाल के दिनों में इस रुपये के बदले में करबी ली जाती है। पटवारी और पटेल को किसान तथा राजा दोनों के हिस्सों में से अनाज देने की व्यवस्था थी। इसके लिये अस्सी भागों में से एक भाग दानों के लिये निर्धारित था। जागीरी क्षेत्र के किसान खालसा किसानों से ज्यादा अच्छी स्थिति में हैं। उन्हें कुल उत्पादन के पांच भागों में से केवल दो भाग जागीरदार को देने पड़ते हैं और तमाम अन्य करों के बदले में सिंचित क्षेत्र के प्रत्येक सौ बीघा पर केवल बारह रुपये चुकाने पड़ते हैं। अपने जागीरदार के साथ घनिष्ठता के कारण किसान लोग यह कर प्रसन्नता से अदा करते हैं।

राज्य में जितने कर प्रचलित हैं उनमें एक अंग कर (अर्थात् शरीर) भी है। यह कर राज्य में रहने वाले सभी निवासियों (स्त्री पुरुष) से एक रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से लिया जाता है।

पशुओं पर लिया जाने वाला कर घासमारी कहलाता है। यह पशुओं की चराई के लिये लिया जाता है। प्रत्येक बकरी और भैंस पर एक आना, प्रत्येक भैंसे पर आठ आना और ऊंट पर तीन रुपये के हिसाब से लिया जाता है।

किवाडी अथवा द्वार कर प्रत्येक घर से वसूल किया जाता है। लोगों को इससे सबसे अधिक असंतोष है। इस कर को सबसे पहले विजयसिंह ने लागू किया था। अपने संकट के दिनों में उसने अस्थायी तौर पर प्रत्येक घर के मालिक से तीन रुपये के हिसाब से वसूल किया परन्तु बाद में उसने इसे स्थायी बना दिया। मानसिंह ने सामन्तों के विद्रोह तथा पठानों के दबदबे के समय इसे बढ़ाकर दस रुपये प्रति घर कर दिया। परन्तु यह कर सभी नागरिकों से समान दर से वसूल नहीं किया जाता था। गरीबों से दो रुपये तथा सम्पन्न परिवारों से बीस रुपये वसूल किये जाते थे। जागीरी क्षेत्रों को भी यह कर चुकाना पड़ता था। [illegible] की विशेष कृपा से किसी जागीर को कर से मुक्त रखा जाता था।

मायर अथवा [illegible] र में होने वाली [illegible] मान लगाते समय
यह ध्यान रखना होगा [illegible] तालिका प[illegible] न कि मौजूदा [illegible]
समय का। यह कर [illegible] , घर, जवत [illegible] भक्ष आदि [illegible]
के अनुसार घटता बढ़ता [illegible] राज्य [illegible] दिया
अलग अलग परगनों से [illegible] थी,

जोधपुर = 76,000 रु , नागौर = 75,000 रु , डीडवाना = 10,000 रु , परबतसर=44,000 रु , मेडता = 11 000 रु कोलिया = 5,000 रु , जालौर= 25,000 रु , पाली = 75 000 रु जसोल ग्रौर बालोतरा के मले = 41,000 रु , भीनमाल = 21,000 रु , साचौर = 6 000 रु ग्रार फलादी = 41 000 रु कुल ग्रामदनी चार लाख तीस हजार प्रति वप ।

धानी ग्रर्थात् इस कर का वसूल करने वाल कमचारिया, विशपकर वडे नगरो म नियुक्त कमचारियो को राज्य की तरफ स मासिक वतन मिलता था । पर तु छोटे कमचारिया का उनके द्वारा एकत्र धनराशि का कुछ प्रतिशत कमीशन के रूप मे दिया जाता था । यह कर ग्रनाजो पर भी लिया जाता था । राज्य के बाहर से ग्राने वाल तथा एक जिले से दूसरे जिले मे ग्राने वाल ग्रनाज पर भी यह कर वसूल किया जाता था ।

वाणिज्य कर ग्रौर भूमि कर की भाति नमक से होन वाली ग्राय म भी काफी कमी ग्रा गई है । राज्य क ग्रच्छे दिना म नमक के द्वारा जो ग्रामदनी होती थी उसका ब्यौरा राजकीय लखो मे इस प्रकार दिया गया हे—पचपदरा = 2,00,000, फलौदी = 1 00,000, डीडवाना = 1,15,000 साभर = 2 00,000 ग्रौर नावा = 1,00,000 रु० । ग्रर्थात् कुल सात लाख प द्रह हजार रुपये की ग्रामदनी होती थी ।

नमक के इस समृद्ध उद्योग म ग्राज भी हजारा श्रमिक ग्रौर बल लग हुए है । यह सारा व्यवसाय बनजारा नामक जाति क एकाधिकार मे है । किसी किसी बनजारा के कारवा म 40 000 बैल है । यहा का बना नमक सिधु से गगा तक बिकता था ग्रौर साभर लून" के नाम से प्रसिद्ध था । पर तु सबसे बढिया किस्म का नमक पचपदरा झील का माना जाता था । यहा पर साजी' नामक नमक की एक ग्रौर किस्म भी तयार की जाती है ।

मारवाड राज्य के पुराने लेखो से पता चलता हे कि मालगुजारी के विभिन्न स्रोता से राज्य को लगभग तीस लाख रुपय वार्षिक की ग्रामदनी होती थी । उसका ब्यौरा इस प्रकार पाया जाता है—

1	खालसा क्षेत्र के 1484 गावो ग्रार नगरो की ग्रामदनी	= 15 00,000 रुपय ।
2	वाणिज्य कर या सायर	= 4 30 000 रुपय ।
3	नमक की झीले	= 7,15,000 रुपय ।

4	हासिल अर्थात् विभिन्न मदो से आमदनी	= 3,00,000 रुपये।
		29,45,000 रुपए।
	सामन्तो और मन्त्रियो की जागीरो की आय	50 00,000 रुपए।
	कुल योग =	79,45 000 रुपये।

इससे पता चलता है कि पहले के दिनो के राजा और सामन्तो की वार्षिक आमदनी लगभग अस्सी लाख रुपये थी। इतनी आमदनी होती रही होगी इसमे सन्देह है, क्योकि मौजूदा समय मे इसका आधा भी वसूल नही हो पाता है। कहा जाता है कि राज्य के पूर्व मन्त्रियो के घरो मे बहुत सम्पत्ति पाई जाती थी और उनके वशज आज भी धनवान माने जाते है। सम्पत्ति को छिपा कर रखने की आदत इस देश के लोगो की बहुत पुरानी है। परन्तु इस आदत के दोष भी हैं। एक तो इसका कोई उपयोग नही हो पाता और दूसरे इसकी वृद्धि नही हो पाती। नागौर के महलो का भूमिसात करते समय राजा विजयसिंह को काफी धन सम्पत्ति प्राप्त हुई थी।

सैनिक दल—अब केवल राठौडो के सैनिक स्रोतो का उल्लेख करना बाकी रह गया है। उनके राजस्व के साधनो की भाँति इसमे भी उतार चढाव आता रहा है। राजा अपनी आय से विदेशी वेतनभोगी सेना रखता है अपने ही विद्रोही सरदारो का दमन करने के लिये। उसमे रूहेले और अफगान सैनिक अधिक हैं। वे सभी बन्दूकधारी हैं और उनके साथ मे तोपें भी है। उनके अनुशासन की वजह से वे राठौड घुडसवारो से कही अधिक शक्तिशाली हैं। राजा मानसिंह के समय मे पानीपत निवासी हिन्दालखा के नेतृत्व मे उस वेतनिक सेना मे 3500 पैदल और 1500 घुडसवार तथा पच्चीस तोपें थी। हिन्दालखा विजयसिंह के समय से ही राजवंश की सेवा मे आ गया था। राजा मानसिंह तो उसे 'काका" कहकर सम्बोधित करता था। इसके अलावा सैनिको का विष्णुस्वामी दल भी था। इसका नेता अथवा सेनापति कायमदास था। इस दल मे 700 पैदल 300 घुडसवार थे। ये लोग बहुत अच्छे निशानेबाज थे। एक समय मे तो राजा के पास 11,000 वेतनिक सैनिक थे जिनमे 2500 घुडसवार थे और 55 तोपें थी। उपर्युक्त सैनिक दलो के नायको को वेतन के अलावा जागीरें भी अनुदान मे दी गई थी। इस वेतन भोगी सेना की सहायता से मानसिंह ने अपने सामन्तो की शक्ति को कुचलने का प्रयास किया था। इससे देश का विनाश शुरू हुआ। सामन्तो और राजा मे विग्रह बढा और आपसी विश्वास पूरी तरह से जाता रहा।

मेवाड मे सोलह प्रमुख सामन्त हैं, आमेर मे बारह और मारवाड मे आठ हैं। इस राज्य के सामन्तो के नाम, उनकी शाखा निवास स्थान और आमदनी की

सूची नीचे दी जा रही है। इसके वदले म उन्ह जो सैनिक राजा की सेवा म देने पडते थे उसका हिसाव पाच सौ रुपये की आय पर एक घुडसवार के हिसाव से लगाया जाना चाहिए।

प्रथम श्रेणी के सामन्त

	नाम	वश	स्यान	आमदनी	विवरण
1	केसरीसिंह	चापावत	आऊवा	1 00,000	मारवाड का प्रधान सामन्त
2	वख्तावरसिंह	कूपावत	आसोप	50,000	इसमे स आधी पट्टे की थी और शेप अपनी ही शाखा के छोटे सरदारा की अनाधिकृत जागीरें थी।
3	सालिमसिंह	चापावत	पोकरण	1,00,000	व्यवहारिक दृष्टि से सवस शक्तिशाली सरदार।
4	सुरतानसिंह	ऊदावत	नीमाज	50,000	सुरतान की हत्या के समय से ही यह जागीर जब्ती के अन्तगत है।
5		मेडतिया	रियाँ	25,000	राठौडो म सर्वाधिक शूरवीर मान जाते हैं।
6	अजीतसिंह	मडतिया	धानेराव	50,000	पहले यह जागीर मवाड क अधीन थी।
7		करमसोत	खीवसर	40 000	इस जागीर के कई गाव जब्ती म हैं।
8		भाटी	खेजडला	25 000	एकमात्र दूसर राज्य का निवासी था।

द्वितीय श्रेणी के सामन्त

	नाम	वश	स्यान	आमदनी	विवरण
1	शिवदानसिंह	ऊदावत	कुचामन	50 000	काफी शक्तिशाली सामन्त था।
2	सुरतानसिंह	जोधा	गारी का दव	25 000	
3	पृथ्वीसिंह	ऊदावत	चडावल	25 000	
4	तर्जसिंह	ऊम्पावत	रादा	25 000	
5	पनाईसिंह	भाटी	पाहार	11,000	राज्य स निर्वासित।

6	जीतसिह	कूपावत	बगडी	40,000
7	पद्मसिह	कूपावत	गजसिहपुरा	25,000
8	——	मेडतिया	मीठरी	40,000
9	करणसिह	ऊदावत	नाराठ	15,000
10	जालिमसिह	चापावत	राहट	15 000
11	सवाईसिह	जोधा	चापुर	15,000
12	—	—	नूडमू	20,000
13	शिवदानसिह	चापावत	कावटा (बडा)	40 000
14	जालिमसिह	चापावत	हरमोनाव	10 000
15	सावलसिह	चापावत	दीगाद	10,000
16	हुक्मसिह	चापावत	कावटा (छोटा)	11,000

ये हैं मारवाड के प्रमुख सरदार जिनको सैनिक सेवा के बदले म जागीरें मिली हुई हैं। इनके अलावा और भी ऐसे अनेक सरदार हैं जिनका नाम उपयुक्त सूची म नही है, परन्तु आवश्यकता पडने पर व राजा की आज्ञा का पालन करते हैं जसे कि बाडमेर कोटडा जेसाल, फलसूद, वीरगाव, वाकडा कालिन्द्री और बोरुदा के जागीरदार। यदि राजा उन लोगो की सहानुभूति को प्राप्त कर सके तो वे आवश्यकता पडने पर एक अच्छी नामी सेना खडी कर सकते हैं। राज्य के भिन्न साम ता के नाम और परिचय ... म दिये गये हैं, ... परिवार की भूमि अथवा जागीर पूरी तरह से म ... क्याकि यह ... पुराने लेखों से तयार की गई है और मा ... उसम ... । गया है। बाह्य आक्रमणो तथा आपसी म ... गई और इसक परिणामस्वरूप साम ता ... अथवा ... बहुत वाविक नहीं ... । प्राचीन ... स परिव ... ।

1 ... की ... सवा म

बीकानेर का इतिहास

अध्याय 47

राजनैतिक इतिहास

राजपूताना के राज्यो मे बीकानेर का स्थान दूसरी श्रेणी मे है। यह मारवाड की एक शाखा है, और इसके राजा लोग जोधा के परिवार के वशज है, जि होने मातृ देश की उत्तरी सीमा के क्षेत्रो को जीतकर नये राज्य की स्थापना की। मरुभूमि के मध्य मे होने से यह अपनी स्वाधीनता को कायम रख सका।

सवत् 1515 (1459 ई०) मे जोधा ने प्राचीन राजधानी मडौर को छोड कर नवीन राजधानी जोधपुर को अपना के द्र बनाया। वह अपने चाचा काधल के माग निदेशन मे जोधा का लडका बीका सीहाजी के तीन सौ वशधरो के साथ मारु के रेतीले मदान म राठौड प्रभुत्व की सीमाओ का विस्तार करने के लिये निकल पडा। बीका अपने भाई बीदा के सफल प्रयास से काफी प्रोत्साहित हो उठा था। बीदा ने इस क्षेत्र मे पुराने समय से आबाद मोहिलो का परास्त कर उनके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था।

इस प्रकार के अभियान जसाकि बीका के थे और जो केवल विजय के उद्देश्य से ही किये गये थे लगभग सभी दृष्टि से सफल रहे। ये आक्रमणकारी मरने अथवा मारने का सकल्प लेकर चले थे, फिर चाहे अगला राज्य मित्रता रखता हो अथवा शत्रुता। इस प्रकार के आक्रमण करके दूसरे राज्यो को परास्त कर उस पर अपना अधिकार जमा लेना, राजपूत लोग अपना धम समझते थे।

सवप्रथम, बीका ने जागल के साखलो पर आक्रमण किया और उ हे मौत के घाट उतार दिया। इस सफलता ने उसे पूगल के भाटियो के सम्पक मे ला दिया। पूगल के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह बीका के साथ कर दिया। इस ववाहिक सम्ब ध के बाद बीका ने कोडमदेसर नामक स्थान पर रहने का निश्चय किया। इस स्थान पर उसने एक दुग बनवाया और उसे के द्र बना कर आस पास के राज्यो पर आक्रमण करने लगा। जिनको वह परास्त करता उनको अपने अधिकार म ले लेता।

अब बीका इस क्षेत्र मे अति प्राचीनकाल से आबाद जिट अथवा जाट लोगो के राज्य की तरफ अग्रसर हुआ। वतमान बीकानेर राज्य का अधिकाश भाग पहले इन्ही लोगो के अधिकार मे था। जोधा के पुत्र ने इस क्षेत्र मे रजवाडो की सामन्त शासन पद्धति लागू की, उसके पहले उन जाट लोगो के बारे मे कुछ कहना ठीक रहेगा।

इस विख्यात जाति का पर्याप्त विवरण पहले दिया जा चुका है। प्राचीन एशिया मे जितनी जातिया आबाद थी, उनमे जिट लोगो की सख्या सबसे अधिक थी और वे अत्यधिक साहसी तथा पराक्रमी थे। ईसा की चौथी सदी म पजाब म जाटो का एक शक्तिशाली राज्य था। परन्तु ये लोग उस क्षेत्र म कब आकर बसे थे, इसके बारे मे हम अधेरे म हैं। भारत म मुसलमानो को प्रत्येक कदम पर जाटो से लोहा लेना पडा था। सिन्धु नदी को पार कर महमूद के आगे बढने पर इन्ही जाटो ने भयकर सघर्ष के बाद अपने राज्य की रक्षा की थी और तमूर को भी अपने आक्रमण के समय इन्ही जाटो से भयकर युद्ध करना पडा था। बाबर ने भी लिखा है कि जब मैं भारत पर आक्रमण करने आया था तब जाटो ने मेरे साथ युद्ध किया था।[1] पजाब म इस्लामी आतक के बढने पर जाट लोगो ने गुरु नानक का धर्म स्वीकार कर लिया और जाट के स्थान पर सिक्ख बन गये।

सक्षेप म तीन शताब्दियो के पूर्व यति, जेटे जिट, जट अथवा जाट लोगो की सख्या भारत की अन्य जातियो की तुलना म सबसे अधिक थी। यह भी सत्य है कि रजवाडो के पश्चिमी भाग और शायद उत्तरी भारत के कृषको म सबसे अधिक सख्या इन्ही के वशजो की है।

जाट लोग किस समय म मरूभूमि म आकर बसे, इसकी सही जानकारी नही मिल पाई। परन्तु राठौडो के आक्रमण के समय उन लोगो की आदतो से इस बात की पुष्टि होती है कि वे सीथियन मूल के थे। उन दिनो म वे मुख्यत कृषि का काय करते थे। प्राचीन काल मे वे एक देवी की पूजा किया करते थे। आगे चल कर वे लोग मुस्लिम सत शख फरीद[2] के उपदेशो से प्रभावित हुये जिससे उनके धार्मिक विश्वासो मे बहुत परिवतन आ गया।

तमूर और बाबर के आक्रमणो के अन्तराल म राठौडो ने इन जाटो को परास्त किया था। बीका से परास्त होने के पहले जाट लोग कई सदियो से इस मरूभूमि म आबाद थे। उनके अधिकार की भूमि इस बात को पुष्ट करती है और वह तमाम प्रदेश जिससे बीकानेर राज्य बना, वह जाटो की निम्न छ शाखाओ के अन्तगत था—1 पूनिया 2 गोदारा 3 सारन, 4 असिघ 5 बनीवाल और 6 जोहिया। अन्तिम शाखा को कुछ लोग यदु भाटी भी कहते है जिससे उनके जिट अथवा यति से उद्भव के दावे की पुष्टि होती है।

प्रत्येक शाखा के नाम से उनके अधिकृत क्षेत्र प्रसिद्ध हुये। इनके अलावा तीन और विभाग थे—बागौर, खारी पट्टा और मोहिल। इन पर भी राठौडो का प्रमुत्व

कायम हो गया। इस प्रकार, बीकानेर राज्य में कुल नौ विभाग है। जाटों से छीने गये 6 विभाग बीकानेर राज्य के मध्य और उत्तरी भाग में है और तीन राजपूत शाखाओं से छीने गये विभाग राज्य के दक्षिण और पश्चिम में हैं। इन सभी का ब्यौरा इस प्रकार है—

	विभाग	ग्राम	परगने
1	पूनिया	300	भादरा अजीतपुर सीधमुख राजगढ दारद, साकू आदि।
2	बनीवाल	100	भूखरखा, सुदरी मनोहरपुर, कुई बाई आदि।
3	जोहिया	600	जतपुर कवानो महाजन, पीपसर उदयपुर आदि।
4	असिघ	150	रावतसर, वीरमसर दादूसर गुडइली आदि।
5	सारन	300	कोजर फुग्राग, बूचावास सोवाई, वादनू सिरसिला आदि।
6	गोदारा	700	पुदरासर, गोसेनसर (वडा) शेखसर गडलोसर गरीबदेसर रंगोसर, कालू आदि।
		2200	
7	वागोर	300	वीकानेर, नाल, किला राजासर, सतासर, चतरगढ रिनदीसर, बीतनख, भवानीपुर, जयमलसर इत्यादि।
8	मोहिल	140	चौपुर (मोहिलो की राजधानी), सावता, हीरासर, गोपालपुर चारवास, बीदासर, लाडनू, मलसीसर, खरबूजरा, कोट आदि।
9	खारी पट्टा	30	नमक का जिला।

उन दिनो म इतनी जल्दी से राज्यो का निर्माण होता था कि मडौर से आने के कुछ वर्षों के भीतर ही बीका 2670 गावो एव नगरो का राजा बन गया। यह सब केवल विजय से नही हुआ अपितु उससे भी कही अधिक सुदृढ एव वधानिक पद्धति से हुआ आसपास के क्षेत्रों द्वारा स्वेच्छा से बीका का प्रभुत्व स्वीकार करना। लेकिन मुश्किल से तीन शताब्दिया गुजरी होगी कि बीकानेर राज्य के गावो की सख्या बहुत कम हो गयी। मौजूदा बीकानेर के राजा सूरतसिंह के शासनकाल म मात्र 1300 से भी कम गाव रह गये हैं।

उत्तरी मरुस्थल म चारो ओर आबाद जिट अथवा जोहिया लोग पशु पालन का व्यवसाय करते थे और पशु धन ही उनकी धन-सम्पत्ति थी। वे गायो और भैसो का घी तयार करके बेचते थे। भेडो के बाल भी बेचा करते थे। इन चीजो के बदले म वे गेहूँ, चावल तथा दनिक जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुए खरीदा करते थे।

जाट लोगो की प्राचीन सीथियन सादगी का पतन और बीकानर के निर्माण के लिये कई कारण उत्तरदायी थे। यह ठीक है बीदा द्वारा मोहिलो को पराजय न बीका को प्रोत्साहित किया था पर तु उसकी सफलता मे जाट लोगो की आपसी फूट मुख्य कारण रहा। समस्त जाट छ शाखाओ म विभाजित थे और उनकी आपसी फूट इस सीमा तक बढ चुकी थी कि व एक दूसरे के लिये घातक हो रहे थे। उन्हा दिनो बीका ने उनके आसपास के छोटे छोटे गाँव नगरा को जीत कर अपना आतक फलाया और फिर वह जाटा की तरफ बढा। जाटा की दो प्रमुख शाखाओ-जोहिया और गोदारा की आपसी फूट ने ही जोधा के बेटे बीका के आक्रमण का तात्कालिक कारण था। जिन मोहिलो को बीदा ने जीत कर अपन अधीन कर लिया था उनकी जाटो के साथ बहुत पहले स शत्रुता चली आ रही थी। उन लागो ने बीका का साथ दिया था। जसलमेर के भाटिया और जाटा म भी शत्रुता थी, अत जाट लोग राठौरो के रूप मे अपने और उनके बीच म एक मजबूत दीवार के भी आकाक्षी थे। फिर व यह बात भलीभाति समझ गये थे कि भूमि की भूख राठौडो को जागल देश म लाई है और उनके शौय का सामना करना सम्भव नही होगा, इन सब बातो को सोच कर जाटो ने बीका की अधीनता स्वीकार कर ली।

सबसे पहल गोदारा जाटो न अधीनता स्वीकार करन का निश्चय किया और इसके लिय उ होने अपने दो प्रतिनिधिया को बीका के पास भेजा और उसक प्रमुत्व को मानन के लिये निम्न शर्तें रखी—

1 जोहिया और दूसरी शाखाओ के जाटा के विरुद्ध बीका उनके हितो की रक्षा करेगा।

2 भाटियो के आक्रमण से सुरक्षा प्रदान करन के लिये पश्चिमी सीमा की रक्षा करनी होगी।

3 व्यक्तिगत और सामाजिक स्वत्व सुरक्षित रखे जायगे। उनम किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही किया जायगा।

बीका द्वारा उपयु क्त शर्तों को स्वीकार कर लेने के बाद गोदारा जाटा ने अपनी सत्ता बीका का सौंप दी। उन्होंन प्रत्येक घर से एक एक रुपया कर के रूप म (धुआ कर) और प्रत्येक सौ बीघा कृषि योग्य भूमि पर दो रुपया भूमि कर देना स्वीकार किया। फिर भी उन लोगो को आशका रही कि कही बीका और उसक उत्तराधिकारी उनके अधिकारो का अतिक्रमण न कर बठें अत उ होन बीका से पूछा कि इस प्रकार की स्थिति के विरुद्ध वह उ ह किस प्रकार से सुरक्षा प्रदान कर सकता है। बीका ने उनके भय को दूर करन के लिये कहा कि वह स्वय अपन को तथा अपने उत्तराधिकारिया को इस बात के लिये पाब द करेगा कि अभिषेक का टीका गोदारा

के दानो प्रतिनिधियो के द्वारा ही किया जायेगा और इसके अभाव मे अभिषेक को मा यता प्राप्त नही होगी। कृषक लोगा द्वारा इस सादगी के साथ आत्मसमपण करन के पीछे भी स्वतन्त्रता के प्रति उनके अगाध प्रेम का पता चलता है जो कि सभी समय मे इस जाति के सभी समूहो की चारित्रिक विशेषता रही है।

राजपूता ने इस प्रकार से जिन लोगो की भूमि पर अधिकार किया था, उस समय उनके मध्य जो शर्तें तय हुई थी उनका पालन किया था। मवाड के प्राचीन निवासी भीला ने गुहिलोत वश के सस्थापक के सामने आत्मसमपण किया था और उसका राजतिलक भी किया था। आज तक मेवाड के राणा इस परम्परा को निभाते आ रहे हैं। इसी तरह, आमेर के प्राचीन निवासी मीना लोग भी राजतिलक के समय इसी प्रकार की प्रणाली को निभाते आ रहे हैं। कोटा और बू दी के राजा लोग भी हाडौती के पुराने स्वामियो को नही भूले हैं। इसी प्रकार, बीका के वशधर भी उसी प्रकार से राजतिलक करवाते हैं, जसाकि बीका ने गोदारा जाटो से करवाया था। वे आज भी उनके प्रतिनिधि को इस अवसर पर पच्चीस स्वण मुद्रा भेंट म दते हैं। बीका ने अपनी राजधानी का निर्माण करने के लिये जिस भूमि खण्ड को पस द किया था उसका मालिक एक जाट था। उस जाट ने यह शत रखी कि राजधानी के नाम के साथ उसका नाम जोडा जाय तो वह अपने बपौता की भूमि देने को तयार है। उसका नाम नेरा अथवा नेर था। बीका ने उसकी शत को स्वीकार कर लिया और अपने नाम के साथ उसका नाम जोड दिया। इस प्रकार राजधानी का नाम हुआ "बीकानर"।

बीका के वशजो की वृद्धि के साथ साथ पुरानी बाता को भुलाया जाने लगा, फिर भी जाटो से सत्ता प्राप्ति की याद कई अवसरो पर ताजा कर ली जाती है। दिवाली और होली के अवसर पर गोदारा के दोना प्रतिनिधि–शेखासर आर रूणिया के प्रधान बीकानेर के राजा को तिलक करने के लिये अब तक आते हैं। रूणिया का प्रधान चादी की थाली मे टीका की सामग्री तयार करता है और शेखासर का प्रधान उस सामग्री स राजा के तिलक करता है। प्रत्युत्तर म राजा दोना प्रधाना को स्वण मुद्रा और रुपये भेंट म देता है।

अब हम पुन राजनतिक वृत्ता त की ओर आते हैं। गोदारा के आत्मसमपण के बाद बीका न उनके साथ मिलकर जोहिया जाटा पर आक्रमण किया। जोहिया लाग मरूस्थल क उत्तरी भाग स लेकर सतलज के किनारे तक आबाद थे और उस समय मे उनके अधिकार म 1100 नगर और ग्राम थ। फिर भी केवल तीन सदियो के अ तराल क बाद उनका नाम भी लोप हो गया है। जोहिया का राजा भरूपाल नामक स्थान पर रहता था, उसका नाम शेरसिंह था। उसन अपनी जाति के लोगो की एक सेना एकत्र की और लम्बे समय तक राठौडा और गादारो की सयुक्त शक्ति का सामना

किया। पर तु षडयन्त्र और विश्वासघात के द्वारा शेरसिंह मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद ही राठाड जाहिया के राज्य पर अधिकार कर सके थे।

इस सफलता से प्रोत्साहित होकर बीका पश्चिम की तरफ बढा और भाटियो से बागोर छीन लिया। यह क्षेत्र पहले जाटो के अधिकार मे था और भाटिया ने उनसे छीन लिया था। इसी क्षेत्र म, मारवाड से रवाना होने के तीस वर्ष बाद, सवत् 1545 (1489 ई) के वैसाख मास के पन्द्रहवें दिन बीका न अपनी राजधानी बीकानेर की प्रतिष्ठा की थी।[3]

जब बीका इस क्षेत्र म अच्छी तरह से जम गया, तब उसका चाचा कांधल ने उसका साथ छोडकर नवीन विजये प्राप्त करने के लिये उत्तर की तरफ कूच किया। उसके साथ राठौडो की एक सेना थी। उसने जाटो की दूसरी शाखाओ—असिय, बेनीवाल और मारण को पराजित करके अपना प्रभुत्व कायम किया। उसके वशज अब तक उत्तरी बीकानेर म पाये जाते है और 'कांधलोत राठौड" कहलाते हैं। यद्यपि उनके क्षेत्र बीकानेर राज्य मे ही सम्मिलित हैं लेकिन कांधलोत को अपनी स्वतन्त्र सत्ता पसन्द है और उनका कहना है कि कांधल ने इन क्षेत्रो को अपनी तलवार से जीता था न कि राजा द्वारा भेंट म मिले थे। वे अपने राजा के प्रति अनिच्छा से नाम मात्र की आज्ञाकारिता प्रदर्शित करते है। जब कभी आवश्यकता पड़ने पर उनसे कर मागा जाता है, तो स्पष्ट शब्दो मे मना कर दिया जाता है और वे कहते है, किसने इसे राजा बनाया था? क्या वह हमारा पूर्वज कांधल नही था? कांधल का विजयी अभियान सम्राट के एक सेनानायक जो उन दिनो हिसार म रहता था, हमेशा के लिये समाप्त कर दिया गया था।

सवत् 1551 (1495 ई) म बीका का स्वर्गवास हो गया।[4] वह अपने पीछे पूगल सरदार की कन्या से उत्पन्न दो पुत्र छोड गया। बडा लडका लूनकरण उसके सिंहासन का उत्तराधिकारी बना।[5] छोटे लडके गडसी ने गडसीसर और अडसीसर नाम के दो नगर बसाये। दोनो के अन्तर्गत 24–24 गाव है।

लूनकरण ने पश्चिम की तरफ भाटियो से कई इलाके जीते। उसके चार लडके थे। बडे पुत्र ने महाजन नामक परगने के 144 गावो को लेकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा व्यक्त की और पैतृक राज्य पर से अपना अधिकार त्याग दिया। इस पर उसका छोटा भाई जेतसी सवत् 1569 म बीकानेर का राजा बना। जेतसी के दो भाइयो को भी पृथक क्षेत्र प्रदान कर दिये गये। जेतसी के तीन लडके हुए—कल्याणमल, शिवजी और अश्वपाल। जेतसी ने नारनोत के गिरासिया सरदार को पराजित करके यह क्षेत्र अपने दूसरे पुत्र शिवजी को प्रदान कर दिया। यह जेतसी ही था जिसने बीका के वशजो को अपनी सर्वोच्च सत्ता मानने तथा कर देने के

लिये विवश किया था। सवत् 1603 म कल्याणमल उसका उत्तराधिकारी बना।[6] उसके तीन लडके थे—रायसिंह, रामसिंह और पृथ्वीसिंह।

सवत् 1630 (1573 ई) म रायसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा। इस समय तक जाट लोग अपने पुराने अधिकारों को बनाये रहे परन्तु राजपूतो की बढती हुई आबादी को यह सहन नही हो पाया और जाटो को सभी प्रकार की राजनैतिक सत्ता म वचित कर दिया गया। अपनी स्वतन्त्रता और सैनिक शक्ति को खोने के बाद वे कृषक मात्र बनकर रह गये। रायसिंह के शासनकाल म ही बीकानेर *मुगल साम्राज्य* के अधीन राज्यो म एक प्रमुख राज्य बन गया और राजपूतो ने अपनी स्वाधीनता का सौदा कर मुगलो की अधीनता स्वीकार कर ली।[7] उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अकबर विराजमान था। रायसिंह और अकबर–दोनो ने जैसलमेर की राजकुमारियो *से विवाह किया था। इस सम्बन्ध के कारण, जब आमेर के राजा मानसिंह ने राय*सिंह को दरबार म उपस्थित किया तो उसे चार हजार का मनसब राजा की उपाधि तथा हिसार की सरकार प्राप्त हुई। इसके अलावा, जब जोधपुर के मालदेव से बादशाह खफा हुआ और उसके राज्य का नागौर परगना जीत लिया गया तो अकबर ने यह समृद्ध परगना रायसिंह को प्रदान कर दिया। इस प्रकार के सम्मान और बादशाह का एक प्रमुख सेनानायक की शक्ति से सम्पन्न रायसिंह अपनी राजधानी लौट आया और अपने भाई रामसिंह को भटनेर के विरुद्ध भेजा जिसे उसने जीत लिया। यह नगर भाटियो का एक प्रमुख केन्द्र था।

रामसिंह ने इसी समय जोहियो का भी पूरी तरह से दमन किया, क्योकि वे लोग अपनी पुरानी स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिये उपद्रव मचाने लगे थे। राजपूतो ने उनके गावो को लूटा और उनमे आग लगा दी। तब से ही यह क्षेत्र वीरान हो गया है और जोहिया नाम का ही लोप हो गया। जोहिया राज्य के विनाश के समय म भी सिकन्दर रूमी (सिकन्दर महान्) का नाम वहा प्रसिद्ध था। दादूसर नामक स्थान पर प्राचीन महल के खण्डहर आज भी मौजूद है जिसे लोग रगमहल कहते है। कहा जाता है कि सिकन्दर ने दादूसर पर आक्रमण कर रगमहल का ध्वस किया था। परन्तु ऐतिहासिक साक्ष्यो से इसकी पुष्टि नही होती। सम्भव है कि बाद म किसी अन्य यूनानी सेनानायक ने जोहिया राज्य पर आक्रमण कर रगमहल को नष्ट किया हो।

रामसिंह ने जोहिया जाटो का दमन करने के बाद पूनिया जाटो पर आक्रमण किया। वे लोग अभी तक स्वाधीनता के साथ जीवन व्यतीत कर रहे थे। रामसिंह ने यहा भी नरसहार किया और उनकी जमीनें राजपूतो को सौप दी गई। परन्तु पूनिया लोगो की जमीनो पर राजपूतो को आबाद करने की उसे महगी कीमत चुकानी पडी। पूनिया जाटो ने उसको मार डाला। परन्तु उसके वशजो—रामसिंहोतो ने

संघर्ष जारी रखा और पूनिया जाटों के बहुत से प्रसिद्ध नगरों और गावों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार, बीकानेर राज्य की सीमाओं में वृद्धि हुई। लक्न कांधलानों की भांति रामसिंहोतों ने भी बीकानेर के राजा के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया। वे लोग जिस क्षेत्र में बस गये थे उसमें उनके दो प्रमुख नगर थे—सीधमुख और साखू।

राजा रायसिंह ने अपने शूरवीर राठौड़ों के साथ अकबर के सभी युद्धों में भाग लिया। अहमदाबाद के विरुद्ध किये गये आक्रमण में उसने वहां के शासक मिर्जा मोहम्मद हुसैन को मौत के घाट उतार कर प्रसिद्धि प्राप्त की। अकबर राजपूतों की शूरवीरता से परिचित था और वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा उनके साथ घनिष्ठ मैत्री बनाये रखने के पक्ष में था। अतः उसने अपने पुत्र सलीम (जहांगीर) का विवाह रायसिंह की लड़की के साथ कर दिया। अभागा शाहजादा परवेज इसी विवाह का फल था।

संवत् 1688 (1632 ई.) में रायसिंह की मृत्यु के बाद उसका एकमात्र लड़का कर्णसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा।[8] अपने पिता के जीवनकाल में ही कर्णसिंह[9] बादशाह की सेवा में नियुक्त हो गया था और उसे दो हजार की मनसब प्रदान की गई तथा दौलताबाद का शासनाधिकारी नियुक्त किया गया। कर्णसिंह दाराशिकोह के न्यायोचित अधिकार का समर्थक था, अतः उसके विरोधियों ने उसको समाप्त करने के लिये एक षडयन्त्र रचा। परन्तु बूंदी के हाड़ा राजा द्वारा सतर्क कर दिये जाने से वह षडयन्त्र का शिकार होने से बच गया। बीकानेर में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके चार पुत्र हुये—पद्मसिंह, केसरीसिंह, मोहनसिंह और अनूपसिंह।

शाही सेवा में काम करते हुये पहले दोनों पुत्र बीजापुर अभियान के दौरान में वीरगति को प्राप्त हुये और तीसरा लड़का मोहनसिंह शाही शिविर में एक दुर्घटना के फलस्वरूप मारा गया। फरिश्ता ने अपने ग्रंथ 'दक्षिण के इतिहास' में इस दुर्घटना का उल्लेख करते हुये लिखा है कि एक हिरण के बच्चे को लेकर शाहजादा मुअज्जम और मोहनसिंह में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दोनों ने अपनी तलवारें निकाल लीं। शाहजादा के हाथों मोहनसिंह मारा गया। फरिश्ता के अनुसार उसके दोनों भाई इस दुर्घटना के बाद मारे गये थे।

संवत् 1730 (1674 ई.) में अनूपसिंह बीकानेर का राजा बना।[10] उसके परिवार की सेवाओं से सन्तुष्ट बादशाह ने उसे पांच हजार का मनसब तथा बीजापुर और औरंगाबाद का शासनाधिकारी नियुक्त किया। अनूपसिंह अपनी सेना सहित जोधपुर के महाराजा के साथ काबुल के अफगानों का विद्रोह दबाने के लिये गया और उस काम के सम्पन्न हो जाने के बाद वह वापस लौट आया। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में फरिश्ता और बीकानेर के भट्ट ग्रंथों में विरोधाभास है। फरिश्ता के अनुसार

उसकी मृत्यु दक्षिण म हुई थी। परन्तु दूसरे वृत्ता त के अनुसार दक्षिण अभियान के दौरान शिविर लगाने की बात को लेकर उसका मुगलो के प्रधान सेनापति से झगडा हो गया। इसलिये अप्रसन्न होकर वह दक्षिण से अपने राज्य को लौट आया और बाद मे यही पर उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे दो पुत्र छोड गया—स्वरूपसिंह और सुजानसिंह।

सुजानसिंह[11] उसका उत्तराधिकारी बना, पर-तु उसन कुछ नही किया।

सवत् 1793 (1737 ई) मे जोरावरसिंह राजा बना, उसके शासनकाल म भी कोई उल्लेखनीय घटना घटित नही हुई।

सवत् 1802 (1746 ई) मे गजसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बठा। उसे अपन इकतालीस वप के शासनकाल मे भाटिया और भावलपुर के खान से निर तर सघप करना पडा। भाटियो से उसन राजासर, कालिया रनियार, सतसर, बुन्नीपुरर, मतलाई आदि इलाके छीनकर अपन राज्य म मिला लिया। भावलपुर के खान से उसके प्रसिद्ध दुग अनूपगढ को छीन लिया। उसने अनूपगढ के पश्चिम की आर वाले क्षेत्र को पूरी तरह स उजाड दिया ताकि दाऊद के पोतडा[12] लोग कभी विद्रोह न कर सके।

राजा गजसिंह को 61 पुत्रो का पिता होन का गौरव मिला पर तु उसकी विवाहित रानियो से केवल 6 पुत्र हुये जिनके नाम ये—छत्रसिंह राजसिंह सुरतानसिंह अजयसिंह, सूरतसिंह और श्यामसिंह। इनम स छत्रसिंह की मृत्यु बचपन म ही हा गई थी और राजसिंह का मौजूदा राजा सूरतसिंह की मा ने जहर देकर मार दिया। इस घटना से भयभीत होकर सुरतानसिंह और अजयसिंह बीकानर छोडकर जयपुर चले गये। ऐसी स्थिति म सूरतसिंह राजा बना ग्रार श्यामसिंह एक छोटी सी जागीर से सतुष्ट हो वही रहने लगा।

सवत् 1843 (1787 ई) म राजसिंह अपने पिता की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी बना। पर-तु अभिपेक के तेरह दिन बाद ही सूरतसिंह की मा ने उसको धोखे से जहर खिला दिया जिसस उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद सूरतसिंह ने अपन और बीका के सिंहासन के मध्य विद्यमान अ-य दावेदारो का हटाने का निश्चय किया। राजसिंह अपन पीछे दा पुत्र छोड गया—प्रतापसिंह और जयसिंह। सूरतसिंह न प्रतापसिंह को सिंहासन पर बठाकर शासन सत्ता अपने हाथ म ल ली और उसके अभिभावक के रूप मे अठारह महीन तक शासन किया। इस अवधि म उसन लगातार बहुमूल्य उपहार देकर अपनी जाति क सरदारा और मन्त्रिया को अपन अनुकूल बना लिया। इस लम्बी अवधि क बाद उसन राज्य क दो प्रमुख सरदारो—महाजन और भादरां के सामन्ता क सामन अपना अपना असली रूप

व्यक्त किया और उ हे उनकी जागीरो मे वृद्धि करन का आश्वासन दिया यदि वे सिहासन के अपहरण म उसकी मदद करन को तयार हो। राज्य के स्वामिभक्त दीवान बख्तावरसिंह जिसका परिवार चार पीढ़ियो मे इस महत्वपूर्ण पद का दायित्व निभाता आया था, को इस घृणित योजना की जानकारी मिल गई। उसने सूरतसिंह की योजना को विफल बनाने का प्रयास किया, पर तु उसे कारावास म पटक दिया गया। योजना को कार्यान्वित करने के पूर्व सूरतसिंह न भटिंडा और आसपास के क्षेत्र से भर्ती सैनिको को एकत्र किया ताकि सभावित विद्रोह को कुचला जा सके। इसके बाद अभिभावक न अपने ही नाम से राज्य के सभी साम तो को दरबार म उपस्थित होने के आदेश भेजे। उपयुक्त दो राजद्रोही सरदारो के, एक भी साम त उसकी सेवा म उपस्थित नही हुआ। उन साम तो ने उसके विरुद्ध मिलजुल कर सगठित होने का कोई प्रयास नही किया और सभी अपनी अपनी जागीरो म आलसियो की भाति बठे रहे। अपने सभी सनिको को एकत्र कर अपहर्ता सूरतसिंह नोहर की तरफ बढा और वहा पहुचकर उसने भूखर के साम त को मुलाकात के लिये बुलाया और उसे ब दी बनाकर नोहर के दुग म रख दिया। इसके बाद उसने अजीतपुर नामक स्थान को लूटा और साखू नामक स्थान पर आक्रमण किया। वहा के साम त दुजनसिंह ने बहादुरी के साथ उसका सामना किया और जब पराजय को सामने देखा तो उसने आत्महत्या कर ली। उसके पुत्र को ब दी बना लिया गया और उनसे बारह हजार वसूल किये गये। इसके बाद चूरू के व्यापारिक नगर की घेराब दी की गई। इस नगर ने 6 महीन तक प्रतिरोध किया। इसी बीच कद मे पडे भूखर के साम त न, अपनी रिहाई की कीमत के बदले मे, अ यो के साथ विश्वासघात करत हुये अपहर्त्ता को सिंहासन पर बठान का प्रस्ताव रखा। उसने ऐसा ही किया और चूरू को लूट से बचान के लिये सूरतसिंह को दो लाख रुपय जुर्माना स्वरूप देने का प्रस्ताव रखा गया। इन रुपयो को लेकर सूरतसिंह वापस लौट गया।

इस प्रकार क कठोर कृत्य के परिणामस्वरूप प्राप्त साधनो क साथ बीकानेर आने के बाद सूरतसिंह न अपने और राजमुकुट के मध्य की एकमात्र बाधा–अपन राजा तथा भतीजे को दूर हटान का निश्चय कर लिया। पर तु इसम उसे एक कठिनाई का सामना करना पडा। उसकी बुद्धिमती और शीलवती बहिन उस बच्चे को अपनी निगाहो से ओझल न होने देती। सूरतसिंह जब अपनी बहिन को अपने अनुकूल न बना सका तो उसन नरवर के राजा के साथ उसका विवाह करन का निश्चय किया। नरवर के राजा को इन दिनो धन की सख्त आवश्यकता थी। उसने तत्काल विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसकी बहिन न अपन भाई को समझाने का प्रयास किया कि वह अब विवाह की आयु को पार कर चुकी है, उसने नरवर के राजा को भी लिखा कि पहले स ही मवाड के राणा अरिसिंह क साथ उसके विवाह की बात तय हो चुकी है, पर तु उसके सारे प्रयास निष्फल रहे।

सूरतसिंह ने नरहर के कुशाल राजा को तीन लाख रुपये दहेज में देने का लालच दिया था। निर्धारित समय पर उनका विवाह हो गया। ससुराल जाने के पूर्व उसने अपने भाई को बुलाकर निर्भीकता के साथ कहा कि वह जानती है कि आप उसे सदा बीकानेर से विदा करना चाहते हैं। आप अपने भतीजे को समाप्त करना चाहते हैं। परन्तु सूरतसिंह पर उसके कहने का कोई प्रभाव न पड़ा। उसने ऊपरी तौर पर अपनी बहिन को उस बच्चे की प्राण रक्षा का पवित्र आश्वासन दिया। परन्तु उसकी विदाई उस बच्चे की मृत्यु का कारण थी। उसने महाजन के सामन्त को इस जघन्य कृत्य को कार्यान्वित करने के लिए बुलवाया। उसके अस्वीकार करने पर सूरतसिंह ने अपने हाथ से उस बच्चे की हत्या कर दी।

इस प्रकार, राजा गजसिंह की मृत्यु के एक साल बाद ही बीका की गद्दी पर उसी के वंश के एक हत्यारे ने अधिकार कर लिया। सम्वत् 1857 (1801 ई०) में अपहृता के दोनों बड़े भाई—सुरतानसिंह और अजबसिंह जो जयपुर में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे, भटनेर जा पहुँचे और असंतुष्ट सरदारों तथा भाटियों को एकत्र कर सूरतसिंह को गद्दी से उतारने का प्रयास करने लगे। परन्तु उसके पुराने अत्याचारों की स्मृति ने कुछ सामन्तों को अपनी जागीरों में ही बने रहने को विवश कर दिया जबकि घूस ने अन्य दूसरों को तटस्थ रहने के लिए विवश कर दिया। इससे उत्साहित हो सूरतसिंह निर्भीकता के साथ अपने दोनों भाइयों के विरुद्ध चल पड़ा। बागोर नामक स्थान पर दोनों पक्षों में घमासान युद्ध लड़ा गया जिसमें तीन हजार भाटी मारे गये। इस विजय ने सूरतसिंह के प्राधिकार को पुष्ट कर दिया। उसने युद्धस्थल पर एक दुर्ग का निर्माण करवाया और उसका नाम रखा—फतहगढ़।

इस विजय से प्रोत्साहित सूरतसिंह ने राज्य के भीतर और बाहर अपनी सत्ता के लिए सम्मान प्राप्त करने का सकल्प किया। उसने अपनी ही राज्य के उद्दण्ड सजातीय बीदावतों पर आक्रमण किया और उनकी भूमि से पचास हजार रुपये कर के रूप में वसूल किये। चूरू जिसने उसके भाइयों को सहयोग का आश्वासन दिया था, पर आक्रमण किया गया। नगर को बुरी तरह से लूटा गया। इसके बाद आस पास के सामन्तों का दमन किया गया परन्तु भादरा के साहसी जिसा एक दुर्ग रक्षक ने सफलतापूर्वक उसका प्रतिरोध किया। बीकानेर की सेना 6 महीने तक घेरा डाले रही और अन्त में निराश होकर वापस लौट गई।

सूरतसिंह ने जिस तरीके से सिंहासन प्राप्त किया था और बाद में जिन अत्याचारों के द्वारा अपने विरोधियों को दबाने का प्रयास किया था, उसके कारण उसके राज्य की जनता में भारी असंतोष उत्पन्न हो गया था। उसने अपने प्रति इस असंतोष की दिशा को मोड़ने का प्रयास किया और उसे शीघ्र ही एक अवसर

गया। इन्हीं दिनों में भावलपुर राज्य के तियारो के सामन्त खुदाबख्श ने अपने राजा भावल खां के विरुद्ध सूरतसिंह से सहायता मांगी। उस राज्य के साथ बीकानेर वालों का बहुत पहले से ही विरोध चला आ रहा था और कई बार दोनों पक्षों में युद्ध लड़े जा चुके थे। खुदाबख्श किरणी वंश का था। वह अपने तीन सौ घुड़सवारों और पांच सौ पैदल सैनिकों सहित बीकानेर चला आया और सूरतसिंह से आश्रय देने का अनुरोध किया। सूरतसिंह ने उसको न केवल आश्रय ही दिया अपितु बीस गांव तथा दैनिक खर्च के लिये प्रतिदिन के हिसाब से एक सौ रुपये देने की आज्ञा भी दी। खुदाबख्श ने इस मदद के बदले में बीकानेर राज्य की सीमा को बढ़ाने में सभी प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। इससे प्रोत्साहित होकर सूरतसिंह ने भावल खां के साथ युद्ध करने का निश्चय किया और राज्य के सभी भागों से बीका के पुत्रों को राजधानी में आकर एकत्र होने के लिये संदेश भिजवाये। राठौड़ सरदारों और वेतनभोगी सैनिकों को मिलाकर 2188 घुड़सवार 5711 पैदल और 29 तोपों वाली एक शक्तिशाली सेना खड़ी हो गई। खुदाबख्श के सैनिक इनके अतिरिक्त थे। इस सेना का नेतृत्व राज्य के दीवान के लड़के जैतराज मेहता को सौंपा गया। संवत् 1856 के माघ मास के तेरहवें दिन इस सेना ने भावलपुर पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया। अनूपगढ़ विश्राम करने के बाद यह सेना शिवगढ़, भोजगढ़ होती हुई फूलरा पहुंची। इन सभी स्थानों को जीत लिया गया और फूलरा से सवा लाख रुपये, अन्य मूल्यवान सामग्री और नौ तोपें वसूल की गईं। इसके बाद विजयी सेना खरपुर की तरफ बढ़ी। यह स्थान सिन्धु नदी से केवल तीन मील की दूरी पर स्थित था। इस स्थान पर भावलपुर के कुछ अन्य असंतुष्ट सरदार भी जैतराज की सेना के साथ आकर मिल गये। यहां से जैतराज सीधा भावलपुर की तरफ बढ़ा और आक्रमण करने के पूर्व नगर से थोड़ी दूर पर पड़ाव डाल दिया। इस विलम्ब से भावल खां को अपने असंतुष्ट सरदारों को पुनः अपनी तरफ लाने का अवसर मिल गया। इस पर बीकानेर के सेनापति ने यह सोचकर कि मैंने खान को अपमानित कर दिया है, लूट में प्राप्त धन सम्पत्ति के साथ वापस बीकानेर लौट आया। इससे सूरतसिंह उससे बहुत अप्रसन्न हुआ और उससे सेनापति का पद छीन लिया।

बागौर के युद्ध में सूरतसिंह के हाथों पराजित भाटी लोग दो वर्ष तक पराजय का बदला लेने की तैयारी में जुटे रहे और फिर उन्होंने बीकानेर पर आक्रमण करने की चेष्टा की परन्तु इस बार भी उन्हें परास्त होना पड़ा और इस प्रकार की छुटपुट मुठभेड़ें चलती रहीं। संवत् 1861 (1805 ई०) में सूरतसिंह ने भाटियों की राजधानी भटनेर पर आक्रमण किया। छः महीने के संघर्ष के बाद वहां के राजा जाब्ता खां ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसे रहानियों की तरफ जाने दिया गया। उस दिन से भटनेर बीकानेर राज्य का क्षेत्र बन गया।

जोधपुर राज्य के विरुद्ध धौकलसिंह के समर्थन के लिये जो गठबंधन कायम हुआ था उसमें सम्मिलित होना, सूरतसिंह को बहुत महंगा पड़ा। सूरतसिंह ने 24

लाख रुपये खच किये जो कि उसके मरू राज्य की पाच साल की ग्रामदनी के बराबर था। इस अवसर पर जोधपुर के विरुद्ध अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ वह स्वय गया था। जोधपुर की घेराव दी के समय वह भी गठव धन के साथियो के साथ वहा उपस्थित था। इस घेरेव दी को अत्यधिक असम्मानजनक स्थिति मे उठाना पडा और वह बीकानर चला आया। इस क्षति और अपमान की पीडा से बीमार पड गया और लोगो ने तो उसके अं तिम सस्कार की तयारिया भी शुरू कर दी पर तु प्रजा के दुर्भाग्य से वह रोगमुक्त हो गया। अपन रिक्त राजकोष को भरने के लिये उसने प्रजा पर जो अत्याचार किय, उनकी काई सीमा न रही और अपने पुराने पापो को धान के लिये ब्राह्मणो और पुरोहिता का बहुत सा धन दान पुण्य म दिया था। ब्राह्मण लोग उसे हमेशा घेरे रहत थे और अपन आशीर्वादो सेउसको प्रसन्न करने की चेष्टा करते थे। वह स्वभावत अत्याचारी और निष्ठुर था। भूकर के साम त ने उसकी अनेक अवसरो पर सहायता की थी, पर तु उसन उसकी सेवाओ को विस्मृत कर उसे मरवा डाला। बीकानेर के अ य प्रमुख साम ता—सीधमुख के नारहसिह गु दाइल के गुमानसिह और ज्ञानसिह के भाग्य म भी इमी प्रकार स मारा जाना लिखा था। चूरू पर तीसरी बार आक्रमण किया गया और वहा का साम त और नगर सूरतसिह के अधिकार म आ गय।

इस प्रकार की आतकवादी व्यवस्था और उसकी बढती हुई अविश्वास की मनोवृत्ति तथा सावजनिक कतव्या के प्रति उपक्षा की नीति क कारण यह राज्य प्रतिवप जनसख्या और सम्पत्ति खोता जा रहा है। राज्य के उत्तरी भाग के साम तो की अवनाकारिता और भाटी लोगो की लूटमार स भयभीत होकर राज्य के बहुत से जाटो और किसानो ने अपने प्राणा की रक्षा के लिय राज्य को छोडकर ईस्ट इडिया कम्पनी के अधिकृत क्षेत्रो—हासी आर हरियाणा म भाग गय। वहा पर उनके साथ उदार व्यवहार किया गया। इ ही दिनो म ईस्ट इडिया कम्पनी न सिरसा और भाटी बहादुरखा के क्षेत्रो को जीत लिया था। अत साधनहीन भाटी लागो न बीकानर राज्य के सीमावर्ती क्षेत्रो को लूटकर उ ह अत्यधिक हानि पहुँचाने लगे। कुछ क्षेत्रो म तो जाट लोगो न मिलजुल कर इन लुटरो का सामना करने का प्रयास किया। उ होन अपने प्रत्यक गाव मे मिट्टी का एक ऊचा टीला तयार किया और उस पर एक पहरेदार रखा गया। लुटेरा का सामना करन क लिय सभी जाटो न अपने पास भाले और बर्छे रखन शुरू कर दिय। पर तु राज्य की तरफ से उनकी सुरक्षा का कोई प्रब ध नही किया गया।

इस राज्य की भौगोलिक स्थिति की चर्चा करने स पहले हम "बीदा के पुत्रो की भूमि' 'बीदावाटी की चर्चा करना अधिक उचित समझेंगे। यह स्मरण होगा कि बीका का भाई बीदा मडार से अपन सनिका के साथ अपना भाग्य आजमाने के लिय चल पडा था। सबसे पहल उसन मवाड क गोडवार क्षेत्र म अपन पर जमान

का प्रयास किया था। वहा सफलता न मिलने पर वह उत्तर की तरफ बढ़ा और मोहिल सरदार के यहाँ नौकरी कर ली। कुछ लोगो की धारणा है कि मोहिल वश यदुवशी राजपूतो की एक शाखा है जबकि अ य लोग उ ह एक स्वतन्त्र जाति मानते हैं। मोहिल सरदार की पदवी 'ठाकुर' थी और उसके अधिकार म 144 गाँव तथा नगर थे। वह छापर नामक नगर मे रहता था। मोहिलो की सगठित शक्ति को देख कर उन्ह शस्त्र बल से पराजित करने का साहस बीदा न जुटा पाया। अत उसने छल-कपट का सहारा लिया। बीदा न मोहिल ठाकुर के साथ मारवाड की एक राजकुमारी के विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे तुर त स्वीकार कर लिया गया। मारवाड की राजकुमारी को छापर ले आया गया। उसके साथ बहुत सी डोलियाँ और बहले भी आयी। मोहिल ठाकुर ने उन सभी को मान-सम्मान के साथ अपने दुग मे स्थान दिया। दुग म पहुँचते ही डोलियो और बहलो से नगी तलवारें लिये हुये राठौड सैनिक बाहर निकले और मोहिल ठाकुर पर टूट पडे। इस प्रकार, बीदा ने मोहिलो को अपने अधिकार म कर लिया। इस विजय की खुशी म बीदा ने लाडनू सहित बारह गाव अपने पिता को भेंट म प्रदान किये जो आज तक मारवाड राज्य के अधिकार म हैं। बीदा के लडके तेजसिंह ने एक नई राजधानी बसाई जिसका नाम 'बीदासर' रखा गया। बीदा के वशज बीदावत के नाम से प्रसिद्ध हुये। वे लोग बीकानेर म सबसे अधिक शक्तिशाली हैं और वहा का राजा भी अपनी नाममात्र की सर्वोच्च सत्ता से सतुष्ट है। उनसे कर लेने का साहस नहीं होता। बीदावतो के अधिकार म जो भूमि है, वह खेती के लिये बहुत अच्छी है। वहा पर गेहूं की पदावार भी बहुत होती है। यह समूचा क्षेत्र पच्चीस मील लम्बा और बारह मील चौड़ा है और इसकी आबादी चालीस पचास हजार के आस पास थी जिसम एक तिहाई भाग राठौडो का था। समूचा क्षेत्र बारह भागो म विभाजित था और प्रत्येक भाग एक जागीर के रूप मे था। इस क्षेत्र के आदि निवासी मोहिल लोग थ पर तु अब मुश्किल से उनके बीस परिवार शेष रह गये हैं। वहा की जातियो म कृषक जाटो और व्यावसायिक लोगो की प्रधानता है।

3 बीकानेर की प्रतिष्ठा 1488 ई० मे की गई थी। टाड साहब की तिथि 1489 गलत प्रतीत होती है।

4 डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार बीका की मृत्यु 1504 ई० मे हुई थी।

5 कर्नल टॉड के अनुसार लूनकरण राजा बना। परन्तु उसके पहले उसके बडे भाई नरा ने शासन किया था। उसका मृत्यु कुछ दिनो बाद ही हो गई थी। तब लूनकरण सिंहासन पर बैठा था।

6 राव जैतसी मालदेव के विरुद्ध लडता हुआ मारा गया था। मालदेव ने सम्पूर्ण बीकानेर राज्य को जीत लिया था। कल्याणमल ने शेरशाह की सहायता से अपना पतृक राज्य प्राप्त किया था। 1570 ई म उसन अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। कर्नल टाड ने केवल एक पक्ति मे ही उसके शासन-काल का वृत्तान्त समाप्त कर दिया है।

7 मुगलो की अधीनता तो कल्याणमल ने ही स्वीकार कर ली थी।

8 कर्नल टाड का यह वृत्तान्त गलत है। रायसिंह के बाद उसका बडा लडका दलपतसिंह राजा बना था। साल-डेढ साल बाद ही वह मुगल बादशाह द्वारा पदच्युत कर दिया गया। तब 1613 ई० मे जहांगीर ने सूरसिंह को राजा बनाया। सूरसिंह ने शाही सेना की सहायता से दलपतसिंह को परास्त कर बदी बना लिया। बाद मे उसे मृत्युदण्ड दिया गया।

9 कर्णसिंह सूरसिंह का लडका था। वह 1631 ई मे राजा बना था।

10 अनूपसिंह 1669 ई म बीकानेर का राजा बना था।

11 अनूपसिंह के बाद 1698 इ० म स्वरूपसिंह राजा बना। दो वष बाद शीतला से उसकी मृत्यु हो गइ तब 1700 इ० म सुजानसिंह बीकानेर का राजा बना।

12 भावलपुर के संस्थापक का नाम दाऊदखा था। उसके वशधरो को राठौड लोग दाऊद पोतडा कहा करते थे।

अध्याय 48

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ

इस राज्य के बारे मे यूरोप निवासियो को बहुत कम जानकारी रही है। वे इसे पूर्ण रूप स मरूभूमि समझते थे। इसकी मौजूदा स्थिति उस वृत्तान्त से मेल नही खाती जो प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है। प्राचीन समय म यह क्षेत्र काफी उपजाऊ और समृद्ध था। आज से तीन सौ वर्षो पूव राजपूतो न इस क्षेत्र पर अपना अधिकार किया था। उसके बाद धीरे धीरे इस क्षेत्र की परिस्थितियाँ बदलती गइ। इस राज्य की प्राकृतिक अवस्था म बहुत परिवतन आ गया है। इसकी उपजाऊ भूमि म बालू की मात्रा बहुत अधिक बढ गई है। फिर भी, इस क्षेत्र म कृषि के द्वारा इतना अनाज पैदा हो जाता है कि यहा के निवासियो का खान पीने की कमी महसूस नही होती। एक समय था जबकि यहा के राजा आवश्यकता पडने पर दस हजार सनिक जुटा लेते थे और उन सनिको के खाने-पीने की व्यवस्था स्थानीय पदावार से ही की जाती थी। अब पैदावार म कमी आ गई है। राज्य की आवश्यकताए उसके द्वारा पूरी हो सकती थी। पर तु कई कारणो से उस पदावार का लाभ राज्य के निवासियो को इन दिनो म नही मिल पा रहा है। इसके दो कारण है—पहला, शासन की निबलता के कारण राज्य म चोरी और डकती की वारदातें बहुत अधिक बढ गई हैं। राज्य के पडोसी क्षेत्रो के लोग सगठित होकर धावा मारते हैं और यहाँ के निवासियो की धन सम्पत्ति और अनाज को लूटकर ल जात हैं। राज्य उन्ह सुरक्षा प्रदान करन म असमथ रहा है। दूसरा कारण राजा का क्रूर शासन है। प्रजा से निदयतापूवक नाना प्रकार के कर वसूल किये जात हैं, जिसस प्रजा की आर्थिक स्थिति दिन प्रति दिन दयनीय होती जा रही है। व्यापार-वाणिज्य जो राज्य की आमदनी का एक अच्छा साधन था, वह भी कम होता गया। चूरू राजगढ और रिनी जस समृद्ध व्यावसायिक केन्द्र उजड गय हैं। इन सबके परिणामस्वरूप राज्य की आमदनी तो काफी कम हुई ही, जनता की आर्थिक स्थिति भी बिगड गई है।

विस्तार–जनसख्या–भूमि–टीबे—पूगल स राजगढ के मध्य इस राज्य की चौडाई 180 मील है, जबकि उत्तर से दक्षिण—भटनेर से महाजन क मध्य की लम्बाई 160 मील है। कुल मिलाकर इस राज्य का क्षेत्रफल 22,000 मील होगा।

पहले के समय में इस राज्य मे 2700 गाव और नगर थे पर तु आज उनमे से आधे लोप हो गये हैं।

मरूभूमि के इस राज्य की जनसख्या के कोई आकडे हमारे सामने नही हैं। जतपुर से पश्चिम की तरफ वाला क्षेत्र इस समय पूरी तरह से उजडा हुआ है, वहा से भटनेर तक के क्षेत्र की भी यही स्थिति है। उत्तर पूव के क्षेत्र मे भी जनसख्या काफी कम है, पर तु अ य क्षेत्रो मे जनसख्या नियमित है और मारवाड के उत्तरी भागो की औसत के समान है। बीकानेर राज्य के प्रधान बारह नगरो की जनसख्या जो नीचे दी जा रही है उसके आधार पर राज्य की आबादी का अनुमान लगाया जा सकता है, और वह सही ही होना चाहिए।

	नगर	घरो की सख्या		नगर	घरो की सख्या
1	बीकानेर	12 000	7	महाजन	800
2	नोहर	2 500	8	जतपुर	1000
3	भादरा	2 500	9	बीदासर	500
4	नरनी	1 500	10	रतनगढ	1000
5	राजगढ	3,000	11	देशमुख	1000
6	चूरू	3 000	12	सनथाल	50
				कुल योग	= 28,850

100 ग्राम-प्रत्येक के घरो की सख्या	= 200	= 20 000
100 ,, , ,	= 150	= 15,000
200 , , , ,	= 100	= 20 000
800 छोटे ग्राम , ,, ,	= 30	= 24,000
	कुल घरो का योग	= 1 07,850

यदि प्रत्यक घर म पाच मनुष्या का औसत रखा जाय ता समस्त घरो म रहन वाला की सख्या 5,39 250 होती है। अर्थात् प्रति वग मील म पच्चीस लोग बस हुये हैं। इस आबादी का तीन चौथाई भाग जाटा का है बाकी लोगा म बीका के वशज, सारस्वत ब्राह्मण चारण भाट और कुछ अ य जातिया के लोग हैं जिनकी सख्या राजपूता की सख्या का दसवाँ भाग भी नहीं होगी।

जिट (जाट)—अ य लोगा की अपेक्षा जाटा की सख्या अधिक है और व अ यो से अधिक समृद्ध भी है। कुछ पुरान समूहा के मुखिया लाग काफी सम्पन्न हैं पर तु

राज्य के भय से वे निधनता का जीवन बिताते है । विवाह जसे उत्सवा के समय ह वे अपनी इच्छानुसार धन खच करते हैं। एसे अवसरो पर वे वडे पमाने पर लोगो क भोजन कराते है यहा तक कि माग से गुजरने वाल यात्रियो को भी बुलाकर भोज कराते है ।

सारस्वत—सम्पूण राज्य म सारस्वत ब्राह्मण अच्छा सख्या म पाये जाते हैं। उन लोगो का कहना है कि जाटा के आन क पहले इस क्षेत्र पर उनके पूवजा का शासन था । व स्वभावत परिश्रमशील और शातिप्रिय हैं । य लोग मास भी खात हैं तम्बाकू का भी सेवन करते हैं और कृषि तथा पशु पालन का व्यवसाय करत हैं।

चारण—चारण लाग इन क्षेत्रा की एक पवित्र जाति है । युद्धप्रिय राजपूत लोगा का ब्राह्मणो के काव्य स कही अधिक आन द चारणा की वीर रस की कविताओ का सुनन मे मिलता है । इसलिये इन लोगो का अधिक सम्मान दिया जाता रहा है । राज्य की तरफ से इन लोगा को भूमि अनुदान दिया जाता है । जसलमेर के इतिहास म इन लोगो का विस्तार से वणन किया गया है ।

माली और नाई—बागवान और नाई प्रत्येक राजपूत परिवार के महत्वपूण सदस्य है और प्रत्यक गाव म है । व लोग मुख्यत भोजन बनान का काम करते हैं।

थोरी या चूहड—वास्तव म ये लुटेरो की जातिया है । चूहड लोग लक्खी जगल के और थोरी लोग मेवाड के रहन वाले है । बीकानेर के साम तो के यहा ये लोग वेतन पर भी काम करत है और उनका भयानक काम सौपे जात है । भादरा के साम त न अपन सभी राजपूत सेवका को निकाल कर केवल चूहड सेवको को ही रखा था । चूहड लोग बहुत भरोसेम द होते है और सीमा तथा नगर की रक्षा का भार प्राय इ ही के हाथ म रखा जाता है । अ तिम सस्कार के समय ये लोग एक एक आना सभी स अपनी दस्तूरी का लत है इसस पता चलता है कि इस प्रकार दस्तूरी लेन की प्रथा प्राचीन काल म उनक पूवजा मे भी थी ।

राजपूत—बीकानर के राठाडो की शूरवीरता म कोई परिवतन नही आया है और भारत की शूरवीर जातिया म आज भी उनका स्थान गौरवपूण माना जाता है। मारवाड आमेर और मेवाड की तरह यहा के राजपूतो को मराठा तथा पठानो क अत्याचारो तथा आक्रमणो का सामना नही करना पडा । इसका कारण इस राज्य की दूरी तथा यहा की कठिनाइया रही पर तु उ ह अपन ही राजा के अत्याचारो को अधिक सहना पडा । बीकानर के राठौड अपन पूर्वी व धुओ की भाति खान पान क मामले म अधिक छुआछात म विश्वास नही करत । वे लोग भाजन करते समय इनकी चि ता नही करत कि यह किसन पकाया है । इसी प्रकार, पानी अथवा दारू पीते समय यह नही पूछत कि यह पात्र किस व्यक्ति का है । यदि उ ह अनुशासन म

रखा जा सके तो वे विश्व क सवश्रेष्ठ सैनिक सिद्ध हो सकत हैं। अफीम गाजा और दूसरे मादक पदार्थों के सवन की आदत ने इन लोगो की शारीरिक शक्तियो का क्षय कर दिया है।

प्राकृतिक अवस्था—कुछ स्थानो जो यत्र तत्र छितराये रूप मे दिखलाई पडते हैं, को छोडकर राज्य की समस्त भूमि मे बालू की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है। पूव से लेकर पश्चिमी सीमा तक का समूचा क्षेत्र रेतीला मैदान है। यद्यपि राज्य के मध्यवर्ती भाग स ही टीवे शुरू हो जाते हैं पर तु जसलमेर की तरफ वाला क्षेत्र तो बहुत अधिक टीवो वाला है। उत्तर पूर्वी क्षेत्र मे राजगढ से नोहर और रावतसर तक की मिट्टी अच्छी किस्म की पायी जाती है। उस मिट्टी का रग काला है यद्यपि कही-कही पर उसम भी बालू की मात्रा देखने म आती है। भूमि की सतह से कम गहराई पर ही सिंचाई योग्य पानी उपलब्ध हो जाने से यहा गेहूँ चना और यहा तक कि चावल भी अच्छी मात्रा मे पदा होत है। भटनेर से गारा के नजदीक तक की मिट्टी भी अच्छी है। मोहिलो के गावो और नगरो की मिट्टी अधिक रेतीली है पर तु वषा का पानी एकत्र हो जान पर काफी अच्छी पैदावार होती है।

इस राज्य म जा बाजरा पदा होता है वह मेवाड और मारवाड के बाजरा की अपक्षा अधिक अच्छा समझा जाता है। तिल और मोठ की पदावार भी अच्छी हाती है। एक अच्छे वष की पदावार से अगले वष के खाने लायक बाजरा आसानी से बचा लिया जाता है। जा मिट्टी गेहू की पदावार के लिये अच्छी मानी जाती है, उसम कपास भी अच्छी पदा होती है। एक बार की बोई हुई कपास सात सात और कभी कभी दस दस वष तक निर तर फलती रहती है। इसीलिये बीकानेर राज्य म रूई की पदावार अधिक होती है।

प्रकृति ने इस क्षेत्र के निवासियो तथा मवेशियो के काम आन वाली अनेक साग सब्जिया की पदावार भी दी है। जल के अभाव के बाद भी इस क्षेत्र म साग सब्जियो क अलावा ग्वार, कचरी ककडी और बडे बडे तरबूज पदा किये जात है। सूखे तरबूजो का आटा स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक माना जाता है। इस राज्य मे खेती वर्षा पर अधिक निभर है और हर समय दुर्भिक्ष का भय बना रहता है। इसलिय यहा के लोग यथाशक्ति खाद्यानो का सग्रह करके रखते हैं। अकाल के दिनो म गरीब लाग प्राय मुरूट बूट हिरारू आदि के फलो को सुखाकर और उनका आटा बनाकर बाजर क आट के साथ मिलाकर खाते है। बनबेर, खर किरीट आदि फलो का भी सग्रह किया जाता है।

यहा की बालू मिट्टी म बडे वृक्ष नही पाये जात परन्तु बबूल, पीलू और जाल नाम के पड काफी सख्या म पाये जात हैं। सठुडा नाम का एक वृक्ष भी पाया जाता है जो बीस फुट लम्बा हाता है। नीम के वृक्ष भी पाये जाते हैं। सक नाम का वृक्ष भी

पाया जाता है। किसान लोग अपने कुआ के चारो तरफ इस पेड को लगाते हैं जिसस उनके कुआ म रेती न जा सके। आक के वृक्ष बहुत बडी सख्या म पाये जाते हैं। य काफी बडे और मजबूत होते हैं। उनकी जडा से रस्सिया बनाई जाती है। बीदावाटी मे मूज और सन भी पदा होती है।

यहा के कृषि उपकरण सीधे सादे हे और जमीन के अनुकूल हैं। हलो क द्वारा खेती होती है और प्राय बला तथा ऊटा के द्वारा हल जोते जाते हैं। जहाँ मिट्टी सख्त होती है, वही पर हल म दो बल अथवा ऊट का प्रयोग किया जाता है। मोठ क लिय ऊट वाले हलो को काम मे लाया जाता है।

जल—जीवन का यह अनिवाय तत्व सम्पूरा भारतीय मरुस्थल म जमीन की सतह से काफी गहराई मे मिलता है। बीकानर की राजधानी के आस पास क क्षेत्रो मे दो सौ और कही तीन सौ फुट जमीन खादने पर पानी मिलता है। इस क्षेत्र म ऐसा काई भी स्थान नही है जहा साठ फुट की गहराई पर मनुष्य के पीने योग्य पानी मिल सके। हा मवेशियो के काम लायक पानी मिल सकता है। प्रत्येक कुए क आस पास एक प्रकार के पेडो की कतार सी लगी रहती है जो बालू को कुए म जाने स रोकती है। राज्य के बडे नगरो मे माली लोग पसे लेकर पानी पहुचाने का काम करते हैं। लोग अपने घरो मे पक्के हौज (टाके) बनाते हैं जिनमे वर्षा का पानी एकत्र किया जाता है। इस हौज के ऊपरी भाग मे वायु के आने का माग बना रहता है जिसकी वजह से पूरे साल भर पानी पीने लायक बना रहना है। कुछ घरा म तो बडे बडे टाके बने हुये हैं। जलाभाव के कारण ही इस प्रकार का प्रब ध करना पडता है।

नमक की झीलें—इस राज्य मे भी नमक की कुछ झीलें है जि ह सिर झील के नाम से पुकारा जाता है, पर तु उनमे से कोई भी मारवाड की झीलो क समान बडी और विशाल नही है। सबसे बडी झील सिर नामक स्थान पर है जो 6 वग मील के घेरे म फली हुई है। दूसरी झील चौपूर के पास है। इसकी लम्बाई दो मील है। उपयु क्त दोनो झीले कही पर भी पाच फुट से अधिक गहरी नही हैं। गर्मी के दिनो मे झील का पानी अपने आप सूख जाता है और नमक की पपडिया सतह पर रह जाती है। यह नमक हल्का होता है और काफी सस्ता बिकता है।

प्राकृतिक सौ दय—बीकानेर राज्य मे प्राकृतिक सौ दय के नाम पर एस दृश्य बहुत कम हैं जिनको नत्रो के लिय आन ददायक कहा जा सके। फिर भी, यहा पर ऐसे अनेक लोग हैं जि ह यहा की रावडी और बाजरे की रोटी ही अत्यधिक पस द है। वे लोग हिमालय की बर्फीली चोटियो की अपेक्षा अपन यहा के बालू क टीबा को चाव से देखते हैं।

खनिज सम्पदा—इस राज्य मे खनिज मम्पदा का ग्रभाव है। कुछ क्षेत्रो म पत्थर की खानें हैं। बीकानेर से पच्चीस मील उत्तर पश्चिम म पूसियारा नामक स्थान पर पत्थर की खाना से राज्य को दा हजार रुपय वार्षिक की ग्राय होती है। बीदासर ग्रौर वीरमसर मे तावे की खाने हैं पर तु वे लाभदायक नही हैं। कोलायत नामक स्थान क पास मुलतानी मिट्टी की खान है। इमका निर्यात किया जाता है ग्रौर इससे राज्य को 1500 वार्षिक की ग्राय होती है। इस मिट्टी के प्रयोग से शरीर की सु दरता बढती है। कई गर्भवती स्त्रिया इसको खाती भी ह।

पशु धन—*यहा की गायें ग्रच्छी नस्ल की मानी जाती है। ऊट माल ढोने* ग्रौर सवारी क काम ग्राता है। युद्ध मे भी काम लिया जाता है। भारत के ग्र य क्षेत्रो के ऊटो की ग्रपेक्षा यहा के ऊट ग्रधिक ग्रच्छे माने जाते हैं। राज्य मे भेडो की सख्या भी बहुत है। नील गाय ग्रौर हिरण भी काफी सख्या मे है। कभी कभी शेर भी देखने मे ग्रा जाता है। भैंसो गायो ग्रौर बकरियो के दूध से बडी मात्रा मे घी तयार किया जाता है ग्रौर उसकी बिक्री स ग्रनेक लोग लाभ उठाते है।

लोहे की वस्तुए—बीकानेर वाले लोहे की ग्रच्छी वस्तुए बना लेते हैं। राज्य के सभी प्रमुख नगरो मे लाह की वस्तुए बनाने के कारखाने है जहा छोटे-बडे चाकुग्रो से लेकर तलवारें भाले ग्रौर ब दूकें तैयार की जाती है। यहा के कारीगर हाथी दात की बहुत सी चीजें भी बनाते हैं। स्त्रियो के लिए चूडिया ग्रौर कडे भी बनाये जाते हैं।

राज्य मे साधारण श्रेणी का कपडा भी तयार होता है जो स्थानीय लोगो की ग्रावश्यकता को पूरी करता है।

वाणिज्य—इस राज्य मे राजगढ प्रमुख व्यापारिक नगर है। सभी देशो से सामान से लदे हुये छकडे यहा ग्राते हैं। पजाब ग्रौर काश्मीर का सामान हासी हिसार क माग मे यहा ग्राता है। पूर्वी प्रदेशो का सामान—पशमीने के वस्त्र नील चीनी लोहा ताबा इत्यादि दिल्ली रिवाडी दादरा माग से ग्राता है। हाडौती ग्रौर मालवा स ग्रफीम ग्राती थी। समुद्र पार से जसलमेर-मुल्तान शिकारपुर होते हुय खजूर गेहू, चावल, फल, कपडा वगरा ग्राता था। बहुत सा सामान इसी राज्य म खप जाता था ग्रौर बहुत सा दूसरे राज्यो का भेज दिया जाता था।

ऊनी वस्त्र—भेडो के शरीर के रूए से ग्रनक प्रकार के ऊनी वस्त्र बनत हं ग्रौर उनका वाणिज्य भी हाता है। ऊनी वस्त्रा का प्रयोग सभी श्रेणी क लोग करत हैं। ऊनी वस्त्र य त्रा द्वारा बनाय जाते ह। माटी एक जोडी लोई तीन रुपय म बिकती है ग्रौर बढिया बारीक लाई तीस रपये की बिकती है। लाई को एक प्रकार की शाल कह सकते हैं।

मेले—कार्तिक ग्रौर फाल्गुन क महीना म कोलायत ग्रौर गजनेर नामक नगरा म मेले लगत हैं। *उन मेला म ग्रनक प्रकार के व्यवसायो विविध वस्तुग्रो के ग्रलावा*

ऊट गायो और लक्खी जगल के घोडो को भी बचन के लिय लाते हैं। पुरान समय म ये मेले बहुत प्रसिद्ध थे पर तु अब उनकी वह प्रतिष्ठा नही रही है।

विविध कर– पहले इस राज्य के लोगो से कई प्रकार के कर वसूल किय जान थे जिनमे तीन मुख्य थे—भूमि कर कृषि कर और अपराधियो से लिया जाने वाला कर। इनसे राज्य का पाच लाख रुपय वार्षिक की आय होती थी। साम तो के अधिकार मे जो भूमि है वह खालसा भूमि से बहुत अधिक है। केवल बीदावत और काधलात सरदारो के पास ही राज्य की सम्पूर्ण भूमि का आधा भाग है। व लोग नाममात्र के लिये राजा की सत्ता को मा यता देते है और कभी कर नही देत। राजगढ, रेनी, नोहर गारा, रतनगढ और चूरू की भूमि खालसा है। चूरू तो अभी हाल ही मे खालसा हुआ था।

राज्य मे 6 प्रकार के कर वसूल किये जाते है—(1) खालसा भूमिकर, (2) धुआ कर, (3) अग कर (4) चु गी और यातायात कर, (5) कृषि कर और (6) मलवा कर।

खालसा भूमि कर—पहले के समय मे राजस्व के इस मद से दा लाख रुपय वार्षिक की आय होती थी, पर तु अब खालसा भूमि के गावो की सख्या उस समय म दो सौ के आसपास थी, पर तु क्रूर शासन के कारण दो तिहाई गाव बर्बाद हो गये और अब उनकी सख्या अस्सी से अधिक नही होगी जिनसे एक लाख रुपये वार्षिक स अधिक आय नही होती। राजा सूरतसिह न राज्य की भूमि लोगो को देने म बुद्धि स काम नही लिया। किसको भूमि देनी चाहिए और किसको नही, इस बात को सोच बिना वह लोगो को भूमि देता गया। इसके कारण से राज्य की आय मे जो कमी आई उसे उसन प्रजा को लूटकर पूरा करने का प्रयास किया।

धुआ कर–इसका अभिप्राय चूल्हा कर से है। सभी को खान क लिए भोजन की आवश्यकता होती है और चू कि उन दिनो मे घरो म चिमनी अथवा धुआदान नही होता था अत सूरतसिह न प्रत्यक घर से निकलन वाल धुए पर कर लगाया। प्रत्येक घर से एक रुपया कर के रूप मे वसूल किया जाता था। इससे राज्य का प्रति वष एक लाख रुपय की आमदनी होती थी। यह कर केवल जसलमर और बीकानेर मे ही वसूल किया जाता है।

अग कर—यह एक प्रकार का "शरीर कर' है और राजा अनूपसिह न इसे लागू किया था। इसके अ तगत राज्य के प्रत्यक स्त्री-पुरुष स चार आना वार्षिक कर वसूल किया जाता था। गायें, बल, भैंसे और बकरिया पर भी यह कर लगाया गया था। दस बकरिया अथवा भेडो को एक अग के बराबर माना गया। परन्तु एक ऊट को चार अग के बराबर मान कर उस पर एक रुपया कर लगाया गया। राजा गज-

सिह ने इसे दुगुना कर दिया । अग कर की दर मे कमी-बढती होती रही । आज भी इस कर से राज्य को दो लाख रुपये की आमदनी होती है ।

सायर (यातायात अथवा वाणिज्य कर)—सायर की दरें और इससे होने वाली आमदनी मे काफी उतार-चढाव आता रहा परन्तु सूरतसिह के शासनकाल से इसमे भारी कमी आ गई । पहले इससे जितनी आय होती थी उतनी राज्य के सम्पूर्ण साधनो से भी नही हो पाती थी । पहले दो लाख रुपये की आमदनी थी । अब एक लाख रुपये से भी कम आमदनी होती है । इसमे से भी आधी आय बीकानेर राज्य के मुख्य व्यावसायिक केन्द्र राजगढ से एकत्र होती है । लुटेरो के भय के कारण पजाब के साथ इस राज्य का सम्पर्क टूट गया और जो व्यापारिक काफिले मुल्तान भावलपुर और शिकारपुर होते हुए बीकानेर होकर पूर्व के नगरो की तरफ जाते थे उन्होने अपना मार्ग ही बदल दिया और अब बीकानेर होते हुए नही जाते है । अब राज्य को केवल अनाज के आयात निर्यात से ही आमदनी होती है । सौ मन अनाज के विक्रय पर अथवा निर्यात पर चार रुपया कर वसूल किया जाता है ।

पुसेती (हल कर)—कृषिकार्य के लिये प्रयोग मे लिये जाने वाले प्रत्येक हल पर पाच रुपये कर को पुसेती कहा जाता है । यह कर राजा रायसिह द्वारा जारी किया गया । इसके पहले किसानो से अनाज की पैदावार का एक चौथाई अनाज कर के रूप मे वसूल किया जाता था । इस व्यवस्था मे राजकर्मचारी बहुत बेईमानी करते थे, तब रायसिह ने अनाज की जगह प्रति हल पाच रुपये का कर लागू किया । इससे किसानो को भी आराम हो गया । पहले इस मद से राज्य को दो लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी परन्तु कृषि की अवनति के साथ साथ आमदनी भी कम होती गई और अब सवा लाख के आसपास आय होती है ।

मलबा—भूमि का माल भी कहते हैं । जब जाटो ने बीका के सम्मुख आत्मसमर्पण किया था तब उन्होने अपनी भूमि पर कर देने का वचन दिया था । यही कर 'मलबा' कर कहलाता है । इस अर्थ मे यह भूमि कर है जो प्रत्येक सौ बीघा कृषि योग्य भूमि पर दो रुपये के हिसाब से लिया जाता है । इस मद से आजकल पचास हजार रुपये की आय होती है । करो के द्वारा राज्य को जो आमदनी होती है उसका ब्योरा इस प्रकार है—

(1) खालसा = 1 00 000 रु (2) धुआ कर = 1,00,000 रु (3) अग कर = 2 00 000 रु (4) वाणिज्य कर = 75 000 रु (5) पुसेती (हल कर) = 1 25, 000 रु (6) मलबा (भूमि कर) = 50,000 रु कुल आय = 6,50 000 रु

इनके अलावा जिन अन्य करो से राजा सूरतसिह को वार्षिक आमदनी होती है, उनमे एक है धानुई । यह कर तीन वर्ष मे केवल एक बार वसूल किया जाता है

ग्रौर प्रति हल पर पाच रुपय के हिसाब से लिया जाता है। ग्रसिया घाटी क पचास गावो ग्रौर वेनीवालो के सत्तर गावो क ग्रलावा यह कर राज्य के सभी गावा के कृपका से वसूल किया जाता है। उन गाव वालो का इसके बदल म सीमा सुरक्षा का काम करना पडता है। ग्राजकल प्रधान साम ता को इम कर से मुक्त रखा गया है ग्रौर इस मद से राज्य को एक लाख रुपय स भी कम की ग्रामदना होती है।

ऊपर जिन करो का वरान किया गया है, राजा सूरतसिंह न ग्रपन खजान को भरने के लिय मनमाने ढग से नये नय कर लगाकर प्रजा स रुपय वसूल किय थ। उन दिना मे राजकमचारी प्रजा के साथ भयानक ग्रत्याचार करत थे ग्रौर मनमाने ढग से धन वसूल करते थे जिससे राजा सूरतसिंह क समय म राज्य का दुगनी ग्रामदनी हो जाया करती थी।

दण्ड ग्रौर खुशहाली—दण्ड ग्रौर खुशहाली दानो परस्पर विरोधी शब्द है। पहले का ग्रथ ग्रनिवाय रूप से धन देना ग्रौर दूसर का ग्रथ ग्रपनी खुशी से दना है। पर तु बीकानर मे दोनो का ग्रथ एक जसा ही समझा जाता था ग्रौर वहा क निवासी ईश्वर से प्राथना करते थे कि उनके राजा के घर मे कभी खुशी न रहे ग्रौर उन्हे कभी विजय न मिले। ग्रपराधिया से जो जुर्माना वसूल किया जाता था वह 'दण्ड' कहलाता था ग्रौर ग्रावश्यकता पडने पर प्रजा से जो कर माग कर वसूल किया जाता था वह खुशहाली" कर कहा जाता था। यह कर साम ता से लेकर साधारण प्रजा तक से वसूल किया जाता था। इन करो की कोई सीमा न थी। गा धोली के सामन्त न ग्रपन क्षेत्र से कर वसूल करने वाले ग्रधिकारी का इस शत पर दम हजार रुपय देने का प्रस्ताव रखा कि ग्राने वाले वारह महीना म इस प्रकार के किसी भी कर की माग नही की जायगी। जब उसके प्रस्ताव को स्वीकार नही किया गया तो उसने कर ग्रधिकारी को निकाल वाहर किया ग्रौर विद्रोही वन गया।

खुशहाली कर वसूल करने के सम्ब ध मे एक घटना का उल्लख करना उचित होगा। राजा सूरतसिंह ने भटनर पर विजय प्राप्त करके राज्य का विस्तार किया। उसन शानदार ग्रायोजन किया जिसमे राज्य के सभी साम ता न भाग लिया। इस विजय की खुशी म उसने राज्य क सभी परिवारा से युद्ध व्यय पूरा करन का कहा ग्रौर प्रत्येक परिवार से दस रुपय वसूल करने की ग्राज्ञा दी। ग्रगर विजय की खुशी मे इतना कर चुकाना पडा तो पराजय की स्थिति म जनता को कितना चुकाना पडता, यह ईश्वर ही जानता है।

साम तो की सेनायें—राजा की सेवा म साम तो द्वारा सनिक दस्त भजना राजा के व्यवहार ग्रौर चरित्र पर निभर होता है। यदि सूरतसिंह म ग्रपन सामन्ता के प्रति सहानुभूति होती ग्रौर उसने सकट काल म प्रजा की रक्षा करना ग्रपना कतव्य समझा होता तो बीकानर के साम त किसी भी समय वाह्य शक्ति क ग्राक्रमण

का सामना करने के लिये बारह सौ घुडसवारो सहित दस हजार सनिको से अपने राजा की सहायता करने की स्थिति म थ। परन्तु मौजूदा परिस्थितियो म और समाज के प्रत्येक पहलू की निर्बल अवस्था म उपयुक्त सख्या से आधी सख्या म भी सनिक एकत्र किये जा सकत है—इसम भी सशय है।

इन दिनो म राजा के अधिकार म जो विदेशी सेना है उसमे पाच तोपो के साथ पाच सौ पदल सनिक और ढाई सौ अश्वारोही सनिक है। ये सभी विदेशी सेनानायको के अन्तगत है। इस सना के अलावा दुग की रक्षा के लिये एक पृथक सेना है जो पूरबिया राजपूत सनानायक के अधीन है और इस सना के सनिको का वेतन चुकाने क लिये उसे पच्चीस गाव राज्य की तरफ स दिये गये है।

राजा सूरतसिंह के समय मे बाहरी सेनायें

	अश्वारोही	पदल	तोपें
1 सुल्तानखा	200		×
2 अनोखेसिंह (सिक्ख)	250		×
3 बुधसिंह दवडा	200		×
4 दुजनसिंह की पलटन	4	700	4
5 गगासिंह की पलटन	25	1000	6
बाहरी सनिको का योग =	679	1700,	10
तोपखाना	—	—	21
	679	1700	31

बीकानेर की जागीरो का विवरण

सामन्त का नाम	वंश	निवास	आमदनी	पदल सेना	घुडसवार	विशेष
1 दरीशाल	बीका	महाजन	40,000	5,000	100	इसके अन्तगत 144 गाव हैं। राजा लूनकरण के वडे लडके को गद्दी पर से अपना हक छोडने के बदल म दिय गये थे।
2 अभयसिंह	वेनीरोत	मूकरका	25,000	5 000	200	बीकानेर का प्रमुख साम त।
3 अनूपसिंह	बीका	जसाना	5 000	400	40	
4 प्रेमसिंह	"	बाई	5,000	400	25	
5 चनसिंह	बेनीरोत	सावा	20 000	2 000	300	
6 हिम्मतसिंह	रावोत	रावतसर	20 000	2 000	300	
7 शिवसिंह	वेनीरोत	चूरू	25,000	2,000	200	
8 उम्मेदसिंह	बीदावत	बीदासर	50,000	10 000	2,000	
9 जतसिंह		साउनदवा				
10 बहादुरसिंह	नारनोत	ममनसर	40,000	4 000	500	
11 सूपमल		तिनदोसर				
12 गुमानसिंह		काटर				
13 अताईसिंह		कुटचोर				
14 शेरसिंह	नारनोत	निम्बाजी	5,000	500	125	
15 दवीसिंह	नारनोत	सीधमुख	20 000	5 000	400	
16 उम्मेदसिंह		कारीपुरा				
17 सुरतानसिंह		अनीतपुरा				
18 करणीदान		बिपासर				

19 सुरतानसिंह	कछवाहा	नयनावास	4,000	150	30	ये दोनों सामन्त बाहर के हैं।
20 पद्मसिंह	पवार	जसीसर	5,000	200	100	
21 किशनसिंह	बीका	हदेसर	5,000	200	50	
22 रायसिंह	भाटी	पूगल	6,000	1 500	40	यह जागीर जसलमेर के भाटियों से छीनी गई थी।
23 सुरतानसिंह	,,	राजासर	1,500	200	50	
24 लखनेरसिंह	,	सनेर	2,000	400	75	
25 कर्णसिंह	,	सतीसर	1,100	200	9	
26 भूमसिंह	,,	चक्करा	1,500	60	4	
बीका के प्रारम्भिक चार सामन्त						
1 भवानीसिंह	भाटी	विचनोक	1,500	60	6	
2 जालिमसिंह	,,	गुरियाला	1,100	40	4	
3 सरदारसिंह	,,	सुरजीरा	800	30	2	
4 कायमसिंह	,	रनदीसर	600	32	2	
चन्दनसिंह	करमसोत	नोखा	11 000	1,500	500	11 वर्ष पूर्व जोधपुर से 27 गाव पाकर यहा रहने लगा।
सतीदान	रूपावत	बादोला	5,000	200	25	
भूमसिंह	भाटी	जागलू	2 500	400	9	
केतसी	,	जामिनसर	15,000	500	150	27 गाव है।
ईश्वरीसिंह	मण्डला	सारोदा	11 000	200	150	
पद्मसिंह	भाटी	कूदसू	1,500	60	2	
कल्याणसिंह	,	ननिया	1 000	40	4	
		योग	3 32 100	42,272	5,402	

यह ब्योरा उस समय का है जब राज्य अपने गौरव पर था। परन्तु राज्य की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ साथ सामन्तों की सख्या और उनकी स्थिति मे भी परिवर्तन आता गया।

अध्याय 49

भटनेर का वृत्तान्त

भटनर जो अब बीकानेर का एक हिस्सा है किसी समय जाटा की एक अय शाखा का निवास स्थान था। ये जाट उस समय इतने शक्तिशाली थे कि कभी कभी अपने राजा के विरुद्ध भी शस्त्र उठा लेते थे और राजा के सकट के समय उसकी सहायता के लिये भी तत्पर रहते थे। इसक नाम से लगता है कि इस राज्य का सम्बन्ध भाटी लोगो स रहा होगा। कुछ पुरानी खोजो से पता चलता है कि एक शक्तिशाली राजा न इस राज्य की प्रतिष्ठा की थी। सभव है कि प्राचीन काल मे भाटी जाति ने यहा पर अपना राज्य कायम किया हो और इसका नाम भटनर रखा। जसलमेर के इतिहास मे इस विषय पर विस्तार से चचा की गई है। भाटियो क इतिहास से पता चलता है कि भाटी जाति ने यहा उपनिवेश स्थापित किया था, इसी स इस समय इसका नाम भटनेर हुआ है, पर तु भाटी जाति इस राज्य की आदि प्रतिष्ठाता नही है। समस्त उत्तरी भाग 'नेर" नाम से विख्यात हुआ है। यह 'नेर' शब्द मरूस्थली का प्राचीन नाम विशेष है। जब भाटी जाति के कितने ही लोगो न मुसलमान धम स्वीकार कर लिया तब उनको आदि भाटि जाति से पृथक करने के लिये भाटी नाम रखा गया।

भटनर के आधीन का भूखण्ड और उसके उत्तर की भूमि जो गाडा नदी क किनारे तक चली गयी है इन दिनो म जनशू य हो रही है, पर तु प्राचीन काल म उसकी कुछ और ही दशा थी। उन दिनो मे यह इलाका काफी गौरवपूण रहा था। उसक इतिहास का मनन करने से हमारे इस कथन की पुष्टि होती है।

मध्य एशिया स भारतवष क माग मे स्थापित होन के कारण भटनेर ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की है। यहा की जाट जाति ने गजनी के महमूद के साथ सि धु नदी मे जलयुद्ध करक उसक भारत म प्रवश करने मे विघ्न डाला था और इस जाति के पूवजो न उस समय से बहुत पहल मारवाड और पजाब म उपनिवेश स्थापित किये थे। हम जब उनको राजस्थान क छत्तीस राजवशो म मानत हैं ता सरलता के साथ यह अनुमान किया जा सकता है कि महमूद गजनी क बहुत समय पहले इन लोगा न राजनतिक सामथ्य प्राप्त कर ली हागी। शहाबुद्दीन के प्रतिनिधि

ग्रौर सेनानायक कुतुबुद्दीन न 1205 ई० म उन जाटा के साथ युद्ध किया था, कारण कि उस समय जाटो न मुसलमाना के हासी नामक इलाके पर ग्रधिकार कर लिया था। फीरोज की उत्तराधिकारणी रजिया वेगम जिस समय सिंहासन छोडने को बाध्य हुई थी, उस समय वह जाटा की शरण मे गई थी ग्रौर उन जाटा न उसकी सहायता के लिय उसक शत्रुग्रा के साथ युद्ध भी किया था। पर तु उसका कोई परिणाम नही निकला ग्रार रजिया स्वय युद्ध म मारी गयी। फिर 1397 ई० म जब तमूर ने मुल्तान पर ग्राक्रमण किया था, उस समय जाटा न उसके विरुद्ध विघ्न बाधा डाल कर उसको ग्रस्त व्यस्त कर दिया था। बदले म तमूर ने ग्रपनी सेना के साथ भटनेर पर ग्राक्रमण किया ग्रौर वहा के जाटा का नरसहार कर उनको भारी क्षति पहुचाई थी। साराश यह है कि भट्टि ग्रार जाट इस प्रकार स परस्पर मिले हुए थे कि उनको दो जाति कहना कठिन था।

तमूर के ग्राक्रमण करने के कुछ समय वाद मरोठ ग्रौर फूलरा स्थानो की एक शाखा न भाटिया के नेता बरसिंह की ग्राधीनता स स्वत त्र होकर भटनेर पर ग्रधिकार कर लिया था। उस समय एक मुसलमान भटनर का शासक था। वह तैमूर के ग्राधीन था ग्रथवा दिल्ली के वादशाह के—यह पता नही चलता। सभव है कि वह तमूर का ही ग्रधिकारी रहा हो। उसका नाम चिगात खा था। उसने जाटो से भटनर छीन लिया था।

वरसी न 27 वष तक भटनर पर शासन किया। उसके बाद उसका लडका भीरू राजा बना। उसके समय म चिगातखा के उत्तराधिकारी ने दिल्ली के बादशाह की सहायता से दो बार भटनेर पर ग्राक्रमण किया पर तु दोनो बार उसे परास्त होकर भागना पडा। तीसरी बार उसने एक शक्तिशाली सना के साथ भटनेर पर ग्राक्रमण किया ग्रौर इस बार भीरू को सधि का प्रस्ताव करना पडा। भीरू क सामने दो शर्तें रखी गइ—या तो वह स्वय इस्लाम धम स्वीकार करले ग्रथवा ग्रपनी बेटी का विवाह दिल्ली के बादशाह क साथ कर दे तो भटनेर का हाने वाला विनाश रोका जा सकता है। भीरू न ग्र य कोई उपाय न देखकर इस्लाम धम स्वीकार कर लिया। उसी समय से भीरू का वश भट्टी वश के नाम से प्रसिद्ध हुग्रा ग्रौर शेष भाटी लोगो के साथ उसका सम्ब ध धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

भीरू के वाद उसके 6 वशधरा न क्रमश भटनेर पर शासन किया। छठे वशज का नाम राव दुलिच उफ हयात खा था। उसके समय मे बीकानेर के राजा रायसिंह ने भटनर पर ग्राक्रमण कर उस पर ग्रपना ग्रधिकार कर लिया। भाटी के वशज खानगढ फतेहाबाद म चल गय। हयात खा की मृत्यु के बाद उसक पौत्र हुसन खा ने बीकानर के सुजानसिंह के समय म भटनर पर ग्रपना ग्रधिकार जमा लिया। उसक बाद बहादुर खा के शासन काल म राजा सूरतसिंह न भटनर को पुन जीत बीकानर राज्य म मिला लिया।

सूरतसिंह के आक्रमण के बाद भीरू का एक वंशज जावता खां बचे हुये लोगों को लेकर रेनी नामक स्थान पर जाकर रहने लगा। उसके अधिकार में पच्चीस गांव थे। बीकानेर के राजा रायसिंह ने अपनी रानी के नाम से इस रेनी नगर को बसाया था। भटनेर के राजा इमाम मुहम्मद ने इस नगर पर अपना अधिकार कर लिया था। जावता खां ने चोरी डकती के द्वारा इस समय तीन लाख की सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। उसके अत्याचारों से जाट लोग बहुत भयभीत रहा करते थे। उसी कारण से यह क्षेत्र जनशून्य हो गया। पुराने समय में बीकानेर की उत्तरी सीमा से गाड नदी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र उपजाऊ था। यहां कृषि कार्य में विशेष सुविधा थी। खेतों में बहुत से पशु चरा करते थे। अनेक शताब्दियों के बाद फगर और हाकडा नदियों के सूख जाने से यह क्षेत्र जनशून्य हो गया। लोगों का कहना है कि यह नदी पहले पश्चिम की ओर को फूलरा होकर बहती थी। उस फूलरा में नदी के चिन्ह आज तक विद्यमान हैं। फूलरा होकर वह नदी उच्च नामक स्थान पर सिन्धु नदी के साथ मिल जाती थी। अत्यन्त प्राचीन काल के प्रधान प्रधान नगरों का मूल चिन्ह आज भी इस देश की बालू के गर्भ में विद्यमान है। भटनेर के पच्चीस मील दक्षिण की तरफ दन्दूसर नामक स्थान के एक वृद्ध निवासी ने बताया कि जब पंवार वंश के महाराज इस समस्त क्षेत्र पर शासन कर रहे थे, उस समय सिकन्दर रूमी ने आकर उन पर आक्रमण कर इस क्षेत्र का विध्वंस कर दिया था।

जैसलमेर का इतिहास

अध्याय 50

भाटी और यदु वश

भारत की मरूभूमि म फल हुय इस राज्य का नाम जसलमर है। यह नाम आधुनिक है। इस देश के पुराने भूगोल से पता चलता है कि इस क्षेत्र का नाम मेर था। यह नाम इस क्षेत्र की वालुकामय पथरीली भूमि (मर) के कारण पडा। भारत के सम्पूण मरूस्थल मे यही एक राज्य ऐसा है जिमकी भूमि म ककड पत्थरा की कमी नही है। इस क्षेत्र की प्राकृतिक सु दरता यहा क लोगो की स्वाभाविकता और यहा की खेत इत्यादि अनक बातें खोजकर्ताओ को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

इस राज्य की भाटी जाति यदु अथवा जादो वश की एक शाखा है। तीन हजार वप पूव यदु वश भारत की सर्वोच्च शक्ति थी और आजकल इस राज्य पर जो राजा शासन करता है, वह अपने को इस यदुवश का वशज होना स्वीकार करता है, उस यदुवश का जो यमुना क निकटवर्ती स्थाना से लेकर जगत कुण्ड तक शासन करता था। आगे चलकर जगत कुण्ड का नाम द्वारिका पडा।

इन लोगो का कोई क्रमवद्ध इतिहास नही मिलता जिसके आधार पर उनके पूवजा के बारे मे विस्तार के साथ क्रमवद्ध वृत्ता त लिखा जा सके। पर तु जो कडिया मिलती ह उनसे एक ऐसी शृ खला तयार हो जाती है जिसस उनके मौलिक सम्ब ध पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। इन कडियो के आधार पर दो अनुमान हमारे मस्तिष्क म क्रम स उत्पन्न होते है और य अवश्य मा य भी हो सकते हैं। पहला यह कि यदुभाटी सीथियन लोगो स उत्पन्न हुए है। दूसरा यह कि व मूल रूप से हि दुआ की सतान हैं। यदि हम अति प्राचीनकाल की ओर ध्यान दे—जबकि हि दू और सीथियन लोग एक ही थे। उनक पूवज एक ही थे। उन पूवजा के वशजा न अपन मूल स्थान का छोडकर दो भिन्न राष्ट्र स्थापित किय। कुछ लोग सीथिया म जा बसे और सिथियन के नाम से प्रसिद्ध हुय। दूसरे लोगा न भारत म आकर रहना शुरू किया और हि दू कहलाये। कास्पियन सागर स लकर गगा के किनारे तक जितने

समूह (जातियाँ) बसे हुये थे, उन सबकी उत्पत्ति एक ही वशवृक्ष से हुई थी और सभी की एक ही भाषा थी। एक ही धम था। जो लोग मूल निवास को छोडकर भारत म गगा के किनारे तक आ बसे थे उनका प्रधान नेता बुध का पुत्र भरत था और उ होने जिस राष्ट्र की प्रतिष्ठा की उसका नाम भारतवष पडा। उसी भरत के वशज यदुभाटी इस समय मरूस्थल के एक कोने म शासन करते हैं।

जिस समय मे भरत ने भारत मे बस्तियो की प्रतिष्ठा की थी उन दिनो म सूयवशी अथवा चन्द्रवशी राजकुलो का अस्तित्व नही था। उन दिनो मे इस देश म गाड भील मीना आदि जातियाँ निवास करती थी। ये लोग भी उसी वशवृक्ष के थे जिसका भरत था। लेकिन राजनीतिक पतन के कारण उन लोगो को इस शोचनीय अवस्था मे पहुचना पडा। पर तु हमारे इस अनुमान का कोई प्रमाण नहा पाया जाता। इसलिये यदुवशी भाटी लोगो का ऐतिहासिक विवरण देने के लिये हम यहा पर ब्राह्मण ग थो का सहारा लेना पडा।

बहुतो का यह विचार है कि मुसलमानो के भारत पर अधिकार करने के समय से हि दू जाति मे सकीणता का प्रवेश हुआ। और अटक नदी के पार या जहाज पर चढकर समुद्र म जाने वाले हि दुओ को निषिद्ध बतलाया गया है। इस प्रकार का कुसस्कार हिन्दुओ मे प्राचीनकाल से प्रचलित है। परन्तु समुद्र यात्रा निषधक रूढि आधुनिक समय की प्रतीत होती है। क्योकि हि दू जाति के लोग प्राचीनकाल म जल युद्ध मे निपुण और शक्तिसम्पन्न थे और उसी शक्ति के सहारे उ होन अफ्रीका अरब और परसिया तक पहुचे थे। यह अनुमान अत्य त हास्यास्पद है कि हि दू लोग सदा से भारत की सीमा के भीतर ही गुजर करते आये है। पुराण और मनु सहिता से पता चलता है कि वे लोग पहले आक्सस नदी से लेकर गगा तक सब देशो म बराबर आते-जाते रहे थे। पौराणिक ग थो म मध्य एशिया के लोगो को मलेच्छ कहा गया है, पर तु वही से भारत म अनेक प्रकार की विद्या और ज्ञान का प्रचार हुआ है। मनुस्मृति म भी पुराणो के मत की पुष्टि की गई है कि पहले शाकद्वीप स लेकर गगा के किनारे तक एक ही धम (सनातन धम) का प्रचार था।

यदुवश नेता श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद यदुवश के लोग भारत छोडकर अन्यत्र चले गये—इस सम्ब ध मे यहा के इतिहास म जो विवरण दिया गया है पहले हम उसी पर ध्यान देते हैं, यद्यपि यदुवश के आदि पुरुष बुध स श्रीकृष्ण तक पचास पीढिया[1] व्यतीत हो जाती हैं। पर तु उस बुध न जिस माग से भारत म आकर सूयवश की कुमारी इला के साथ विवाह किया था (इला स उसके वश का विस्तार हुआ) उस माग को यदुवशी भूले नही थे। अब हम पुन जसलमेर के इतिहास का वृत्ता त लेते है।

चन्द्रवशी यादवो की आदि निवास भूमि प्रयाग थी। सूय कुमारी इला से पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने मथुरा को अपनी राजधानी बनाया। मथुरा

वहुत समय तक राजधानी वनी रही। इ ही यादवो से छप्पन कुल की उत्पत्ति हुई और श्रीकृष्ण ने इसी वश म ज म लेकर द्वारिका की प्रतिष्ठा की।

कुरूक्षेत्र म यदुवशिया के छप्पन कुल का जो भयक्र सग्राम हुआ और उसके वाद द्वारिका मे जो महायुद्ध हुआ उससे इतिहाम के विद्यार्थी सुपरिचित ह। ईसा के 1100 वप पहले इस घटना का होना माना जाता है। इस वश के छिन्न-भिन्न हो जान से वहुतो ने भारत को छोड दिया[2] जिनम श्रीकृष्ण के दो पुत्र भी थे। श्रीकृष्ण की आठ प्रधान रानिया थी। इनम स पहली और सातवी रानी के वशज व लोग हैं जि ह अव हम हि दू नही कह सकते। मव रानियो म रूक्मिणी प्रधान थी। उसके पुत्रो मे प्रद्यु म्न सबसे वडा था। उसने विदभ की राजकुमारी से विवाह किया था जिससे उसके दो पुत्र हुए—अनिरुद्ध और वज्र।[3] वज्र से भाटिया की उत्पत्ति हुई। वज्र के दो पुत्र हुए—नाभ और खेर अथवा क्षेर।[4] जिस समय द्वारका म यादवा का युद्ध चल रहा था और जिसम वहुत से लोग मारे गये थे और श्रीकृष्ण भी स्वग-सिधार चले गये उस समय वज्र मथुरा से अपने पिता को देखने के लिये चल पडा था। माग म उसने सुना कि उसके परिवार के सभी लोग युद्ध म मारे जा चुके हैं, इस हृदय विदारक समाचार को सुनते ही उसकी वही पर मृत्यु हो गई।[5] उसकी मृत्यु के वाद नाभ मथुरा के सिंहासन पर वठा और खेर द्वारका को चला गया।

यादवा ने सम्पूण भारत म अपना राज्य स्थापित करने के लिये जिन छत्तीस राजवशो को अपने अधीन कर उन पर अत्याचार किये थे, वे सभी राजवश अव यादवो से वदला लेने के लिये उठ खडे हुय। परिणामस्वरूप नाभ को द्वारिका की तरफ भागना पडा और वहा से वह पश्चिम की तरफ वढा और मरुस्थली का राजा वना। भाटी इतिहासकार लिखता है कि उसन यहा तक का विवरण भागवत से लिया है और इसके आग का इतिहास लिखन के लिये हम म थुरा के ब्राह्मण शुक्धम[6] का सहारा ल रहे हैं।

नाभ के एक लडका हुआ—प्रतिवाहु। खेर के दो लडके हुये जाडचा और यदुभान। एक वार यदुभान तीथ यात्रा को गया। माग म देवी न उसको सोते हुए म जगाकर कहा 'तुम्हारी जो इच्छा हो माग लो।" उस युवक ने कहा, "मुझे भूमि प्रदान करो जहाँ मैं सताप स रह सकू।" 'इ ही पहाडो पर शासन करो।" यह कह कर देवी अ तर्ध्यान हो गई। सुबह जव यदुभान जगा और रात्रि क स्वप्न पर विचार कर ही रहा था कि उसे कुछ दूरी पर मनुष्या का कोलाहल सुनाई पडा। उसन खोज की तो पता चला कि यहाँ के राजा की मृत्यु हो गई है और उसके कोई पुत्र नही है। इसलिय किसको राजा वनाया जाय इसी वात को लकर उन लोगा मे विवाद चल रहा है। प्रधान म त्री कह रहा था कि आज मैंने सपना देखा है कि श्रीकृष्ण का एक वशज यहाँ आया हुआ है। उसन प्रस्ताव रखा कि उसे ढू ढा जाय और यहाँ का राजा

बना दिया जाय । सभी प्रसन्न हो उठे और यदुभान को खोजकर उसे राजा बन दिया गया । वह एक महान् शासक हुआ और उसके वश का काफी विस्तार हुआ उसका निवास स्थान "यदु का डाग" अर्थात् यदु की गिरि के नाम से विख्यात हुआ

नाम के पुत्र प्रतिवाहु के बाहुबल नाम का एक लडका हुआ । उसन मालवा के राजा विजयसिंह की लडकी कमलावती के साथ विवाह किया । विजयसिंह ने दहेज मे एक हजार खुरासानी घोडे एक सौ हाथी बहुत से हीरे जवाहिरात और पाच सौ दासिया दी थी । बहुत से रथ और स्वरण जडित पलग भी दिय । परमार वश की इस कमलावती से सुबाहु नाम का एक लडका हुआ ।

वाहु की घोडे से गिर जान से मृत्यु हो गई । वह अपने पीछे एक पुत्र सुबाहु छोड गया । सुबाहु को उसकी पत्नी जा अजमेर के चौहान राजा न द की पुत्री थी, ने जहर देकर मार डाला ।

सुबाहु के रिज नाम का एक लडका हुआ । उसन बारह वप तक शासन किया । उसन मालवा के राजा बरसी की लडकी सौभाग्य सु दरी से विवाह किया । जब वह गभवती थी तो उसने स्वप्न म देखा कि उसने एक हाथी को ज म दिया है। ज्योतिषियो न स्वप्न क आधार पर भविष्यवाणी की कि होन वाला पुत्र अत्य त पराक्रमी और शूरवीर होगा । समय पर रानी के पुत्र हुआ जिसका नाम गज रखा गया । युवावस्था म पहुचने पर उसके साथ पूव देश के राजा यदुभानु न अपनी लडकी के विवाह के लिये नारियल भेजा जो स्वीकार कर लिया गया । इ ही दिनो म यह समाचार भी मिला कि समुद्र के किनारे बसे मलच्छो की एक विशाल सेना खुरासान के सेनापति फरीदशाह के नेतृत्व मे आगे बढती आ रही और उसके भय से राज्य क लाग चारो तरफ भाग रहे हैं । राजा न शत्रु के बारे मे पूरी जानकारी प्राप्त की और फिर उसस मिलने हरियू नामक स्थान पर पहुच गया । यहा से शत्रु सेना का शिविर केवल चार मील की दूरी पर था । दोनो पक्षा म घमासान युद्ध हुआ जिसम आक्रमणकारी परास्त हुआ । उसके तीस हजार सनिक मारे गये जब कि हिन्दुओ क चार हजार सनिक वीरगति को प्राप्त हुय । पर तु आक्रा ता ने अपन सनिका को एकत्र कर पुन आक्रमण किया । राजा रिज इस बार बुरी तरह स घायल हुआ और जब राजकुमार गज पूव देश की राजकुमारी हसावती के साथ विवाह कर वापस लौटा ही था कि रिज की मृत्यु हो गई । खुरासान का बादशाह दो युद्धा म परास्त होकर कमजोर पड गया था, पर तु तभी रूम क बादशाह न उसकी महायता के लिय मुसलमानो की एक फौज भेज दी ताकि काफिरा की भूमि पर कुरान और हजरत साहब के कानूनो का प्रचार किया जा सक । अब मलेच्छा न पुन युद्ध की तयारी शुरू की । राजा गज न अपन मन्त्रियो से परामश किया । पहले जहा युद्ध हुआ था, वहाँ कोई महत्वपूण दुग न था और शत्रुओ की सीमित सख्या के सामने ठहरता

सम्भव न था, अत मं त्रियो की सलाहानुसार उत्तर के पहाडो के मध्य एक सुदृढ दुग बनवाया गया। इसक बाद गज न अपन मित्रो की सहायता के लिये सदेश भिजवाये और फिर कुल देवी की प्राथना की गई। कुलदेवी न भविष्यवाणी की कि हि दुओ की शासन शक्ति धीरे धीरे नष्ट होती जायगी। देवी न नये बन रहे दुग का नाम गजनी' रखने की भविष्यवाणी भी की। दुग का निमाण काय पूरा होन को आया था कि सूचना मिली कि रूम और खुरासान की सेनाए काफी नजदीक आ पहुची है। यदु राजा के यहा उसी समय स युद्ध की तयारी के नगाडे बजने लग गये। एक शक्तिशाली सेना एकत्र हो गई। दान दक्षिणा तथा भेट उपहार बाटे गय और उसके बाद ज्यातिपियो से युद्ध के लिये प्रस्थान करन का शुभ मुहूत बतलाने को कहा गया ताकि विजय प्राप्त हा सके।

ज्योतिपियो न माध मास की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी गुरवार के दिन एक पहर व्यतीत हो जान के बाद प्रस्थान का शुभ मुहूत निकाला। उसी समयानुसार राजा गज न अपनी सेना सहित सोलह मील के आग जाकर पडाव डाला। दूसरी तरफ स शत्रु भी आग वढा। पर तु उसी रात खुरासान के बादशाह के पेट मे भयानक पीडा उत्प न हुई और वह स्वग सिधार गया। रूम के राजा सिक दर को अपने मित्र की मृत्यु का गहरा आघात लगा। पर तु उसन राजा गज की सना के साथ युद्ध करन का विचार नही बदला। उसन अपनी सेना को कूच करने की तयारी का आदेश दिया और अपन हाथी पर सवार होकर शत्रु पक्ष की ओर बढ चला। थोडी ही देर म दोनो सेनाए एक दूसरे के समीप आ गइ और घमासान युद्ध शुरू हो गया। अगणित सनिको के पदाघातो से सम्पूण पृथ्वी कम्पायमान हो उठी। आकाश म धूल से अधेरा छा गया। चारो तरफ अस्त्र शस्त्रो की झकार के अलावा कुछ न सुनायी पड रहा था। सकडो सनिको के सिर कट कट कर भूमि पर गिर रहे थे। अ त म शाह की सेना भागन लगी। इस युद्ध मे उसके पच्चीस हजार सैनिक मार गये। राजा गज के सात हजार सनिक वीरगति को प्राप्त हुये। शाह अपने हाथियो घोडा यहा तक कि अपना सिहासन छोडकर भाग गया। उसक भागत ही हि दू सेना ने विजय का डका बजाया और राजा गज अपनी विजयी सेना के साथ राजधानी लौट आया।

राजधानी आन के बाद युधिष्ठिर (धमराज) के सवत् 3008 के बसाख मास के तीसरे दिन रविवार को रोहिणी नक्षत्र मे राजा गज गजनी के सिहासन पर बठा। इस युद्ध के बाद उसकी शक्ति काफी बढ गई। उसन पश्चिम दिशा की तरफ के सभी देशो को जीत लिया और काश्मीर के राजा कदपकेलि का अपने दरबार मे उपस्थित होन का सदेश भिजवाया। पर तु उसन उत्तर भिजवाया कि वह राजा गज स रणभूमि म मुलाकात करेगा। इस पर राजा गज ने काश्मीर पर आक्रमण किया। कदपकेलि पराजित हुआ और उसने अपनी पुत्री का विवाह गज के साथ कर दिया। इससे उसे एक लडका हुआ जिसका नाम शालिवाहन रखा गया।

शालिवाहन जब बारह वर्ष का हुआ, तभी यह समाचार मिला कि खुरासान की सेना पुन आक्रमण करने वाली है। राजा गज अपनी कुलदेवी के मन्दिर में गया और तीन दिन तक अकेला ही मन्दिर में बन्द रहा। चौथे दिन देवी ने भविष्यवाणी की कि इस बार शत्रु की विजय होगी और गजनी उसके हाथ से निकल जायेगा। आगे चल कर उसके वंशज मुसलमानों की हैसियत से गजनी पर पुन अधिकार कर लेंगे। देवी ने राजा गज से यह भी कहा कि वह अपने पुत्र को पूर्व के हिन्दुओं के पास भिजवा दे। वहां वह अपने नाम के एक नगर की प्रतिष्ठा करेगा। उसके पन्द्रह लडके होंगे जिनसे उसका वंशवृक्ष काफी फलेगा। गजनी के इस युद्ध में तुम्हारी मृत्यु होगी। लेकिन तुमको स्वर्ग और सम्मान का अधिकार मिलेगा।

इस प्रकार अपने भाग्य को सुनकर राजा गज ने अपने परिवार के सभी सदस्यों के साथ शालिवाहन को ज्वालामुखी तीर्थ[7] की यात्रा के बहाने पूर्व की तरफ भिजवा दिया।

इसके तत्काल बाद ही शत्रु सेना गजनी से दस मील दूर तक आ पहुंची। गजनी की रक्षा का भार अपने चाचा सहदेव को सौंप कर राजा गज अपनी सेना के साथ शत्रु से युद्ध करने के लिये चल पडा। खुरासान के शाह ने अपनी सेना को पांच हिस्सों में विभाजित किया और गज ने तीन हिस्सों में विभाजित किया। दोनों पक्षों के मध्य लडे गये इस संघर्ष में राजा गज और खुरासान का बादशाह दोनों ही लडते लडते मारे गये। एक लाख मलेच्छ सैनिक और तीस हजार हिन्दू सैनिक मारे गये। खुरासानी विजयी रहे। विजयी सेना ने शाह के नेतृत्व में गजनी पर आक्रमण किया। तीस दीन तक सहदेव ने गजनी की रक्षा की। उसके नौ हजार सैनिक मारे गये। स्त्रियों ने जौहर रचाया और उसके बाद गजनी पर मलेच्छों का अधिकार हो गया।

जब शालिवाहन को इस भयंकर विनाश की सूचना मिली तो उसे गहरा आघात लगा। वह बारह दिन तक धरती पर सोया। इसके बाद वह पंजाब चला आया जहां उसने अपनी नई राजधानी "शालिवाहनपुर" की प्रतिष्ठा की।[8] राजधानी के आसपास के लोगों ने उसे अपना राजा मान लिया। राजधानी की प्रतिष्ठा संवत् 72 के भादों मास की अष्टमी रविवार के दिन हुई थी।

शालिवाहन ने सम्पूर्ण पंजाब को जीत लिया। उसके पन्द्रह लडके थे और वे सभी राजा बने। उसके तेरह लडकों के नाम इस प्रकार है—(1) बालन्द (2) रसाल (3) धर्मांगद (4) बच्छ (5) रूपा (6) सुन्दर (7) लेख (8) जसकरण (9) नीमा (10) मात (11) नेपक (12) गागदेव और (13) जागेव। सभी के स्वतन्त्र राज्य थे।

दिल्ली के तोमर वंशी राजा जयमाल[9] ने अपनी लडकी का विवाह बालन्द के साथ करने की इच्छा से नारियल भिजवाया जो स्वीकार कर लिया गया। बालन्द

दिल्ली गया और विवाह के बाद अपनी पत्नी का साथ लेकर वापस आ गया। अब शालिवाहन न अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने तथा गजनी के उद्धार का विचार किया। वह अपनी सेना सहित अटक के उस पार जा पहुचा। दूसरी तरफ से जलाल भी बीस हजार सनिकों के साथ आगे बढा। शालिवाहन विजयी रहा। उसन आगे बढकर गजनी पर अधिकार कर लिया और कुछ दिनो तक गजनी मे ही बना रहा। फिर यहा की शासन व्यवस्था बाल द को सौंपकर वह अपनी राजधानी वापस लौट आया जहा कुछ दिनो बाद उसका स्वगवास हो गया। उसने तैंतीस वष और नौ महीने तक शासन किया।

उसके बाद बाल द उसका उत्तराधिकारी बना। अब तक उसके सभी भाई पजाब के पवतीय क्षेत्र के भिन्न भिन्न भागो म अपनी अपनी सत्ता को स्थापित कर चुके थे। पर तु तुक लोग पुन शक्तिशाली हो गये थे और उ होने गजनी के आस पास के सभी क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया था। बाल द के पास कोई मन्त्री न था। वह अकेला ही सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का सचालन करता था। उसके सात लडके थे—(1) भट्टी (2) भूपति (3) कुल्लुर (4) जिंज (5) सरमौर (6) भैसडच और (7) मागराव। दूसरे पुत्र भूपति से चाकेता नाम का एक लडका उत्पन्न हुआ जिससे चाकेता वश की उत्पत्ति हुई।

चाकेता के आठ पुत्र हुये—(1) देवसी (2) भैरो (3) क्षेमकरण (4) नाहर (5) जयपाल (6) धरसी (7) बिजली खान और (8) शाहसम द।

बाल द जो कि शालिवाहनपुर मे रहता था, ने गजनी का शासन अपने पोते चाकेता को सौंप दिया। जसाकि पहले बताया जा चुका है कि इन दिनो म तुर्कों की शक्ति काफी बढ गई थी। चाकेता ने इन लोगो को अपनी सेना म भर्ती किया और उन्ह अपना साम त बनाया। उसके सभी साम त इसी जाति के थे। इन साम तो ने उसके सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वह अपने पूवजो का धम त्याग कर उनका धम अपना ले तो वे उसे बल्ख बुखारा के सिंहासन पर बठा देंगे। उस समय म वहा उजबेक जाति के लोग रहते थे और वहा के राजा की एकमात्र पुत्री काफी सु दर थी। चाकेता ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उजबेक राजकुमारी के साथ विवाह कर वहा के सिंहासन पर बठ गया। वह वहा की अठाईस हजार सेना का भी स्वामी बन गया। बल्ख से लेकर भारतवष तक चकेता ने एक विशाल राज्य पर शासन किया। उसस ही मुगलो की चगताई शाखा का उद्भव हुआ।

बाल द के तीसरे पुत्र कुल्लुर के आठ लडके हुये। उसके वशज कुल्लर (कलर) नाम से प्रसिद्ध हुये। उसके पुत्रो के नाम थे—शिवदास, रामदास, अस्सी किसतन, समोह गगू, जस्सू और भागू। ये सभी मुसलमान बन गये। इनके वशजो की सख्या

काफी वढी और य लोग नदी के पश्चिम म पहाडी इलाको म वसत गय। इनम से अधिकाश कुख्यात लुटेरे थ।

वाल द क चौथे पुत्र जिज के सात लडके हुय– चम्पू गोकुल, मघराज हसा, भादान, रासू और जागू। सभी लोग जिज के नाम स प्रसिद्ध हुय और प्रत्यक अलग अलग कवीले का आदि पुरुष वना।

वाल द के वाद उसका वडा लडका भट्टी राजा वना। उसन चौदह राजाओ को जीता और उनकी ममस्त धन सम्पत्ति पर अधिकार कर अपनी सम्पति का वढाया। उसके अधिकार म एक विशाल सेना थी। सिंहासन पर वठत ही उसन कनकपुर के राजा वीरभानु वघेले पर चढाई की। शत्रु पक्ष के चालीस हजार सनिक मारे गय और भट्टी विजयी रहा। वीरभानु भी वीरगति को प्राप्त हुआ।

भट्टी के दो लडके थे—मगल राव और मसूर राव। भट्टी क साथ ही इस जाति का नाम भी वदल गया और वह उसके नाम से पुकारी जाने लगी। उसकी मृत्यु के वाद मगल राव सिंहासन पर वठा। कुछ समय वाद गजनी क राजा धुंधी न एक विशाल सेना के साथ लाहौर पर आक्रमण कर दिया। मगल राव अपन वड पुत्र के साथ नदी के पास वाले जगल की तरफ भाग गया। गजनी की सेना न शालिवाहनपुर को भी घेर लिया। वहा मसूर राव था। वह लक्खा जगल की तरफ भाग गया। उस जगल म किसानो की आवादी थी। मसूर राव न उनको अपनी आधीनता मे लेकर वहा एक नये राज्य की प्रतिष्ठा की। उसके दो लडक हुए—अभयराय और शरणराव। वडे लडके अभयराय न वहा के आसपास क नगरो को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। उसके वशजो की सख्या म काफी वृद्धि हुई और वे आभोरिया भट्टी के नाम से प्रसिद्ध हुय। शरणराव अपन भाइ स लडकर चला गया और उसके वशज सारण जाट के रूप म काश्त करन लगे।

भट्टी का लडका मगल राव जो अपनी राजधानी छाडकर भाग गया था के छह लडके हुये—मजूमराव, कलरसी, मूलराज शिवराज फूल और कवल।

जव मगलराव राज्य छोडकर भाग गया था, तो उसक पुत्रो और परिवार की रक्षा उसकी प्रजा न की थी। तक्षक वशी सतीदास नामक एक भूमिया रहता था जिसके पूवजो पर भट्ट राजाओ न वहुत अत्याचार किय थ। उन सवका वदला लने के लिये उसन शत्रुओ से कहा कि मगल राव का परिवार इसी नगर म छिपा हुआ है। इस पर तुक अधिकारी सतीदास को साथ लकर उस मकान पर पहुचे जहाँ मगल राव का परिवार छिपा हुआ था। तुर्कों ने घर के मालिक श्रीधर महाजन को व दी वना लिया और उसे अपने राजा के पास ल गय। राजा न श्रीधर स कहा कि यदि तुमन प्रत्येक राजकुमार को उपस्थित नही किया तो तुम्हारे परिवार के एक

भी सदस्य को जिंदा नही छोड़ूगा । इस पर श्रीधर ने कहा कि राजकुमार तो भाग गये हैं। मेरे घर म तो केवल भूमिधर बालक हैं । राजा के आदेशानुसार उन भूमिधर बालको को लाया गया । वे वास्तव म यदुवशी राजकुमार थे पर तु उनकी वेश-भूषा देखकर राजा ने उन्ह भूमिधर ही समझा और उसने उन लडको का विवाह भूमिधर लडकियो से करा दिया । इस तरीके से शालिवाहन के वश म उत्प न राजकुमार केलर के वशज कलोरिया जाट, मुण्डराज और शिवराज के मु डा और शिव जाट कहलाये । फूलच द और केवल जिन्ह क्रमश नाई और कुम्हार के रूप मे प्रस्तुत किया गया था उन दोनो के वशज इ ही जातियो म माने गये ।

मगल राव ने थोडे दिनो बाद गाडा नदी के जगल को छोड दिया और एक नये स्थान की तरफ चला गया, जहा उसने अपना नया राज्य स्थापित किया । उस समय उस क्षेत्र मे बराहा[10] जाति के लोग रहते थे । उनके पहले वहा बूता[11] वश के राजपूतो का शासन था । पू गल के परमारो के अलावा वहा पर सोढा और लोदरा वश के राजपूत भी रहते थे । मगल राव ने वहाँ बस जाने के बाद उन लोगो से मिल कर रहना आरम्भ किया था । उसकी मृत्यु के बाद उसका लडका मजम राव उसका उत्तराधिकारी बना । वह अपने पिता के साथ ही शालिवाहनपुर से भाग आया था । अमरकोट के सोढा[12] राजा ने अपनी लडकी का विवाह उसके साथ कर दिया । उसके तीन लडके हुए—केहर मूलराज और गोगनी ।

केहर अपने साहसिक कार्यो के लिये शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गया । एक दिन उसे सूचना मिली कि पाच सौ घाडो का एक कारवा व्यावसायिक सामान के साथ आरोर से मुल्तान जा रहा है । केहर अपने चुने हुये साथियो के साथ ऊट के व्यापारियो के वेष मे कारवा के पीछे चल पडा और पचनद के समीप कारवा पर आक्रमण कर दिया और समस्त सामग्री को लूट कर वापस लौट आया । कुछ दिनो बाद जालौर के आलनसिंह ने मजूम राव के दो पुत्रो के लिये नारियल भेजे जिन्ह स्वीकार कर लिया गया । धूमधाम के साथ विवाह सम्पन्न हुआ । इसके बाद केहर ने एक दुर्ग की नीव रखी और अपनी कुल देवी के नाम पर उस दुर्ग का नाम तनोट रखा । दुर्ग पूरा हो पाता उससे पहले ही मजूम राव की मृत्यु हो गई ।

केहर नया राजा बना । उसी समय बराह वश के राजा यशोरथ ने तनोट पर आक्रमण कर दिया क्योकि यह दुर्ग उसके अधिकार की भूमि पर बनाया गया था । मूलराज ने बहादुरी के साथ तनोट की रक्षा की और बराह लोग पराजित होकर भाग खडे हुये । बाद म दोनो पक्षो म सधि हो गई । मूलराज की लडकी का राजा यशोरथ के साथ विवाह कर सधि को मजबूत बनाया गया ।

तनोट म यदु भाटियो के स्थापित हो जाने के बाद इस प्राचीन वश का ऐतिहासिक वर्णन समाप्त करके उसका साराश लिखते हैं—

(1) श्रीकृष्ण यदुवंशियो के आदि पुरुष थे। (2) जो यदुवंशी स्वेच्छा से भारत छोड कर सिन्धु नदी के पश्चिम की तरफ चले गये थे उन्होंने वहां उपनिवेश कायम किये, गजनी का निर्माण किया और रूम तथा खुरासान के बादशाहों से युद्ध लड़े। (3) गजनी से भागने के बाद उन्होंने पंजाब में अपना नया उपनिवेश बसाया और शालिवाहनपुर नामक राजधानी बसाई। (4) पंजाब से भागकर मरुभूमि में आबाद हुये और तनोट दुर्ग का निर्माण करवाया।

ऐतिहासिक साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि यदुवंशियों ने मध्य एशिया में अपने राज्य कायम किये थे। चगताई मुगलो की उत्पत्ति इन्हीं यदुवंशियों से हुई थी। मेवाड के सीसोदिया वंश के आदि पुरुष बप्पा रावल को भी मध्य भारत छोड कर खुरासान चला जाना पडा था। इन सभी बातों से एक बात स्पष्ट है कि उन दिनों में हिन्दू धर्म भारत से लेकर अत्यन्त सुदूरवर्ती देशों और राज्यों तक फैला हुआ था और मध्य एशिया के साथ भारत का घनिष्ठ सम्पर्क था।

सन्दर्भ

1 कुछ विद्वानो के अनुसार बुध से श्रीकृष्ण तक 52 पीढियाँ पाई जाती हैं।

2 टाड का यह कथन कि श्रीकृष्ण के बाद यदुवंशी भारत को छोडकर मध्य एशिया चले गये, प्रमाणों से सिद्ध नही होता। वस्तुतः यदुवंशियों के आपसी संघर्ष में एकमात्र वज्र के अलावा सभी लोग मारे गये थे। तब भाग जाने का कोई कारण भी नही था।

3 टॉड ने भ्रमवश अनिरुद्ध और वज्र को भाई लिख दिया है। वज्र, अनिरुद्ध का पुत्र था।

4 टाड का यह मत भी गलत है। श्रीमद्भागवत और हरिवंश में लिखा है कि वज्र के प्रतिबाहु और उसके सुबाहु और सुबाहु के शतसेन और उसके शतसेन हुए।

5 यह कथन भी सही नही है। मूल भागवत में लिखा है कि यदुवंश के ध्वंस होने के बाद वज्र मथुरा में आये और अर्जुन ने उसको भलीभांति समझा कर मथुरा के सिंहासन पर बैठाया।

6 शुकधर्म के ग्रंथ से भी शंका होती है। वह कौनसी भागवत थी जिसमें नाभ का भागना लिखा है।

7 ज्वालामुखी हिन्दुओ का पवित्र तीथ कहा गया है। यह शिवलोक पवत पर स्थित है।

8 पजाब म शाल्वाहनपुर किस स्थान पर था—इसका निणय करना कठिन है। शायद लाहोर के ग्रास पास रहा हो।

9 तोमर राजवशावली मे जयमाल नामक किसी राजा का उल्लेख नहीं मिलता है।

10 वराह जाति राजपूतो की एक शाखा है। बाद मे ये लोग मुसलमान बन गये।

11 बूता वश का लोप हो गया।

12 सोढा जाति प्राचीन समय से ही ग्रमरकोट मे ग्राबाद थी।

अध्याय 51

भाटी वश का प्रारम्भिक इतिहास (राव केहर से जैसल तक)

पिछले अध्याय की घटनाओ के तिथिक्रम के बारे मे स देह किया जा सकता है। इस अध्याय मे भाटी जाति के इतिहास का वरण यथासम्भव प्रामाणिक लिखने का प्रयास किया गया है। युधिष्ठिर के सवत् 3008 म गजनी के यदुवशी राजा ने रूम और खुरासान[1] के बादशाहो को पराजित किया था। यह समय गलत हो सकता है। इसी प्रकार सवत् 72 म शालिवाहन ने पजाब म आकर आश्रय लिया था, यह तिथि भी स देहपूर्ण है। पर तु इसम कोई स देह नही है कि यदुभाटियो ने मरुभूमि म आकर सवत् 787 (731 ई०) मे तनोट का दुग बनवाया था।

केहर जिसका नाम भाटी जाति के इतिहास मे बडे सम्मान के साथ लिया जाता है खलीफा अल वालिद का समकालीन था। इसी खलीफा के समय म सबसे पहले भारत के मैदानी क्षेत्रो पर आक्रमण हुआ और उसके कुछ भागो पर उसका शासन कायम हुआ। उत्तरी सि ध के आरोर नामक स्थान को इस नये राज्य की राजधानी बनाया गया। केहर के पाच लडके हुए–तनू उतेराव चहा, खाफरिया और थहीन। इन लडको के जो पुत्र हुय उ होने अपने अपने पिता के नाम पर अलग अलग शाखाए चलायी। केहर के पाचो लडके साहसी और शूरवीर हुये। उ होने चन्न[2] राजपूतो के बहुत से इलाको को जीत लिया। चन्न लोगो ने सगठित होकर केहर पर आक्रमण किया और उसे मार डाला।

केहर की मृत्यु के बाद तनू राजा बना। राजा बनते ही उसने बराहा और मुल्तान के लगा लोगो के राज्यो पर आक्रमण किया और उनके इलाको को उजाड दिया। इस पर लोह के बख्तर पहन कर हुसन शाह ने लगा पठानो के साथ दूदी, खीची खोक्कर मुगल, जोहिया जूद और सद जाति के दस हजार घुडसवारो को साथ लेकर यदु भाटियो से सघष की तयारी की और बराह राज्य म जाकर पडाव डाला। तनू ने भी अपन सनिको का एकत्र कर रक्षा का उपाय किया। दोनो तरफ से चार दिन तक बराबर युद्ध होता रहा। पाचवें दिन तनू ने दुग के बाहर निकल

कर शत्रुग्रो पर जोरदार ग्राक्रमण किया। शत्रु सेना भाग खडी हुई। तनू ने शत्रु शिविर की समस्त सामग्री लूट ली। इस घटना के बाद बूता राजपूतो के राजा जीजू ने तनू के पास विवाह का नारियल भिजवाया। तनू ने बूता राजकुमारी से विवाह कर लिया। इस विवाह के परिणामस्वरूप बूता ग्रौर भाटियो ने मुल्तान के राजा के विरुद्ध ग्रापस म समझौता कर लिया।

तनू क पाच लडके हुये—विजय राव, मुकुर, जयतु ग, ग्रालन ग्रौर राखेचा। मुकुर के माहपा नामक पुत्र हुग्रा। माहपा के महोला ग्रौर दिकाऊ नाम के दो लडके हुये। दिकाऊ ने ग्रपने नाम की एक झील खुदवायी। उसके वशज सुतार हुये। वे मुकुर सुतार कहलाये।

तीसर पुत्र जयतु ग के दो लडके हुये—रत्नसी ग्रौर चोहर। रत्नसी बीकमपुर मे वस गया। चोहर के कोला ग्रौर गिरिराज नामक दो पुत्र हुये। कोला ने कोलासर बसाया ग्रौर गिरिराज न ग्रपने नाम पर गिरराजसर बसाया।

चौथे पुत्र ग्रालन के चार लडके हुये—देवसी निपाल भवानी ग्रौर राकेचा। देवसी के वशजा ने ऊटो का व्यवसाय ग्रपना लिया ग्रौर राकेचा के वशजा ने वाणिज्य व्यवसाय ग्रारम्भ किया। ये ग्रोसवाल[3] कहलाये।

विजसनी देवी की कृपा से तनू को गडा हुग्रा खजाना मिल गया। उस सम्पत्ति से उसने एक दुग बनवाया जिसका नाम विजनोट दुग रखा। सवत् 813 (657 ई) के मिगसर मास मे उस दुग म देवी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की गई। तनू ने ग्रस्सी वप तक शासन किया।

सवत् 870 (814 ई) म तनू के बाद उसका लडका विजयराव सिहासन पर बठा। टीका दौड क समय ग्रपने वश के पुरान शत्रुग्रो—बराह राजपूतो पर ग्राक्रमण कर उनकी धन सम्पत्ति को लूट लिया। सवत् 892 मे उसकी बूता रानी से उसको एक पुत्र हुग्रा जिसका नाम देवराज रखा गया। वराह राजपूतो ने लगा लोगो क साथ मिलकर भाटी राजा पर ग्राक्रमण किया पर तु परास्त होकर भाग गये। जब उ होने देखा कि सम्मुख युद्ध म सफलता प्राप्त करना सभव नही है तो षडय त्र का सहारा लिया। उ होने पुरानी शत्रुता को भुलाकर सहानुभूतिपूण व्यवहार का दिखावा किया ग्रौर वराह राजपूत राजा न विजयराव के लडके देवराज क साथ ग्रपनी पुत्री क विवाह का नारियल भिजवाया। विजयराव ग्रपन वश के ग्राठ सौ लोगो के साथ ग्रपने लडके देवराज की बरात को लेकर गया। उसके वहा पहुँचत ही बराह राजपूतो ने चारो तरफ से एक साथ ग्राक्रमण कर दिया ग्रौर ग्रधिकाश को मार डाला।[4] देवराज ने भाग कर वराह राजपूतो के पुरोहित क घर म शरण ली। सूचना मिलते ही वराह राजपूतो न पुरोहित के घर पर ग्राक्रमण कर दिया। पु

की तलवार स्वण की हो गई थी । देवराज न मरूभूमि मे वसन के वाद उसी रसायनिक द्रव्य स अपरिमित सम्पत्ति अपने अधिकार म करके दुग का निर्माण काय करवाया था ।

देवराज से मिलन के वाद जोगी न उसस कहा कि तुमने मरी सम्पत्ति का अपहरण किया है, पर तु मैं यह रहस्य किसी क सामने प्रकट न करूगा यदि तुम मर चेल वनकर जोगी वप धारण कर लो । दवराज न उसकी शत को स्वीकार कर लिया और वह विधिवत ढग स जोगी का चेला वन गया । कानो मे कुण्डल और तन पर गेरुए वस्त्र धारण कर लिय । जोगी न उसका राजतिलक किया और रावल की उपाधि से विभूषित किया । इसके पहले यदुवशी राजा राव कहलाय थ । इसके वाद जोगी अदृश्य हो गया ।

अव देवराज ने वराह लोगो से अपन वश का वदला लेने का सकल्प किया । उसन पूरी तयारी के साथ वराह लोगो पर आक्रमण किया और भयकर नरसहार किया । स्त्रिया और वच्चो तक को मौत क घाट उतार दिया गया । उनकी धन सम्पत्ति के साथ वह वापस लौट आया और लगा लोगो पर आक्रमण किया । उनका युवराज इस समय अपने विवाह के लिये अलीपुर गया हुआ था । देवराज ने वही पर उन लोगो पर आक्रमण किया और उनके एक हजार आदमियो को मौत के घाट उतार दिया । लगा के युवराज न देवराज की अधीनता स्वीकार कर ली । यदु भाटियो के पजाव स पलायन के समय स लकर मरूभूमि मे स्थापित होने तक लगा लोगो न उनकी काफी सहायता की थी । इसलिय इस जाति के सम्बन्ध मे यहा पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है ।

लगा लोग वीर राजपूत थे और उनका सम्ब ध अग्निवशी चालुक्य अथवा सोलकी वश से था । उनका प्राचीन निवास स्थान लोकोट (लाहकट) था । इससे मालूम पडता है कि आवू पवत स आने के वाद वे पजाव म इस स्थान पर आकर वस गये थ । सवत् 787 (731 ई०) मे भाटिया द्वारा तनोट के दुग क निर्माण से लेकर 1530 (1474 ई०) तक 743 वर्षों का एक लम्बा समय होता है । इस दीघ समय म सीमा विवादो को लकर लगा लोगो का भाटियो क साथ निर तर सघप चलता रहा था । उसके वाद अचानक वह सघप समाप्त हो गया । थोडे वर्षों वाद ही वावर ने भारत पर आक्रमण किया और उसके आक्रमण के दौरान इस जाति का अस्तित्व ही समाप्त हो गया । तारीखे फरिश्ता मे उन लोगो के वारे मे वहुत सी वातें लिखी हुई है । उसन इनका उल्लख मुल्तान क राजवश के सम्व ध म किया है । इस वश के पाच राजाओ मे स पहला हिजरी सवत् 847 (1443 ई०) म अर्थात् रावल चाचक की मृत्यु के तीस वप पूव राज्य करता था । मुस्लिम इतिहासकार लिखता है कि दिल्ली के मुल्तान सयद खिजखा न शेख युसूफ को अपना प्रतिनिधि वनाकर मुल्तान

ने देवराज को बचाने की दृष्टि से उसके गले में जनेऊ पहना दिया और फिर बाहर आकर कहा कि आप लोग जिस व्यक्ति की तलाश में हैं, वह मेरे घर में नहीं है। उन लोगों का सन्देह दूर करने के लिये उसने उनके सामने देवराज के साथ एक ही थाली में भोजन किया जिससे आक्रमणकारियों का सन्देह दूर हो गया। इस प्रकार देवराज बच गया। परन्तु बराह लोगों ने इसके बाद तनोट पर आक्रमण किया और दुर्ग में जितने भी आदमी थे उन सभी को मार डाला। कुछ दिनों के लिये भाटी जाति का नाम ही लोप हो गया।

देवराज लम्बे समय तक बराह लोगों के राज्य में ही छिपकर जीवन बिताता रहा, परन्तु अवसर मिलते ही वह अपने ननिहाल बूता राजा के पास चला गया। सयोग से उसकी माता भी तनोट के नरसंहार से बचकर वहाँ पहुँच गई थी। माँ ने अपने पुत्र को जीवित देखकर सतोष अनुभव किया और उससे कहा कि शत्रुओं ने जिस प्रकार हमारे वश का सर्वनाश किया है, एक दिन उनका भी ऐसा ही अन्त होगा। देवराज के नाना ने उसको जीवन निर्वाह के लिये एक गाँव दे दिया। इस पर अन्य बूता लोगों ने अपने राजा को समझाया कि आपने उसे गाँव देकर अच्छा नहीं किया। इससे आपके राज्य का सर्वनाश हो जायेगा। भयभीत राजा ने उससे वह गाँव वापस लेकर मरुभूमि में एक साधारण स्थान दिया। देवराज वहीं जाकर रहने लगा और केकय नामक एक चतुर शिल्पी की सहायता से एक दुर्ग बनवाया। इस दुर्ग का नाम भटनेर रखा। इसके बाद उसने सवत् 909 में एक दूसरा विशाल दुर्ग बनवाया और अपने नाम पर उस दुर्ग का नाम देवगढ़ रखा।

बूता राजा को ज्यों ही सूचना मिली कि देवराज ने वहाँ पर अपना निवास स्थान न बनाकर दुर्ग बनवाया है तो उसने दुर्ग को गिराने के लिये एक सेना भेज दी। देवराज ने अपनी माता को दुर्ग की चाबी देकर अपने नाना के पास भिजवा दिया और आने वाली सेना को कहला भेजा कि वह आकर दुर्ग का अधिकार ले ले। बूता राजा के 120 शूरवीरों ने दुर्ग में प्रवेश किया। उसी समय देवराज के लोगों ने चारों तरफ से उन पर आक्रमण कर दिया और वे सभी मारे गये। सेनापति के मारे जाने पर दुर्ग के बाहर ठहरी हुई आक्रमणकारी सेना वहाँ से भाग खड़ी हुई। दुर्ग के भीतर मारे गये बूता लोगों की लाशें बाहर फेंक दी गईं।

इसके कुछ दिनों बाद ही वह जोगी जिसने उसकी उस समय में जान बचायी थी जब वह बराह राजपूतों के राज्य में छिप कर रह रहा था, उससे मिलने आया। उसने देवराज को सिद्ध पुरुष की पदवी दी। वह जोगी अपनी शक्ति से किसी भी धातु को स्वर्ण बना देता था। बराह राजा के नगर के जिस घर में देवराज रहता था उसी घर में वह जोगी भी रहता था। एक दिन वह जोगी एक घड़े में रसायनिक द्रव्य रखकर कहीं बाहर चला गया था। उस द्रव्य की एक बूंद के स्पर्श से देवराज

की तलवार स्वर्ण की हो गई थी। देवराज न मरूभूमि मे बसन के बाद उसी रसायनिक द्रव्य स अपरिमित सम्पत्ति अपन अधिकार म करके दुग का निर्माण काय करवाया था।

दवराज से मिलन के बाद जोगी ने उसस कहा कि तुमन मेरी सम्पत्ति का अपहरण किया है, पर तु मैं यह रहस्य किसी के सामन प्रकट न करू गा यदि तुम मरे चेल बनकर जोगी वप धारण कर ला। दवराज न उसकी शत को स्वीकार कर लिया और वह विधिवत ढग स जोगी का चेला वन गया। कानो मे कुण्डल और तन पर गेरुए वस्त्र धारण कर लिय। जोगी न उसका राजतिलक किया और रावल की उपाधि से विभूपित किया। इसके पहले यदुवशी राजा राव कहलाये थे। इसके वाद जोगी अदृश्य हो गया।

अव देवराज ने वराह लागो से अपन वश का वदला लेने का सकल्प किया। उसन पूरी तयारी के साथ वराह लोगो पर आक्रमण किया और भयकर नरसहार किया। स्त्रिया और वच्चो तक को मौत के घाट उतार दिया गया। उनकी धनसम्पत्ति के साथ वह वापस लाट आया और लगा लोगो पर आक्रमण किया। उनका युवराज इस समय अपन विवाह क लिय अलीपुर गया हुआ था। देवराज ने वही पर उन लोगा पर आक्रमण किया और उनक एक हजार आदमियो को मौत के घाट उतार दिया। लगा के युवराज न दवराज की अधीनता स्वीकार कर ली। यदु भाटियो के पजाव से पलायन के समय से लेकर मरूभूमि म स्थापित होने तक लगा लोगा न उनकी काफी सहायता की थी। इसलिय इस जाति के सम्ब ध म यहा पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

लगा लोग वीर राजपूत थ और उनका सम्ब ध अग्निवशी चालुक्य अथवा सोलकी वश से था। उनका प्राचीन निवास स्थान लोकोट (लाहौर) था। इसस मालूम पडता है कि आवू पवत स आन क वाद व पजाव म इस स्थान पर आकर बस गय थ। सवत् 787 (731 ई०) म भाटिया द्वारा तनोट क दुग क निर्माण से सवत 1530 (1474 ई०) तक 743 वर्षों का एक लम्बा समय होता है। इस बीच समय म सीमा विवादो को लेकर लगा लागा का भाटिया क साथ निरन्तर सघर्ष चलता रहा था। उसक वाद अचानक वह सघर्ष समाप्त हो गया। थोड़े वर्षों बाद ही बाबर ने भारत पर आक्रमण किया और उसके आक्रमण के आगे इस जाति का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। तारीख फरिश्ता म इन लोगा क बारे म बहुत सी बातें [illegible] हुई है। उसन इनका उल्लेख मुल्तान क शासका क सम्ब ध म किया है। [illegible] पाच राजाओ म स पहला [illegible] सवत 847 (1443 ई०) म [illegible] की मृत्यु क [illegible] था। मुस्लिम इति[illegible] दिल्ली क सुल्तान [illegible] का [illegible]

भेजा । शेख ने वहा पहुँच कर उस क्षेत्र के जिन राजाओ के साथ सम्ब ध स्थापित किये थे, उनम लगा जाति का राजा राव सेहरा भी एक था । राव सेहरा न मुल्तान जाकर शेख की अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी पुत्री का विवाह शेख युसूफ के साथ करने का प्रस्ताव रखा, जो स्वीकार कर लिया गया । राव सहरा का वास्तविक अभिप्राय कुछ दूसरा ही था । उसन अवसर मिलत ही शेख युसूफ को कद करके दिल्ली भेज दिया और अपना नाम कुतुबुद्दीन रखकर वह मुल्तान का राजा बन गया ।

फरिश्ता के अनुसार राव सेहरा और उसके वश वाले लगा लाग अफगान थे । अब्बुलफजल कहता है कि सेवी राज्य के लगा लोग नूमरी जाति के थे । नूमरी जाति जाटो की एक प्रसिद्ध शाखा थी । भाटी वश के इतिहासकार ने लगा लोगो को कहीं पठान और कही राजपूत लिखा है । पर तु राय शब्द इस जाति के हि दू होन का परिचय देता है । इतिहासकार एलफिन्स्टन ने अफगानो की उत्पत्ति यहूदियो स मानी है । यदुवश और यहूदी वश मे कोई अ तर दिखाई नही पडता । ऐसा मालूम होता है कि एक ही नाम के दो शब्द किसी प्रकार बन गये हैं ।

देवरावल (देवगढ) की दक्षिणी सीमा पर लोदरा[6] राजपूतो का निवास था । उनकी राजधानी लाद्रवा एक बडा नगर था और उसके बारह दरवाजे थ । उनके राजपुरोहित ने अपने राजा से अप्रसन्न होकर देवराज के यहा शरण ली और उसस अपने पुराने स्वामी का राज्य छीन लेन का अनुरोध किया । तदनुसार देवराज न लोदरा राजा नपभानु को सदेश भिजवाया कि वह उसकी पुत्री के साथ विवाह करने का इच्छुक है । नपभानु ने इस सम्ब ध को स्वीकार कर लिया । निश्चित दिन देवराज बारह सौ घुडसवारो के साथ विवाह करने के लिय लोदरा पहुँच गया और जात ही धावा बोल दिया । लोदरा राजा पराजित हो गया और देवराज न उसके सिंहासन को अधिकृत कर लिया । इसके बाद उसन राजकुमारी के साथ विवाह किया । अपन अधिकारियो का लोदरा म नियुक्त करके वह अपनी पत्नी के साथ देवरावल लौट आया । इस समय उसके अधिकार म 56 000 घुडसवार सनिक थ ।

इ ही दिनो मे यशोकरण नाम का एक व्यवसायी देवरावल से धारानगरी म जा बसा था । वहा के राजा बृजभानु ने उस ब दी बना लिया और रिहाई के लिय भारी धनराशि की माग की । उसे शारीरिक यातनाए भी दी गइ और बाद म उसकी सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति को छीनकर उसे रिहा कर दिया गया । यशोकरण देवरावल लौट आया और उसने अपने राजा देवराज को सम्पूर्ण वृत्ता त सुनाया जिस सुनकर देवराज न इस अपमान का बदला लने की प्रतिज्ञा की । उसन यह भी प्रतिज्ञा की कि जब तक वह बदला न ले लेगा अन्न जल ग्रहण नही करेगा । पर तु उस अवसर पर उसने देवरावल स धारानगरी की दूरी पर विचार न किया था । धारानगरी तक पहुँचने मे काफी दिनो का समय आवश्यक था और इतन दिनो तक बिना जल के जीवित

रहना सम्भव न था। इसलिय उमकी प्रतिना का सुनकर उसके म भी घबरा गय ग्रौर उन्होन देवराज को समझाया कि स्थिति म तो उसका जीवित रहना भी असम्भव होगा। ग्रत उन्होन एक उपाय सुझाया जिससे उसकी प्रतिना भी पूरी हो जाय ग्रौर उसका जीवन भी बच जाय। उस समय देवराज की सेना म कई परमार-वशी सनिक थ। मन्त्रियो ने सुझाव दिया कि एक कृत्रिम धारानगरी बनाई जाय ग्रौर उसकी रक्षा का भार परमार सनिको को सौप दिया जाय। फिर देवराज उस पर ग्राक्रमण कर उसे जीत ल ग्रौर ग्रपनी प्रतिज्ञा का पूरी कर। देवराज न उनके सुझाव को स्वीकार कर लिया। तुरत कृत्रिम धारानगरी तयार कर दी गई ग्रौर परमार सनिको को उसकी रक्षा के लिय नियुक्त कर दिया गया। फिर देवराज न उस पर ग्राक्रमण किया। तब परमार सनिको न ग्रपने साथियो से कहा—

जँह पँवार तँह धार है, जहा धार वहाँ पवार।
धारक बिना पँवार नहि, नहि पँवार बिन धार॥

ग्रर्थात् जहाँ पर परमार रहते है धारानगरी वही पर है। जहा परमार नही रहते, धारानगरी वहा पर नही है। उन परमार सनिको न पूरे साहस के साथ कृत्रिम धारानगरी की रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की। उनकी सख्या 120 थी ग्रौर उनका नेतृत्व तेजसिंह ग्रौर सारग नामक परमार सनिको न किया था। देवराज न बाद म मृत परमार सनिको के परिवारो को भरपूर ग्रार्थिक सहायता प्रदान की। ग्रपनी प्रतिना से मुक्त होते ही देवराज धारानगरी की तरफ बढा ग्रौर मार्ग मे ग्रान वाले सभी सरदारो को कुचलता हुग्रा ग्रागे बढता गया। धारानगरी के राजा वृजभानु न भी पूरी तयारी की। धारानगरी के बाहर दोनो पक्षो म घमासान युद्ध हुग्रा जिसम धारानगरी के बहुत से सैनिक मारे गये ग्रौर शेष मेदान छोडकर भाग गये। वृजभानु ग्रपने ग्रनेक सनिको के साथ मारा गया। देवराज न धारानगरी पर ग्रपना झडा फहराया ग्रौर फिर वह लोदरा लौट ग्राया।

देवराज के दो लडके हुए–मूँद ग्रौर छेद। छेद का विवाह वराह राजकुमारी के साथ हुग्रा था। उससे उसके पाच लडके हुय जो छेदूवशी राजपूत कहलाय। देवराज न ग्रनेक तालाब खुदवाये। तनोट के पास वाले तालाब का नाम तनोटसर ग्रौर एक विशाल तालाब का नाम देवसर रखा। एक दिन देवराज कुछ सेवको के साथ शिकार खेलने गया। वहा छानिया जाति के बलोचो न घात लगाकर उस पर ग्राक्रमण किया ग्रौर उसे मार डाला। देवराज ने स्वाभिमान के साथ पचपन वर्ष तक राज्य किया था।

उसके बाद उसका बडा लडका मूँद सिंहासन पर बैठा। ग्रपने पिता का श्राद्ध करने के बाद उसने 68 कुग्रो के जल से स्नान किया। ग्रभिषेक के समय राज

पुरोहित ने उसको आशीर्वाद दिया तथा सामन्ता ने भेंटें दी। इसके बाद मूद ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने की तयारी की। टीका दौड के लिये उन्ही लोगा का इलाका चुना गया। उन लोगो ने भी पहले से तयारी कर रखी थी। उनके आठ सौ लोग मारे गये। मूँद के वाछू नामक लडका हुआ। जब वह चौदह वर्ष का हुआ तो पट्टन के सोलंकी राजा ने उसके साथ अपनी पुत्री के विवाह का नारियल भिजवाया। वह सीधा पट्टन गया और अपनी पत्नी को लेकर वापस लौट आया।

मूँद के बाद वाछूराव संवत् 1035 श्रावण कृष्ण पक्ष द्वादशी, शनिवार के दिन सिंहासन पर बैठा। उसके पाच लडके हुये—दूसा, बापेराव, सिंह, इनखे और मलपूसा। इन सभी के वशधर कई शाखाओ मे विभक्त होकर प्रसिद्ध हुये।

एक व्यवसायी घोडो के कारवा के साथ लोदरा आया। उसके पास एक श्रेष्ठ नस्ल का घोडा था जो सिंधु के पश्चिम के किसी पठान सरदार का था। व्यवसायी ने उसकी कीमत एक लाख रुपये निर्धारित कर रखी थी। उस घोडे को प्राप्त करने के लिये देवराज और उसके लडके ने सिंधु को पार किया, घोडे के मालिक गाजी खा पठान को मार कर उस श्रेष्ठ घोडे को लेकर वापस आ गया।

सिंह के एक लडका हुआ—सच्चाराय। उसका लडका हुआ बल्ला। बल्ला के दो लडके हुये—रत्न और जग्गा। उन्होने मडौर के परिहार राजा जगनाथ पर आक्रमण किया और उसके पाच सौ ऊटो को जीत कर अपने राज्य मे ले आये। उनके वशज सिंहराव राजपूत कहलाये।

बापेराव के दो लडके हुये—पाहुर और मादन। पाहुर के दो लडके हुये—बीरम और तोलर। उनके वशज पाहुर राजपूत कहलाये। पाहुरो ने अपने निवास स्थान बीकमपुर से लेकर देवीछाल तक जोहिया के समस्त गावो पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद उन्होने पूगल को अपनी राजधानी बनाया तथा वहा पर बहुत से कुए खुदवाये। ये कुए पाहुर कूप के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मारवाड मे नागौर जिले मे खाटू के समीप खीची लोग आबाद थे। उनमे जिद्रा नामक एक व्यक्ति बडा ही साहसी और पराक्रमी था। वह प्राय लूटमार करता रहता था और पूगल की सीमा तक पहुचकर उसने कई जयतुग भाटियो को मार डाला था। इसका बदला लेने के लिये दूसा अपने शूरवीर साथियो के साथ खीचियों के निवास की तरफ गया और वहा जाकर नौ सौ लुटेरो को मौत के घाट उतारा।

दूसा अपने तीन भाइयो के साथ गुहिलोत सरदार प्रतापसिंह की जागीर खेर गया और उसकी तीनो लडकियो के साथ तीनो भाइयो ने विवाह किया। इस अवसर पर यदुभाटियो ने खेर मे स्वर्ण की वर्षा कर उसे समृद्ध बना दिया। गुहिलोत सरदार ने दहेज मे पन्द्रह देवदासिया प्रदान कीं। कुछ दिनो बाद ही बलोचियो ने खेर राज्य

म लूटमार शुरू कर दी। उनके विरुद्ध गर युद्ध लगा गया जिमम पाच मौ बलाची मार गये और शेष भाग पडे हुये। बाद्राव की मृत्यु क बाद सवत् 1100 (1044 ई) म दूसा सिंहासन पर बैठा। कुछ दिना बाद ही भाटा जाति के राजा हमीरसिंह न दूसा क राज्य पर आक्रमण कर दिया और कई नगरा तथा गावा का लूटकर वापस चला गया। इसका बदला लेन क लिए दूसा न उसक राज्य पर आक्रमण किया तथा हमीरसिंह को परास्त किया। दूसा क दो लडके हुये—जसल और विजयरा। वृद्धावस्था म उसक तीसरा लडका हुआ जिसका नाम लजा विजयराज रखा गया। उसकी माता मवाड क राणावत सरदार की पुत्री थी। दूसा की मृत्यु के बाद सामन्ता ने इसी तीसरे लडके का सिंहासन पर बठाया। राजा लजा के पुत्र उसने सोलकी राजा सिद्धराज जयसिंह[6] की लडकी के साथ विवाह किया था। विवाह क अवसर पर उसकी सास न उसस कहा था कि उत्तर दिशा म रहन वाल लोग इस राज्य पर प्राय आक्रमण तथा अत्याचार करत रहते हैं। तुम उन लोगा म इस राज्य की रक्षा करना। सोलकी पत्नी से उसके एक लडका हुआ—भोजदेव जो अपने पिता की मृत्यु क बाद लोदरा का राजा बना। दूसा के दूसरे लडके इस समय तक वयस्क हो चुके थे। जसल पतीस वर्ष और विजयराज बत्तीस वर्ष के हो चुके थे।

भोजदेव को सिंहासन पर बठे कुछ ही दिन बीत थे कि उसक ताऊ जसल ने उसके विरुद्ध षडयन्त्र रचने शुरू कर दिये। परन्तु पाच सौ सोलकी सनिक भोजदेव की सुरक्षा कर रहे थे इसलिये जसल को सफलता न मिली। इन्ही दिनो पट्टा की तरफ से गोरी के सनिक पट्टन की सीमा पर धावे मार रहे थे। जसल ने बादशाह के साथ मिल कर अनहिलवाडा पट्टन पर आक्रमण करने की बात सोची। उसका अनुमान था कि पट्टन पर आक्रमण होने की स्थिति म लोदरा म नियुक्त सोलकी सनिको को पट्टन की सुरक्षा क लिए वापस बुला लिया जायगा तो उसे भोजदेव को सिंहासन से हटाने का अवसर मिल जायेगा। यह निश्चय कर वह अपने दो सौ घुडसवारो के साथ पजाब की तरफ चल पडा और शहाबुद्दीन गोरी की सेवा म जा पहुचा। गोरी ने उसका आदर-सम्मान किया और जसल के सुझाव का स्वीकार करते हुये करीमखा के नेतृत्व म एक सेना पट्टन पर आक्रमण करने के लिये जसल के साथ भेज दी। जसल इस सेना के साथ पहले लोदरा आया और भोजदेव पर आक्रमण किया। इस युद्ध म भोजदेव मारा गया और शेष सेना ने जसल की अधीनता स्वीकार कर ली। करीमखाँ की सेना लोदरा को लूटकर भक्कर की तरफ चली गई।

इस प्रकार, जसल न लोदरा का सिंहासन प्राप्त कर लिया। परन्तु लोदरा शत्रुओ से बचाव की दृष्टि से सुरक्षित स्थान नही था। अत उसने एक सुरक्षित स्थान की खोज की और लोदरा से दस मील की दूरी पर एक स्थान पसन्द किया। उस स्थान पर एक ब्राह्मण की कुटिया थी और ब्रह्मसर नामक एक तालाब था। जसल न उस ब्राह्मण से बातचीत की। ब्राह्मण ने उसे बतलाया कि त्रेता युग म काग नाम का

एक योगी यहा निवास करता था । यहा से एक नदी निकली थी ग्रौर उस योगी क नाम पर काग नदी के नाम से पुकारी जाती थी । यह तालाव बहुत पुराना है ग्रौर कृष्ण के साथ ग्रजु न ने भी इस तालाव के दशन किये थे । इस स्थान को देखकर कृष्ण न कहा था कि ग्राज से बहुत समय बाद हमारा कोई वशज यहा ग्राकर ग्रपनी राजधानी की प्रतिष्ठा करगा । तब ग्रजु न न कृष्ण से कहा कि राजधानी बन जाने के बाद लोग यहा पर निवास करेग उ ह जल का कष्ट रहेगा, क्योकि इस नदी का पानी बहुत ग दा है । इस पर कृष्ण ने ग्रपन चक्र से पवत का स्पश किया ग्रौर इसक साथ ही पवत स स्वादिष्ट जल की एक धारा फूट निकली । उस जलधारा के किनारे एक पत्थर लगा हुग्रा था । उस पर कुछ पक्तिया उत्कीण थी । ब्राह्मण ने उन पक्तिया का ग्रथ जैसल को बतलाया, हे प्रतापी यदुवशी राजा, ग्राप यहा पर ग्राइए ग्रौर इस पवत के ऊपर ग्रपन दुग की प्रतिष्ठा कीजिय । लोदरा की राजधानी नष्ट हो गई है ग्रौर जसल राज्य यहा स दस मील की दूरी पर है, जो सुदृढ ग्रौर सुरक्षित है । हे यदुवशी ग्राप लोदरा को त्याग कर यहाँ पर ग्राइए ग्रौर ग्रपनी राजधानी की प्रतिष्ठा कीजिय ।"

पत्थर पर लिखी हुई य पक्तिया सस्कृत भाषा म थी ग्रौर इसकी जानकारी उस ब्राह्मण के ग्रलावा ग्रौर किसी को न थी । उस ब्राह्मण न जसल से यह भी कहा कि यह दुग दो बार बाहरी शत्रुग्रो द्वारा विध्वस किया जायगा । घमासान युद्ध होगे ग्रौर ग्रापके उत्तराधिकारी इस दुग को ग्रपने ग्रधिकार से खो देगे ।

सवत् 1212 (1156 ई) के श्रावण महीन की बदी द्वादशी, रविवार के दिन जसलमेर राजधानी की नीव रखी गई । इसके बाद लोदरा के निवासी ग्रपने परिवारो के साथ यहा ग्राकर बसन लग । जसल क दो लडके हुय—केलन ग्रौर शालिवाहन । जसल ने पाहुवशी सोदिल के परिवार के लोगो को ग्रपना म त्री तथा सलाहकार नियुक्त किया, जो ग्राग चलकर काफी शक्तिसम्पन्न हो गये । इ ही दिनो भाटियो के पुराने शत्रु राजपूतो न खडाल क्षेत्र पर पुन ग्राक्रमण किया पर तु उ ह भारी क्षति उठाकर भागना पडा । इस घटना क बाद जसल पाच वप तक ग्रौर जीवित रहा । उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र शालिवाहन द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बठा ।

सन्दर्भ

1 बाबर ने लिखा है कि भारत के लोग सि धु नदी की पश्चिमी सीमा के बाहर स्थित समस्त भूखण्ड को खुरासान कहते थे ।

2 चन्न जाति इस समय लुप्त हो गई है ।

3 भारत के अन्य लागा म यह ग्रासवाल जाति सबस विशष धनवान थी ग्रौर इनकी सख्या भी ग्रधिक थी । य लाग पहल मारवाड के ग्रासिया नामक नगर म ग्राकर रह थ इसी कारण स ग्रासवाल कहलाय । इनम सभी राजपूत शाखाग्रा के लाग थ ग्रौर सभी जन धम के ग्रनुयायी है ।

4 चारण रामनाथ न लिखा है कि विवाह हा गया था । उसकी सास न देवराज का नगा दिया ।

4 लादरा राजपूत किस शाखा के थ ग्रौर उनका राज्य कहा तक विस्तृत था, इसकी सही जानकारी नही मिलती ।

6 कुमारपालचरित के ग्रनुसार सिद्धराज का समय 1094 से 1145 ई था ।

अध्याय 52

राव केलन से मूलराज तृतीय तक का वृत्तान्त

तनोट के दुर्ग की प्रतिष्ठा (731 ई०) से लेकर अब तक ग्यारह सौ वर्षों का समय गुजर चुका है। इस समय के मध्य घटित होने वाली घटनाएँ भारतीय इतिहास की रुचिकर घटनाएँ हैं। पिछले अध्याय में हमने 425 वर्षों का विवरण दिया है जिसमें हमने भारत के मरुस्थल में बसने वाली विभिन्न जातियों और उनकी राजधानियों को फलते फूलते और नष्ट होते देखा। अब हम आगे का हाल लिखते हैं।

जसलमेर के संस्थापक जसल राजधानी परिवर्तन के बाद बारह वर्ष तक जीवित रहा। उसका बड़ा लड़का केलन प्रधानमंत्री पाहू से लड़ बैठा। परिणाम स्वरूप केलन को जसलमेर छोड़ना पड़ा और उसके छोटे भाई शालिवाहन को सिंहासन पर बैठाया गया। शालिवाहन संवत् 1224 (1168 ई) में सिंहासन पर बैठा। उसका पहला अभियान काठी[1] अथवा कठी जाति के विरुद्ध हुआ। यह जाति जालौर और अरावली के मध्यवर्ती क्षेत्र में निवास करती थी। उनके राजा का नाम था जगभानु। युद्ध में काठी राजा मारा गया और उसके घोड़ों तथा ऊँटों को जसलमेर ले आया गया। शालिवाहन के तीन लड़के हुये—बीजलदेव, बानर और हंसू।

बद्रीनाथ की पहाड़ियों में एक राज्य था जिसके राजा शालिवाहन प्रथम के वंशज थे। गजनी से निष्कासित होने के समय उसके कुछ वंशज यहां बस गये थे। इन्हीं दिनों इस राज्य का राजा मर गया। उसके कोई संतति न थी। अतः वहाँ से एक शिष्टमण्डल जसलमेर आया और शालिवाहन द्वितीय से अपने एक राजकुमार को वहाँ भेजकर सिंहासन का अधिकार लेने की प्रार्थना की। शालिवाहन द्वितीय ने हंसू को भिजवा दिया। परन्तु वहां पहुँचने के कुछ दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। हंसू की स्त्री उस समय गर्भवती थी और जब वह बद्रीनाथ जा रही थी तो रास्ते में ही एक पलाश के वृक्ष के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पलाश रखा गया। यही बालक बद्रीनाथ के उस राज्य का राजा बना और उसके नाम पर उस राज्य का नाम पलाशिया पड़ा। उसके वंशज पलाशिया भाटी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सिरोही के देवडा शासक मानसिंह ने राजा शालिवाहिन द्वितीय के लिए अपनी पुत्री के विवाह का नारियल भेजा। अपने राज्य का भार अपने बडे पुत्र बीजल को सौपकर वह विवाह करने सिरोही गया। इधर बीजल के धाभाई ने यह अफवाह फला दी कि रास्ते मे एक चीते ने शालिवाहन को मार दिया है। इस अफवाह को सत्य मानकर बीजलदेव को सिहासन पर बठा दिया गया। शालिवाहन जब विवाह कर वापस अपने नगर म आया तो उसने देखा कि बीजल न सिंहासन पर अधिकार कर लिया है। उसी समय उसे अपने पुत्र बीजल का अशिष्ट व्यवहार भी देखने को मिला बीजल ने अपने पिता को साफ साफ शब्दो मे कह दिया कि अब इस सिहासन पर आपका कोई अधिकार नही रह गया है। निराश शालिवाहन खडाल की तरफ चला गया। इसकी राजधानी देवरायल थी। कुछ दिनो बाद बलोचियो के विद्रोह का दमन करने समय वह अपने तीन सौ सैनिको के साथ मारा गया। बीजल भी अधिक दिनो तक राज्य का सुख न भोग सका। उसने एक बार अपने धाभाई पर तलवार का प्रहार किया धाभाई ने इसका करारा जवाब दिया। इससे लज्जित होकर बीजल ने अपनी ही कटार से आत्महत्या कर ली।[2]

शालिवाहन के बडे भाई केलन जिसे राज्य से निर्वासित कर दिया गया था, अब वापस बुलाया गया और 1200 ई० मे वह सिंहासन पर बठा। उस समय वह पचास वप का हो चुका था। उसके 6 लडके हुये—चाचकदेव, पाल्हन, जयच द, पीतमसी, पीचमच द और ग्रोसराड। दूसरे और तीसरे लडके के बहुत सी सतानें हुईं जो क्रमश जेसर और सिहाना राजपूत कहलाये।

खिज्रखा बलोची ने पाच हजार सवारो के साथ सि धु को पार कर दूसरी बार खडाल पर आक्रमण किया। इसी खिज्रखा ने पहले विद्रोह करके शालिवाहन को मार डाला था। केलन सात हजार यदुवशियो के साथ उसका सामना करन के लिए चल पडा। घमासान युद्ध मे खिज्रखा अपने पद्रह सौ सनिको के साथ मारा गया। केलन ने उन्नीस वप तक शासन किया।

सवत् 127० (1219 ई०) म चाचक देव सिंहासन पर बठा। कुछ दिनो बाद ही उसने चन्ना राजपूतो पर आक्रमण किया और उनके दो हजार लोगो को मार डाला तथा उनकी चौदह सौ गाये छीन ली। पराजित चन्ना राजपूत अपने निवास स्थान को छोडकर जोहिया राज्य म जा बसे। इसके बाद चाचक न मादाग्रा क राजा राणा अमरसी के राज्य पर आक्रमण किया। इस अचानक आक्रमण से अमरसी विस्मित हो उठा, पर तु उसन चार हजार सनिको के साथ शत्रु का सामना करन का प्रयास किया। वह पराजित हुआ और भागकर अपनी राजधानी अमरकोट मे शरण लेनी पडी। बाद म उसन चाचक के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

इ ही दिनो मे राठौड राजपूतो ने खेड नाम का एक नया राज्य स्थापित किया था। शीघ्र ही व उद्दण्ड तथा अत्याचारी पडौसी सिद्ध हुये। चाचक दव ने सोढाओ की सहायता से उनका दमन करन का निश्चय किया। वह सना सहित जसोल और बालोतरा की तरफ बढा। ये दोनो स्थान इस समय राठौडा के अधिकार मे थे। दाना पक्षा म युद्ध हुआ परन्तु राठोड सरदार छाडा और उसक लडक टीडा ने चाचक देव के साथ राठौड राजकुमारी का विवाह कर मैत्रीपूण सम्ब ध कायम कर लिये।[3]

रावल चाचक ने बत्तीस वष तक शासन किया। उसक एक ही लडका हुआ—तेजराव। बयालीस वष की आयु म चेचक निकल आन स उसक पिता क जीवन काल मे ही उसकी मृत्यु हो गई थी। तेजराव के दा लडके हुये—जतसी और कणसी। कणसी अपने दादा को अधिक प्रिय था। अत मरन स पहल चाचक उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करता गया।

कणसी सिंहासन पर वठा। उसका वडा भाई जतसी राज्य का छोडकर गुजरात के मुस्लिम बादशाह की सेवा मे चला गया। इसी समय मुजफ्फर खा न पाच हजार सवारो के साथ नागौर पर अधिकार कर वहा के लोगा पर बहुत अधिक अत्याचार किये। नागौर से तीस मील की दूरी पर बराह जाति का एक भौमिया सरदार भगवती दास रहता था। उसके पास डेढ हजार अश्वारोही सनिक थे। उसके एक ही लडकी थी और खान ने उस लडकी की माग की। भगवती दास उसकी माग को पूरा करना नही चाहता था परन्तु उसम खान का सामना करने की शक्ति भी नही थी। अत उसने अपना निवास स्थान छोड कर जसलमेर जाने का निश्चय किया और जब वह इस तरफ बढ रहा था तो माग म ही मुजफ्फर खा न उस पर आक्रमण कर दिया। भगवती दास के चार सौ सनिक मारे गये और उस लडकी सहित सभी स्त्रियाँ भी खान के हाथा मे पड गई। मुजफ्फर उनको लेकर लौट गया। भगवती दास न जैसलमेर जाकर राव कणसी को मुजफ्फर के अत्याचारो का हाल सुनाया। राव कणसी तत्काल अपनी सेना सहित चल पडा और मुजफ्फर की सना पर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध म मुजफ्फर अपने तीन हजार मुस्लिम सनिका सहित मारा गया। बराह राजकुमारी और स्त्रियो तथा लूट की मम्पत्ति क साथ कणसी जसलमर लौट आया। वापस आकर उसने भगवती दास का उसकी लडकी तथा स्त्रियाँ सौंप दी। उसने भगवती दास को पुन उसके राज्य का स्वामी बनाया। कणसी ने अट्ठाईस वष तक शासन किया। उसका लडका उसका उत्तराधिकारी हुआ।

सवत् 1327 (1271 ई०) म लाखन सेन राजा बना। वह बहुत अधिक भाला था। एक रात उसे सियारो के चिल्लान की आवाज सुनाई पडी। लाखन क पूछने पर उसे बताया गया कि सर्दी के कारण व चिल्ला रह हैं। इस पर उसने

मियारो के लिये दु गले (ऊनी वस्त्र) बनाने के आदेश दिये। परन्तु फिर भी रात्रि म उस चिल्लाने की आवाजें सुनाई देने लगी तो लाखन ने पूछा कि अब वे क्यो चिल्ला रहे है ? तब उसे बताया गया कि उनके रहने के लिये घर नही हैं। लाखन ने तत्काल उनके रहने के लिये घर बनाने की आज्ञा दी। लाखन के आदेशानुसार बनाये गये घरो म से कुछ अब तक पाये जाते है। लाखनदेव का हड देव सोनगरा का समकालीन था। लाखन की पत्नी ने एक बार उसके प्राणो की रक्षा की थी। उसकी यह रानी सोढा वश की थी और लाखन उसी के इशारे पर शासन करता था। रानी ने अमरकोट से अपने बहुत से स्व बधुओ को बुलाकर राजकीय सेवा म नियुक्त किया परन्तु पागल लाखन ने उनको मौत के घाट उतार कर उनकी लाशो को दीवारो पर फिकवा दिया। उसने कुल चार वर्ष तक शासन किया। फिर उसे पदच्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर उसके लडके को राजा बनाया गया।

लाखन के लडके का नाम पुण्यपाल था। पर तु उसका व्यवहार इतना उग्र था कि साम तो ने उसे सिंहासन से उतारकर देश से निर्वासित राजकुमार जतसी को गुजरात से बुलवाकर सिंहासन पर बठाया। पुण्यपाल को राज्य के सुदूर क्षेत्र मे रहने का एक स्थान दे दिया गया। वहा पर उसके एक लडका हुआ लाखनसी। लाखनसी के रगिगदेव नाम का लडका हुआ। बडे होने पर उसने खरलवशी एक राजपूत से मिलकर पडयत्र रचा और जोहिया लोगो स मरोट छीन लिया। इसके बाद उसने थोरियो से पूगल का राज्य छीन लिया और उनके सरदार को ब दी बना लिया। इसके बाद वह परिवार सहित पूगल म ही बस गया। राव रगिग देव के एक लडका हुआ—सादूल। उसने लूटमार कर काफी धन एकत्र किया और भोग विलास का जीवन बिताया।

सवत् 1332 (1276 ई) म जतसी को सिंहासन प्राप्त हुआ था। उसके दो लडके हुये—मूलराज और रतनसी। मूलराज के पुत्र देवराज ने जालौर के सोनगरा सरदार की पुत्री के साथ विवाह किया था। इ ही दिनो महमूद (खूनी) बादशाह न मडौर के परिहारवशी राजा रूपसी के राज्य पर आक्रमण किया। पराजित रूपसी ने अपनी बारह लडकिया के साथ रावल क यहाँ आकर आश्रय लिया। उसे बारू नामक स्थान रहने के लिये दिया गया।

सोनगरा रानी से देवराज के तीन लडके हुए—जगन सिरान और हमीर। हमीर अत्यधिक पराक्रमी था। उसने महवा क कपोहुसन पर आक्रमण किया और उसकी भूमि को लूटा। हमीर क तीन लडके हुये जतू, लूनकरण और मरू। इन दिनो म गोरी अलाउद्दीन[1] न भारत के दुर्गों के विरुद्ध युद्ध छेड रखा था। थट्टा और मुल्तान से पन्द्रह सौ घोडो और पन्द्रह सौ खच्चरो पर वहा की धन सम्पत्ति दिल्ली म बादशाह की सेवा म रवाना की गई थी। जब यह कारवा भक्कर पहुचा तो जेतू के लडको न घात लगाकर उस धन सम्पत्ति को लूटने का निश्चय किया। अनाज के व्यापारियो

के वप मे वे लाग सात सौ अश्वारोहियो और बारह सौ ऊटा क साथ अपन अभियान पर चल पडे और पचनद नदी के किनारे उ होन शाही कारवा को दखा। उसका रक्षा के लिय चार सौ मुगल और चार सौ पठान सवारो की सेना थी। भाटी लाग ने बादशाही सना के पीछे कुछ दूरी पर अपना डरा लगाया। रात म व लाग उठ बठ और शाही रक्षको पर टूट पडे और उ ह मौत के घाट उतार दिया। सम्पूण धन सम्पत्ति का ऊटा पर लादकर जसलमर ले गय। शाही सेना के बचे हुय सनिका ने दिल्ली पहुचकर बादशाह को पूरा हाल बताया जिस सुनकर बादशाह न तत्काल भाटिया का सजा दन का आदेश दिया। जब रावल जतसी का यह सूचना मिली कि जसलमेर पर आक्रमण करन के लिय दिल्ली की सना अजमर म आना सागर तक आ पहुची है तो उसन सुरक्षा की सम्पूण व्यवस्था की। दुग म खान पीन की वस्तुओ का सग्रह किया गया और उसके सभी रास्त मजबूत पत्थरा से ब द करवा दिय गय। इसके अलावा दुग क भीतर छाटे बडे पत्थरो का ढेर तयार किया गया ताकि आक्रमणकारिया का पत्थरो का शिकार बनाया जा सक। राजपरिवार के सभी वृद्ध और बच्चा को मरुभूमि के भीतरी भाग मे पहुचा दिया गया और राजधानी क आसपास का कई मील इलाका उजाडकर नष्ट कर दिया गया। दुग की रक्षा क लिय रावल जतसी अपन दा पुत्रा और पाच हजार सनिको के साथ रह गया। देवराज और हमीर को शेप सना के साथ शत्रु का सामना करने के लिये राजधानी क बाहर भज दिया गया। सुल्तान अलाउद्दीन स्वय अजमेर म बना रहा और अपनी खुरासानी सेना को जसलमेर पर आक्रमण करन के लिये भेज दिया। भादा के महीन म इस सेना न जसलमेर जाकर दुग का घरा डाल दिया। रावल न दुग की छप्पन बुर्जियो की रक्षा के लिये तीन हजार सात सौ शूरवीर नियुक्त किये और दा हजार सनिको को दुग मे ही रख छाडा। घेराव दी के प्रथम सप्ताह म खाइयां और ख दक खादत समय सात हजार मुस्लिम सनिक मारे गये। पर तु मीर महबूब खा और अलाखा नामक दोनो सेनापति शेप मुस्लिम सेना क साथ मदान मे डट रह। दा वप तक शत्रु सना जसलमर का घेरा डाल पडी रही। इसके बाद उसक सामन खान पीन की समस्या उत्पन्न होन लगी क्याकि मडोर स उसक लिये जो सामग्री भेजी जाती थी उस देव राज और हमीर रास्त मे ही लूट लते थ। दुग रक्षका की सहायता क लिये खडाल, बारमेड और घाट स अनक लोगा का बुला लिया गया। इस प्रकार घराव दी क आठ वप बीत गये।[5] इस बीच रावल जतसी का स्वगवास हो गया। उसक पार्थिव शरीर का दुग क भीतर ही अ तिम सस्कार किया गया।

इस लम्बी घेराव दी क दौरान रत्नसी न बादशाह क सनापति नवाब महबूबखा क साथ मत्रीपूण सम्ब ध कायम कर लिये थ। व दाना प्रतिदिन एक खजड़ के वृक्ष के नीचे बातचीत किया करत थ। दाना के साथ नाममात्र क अगर क्षक रहत थ। व साथ बठकर शतरज खेलत और विचारा का आदान प्रदान करत। पर तु जब कतव्य उ ह पुकारता ता व एक दूसर क विरुद्ध शस्त्र उठा लिया करत

थे। यह थी, शूरवीरा की नतिकता। रावल जतसी न अपनी मृत्यु स पूव अठारह वर्षो तक शासन किया।

सवत् 1350 (1294 ई) म मूलराज तृतीय जैसलमर के सिहासन पर वठा। इस अवसर पर दुग मे परम्परागत ढग म उत्सव मनाया गया। हमशा की तरह जव महवूबखा और रत्नसी खेजडे के वृक्ष के नीचे मिले ता महवूबखा न दुग म हान वाल उत्सव के वार मे पूछा। रत्नसी न उसे वताया कि पिताजी की मृत्यु हो जान क कारण वडे भाई मूलराज के अभिषेक का उत्सव मनाया जा रहा है। महवूबखा न रत्नसी को वतलाया कि उन लोगो के आपस म मिलने की वात वादशाह को मालूम हो गई है और इस लम्बी घेराव दी का कारण हमारी मित्रता का माना जा रहा है। वादशाह न तत्काल दुग को फतह करन का आदेश भिजवाया है। अत कल मैं स्वय पूरी ताकत के साथ दुग पर आक्रमण करूगा। दूसर दिन प्रात हात ही जोरदार आक्रमण हुआ, भयकर युद्ध का दृश्य उपस्थित हा गया। शत्रु सना दुग पर अधिकार करन म पूरी ताकत लगा रही थी और यदुवशी भाटी उसकी रक्षा के लिये अपने प्राण उत्सग कर रह थ। नौ हजार मुस्लिम सनिक मार गये और भयभीत महवूबखा वची हुई सना के साथ भाग खडा हुआ। परन्तु उसे शीघ्र ही दिल्ली स अतिरिक्त सनिक सहायता मिल गई जिसकी सहायता स उसने पुन दुग का घेर लिया। इस घेराव दी का भी एक साल व्यतीत हा गया। इधर दुग की स्थिति बिगडन लगी। खान पीन की चीजा का भारी अभाव उत्पन्न हो गया था और जव स्थिति को सुधारन के लिये कोई उपाय न दिखा ता रावल मूलराज न अपन सामन्तो को एकत्र कर उनमे कहा कि अव आप वतायें कि मौजूदा स्थिति म हम क्या करना चाहिए। उत्तर मे उसके दो सामन्तो—सिहर और वीकमसी न कहा कि दुग म उपस्थित सभी स्त्रियो का जौहर व्रत का पालन करना चाहिए और हम लोगा को शत्रु से युद्ध करते हुये वीरगति प्राप्त करनी चाहिए। इसके अलावा अव अन्य कोई उपाय नही है। लेकिन परिस्थितिया से अनभिज्ञ शत्रु सना न उसी दिन घेरा उठा लिया और थोडी दूरी पर जाकर पडाव किया। रत्नसी के मित्र महवूबखा का एक छोटा भाइ था। वादशाही सना क चले जान के वाद रत्नसी उस दुग के भातर ल गया। उसन दुग की वास्तविक स्थिति को देखा और वापस आते ही अपने भाई से मिला तथा उसको सही स्थिति की जानकारी दी। इस पर महवूबखा न जसलमर का पुन घेरा डाल दिया। यह देखकर मूलराज विस्मित हुआ और जव उस पता चला कि महवूबखा का भाइ दुग म आया था तो उसे रत्नसी पर वडा क्रोध आया। उसन रत्नसी को बुला कर कहा कि तुम्हारे अपराध की वजह से हम सभी सवनाश के शिकार वन गय हैं। अव वताओ क्या किया जाय ? रत्नसी ने उत्तर दिया कि अव कवल एक हा माग वच गया है हम महलो की स्त्रिया को जौहर व्रत का आदेश देना चाहिए और रानमहला मे आग लगा देनी चाहिये और सम्पूर्ण सम्पत्ति को जलाकर राख कर देना चाहिए और फिर शत्रुआ का सहार करन के लिये युद्धभूमि म प्र ।

चाहिए। मूलराज को अत्यधिक सतोष मिला और उसने रत्नसी से कहा कि तुम एक बहादुर जाति के सदस्य हो और अपने राजा के लिय कुर्बानी देने को तयार हो। इसके बाद उसने अपन सामन्ता एव परिवार के लोगो को बुलाकर कहा कि 'आप सबका जन्म राजपूतो मे हुआ है और आपके पूवजा ने अपन सम्मान की रक्षा के लिए सदा अपने प्राणो का मोह छोड़ा है। इस समय फिर परीक्षा का समय आया है।' वह रात सभी ने प्रात की तैयारी म गुजार दी। प्रात होत ही अपूव दृश्य उपस्थित हुआ। लगभग चौबीस हजार महिलाए स्नानकर रेशमी वस्त्र पहन जौहर के लिये एकत्र हुई। फिर सभी प्रज्वलित अग्नि की तरफ बढी और उसम कूद कूद कर प्राण उत्सग करने लगी। इस पवित्र कृत्य के सम्पन्न हो जाने क बाद राजपूत वीरा को प्राणो का मोह न रहा और वे अपने अस्त्र शस्त्रो को लेकर एकत्र हुए। तीन हजार आठ सौ शूरवीर मरने और मारने के लिये चल पडे। सभी न लडत लडते वीरगति प्राप्त की।

रत्नसी के दो लडके थ—घडसी और कानड। घडसी उस समय बारह वष का था। रत्नसी ने अपने इन दोना बच्चो को महबूबखा के पास भिजवा दिया और दूत के द्वारा उससे अनुरोध किया कि वह उसके इन दोनो की रक्षा करे। महबूबखा ने दूत को विश्वास दिलाया कि वह इन बच्चो की देखभाल करेगा। उसन उन दोनो बच्चो को आदरपूवक अपने पास रखा और उनकी निगरानी तथा पालन पोषण क लिये दो विश्वस्त ब्राह्मणो को नियुक्त किया। यह सब जसलमेर के विनाश के पहले ही हो गया था।

प्रात होते ही सुल्तान की सेना ने जोरदार धावा बोल दिया। राजपूतो ने भी जमकर सघष किया। अकेले रत्नसी ने मरने के पहले एक सौ बीस शत्रुओ को मौत के घाट उतारा था। रावल मूलराज भी शत्रु पक्ष के अनेका सनिको को यमलोक पहुचाने के बाद वीरगति को प्राप्त हुआ। अन्त म सभी राजपूत मारे गये। युद्ध क बाद महबूबखा ने मूलराज रत्नसी तथा कुछ अन्य सामन्तो का हिन्दू रीति क अनुसार अन्तिम सस्कार करवाया। जसलमेर का यह विनाश सवत् 1351 (1295 ई) म हुआ जिसमे यदुवशियो का पूणरूप से सफाया हो गया। इसके बाद बादशाही फौज दो वष तक जसलमेर दुग म रही। फिर दुग को मजबूती के साथ ब द करके और उसमे ताले लगाकर वह वापस लौट गई। इसके बाद बहुत समय तक जसलमेर का दुग वीरान पडा रहा क्योकि जो यदुवशी बच गये थे उनके पास न तो दुग के पुनर्निमाण कराने योग्य धन था और न उसकी सुरक्षा की सामथ्य थी।

सन्दर्भ

1 काठी जाति ने सिकन्दर महान् से भी लोहा लिया था। य लोग काठियावाड से आकर मरूस्थल म बस गये थ।

2 बीजल की मृत्यु के बारे म विभिन्न मत प्रचलित हैं। नणसी ने लिखा है कि भाटिया न उसको अयोग्य मानकर गद्दी स उतार दिया था। एक वही के आधार पर प्रमाणित है कि उसका हत्या करवा दी गई थी।

3 डा गोपीनाथ न इसके ठीक विपरीत विवरण दिया है। उनके अनुसार पाडा न जसलमेर क राव का हराकर उस अपनी कन्या अपने साथ ब्याहने के लिए बाध्य किया।

4 गोरी अलाउद्दीन का अभिप्राय सुल्तान अलाउद्दीन खलजी से है।

5 दीघकालीन घेरेबन्दी का विवरण अन्य ऐतिहासिक स्रोता से पुष्ट नही होता है। यह सम्पूर्ण वृत्तान्त काफी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है।

अध्याय 53

)V

राव घडसी और केलरग

जसलमेर राज्य के विनाश के कुछ वर्षो वाद, महेवा के राठौड सरदार मालोजी के पुत्र जगमल न जसलमर के खण्डहरा मे आवाद होने का निश्चय किया और अपन बहुत से सैनिका तथा सात सौ गाडिया पर रसद तथा अय आवश्यक सामान को लादकर जसलमर जा पहुचा। उनक पहु चन की खबर को सुनकर भाटी राजवश के जसर सरदार के पुत्रो –दूदा और तिलोकसी ने अपनी जाति के लोगो को एकत्र किया और अचानक धावा मारकर राठौडो को जसलमेर दुग स खदेड दिया तथा उनकी रसद सामग्री एव अय मामान को अपन अधिकार म ले लिया। इस सफल अभियान क परिणामस्वरूप दूदा को 'रावल चुन लिया गया। उसन जसलमेर क पुनर्निर्माण का काम शुरू करवाया। उसके पाच लडके थे। उसका भाई तिलोकसी अपने अभियानो के लिय बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसन बलोचियो, मगोलियो, मेवा, देवडो (आबू) और जालौर के सानगरा को पराजित करके अपन पराक्रम का परिचय दिया। उसन अजमर तक लूटमार की और दिल्ली के सुल्तान फीरोजशाह क बहुत से घोडो, जिन्ह स्नान करान के लिय आनासागर लाया गया था को लूटा और अपने साथ जसलमर ल गया। इस घटना न जसलमेर पर दूसरे अभियान को आमन्त्रित किया जिसके पहल जसे ही भयकर परिणाम निकले। एक वार पुन जौहर रचा गया जिसम सोलह हजार महिलाओ न अपने प्राण उत्सग किये। दूदू अपन भाई तिलोकसी तथा सत्रह सौ व धुओ के साथ लडता हुआ मारा गया। दस वप तक शासन करने के वाद वह स्वग सिधारा।

सवत् 1362 (1306 ई) मे दूदा की मृत्यु के समय ही महबूब खा की मृत्यु हुई और रत्नसी क दाना पुत्रो—घडसी और कानड की सुरक्षा का भार महबूब क दोनो लडका—गाजीखा और जुलफ्कार खा पर आ पडा। कानड चुपचाप जसलमर गया और घडसी न पश्चिम की तरफ महवा जान की स्वीकृति ल ली। वहा उसने राठौड सरदार की एक वहिन, जिसकी सगाई पहल देवडा के साथ हो चुकी थी क साथ विवाह किया। जव वह अपन ससुराल म ही था तो वहा उसकी मुलाकात अपन एक भीमकाय देह वाल सानिगदेव स हुई। उसन घडसी के साथ दिल्ली जाना

स्वीकार कर लिया। बादशाह न उसकी शक्ति का परीक्षण करन के लिए खुरासान के बादशाह द्वारा भेंट म भेजा गया लोह का एक सुदृढ धनुष को बाण पर चढान के के लिये दिया। घबराय हुए सानिगदेव ने उस धनुष को न केवल मोड ही दिया अपितु उसको तोड भी दिय। इ ही दिना म दिल्ली पर तमूर का आक्रमण हुआ। इस अवसर पर घडसी न बादशाह की महत्वपूण सवा की जिससे प्रस न होकर बादशाह न न कवल उसका जसलमेर का पतृक राज्य ही लौटा दिया अपितु उसक पुनर्निर्माण की स्वीकृति भी द दी। घडसी न जसलमर पहुच कर अपन स्वजाति व धुओ तथा अपन मित्र महवा क जगमल क सरदारो की सहायता स राज्य म शाति एव व्यवस्था कायम की तया एक सना भी एकत्र की। हमीर और उसके वश वालो न घडसी का अपना राज्य मान लिया पर तु जसर क लडका न उसे अपना राजा मानन से इकार कर दिया।

दवराज, जिसन मण्डोर क राणा रूपडा की लडकी स विवाह किया था क केहर नाम का लडका हुआ। बादशाह की सेना द्वारा जसलमर का घेरा डालन के कुछ समय पहल इस लडके को उसकी मा क साथ मण्डोर भिजवा दिया गया था। बारह वष की आयु मे केहर राणा क सम्ब धियो क अन्य बच्चो क साथ जगल मे जाया करता और आकडे की छडी से घोडा का चलाने का खेल खेला करता था। एक दिन, केहर साप की बाबी के निकट ही लेट गया और उस नीद आ गई। उसी बाबी से साप बाहर निकला और केहर के सिर पर अपन फण की छाया करके बठा रहा। उस माग से जान वाले एक चारण न उस दृश्य का देखा और उसन तत्काल राणा को जाकर सारा हाल सुनाते हुए कहा कि यह बालक निश्चय ही किसी राज सिंहासन का अधिकारी बनगा। उत्सुकतावश राणा उस स्थान पर गया और देखा कि वह बालक तो उसका अपना दौहित्र है। उधर घडसी के विमला देवी से कोई पुत्र न हुआ तो उसने किसी यदुवशी बालक का गोद लने का निश्चय किया। अनेक बच्चो को देखने के बाद उसन केहर को गोद लेन का निश्चय किया। उसका निश्चय शीघ्र ही जसलमेर तथा आसपास के नगरो म फैल गया जिसे सुनकर जसर क लडको को काफी दु ख हुआ और उ होन घडसी के विरुद्ध षडय त्र रचन शुरू कर दिय। उन दिना मे घडसी एक तालाब खुदवा रहा था और वह प्रतिदिन वहा का काम देखन क लिय जाया करता था। जसर क लडको न वही पर घात लगाकर उसे मारन का निश्चय किया ताकि वह केहर को गोद न ल सके। उ होन अपनी योजनानुसार घडसी को मार डाला। विमलादेवी न तत्काल केहर को राजा घोषित कर दिया और उसकी रक्षा करन के उद्देश्य स उसने अपन पति की मृत लाश के साथ सती न होन का निश्चय किया। इसके अलावा वह अपन पति द्वारा बनवाय जा रह तालाब का निर्माण काय भी पूरा करवाना चाहती थी। 6 महीन बाद तालाब बन कर तयार हो गया। विमलादेवी न उसका नाम घडसीसर रखा। जिन लोगो न घडसी की हत्या की थी, व अब केहर का सवनाश करने के उपाय सोचने लगे। उधर

विमलादेवी ने अब सती होने का निर्णय लिया। सती होने के पहले उसने एक निर्णय सुनाया कि हमीर के पुत्र केहर के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी होंगे। इन लडकों के नाम थे—जेता और लूनकरण।

मेवाड के राणा कुम्भा की ओर से जेता के लिये नारियल भिजवाया गया। भाटी राजकुमार विवाह के लिये मेवाड की तरफ चला और जब वह अरावली पहाड से चौबीस मील के आस पास पहुचा तो सालवनी का प्रसिद्ध सरदार सांखला उससे आ मिला। प्रात जब वे लोग चलने लगे तो दाहिनी ओर से तीतर के बोलने की आवाज सुनायी पडी। सांखला मीराज इस प्रकार के शकुनों का ज्ञाता था। उसने इसे अपशकुन माना और सभी लोगों ने घोडों से उतर कर उस दिन वहीं विश्राम किया। दूसरे दिन जब वे पुन चले तो बाघिनी के गरजने की आवाज सुनायी पडी। जेतसी ने सांखला से इसका अर्थ पूछा। सांखला ने कोई स्पष्ट उत्तर न देकर जेतसी को सुझाव दिया कि हम सब लोग यहीं पर विश्राम करें और एक नाई को कुम्भलमेर भेजकर वहां की परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त की जाय। तदनुसार एक युवक नाई को भेजा गया जिसने वापस आकर बताया कि वहां का समाचार अच्छा नहीं है। सभी ने उसकी बातों का विश्वास कर लिया और जेतसी ने राणा कुम्भा[1] से अप्रसन्न होकर सांखला की लडकी मारू से विवाह कर लिया। राणा कुम्भा को यह सब सुनकर बहुत बुरा लगा और उसने अपनी पुत्री का विवाह गागरोण के खीची राजा अचलदास के साथ कर दिया। विवाह के बाद जेता ने अपने भाई लूनकरण तथा साले के साथ पूगल पर आक्रमण किया परन्तु वह उन सभी के साथ इस अभियान मे मारा गया। उधर जब पूगल के वृद्ध सरदार रनिगदेव को पता चला कि उसने किसके आक्रमण से अपना दुर्ग बचाया है, तो उसे बहुत दुख हुआ और उसने रावल केहर से क्षमायाचना की। रावल केहर ने उसे क्षमाकर संतोष दिया।

केहर के आठ पुत्र हुए—सोम, लखमन, केलण, किलकरण, सातल, बीजू, तनू और तजसी। सोम के बहुत सी सन्तानें हुई जो सोम भट्टी के नाम से प्रसिद्ध हुई। केलण ने अपने बडे भाई सोम से बीकमपुर छीन लिया। इस पर वह अपने लोगों के साथ गिरप नामक स्थान पर जाकर रहने लगा। सातल ने अपने नाम पर सातलमेर राजधानी की प्रतिष्ठा की।

जब रनिगदेव के पुत्रों ने नागौर के राठौड राजा से अपने पिता का बदला लेने के लिये इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तो वे पूगल और मरोट के पतृक उत्तराधिकार को खो बैठे और आभोरिया भाटी लोगों के साथ मिलकर रहने लगे। वे लोग मोमन मुसलमान भाटी कहलाये। रावल केहर के तीसरे पुत्र ने पूगल और मरोट को भी अपने अधिकार मे ले लिया और कुछ दिनों बाद उसने पदुम भाटिया से देरावर भी छीन लिया।

केलण न एक दुग बनवाया और अपन पिता के नाम पर उसका नाम 'केहर अथवा केरोर'[2] रखा। इसके परिणामस्वरूप उसका जाहिया और लगा लोगो के साथ झगडा शुरू हो गया। लगा सरदार अमीर खा कुराई न केलण पर आक्रमण किया पर तु वह पराजित हुआ। इन दिनो केलण के पराक्रम से चालिह, मोहिल और जोहिया जाति के लोग भयभीत हो उठे थे। उसने अपनी शक्ति और सत्ता का पचनद तक विस्तार किया। उसन समा वश की राजकुमारी के साथ विवाह किया और समा वश क उत्तराधिकार की समस्या को निपटाया। उसन सुजाअतदजाम का समथन किया और उसे मरोट की गद्दी पर बठाया। दो वष बाद ही सुजाअत की मृत्यु हो गई। तब केलण ने उस वश के सम्पूण राज्य को अपन अधिकार म लिया। इससे उसके राज्य की सीमा सि धु नदी तक विस्तृत हो गई। बहत्तर वष की आयु म उसकी मृत्यु हो गई।

कलण के बाद चाचक देव उसका उत्तराधिकारी बना। मुल्तान की तरफ से होन वाले आक्रमणो के कारण उसन मरोट को अपना निवास स्थान बनाया। भाटियो के राज्य की सीमा गाडा नदी तक पहुच जान स मुल्तान के मुस्लिम राजा को असतोष हो गया था। मुल्तान के राजा न भाटियो के पुराने शत्रु लगा, जोहिया और खीची लोगो के साथ मिलाकर एक शक्तिशाली सगठन बनाया। चाचक देव ने भी उनका सामना करने के लिये सत्रह हजार घुडसवार और चौदह हजार पदाति सैनिका की सेना गठित की और व्यास नदी के पास पहुच कर अपना पडाव डाला। यही पर दोनो पक्षो के मध्य युद्ध लडा गया जिसमे मुल्तानी सघ की पराजय हुई। मुल्तान का राजा युद्धभूमि स भाग गया। चाचक देव शत्रु के शिविर को लूट कर मरोट चला आया। अगले वष दोनो पक्षो मे पुन युद्ध लडा गया जिममे 740 भाटी सनिक और 3000 मुल्तानी सनिक मारे गये। चाचदेव विजयी हुआ। इन सफलताओ से उसके राज्य का काफी विस्तार हो गया। उसने कई नगरो पर अधिकार कर लिया और अमनी कोट नामक एक दुग बनवाया। इस दुग म एक सना रखी और उसका अधिकार अपन लडके को सौप कर वह पूगल चला गया। इसके बाद उसने दूदो के राजा महिपाल पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। वहा स लौटकर वह जसलमेर गया और अपने भाई लखमन से मेट की तथा जसलमेर मे कई निर्माण काय किय। इ ही दिनो जजराज नामक एक व्यक्ति उमस मिलन आया। यह व्यक्ति भेड बकरियो को पालन का काम करता था। बजरग राठौड नामक एक लुटरा प्राय उसकी भेड बकरिया को लूटकर ल जाता था। उसन चाचक देव को बहुत सी भेड बकरिया मेट म देकर बजरग राठौड स बचान की प्रायना की। जजराय स्वय भी एक नक साहसी व्यक्ति था और उसने सातलमर क प्रसिद्ध यावसायिक नगर को अपने अधिकार मे कर लिया था। चाचक दव न उस आश्वासन दिया कि यदि बजरग फिर स लूटमार करेगा ता वह उस अवश्य सजा दगा। कुछ दिना बाद चाचकदेव जजराज क गाव जा पहुचा। जजराज न पुन बजरग के अत्याचारा का वृत्ता त

सुनाया। तब चाचक ने उसका दमन करने का निश्चय किया। उसने सेता जाति के सरदार सूमर खा से मैत्री कायम की। सूमर खा अपने तीन हजार सवारो के साथ चाचक देव से आ मिला। उन राठौड लुटेरो का यह नियम था कि वे जिस स्थान को लूटने जाते थे, उस स्थान के बाहर बने तालाब से दूरी पर पडाव डालते थे और इस बात की जानकारी प्राप्त करते थे कि उस स्थान के प्रमुख लोग प्रतिदिन बाहर निकलते है अथवा नही। चाचक देव ने अचानक धावा मार कर उन सभी लोगो को ब दी बना लिया। इन ब दियो मे बहुत से महाजन लोग भी थे। उन्होने धन देकर अपनी रिहाई का प्रयास किया पर तु चाचक देव ने कहा कि यदि वे सभी लोग यह स्थान छोडकर जसलमेर म बसने का निश्चय करें तो सभी को रिहा कर दिया जायगा। उन लोगो न उसकी बात को स्वीकार कर लिया और 365 महाजन लोग अपनी धन सम्पत्ति तथा अ य सामान को साथ लेकर जसलमेर म जा बसे। चाचक देव ने उन सभी को देरावल, पुगल, मरोट, जसलमेर आदि अलग अलग नगरो म बसाया। बजरग राठौड के तीन लडको को भी बन्दी बनाया गया था। दोनो छोटे पुत्रो को तो रिहा कर दिया गया परन्तु बडे पुत्र मेरा को उसके पिता के अच्छे आचरण की जमानत के तौर पर बधक बना कर रखा गया। चाचक देव ने सेता वश के सरदार की पोती सोनल देवी से विवाह करने के बाद उसे सम्मान सहित विदा किया। उसके ससुर हैबत खा ने दहेज म पचास घोडे, दो सौ ऊट, चार पालकियाँ और पैंतीस गुलाम दिये।

इस विवाह के दो वष बाद चाचक देव ने पीलबग के राजा वीरराज खोकर पर चढाई की, क्योकि वहा के लोग भाटियो के अस्तबल स एक घोडा चुरा कर ले गये थे। चाचक देव ने पीलबग के राजा को पराजित करके उसकी राजधानी को लूटा। पर तु इस अवसर का लाभ उठाते हुय उसके पुराने शत्रु लगा लोगो न उसके नव अधिकृत नगर दीनापुर पर अधिकार कर लिया। निर तर युद्धो न चाचक देव को कमजोर बना दिया था और वह बीमार पड गया। उसे वृद्धावस्था मे चेचक निकल आई। उसने सोचा कि यदि पलग पर उसकी मृत्यु हुई तो उसे स्वग नही मिलेगा। अत बीमारी की अवस्था मे भी उसने युद्ध म वीरगति प्राप्त करने का निश्चय किया और मुलतान के राजा के पास अपना दूत भेज कर कहलाया कि वह उसे अ तिम बार युद्ध दान" देने की कृपा करे ताकि वह लम्बी बीमारी से मुक्त होकर अपने शत्रु की तलवार से वीरगति प्राप्त कर स्वग जा सके। परन्तु मुलतान के राजा को दूत की बात पर विश्वास नही हुआ और उसने युद्ध न करने का निश्चय किया। तब दूत ने शपथ लेते हुये उसे विश्वास दिलाया कि चाचक देव अपने असाध्य रोग से छुटकारा पाने के लिये ही युद्ध दान माग रहे हैं और वह केवल सात सौ सनिको के साथ ही युद्धभूमि मे आयगा। तब मुलतान के राजा ने उसके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। चाचक देव ने युद्ध म जाने के पूव राज्य की व्यवस्था की। सेता वश की रानी से उत्पन्न गजसिंह को उसकी माता के साथ उसके ननिहाल

भिजवा दिया गया। सोढा वश की रानी लीला से उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुये—वरसल कम्ब्रोह और भीमदेव। चौहान वश की रानी सूरज देवी से दो पुत्र हुये—रत्तू और रणधीर। इन पाचो पुत्रो मे वरसाल सबसे बडा था। अत उसे उसने अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया परन्तु मडाल क्षेत्र को उसमे सम्मिलित नही किया गया। यह क्षेत्र जिसका मुख्यालय देरावल नगर था, को एक स्वत त्र राज्य बना दिया गया और यह राज्य रणधीर को दिया गया। उसके बाद उसने वरसाल और रणधीर—दोनो के राजतिलक किया। वरसाल अपने सत्रह हजार सनिको के साथ केहर (केरोर) चला गया।

इसके बाद अपने जीवन का अ त करने के लिये चाचक देव सात सौ सनिको के साथ दीनापुर की तरफ बढा। वहा पहुचने पर उसे जानकारी मिली कि मुल्तान का राजा चार मील की दूरी पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसे यह जानकर अत्यधिक सतोष हुआ। उसने सभी दैनिक कार्यक्रम निपटाये और फिर इस ससार के बारे म सोचना बद कर दिया। इसके बाद वह युद्धभूमि म पहुचा। दो घटे तक भयकर मारकाट हुई जिसम चाचकदेव अपने सनिको सहित वीरगति को प्राप्त हुआ। मुल्तान का राजा अपनी राजधानी को लौट गया।

देरावल मे जब रणधीर अपने पिता का श्राद्ध कर्म कर रहा था तब उसका भाई कम्बोह शोक विह्वल हो उठा और उसने प्रतिज्ञा की कि वह मुल्तान के राजा से अपने पिता का बदला लेगा। वह उसी दिन एक सेवक के साथ मुल्तान के राजा के शिविर मे गया। इस शिविर के आस पास चारो तरफ बाईस हाथ चौडी एक खाई थी। कम्बोह ने बडी दिलेरी के साथ रात्रि के अधेरे म अपने घोडे पर सवार होकर इस खाई को पार किया और खाई के दूसरी तरफ जाकर अपने घोडे को बाध दिया और फिर घात लगाकर राजा के कम्प मे पहुच गया और बडी सतर्कता के साथ राजा कल्लूशाह के पास जा पहुचा और उसका सिर काट कर चुपचाप वापस देवराल आ गया। वरसल ने आकर दीनापुर पर पुन अपना अधिकार कायम किया और फिर वह वापस अपनी राजधानी को लौट गया। उसके पुराने शत्रु लगाओ ने हैबत खा के नेतृत्व म पुन आक्रमण किया पर तु व परास्त हुय। उनके अनेक लोग मारे गय। इसी समय हुसन खा बलोच ने बीकमपुर पर आक्रमण किया। वह पराजित होकर भाग गया। रावल वरसी जो इन दिना मे जसलमर की गद्दी पर था, राव बरसल से मिलने गया। वह पजाब म अपने सफल अभियान स वापस लौट कर आया ही था। सवत् 1530 (1474 ई०) म बरसल न बीकमपुर के महलो तथा नगर के द्वारो का निर्माण करवाया।

इसके बाद, वहा पर कोई बडा युद्ध नही हुआ और जो झडपें हुइ वे केलण के वशजो तथा पजाब के सरदारो से सबधित थी। इन झडपो म कभी एक पक्ष की

तो कभी दूसरे पक्ष की विजय होती रहती थी । उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य न होने के कारण उनका विवरण देना आवश्यक प्रतीत नही हुआ । केलण के वशज गारा नदी के समीप तक विस्तार और विभाजन करके स्वाधीनता के साथ अपने अपने क्षेत्रो पर शासन करते रहे । इसके कुछ दिना बाद ही बादशाह बाबर न लगाओ स मुल्तान छीन लिया और वहा पर अपना शासक नियुक्त कर दिया । करोट, काट, दीनापुर, पूगल और मरोट के भाटी लोगो ने शायद अपने अपने इलाका पर अपना अधिकार बनाये रखने के स्वाथ से प्रेरित होकर इस्लाम धम स्वीकार कर लिया । भट्ट कवि पूगल शाखा के भाटिया के प्रति इतना अधिक आकषक रहा है कि उसने अपने ग्र थ मे इसी का अधिक वणन किया है ।

वह जैसलमेर की मुख्य शाखा का वणन करते समय रावल बरसी से रावल जेत, लूनकरण, भीम, मनोहर दास स सबल सिंह तक अर्थात् पाच पीढियो का सक्षेप म वणन कर पाया है । वह केवल उनकी सताना का उल्लेख करके सतुष्ट हो गया । सबलसिंह के शासनकाल मे जसलमर की राजनतिक परिस्थितियो मे असाधारण परिवतन शुरू हा गय थे ।

सन्दभ

1 मेवाड के इतिहास से इस घटना की पुष्टि नही होती है ।

2 केहर को किरोहर का दुग भी कहत थ । यह भावलपुर से 44 मील की दूरी पर स्थित था । कि तु अब इसके चि ह नही मिलते हैं ।

अध्याय 54

रावल सबलसिंह से रावल मूलराज

अब हम भाटी इतिहास क उस युग मे प्रवेश करते है जबकि दिल्ली के सिंहासन पर मुगल बादशाह शाहजहा का अधिकार था। पिछले किसी अध्याय म हम अकबर की राजपूत नीति की चर्चा कर आय हैं। उसके उत्तराधिकारियो न उसकी नीति को जारी रखा। रावल सबलसिंह जसलमेर का पहला राजा था जिसने अपने राज्य पर मुगल साम्राज्य के एक करद् राजा की हैसियत स शासन किया। वह जसल की गद्दी का असली अधिकारी नही था। सती होने के पहले विमलादेवी ने जो निर्णय दिया था उसके अनुसार केहर के बाद हमीर के पुत्रो जतसी और लूनकरण को राज्याधिकार मिलना था। पूगल के युद्ध मे दोनो भाई मारे गय। जतसी के कोई लडका नही हुआ। लूनकरण के तीन लडके हुए—हरराज मालदेव और कल्याणदास। हरराज की मृत्यु केहर के जीवन काल म ही हो गई थी। उसके एक लडका हुआ भीम, जो केहर के बाद राजा बना। भीम क बाद उसका लडका नाथू जसलमेर के सिंहासन पर बठा। थोडे दिना बाद वह बीकानर की राजकुमारी से विवाह करने गया और वापसी म जब वह फलौदी म ठहरा हुआ था तो कल्याणदास (लूनकरण का बटा) के बट मनोहरदास न राज्य के लोभ मे उस जहर देकर मार डाला। भतीजे को मारकर मनोहरदास सिंहासन पर बठा। अपनी मृत्यु के पूर्व उसन अपने पुत्र रामच द्र को अपना उत्तराधिकारी बनान का प्रयास किया पर तु यह तय हुआ कि हत्यारे की औलाद को सिंहासन पर न बठाया जाय। तब लूनकरण क मझल बेटे मालदव के पोत दयालदास क बेटे सबलसिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया।

सबलसिंह क चुनाव का एक कारण यह भी था कि रामच द्र स्वभाव से जितना उपद्रवी और अयोग्य था, सबलसिंह उतना ही योग्य और सुशील था। इसक अलावा सबलसिंह आमेर नरेश का भानजा था और उसक अ तगत पेशावर सरकार मे महत्वपूर्ण पद पर काम कर चुका था। एक बार उसने अफगान लुटेरा क धावे स शाही खजान को बचान म महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इस सेवा स प्रस न होकर तथा अ य राजाओ म भी उसकी लोकप्रियता को देखकर बादशाह न जोधपुर नरेश जसव तसिंह को आदेश दिया कि वह सबलसिंह को जसलमेर के सिंहासन पर

बठा दे। जसव तसिंह ने अपने सेनापति नाहरखां[1] को एक सेना क साथ
को जसलमेर भेजा। नाहर ने रामच द्र को सिंहासन से उतार कर
को जैसलमेर के सिंहासन पर बठा दिया। उसकी सेवा स प्रसन्न हाकर सवत
पोकरण का इलाका नाहर खां को दे दिया। तब स पोकरण जोधपुर राज्य
बन गया।

रावल जसल और उसके उत्तराधिकारियो ने जिस जसलमर के विशाल
का निर्माण किया था, उसका विघटन पोकरण दिय जाने के साथ शुरू हो गया
फिर धीरे धीरे उसके इलाक उसक अधिकार से निकलत गये। बाबर के आक्र
पहल जसलमेर राज्य की सीमा उत्तर मे गारा[2] नदी तक थी पश्चिम म महराणा
सिन्धु नदी तक और पूव तथा दक्षिण म बीकानेर तथा मारवाड तक विस्तृत
पिछल दो सौ वर्षों म बीकानर और मारवाड क राज्य जसलमर के अधिकार
गावा को धीरे धीरे हथियाते चले जा रहे थे।

सबलसिंह के बाद उसका पुत्र अमरसिंह सिंहासन पर बठा। उसन
टीका दौड मे बलोचियो क क्षेत्रो पर आक्रमण किया। उसका राजतिलक उसी
भूमि पर सम्पन्न हुआ था। उसन अपनी लडकी के विवाह के लिय प्रजा से धन
करने की चेष्टा की। उसके मन्त्री रघुनाथ न उसके इस काय का विरोध कि
अमरसिंह न मन्त्री को मरवा डाला। थोडे दिनो बाद राज्य क उत्तरी और
क्षेत्रा म चन्ना राजपूतो के अत्याचार फिर से बढने लगे। अमरसिंह ने सेना स
उनके क्षेत्रो पर आक्रमण कर उनका बुरी तरह से दमन किया।

काधलोत राठौडो के आये दिन अतिक्रमण से उत्तेजित होकर जैसलमेर
सरदारो—सुन्दरदास और दलपत ने बदला लेन का निश्चय किया और उन्होंने राठौ
के गावो और नगरा को लूटा और बीकानर की सीमा पर आबाद जाजू नगर
लूटकर आग लगा दी। काधलोतो ने जसलमेर के सीमावर्ती गावो और नगरो
लूट कर बदला लिया। इसी अवसर पर दोनो पक्षा म एक युद्ध भी लडा गया जिस
दो सौ राठौड मारे गय। इस युद्ध मे रावल न भी अपने साम तो का साथ दिया
उन दिनो म बीकानर का राजा अनूपसिंह बादशाही सेना के साथ दक्षिण मे नियु
था। भाटियो के अत्याचारो को सुनकर उसने अपने मन्त्री को आदेश भिजवाया
वह प्रत्येक काधलोत जो शस्त्र धारण करन योग्य हो को राजधानी म उपस्थित हो
के लिए आदेश जारी करने का कहा। उसके आदेश की तामील की गई। देखते ही
देखते हजारो राठौड बीकानर मे आ जुटे। उनकी सहायता के लिये हिसार से पठान
की एक सेना भी बुलवा ली गई। रावल अमरसिंह न भी अपने भाटी सनिको क
एकत्र किया और राठौडो के आक्रमण की प्रतीक्षा न करके वह उनसे लडन के लिये
आगे बढ आया। उसन अनको राठौडा को मौत के घाट उतार दिया सीमावर्ती
गावो और नगरो को लूटा और पूगल को पुन अपने अधिकार म ल लिया तथा

बाडमेर और कोटडा के राठौड सरदारो को पुन अपनी अधीनता मानने के लिये विवश किया।

अमरसिंह के आठ लडके थे और उसके बाद उसका बडा लडका जसवतसिंह सवत् 1758 (1702 ई) म उसका उत्तराधिकारी बना। उसकी लडकी का विवाह मेवाड के युवराज के साथ सम्पन्न हुआ।

अमरसिंह की मृत्यु के कुछ दिनो बाद ही राठौडो ने पूगल, बारमेड, फलौदी और कुछ अन्य नगर जसलमेर से छीन लिय। इन्ही दिनो म शिकारपुर के दाऊदखा ने गारा नदी के आस पास का क्षेत्र छीन लिया।

जसवन्तसिह के पाच लडके थे—जगतसिंह, जिसने आत्महत्या कर ली थी, ईश्वरीसिंह, तेजसिंह, सरदारसिंह और सुलतानसिंह। जगतसिंह के तीन लडके हुए—अखसिंह बुधसिंह और जोरावरसिंह।

अखसिंह उत्तराधिकारी बना। बुधसिंह की चेचक निकल आने से मृत्यु हो गई। अखसिंह के चाचा तेजसिंह ने सिंहासन पर अपना बलात् अधिकार कर लिया। अखसिंह और जोरावरसिंह अपने प्राण बचाकर दिल्ली चले गये। जसवतसिंह का भाई हरिसिंह दिल्ली के बादशाह की सेवा म था। दोनो भाइयो न जाकर उसी की शरण ली। हरिसिंह अपहरणकर्त्ता को सिंहासन से हटाने के लिये जसलमेर लौटा। जसलमर के राजा के लिय यह सामान्य नियम था कि वह वष के अन्तिम दिन अपने सामन्तो तथा अन्य लोगो के साथ घडसीसर की सफाई के लिये वहा जाता था और वहा पहुच कर सफाई अभियान का उद्घाटन करता था। हरिसिंह ने इसी अवसर को तेजसिंह पर आक्रमण करने के लिये चुना। उसका प्रयास यद्यपि पूरी तरह से सफल नही रहा पर तु तेजसिंह गम्भीर रूप से घायल हो गया और कुछ दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गई।

तेजसिंह की मृत्यु के बाद उसके तीन वर्षीय पुत्र सवाईसिंह को सिंहासन पर बठाया गया। अखसिंह ने तमाम भाटी सरदारो को एकत्र किया, दुग पर चढाइ की शिशु राजा को मौत के घाट उतार कर अपने उत्तराधिकार को पुन प्राप्त किया। उसन चालीस वष तक शासन किया। उसके शासनकाल म दाऊदखा के लडके भावल खा ने आक्रमण करके खडाल नगर तथा उसके आसपास क क्षेत्र, जोकि भाटियो की प्रथम विजय थी, को जीतकर अपने नवनिर्मित भावलपुर म सम्मिलित कर लिया।

सवत् 1818 (1762 ई०) म मूलराज सिंहासन पर बठा। उसके तीन लडके थे—रायसिंह जतसिंह और मानसिंह। मूलराज ने एक अनुचित व्यक्ति को

अपना प्रधान मन्त्री चुना जिसन भाटी राजवश का सभी प्रकार से सत्यानाश डाला । यह व्यक्ति था जन सम्प्रदाय ग्रार महता परिवार का स्वरूपसिह । वह ज के पुत्रा का भाग्य विधाता वन वठा । व्यवसायी वग के इस व्यक्ति के मन म सरदारो के प्रति घृणा और वदल की भावना का कारण एक भगतण के का उत्पन्न हुआ था । वह जिस भगतण को प्यार करता था वह सरदारसिह नाम क राजपूत से प्यार करती था । सरदारसिह न म त्री की शिकायत युवराज रायसिह की । युवराज भी म त्री से नाराज था क्योकि म त्री न उसके जब खच म भारी क कर दी थी । युवराज को सुझाव दिया गया कि इस मन्त्री को समाप्त कर दि जाय । एक दिन रायसिह न भर दरबार म अपनी म्यान स तलवार निकाली । म ने सुरक्षा क लिये रावल मूलराज की तरफ देखा । तभी युवराज न मन्त्री का सि काट डाला । सामन्तो का मालूम था कि म त्री स्वरूपसिह क अत्याचारो का मू कारण रावल मूलराज ही है । अत उस समय मूलराज का भी समाप्त करन विचार किया गया । पर तु युवराज न उस समय इसे स्वीकार नही किया और मूल राज दरबार से भागकर रानियो क महल म चला गया । साम तो को भय हुआ कि रावल मूलराज अब उनसे बदला लेगा, अत उन्होने युवराज पर दबाव डाला कि व सिंहासन पर बैठ जाय अन्यथा उसक भाई को सिंहासन पर वठा दिया जायगा । ऐसी स्थिति म युवराज ने शासन भार सम्भालना स्वीकार कर लिया । मूलराज को क कर लिया गया । इस घटना को तीन महीने और चार दिन बीत गये । तभी एक स्त्री न मूलराज को कद से रिहा करवा दिया । यह स्त्री युवराज के मुख्य सलाहकार और षडयन्त्रकारी सरदार अनूपसिह की पत्नी थी । उसन राठौड वश की माहचा शाखा म ज म लिया था और जसलमर के प्रमुख ठिकान जिजियालो के सरदार अनूपसिह की पत्नी थी । वह मूलराज की रिहाई के लिए इतनी अधिक उत्सुक क्या थी इसका कोई स्पष्ट उत्तर हमे नही मिलता सिवाय उसका राजभक्ति के और वह यह काम अपन पति के जीवन को नष्ट करक भी पूरा करना चाहती थी। उसने अपन पुत्र जोरावरसिह का इस काम का दायित्व सापत समय कहा बटा तुम्ह किसी भी प्रकार से रावल मूलराज का कद से छुडाना है और इस काय म यदि तुम्हार पिता बाधक बने ता तुम उनकी परवाह मत करना और यदि किसी प्रकार का सकट दिखे तो अपन पिता को भी मार डालना । यदि ऐसा हुआ ता म तुम्हारे पिता के साथ चिता म बठू गी और सती हो जाऊगी ।' जोरावरसिह न माता का आदेश स्वीकार किया । उस स्त्री के कहने पर उसका देवर अजुनसिह और वारू के सरदार मेघसिह ने भी इस काय मे सहयोग देना स्वीकार कर लिया । तीनो अपने सनिको के साथ उस स्थान पर जा पहुँचे जहा उनका रावल कद करक रखा गया था । पहरदारो का मार कर वे मूलराज क पास जा पहुचे पर तु किसी अ य सकट की सभावना से मूलराज न उनक साथ चलन स इन्कार कर दिया । परन्तु जब उस बताया गया कि उसकी मुक्ति की योजना माहची न बनाई है तो वह उनक साथ कदखान से बाहर आ

गया। नगाडो की जोरदार ग्रावाज के साथ मूलराज के पुन सिंहासन पर बठने की घोषणा की गई। उस समय युवराज सो रहा था। नगाडो की ग्रावाज से वह जाग उठा। तभी एक राज कमचारी न उसे देश निवासन की सजा सुनाते हुए कहा कि ग्रापक लिय काला घोडा तयार है।[3] युवराज के लिये काले वस्त्र भी पहुचा दिय गये जिन्हे पहनकर काले घोडे पर सवार होकर युवराज राज्य की दक्षिणी सीमा के ग्र त मे कोटरा नामक स्थान की तरफ चल पडा। जब वह इस नगर को पहुचा तो उसके साथियो न उस नगर को लूटन का प्रस्ताव रखा। इस पर युवराज ने कहा कि राज्य की समस्त भूमि हमारी जननी है। जो हमारी ज म भूमि पर ग्रत्याचार करेगा वह हमारा शत्रु होगा।' इसके बाद युवराज तो जोधपुर की तरफ चला गया परन्तु उसके साथी सरदार शिव, कोटारो ग्रौर बाडमेर मे बस गये ग्रौर लूटमार करने लग। कभी कभी तो वे जसलमेर तक धावे मारने लगे। बारह वष बाद जब उ होने लूटमार न करने की शपथ ली तब उन्हे उनकी जागीरें वापस लौटा दी गई।

निर्वासित युवराज ढाई वष तक जोधपुर के राजा विजयसिंह के पास रहा। विजयसिंह ने उसे ग्रपने पुत्र क समान रखा। पर तु युवराज ग्रपने उग्र स्वभाव को न त्याग पाया था। एक दिन जब वह घोडे पर सवार होकर शिकार के लिये जा रहा था एक बनिये जिससे उसन कज ले रखा था ने घोडे की लगाम पकड कर विजयसिंह की ग्रान की दुहाई देते हुय ग्रपने रुपयो की माग की। प्रत्युत्तर मे युवराज न मूलराज की शपथ दिलाते हुये बनिय से लगाम छोड देने की ग्रपील की। पर तु उस धनी बनिये ने कहा कि उसके लिए मूलराज कोई महत्त्व नही रखता। यह उसका ग्र तिम शब्द था। युवराज की तलवार स बनिय का सिर कट कर जमीन पर लोटने लगा। इसक बाद युवराज न यह कहते हुय कि दूसरे राज्य म सम्मानपूवक रहन की ग्रपक्षा ग्रपन राज्य म गुलाम होकर रहना भी ग्रच्छा है' जसलमर का माग पकडा। उसक इस ग्रचानक ग्रागमन न सारे शहर म कुतुहल पदा कर दिया ग्रौर सकडो लोग उस देखन के लिय जसलमर नगर क बाहर ग्रा जुटे। उसके पिता रावल मूलराज न ग्रपना कमचारी भेजकर उससे जानकारी प्राप्त की कि उसक ग्रान का क्या प्रयोजन है। युवराज ने कहला भेजा कि वह तीथ यात्रा को जा रहा है, इसलिये ग्रपनी ज मभूमि का दशन करन को चला ग्राया है। पर तु उस शहर म प्रवेश करने की ग्रनुमति नही दी गई। उसके सनिको को नि शस्त्र कर दिया गया ग्रौर उसे ग्रपने पुत्रा—ग्रभयसिंह ग्रौर धोकलसिंह तथा परिवार के ग्र य सदस्यो के साथ देवा के दुग म रहन क लिये भेज दिया गया।

सालिमसिंह जो ग्रपन पिता स्वरूपसिंह के बाद राज्य का प्रधानमत्री बना, उस समय कवल ग्यारह वष का था। उस समय भी उसका किशोर मस्तिष्क बदल की भावना स ग्रोत प्रोत था। राज्य म जो लोग उसके पिता के विरोधी रहे थ उन सभी क परिवारो क प्रति उसका व्यवहार प्रतिशोधात्मक रहा। राजपूतो के योग्य

पराक्रम न होते हुए भी उसमे अनेक प्रकार की कठोर वृत्तियाँ थी । प्रधानमन्त्री हैसियत से उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे । उसका शरीर और स्वरूप द मे अच्छा लगता था । उसने बडी बुद्धिमत्ता के साथ अपना प्रतिशोध लिया । यद्य वह जैनी था परन्तु उसके स्वभाव की क्रूरता पर जैन धर्म का कोई प्रभाव न था । जैन धर्म के अनुसार रात्रि मे दीपक न जलाना चाहिए क्योंकि उससे का पतंगे के जलने की आशंका रहती है । सालिमसिंह जैन धर्म के इन नियमो का पाल करता था परन्तु मनुष्य के साथ क्रूर व्यवहार करने तथा उनको पीडा पहुचान वह तनिक भी सकोच न करता था । बाहरी जातियो के आक्रमण से जैसलमेर भाटी लोगो का उतना संहार नही हुआ था जितना सर्वनाश सालिमसिंह के मन्त्रि काल मे इस राज्य के लोगो का हुआ । युवराज रायसिंह के निर्वासन के समय ज सामन्त उसके साथ राज्य छोडकर चले गये थे, वे सब वापस लौट आये थे । ए घटना के परिणामस्वरूप उन्हे अपनी जागीरें भी वापस मिल गई ।

मारवाड के राजा विजयसिंह की मृत्यु के बाद भीमसिंह सिंहासन पर बैठा उसके राज्याभिषेक के समय रावल मूलराज ने सालिमसिंह को अपना प्रतिनिधि बना कर बधाई देने को भेजा । मारवाड से जब वह वापस जैसलमेर लौट रहा था तो रास्ते मे लुटेरे सामन्तो ने उसे बन्दी बना लिया और उन्होने अपने दुःखो का जड़ सालिमसिंह को मार डालने का निर्णय किया । उसकी गरदन काटने के लिए ज्यो ही तलवार हवा मे उठी उसने अपनी पगडी उतारकर जोरावरसिंह के चरणो मे रख दी और जीवन की भीख मागी, जो कि उसे मिल गई । यह है एक राजपूत का चरित्र । जिसने अपनी माता के आदेश से पिता के विरोध की परवाह न करके रावल मूलराज को कैद से रिहा करवा करके सिंहासन पर बैठाया था, उसी जोरावर सिंह को दुष्ट सालिमसिंह के अत्याचारो का शिकार बनकर राज्य से निर्वासित होना पडा था । उसी जोरावरसिंह ने यदि उसको न बचाया होता तो उसके साथी सरदारो ने उसे मार दिया होता । केवल एक ही शर्त रखी गई—निर्वासित सरदारो को उनकी जागीरे वापस लौटाना । सालिमसिंह ने उन सभी की जागीरे वापस कर दी परन्तु जोरावरसिंह के अलावा अन्य किसी को दरबार मे उपस्थित होने की अनुमति नही दी गई ।

युवराज रायसिंह को जब देवा के दुर्ग मे भेजा गया था तब उसके लडके अभयसिंह और धोकलसिंह निर्वासित सामन्तो के साथ बाडमेर मे थे ।[4] रावल मूलराज ने अपने दूत को पोतो को लाने के लिए भेजा परन्तु सामन्तो ने उन्हे भेजने से मना कर दिया । इस पर रावल ने सेना तैयार की और बाडमेर को घेर लिया । 6 महीने तक सामन्तो ने दुर्ग की रक्षा की । अन्त मे, उन्हे आत्म समर्पण करना पडा । जोरावरसिंह के आश्वासन देने पर उन्होने दोनो राजकुमारो को सौप दिया जिन्हे उनके पिता के पास देवा दुर्ग भिजवा दिया गया । कुछ दिनो बाद दुर्ग मे

अचानक आग लग गई जिसम युवराज रायसिह और उसकी पत्नी जल कर मर गय परन्तु दोनो राजकुमार बच गये। अब उ ह मरूभूमि के अ तिम छोर पर स्थित रामगढ के दुग म ब दी बनाकर रखा गया। महता सालिमसिह न रावल मूलराज को समझाया कि उसकी अपनी सुरक्षा तथा राजकुमारा की सुरक्षा के लिय ऐसा करना जरूरी है। क्योकि राज्य के साम त कभी भी उनके नाम पर विद्रोह कर सकते हैं। जोरावरसिह को मन्त्री के इराद अच्छे नही लग। अत उसन रावल से कहा कि भावी उत्तराधिकारी का स्थान दरबार म होना चाहिय और उसन राजकुमारो क सम्मान का वचन दिया है। महता के लिये इतना ही पर्याप्त था और उसने ऐसे खतरनाक सलाहकार से छुटकारा पाने का निश्चय किया। जारावरसिह के एक भाई था–खेतमी। उसकी पत्नी को सालिमसिह ने अपनी धम बहिन बना रखा था। सालिमसिह ने उसे बुलाकर कहा कि उसकी इच्छा खेतसी को राज्य का प्रधान साम त बनान की है। क्या वह इस बात को पसन्द करेगी ? प्रलोभन सफल रहा। महता न अपनी बहिन को जहर की पुडिया देकर कहा कि वह इस जोरावरसिह के भोजन म मिला द। ऐसा ही किया गया और जोरावरसिह स्वग सिधार गया। खेतसी को जिजियाली का प्रधान साम त बना दिया गया। जारावरसिह के मर जान पर सालिमसिह का किसी का भय न रहा और उसने इसी तरीक से अथवा कटार की सहायता से बारू डागरी तथा कुछ अ य साम ता को मरवा डाला। खेतसी का अपने भाई जोरावरसिह की हत्या म कोइ हाथ न था। वह राज्य का प्रधान साम त बन गया। इस कारण अन्य साम ता क हिता की रक्षा का कत य भी उस पर आ पडा। कतव्यपालन की इस भावना क कारण सालिमसिह क साथ उसका विवाद उठ खडा हुआ। विवाद का तात्कालिक कारण इस प्रकार था—म त्री रायसिह क लडको को उत्तराधिकार से वचित करके रावल मूलराज के सबसे छोटे पुत्र के पुत्र गजसिह का उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। खेतमी न इसका विरोध किया क्योकि एसा तभी हो सकता था जबकि रायसिह क लडका को मार दिया जाय। अत उसने म त्री को स्पष्ट कह दिया कि अपन राजा क परिवार क किसी व्यक्ति का खून बहान म वह सहायक नही बन सकता। सालिमसिह ने उस समय ता किसी प्रकार की अप्रस नता प्रदर्शित नही को पर तु उसन अपनी इच्छा का विराध करन वाल को सजा देने का निश्चय कर लिया। कुछ दिनो बाद खेतसी और उसका भाई सरूप बालोतरा न निकट कुनिया गाव म एक विवाह स वापस लौट रहे थ कि जमलमर की सीमा पर बिजौरिया नामक स्थान पर म त्री के आदमियो ने उ ह बन्दी बना लिया और एक दुग म ले गय जहा से खेतसी और उसक भाई की लाशे ही अ तिम सस्कार के लिये बाहर लाई गइ। खेतसी की पत्नी को जब यह पता चला तो वह अपन पुत्र को साथ लकर अपने धमभाई म त्री सालिमसिह के यहा आश्रय लन जा पहुँची। पाच दिन तक वह वहा रही और जब भोजन लाने वाले सेवक स उस पता चला कि म त्री ने ही उसके पति और देवर का मरवा डाला है ता उस स्त्री न इसका बदला लन का विचार प्रकट

किया । सालिमसिंह का जब उसके इरादे का पता चला था तो उसने ग्र
बहिन को भी मरवा डाला । उसे ऐसा करते हुये किसी प्रकार का सकोच

खेतसी की मृत्यु के बाद रामगढ म ब दी बनाकर रखे गये राजकु
अभयसिंह और धोकलसिंह को उनकी पत्नियो और छोटे बच्चा सहित ज
मार दिया गया । इसके बाद हत्यारे म त्री न मूलराज के छोटे पौत्र गज
उत्तराधिकारी घोषित करवा दिया । गजसिंह के दूसरे बडे भाई अपने प्र
बचाने के लिये बीकानेर भाग आये और वही बस गये ।

मूलराज के तीन लडके थे–रायसिंह जतसिंह और मानसिंह । जतसि
था[5], अत वह सिंहासन पर नही बठ सकता था । मानसिंह की घोडे से ि
मृत्यु हो गई और म त्री एक और हत्या के दोष से बच गया । रायसिंह के दोनो
को जहर देकर मार दिया गया था । जतसिंह के एक लडका हुआ–महासिंह ।
अपने बाप की भाति काना था । अत उसके उत्तराधिकारी बनने का भी
था । मानसिंह के पाच लडके थे–तेजसिंह देवीसिंह, गजसिंह कसरीसि
फत्तेसिंह । गजसिंह के अलावा अन्य सभी को राज्य से निर्वासित कर दिया गय

यह एक महत्त्वपूर्ण सत्य है कि राजवाडा म उन शासको ने लम्बे सम
शासन किया जिनके अधिकार मन्त्रियो न हडप लिये थे । कोटा के स्वर्गीय म
ने लगभग पचास वप तक शासन किया और रावल मूलराज ने भी जसल
सिहासन पर बठ कर अट्ठावन वप तक शासन किया । उसके पिता ने भी च
वप तक शासन किया और हम ऐसा कोई अ य उदाहरण नही मिलता जहाँ
पुत्र ने मिलकर एक सदी तक शासन किया हो । मूलराज के दादा जसवन्तसि
समय मे जसलमेर राज्य की उत्तरी सीमा गारा नदी तक और पश्चिम म पचनद
फली हुई थी । पर तु धीरे धीरे बहुत से इलाके इस राज्य के हाथ से जात
राज्य की राजनतिक परिस्थितिया जितनी कमजोर होती गइ सिंहासन पर
वाले राजाओ ने उतनी ही अयोग्यता और कायरता का परिचय दिया । उनमे श
की शक्तियो का पूर्ण अभाव था । यही इस राज्य के पतन का कारण भी बना ।

सन्दभ

1 नाहरखा के पराक्रम का विस्तृत विवरण मारवाड के इतिहास म किया
चुका है ।

2 गारा नदी व्यास और सतलज से बनी है । इसके पानी म गारे की मा
अधिक होने से इसे गारा कहा जाता है ।

3 राजकुमारो को देश निर्वासन की सजा जब दी जाती थी तो उन्हे काले वस्त्रो तथा काले घोडे पर बैठकर राजधानी से बाहर जाना पडता था । इस प्रकार की प्रथा अय राज्यो म भी प्रचलित थी ।

4 टाड ने पिछले पृष्ठ म लिखा है कि रायसिंह को अपने पुत्रो के साथ देवा दुग म भिजवा दिया गया । यहा वे लिखते हैं कि वे बाडमेर म रहते थे । पहला कथन असत्य प्रतीत होता है ।

5 हिन्दू नियमो के अनुसार काने व्यक्ति को सिंहासन पर बठाना निषिद्ध है । परन्तु ऐसा शायद जन्म से ही काने व्यक्ति के लिये रहा हो । क्योकि एक आख वाले कुछ लोग सिंहासन पर बठे थे । इसके प्रमाण मिलते ह ।

अध्याय 55

अंग्रेजो के साथ संधि रावल गजसिंह

वि संवत् 1818 म रावल मूलराज जसलमेर के सिंहासन पर बठे थ और 1818 ई मे ईस्ट इडिया कम्पनी और रावल मूलराज के मध्य चिरस्थाई मित्रता, सं ध सम्ब ध और समान हितो वाली संधि सम्पन्न की गई थी।[1] संधि के अ तगत महारावल और उसक उत्तराधिकारियो न ब्रिटिश सरकार के साथ अधीनस्थ सहयोग करन तथा उसकी सर्वोच्च सत्ता को मानना स्वीकार किया था। रावल मूलराज का यह अ तिम महत्वपूर्ण काम था। वह अपन जीवनभर अपन मन्त्रियो—पहले स्वरूपसिंह का और बाद म सालिमसिंह के हाथो मे खिलौना बना रहा। 1820 ई म उसका स्वगवास हो गया। उसके बाद उसके पौत गजसिंह को महारावल घोषित कर दिया गया।

रावल गजसिंह अपन विगत जीवन क अनुभवो एका तवास और अपनी आखो के सामन घटित होन वाली घटनाओ के कारण उस साचे म ढल गया जसा कि सालिमसिंह चाहता था। सालिमसिंह न बचपन से ही उसे दूसरे लोगो से एकान्त म रखा था, किसी भी व्यक्ति को उसके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति न थी। वह हर समय मन्त्री के खास लोगो से घिरा रहता था और वे लोग हर समय मन्त्री क हित की बात करते थे और उसकी प्रतिक्रिया मन्त्री को बताते रहते थ। राजा, उसकी पत्निया और परिवार प्रत्येक वस्तु के लिय म न्त्री की कृपा पर निभर थ और यह कृपा कभी कभी ही नसीब मे लिखी होती थी। सक्षेप म, उस म न्त्री की इच्छानुसार चलना पडता था।

उपरोक्त सं ध की तारीख (दिसम्बर, 1818) स ज्ञात होगा कि ब्रिटिश सरकार द्वारा अपन सरक्षण मे लिय जान वाले राज्यो म से जसलमेर अ तिम राज्य था। इस विलम्ब का एक कारण इसका देश के दूरवर्ती भाग मे स्थित होना था। दूसरा कारण वहा क प्रधानमन्त्री द्वारा संधिवार्ता को लम्बा खीचना था। उस यह भय था कि संधि हो जाने के बाद उसकी सत्ता सुरक्षित नही रहेगी पर तु जसलमर को ब्रिटिश सरक्षण न मिलन पर यह राज्य अलग थलग पड जायगा, इस तथ्य म प्रभावित होकर उसे संधि करने के लिये विवश हो जाना पडा। संधि की तीसरी धारा—राज्य पर बाहर से किसी के आक्रमण करन पर अंग्रेजी सना जसलमर की सहायता

करेगी ' न वाह्य ग्राक्रमण से उसके भय को दूर कर दिया। क्योकि उसे हर समय यह भय बना रहता था कि गजसिह के जो भाई राज्य छोडकर चले गये है, वे किसी भी दिन सगठित होकर राज्य पर ग्राक्रमण कर सकते थे। इस सधि से उसे विश्वास हो गया कि यह उसके ग्रधिकारो ग्रौर ग्रत्याचारो का रोकने की बजाय उसकी सत्ता का समथन करगी। परतु ब्रिटिश सरकार सधि करते समय किस नीति से प्रभावित थी पहले उस पर भी विचार करना उचित होगा।

इस सधि की ग्रसमानता स्वत ही स्पष्ट है, दोनो पक्ष जिस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते थे वह भी एक समान न था। जसलमेर को इस सधि से जो तात्कालिक लाभ हुय व बहुत ग्रधिक महत्वपूण थ। जिस दिन सधि हुई उस समय के बाद वह ग्रपनी स्वतत्रता को पचास वर्षो तक भी कायम रख पाता ग्रथवा नही, यह कहना कठिन ह। उसकी शक्तिया दिन-प्रतिदिन निबल होती जा रही थी ग्रौर एक शासक से दूसर शासक के समय म इसकी सीमायें सिकुडती जा रही थी। ग्रब उसम उसकी केवल राजधानी दिखायी देती थी। राज्य क समस्त उत्तरी गावो ग्रौर नगरो को लेकर भावलपुर का राज्य बन गया था ग्रौर सिध बीकानेर तथा मारवाड क राज्य लगातार जसलमेर के नगरो पर ग्रधिकार करते हुय चले जा रहे थ। ग्रब जबकि ब्रिटिश सरकार न जसलमेर राज्य की सुरक्षा का वचन दे दिया तो सिधियो दाऊद पुत्रो ग्रौर राठौडो क ग्रतिक्रमण का कोई भय नही रहा। इस प्रकार का ग्राश्वासन न भी दिया जाता यदि ब्रिटिश सरकार ने ग्रपने सम्पर्को को बढाने की दिशा मे एक कदम ग्रागे न बढाया होता। इस सधि क परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार सिध ग्रौर सिधु के उस पार के लोगो के सम्पक—उनके विरोध म ग्रा खडी हुई। मारवाड ग्रौर बीकानेर पहले से ही ब्रिटिश सरकार क साथ सधिया कर चुके थे, ग्रत उनक साथ भाटियो के विवाद को निपटाने म कोई खास कठिनाई न थी, परतु दाऊद पुत्रो के साथ ब्रिटिश सरकार के किसी प्रकार के राजनतिक सम्बध न थ ग्रौर सिध के साथ भी कवल ग्रापसी सद्व्यवहार था। ग्रब यदि भाटिया ग्रौर उसके इन पडौसियो क मध्य युद्ध होता है तो ब्रिटिश सरकार पर सिधु के उस पार युद्ध करने का दायित्व ग्रा गया था।

मरूभूमि क इस राज्य की सुरक्षा का दायित्व लकर ब्रिटिश सरकार को क्या मिला? यदि हम सरक्षण की उसकी प्राथना को ठुकरा देते राजपूताना म उसे ग्रकेला छोड देते तो उसका ग्रथ होता उस राज्य को उसक विभिन्न शत्रुग्रो के लिय छोड देना ग्रौर लूटमार तथा मारकाट की प्रवृत्तियो को छूट देना, इस प्रकार की प्रवृत्तियो को रोकने की दृष्टि से ही राजपूत राज्यो क साथ सधिया की गइ थी। यदि सधि न की गई होती तो भाटी लोग लुटेरो क एक राज्य के नागरिक बन जाते। एक समय था जबकि जसलमेर गगा से सिधु क मध्यवर्ती व्यापार वाणिज्य की एक महत्वपूण कडी था। परतु ग्रापसी फूट, ईर्ष्या ग्रौर ग्रराजकता ने उसक इस वैभव को पूरी तरह से छिन्न भिन्न कर दिया। परतु शाति ग्रौर व्यवस्था की स्थापना क

बाद इस समृद्धि के लौटन की सभावना थी। जसलमेर के साथ सधि करने म यह उद्देश्य भी एक महत्वपूण तथ्य था। पर तु यदि हम आने वाले समय म भारत पर किसी बाह्य आक्रमण की कल्पना करें ता सभावित आक्रमण फारस की तरफ से ही हा सकता है और सि धु की घाटी मुख्य युद्धक्षेत्र बन सकता है। इस स्थिति म यदि जसलमेर पर हमारा नियत्रण रहे ता युद्ध सचालन के लिय हमारे लिये यह एक महत्वपूण बात होगी। यदि रूसी सकट उपस्थित होता है तो वह भी काबुल के मार्ग से ही सभव होगा। ऐसी स्थिति म जसलमेर राज्य के साथ स धि करना बहुत ही उचित था।

इस सधि ने अत्याचारी मत्री के अधिकारो को जो आश्रय दिया और उसने जिस प्रकार से उनका दुरुपयोग किया– उसको शब्दा म व्यक्त करना सभव नही है। इससे हमारी सधि व्यवस्था की कमजोरी भी प्रकट होती है। मेहता को शीघ्र ही सधि के लाभ ज्ञात हो गये सधि के बाद कुछ दिनो तक उसने दिखावे के लिये प्रजा के साथ सहानुभूति प्रकट करने की चेष्टा की। लेकिन प्रजा को उसका रत्ती भर भी विश्वास न था। सालिमसिंह भी इस सत्य से परिचित था। अत अब वह खुलकर लोगो पर अत्याचार करने लगा। उसकी प्रारम्भिक सहानुभूति का ध्येय अपने बाद अपने उत्तराधिकारी को राज्य की प्रधानम त्री बनाना था। इ ही दिनो म उसने ईस्ट इडिया कम्पनी के सम्मुख इस प्रकार का एक प्रस्ताव भी रखा। पर तु उसे सफलता न मिली क्योकि अग्रेज अधिकारियो से उसके काले कारनामे छिपे न थे। अपने प्रयास मे असफल होन के बाद मेहता ने राज्य म अपनी भयानक क्रूरता आरम्भ की। उसके निष्ठुर कार्यो से अप्रसन्न होकर 17 दिसम्बर, 1818 ई को अग्रेज दूत ने अपनी सरकार को रिपोट प्रस्तुत करते हुये लिखा कि "सधि के बाद जसलमेर म जो निष्ठुर परिस्थितिया उत्पन्न हुई हैं, व हमारी सधि के लिये अपमानजनक हैं। प्रधान मत्री से इस बारे म अनेक बार प्राथनायें की गयी है, पर तु सभी निष्फल रही हैं। वह अपनी यायप्रियता और दयालुता का ऊचे स्वर म वणन करता है। पर तु प्राथनाओ के बाद उसने अपनी पशाचिकता का पहल की अपेक्षा कई गुना बढा दिया है। उसके अत्याचारो से राज्य के सभी लोगो म त्राहि मची हुई है। इस राज्य की प्रजा के साथ समस्त राजस्थान के राज्यो की सहानुभूति है। जसलमर के व्यवसायी जो पाली वालो से कज लेकर व्यवसाय करत हैं सम्पूण भारत म फल हुये हैं। पाच हजार परिवारो वाली यह व्यावसायिक जाति राज्य से निर्वासित हो चुकी है। जो बनिये और महाजन व्यवसाय के लिय बाहर जाते हैं, वे वापस राज्य म लौटन म घबराते हैं। खेती भी चौपट हो गइ है क्योकि राज्य म उसकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नही है। कृषको से भूमिकर बलात् वसूल किया जाता है। लोगो का यह अनुमान सही है कि पिछले वर्षों म सालिमसिंह न लगभग दो करोड रुपया की धन सम्पत्ति अर्जित की है और उससे दूसरे राज्यो म जायदादें खरीदी हैं। यह धनसम्पत्ति उसने लूट खसोट और क्रूरता के साथ एकत्र की है। राज्य के सभी सभ्रा त परिवारो

ने कम्पनी सरकार के पास प्रार्थनापत्र भेजकर यह याचना की है कि उन्हे अपने परिवारा सहित सुरक्षित अवस्था म राज्य से जान दिया जाय।"

हम जसलमर के इतिहास का वृत्तान्त उसके सीमावर्ती क्षेत्र मे उत्पन्न विवाद के उल्लेख के साथ ही समाप्त कर देंगे। सधियो के अनुसार राज्या म झगडे पदा हाने की स्थिति म कम्पनी सरकार ने मध्यस्थ बनकर निर्णय करने का आश्वासन दिया था। इ ही दिनो म जसलमर की सीमा पर सघप पदा हुआ और उसके फल-स्वरूप युद्ध की सभावना बढ गई। तब ईस्ट इडिया कम्पनी को मध्यस्थ बनना पडा। यह सघप बारू राज्य के मालदेवोत लोगा से सम्ब ध रखता था। मालदेवोत भाटी वश क है पर तु लूटमार की नीति अपनाने के कारण कज्जाक और पिंडारियो की भाति वे भी लुटरा के रूप म विख्यात हो गये थ। बारू राज्य खारी पट्टा के समीप है। बीकानर के राठौडो न भाटी लागा से खारी पट्टा का लकर अपने अधिकार म कर लिया था। राठौडो और भाटी लोगा क विवाद का मूल कारण राठौडा द्वारा भाटियो के अनेक स्थाना को अपन अधिकार म लना था। ये घटनाए पच्चीस वष पूव घटित हुई थी। उस समय राठौडा न बारू राज्य पर आक्रमण कर भाटी लागो का नर सहार किया था और उनके गावा तथा नगरो को लूटकर उजाड दिया। जो भाटी लोग उस नरसहार से बच निकल वे मरुभूमि के एक दूरवर्ती क्षेत्र मे जाकर रहने लगे।

धीर धीर इस घटना क बाद बहुत वष व्यतीत हो गये। भाटी लोग जिस क्षेत्र मे जाकर बसे थे वहा उनका वशवृक्ष फलन फूलन लगा। ईस्ट इडिया कम्पनी के साथ जसलमेर की सधि हो जाने के बाद वे भाटी लोग पुन अपन प्राचीन नगरो म आकर बसने लगे। प्रधानम त्री सालिमसिंह को जब इसकी जानकारी मिली तो वह भाटी लोगा पर बहुत क्रोधित हुआ और उनका विनाश करन के लिये उसने राठौडा स विचार विमश किया। सालिमसिंह न जिन दिना म भाटी सरदारो का सहार किया था, उनमे बारू का सरदार भी मारा गया था। बारू का राजकुमार सरदार युवराज रायसिंह का समथक था और कइ बार उसन रायसिंह की सहायता भी की थी। सालिमसिंह को यह पस द न आया और उसन उसको भी मरवा डाला। सालिमसिंह की यह शत्रुता बारू राज्य के प्रत्येक नागरिक के साथ पदा हा गई थी। सालिमसिंह उन लोगा के सवनाश के अवसर का प्रतीक्षा म था। शीघ्र ही उस अवसर मिल गया। पशवा और ईस्ट इडिया कम्पनी क युद्ध क दिनो म पशवा का एक कमचारी ऊट खरीदन क लिये जसलमर आया और उसन चार सा ऊट खरीदे। इन ऊटा को लकर जब वह बीकानर की सीमा म पहुचा तो मालदेवोत लागा न पशवा के आदमी पर आक्रमण किया और उन सभी ऊटो को अपने अधिकार म करके बारू ले गये। इस समाचार को सुनकर बीकानर क राजा न भाटियो का सजा दने के लिये अपनी सेना मालदेवात लागा के विरुद्ध भज दी। इस अवसर पर सालिमसिंह न बीकानेर के राजा का उकसान का काम किया था। अ यथा बीकानर का राजा अपनी

सेना न भेजता। परन्तु सालिमसिंह महाधूत व्यक्ति था। उसने छिपे तौर पर बीकानेर की कार्यवाही का समर्थन किया परन्तु दिखावे के तौर पर वह इस झगड़ा का निपटाने की कोशिश करता रहा। बीकानेर की सेना ने मालदेवोत लोगो के नोखा और बारू मे भयकर उत्पात मचाया। दोनो नगरो को भूमिसात कर दिया गया। वहा के साम त को मार डाला और उस क्षेत्र के सभी कुओ को ब द करवा दिया गया। इसके बाद बीकानेर की विजयी सेना बीकमपुर की तरफ बढी और जसलमेर के कई खालसा गावो को बर्बाद कर दिया। अब सालिमसिंह को अनुभव हुआ कि उसने गलत निशाना लगाया था। अत उसने कम्पनी सरकार से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की। ब्रिटिश सरकार ने तत्काल कार्यवाही की। बीकानेर वालो ने उसके आदेश का पालन किया और बीकानेर का सेनापति अपनी सेना सहित वापस अपने राज्य की सीमा म चला गया। सालिमसिंह बारू के साम त के प्राण लेने म सफल रहा।

सालिमसिंह की करतूतो का उल्लेख करते करते हम जसलमेर के रावल को भुला बठे। रावल मूलराज के बाद गजसिंह जसलमेर के सिंहासन पर बठा। उसके भाइयो ने बीकानेर जाकर अपने प्राणो की रक्षा की। सालिमसिंह के उद्देश्यों एव स्वार्थों की पूर्ति की दृष्टि से वह अच्छा शासक है। उसे अपने खाने पीने तथा घाडो के अलावा और किसी प्रकार की आकाक्षा नही है। वह मन्त्री के हाथ का खिलौना मात्र है। सालिमसिंह उसे नाना उपायो से प्रसन्न रखने का प्रयास करता है। उसके प्रयासो से मेवाड के राणा ने अपनी दूसरी पुत्री के विवाह के लिये जसलमेर के राजा के पास और अपनी एक अ य पुत्री तथा पोती के लिय क्रमश बीकानेर और किशनगढ के राजाओ के पास नारियल भिजवाये। गजसिंह ने नारियल को स्वीकार कर लिया। य तीनो विवाह एक ही दिन निश्चित किय गये और तीनो राज्यो के वर पक्ष वाले अपनी अपनी सेना के साथ उदयपुर पहुँच गये। निश्चित समय पर विवाहो के कार्य सम्पन्न हुए। गजसिंह मेवाड की राजकुमारी के साथ जैसलमेर आकर रहन लगा। इस राजकुमारी मे गजसिंह के एक लडका हुआ। इससे उसकी माता का राज्य म बहुत अधिक सम्मान मिला। सालिमसिंह ने मेवाड की राजक या का गजसिंह के साथ विवाह करान मे अपने आपको बहुत अधिक गौरवान्वित अनुभव किया।

सन्दर्भ

1 यह स धि 12 दिसम्बर, 1818 को सम्पन्न की गई थी। इसमे कुल पाच धाराए है। य धाराए अ य राजपूत राज्यो के साथ की गई सन्धियो म भी सम्मिलित थी। चू कि जसलमेर राज्य ने मराठो को कभी नियमित रूप से खिराज नही दिया था। अत ब्रिटिश सरकार ने भी उससे खिराज की माग नही की थी।

अध्याय 56

जैसलमेर की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक स्थिति

रावल के अधिकार मे अभी जो राज्य है, वह 26 अंश 20 कला उत्तर अक्षांश से लेकर 28 अंश 30 कला उत्तर अक्षांश तक और 70 अंश 30 कला पूर्व देशा तर से लेकर 72 अंश 50 कला पूर्व देशा तर तक विस्तृत है। उसका क्षेत्रफल लगभग 15,000 वर्गमील है।[1] इस विस्तृत क्षेत्र म आबाद नगरों और गावो की संख्या 250 से अधिक नही होगी। कुछ इनकी संख्या 300 के आसपास बताते है तो दूसरे लोग 200 के आसपास। 1815 म इस राज्य की आबादी 74 400 थी। इस आबादी का आधा भाग तो राजधानी म ही आबाद है। शेष का हिसाब लगाया जाय तो प्रति वर्गमील मे दो स लेकर तीन मनुष्य तक निवास करते है।

देश की बनावट—जसलमेर का अधिकाश भाग 'थल' अथवा 'राही' है। दोनो का अर्थ मरूस्थल के बकार अनुपयोगी भाग से है। जोधपुर की सीमा पर स्थित लोवार से सि धु की सीमा पर खारा नामक स्थान तक का सम्पूर्ण भाग पूर्ण रूप से रेतीला और जलहीन है। इसके मध्यवर्ती भाग म रेतीले स्तूप पाये जाते ह और कुछ भागा म जगल है। लोवार से खारा तक का इलाका जसलमेर राज्य को दो भागों मे विभाजित करता है। उत्तर की ओर वाली भूमि उपजाऊ नही है। उसम कोई भी चीज पदा नही होती। दक्षिण मे पत्थरीली भूमि है जि ह मगरा और राही कहा जाता है और उनके आसपास किस्म की उपजाऊ भूमि है।

रेगिस्तानी क्षेत्र म छोटी छोटी पहाड़ियो की चोटिया यहा की प्राकृतिक स्थिति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इन पहाडियो का सिलसिला कच्छ-भुज से शुरू होकर जसलमेर तक बना हुआ है। इन छाटे पवतों का रूप राज्य म सभी जगह एक सा नही है। उसके कुछ स्थाना का दृश्य ऐसा है कि वहा कोई पवत ही नही दिखाई देता पर तु जसलमेर की सीमा म इनका स्वरूप विकसित होता गया है। जसलमेर की राजधानी के मध्य भाग मे इन पवतो की ऊँचाई दो सौ पचास फुट है और उन्ह देखने से एक पवत का आभास होता है। भाटी लोगा की राजधानी पवत की तलहटी म

वसी हुई है और वहा से प ग्रह सोलह मील तक पवत की शखाए फली हुई हैं। एक शाखा जैसलमेर से पैंतीस मील उत्तर पश्चिम की तरफ रामगढ तक चली गयी है और दूसरी पूव की तरफ से शुरू होकर जोधपुर राज्य म हाती हुई पोकरण तक जाकर वहा से उत्तर की तरफ फलौदी तक चली गई है। इस प्रकार, जसलमर राज्य क अनेक भागा म पवत की छोटी शाखायें फली हुई है। पवत के ऊपर रेतील पत्थर हैं। वहा पर गेरू मिट्टी पदा होती है। इस गरू मिट्टी का मकानो को रगने म उपयोग किया जाता है।[2]

य वजर पहाडिया और रेतीले टीबे इस राज्य की वनावट की मुख्य विशेष ताए है। पहाडिया पर कोई चीज पदा नही होती। काई वृक्ष भी दिखाई नही देता। कही कही पर वट के वृक्ष दिखाई देते है। सम्पूरा राज्य म ऐसी एक भी नदी नही है जा प्रवाहित होती रहती हा। पवत क रेतील शिखरा स वर्षा ऋतु म खारे पानी की कुछ जलधाराए निकलती है, जिनका पानी कुछ स्थाना पर एकत्र हाकर छोटे छाट तालावो का रूप धारण करता है। उन स्थाना के लोग ऊचे घेरे बनाकर वर्षा के उस पानी को रोकन का प्रयास करते हैं। अधिक वर्षा हाने पर इन तालावा म इतना पानी एकत्र हो जाता है जो पूरे माल लागो की आवश्यकता को पूरा करता है। इस प्रकार के तालावा म एक तालाब है कानोदसर। यह तालाब कानोद स मोहनगढ तक अठारह मील तक विस्तृत है और इसमे बरावर पानी बना रहता है। वरसात के दिनो मे इस तालाव म इतना अधिक पानी आ जाता है कि उसस एक छोटी सी नदी निकल कर पूव की तरफ तीस मील तक बहती है। इस तालाब स नमक का उत्पादन भी होता है।

पदावार—यह ठीक है कि इस राज्य की रतीली भूमि अनुपजाऊ है परन्तु प्रकृति न इस भूमि स पदावार की शक्ति का बिलकुल लोप नही किया है। कुछ अनाजा क लिय यह भूमि काफी अच्छी समझी जाती है खासकर बाजरा, जिसक लिय हल्की किस्म की भूमि ही माफिक है। अच्छे वप म इतना अधिक बाजरा पदा हो जाता है कि वहां के लाग दो तथा तीन वप तक अपन खान का काम चला लते है। व लोग सि ध से गहूँ का आयात भी करते हैं। बाजरा क उपयुक्त स्थानो पर दो या तीन बार अच्छा पानी पडन क साथ ही बुआई का काम शुरू हा जाता है और बडी जल्दी ही फसल तयार हो जाती हैं। खतरा तब उत्पन हाता है जब फसलो क तयार होन के पहले ही भारी वर्षा हा जाय। हिन्दुस्तान क अ य स्थाना की अप ा रतील मदाना का बाजरा अच्छा समझा जाता है और कुछ ला तो इस गहू स भी अधिक स्वादिष्ट और पौष्टिक मानत हैं। अच्छे वप म यहा पर बाजरे का भाव एक रुपय का डढ मन तक साधारण तौर पर हा जाता है। यहा पर ज्वार भी पदा हाती है, परन्तु उसकी पदावार साधारण ही रहती है। पहाडी स्थाना क समीप कहीं कहीं पर फलदार वृक्ष और फूला क पौध भी दिखलाई पडत हैं। टीबा की निचला भूमि

पर कई प्रकार की दाले—मू ग ग्रौर माठ भी पदा किये जाते हैं। तिल ग्रौर ग्वार भी बडी मात्रा म पैदा होता है। यहाँ लाल रग का टालू नामक छोटा सा फल भी होता है जो खान म बडा स्वादिष्ट होता है ग्रार जिमका निर्यात भारत के ग्रनेक हिस्सा म किया जाता है। राजधानी क ग्रासपास के स्थानो मे जहा पर खेता म जल का उपयोग किया जा मकता है ग्रच्छी किस्म का गेहूँ भी पदा किया जाता है। पर तु इस राज्य म चावल पदा नही होता ग्रौर ग्रावश्यकता के लिये राज्य मे सि ध स चावल मगाया जाता है।

कृषण य त्र (उपकरण)—राज्य मे जहा मिट्टी मुलायम होती है वहा कृषि के उपकरण बहुत साधारण हैं। व लोग दो प्रकार के हलो का प्रयाग करत हैं। एक हल एक ग्रथवा दो बलो के लिये ग्रौर दूसरा ऊट के लिय। ग्रनाज निकालने के लिए भारत के ग्र य हिस्सो मे प्रचलित प्रथा के ग्रनुसार जानवरा का ढेर पर चलाया जाता है ग्रथवा गाडी को चलाया जाता है।

शिल्प काय—इस राज्य म शिल्प की प्रतिभा के विकास के लिए कोई खास क्षेत्र नही है क्याकि शिल्प सम्ब धी काय नही के बराबर ही होता है। कुछ लोग मोटा कपडा बुनन का काम करत है पर तु उनको कच्चा माल बाहर से लाना पडता है। उनक उत्पादन का मुख्य क्षेत्र ऊनी वस्त्र हैं जो कि मरुभूमि की भेडा क बाल स तैयार किये जाते है। ऊन से लोई, कम्बल, शाल दुशाले पगडी ग्रादि ग्रनेक वस्तुए तयार की जाती है। यहा पर ग्रनूर नाम की खान भी है जिसकी काली मिट्टी से ग्रनक प्रकार के वतन बनाय जाते है ग्रौर वे बनन खाने पीने के काम मे ग्रात हैं। हाथी दात की चूडियाँ भी बनती हैं ग्रौर घटिया किस्म के ग्रस्त्र शस्त्र भी बनाय जाते है।

वाणिज्य—वाणिज्य के क्षेत्र म जसलमेर का जो कुछ भी महत्त्व है वह पूर्वी देशो ग्रौर सि धु तथा उसके ग्राग के दशा के मुख्य व्यापारिक माग पर स्थित हान के फलस्वरूप ही है। हैदराबाद राडी भक्कर, शिकारपुर ग्रौर कुछ दूसर स्थानो स वाणिज्य की चीजे इस तरफ ग्राती है। गगा के निकटवर्ती नगरो ग्रार पजाब के ग्रनक स्थानो से बहुत से पदाथ विकन के लिए जसलमेर ग्राते है। दोग्राब का नील कोटा ग्रौर मालवा की ग्रफीम, बीकानेर की मिश्री[3], जयपुर की बनी हुई लोह की वस्तुए जसलमेर के रास्ते स शिकारपुर ग्रौर सि ध के ग्रनक नगरा म जाती है। सि ध स ग्रफ्रोका के हाथी दात तथा ग्रनक पदाथ रग, नारियल ग्रौषधिया ग्रौर च दन की लकडी ग्राती है।

राजस्व ग्रौर कर—जसलमर के राजाग्रा की व्यक्तिगत ग्राय चार लाख रुपय वार्षिक के ग्रासपास है ग्रथवा थी जिसम से एक लाख रुपया भूमि कर स प्राप्त होता था। पहले वाणिज्य के शुल्क से राज्य को लगभग तीन लाख रुपय वार्षिक की

आय होती थी पर तु मन्त्री के अत्याचारा तथा भाटी सरदारा की लूटमार क
वाणिज्य म भारी कमी आ गई जिसके फलस्वरूप इस मद से हान वाली आ
काफी कम हो गई। वाणिज्य शुल्क को 'दान" और इस शुल्क को एकत्र करन
अधिकारी को दानी कहा जाता था।

खेती पर कर—भूमि से होन वाली कुल उपज का पाचवा भाग से म
भाग राजा कर के रूप मे दिया जाता था। राजा का हिस्सा खलिहान प
पालीवाल ब्राह्मणो द्वारा खरीद लिया जाता था। उससे जो धनराशि प्राप्त
थी वह राजकोष म जमा करा दी जाती थी।

धुआकर—तीसरा और मौजूदा राजस्व का एक मुख्य साधन धुआ
है। यह एक प्रकार से रसोई कर अथवा भोजन कर है, जो प्रत्येक परिवा
वसूल किया जाता है। इसे "थाली" कर भी कहा जाता है। थाली कासे य
चादी के बतन को कहत है जिसम लोग भोजन करते हैं। इस कर म राज्य को
हजार रुपये वार्षिक की निश्चित आय होती है।

दण्ड कर—इस राज्य मे एक एकपक्षीय अथवा बलात् कर है जो सभी
वसूल किया जाता है। इसे दण्ड कर कहते हैं। इसकी वसूली अनिश्चित है। उस
कोई निश्चित स्थायी नियम नही है। बजट के घाटे को पूरा करन के लिये जब
आवश्यकता होती इस अनुचित एव घृणित कर को लागू कर दिया जाता था। जस
मेर म यह कर सबसे पहले सवत 1830 (1774 ई) मे अतिरिक्त धुआकर क न
से लागू किया गया था और उस समय इससे 2700 रुपये की आमदनी हुई था
माहेश्वरी लोगो ने आसानी से यह कर दे दिया था पर तु ओसवालो न इस
विरोध किया और उन लोगो को दुग मे ब दी बनाकर रखा गया और उन पर सख
की गई। उ होने कर चुका कर मुक्ति प्राप्त की पर तु सबने मिलकर निश्चय कि
कि व भविष्य म रावल का मु ह तक नही देखेग और उ होन अपन वचन
निभाया। रावल मूलराज जब कभी नगर की सडको पर निकलता था ओसवा
लोग अपनी दुकानें ब द कर देत थे। इस पर मूलराज न उ ह बुला भेजा और अप
कृत्य के लिये क्षमा मागते हुये कहा कि यदि व लोग इस कर को नियमित रूप
देते रह तो वह कभी भी सख्त व्यवहार नही करेगा। उन लोगो ने उसकी बात
स्वीकार कर लिया। तब से यह कर नियमित रूप से वसूल किया जाता रहा। सवत
1841 म रावल को 27 000 रु और सवत् 1852 म 40 000 रु ओसवाल
वश्या से कज लने पडे। रावल ने कुछ दिनो बाद कज के रुपये लौटा दिय। उस
समय रावल ने कर न लेन का करारनामा किया था। मौजूदा मन्त्री न सत्ता म आते
ही करारनामे की वापसी के बदले म धुआ कर न लेने का आश्वासन दिया परन्तु
उसने वचन भग करत हुय सवत् 1857 मे 60,000 रु और सवत् 1863 म

80,000 रु दण्ड कर के रूप मे वसूल किये । जब रावल गगा स्नान के लिये जाने वाला था तब उसने यह कर न लेने का वचन दिया परन्तु उसके मत्री ने उसके वचन का पालन नही किया ।

गजसिंह के सिंहासन पर बठने के बाद से अब तक (दो वर्ष) सालिम सिंह ने दण्ड कर के रूप म चौदह लाख रुपये वसूल किये हैं । वद्धमान नामक एक धनाढ्य व्यक्ति की तो सम्पूर्ण सम्पत्ति ही मत्री ने अपने अधिकार म कर ली थी ।

व्यय—जसलमेर राज्य का व्यय जो कि राजा का पारिवारिक व्यय समझा जाता है इस प्रकार है—वार = 20 000 र रोजगार सरदार = 40,000 रु, वतनिक सेना[4] = 75 000 रु राजा के निजी हाथी घोडे ऊट आदि = 35,000 रु, पाच सौ अश्वारोही = 60,000 रु रानियो का व्यय = 15,000 रु, तोशखाना = 5 000 रु, दान पुण्य = 5 000 रु, पाकशाला = 5 000 रु, अतिथि = 5,000 रु, उत्सव = 5,000 रु, वार्षिक ऊट घोडो की खरीद = 2,000 रु । कुल योग = 2,91,000 रु वार्षिक ।

वार' के नाम स जो व्यय दिखाया गया है, उसमे राजा के निजी अनुचर, अगरक्षक गुलाम आदि सभी आ जाते हैं । वेतन म इन्हे खान पीने की सामग्री मिलती है । इनकी सख्या लगभग एक हजार है । जो साम त राजधानी म रहकर राज्य का काम करते हैं उनके खाने पीने तथा निवास की व्यवस्था राज्य को करनी पडती है । उस सम्बन्धी व्यय को "रोजगार सरदार" कहा जाता है । राज्य के मन्त्रियो और अधिकारियो म से कुछ लोगो को भूमि और कुछ लोगो को वाणिज्य शुल्क दिया जाता है । पहले के वर्षों म अकेले वाणिज्य शुल्क से ही राज्य का सम्पूर्ण व्यय पूरा हो जाता था ।

राज्य की जातियाँ—जसलमेर म इस समय जितने भी भाटी लोग आबाद है, व सभी हिन्दू हैं । लेकिन फूलरा और गारा की तरफ रहने वाले भाटियो ने बहुत समय पहले इस्लाम धम स्वीकार कर लिया था । इस राज्य के भाटी लोग, चाहे राठौडो की तरह शक्तिशाली न हो और कछवाहो के समान लम्बे चौडे शरीर वाले न हो परन्तु शारीरिक गठन म वे इन दोनो वशो के लोगो से अधिक आकषक लगते हैं और उन्ही के समान साहसी और शूरवीर हैं । राजस्थान के सभी राजपूत राजवशो के साथ भाटी राजपूतो के ववाहिक सम्बन्ध होते है ।

वस्त्र—भाटी लोग सामान्यत सफेद कपडे का अथवा छीट का जामा पहनते हैं जो उनकी रानो के नीचे घुटने तक लम्बा होता है । कमर म कमरबद बाधते है । तग मोरी का पायजामा पहनते हैं । पायजामे ऊपर की तरफ घेरदार होते हैं । सिर

पर पहनन की पगडी कु कुम रग की होती है। कमर मे कृपाण रहती है। स ढाल और तलवार भी रहती है। साधारण श्रेणी के लोग धोती पहनते है और पर पगडी धारण करत है। भाटी लोगो की स्त्रियाँ सामा यत दस गज रेशमी का घाघरा पहनती है और उसी कपडे की ओढनी (दुपट्टा) होती है। स्त्रिया म दात की चूडियाँ पहनन का आम रिवाज है। पूरा हाथ इन चूडियो स ढका हे। एक चूडे की कीमत सौलह से पैंतीस रुपये तक है। भाटी स्त्रिया हाथ म के कडे पहनती थी। निम्न स्तर की स्त्रिया दूसरो के घरो तथा खेतो पर काम क हैं। भाटी लोग भी अ य राजपूतो की भाति अफीम का सेवन करत है।

पालीवाल—जसलमर म पालीवाल (पल्लीवाल) ब्राह्मणो की सख्या भा के बराबर ही है। य लोग आम तौर पर सम्पन्न होते हैं। मारवाड म राठौड र की प्रतिष्ठा के पहले इनके पूवज पाली नगर म रहते थे। सीहाजी ने पालीवालो पराजित कर पाली पर अधिकार कर लिया था परन्तु इन्हे कोई क्षति नही पहुचा बाद मे एक मुस्लिम बादशाह न पाली पर आक्रमण कर इन लोगो से कर की की। तब उन लोगो न बादशाह को यह कहत हुय कि हम लोग ब्राह्मण हैं और तक किसी बादशाह अथवा राजा का कर नही दिया, कर देन से इ कार कर दिय इससे बादशाह क्रोधित हो उठा और उसन पालीवालो के अनेक लोगो को बन्दी ब लिया। इस पर उन लोगो ने सामूहिक रूप से आत्म हत्या करन का निश्चय किय तब बादशाह ने उन सभी को पाली छोडकर चले जान का आदेश दिया। परिणा स्वरूप व लोग पाली से भागकर जसलमेर आ गये और यही बस गये। कुछ ल बीकानेर, धात और सि ध म जा बसे। पालीवाल ब्राह्मण प्रसिद्ध व्यवसायी सम जाते है। जसलमेर का अधिकाश व्यवसाय इ ही लोगो के हाथ म है। इनका ए व्यवसाय किसानो को ब्याज पर कज देना है और बदले म किसान द्वारा पदा जान वाली फसलो को सस्ते भाव से खरीद कर दूसरे राज्यो म भेजना हैं। वे ला भेडो की ऊन तथा घी को खरीद कर बेचन का काम भी करत है। सालिमसिंह उनका शोषण कर उ ह निधन बना दिया। उन लोगो का मालदेवोत, तजमालोत औ दूसरे लुटेरो का भी शिकार बनना पडता था। पर तु महता की मजबूत घेराबन्दी कारण उन लोगो के लिये राज्य को छोडकर जाना भी सम्भव न था। पालीवा लोग अपनी ही बिरादरी म विवाह करत है और हिन्दुओ की प्रथा के विरुद्ध क या विवाह के अवसर पर वर पक्ष से उ ह भारी धनराशि प्राप्त होती है। ब्राह्मण होते हुय भी व लोग अश्व पूजा करत है।

पोकरणा ब्राह्मण—जसलमर म ब्राह्मणो की एक जाति पोकरणा भी बसी हुई है। इस जाति के लोगो की सख्या इस राज्य म दो हजार क आस पास होगी। मारवाड और बीकानर म इनकी सख्या अधिक है और य लोग सम्पूण मरु भूमि

तथा सिन्धु की घाटी मे भी ग्राबाद है। ये लोग कृषि तथा पशुपालन का काम करते हैं। व्यापार वाणिज्य म इनकी रुचि नही है। उनकी उत्पत्ति के बारे कहा जाता है कि इनके पूवज पवित्र पुष्कर की झील को खोदने गय थे तभी स व लोग पुष्करणा (पोकरणा) ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुये। वे लोग ग्रभी तक कुदाल' की पूजा करत हैं। इससे उपयु क्त जनश्रुति की प्रामणिकता पुष्ट होती है।

जसलमेर राज्य म जाटो के ग्रलावा ग्र य दूसरी जातियाँ भी निवास करती हैं जिनका विस्तृत विवरण ग्रागामी ग्रध्याय मे किया गया है। जाटो का मुख्य व्यवसाय कृषि काय है।

जसलमेर का दुग—मरू भूमि के राजा का दुग 200 स 250 फुट ऊची पहाडी पर बना हुग्रा है। दुग के चारो तरफ एक मजबूत दीवार का परकोटा बना हुग्रा है। दुग के चार प्रवेश द्वार है पर तु उन पर बहुत कम तोपें तनात हैं। दुग के उत्तर म शहर बसा हुग्रा है जो लगभग तीन मील की परिधि मे फला हुग्रा है। शहर के चारो तरफ भी एक ऊचा परकोटा बना हुग्रा है। शहर म प्रवेश करने के लिये तीन बडे द्वार दो छोटे दरवाजे है। शहर मे सम्पन्न व्यवसायियो की कुछ ग्रच्छी हवलियाँ हैं। साधारण घरो ग्रौर झोपडियो की सख्या ग्रधिक है। राजा का ग्रपना महल काफी वभवशाली है। साम तो क साथ ग्रच्छा व्यवहार होन के दिनो मे ग्रावश्यकता पडन पर राजा पाच हजार पदल ग्रौर एक हजार घुडसवारो की सेना जुटा सकता था। लेकिन उसके ग्रत्याचारी मत्री के शासन के समय म उसस ग्राधे सनिक जुटा पाना भी सम्भव रहा होगा इसमे स देह है। यह सूचना मिली है कि एक कटार न ग्रत्याचारी मत्री को इस धरती से उठा दिया है।

जनसख्या—1815 ई० क पहले राज्य की जनसख्या काफी ग्रधिक रही होगी यह बात ग्रासानी क साथ कही जा सकती है। क्योकि राजनतिक पतन क साथ साथ जनसख्या का लगातार कम होना, स्वाभाविक ही है। उसके ग्रलावा सालिम सिंह के ग्रत्याचारो ने भी जनसख्या को कम करने मे ग्रपना योगदान दिया। 1815 ई० के ग्राँकडो क ग्रनुसार राज्य की कुल ग्राबादी 74,000 थी। उसम स भी 35 000 लोग जसलमेर म बसत है। राज्य के कुछ प्रमुख स्थानो की ग्राबादी इस प्रकार है—बीकमपुर = 2000, सेरूरो = 1200, नचना = 1600, कटोरी = 1200 कवाह = 1200, कोलादक = 800, सत्तोह = 1200, जिजियाली = 1200, देवीकोट = 800 भाप = 800 जलाना = 600, वारू = 800 चान = 800, लहनी = 1200, बीजोराय = 800, मु दाई = 800, रामगढ = 800, जसलपुर = 800, गिराजसर = 600। बाकी के स्थानो की ग्राबादी काफी कम है ग्रौर कई गावो म तो दो-चार से ग्रधिक घर नही ह।

सन्दर्भ

1 कुछ ग्र थो म राज्य का कुल क्षेत्रफल 16 447 वगमील लिखा मिलता है।

2 कुछ के अनुसार पीली मिट्टी मिलती है और इसका प्रयाग मकाना को रगने मे किया जाता है।

3 बीकानर की मिसरी (मिश्री) उत्तरी भारत म विख्यात है। वसी मिसरी कही पर तयार नही की जा सकती।

4 दुग मे नियुक्त वतनभोगी सेना को "सव दी" कहत थे। उसम लगभग एक हजार सनिक थे।

जयपुर राज्य का इतिहास

अध्याय 57

प्रारम्भ से महाराजा बिशनसिंह तक

यूरोपीय लोगो मे राजपूताना के विभिन्न राज्यो को उनके नाम से न पुकार कर उनकी राजधानियो के नाम स उन राज्यो का उल्लेख करन की सामा य आदत सी हो गई है जसे कि मारवाड के स्थान पर जोधपुर और मवाड के स्थान पर उदयपुर। जिस राज्य को हाडौती के नाम से लिखा जाना चाहिए उस व कोटा और बूदी के नाम से लिखते है। इसी प्रकार, ढू ढार का नाम भी बहुतो को शायद ही पता होगा। वे इस क्षेत्र का उल्लेख इसकी राजधानिया—आमर तथा जयपुर के नाम से ही करते आय हैं। यह कछवाहा का क्षेत्र है।

अ य राजपूत राज्यो की भाति कछवाहो का देश भी विभिन्न जातियो का निवास स्थान है। समय समय पर कछवाहा न इस क्षेत्र म आबाद पुरानी जातियो अथवा स्वत त्र सरदारो के इलाको को जीतकर अपन राज्य की प्रतिष्ठा की। इस लिय 'ढू ढार जो उनकी प्रारम्भिक विजयो का एक हिस्सा था, के नाम को उनके द्वारा स्थापित सम्पूर्ण राज्य पर लागू करना उचित नही होगा। इस नाम की उत्पत्ति कालिक जोबनर नामक स्थान के समीप स्थित "ढू ढ' नामक एक प्रसिद्ध शिखर से हुई।

कछवाहा अथवा कुशवा वश कौसल के राजा राम के छोट पुत्र कुश से अपनी उत्पत्ति मानता है। कौसल की राजधानी अयोध्या थी। कुश अथवा उसके किसी वशज न अपने पतृक राज्य को छोड कर सोन नदी के तट पर रोहतास[1] अथवा राहितास नाम का विख्यात दुग बनवाया था। उसक बाद कई पीढियो के बाद उसी वश क राजा नल ने सवत् 351 (291 ई) मे नरवर[2] अथवा निपध नाम की राजधानी कायम की। कुछ इतिहासकारो ने इसके पूव इस वश के अ य निवास स्थानो का भी उल्लेख किया है। उनम से एक कुशवाहगिर म उनके द्वारा स्थापित 'लाहर" नामक स्थान है और दूसरा ग्वालियर है। जो भी हो नल के उत्तराधिकारियो न पाल' की उपाधि धारण की थी। राजा नल स तंतीस पीढियो के बाद सोढासिह क पुत्र

धोलाराय (ढोला) को पतृक राज्य से निकाल दिया गया और उसने सवत् 1((967 ई) म ढू ढाड राज्य को प्रतिष्ठा की ।

नरवर क राजा साडाराव की मृत्यु क बाद उसके भाई ने सम्पूण राज्य हडप लिया और शिशु राजकुमार ढोला को उमके पतृक अधिकार स वचित दिया । उमकी मा एक साधारण स्त्री की वेशभूषा म शिशु राजकुमार को एक टो मे रखकर पश्चिम की तरफ चल पडी और चलत चलत आधुनिक जयपुर स प मील स्थित मीनो की बस्ती खोह' मे पहुच गई । उस गाव क बाहर उमने कुछ विश्राम करन के इरादे से टोकरी को नीचे रख दिया । वह भूख प्यास से पीडित रही थी । पास ही एक बेर की भाडी थी । वह कुछ फल तोड कर अपनी भूख श कर रही थी कि उसने देखा कि एक साप टोकरी पर अपना फण फलाये हुए ब है । वह चिल्ला पडी । उसी समय एक ब्राह्मण वहा पर आ पहुचा । उसने रानी कहा कि घबरान का कोई कारण नहीं है । आपका तो खुश होना चाहिए । य बालक एक दिन राजा बनगा । रानी को थोडा सन्ताप हुआ । उमन ब्राह्मण स कह कि जो होगा उसस मुझे विशेष सरोकार नहीं । अभी ता यह बालक भूखा है उसकी व्यवस्था कसे हो ? इस पर ब्राह्मण न खोह गाव की तरफ सकत करत हु उसस कहा कि आपके वहा जान पर सब व्यवस्था हो जायगी । रानी न बच्च क टोकरे मे रखा और गाव की तरफ चल पडी । रास्ते मे उस एक स्त्री मिली जो वहा के मीना सरदार की दासी थी । रानी ने उससे पूछा कि क्या भोजन के बदल मुझे कोई काम मिल सकता है ? मीना रानी के आदेश से उसे दासी का काम मिल गया और दासियो के साथ रहन की व्यवस्था भी हो गई । एक दिन धोलाराय की मा को भोजन पकान का काम सौपा गया । उसका बनाया हुआ भोजन मीना सरदार लालनसी को हमेशा बनने वाले खाने से बहुत अधिक पस द आया और उसन खाना पकाने वाली को बुलवा भेजा और उसस अपना परिचय देने को कहा । तब धोला की मा ने अपना असली परिचय देत हुए सारा वृत्ता त बता दिया, जिसे सुनकर मीना सरदार न उसे अपनी बहिन और धोला को अपना भानजा मान लिया और इस सम्ब ध क हिसाब म ही उन दोनो को आदर मान दिया जान लगा । जब धोला चौदह वष का हुआ तो उसे खोह गाव का कर लेकर दिल्ली क राजा की सवा म भेजा गया । धोला पाच वष तक दिल्ली म रहा और यहा रहत हुए उसके मन म अपन उप कारी मामा का राज्य हडपने की इच्छा जाग्रत हुई । उसक साथ एक मीना कवि भी रहता था जिसस उसकी मित्रता हो गई थी । धोला न उससे अपन विचारो को कार्यान्वित करने का उपाय पूछा । उसन उस दीपावली के उत्सव का लाभ उठाने को कहा । इस अवसर पर मीना लोगो म सभी लोग सरवर म स्नान करन जात थ । धोलाराय न दिल्ली से कुछ स्वजातीय राजपूतो को बुलाया और उनकी सहायता से अपन ध्येय को प्राप्त करने म सफल रहा । जिस सरोवर म मीना लोग स्नान कर रहे थे उसे मीना क मृत शरीरो स पाट दिया गया । वह विश्वासघाती मीना कवि भी अपने प्राण न

बचा सका। उसे धोलाराय ने यह कहते हुए कि "जिसने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया हो उस पर कोई दूसरा विश्वास नही कर सकता" अपने हाथ से मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद उसने खोह गाव को अपने अधिकार मे ले लिया। कुछ समय बाद वह दौसा की तरफ गया जहा एक दुर्ग था और उसके आस-पास के इलाका पर राजपूतो की शाखा बडगूजरो का शासन था। धोलाराय ने वहा जाकर वहा के राजा की लडकी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा। बडगूजरो ने कहा कि ऐसा कैसे हो सकता है? हम दोनो ही सूर्यवशी हैं। परन्तु जब उनको समझाया गया कि आवश्यकता से अधिक पीढिया गुजर चुकी है तो वे विवाह के लिये तैयार हो गये और धोलाराय का विवाह हो गया। बडगूजर राजा के कोई पुत्र न था अत उसने दौसा का राज्य अपने दामाद धोलाराय को सौंप दिया। इससे धोला की शक्ति बढ गई और उसने माची के राजा नादू मीना को पराजित कर अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने का निश्चय किया। इस बार धोलाराय विजयी रहा और उसने माची पर अपना अधिकार कर लिया। यह स्थान उसे खोह गाव से अधिक पसंद आया। अत वह अपने नवादित राज्य की राजधानी को वहा ले गया। वहा उसने एक नया दुर्ग बनवाया और अपने भ्रान्ति पूर्वज के नाम पर उसका नाम रामगढ रखा।

इसके कुछ दिनो बाद धोलाराय ने अजमेर के राजा की लडकी मारुनी से विवाह किया। एक दिन धोला अपनी पत्नी मारुनी के साथ जमवा माता के मंदिर के दर्शन करके वापस लौट रहा था कि उस क्षेत्र के सभी मीना लोग जिनकी सख्या लगभग ग्यारह थी उसका मार्ग रोक दिया। धोला ने उनके साथ युद्ध किया। उनके बहुत से लोगो को मार डाला और अन्त मे वह स्वय भी मारा गया। उसके सैनिक भाग खडे हुये। मारुनी किसी प्रकार से बच निकली और थोडे दिनो बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम काकिल रखा गया। उसने ढूढाड प्रदेश को जीता। उसके पुत्र मेदलराव ने सूसावत मीना से आमेर छीन लिया और यहा के राव भाटो को परास्त किया। उसने नादला मीनो को परास्त कर गेटूर गटटी का इलाका भी जीत लिया और उसे अपने राज्य मे सम्मिलित कर लिया।

मेदलराय के बाद उसका पुत्र हुणदेव राजा बना और उसने भी मीनो के विरुद्ध युद्ध जारी रख कर अपने राज्य के विस्तार की नीति को जारी रखा। उसके बाद कुंतल उसका उत्तराधिकारी बना। उसकी सत्ता राजधानी के आस-पास के तमाम पर्वतीय क्षेत्रो मे निवास करने वाली जातियो पर कायम हो गई। उसने भटवाड के चौहान राजा की लडकी के साथ विवाह करने का निश्चय किया और भटवाड की तरफ चला। तब पिछली घटना को याद करते हुए मीना लोगो ने एकत्र होकर उससे कहा कि यदि आप हमारी सीमा के बाहर जाते हैं तो अपनी पताका और नगाड़ा हमारी सुरक्षा मे छोड जाय। कुंतल ने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। परिणाम-

स्वरूप दाना के मध्य युद्ध शुरू हो गया जिसमे मीना लोगो के बहुत से सनिक मार गये और वे पराजित होकर भाग खडे हुए। इससे सम्पूण ढूढाड म उसका सत्ता जम गई।

कुन्तल के बाद पजून सिहासन पर बठा। च दवरदाई न अपने ग्रथ म उसकी शूरवीरता का अद्भुत वणन करके उसक नाम को अमर बना दिया। इससे आगे बढने के पूव इम समय की जातियो के बारे मे कुछ कहना उचित होगा। हमने रजवाडे के इस विस्तृत इतिहास क पूव अश का अनक स्थाना मे देखा है कि यहा के सम्पूण आदिम निवासियो ने पराधीनता से मुक्त हान के लिय विशेप चेष्टा की है। इस समय ढूढाड देश म कछवाहा क उदय से आदिम लोगो की यह चेष्टा भली-भाति समझी जा सकती है। ढूढाड क्षेत्र म आबाद पवित्र अमिश्रित मीना जाति को पाच नामो (पचवाडा) स पुकारा जाता था और सम्पूण मीना जाति पाच शाखाओ मे विभक्त थी। उनका मूल निवास अजमेर से लकर यमुना नदी तक विस्तत पवत माला "काली खोह" के नाम स विख्यात था। इस क्षेत्र मे उन्होन आमर का निर्माण किया। वे लोग अम्बादवी के उपासक थ। मीना लोग उसे 'घाटा रानी' क नाम स पुकारते थे। इस क्षेत्र म उन लागा के खोहगाव, माची आदि अनेक बड गाँव थ। बाबर और हुमायू के समकालीन भारमल कछवाहा के समय तक भी ये लाग काफी शक्तिशाली थे। राजपूतो का उनसे हमेशा भय बना रहता था। उन स्वत त्र मीनाओं के अधिकार म नाहन नाम का एक प्राचीन नगर भी था। भारमल न मुगलो का सहायता से उस नगर का विनाश किया था। एक प्राचीन ऐतिहासिक कविता म नाहन की मीना जाति की सामथ्य का वणन इस प्रकार से किया गया है—

बावन काठ छप्पन दरवाजा, मीना मरद नाहन का राजा।
बूडा राज नाहन को, जब भूस म बाटो मागो।

अर्थात् नाहन के राजा मीना क 52 किले और तोरण द्वार थ, जिस समय उनका शासन नाहन से लुप्त हो गया, उस समय उसन सामा य भूसे के अश को भी कर रूप म ग्रहण किया था। यदि यह अतिशयोक्ति पूण नही है तो यह माना जा सकता है कि दिल्ली के सुल्तानो क प्रारम्भिक शासन म मीना लोग काफी शक्तिशाली थे। पजून से लकर साम त पृथ्वीराज और भारमल तक कछवाहो को मीनाओ के विरुद्ध पर्याप्त सफलता न मिला थी। भारमल न नाहन का विध्वस कर उसके स्थान पर लावान नाम का नगर बसाया।

पजून न अजमर क चौहान पृथ्वीराज की बहन स विवाह किया था।[3] इससे उसके सम्मान म अत्यधिक वृद्धि हुई। पृथ्वीराज की अधीनता म 180 राजा सरदार थे। उनमे उसने पजून को महत्वपूण स्थान दिया। उसे एक सना का नतत्व प्रदान किया गया और इस सेना न पृथ्वीराज द्वारा लडे गय युद्धा म भाग लिया और दा

युद्धो म पजून ने अद्भुत शौय का प्रदशन कर ख्याति प्राप्त की। एक अवसर पर जब वह सीमा त पर नियुक्त था शहाबुद्दीन गोरी न उत्तर की ओर स आक्रमण किया। पजून न उस खबर दर्रे के पास पराजित किया और उसे गजनी तक खदेड दिया। महोबा के च देलो क विरुद्ध लडे गय युद्ध म भी पजून न महत्त्वपूण भूमिका अदा की और विजय प्राप्ति के बाद उसे वहा का शासनाधिकारी नियुक्त किया गया। सयोगिता अपहरण काण्ड के समय पृथ्वीराज के जिन सरदारो न कन्नौज की सेना के साथ युद्ध करक पृथ्वीराज और सयोगिता का सुरक्षित चल जान का अवसर प्रदान किया था उनम से एक पजून भी था। पाच दिन तक चलने वाले इस युद्ध के प्रथम दिन अपन स्वामी राजा क माग की रक्षा करता हुआ पजून मारा गया। उसके साथ मेवाड का सरदार गोवि द गुहिलात[4] भी मारा गया था। राव पजून के अ तिम पराक्रम का वणन कवि च द न इस प्रकार स किया है—"जब गोवि द मारा गया तो शत्रुपक्ष के लोग नाचन लग। तभी राव पजून अपने दोनो हाथो से खडग चलाता हुआ भयकर मारकाट करन लगा। चार सौ शत्रु सनिका न एक साथ पजून पर आक्रमण किया। उस समय पीपा, अजान बाहु नरसिंह और कच्चरराय नाम क पाच भाइयो ने उसका सहायता की और शत्रुपक्ष स डट कर लोहा लिया। दोनो तरफ से भाले और तलवारे चल रही थी और उनक शूरवीर धराशायी होते जा रहे थे। रक्त की सरिता प्रवाहित हो उठी। उस समय पजून न एतमाद[5] पर जोरदार प्रहार किया। उसका सिर कटकर पृथ्वी पर आ गिरा। उसक गिरते ही शत्रुपक्ष के सैंकडो भाले एक साथ पजून पर चले। पजून उनसे अपनी रक्षा न कर पाया और वह गभीर रूप से घायल होकर पृथ्वी पर गिर पडा। गोवि दराय और पजून के मारे जाने के बाद केवल एक घडी दिन शेष रह गया था। पजून के गिरत ही उसके भाई पाल्हन न मोर्चा सभाला। एक बार युद्ध म पुन तेजी आ गई। कुछ समय बाद कन्नौज की सेना की गति म द पड गई।" पाल्हण अपन पुत्र के साथ लडता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। कन्नौज की सेना वापस लौट गई।

राव पजून युद्ध क्षेत्र मे पृथ्वीराज की ढाल बनकर रहता था और उसन अनक अवसरो पर पृथ्वीराज के प्राणो की रक्षा की थी। कन्नौज की सेना क साथ लडे गय युद्ध मे उसन जिस शूरवीरता का प्रदशन किया उसका वणन नही किया जा सकता। इस अवसर पर उसन अनक शूरवीरो का अ त किया था। उसकी मृत्यु क बाद उसका पुत्र मलसी आमेर के सिंहासन पर बठा। इस युद्ध म उसने भी भाग लिया था।

मलसी के बाद एक एक करक ग्यारह राजा आमर क सिंहासन पर बठे जिनके नाम इस प्रकार हैं—1 बीजलदव, 2 राजदव 3 कल्हण, 4 कु तल, 5 जाणसी 6 उदयकरण 7 नरसिंह, 8 बनवीर 9 उद्धरण 10 च द्रसेन और 11 पृथ्वीराज। इनम से प्रथम दस का कोई विवरण नही मिलता।

पृथ्वीराज के सत्रह लडके हुये। उनम पाच अल्पायु म ही मर गय। पृथ्वीराज न अपने राज्य को अपन बारह पुत्रो मे बाट दिया। इस प्रकार आमेर का छोटा सा राज्य बारह भागा म विभाजित हो गया जो "बारह कोटरी" के नाम स विख्यात हुई। प्रत्येक के हिस्से मे बहुत कम भूमि आई। परन्तु उस समय आमेर राज्य की जो भूमि थी, उतनी भूमि का भोग प्रत्येक राजकुमार के वशज आज कर रह है। मलसी और पृथ्वीराज के मध्यवर्ती समय मे राजपरिवार के साथ राजवश की कनिष्ठ शाखाओ म विवाद उपस्थित था और उसके कारण मूल राज्य की उपेक्षा उसकी एक शाखा अधिक बलवान हो उठी थी। यह घटना उदयकरण के शासनकाल की है जब उसके पुत्र बालाजी ने पिता का महल छोडकर अमरतसर नाम के नगर तथा अन्य छोटे छोटे इलाको पर अपना अधिकार कायम कर लिया था। उस समय उनके पुत्र शेखाजी न उस देश का मालिक होकर अपन बाहुबल स अपने राज्य की सीमा का विस्तार करके एक शक्तिशाली शाखा को विकसित कर शेखावाटी राज्य की प्रतिष्ठा की। उस समय शेखावाटी राज्य दस हजार मील की सीमा तक व्याप्त था। इस वृत्तान्त को छोडकर हम पुन पृथ्वीराज की तरफ आते हैं। पृथ्वीराज सिन्धु नदी के तट पर देवल की तीर्थ यात्रा पर गया था। परन्तु यह तीर्थयात्रा भी उसे अपनी हत्या से न बचा सकी। वह अपने ही पुत्र भीम के हाथो मारा गया। यद्यपि सही जानकारी नही मिल पाती। फिर भी इतना पता चलता है कि इस घृणित हत्या का बदला उसी के पुत्र आसकरण न उसका दिया। पिता की हत्या करने के कारण भीम सभी की आखो म अपराधी बन गया था और अपन ही स्वजनो के उकसाने पर आसकरण ने अपने पिता भीम की हत्या कर दी।[6] आमेर के इतिहास म इन दोनो हत्याओ का विशेष उल्लेख नही मिलता। सभवत पिता के हत्यारो के प्रति घृणा की भावना स ऐसा हुआ हो।

भारमल आमेर के राजाओ म पहला व्यक्ति था जिसने मुस्लिम सत्ता के सामने मस्तक नीचा करके उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया। वह बाबर के दरबार म उपस्थित हुआ और हुमायूँ (सिंहासनच्युत होन के पूर्व) ने उसे आमेर के राजा के रूप मे पाच हजार का मनसब प्रदान किया था।[7]

भारमल के लडके भगवानदास न मुगल राजवश के साथ और भी घनिष्ठ सम्बन्ध कायम किया। वह अकबर का मित्र था, जो इस प्रकार के सम्बन्धो को अपने सिंहासन के लिये महत्व का समझता था। उसने किन उपायो से कछवाह राजा भगवानदास को मिलाकर अपना लिया था, उसका विशेष उल्लेख मुझे कही पढने को नही मिला। परन्तु इतिहास म भगवानदास[8] का नाम उस व्यक्ति के रूप म प्रसिद्ध है जिसने सबसे पहले राजपूत सतीत्व का मुसलमानो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध के साथ सौदा किया था। उसने अपनी पुत्री का विवाह युवराज सलीम, जो आगे चल कर जहागीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, के साथ किया। अभागा खुसरो इसी शादी की उपज था।

भगवानदास का भतीजा और उत्तराधिकारी राजा मानसिंह अकबर के दरबार का एक असाधारण प्रतिभा का व्यक्ति था। सम्राट के सेनानायक के रूप में उसे अत्यधिक कष्टदायक एवं खतरनाक कार्य सौंपे गये और उसने अपनी विजयों के द्वारा खुतन से लेकर समुद्र पर्यन्त साम्राज्य में वृद्धि की। उसने उड़ीसा और आसाम को जीतकर साम्राज्य के अधीन किया और काबुल भी साम्राज्य के अन्तर्गत बना रहा। उसने समय समय पर बंगाल, बिहार दक्खिन और काबुल की सरकारों का शासनाधिकार भी संभाला। राजा मानसिंह ने कुछ समय बाद यह सिद्ध कर दिया कि अकबर ने राजपूत राजाओं पर प्रभुत्व कायम करने के लिए जिस नीति का आश्रय लिया था वह नीति किसी समय संकटपूर्ण भी हो सकती है। राजपूतों का प्रभाव इस कदर बढ़ गया था कि जब अकबर ने उससे मुक्त होने का कोई उपाय न देखा तो उसने अन्य एशियाई क्रूर शासकों की भांति विष के द्वारा मानसिंह को हटाने का प्रयास किया परन्तु दुर्भाग्यवश वह स्वयं उसका शिकार हो गया।

जिन दिनों अकबर अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा था राजा मान ने उत्तराधिकार को बदलने तथा अपने भानजे खुसरो को मुगल सिंहासन पर बैठाने के लिये षड्यन्त्र का जाल बिछाया। ऐसी स्थिति में अकबर ने सलीम को सिंहासन पर बैठाने में ही साम्राज्य का कल्याण अनुभव किया। कुछ समय के लिये षड्यन्त्र को दफना दिया गया और राजा मानसिंह को बंगाल की सरकार सम्भालने के लिये भेज दिया गया। परन्तु खुसरो का विद्रोह फूट पड़ा और उसका अन्त खुसरो को कैदखाने में डालने तथा उसके समर्थकों को कठोर दण्ड के साथ हुआ। राजा मानसिंह काफी चतुर और दूरदर्शी था। वह गुप्त रूप से खुसरो का समर्थन करता रहा परन्तु दिखावे के लिये जहांगीर का समर्थक बना रहा। मानसिंह के अधिकार में बीस हजार राजपूतों की सेना थी। इसलिए बादशाह ने प्रकट रूप से उसके साथ शत्रुता करना उचित नहीं समझा। देसी इतिहासकारों ने लिखा है कि बादशाह ने मानसिंह को दस करोड़ रुपये देकर अपने अनुकूल बना लिया था। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार हिजरी 1024 (1615 ई) में मानसिंह की बंगाल में मृत्यु हो गई जबकि अन्य इतिहासकारों ने लिखा है कि उत्तर की तरफ खलजी जाति के विरुद्ध किये गये अभियान में ऊपर लिखी गई तिथि के दो वर्ष बाद मृत्यु हो गई।

मानसिंह के बाद उसका पुत्र भावसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने उसे पांच हजार का मनसब प्रदान किया। वह मन्द बुद्धि शासक था और उसने कुछ वर्षों तक शासन किया। उसके समय में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। हिजरी संवत् 1030 में अत्यधिक मद्यपान से उसकी मृत्यु हो गई।

भावसिंह के उसका लड़का महासिंह[9] राजा बना। वह भी अपने पिता की भांति विलासी तथा मदिरा सेवी था। इसलिये थोड़े दिनों बाद उसकी मृत्यु भी हो गई।

मानसिंह के अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण जोधपुर के राठौड़ राजाओं को दिल्ली के शाही दरबार में अपनी प्रतिष्ठा कायम करने का अवसर मिल गया। जहांगीर की राजपूत पत्नी जोधाबाई (बीकानेर के रायसिंह की लड़की) के आग्रह पर बादशाह जहांगीर ने जगतसिंह (मानसिंह का भाई)[10] के पोते जयसिंह को आमेर का राजा बनाया।

जयसिंह द्वितीय जो कि 'मिर्जा राजा" की उपाधि से अधिक विख्यात है ने अपने व्यवहार से कछवाहों के लिये मुगल दरबार में उस सम्मानपूर्ण पद को पुनः प्राप्त किया जिसको मानसिंह के अयोग्य उत्तराधिकारियों ने खो दिया था। उसने औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य की महत्वपूर्ण सेवा की जिससे प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे छः हजार का मनसब प्रदान किया। उसने विख्यात शिवाजी को बंदी बनाया और उसे दरबार भिजवाया, परन्तु जब उसने यह देखा कि शिवाजी को उसने सुरक्षा का जो वचन दिया है, वह भंग होने वाला है तो उसने शिवाजी को भागने में सहायता पहुंचाई। परन्तु उसकी इस उदारता से दारा के प्रति उसके द्वारा विश्वासघात जिसके कारण उस साहसी शाहजादा के सपने टूट गये के अपराध को धोया नहीं जा सकता। इस प्रकार के कृत्य औरंगजेब से छिपे न रह सके और उसने मिर्जा राजा को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। भारतीय इतिहासकारों के अनुसार मिर्जा राजा जयसिंह के अधिकार में बाईस हजार अश्वारोही सेना थी और प्रथम श्रेणी के बाईस प्रमुख सरदार उसके अधीन कार्यरत थे। वह प्रायः उनके साथ अपने दरबार में बैठा करता था। एक दिन उसने अपने दोनों हाथों में एक एक शीशा लेकर कहा, "मेरे हाथ में एक शीशा दिल्ली और दूसरा सतारा है। उसने सतारा वाला शीशा जमीन पर पटकते हुए कहा—"यह सतारा टूट गया, दिल्ली का भाग्य मेरे दाहिने हाथ में है और इसी प्रकार मैं जब चाहूं उसके भी टुकड़े टुकड़े कर सकता हूं।" ये बातें बादशाह के कानों तक भी पहुंची। उसने जिस तरह से मारवाड़ का विनाश किया था उसी घृणित तरीके से जयसिंह का सर्वनाश करने का निश्चय किया—उसी के पुत्र के हाथों पिता का वध करवाने का निश्चय। उसने जयसिंह के छोटे पुत्र कीर्तसिंह को, उसके बड़े भाई रामसिंह के स्थान पर आमेर का सिंहासन देने का वचन दिया यदि वह इस घृणित कार्य को पूरा कर सके अर्थात् अपने पिता जयसिंह की हत्या कर सके। उस दुष्ट पुत्र ने अफीम के साथ जहर मिला कर अपने पिता की हत्या कर दी[11] और फिर सिंहासन प्राप्त करने की अभिलाषा के साथ दिल्ली आकर औरंगजेब से मिला। परन्तु बादशाह ने अपने वचन को नहीं निभाया और उसे केवल कामा की जागीर ही प्रदान की।

जयसिंह की मृत्यु के बाद रामसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने उसे चार हजार का मनसब प्रदान किया तथा उसे आसामियों का विद्रोह दबाने के

लिये आसाम भेज दिया। उसके बाद उसका लडका विशनसिंह राजा बना। उसका मनमब और भी कम कर दिया गया। उसे केवल तीन हजार का मनसब प्रदान किया गया। उसे बहादुरशाह के साथ काबुल के युद्ध मे भेजा गया। वही पर उसकी मृत्यु हो गइ।

स दभ

1 कुछ विद्वानो के अनुसार विहार म स्थित राहतासगढ का निर्माण राजा हरिश्च द्र के पुत्र रोहिताश्व ने करवाया था। टाड की अपेक्षा उनकी बात अधिक सही प्रतीत होती है।

2 एक अ य ऐतिहासिक विवरण मे पता चलता है कि नल ने सवत् 315 म नरवर की स्थापना की थी।

3 टाड का कथन गलत है। पजून या पजूनराय पृथ्वीराज का बहनाई नही अपितु साला था।

4 सयोगिता काण्ड के अवसर पर मेवाड मे कोई भी सरदार पृथ्वीराज के साथ कन्नौज नही गया था।

5 एतिमाद से लगता है कि वह जयच द का यवन सेनापति था। पर तु उस समय जयच द की मेना मे कोई भी मुस्लिम अधिकारी नही था।

6 पृथ्वीराज ने अपनी चहेती रानी बालाबाई के अनुरोध पर उसके पुत्र पूरणमल को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। इसम अप्रसन्न होकर उसके बडे पुत्र भीम न अपने पिता की हत्या की। पूरणमल का पराम्त किया और आमेर क सिहासन पर बठा। यह घटना 1533 ई० की है। भीमदव के बाद रत्नसिंह राजा बना। भारमल के उकसाने पर आसकरण न रत्नसी की हत्या कर सिंहासन अधिकृत किया था। बाद म भारमल न आसकरण को सिंहासन स हटाकर आमेर का राज्य प्राप्त किया। आसकरण को बाद म नरवर का राज्य मिला।

7 टाड क इस कथन की पुष्टि अ य एतिहासिक ग्र थो म नही होती।

8 टाड ने सम्पूर्ण अध्याय म गलती की है। असल बात यह है कि सबसे पहले भारमल न अपनी पुत्री का विवाह अकबर क साथ किया। फिर उसक बेट

भगवन्त दास न सलीम के साथ अपनी वटी का विवाह किया। भगवानदास आमेर का राजा नही था। वह भगवन्तदास का भाई था। मानसिंह भगवन्तदास का वेटा था।

9 महासिंह, भावसिंह का वेटा नही था। वह मानसिंह के लडके जगतसिंह का वेटा था।

10 जगतसिंह, मानसिंह का भाई नही पुत्र था। डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार जयसिंह महासिंह का वडा लडका था। उनके अनुसार भावसिंह क कोई पुत्र नही हुआ था।

11 इसकी सत्यता के वार म स देह है।

अध्याय 58

सवाई जयसिंह

जयसिंह द्वितीय जो कि अपनी उपाधि 'सवाई जयसिंह के नाम से अधिक पहचाना जाता है सवत् 1755 (1699 ई)[1] म औरगजेब के शासनकाल क 44वें वष तथा उस बादशाह की मृत्यु के छ वष पूव आमेर के सिंहासन पर बठा। सवाई जयसिंह ने दक्षिण के युद्ध म अपन साहस और पराक्रम का प्रदशन किया था। उत्तराधिकार सघष म वह पहल से घोषित उत्तराधिकारी आजमशाह के पुत्र बेदारबख्त के साथ रहा और उसके लिए धौलपुर के युद्ध म भी भाग लिया, पर तु बेदारबख्त मारा गया और बहादुरशाह 'शाहआलम" की उपाधि के साथ दिल्ली के सिंहासन पर बठा। सवाई जयसिंह द्वारा अपना विरोध किय जाने स बादशाह उससे नाराज हो गया और उसने आमेर का राज्य जब्त कर लिया और वहा की शासन व्यवस्था के लिए एक व्यक्ति को शासनाधिकारी बनाकर भेज दिया।[2] परन्तु जयसिंह तलवार हाथ मे लिए हुए अपने राज्य म गया और शाही रक्षका तथा शासनाधिकारी को मार भगाया। इसक बाद उसन मारवाड के अजीतसिंह के साथ मिल कर आपसी सुरक्षा के लिए गठब धन कायम किया।

आमेर क सिंहासन पर बठकर उसने चवालीस वष तक शासन किया और इस अवधि म उसे अनेक बार युद्ध करन पडे। मवाड और बू दी क इतिहास म उनक बारे म काफी कुछ लिखा जा चुका है। बू दी के राजवश का तो वह शत्रु ही था। यद्यपि इस लम्बी अवधि मे तमूर के सिंहासन के डगमगाने से जो अराजकता उत्पन्न हो गई थी उस स्थिति मे सवाई जयसिंह ने सभी प्रकार के कष्टो का सामना करना पडा और अपने अस्तित्व के लिए अनेक युद्ध भी लडने पडे पर तु एक सनिक के रूप म उसकी प्रतिष्ठा का नाम इतिहास मे नही लिखा जाता। इसके विपरीत उसके साहस म वह बात नही थी जो कि एक राजपूत नेता म होनी चाहिय। पर तु प्रशासन और दरबारी षडय त्रो मे उसकी प्रतिभा बढी चढी थी और वह अपने समय का मेकियावली था। उस युग म इन गुणो का बहुत महत्व था।

एक राजनीतिज्ञ, विधि निर्माता और शिल्प तथा विज्ञान के आश्रयदाता के रूप में सवाई जयसिंह का चरित्र अनुकरणीय है और इससे हम राजपूताना के राजाओं का सही मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकते हैं।[3] विदेशी इतिहासकारों ने निष्पक्ष भाव से उनके गौरव का वर्णन नहीं किया है। सवाई जयसिंह ने अपने नाम पर अपनी नई राजधानी जयपुर की स्थापना की, जो शिल्प और विज्ञान का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गई और जिस कारण से पुरानी राजधानी आमेर का गौरव धूमिल पड़ गया। नई राजधानी की सुरक्षा प्राचीरें आमेर से जा मिलती है और यद्यपि दोनों राजधानियों के मध्य छः मील की दूरी है परन्तु प्राचीरों के कारण दोनों एक ही इकाई प्रतीत होती है। भारत में जयपुर ही एक मात्र ऐसा नगर है जो योजनानुसार वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर बसाया गया है। सभी सड़कें और गलियां सीधी रेखा में समकोण बनाती हुई एक दूसरे को काटती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। कहा जाता है कि विद्याधर नामक एक बंगाली ने इस नगर का नक्शा तैयार किया था। सवाई जयसिंह की ज्योतिष तथा इतिहास सम्बन्धी अभिरुचियों में विद्याधर उसका प्रधान सहयोगी था। वैसे तो लगभग सभी राजपूत राजाओं को ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान होता था परन्तु सवाई जयसिंह का ज्योतिष विद्या में विशेष अधिकार था। अपनी शिक्षा और अध्ययन के द्वारा वह एक अच्छा वैज्ञानिक भी बन गया था। इस क्षेत्र में उसके ज्ञान की प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि बादशाह मुहम्मदशाह ने पंचाग के संशोधन का कार्य उसको सौंपा था। उसने नक्षत्रों तथा ग्रहों की गति को जानने के लिए अपने अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर अनेक यन्त्रों की रचना की और दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में विशाल वेधशालाएं स्थापित कीं। इनके परिणाम इतने अधिक सही होते हैं कि विद्वान् लोग भी आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इससे पूर्व उसने समरकन्द के शाही ज्योतिषी उलुगबेग के यन्त्रों का परीक्षण किया था परन्तु वे उसकी जिज्ञासा को शान्त न कर पाये। इसके बाद सात वर्ष तक अनेक प्रकार की परीक्षायें और अनुभव करके उसने कई प्रकार की तालिकाएं बनाई। इन्हीं दिनों में मैनुयुल नामक एक पुर्तगाली धर्मप्रचारक भारत आया हुआ था। उससे मिलकर जयसिंह ने पुर्तगाल राज्य की ज्योतिष विद्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की और इस कार्य के लिये उसने अपने कई विद्वानों को उसके साथ पुर्तगाल भेजा था। वहाँ के राजा ने जेवियर डि सिलवा नामक एक व्यक्ति को भारत भेजा जिसने जयपुर में आकर पुर्तगाली विद्वान् डि ला हायर के बनाये यन्त्र तथा ग्रहों की गति की तालिका सवाई जयसिंह को दी। उनकी परीक्षा करके जयसिंह ने चन्द्रमा के स्थान के सम्बन्ध में आधी डिगरी की भूल साबित की परन्तु यह स्वीकार किया कि दूसरे ग्रहों की जानकारी सही है। सवाई जयसिंह ने एक तुर्की ज्योतिषी के बनाये हुए यन्त्रों तथा तालिका के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का निर्णय दिया था।

उपयुक्त वनानिक वेधशालाए बनवाने के अलावा सवाई जयसिंह ने अपने राज्य में बहुत सा धन व्यय करके यात्रियो की सुविधा के लिए बहुत सी धर्मशालाएँ भी बनवायी थी। उसके इस कार्य में गौरव के साथ साथ सार्वजनिक हितो के लिये उदारता की भावना कहाँ तक निहित थी—यह कहना कठिन है, क्योंकि हिन्दुओं में यात्रियों के प्रति हमेशा से उदारता विद्यमान रही है और वे लोग अपने धन से उनकी सुविधा के लिये धर्मशालाए तथा कुओं का निर्माण करवाते रहे है।

जब हम इस बात की तरफ ध्यान देते है कि निरंतर युद्धो और दरबारी षडयन्त्रो जिनके परिणामो से वह अछूता न रहा था, जबकि विद्रोहो और उपद्रवो से मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो रहा था और मराठो के उदय से चारो तरफ संकट के बादल मंडराने लगे थे ऐसी स्थिति में उसने आस पास के सभी राज्यो की तुलना में आमेर को उन्नति के शिखर पर पहुचा दिया और उसकी रक्षा की तो हमे मानना पडेगा कि वह एक असाधारण व्यक्ति था। यह जानते हुये कि मुगल साम्राज्य का पतन सन्निकट है, उसके भग्नावशेषो पर उसने आमेर का विस्तार करने का निश्चय किया, फिर भी ऐसा करते हुये भी उसने अपने नाममात्र के बादशाह के साथ कभी विश्वासघात नही किया। जिस समय मुगल दरबार में फर्रुखसियर को साम्राज्य तथा जीवन से वंचित करने का षडयन्त्र चल रहा था, उस समय बादशाह का पक्ष लेने वाले कुछ राजाओ में से जयसिंह भी एक था। यदि फर्रुखसियर में तैमूर के वंशजो के समान साहस होता और वह अंतिम समय तक दृढ बना रहता तो उसकी वैसी दुर्गति न हुई होती।

मेवाड के इतिहास जिसके साथ वह राजनैतिक तथा पारिवारिक सम्बन्धो की वजह से काफी निकट था में उसके सार्वजनिक जीवन के बारे मे बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अपने स्वामी फर्रुखसियर को मौत के घाट उतार कर अपना प्रभुत्व कायम करने वाले सैयद बंधु काफी समझदार थे और अनावश्यक रूप से अपने शत्रुओं की संख्या में वृद्धि करना उचित नही समझते थे। अतः जब जयसिंह फर्रुखसियर को उसके भाग्य के भरोसे राजधानी को छोडकर अपने राज्य को चला आया तो सैयदो ने उसे छेडना उचित न समझा। वापस आकर सवाई जयसिंह अपने प्रिय विषयो—इतिहास और खगोल के अध्ययन में डूब गया। उसने बिना किसी विघ्न बाधा के तीन वर्ष पूर्ण शांति के साथ व्यतीत किये। इस अवधि में होने वाले संघर्ष मे उसने कोई भाग नही लिया। सन् 1721 ई० में सैयदो के पतन तथा मुहम्मदशाह की सत्ता के सुदृढीकरण के साथ उस खूनी संघर्ष का अंत हुआ। इस समय जयसिंह को दिल्ली बुलाया गया तथा उसे क्रमशः आगरा और मालवा का शासक नियुक्त किया गया। पिछले तीन वर्षो के शांतिमय समय में उसने उन भव्य स्मारको का निर्माण करवाया जो भारत के अंधकारमय इतिहास को प्रकाशमान कर रही है। इन निर्माण कार्यों में लगे रहने पर भी वह आमेर के गौरव अथवा अपने देश के

हितो के प्रति उदासीन नही रहा था। मुगल दरबार म रहत हुय उसन चिरकाल स चल आन वाल जजिया कर को हटवान क लिय सफल प्रयास किया था और आमर के निकट रहन वाल जाटो, जो प्राय आमर राज्य म उत्पात मचात रहत थ, का दमन करने की स्वीकृति लकर उनका दमन किया। परन्तु सन् 1732 ई म जब उसने यह अनुभव किया कि मराठा आक्रमणा को रोकन का प्रयास बकार है और साम्राज्य क विघटन का रोकना सभव नही है तो उस अपन राज्य क हितो की तरफ ध्यान देना पडा। उसन मराठा के नता पशवा बाजीराव स सधि कर ली। इस सधि के बारे म इतिहास म एसा कोई उल्लख नही मिलता जिसस उसका स्पष्टीकरण हो सके। इसलिय उसका कारण बताना कठिन है। उस युग क इतिहासकारो का कहना है कि व दोनो एक ही देश के रहन वाल थ और उन दोनो का एक ही धम था, इसलिय उनमे सधि हो गई। यह बात बहुत सगत प्रतीत नही होती। हमार हिसाब स उन दोनो म सधि हो जान का कोई विशष कारण था लकिन वह क्या था, यह नही कहा जा सकता। उसक अपन देशवासियो का मानना है कि जयसिंह के इस काय ने हिन्दुस्तान की कु जी मराठा को सौप दी। मराठो म उसका जो प्रभाव था, वह उसके बादशाह क लिये भी लाभप्रद सिद्ध हुआ। इसस मराठो की लूटमार जो दिल्ली तक बढ चली थी को नियन्त्रित करने म अथवा कम करन म सफलता मिली। इसके कुछ वर्षों बाद ही 1739 ई म नादिरशाह न दिल्ली पर आक्रमण किया। इस अवसर पर राजपूतो न बुद्धिमानी क साथ अपन हितो का ध्यान रखते हुये मुगल साम्राज्य का साथ नही दिया और अपन राज्यो म ही बने रहे। राजपूतो ने समझ लिया था कि नादिरशाह का सामना करना और उस पराजित करना आसान न था। वे मुगल बादशाह का सम्मान करते थ परन्तु सरकार की व्यवस्था एव नीति ने साम्राज्य के आधारस्तम्भो का बहुत पहले से ही आपसी सम्बन्धो को कमजोर बना दिया था। यहा पर हम कुछ घटनाओ का उल्लख करते हैं जिनसे राजपूतो की निष्ठा का खोखलापन स्पष्ट हो जाता है। जयसिंह क जीवन स सबधित 109 घटनाओ म से एक घटना एसी ही है, जो यह बात भी स्पष्ट करती है कि राजपूताना के राजघरानो की राजनतिक एव नतिक बुराइया म स आधी का उद्भव बहु विवाह प्रथा से हुआ था।

महाराजा बिशनसिंह के दो लडके हुय—जयसिंह और विजयसिंह। दोनो अलग अलग रानियो के पुत्र थ। विजयसिंह की माता न अपन पुत्र की सुरक्षा क प्रति सन्देह होन से उसे अपन पीहर खीचीवाडा भिजवा दिया। पुत्र क बडे होन पर उसे दिल्ली दरबार भेज दिया गया और बहुमूल्य जवाहिरात दरबार क प्रधान लोगो को उपहार म दिय गय। इस प्रकार की घू स के द्वारा विजयसिंह को वजीर कमरद्दीन का सरक्षण प्राप्त हो गया। शुरू म विजयसिंह की आकाक्षा आमर के उपजाऊ जिले बसवा का वशानुगत जागीर के रूप म प्राप्त करन तक ही सीमित थी। जयसिंह का जब इसकी जानकारी मिली तो उसने बिना किसी सकोच क उसकी

अभिलाषा की पूर्ति कर दी । परन्तु विजयसिंह की माता को इससे संतोष नहीं हुआ और उसने अपने पुत्र को और अधिक माग के लिये उकसाते हुये कहा कि तुम वजीर के पास जाओ और उससे कहो कि यदि वह उसे आमेर के सिंहासन पर बठा दे तो उसे पांच करोड़ रुपया पुरस्कार में दिया जायेगा तथा बादशाह की सेवा मे पांच हजार अश्वारोहियों की सेना रखी जायेगी । विजयसिंह ने दिल्ली जाकर वजीर को वैसा ही कहा । वजीर ने इस सम्बन्ध मे बादशाह से बातचीत की । बादशाह ने पूछा कि इसकी जमानत कौन देगा । वजीर ने कहा कि वह स्वयं जमानत देने को तयार है । तब जयसिंह को सिंहासनच्युत करके विजयसिंह को राज्याधिकार देने की सनद बनाये जाने का आदेश दिया गया । इसी बीच जयसिंह के पगड़ी बदल भाई खानदौरान को इसकी जानकारी मिली । उसने तत्काल दिल्ली मे नियुक्त जयसिंह के प्रतिनिधि कृपाराम को बुलाकर सब बातों की जानकारी दी । कृपाराम ने तत्काल जयसिंह को शाही दरबार की घटनाओं से अवगत करा दिया । इससे जयपुर मे चिंता व्याप्त हो गई क्योंकि वजीर इस समय सब कुछ करने मे सामर्थ्यवान था । निराश जयसिंह ने कृपाराम का पत्र अपने विश्वस्त नाजिर को दिया । उसने अपने राजा से कहा कि इस संकट मे सैनिक शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता धन का उपयोग भी निरर्थक है केवल राजनैतिक चालों से ही इसे विफल किया जा सकता है और षडयन्त्र का अंत करने के लिये षडयन्त्र का ही सहारा लिया जाना चाहिये । नाजिर के सुझावानुसार उसने अपने सभी प्रमुख सरदारों—नाथावतों के सरदार मोहनसिंह दीपसिंह बासखो के खोम्बानी, जोरावरसिंह नरुका हिम्मतसिंह भिलाई के कुशलसिंह मौजाबाद के भोजराज और माओली के सामंतसिंह आदि को बुलवा भेजा और उनसे अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुये कहा कि, 'आप लोगों ने मुझे आमेर के सिंहासन पर बठाया है । मैंने अपने भाई को संतुष्ट करने के लिये बसवा की जागीर उसे दे दी । अब वजीर कमरुद्दीन खां मुझे बलात् सिंहासन से उतारकर मेरे भाई को सिंहासन पर बठाना चाहता है ।' सरदारों ने उससे कहा कि आप चिंता न कीजिये और वे सम्पूर्ण स्थिति को संभाल लेंगे बशर्ते कि वह अपने भाई को बसवा देने के प्रति निष्ठावान रहे । सवाई जयसिंह ने उसी समय बसवा नगर का अधिकार पत्र लिखकर सामंतों को दे दिया और उसका पालन करने की शपथ ली । उसने अपने लिये कोई भी कार्य करने का अधिकार भी सामंतों को प्रदान कर दिया । सामंतों के पंचों ने अपना एक दूत विजयसिंह के पास भेज कर उसे सभी तरह से समझाने की चेष्टा की परन्तु विजयसिंह का उत्तर था कि उसको अपने भाई को दिये हुये अधिकार पत्र में विश्वास नहीं है । इस पर सामंतों ने उसको विश्वास दिलाया और प्रतिज्ञा की यदि जयसिंह ने अपना वचन भंग किया तो हम सब आपका साथ देंगे और आपको आमेर के सिंहासन पर बठायेंगे ।

विजयसिंह ने सामन्तों की दलील को मानते हुये बसवा के अधिकार पत्र को स्वीकार कर लिया और अपने संरक्षक वजीर को सम्पूर्ण स्थिति से अवगत कराया। परन्तु वजीर को किसी भी प्रकार से संतोष न हुआ। परन्तु उसने विजयसिंह को बसवा नगर पर अधिकार करने को कहा और उसकी सहायता के लिये खान दौरान और कृपाराम को साथ जाने का आदेश दिया। सामन्त लोग जो कि दोनों भाइयों में सुलह के लिये उत्सुक थे, ने विजयसिंह से मुलाकात की स्वीकृति मांगी। विजयसिंह ने आमेर में आकर मिलने से इंकार कर दिया। इस पर चौमू को मुलाकात का स्थान तय किया गया। बाद में इसके स्थान पर जयपुर से छः मील की दूरी पर स्थित सांगानेर को चुना गया जहां विजयसिंह ने आकर अपना डेरा लगाया था। जिस समय सवाई जयसिंह दरबार से विजयसिंह से मिलने के लिये जाने को तैयार हुआ ही था कि राजमाता का संदेश लेकर नाजिर दरबार में उपस्थित हुआ। राजमाता ने कहलवाया था कि 'जब दोनों लालजी[4] में जो परस्पर मेल और स्नेह पैदा होने जा रहा है तो उस शुभ अवसर को देखने से मुझे क्यों वंचित रखा जा रहा है।" राजा ने राजमाता की इच्छा सामन्तों के सम्मुख प्रकट की। सामन्तों ने कहा कि इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है।

नाजिर ने महाडोली की व्यवस्था की तथा राजमाता के साथ चलने वाली अन्तःपुर की स्त्रियों के लिये तीन सौ रथों को सजाया गया। परन्तु महाडोली (पालकी) में राजमाता के स्थान पर भाटी सामन्त उग्रसेन को बैठाया गया और प्रत्येक रथ के भीतर स्त्रियों के स्थान पर दो दो शस्त्रधारी सैनिक तैयार होकर बैठे। नाजिर और जयसिंह के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को इस विश्वासघात की जानकारी नहीं थी। राजधानी से यह काफिला रवाना हुआ। मार्ग में राजमाता के नाम पर सड़कों पर खड़े लोगों में रुपयों की वर्षा की गई। सभी लोग राजघराने के आपसी विवाद के खत्म हो जाने से प्रसन्न थे।

सांगानेर में जब जयसिंह और उसके सामन्तों को राजमाता के आगमन की सूचना मिली तो वे सभी लोग भी उसके साथ आ मिले। सर्वप्रथम दोनों भाई स्नेहपूर्वक मिले और प्रसन्नचित्त जयसिंह ने बसवा नगर के शासन की सनद विजयसिंह को देते हुए कहा कि 'यदि तुमको आमेर राज्य के सिंहासन पर बैठने की अभिलाषा है तो मैं स्वेच्छा से तुम्हारे लिये सिंहासन छोड़ दूंगा और बसवा में जाकर रहने लगूंगा।' उसकी उदारता से आत्मविभोर होकर विजयसिंह ने कहा कि उसकी तमाम आवश्यकताएं पूरी हो गई है। जब दोनों भाइयों के विदा होने का समय समीप आया तो नाजिर ने आकर कहा कि राजमाता की इच्छा दोनों भाइयों को प्रेमपूर्वक एक साथ देखने की है। अतः या तो सभी सामन्त लोग दूर चले जायं अथवा दोनों भाई उसके कक्ष में आकर उससे मिल लें। सामन्तों ने आपसी सलाह कर दोनों भाइयों से कहा कि हम लोग महल के भीतरी भाग की तरफ चले जाते हैं और आप दोनों राजमाता के कक्ष

मे जाकर उनमे मिल ले। जब दोनो कक्ष क द्वार पर पहुँचे तो जयसिह ने अपनी कमर से तलवार को खोलकर पहरेदार को देते हुये कहा कि माताजी की सेवा मे जाते समय इसकी क्या आवश्यकता है। विजयसिह ने भी भाई का अनुकरण किया और अपनी तलवार पहरेदार का सौप दी। इसी समय नाजिर न कक्ष का द्वार खाला। विजयसिह कक्ष क अन्दर चला गया। वहा उसन राजमाता क स्थान पर भीमकाय भाटी सरदार उग्रसेन को बठे देखा जिसन तत्काल विजयसिह को दबोच लिया और उमके हाथो और परो को अच्छी तरह से बाधकर "महाडाली' मे बठा कर उस पालकी को सागानेर से आमर राजधानी की तरफ रवाना कर दी। बाहर उपस्थित लोगा ने यही समभा कि राजमाता की पालकी वापस जा रही है। लगभग एक घटे के बाद सवाई जयसिह को सदेशा मिला कि विजयसिह को दुग के कदखान म पहुँचा दिया गया है। तब जयसिह कुछ सनिको के साथ राजमाता के कक्ष स बाहर निकला। उसका अकेला आते हुये देखकर साम तो न पूछा कि 'विजयसिह कहा है? जयसिह न कहा मेरे पट मे है। अपन पिता के हम दो पुत्र है। बडा होने के कारण मै राज्य का अधिकारी हूँ। मुझे सिहासन से उतारने के लिय उसने जो षडय त्र किया था उसका बदला मुझे विश्वासघात स देना पडा। उसन हम सबका सवनाश करने क लिय हमारे शत्रुओ का आमेर राज्य मे आमन्त्रित किया था।" जयसिह के इस उत्तर को सुनकर सभी साम त आश्चयचकित रह गय। चू कि उस समय इसका कोई निदान न था अत सभी साम त चुपचाप उस स्थान स चले गय। सागानर क बाहर वजीर द्वारा विजयसिह की सहायताथ 6 हजार अश्वारोहियो की सेना खडी थी। उस सेना के सेनानायक न जयसिह स पूछा कि विजयसिह कहा है? हमन आप पर जो विश्वास किया उसका क्या हुआ? जयसिह न नाराजगी के साथ कहा कि हमारे आपसी मामल म तुम्हे इन सब बातो का पूछने का क्या अधिकार है? आप लोग चुपचाप चले जायें अन्यथा मुझे आप सब लोगो के घोडो को छीन लेने का आदेश देना पडेगा। यह सुनकर मुगल सेना चुपचाप वापस चली गई। इस प्रकार विजयसिह को ब दी बनाया गया था।[5]

आमर क शाही ज्योतिषी एक सौ नौ गुणो के नमून जयसिह के इस कृत्य का आदशवादी लाग चाहे जो मूल्याकन करे, इन गुणो को गुनाह कहे परन्तु एक बात से कोई इ कार नही कर सकता कि सम्पूर्ण योजना अत्यधिक प्रभावशाली ढग से बनाई गई थी और जहा छल अथवा व्यूह रचना जरूरी हो गया जयसिह और उसके नाजिर न योग्यतापूवक उस पूरा किया। इस मामल म जयसिह के काय को आशिक रूप स न्यायोचित ठहराया जा सकता है क्योकि वजीर क प्रभाव और उसकी मदद से विजयसिह कभी भी उसको सिहासन स वचित कर सकता था। इतिहासकार न विजयसिह क भाग्य का उल्लेख नही किया है।

कछवाहा राज्य और उसकी राजधानी प्रत्येक बात क लिय सवाई जयसिह की ऋणी है। उसक पहल इसका राजनतिक प्रभाव वही तक सीमित था जहा तक

कि उसके राजाग्रो को उनकी योग्यतानुसार मुगल दरबार म मान सम्मान प्राप्त था। बादशाह बाबर स लकर ग्रौरगजेब के समय तक ग्रामेर क राजाग्रो का मुगलो क साथ पारिवारिक सम्ब ध रहा, पर तु किसी भी कछवाहा राजा का पजून क राज्य को विस्तृत करने मे विशेष सफलता नही मिल पाई थी। यहा तक कि ग्रौरगजेब की मृत्यु के बाद जबकि मुगलो की शक्तियाँ कमजोर पड गई थी ग्रौर मुगल साम्राज्य का विघटन शुरू हुग्रा तब तक ग्रामर को एक राज्य का नाम भी मही ग्रर्थों म नहीं मिल पाया था। इन मकटो क दौरान, बादशाह के सेनानायक के रूप म जयसिंह को ग्रपने पतृक राज्य का विस्तार ग्रौर सगठन करने का सुग्रवसर प्राप्त हुग्रा था। उसने जिस उपाय से दवती ग्रौर राजोर के स्वत त्र जिलो को ग्रपने ग्रधिकार मे लिया उसस उस समय के राष्ट्रीय चरित्र ग्रौर जयसिंह के स्वय के चरित्र क बारे म ग्रतिरिक्त जानकारी मिलती है।

जयसिंह के सिंहासन पर बठत समय ग्रामेर, दौसा ग्रौर बिसाऊ नामक तीन परगने उसके राज्य के ग्र तगत थे ग्रौर इ ही तीन परगनो से बन हुये राज्य का नाम ग्रामेर था। उसके पश्चिम की तरफ वाला सम्पूर्ण क्षेत्र उससे पृथक था ग्रौर मुगल साम्राज्य के ग्रजमेर सूबे का भाग था। शेखावाटी का राज्य ग्रपने पतृक राज्य स स्वतन्त्र तथा उससे कही ग्रधिक शक्तिशाली था। ग्रामर राज्य की सीमाए इस प्रकार थी–दक्षिण म शाही थाना चाकसू पश्चिम मे साभर झील उत्तर पश्चिम की तरफ हस्तिना ग्रौर पूव म दौसा तथा बिसाऊ का इलाका था। वहा के बारह प्रधान साम तो के ग्रधिकार म जो भूमि थी वह कोटरी बद के नाम से विख्यात थी। उस इलाक की भूमि बहुत साधारण थी। इतनी भूमि तो ग्रकेले मवाड के सलूम्बर सरदार के पास थी। पेशवा बाजीराव ने तो सलूम्बर सरदार का कछवाहा राजा क समकक्ष बताया था।

राजोर एक बहुत पुराना नगर था ग्रौर एक छोटे स राज्य देवती का राजधानी थी। इस राज्य पर राम के वशज कछवाहा की भाति ही श्रीराम क बड पुत्र लव के वशज बडगूजर जाति के सरदार का ग्रधिकार था। बडगूजर राजपूतो को राजपूत समाज म बडे सम्मान के साथ देखा जाता था क्याकि उ होने मुसलमानो के साथ ग्रपनी लडकियो का ववाहिक सम्ब ध करना कभी स्वीकार नही किया था। जिस समय कछवाहो न इस प्रकार के ववाहिक सम्ब ध कर ग्रपन पतन का उदाहरण प्रस्तुत किया था, बडगूजरा न ग्रपनी स्त्रिया का सम्मान बचान क लिये साका' का ग्रायोजन कर भाट कविया का सम्मान प्राप्त किया था।[6] जिन दिनो म सवाई जयसिंह बादशाह क प्रतिनिधि की हैसियत से राज्या पर शासन कर रहा था, उ ही दिनो मे बडगूजरो का राजा ग्रपनी सेना के साथ गगा के समीप ग्रनूपशहर म बादशाह की फौज के साथ कायरत था। जब वह शाही सेवा क सम्ब ध म ग्रपने राज्य से ग्रनुपस्थित रहता था तो राजोर की सुरक्षा का दायित्व उसका छोटा भाई

निभाता था। एक दिन वह जगल मे शूकर का शिकार करने के लिये जान की तयारी करने लगा और भोजन के लिये जल्दी मचाने लगा। इस पर उसकी भाभी ने उससे कहा कि तुम्हारी जल्दबाजी को देखकर कोई कह सकता है कि तुम जयसिंह को भाला मारन जा रहे हो।' भाभी के शब्दो से देवर को आघात लगा। उसे पुरानी बातें याद आने लगी। कछवाहो ने नरवर से आने के बाद जो पहला इलाका जीता था वह दौसा था। बडगूजरो का दौसा। देवर ने भाभी से कहा, मै ठाकुरजी की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जयसिंह के सीने पर भाले का प्रहार करने के बाद ही आपके हाथो का भोजन ग्रहण करूगा। दस घुडसवारो को सग ले उसने राजोर से प्रस्थान किया और आमेर के समीप धूलकोट मे पडाव किया। परतु धीरे धीरे सप्ताह और महीने गुजरते गये और उसको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर नही मिला। उसके पास जो कुछ धन सम्पत्ति थी वह खाने पीने पर खर्च हो गई और उसे अपने घोडे बेच कर दिन गुजारने के लिये विवश होना पडा। तब उसने अपने साथी सनिको को वापस भेज दिया और अकेला रहकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। उसे अपने अस्त्र शस्त्र भी बेच देने पडे। फिर भी अवसर न मिला। अब केवल एक भाला उसके पास बच गया। तीन दिन बिना भोजन के रहना पडा। चौथे दिन उसने अपनी पगडी भी बेच दी। तभी उसने अकस्मात राजा जयसिंह को आमेर के दुर्ग से निकल कर मोरा नामक दुर्ग की तरफ जाते देखा। उसी समय उसने निशाना ताककर अपना भाला जयसिंह की तरफ फेंका परतु निशाना चूक गया। जयसिंह के एक सनिक ने उसे पकड लिया और अपनी तलवार से उसका सिर काटने ही वाला था कि जयसिंह ने आदेश दिया कि इस स्थान पर इसकी हत्या मत करो इसे पकडकर राजधानी मे ले चलो। आमेर मे जब उसको जयसिंह के सामने प्रस्तुत किया गया तो जयसिंह ने उससे पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हारे इस कृत्य का क्या कारण था? उस बडगूजर ने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया कि मै देवती का बडगूजर हूँ और अपने भाभी के कुछ शब्दो से दुखी होकर मैंने आप पर भाला फेंका था। अब या तो मुझे मार डालो अथवा मुक्त कर दो।" उसने बताया कि वह कितने समय से अवसर की ताक मे था और यदि पिछले चार दिनो से भूखा न होता तो उसका निशाना कभी व्यर्थ नही जाता। जयसिंह ने उस समय तो सार्वजनिक उदारता का प्रदर्शन करते हुये उसे रिहा कर दिया। उसे एक घोडा और सम्मानसूचक वस्त्र प्रदान किये और पचास घुडसवारो की सुरक्षा मे उसे राजोर भिजवा दिया। घर आकर उसके सारी बातें अपनी भाभी को बताई जिसे सुनकर उसने कहा कि, आपने सोते हुये जहरीले साप को जगाया है। अब यह राज्य नष्ट हो जायगा।" वह जानती थी कि राजोर को हडपने के लिये जयसिंह को बहाना चाहिए था और इस घटना ने उसे बहाना प्रदान कर दिया है। बुजुर्गों की सलाह से स्त्रियों और बच्चो को राजा के पास अनूपशहर भिजवा दिया गया

ग्रौर देवती तथा राजोर के दुर्गों की सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाया गया तथा ग्राने वाल तूफान की प्रतीक्षा की जान लगी।

उपयुक्त घटना के तीसरे दिन जयसिंह न ग्रपने समस्त सरदारो को दरबार मे बुला भेजा ग्रौर देवती के विरुद्ध "पान का बीडा" रखा गया। परन्तु चौमू क सरदार मोहनसिंह न ग्रपन राजा की इस कायवाही म निहित सकट की तरफ सकेत किया। क्योंकि बडगूजर राजा बादशाही दरबार का एक सम्मानित सदस्य था ग्रौर इस समय बादशाही सेना के साथ कायरत था। प्रधान सामन्त की चेतावनी से सभी साम त चौक न हो गये ग्रौर किसी न भी उस बीडे को उठाने का साहस न किया। इसके बाद एक महीना बीत गया। जयसिंह ने देवती राज्य पर ग्राक्रमण करने के लिये फिर प्रश्न उठाया। पर तु किसी भी काटरी बद साम त ने ग्रपने सरदार की इच्छा क विरुद्ध बीडा उठान का प्रयास नही किया। तब एक सौ पचास सामन्तो क सरदार फतहसिंह बनवीर पुत्र ने हाथ स उस बीडे का उठाया ग्रौर उसन देवती राज्य पर ग्राक्रमण करन की तयारी की। जयसिंह न उसकी सहायता के लिये पाच हजार घुडसवार तनात कर दिय। फतेहसिंह सना सहित देवती राज्य की तरफ बढ़ा। वहा पहुच कर उसन सुना कि बडगूजर राजा का भाइ गणगोर का उत्सव मनाने क लिय राजोर से बाहर गया हुग्रा है। यह सुनकर वह भी गणगार के मल वाल स्थान की तरफ गया ग्रौर ग्रपना एक दूत भेजकर बडगूजर राजकुमार को कहलवाया कि वह समीप ही ग्रा पहुचा है। बडगूजर राजकुमार न उत्तेजनावश दूत को मरवा डाला। पर तु तभी जयपुर की सना ग्रा पहुची ग्रौर उस तथा उसके साथ क सनिको को मौत क घाट उतार दिया। राजोर की रानी चौमू के कछवाहा सरदार की बहिन थी। वह गभवती थी ग्रौर जिस समय फतहसिंह की सेना न राजोर पर ग्राक्रमण किया, वह प्रसव वेदना स पीडित थी। रानी न फतहसिंह को सदेश भिजवाया कि 'प्रिय भाई मर गभस्थ बच्च को जीवनदान देना।' पर तु कुछ समय बाद ही रानी को स्मरण हुग्रा कि इस ग्राक्रमण का मूल कारण तो वह स्वय है। उसी क शब्दो स यह सब बखेडा हुग्रा है। ऐसा सोचकर रानी न तलवार स ग्रपनी ग्रात्महत्या कर ली। फतहसिंह राजोर पर ग्रधिकार करन क बाद बडगूजर राजकुमार क कटे हुय सिर के साथ ग्रामर लौट ग्राया। जयसिंह क ग्रादेश स उस कटे हुय सिर को सभी के सामने दरबार म रखा गया। प्रधान साम त मोहनसिंह न ग्रपन सम्बन्धी का कटा हुग्रा सिर देखकर ग्रपनी ग्राखे मूद ली जिनसे ग्रासू टपकन लग थ। इसस राजा जयसिंह को बहुत ग्रसताप हुग्रा। उसन सोचा कि इसी मोहनसिंह न देवती पर ग्राक्रमण किय जान का विरोध किया था ग्रौर ग्राज मर शत्रु का कटा हुग्रा सिर देखकर ग्रासू बहा रहा है। यह राज्य का प्रधान साम त होत हुय भी राजद्रोही ग्रौर विश्वासघाती है। उसन मोहनसिंह स कहा जब मर ऊपर भाला फेंका गया था तब तुमने ग्रासू नही बहाय। उसने चौमू की जागीर जब्त कर उस ढूढाड़ स निर्वासित कर दिया। निर्वासित साम त न उदयपुर क राणा क यहा जाकर ग्राश्रय

लिया। इस प्रकार जयसिंह ने दवती और राजोर के इलाके वडगूजरा से छीनकर अपन राज्य का विस्तार किया। आजकल य इलाके 'माचेडी" के नाम से प्रसिद्ध है।

जयसिंह क चरित्र म एक बहुत बडा दाप उसका अत्यधिक मदिरापान था। वह मधुसजात अथवा चावल की मदिरा पीया करता था, इस बारे म इतिहासकार कोई जानकारी नही दता। पर तु इस प्रकार के अवगुणा के उपरा त भी इसम काई स देह नही कि जयसिंह अपन समय ग्रार दश का एक श्रेष्ठ पुरुष था।

जयसिंह स पहल तक, राजा मानसिंह द्वारा निर्मित महल जो कि नई राज धानी क कइ निजी मकाना स भी साधारण स्तर का था आमर के राजपरिवार का मुख्य निवास स्थान था। मिर्जा राजा जयसिंह ने वहा के महलो म कई नय कक्ष बनवाय थ पर तु वे भी राजमहल क गौरव के अनुकूल न थ।[7] सवाई जयसिंह न कछवाहा राजाग्रा क निवास स्थान को इतना अधिक दशनीय बना दिया कि उसकी तुलना बूदी या उदयपुर क महलो अथवा त्रेमलिन क राजमहल स की जा सकती है। सवत् 1784 (1728 ई) स उसने जयपुर की नीव रखी। उसके दरबार म मुसाहिब राजा मल्ल दिल्ली म नियुक्त उसका वकील कृपाराम और दक्षिण म शाही शिविर म नियुक्त उसका प्रतिनिधि बुधसिह कुम्भानी—सभी प्रतिभासम्पन्न और प्रतिष्ठित व्यक्ति थ। उसन जयपुर के लिय जा स्थान चुना उसके द्वारा वह आमेर के प्राचीन दुग को जो कालीकोह शिखर पर स्थित था, नई राजधानी के साथ मिलाने म सफल रहा।

जयसिंह न सामाजिक क्षेत्र म भी कई सुधार किय। राजस्थान म लडकियो क विवाह के अवसर पर बहुत अधिक धन खच किया जाता था जिसके कारण ही राजपूतो मे लडकियो को ज म लेते ही मार डालने की कुप्रथा बहुत पुराने समय से चली आ रही थी। जयसिंह ने इस प्रकार के खर्चों को नियन्त्रित करने के लिय नियम बनवाय। अ य सभी हि दू शासका की भाति वह भी सहिष्णु शासक था और ब्राह्मण मुसलमान, जन सभी उसके आश्रय के अधिकारी थे। ज्ञान के क्षेत्र म अग्रणी होने के कारण उसके राज्य म जनिया को अधिक प्रोत्साहन मिला। जयसिंह जन धम के इतिहास तथा उसक सिद्धा ता क बार म बहुत अधिक जानकारी रखता था। विद्या धर नामक व्यक्ति जा उसके ज्यातिप विनान म सहायक था और जिसकी सहायता ग्रार याग्यता स जयपुर नगर का निर्माण हुआ था वह जन धम का अनुयायी था। वह सिद्धराज जयसिंह के म त्री हेमाचाय का वशज था।

आमर क राजा जयसिंह की अ या य याग्यताग्रा का एक बडा प्रमाण यह भी है कि उसने अपन शासनकाल म अश्वमेध यन करने का विचार किया था। उसके एतिहासिक नान ने उस इस तथ्य स परिचित करवा दिया कि पाडव वश के ज मजय

से लेकर कन्नौज के जयच द तक जितने भी राजाग्रो ने इस यज्ञ को किया उन
ने अपने सवनाश को ग्राहूत किया था । इम यन का विचार वही राजा करता है
अ य राजाग्रो की अपेक्षा अपने ग्रापको अधिक शक्तिशाली ममझता हो । मुगल
वार मे जितने भी राजा थे, सवाई जयसिंह उन मभी म अधिक शक्तिशाली
यदि उसने यज्ञ प्रारम्भ कर घोडा छोडा होता, जसा कि इस यन का नियम है,
सम्भव है कि गगा के किनारे पर उमको कोई नही पकडता पर तु यदि घोड न
स्थल की तरफ मु ह किया होता तो इसमे कोइ मदेह नही कि वह राठौडो के प्र
बल की शोभा वढाता, और यदि उमने चम्बल की ग्रोर मु ह किया होता तो ह
लोग अपने 'जीव ग्रौर मट्टी' का खतरा उठाकर भी उसकी पक लते । र्मा
सवाई जयसिह ने बहुत सा वन खच करके एक यनशाला वनवाई जिसकी छत
स्तम्भो को चादी की पत्तरो से मढवाया था । इस वात की मभावना है कि सूय
घोडे को इम यज्ञशाला के चारो ग्रार घुमाकर ग्रग्निदेव को ग्रर्पित कर दिया ग
हो । जयसिंह की यह यज्ञशाला जो जयपुर शहर के कीमती रत्नो म स एक थी
उमके वशज जगतसिंह ने उसको उमकी ममृद्धि से वचित कर दिया । उसन चादी
पत्तरो को निकाल कर साधारण पत्तर लगवा दिये । जयसिंह ने जिन बहुमूल्य ग्र
का मग्रह किया था[8] उमके दो भाग कर दिये थे । उसका एक भाग किसी प्र
जयपुर की एक वेश्या के ग्रधिकार म पहुच गया ग्रौर दूसरा भाग रद्दी वेचन वा
के पास पहुच गया ।

चवालीस वर्षो तक शासन करने के वाद सवत् 1799 (1743 ई) म मवा
जयसिंह का स्वगवास हो गया । उसकी मृतदेह के साथ उसकी तीन विवाहिता रानि
ग्रौर ग्रनक उपपत्निया सती हुइ । उसने ग्रपन जीवनकाल म जिस विज्ञान की उन्नति
लिये इतना परिश्रम किया था उसकी मृत्यु के वाद उसका विकास रुक गया ।

स दभ

1 सवाई जयसिंह का ज म 3 दिसम्वर, 1688 को हुग्रा था । दस वष की
ग्रल्पायु म ही ग्रौरगजेब ने उसे शाही सेवा के लिये बुला भेजा था । वह
1700 ई म ग्रामेर के सिंहासन पर वठा था ।

2 वहादुरशाह ने स्वय ग्रामेर ग्राकर विजयसिंह को ग्रामेर का राजा घोषित
किया था ।

3 टॉड ने लिखा है कि 'एक सौ नव गुण जयसिंह" नामक ग्र थ म उनके वारे
म कितने ही विवरण भरे पड़ हैं ।

4 राजपूतो म माताए स्नेहवश ग्रपने पुत्रो को लालजी कहकर पुकारती थीं ।

5 अन्य ऐतिहासिक स्रोतो से इस कथा की पुष्टि नही होती। बहादुरशाह विजयसिंह को आमेर के सिंहासन पर बैठाकर चला गया था। बाद मे जयसिंह ने जोधपुर और उदयपुर की सेना की सहायता से उसे जयपुर से खदेड दिया था।

6 पृथ्वीराज के कवि चन्द ने बडगूजरो की शूरवीरता का विस्तार के साथ वर्णन किया है।

7 सवाई जयसिंह ने अपने पूर्वजो द्वारा निर्मित महलो को ज्यो का त्यो कायम रखा और उनके समीप नये महल का निर्माण करवाया था।

8 टाड ने लिखा है कि जयसिंह ने बहुत परिश्रम तथा धन खर्च करके राजपूताने के विभिन्न राजवशो के प्राचीन इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थो का सग्रह किया था।

अध्याय 59

ईश्वरीसिंह से जगतसिंह तक का वृत्तान्त

इन दिनों में राजपूताना की तीन प्रमुख शक्तियों द्वारा जो सघ बनाया गया था, उसका उल्लेख मेवाड के इतिहास में किया जा चुका है। यह एक प्रकार से आत्म सुरक्षा का सघ था, और जबकि राठौडो ने गुजरात के क्षेत्रों को मारवाड में मिलाकर अपने राज्य का विस्तार किया तो कछवाहो ने आस पास के समस्त जिलो को आमेर के अन्तगत कर अपने राज्य को सगठित किया। शेखावाटी सघ को भी जयपुर राज्य का करद् क्षेत्र बनने के लिए विवश किया गया और यदि जाटो का उदय न हुआ होता तो जयपुर राज्य की सीमा साभर से यमुना तक फल गई होती।

सवाई जयसिंह के बाद ईश्वरीसिंह एक सुस्पष्ट सीमाकित क्षेत्र भरपूर राज कोष एक निपुण मन्त्रिपरिषद और एक अच्छी सेना का उत्तराधिकारी बना, परन्तु सामाजिक ढाचे में बोये गये सर्वनाश के बीज शीघ्र ही अकुरित हो उठे और इस बार भी बहु विवाह की प्रथा उसका माध्यम बनी। राजस्थान में प्रचलित उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार ईश्वरीसिंह जयसिंह का उत्तराधिकारी था, परन्तु जयसिंह का एक छोटा पुत्र माधोसिंह जो कि मेवाड की एक राजकुमारी से पैदा हुआ था, जयसिंह के साथ मेवाड की राजकुमारी के साथ विवाह के समय जो निर्णय हुआ था, उसके आधार पर जयसिंह का उत्तराधिकारी बनने का अधिकारी था। उस समय जयसिंह ने स्वय ज्येष्ठाधिकार का अतिक्रमण करते हुये इस विवाह से उत्पन्न होने वाले पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाने का वचन दिया था। इन सब बातो और दुर्भाग्यशाली ईश्वरीसिंह के लिये इसके घातक परिणामो पर पहले विचार किया जा चुका है। ईश्वरीसिंह में उस योग्यता और पराक्रम का अभाव था और राजपूत राजा को अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए इनकी सख्त आवश्यकता होती थी। अब्दाली के आक्रमण के समय उसके आचरण को कायरतापूर्ण माना गया यद्यपि प्रधान सेनापति कमरुद्दीन के मारे जाने के बाद युद्धभूमि से लौट आने के राजनैतिक इरादे भी हो सकते थे, परन्तु उसकी स्वय की पत्नी द्वारा असतोष प्रकट करना उसकी कायरता को सिद्ध करती है। जयसिंह बाद में मेवाड की राजकुमारी के साथ विवाह करने की शर्तों पर पश्चाताप करता रहा और इस विवाह से उत्पन्न माधोसिंह को सतुष्ट रखकर ईश्वरी

सिंह के उत्तराधिकार को सुरक्षित रखने की दृष्टि से अपने जीवनकाल में ही उसने माधोसिंह को राज्य के चार परगने—टोंक फागी रामपुरा और मालपुरा जागीर के रूप में प्रदान कर दिये थे। इतनी बड़ी जागीर देना एक असाधारण बात थी। मेवाड़ के राणा जिसने अपने भानजे के अधिकारों का समर्थन किया था, उन्हीं दिनों ने माधोसिंह को मेवाड़ राज्य के इलाके—रामपुरा भानपुरा और टोंक रामपुरा के इलाके दे दिये थे जो आगे चल कर माधोसिंह को जयपुर के सिंहासन पर बैठाने की सौदेबाजी में होल्कर को दे दिये गये थे। माधोसिंह को जितने इलाके प्राप्त हुए थे वे अपने आप में एक छोटे राज्य से कम न थे और उनकी वार्षिक आय चौरासी लाख रुपये थी। राजपूतों के इस आपसी संघर्ष में बर्बर मराठों के हस्तक्षेप ने मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद उनकी स्वाधीन होने की आकांक्षाओं पर तुषारपात कर दिया और वे पहले से भी अधिक अपमानजनक पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ दिये गये। उससे मुक्त होने का प्रस्ताव अब उनके सामने रखा गया था।

सिंहासन पर बैठते ही माधोसिंह ने अपनी योग्यता का परिचय दिया। यद्यपि वह अपने द्वारा किये गये समझौता के प्रति निष्ठावान रहा परन्तु उसने शीघ्र ही मराठों को बता दिया कि वह अपने मामलों में उनका हस्तक्षेप कभी पसन्द नहीं करेगा। यदि जाटों की बढ़ती हुई शक्ति ने उसके ध्यान और साधनों को बांट नहीं दिया होता और यदि वह अधिक दिनों तक जीवित रहा होता तो वह निश्चय ही राठौड़ों के साथ मिल कर मराठों की शक्ति को पूरी तरह से कुचल देता। परन्तु इन पड़ौसी जाटों ने उसकी सम्पूर्ण योजना को अस्त व्यस्त कर दिया। यद्यपि अब जाटों का इतिहास सर्वविदित है फिर भी एक ऐसी शक्ति के उदय का जो अपने उदय के पचास वर्षों के बाद ही ब्रिटिश सेना को झुकाने और वह भी एक ऐसे सेनानायक जिसका नाम सम्पूर्ण पूर्व में विख्यात था और भरतपुर के घेरे के पहले उसे (लार्ड लेक) हर अभियान में सफलता मिली थी, का संक्षेप में उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा।

जाट लोग महान् जिट जाति की शाखा है जिसके सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यद्यपि जाटों का वंश राजस्थान के छत्तीस राजकुलों में से एक था परन्तु धीरे धीरे उस वंश का राजनैतिक पतन हो गया फिर भी जाटों ने सदा स्वाधीन होने की चेष्टा की। जाट लोग अत्यन्त शूरवीर और लड़ाकू थे। उस व्यक्ति का नाम चूड़ामण था जिसने अपने देश के लोगों को हल छोड़कर अपने निरंकुश बादशाह के विरुद्ध शस्त्र धारण करने के लिए प्रोत्साहित एवं संगठित किया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार संघर्ष से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाते हुए उन लोगों ने थून और सिनसिनी नामक स्थानों जहां वे खेती करते थे दुर्ग बनाने का कार्य आरम्भ किया और बहुत शीघ्र अपने लिये लुटेरों का नाम अर्जित कर लिया और इस उपाधि को दिल्ली तक लूटमार करके सार्थक भी कर दिखाया।

सय्यद बधुग्रो, जो उस समय सत्ता मे थे, ने सवाई जयसिह को उनके दुर्गों पर ग्राक्रमए करके उनका दमन करने का दायित्व सौंपा । जयसिह न थून ग्रौर सिनसिनी को जा घेरा । पर तु जाटा ने जो ग्रभी ग्रपने उदय के शशव काल म ही थे न उमी वहादुरी के साथ ग्रपने मिट्टी के दुर्गों की रक्षा की, जसी वहादुरी के लिए उ हाने ग्रागे चलकर ख्याति प्राप्त की थी । ग्रामर के शाही ज्योतिषी को विफल होना पडा ग्रौर वारह महीने के परिश्रम क वाद दोनो स्थानो से घेरा उठा कर वापस लाटन को विवश होना पडा ।

इस घटना क थोडे दिनो वाद ही, चूडामए ग्रौर उसके छोटे भाई वदनसिह जो कि सम्पूए भूमि रा सयुक्त मालिक था, म तनाव उत्पन्न हो गया । तनाव का कारए वदनसिह का ग्रशिष्ट ग्राचरए था । चूडामए न उस ब दी बनाकर एकान्त स्थान मे रग्व दिया ग्रौर उमी ग्रवस्था मे उसे कुछ वष यतीत करने पडे । वाद म सवाई जयसिह के मध्यस्थ वनन तथा कुछ ग्र य भोमिया सरदारो द्वारा जमानत देने पर उसे व दीवस्था से रिहा कर दिया गया । वदनमिह का पहला काम वहा से भाग कर जयपुर म ग्राश्रय प्राप्त करना ग्रौर वहा के राजा को सेना सहित लाकर थून का घेरा डालना था । छ महीने तक जाटा न एक वार पुन थून की रक्षा की परन्तु वाद मे उ ह ग्रात्मसमपए करना पडा ग्रौर थून को भूमिसात कर दिया गया । चूडामए ग्रपने लडके मोहकमसिह के साथ वहा से वच निकला ग्रौर वदनसिह को जाटो का सरदार घाषित किया गया तथा डीग नगर म जाटो के राजा के रूप मे जयसिह द्वारा उसका ग्रभिषेक किया गया । ग्रागे चलकर डीग न भी ग्रच्छी ख्याति ग्रर्जित की ।

वदनसिह के ग्रनेक लडके हुये जिनम स चार—सूरजमल, शोभाराम, प्रताप सिह ग्रौर वीरनारायए ने ग्रपन पराक्रम तथा सनिक योग्यता के लिए विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की । वदनसिह न ग्रासपास के ग्रनेक शाही इलाका को जीत कर ग्रपनी सत्ता का विस्तार किया । उसन वेर नामक स्थान पर एक दुग बनवाया ग्रौर सवप्रथम सूरजमल को वहा क समस्त ग्रधिकार दिय । वाद म उसन सिहासन त्याग कर ग्रपने राज्य के सभी ग्रधिकार सूरजमल को सौप दिय, उस समय वर प्रतापसिह को सौप दिया गया था ।

ग्रपने पूवजो की योजना को कार्यान्वित करन योग्य जिस सामथ्य ग्रौर दिलरी की ग्रावश्यकता थी, सूरजमल मे उसका ग्रभाव न था । उसका पहला काम ग्रपन एक सम्ब धी कमा को भरतपुर के दुग स निकाल वाहर करना था । ग्रागे चल कर यही भरतपुर जाटो की विख्यात राजधानी वना । सवत् 1820 (1764 ई) मे उसन वादशाह की राजधानी दिल्ली को ही लूटने का विचार किया, पर तु वह ऐसा कर पाता उससे पहले ही वलोचिया के एक दल ने शिकार खेलन म निमग्न सूरजमल

को घेर कर मार डाला। उसक पाच लडक थे–जवाहरसिंह रतनसिंह नवलसिंह नाहरसिंह और रणजीतसिंह। हरदेवबख्श नाम का एक दत्तक पुत्र भी था, जिसे उसन शिकार के समय जगल म पाया था। सूरजमल उस बच्चे को घर ले आया और अपने पुत्र के समान ही उसका पालन पोषण किया। उसके पहले दानो पुत्र एक कुर्मी जाति की विवाहिता स्त्री से पदा हुये थे। तीसरा पुत्र एक मालिन जाति की स्त्री से और अतिम दोनो जाट स्त्रियो से पदा हुए थे।

सूरजमल के बाद जवाहरसिंह जाटा का राजा बना। वह जयपुर के राजा माधोसिंह का समकालीन था। सिंहासन पर बठते ही उसन माधोसिंह के साथ दो-दो हाथ करन का निश्चय कर लिया। इसके दो मुख्य कारण थे। पहला कारण माधोसिंह द्वारा मराठा का दप चूण करन के लिये उसके प्रयासा को निष्फल बनाना और दूसरा जयपुर के माचडी इलाक का पृथक कर जयपुर राज्य के विघटन का सिलसिला शुरू करना। हिजरी सन 1182 म जवाहरसिंह ने आमेर क राजा से कामा नामक जिला प्राप्त करन क लिय उसस बहुत अनुरोध किया पर तु उसकी प्राथना अस्वीकृत कर दी गई। जवाहरसिंह न तत्काल अपना असतोष व्यक्त किया और आमेर के राजा को सूचित किय बिना ही पुष्कर तीथ क दशन के बहान अपनी सना सहित जयपुर क इलाको स गुजर गया। पुष्कर म उसकी मारवाड के राजा विजयसिंह स मुलाकात हुई और जवाहरसिंह के जाटवशी हात हुए भी उसने उसकी पगडी के बदल म अपनी पगडी बदली—पगडी बदलने की प्रथा मैत्री और बधुत्व का प्रतीक मानी जाती थी। इन दिनो म माधोसिंह का स्वास्थ्य ठीक नही था और राज्य की शासन व्यवस्था उसके निर्देशा के अनुसार उसके दो भाई—हरसहाय और गुरुसहाय चलाते थ। दोना भाइयो न जवाहरसिंह के अपमानजनक आचरण का उल्लेख करते हुए माधोसिंह से पूछा कि इस स्थिति मे हमे क्या करना चाहिये। माधोसिंह ने निदेश दिया कि उसको एक पत्र द्वारा सूचित कर दिया जाय और यह चेतावनी भी द दी जाय कि वापसी म वह जयपुर के प्रदेशा से होकर जाने का साहस न कर। इसक अलावा माधोसिंह न समस्त सरदारा का अपन सैनिक दस्तो सहित राजधानी म एकत्र हाने क आदेश जारी करने को भी कहा ताकि यदि जाट राजा पहले की तरह जयपुर राज्य से गुजरने का प्रयास करे तो उचित उत्तर दिया जा सके। पर तु जाट राजा ने परिणामो की तरफ ध्यान न देन का निश्चय कर रखा था, अत उसने चेतावनी की चि ता न करत हुए उसी माग से वापस लौटने का निश्चय किया। झगडे के लिये यह यथोचित आधार था और कोटरीबद सयुक्त रूप स जाटो की समतावादी व्यवस्था के विरुद्ध अपनी कुलीन व्यवस्था की सुरक्षा के लिये चल पडे। दोनो पक्षा के मध्य भयकर सघष लडा गया। यद्यपि इस युद्ध का परिणाम कछवाहा क पक्ष मे रहा और जाट राजा को युद्धभूमि से भागना पडा पर तु इस युद्ध स आमेर का भारी क्षति उठानी पडी, आमेर राज्य के कितन ही प्रधान साम त इस युद्ध म वीरगति को प्राप्त हुये।

माचेडी के एक स्वतन्त्र राज्य म परिवर्तित हो जाने के पीछे यह यु
एक अप्रत्यक्ष कारण बना। माचेडी के बारे मे कुछ शब्द लिखना आवश्यक
माचेडी का इलाका नरुका वशी प्रतापसिंह के अधिकार म था और वह ज
राज्य का सामन्त था। किसी दोषवश माधोसिंह न उस राज्य से निर्वा
कर दिया। वह भाग कर जवाहरसिंह की शरण मे चला गया, जिसन उस
के लिये कुछ भूमि भी प्रदान कर दी। माचेडी के भूतपूर्व सरदार के साथ उसक
कमचारी—एक, खुशालीराम और दूसरा नन्दराम जो जयपुर दरबार म उ
प्रतिनिधि था, भी जाट राज्य म चले आये थे। यद्यपि भरतपुर म उन्हे
सुविधाए उपलब्ध करा दी गई थी, फिर भी जाटो द्वारा उनके राज्य का किया
अपमान वे भुला नही पाये। माचेडी सरदार ने सुलह की दृष्टि म अथवा क
राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर, जाटो का आश्रय स्थान छोड दिया और पुन अ
पुराने निवास स्थान को लौट आया। उसी समय जवाहरसिंह के साथ युद्ध
आशका बढ गई थी और वह भी अपन सनिको सहित आमेर के झण्ड क नीचे प
गया और युद्ध जीतन म महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसकी इस स्वामिभक्ति
प्रसन्न होकर माधोसिंह ने उसके पुराने अपराध क्षमा कर दिय और माचेडी
इलाका पुन उसको लौटा दिया। इसके चार दिन बाद ही माधोसिंह की मृ
हो गई।

पेट की बीमारी से माधोसिंह की मृत्यु हुई थी। उसने सत्रह वर्ष तक रा
किया था। यदि वह और अधिक जीवित रहा होता तो शायद उन सब दुष्परिणा
को दूर करने मे सफल हो जाता जो कि आमेर की गद्दी प्राप्त करन के परिणाम
स्वरूप उत्पन्न हुये थे। उसकी मृत्यु के बाद उसका शिशु पुत्र सिंहासन पर बैठा जिस
फलस्वरूप माधोसिंह की मृत्यु क बाद जयपुर राज्य का पतन शुरू हो गया। माधोसि
न अपने राज्य म कई नगरो का निर्माण करवाया। उनमे से रणथम्भौर के निक
उसी के नाम पर बसाया गया नगर माधोपुर बहुत अधिक प्रसिद्ध है। यह व्यापारिक
नगर रजवाडो के अन्य व्यापारिक केन्द्रो से अधिक सुरक्षित है। विज्ञान क प्रति प्रेम की
भावना उसको अपन पिता स विरासत मे प्राप्त हुई थी और उसी के कारण जयपुर
विद्वान लोगो का आश्रयस्थल बना रहा।

पृथ्वीसिंह द्वितीय, माधोसिंह का उत्तराधिकारी बना। वह ज्येष्ठ था परन्तु
उसकी माता छोटी रानी थी। बडी रानी से प्रतापसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।
अत रजवाडा की प्रथा के अनुसार बडी रानी (प्रताप की मा) पृथ्वीसिंह की अभि
भाविका बनी। वह चन्द्रावत वश की थी। वह महत्वाकाक्षी तथा दृढ आचरण की
महिला थी। उसने अपन प्रेमी फीरोज नामक एक महावत को पदोन्नत कर अपनी
सलाहकार परिषद् का एक सदस्य मनोनीत कर दिया। उसका यह कार्य सामन्तो
को पसन्द न आया और व रानी के विरोधी बन गय। वे दरबार को छोडकर अपना

अपनी जागीरा मे चले गये। बडी रानी न साम ता के चले जान की कुछ भी परवाह न की और अम्बाजी नामक एक मराठा सरदार की आधीनता मे एक भडत (वतनिक) सेना गठित करके राजस्व वसूली का काम जारी रखा। इन दिना मे आरतराम नाम का व्यक्ति राज्य का दीवान अथवा प्रधानमत्री था और खुशालीराम बोरा उसका सहायक था। बोरा दरबार की राजनीति म अत्य त निपुण था और आगे चलकर उसन काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। लेकिन फीरोज के बढते हुय प्रभाव ने उसकी योग्यता को भी कमजोर बना दिया। अभिभाविका रानी और राज्य–दोना उसकी मुट्ठी मे थे। इसी स्थिति म नौ वप गुजर गये जबकि एक दिन घोडे से गिरकर पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु हो गई। इस दुघटना से राज्य म यह अफवाह फल गई कि बडी रानी ने अपने पुत्र प्रतापसिंह को सिंहासन पर बठाने के लिये पृथ्वीराज को जहर देकर मार डाला है। यद्यपि इस अफवाह का आधार सही नही था। यह सत्य है कि पृथ्वीराज बडी रानी के प्रभाव से अपने को मुक्त नही कर पाया था। फिर भी इस अवधि मे उसकी दो शादिया हुई थी। एक बीकानर की राजकुमारी के साथ और दूसरी किशनगढ की राजकुमारी के साथ। दूसरी शादी से उसके मानसिंह नामक एक पुत्र पदा हुआ। राजपूताना के प्रत्येक राज्य मे सिंहासन के लिये कोई न कोई अन्य दावेदार होता आया है और मानसिंह आमेर के सिंहासन का तथाकथित दावेदार बना और उसकी दावेदारी ने अनेक वर्षो तक आमेर दरबार को चन नही लेने दिया। पृथ्वीसिंह की मृत्यु के बाद बालक मानसिंह को गुप्त ढग से अपने ननिहाल किशनगढ पहुचा दिया गया, लेकिन वहा भी उसे पर्याप्त सुरक्षा न मिल पाई, इसलिये उसे सिंधिया के आश्रय मे पहुचा दिया गया और तब से उस बालक का पालन-पोषण ग्वालियर मे सिंधिया की उदारता से होता रहा।

अभिभाविका राजमाता और उसकी परिषद् जिसमे वह महावत भी था और खुशालीराम जो अब प्रधानमत्री था, न तत्काल प्रतापसिंह को आमेर के सिंहासन पर बिठा दिया। खुशालीराम को इ ही दिना मे राजा का खिताब भी दिया गया था। उसन अब अपन प्रतिद्वद्वी फीरोज महावत के प्रभाव को समाप्त करने का निश्चय किया और इसके लिए उसन जिन उपायो का सहारा लिया उनसे उसके पुराने मालिक माचेडी के साम त को अपनी स्वत त्रता प्राप्त करन मे भी सहायता मिली। प्रतापसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर प्रमुख साम ता मे यही एकमात्र साम त था जो अनुपस्थित रहा। खुशालीराम न साम त की कटु भत्सना की। उसकी योजना अपने प्रतिद्वद्वी से राहत पाने के लिये राज्य म अधिक स अधिक असमजस की स्थिति उत्पन्न करन की थी। यह असतोप शाही दरबार तक पहुँचे, इस उद्देश्य से उसने जमीदारा को व्यक्तिगत आदेश भेजे कि व भूमिकर का भुगतान रोक दे। पर तु इस प्रकार की लघु चाले निष्फल ही रहती यदि उसन अपनी योजना की पूर्ति के लिये मुगल सिंहासन क अ तिम अवशेषा के साथ साठ गाठ न होती। नजफखा इन दिना मे बादशाह का प्रधान सेनापति था। उसने मराठा की सहायता से आगरा नगर से

माचेडी के एक स्वतन्त्र राज्य मे परिवर्तित हो जाने के पीछे यह यु
एक अप्रत्यक्ष कारण बना। माचेडी के बारे मे कुछ शब्द लिखना आवश्यक
माचेडी का इलाका नरुका वशी प्रतापसिंह के अधिकार म था और वह ज
राज्य का सामन्त था। किसी दोषवश माधोसिंह ने उस राज्य से निव
कर दिया। वह भाग कर जवाहरसिंह की शरण मे चला गया, जिसने उसे यु
के लिये कुछ भूमि भी प्रदान कर दी। माचेडी के भूतपूर्व सरदार के साथ उस
कर्मचारी—एक, खुशालीराम और दूसरा न दराम जो जयपुर दरबार म उ
प्रतिनिधि था, भी जाट राज्य म चले आये थे। यद्यपि भरतपुर म उन्हे
सुविधाए उपलब्ध करा दी गई थी, फिर भी जाटो द्वारा उनके राज्य का किया
अपमान वे भुला नही पाये। माचेडी सरदार ने सुलह की दृष्टि म अथवा व
राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर, जाटो का आश्रय स्थान छोड दिया और पुन
पुराने निवास स्थान को लौट आया। उसी समय जवाहरसिंह के साथ युद्ध
आशका बढ गई थी और वह भी अपने सनिको सहित आमेर के भण्ड के नीचे प
गया और युद्ध जीतने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसकी इस स्वामिभक्ति
प्रसन्न होकर माधोसिंह ने उसके पुराने अपराध क्षमा कर दिये और माचेडी
इलाका पुन उसको लौटा दिया। इसके चार दिन बाद ही माधोसिंह की मृ
हो गई।

पेट की बीमारी से माधोसिंह की मृत्यु हुई थी। उसने सत्रह वर्ष तक रा
किया था। यदि वह और अधिक जीवित रहा होता तो शायद उन सब दुष्परिणा
को दूर करने म सफल हो जाता जो कि आमेर की गद्दी प्राप्त करने के परिणा
स्वरूप उत्पन्न हुये थे। उसकी मृत्यु के बाद उसका शिशु पुत्र सिंहासन पर बठा जिस
फलस्वरूप माधोसिंह की मृत्यु के बाद जयपुर राज्य का पतन शुरू हो गया। माधोसि
ने अपने राज्य म कई नगरो का निर्माण करवाया। उनम से रणथम्भौर के निक
उसी के नाम पर बसाया गया नगर माधोपुर बहुत अधिक प्रसिद्ध है। यह व्यापारि
नगर रजवाडा के अन्य व्यापारिक केन्द्रों से अधिक सुरक्षित है। विज्ञान के प्रति प्रेम की
भावना उसको अपने पिता से विरासत म प्राप्त हुई थी और उसी के कारण जयपु
विद्वान लोगो का आश्रयस्थल बना रहा।

पृथ्वीसिंह द्वितीय, माधोसिंह का उत्तराधिकारी बना। वह ज्येष्ठ था परन्तु
उसकी माता छोटी रानी थी। बडी रानी से प्रतापसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।
अत रजवाडो की प्रथा के अनुसार बडी रानी (प्रताप की मा) पृथ्वीसिंह की अभि
भाविका बनी। वह चन्द्रावत वश की थी। वह महत्वाकांक्षी तथा दृढ आचरण की
महिला थी। उसने अपने प्रेमी फीरोज नामक एक महावत को पदोन्नत कर अपनी
सलाहकार परिषद् का एक सदस्य मनोनीत कर दिया। उसका यह काय साम ता
को पसन्द न आया और व रानी के विरोधी बन गय। वे दरबार को छोडकर अपना

अपनी जागीरो मे चले गये। वडी रानी ने साम तो के चले जाने की कुछ भी परवाह न की और अम्बाजी नामक एक मराठा सरदार की आधीनता म एक भडैत (वतनिक) सेना गठित करके राजस्व वसूली का काम जारी रखा। इन दिना म आरतराम नाम का व्यक्ति राज्य का दीवान अथवा प्रधानमत्री था और खुशालीराम बोरा उसका सहायक था। बोरा दरबार की राजनीति मे अत्य त निपुण था और आगे चलकर उसने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। लेकिन फीराज के बढते हुये प्रभाव ने उसकी योग्यता को भी कमजोर बना दिया। अभिभाविका रानी और राज्य--दोना उसकी मुट्ठी मे थे। इसी स्थिति म नौ वष गुजर गय जबकि एक दिन घोडे से गिरकर पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु हो गई। इस दुघटना स राज्य म यह अफवाह फल गई कि बडी रानी ने अपने पुत्र प्रतापसिंह को सिंहासन पर बठाने के लिये पृथ्वीराज को जहर देकर मार डाला है। यद्यपि इस अफवाह का आधार सही नही था। यह सत्य है कि पृथ्वीराज वडी रानी के प्रभाव से अपने को मुक्त नही कर पाया था। फिर भी इस अवधि म उसकी दो शादिया हुई थी। एक बीकानेर की राजकुमारी के साथ और दूसरी किशनगढ की राजकुमारी के साथ। दूसरी शादी से उसके मानसिंह नामक एक पुत्र पदा हुआ। राजपूताना के प्रत्येक राज्य म सिंहासन के लिये कोई न कोई अन्य दावेदार होता आया है और मानसिंह आमेर के सिंहासन का तथाकथित दावेदार बना और उसकी दावेदारी ने अनेक वर्षों तक आमेर दरबार को चन नही लेने दिया। पृथ्वीसिंह की मृत्यु के बाद बालक मानसिंह को गुप्त ढग से अपने ननिहाल किशनगढ पहुचा दिया गया, लेकिन वहा भी उसे पर्याप्त सुरक्षा न मिल पाई, इसलिये उसे सिंधिया के आश्रय मे पहुचा दिया गया और तब से उस बालक का पालन-पोषण ग्वालियर म सिंधिया की उदारता से होता रहा।

अभिभाविका राजमाता और उसकी परिषद् जिसम वह महावत भी था और खुशालीराम जो अब प्रधानमत्री था, ने तत्काल प्रतापसिंह को आमेर के सिंहासन पर बिठा दिया। खुशालीराम को कुछ ही दिनो म राजा का खिताब भी दिया गया था। उसने अब अपने प्रतिद्व द्वी फीराज महावत के प्रभाव को समाप्त करने का निश्चय किया और इसके लिए उसने जिन उपायो का सहारा लिया, उनसे उसके पुराने मालिक माचेडी के साम त को अपनी स्वत त्रता प्राप्त करने म भी सहायता मिली। प्रतापसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर प्रमुख साम तो म यही एकमात्र साम त था जो अनुपस्थित रहा। खुशालीराम ने साम त की कटु भत्सना की। उसकी योजना अपने प्रतिद्व द्वी से राहत पाने के लिय राज्य म अधिक से अधिक असमजस की स्थिति उत्पन्न करने की थी। यह असतोष शाही दरबार तक पहुँचे, इस उद्देश्य से उसने जमीदारो को व्यक्तिगत आदेश भेज कि व भूमिकर का भुगतान रोक दे। परन्तु इस प्रकार की लघु चालें निष्फल ही रहती यदि उसने अपनी योजना की पूर्ति के लिय मुगल सिंहासन के अ तिम अवशेष के साथ साठ गाठ न होती। नजफखा इन दिना म बादशाह का प्रधान सेनापति था। उसने मराठो की सहायता से आगरा नगर से

जाटों को खदेडने के लिये प्रस्थान किया। इसके बाद नजफखा ने भरतपुर के मु. दुर्ग पर आक्रमण किया। उस समय नवलसिंह जाटों का राजा था। माचेडी सरदार ने सोचा कि मुगलों की कमजोर शक्ति को मजबूती प्रदान करने से उसके अपने हितों की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त हो जायगा। यह सोचकर वह अपनी सेना सहित नजफखा की सहायता के लिये पहुँच गया। समय पर सहायता के लिये पहुँचने और बाद में जाटों को पराजित करने में सहयोग देने की सेवाओं के बदले में उसे 'राव राजा' की उपाधि और स्वतन्त्र रूप से माचेडी के अधिकार की सनद बादशाह से प्राप्त हुई। कहा जाता है कि इस सारी योजना की रूपरेखा खुशालीराम ने तैयार की थी और अपने पुराने मालिक की सफलता को उसने फीरोज महाबत को हटाने का आधार बनाया था। अब उसने रानी से आमेर की सेना के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित होने की स्वीकृति मांगी। रानी ने बिना किसी विरोध के स्वीकृति प्रदान कर दी। उसे अपने कृपापात्र को और अधिक सम्मान प्रदान करने का अवसर मिला और उसने फीरोज को आमेर की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया। यद्यपि खुशालीराम स्वयं इस पद का दावेदार था परन्तु उसने उसकी नियुक्ति का विरोध नहीं किया। फीरोज की यह पदोन्नति ही उसके सर्वनाश का कारण बनी। आमेर के सेनापति की हैसियत से फीरोज ने शाही शिविर में माचेडी के सरदार से समानता के आधार पर मुलाकात की। इसके बाद खुशालीराम और माचेडी के सामन्त के मध्य गुप्त परामर्श हुआ जिसके अनुसार माचेडी सरदार ने फीरोज से मैत्री कर उसका विश्वास प्राप्त कर लिया और एक दिन भोजन में जहर मिला कर फीरोज के जीवन का अन्त कर दिया। उसके बाद खुशालीराम के हाथ में आमेर की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था आ गई। अभिभाविका रानी का भी थोडे दिनों बाद ही स्वर्गवास हो गया। राजा प्रतापसिंह अभी इस लायक नहीं हो पाया था कि दूसरों की सहायता के बिना राजकार्य चला सके। माचेडी का रावराजा और खुशालीराम दोनों ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। अतः शीघ्र ही दोनों में झगडा उत्पन्न हो गया। इस स्थिति में खुशालीराम ने हमदानीखा के नेतृत्व में शाही सेना की टुकडी को आमेर में बुला भेजा। इससे कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो गई और जो मराठों को साथ लाई। शाही सेना के विरुद्ध मराठों के साथ सन्धि की गई और दूसरे ही दिन उस सन्धि को रद्द कर दिया गया। इसका परिणाम बुरा निकला। शाही सैनिक और मराठे दोनों ही राज्य को लूट रहे थे और प्रजा को उनके अत्याचार सहन करने पड रहे थे। यह स्थिति उस समय तक कायम रही, जब तक प्रतापसिंह ने राज्य की शासन व्यवस्था सीधे अपने नियन्त्रण में न ले ली। प्रतापसिंह ने मारवाड के विजयसिंह से गठबंधन करके तुंगा नामक स्थान पर मराठों को बुरी तरह से पराजित किया जिसका विस्तृत विवरण मारवाड के इतिहास में किया जा चुका है। इस युद्ध में प्राप्त सफलता से आमेर राज्य को थोडे समय के लिये अपने शत्रुओं—शाही सेना और मराठे—से राहत मिल गई।

इस शासनकाल की घटनाओं का विस्तृत विवरण देने का अर्थ मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों के इतिहास को दोहराना होगा। अपने शासनकाल के पच्चीस वर्षों की अवधि में प्रतापसिंह और उसके राज्य को अनेक उतार-चढाव के दौर से होकर गुजरना पडा था। वह एक पराक्रमी शासक था और उसमें निर्णय बुद्धि का अभाव न था। परन्तु न तो पराक्रम और न ही बुद्धिमता राज्य की आंतरिक अवस्था और अनेक लुटेरे शत्रुओं से राज्य को राहत देने में सफल हो पाई क्योंकि राज्य के साधन बहुत सीमित थे। माचेडी का राज्य से पृथक हो जाना जयपुर के लिये एक गंभीर प्रहार था और लुटेरों को दिये जाने वाले धन के परिणामस्वरूप उसके पूर्वजों द्वारा संचित राजकोष रिक्त हो चला था। दो बार में ही मराठे अस्सी लाख रुपये वसूल कर गये। इसके पहले माधोसिंह ने आमेर का सिंहासन प्राप्त करने के खातिर लाखों रुपये मराठों को दिये थे। प्रतापसिंह की अवयस्कता के दिनों में राज्य के अधिकारियों ने भी राजकोष को खाली करने में कोई कसर उठा न रखी थी। तुंगा की विजय के उपलक्ष में प्रतापसिंह ने चौबीस लाख रुपये दान पुण्य में लुटाये थे।

पाटन के युद्ध में मराठों के हाथों राठौडों की पराजय और कछवाहों तथा राठौडों के गठबंधन की समाप्ति के तुरंत बाद 1791 ई. में तुकाजी होल्कर ने जयपुर पर आक्रमण किया और जयपुर राज्य को वार्षिक खिराज चुकाने के लिये बाध्य किया। खिराज की यह राशि बाद में अमीर खां को स्थानांतरित कर दी गई। यह खिराज जयपुर राज्य के साधनों पर एक स्थाई बोझा बन गया। इस समय से लेकर 1805 ई. अर्थात् प्रतापसिंह की मृत्यु तक सिंधिया की सेना कभी डी बायन के नेतृत्व में तो कभी परोन के राज्य में लूट खसोट कर धन वसूल करती रही। दूसरे लुटेरे भी इस काम में पीछे न रहे और लूट के माल को अपने अधिकार में करने के लिये वे प्रायः आपस में भी लडते रहते थे।

1803 ई. में जगतसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। उसने सत्रह वर्ष तक राज्य किया। उसे अपनी जाति अथवा समय के सबसे अधिक कामुक शासक की कुख्याति प्राप्त हुई। उसका शासनकाल जिन घटनाओं से भरा पड़ा है यदि वे उल्लेख करने योग्य होतीं तो अनेक खण्ड लिखे जा सकते थे। विदेशी आक्रमण, नगरों की घेराबंदी शत्रु के सामने आत्मसमर्पण युद्ध के हर्जाने कभी कभी शूर वीरता का प्रदर्शन, दरबारी षडयंत्र, जो कभी कभी अस्त्र शस्त्रों की झंकार भी सुना देते थे यहां तक कि दरबार की सीमा में ही रक्तपात की घटनाएं घटित हो जाती थीं। कभी कभी दैनिक अखबारों में 'रावला' (जनानी ड्योढी) की बदनामी की खबरें छपतीं तो कभी कामुक राजा और वेश्या रसकपूर की चर्चाएं होती थीं या इससे भी निकृष्ट विषयों की अफवाह उठती रहती थी। मरू भूमि के राठौड़ और भाटी जोधा या जसन के पवित्र रक्तधारी वंशजों को दरबार से दूर ही रखा गया और वेश्या के संगी साथी दरबार में अश्लील हरकतों के द्वारा कामुक राजा का मनोरंजन करने

लगे थे। हम इतिहास के पन्नो को एक ऐसे राजा के शासन काल की घटनाओ जो शूरवीरता के एक भी प्रसग से सवधित न रही हो, के विवरण से नष्ट करना उचित नही समझते। उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा कुमारी स सवधित काले अध्याय का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस घटना ने जगतसिंह को न केवल बदनाम ही किया अपितु उसकी प्रतिष्ठा को गहरा ग्राघात भी पहुचाया। लगभग एक करोड रुपया फूक कर उसने अपने राज्य का ग्रार्थिक दिवाला ही निकाल दिया। काली खोह के स्वामिभक्त परम्परागत मीनो की ग्रत्यधिक मानसिक पीडा के दौरान जयगढ मे सचित राजकोष को धीरे धीरे खाली कर दिया गया। इस धन सम्पत्ति का किसी पुनीत काम के स्थान पर राजा की ग्राचरण विरुद्ध मनोकामनाग्रो की पूर्ति के लिये दुरुपयोग किया जाता देख कर उनमे से कइयो ने तो ग्रात्म हत्या कर ली। जयसिंह के नगर को सुरक्षा प्रदान करने वाली दीवारो को ग्रब हर कोई लुटेरा लाघने लगा व्यापार वाणिज्य ग्रस्त व्यस्त हो गया, कृषि का भी पतन हो गया। ग्राय दिन की लूट खसोट से किसानो को सुरक्षा न मिलने से उनका जीवन ग्रत्यन्त शोचनीय हो गया था। एक दिन एक दर्जी राज परिषद की ग्रध्यक्षता कर रहा होता तो दूसरे दिन उसके स्थान पर एक बनिया दिखाई देता ग्रौर उसका उत्तराधिकारी एक ब्राह्मण हो सकता था, ग्रौर उनमे से प्रत्येक को शहर के किनारे की पहाडी पर बने नाहरगढ दुर्ग जहाँ सामान्यत ग्रपराधियो को बन्दी बनाकर रखा जाता था, मे स्थान पाने का गौरव मिलता था। सामन्तो का सम्मान ग्रौर ग्रधिकार दोनो को बुरी तरह से ग्रप मानित किया जा रहा था ग्रौर जगतसिंह रसकपूर के रस मे इतना ग्रधिक गिर चुका था कि सामन्तो ने एक बार तो उसे सिंहासनच्युत करने का विचार तक कर डाला था। योजना समय से पहले ही रद्द कर दी गई ग्रौर ग्राब ग्रामेर की रानी (रसकपूर) को नाहरगढ के कैदखाने मे पहुँचा दिया गया। इस मुस्लिम रखैल के मोह मे जगत सिंह इतना ग्रन्धा बन गया था कि उसने ग्रपने राज्य का ग्राधा भाग ग्रौर ताज की प्रतिष्ठा भेंट कर दी थी। इतना ही नही, उसने जयसिंह के पुस्तकालय का ग्राधा भाग भी उसको उपहार मे दे दिया जिसे उसने ग्रपने निम्न स्तर के सबधियो मे बाट दिया। जगतसिंह ने उसके नाम का सिक्का भी जारी किया। वह उसके साथ एक ही हाथी पर बैठकर नगर की सडको पर निकलता था ग्रौर ग्रपने सामन्तो को ग्रादेश दिया कि वे रसकपूर को वही सम्मान दे जो कि उसकी एक विवाहिता रानी को दिया जाता है। इस प्रकार का ग्रादेश सामन्तो की गरिमा सहन नही कर सकती थी। यद्यपि प्रधान मन्त्री मिसर शिवनारायण जो कि एक ब्राह्मण था, उसको बेटी कहकर पुकारता था दूनी के साहसी सामन्त चादसिंह ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि वह ऐसे किसी ग्रायोजन मे भाग नही लेगा जिसमे रसकपूर उपस्थित होगी। इस बात के लिये जगतसिंह ने उस पर दो लाख रुपय का जुर्माना थोप दिया। यह धन राशि उसकी जागीर की चार वर्षों की ग्राय के बराबर थी।

मनु न राजा का सिंहासन से उतार देन की व्यवस्था दी है और आमेर के साम तो के पास इसके लिये पर्याप्त न्यायोचित आधार भी था । उ होने इस दिशा म प्रयास किया परन्तु एक स्वामिभक्त सवक न जगतसिंह को सब कुछ बता दिया । अब उसे अपन बचाव की चि ता हुई । कुछ साम त इस अपमान से राजा जगतसिंह को बचाना भी चाहत थ । अत उ होन उसके अफशान को सु दरी को कारागार म पटक दिया पर तु वह वहा से किसी प्रकार भाग निकली और काल के जाल मे लुप्त हो गई । जगतसिंह 21 दिसम्बर 1818 तक अर्थात् अपनी मृ यु के अ त तक जयसिंह की गद्दी को अप्रतिष्ठा देता रहा ।

राजा जगतसिंह के कोई लडका न था और न ही उसके जीवन काल म किसी उत्तराधिकारी की व्यवस्था ही की गई थी । राजपूताने म राजा के पुत्रहीन मरने पर गोद लेन का नियम बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है । इस नियम के अ तगत जिसको गोद लिया जाता है वही मृत राजा का अ तिम सस्कार करता है । अत यह काम तुर त करना आवश्यक था और इसके लिय नरवर क भूतपूव राजा के लडके मोहन सिंह को चुना गया । लकिन अंग्रेजो के साथ सधि हो जाने के परिणाम स्वरूप गोद लिये हुय उत्तराधिकारी को शासन काय सौपना, वतमान परिस्थितिया म सभव न था । मन्त्रिमण्डल क सामन यह एक कठिन समस्या पदा हो गई । मैं उसकी सहायता करना चाहता था । लकिन राज्य की पुरानी और प्रचलित प्रथाओ का ध्यान न रखन के कारण मन जो हस्तक्षेप किया उस राज्य के लोगो न अच्छा नही समझा । राज्य के उत्तराधिकार नियम और सधि के मूल आधार को समझने के लिय इस पर थोडे विस्तार म चर्चा करन की आवश्यकता है । अगले अध्याय म प्रकाश डाला गया है ।

अध्याय 60

अंग्रेजों के साथ सधि और बाद की घटनाएं

ब्रिटिश भारत की सरकार द्वारा प्रदत्त सरक्षण को स्वीकार करने वाला ज राजस्थान क्षेत्र का अंतिम राज्य था। उसने अंतिम क्षण तक एक ऐसी व्य को स्वीकार करने मे विलम्ब किया जिसका उद्देश्य शांति और व्यवस्था के श को हमेशा के लिये समाप्त करना था। हमारे सुझावो और प्रयासो को रद्द कर गया जबकि दूसरी तरफ लुटेरी शक्तिया न एक एक करके हमारे चरणा म सम कर दिया था। पिंडारियो का सफाया किया जा चुका था, पेशवा का पून निष्कासित कर गगा तट पर भेज दिया गया, भोंसले को झुका दिया गया, सिं अत्यधिक भय से चुप बैठ गया था और होल्कर जिसके अधिकार मे विस्तृत भूमि और जो जयपुर से वार्षिक खिराज वसूल किया करता था, को मेहदीपुर के मैदान बुरी तरह से पराजित किया जा चुका था।

टाल मटोल की नीति सभी एशियावासियो का एक प्रिय साधन है, अ राजपूत यद्यपि भाग्यवादी है फिर भी प्राय होनहार को अनिवार्य मानकर सकट बचने का प्रयास करते है। होल्कर सहायक अमीर खा जिसने अपनी सेना के खच नाम पर जयपुर राज्य के अनेक गावो और नगरो पर अधिकार कर रखा था, सामाजिक व्यवस्था का घोर शत्रु था और जयपुर द्वारा अंग्रेजा के साथ सधि कि जाने के विरुद्ध था। परन्तु वह स्वय अपने लिए अंग्रेजो की मैत्री प्राप्त करने कोशिश मे जुटा हुआ था और चाहता था कि ब्रिटिश सरकार उसको अपने सरक्ष मे ले ले। इन्ही दिना मे उसने जयपुर के अत्यत समीप माधोराजपुरा नामक नग पर गोलो की वर्षा की थी जिससे घबरा कर जगतसिंह को अंग्रेजा के साथ सधिवार्त शुरू करनी पडी और उन्हे भी अप्रत्यक्ष रूप से इस घटना ने प्रभावित था। इस विलम्ब की जानकारी निम्न विवरण से स्पष्ट होती है।

कई कारणो न मिल कर हमारे उस उत्साह जिसके साथ हम सरक्षण प्रदान करते आये हैं को रोकने का काम किया। स्वाभाविक ही था कि हम यह अपेक्षा करते थे कि हमारे सरक्षण का उचित स्वागत किया जायगा। जयपुर दरबार

के साथ हमने 1803 ई० म सधि की थी ।[1] उसकी स्मृति अभी ताजा थी पर तु वह सुखकर नही थी । आवश्यकता पडने पर हमने जयपुर राज्य से जिन सुविधाओ की अपेक्षा की थी वे उपब ध नही कराई गइ और हमने बेकार ही अपन मित्र राज्य पर सधि की शर्तो का उल्लघन करने का आरोप लगा दिया था । राजनतिक गतिविधियो से परिपूर्ण घटना प्रधान उस युग की कायवाहियो मे सम्मिलित एक व्यक्ति के शब्दा म जब अग्रेजो का दूत सधि रद्द करने का पत्र लेकर जयपुर दरबार मे उपस्थित हुआ तो दरबार म उस पर विचार हुआ और जिन आधारो पर सधि को भग किया गया था उ हे अ यायपूण माना गया । इस कायवाही से जयपुर राज्य को जिस भयानक सकट की आर धकेल दिया गया था उसकी कल्पना स भयभीत होकर वे अग्रेज राष्ट्र के प्रति मान सम्मान की बात को भी क्षणभर के लिय भूल वठे ।' लाड लेक के शिविर म उपस्थित जयपुर के दूत ने तो और भी अधिक असतोष के साथ यह अनुभव किया कि भारत म अग्रेजी राज्य की स्थापना से लकर अब तक पहली बार अग्रेजो ने अपनी प्रतिष्ठा और विश्वास के स्थान पर अपन अस्थायी हितो को प्रधानता दी है ।

मार्क्विस वेलेजली ने जिस व्यापक दृष्टि स लुटेरी शक्तियो के विरुद्ध तमाम नियमित सरकारो को एक मच के अ तगत लाने की नीति का सुभाव दिया था उस नीति को लाड कानवालिस की भीरू नीति ने थोडे समय के लिये त्याग दिया था । उस हमारे इस प्रभाव क्षेत्र की वृद्धि म कमजोरी के अलावा अ य कोई बात दृष्टिगत न हुइ थी । यदि उन समझौतो को लागू रखा जाता तो ये राज्य उन दु खो से मुक्त हो जात जि होने उ ह मृतप्राय बना दिया । पहली सधि और दूसरी सधि के मध्य प द्रह वर्षो के अ तराल ने इस राज्य की जितनी क्षति की उतनी तो विगत पचास वर्षो म भी नही हुई थी और इस क्षति को पूरा करने म पचास वष का समय लग जायगा ।

एक घटना जो हमारे अविश्वास को बढान का कारण बनी वह थी—वजीर अली को जयपुर से निष्कासित करने की हमारी माग । वजीर अली ने जयपुर म शरण ले रखी थी और उसकी गतिविधिया ने कछवाहा क नाम का कलकित कर रखा था। हम इस ग्र थ म पहल यह बता आये हैं कि राजपूता का दृष्टि म शरण म आय हुय व्यक्ति चाहे वह अपराधी अथवा हत्यारा भी क्यो न हो, का शरण दना कितना पवित्र माना जाता था । हमन जयपुर राज्य को इस परम्परागत विश्वास का उल्लघन करत हुय उस भगाडे जघ य हत्यार का निष्कासित करन के लिय कहा था, यद्यपि उस समय जयपुर राज्य हमस स्वत त्र राज्य था । इस प्रकार का माग करन का हमको किसी प्रकार का अधिकार न था ।

प्रस्तावित सधि क विषय म एक अ य महत्वपूण आपत्ति भी थी । जयपुर दरबार न अपन राजस्व क पाचवें भाग (आठ लाख रुपय) का मरभ्रण की सीमा की

ऊंची दर माना और उनका ऐसा सोचना उचित भी था। परन्तु जब हमने इसमें यह शर्त भी जोड़ने की जिद की कि चालीस लाख रुपये वार्षिक की आय से अधिक आमदनी होने पर उस अतिरिक्त आय का तीसरा हिस्सा भी देना पड़ेगा तो उन्होंने देखा कि वे उदार ब्रिटेन के साथ नहीं अपितु खून चूसने में अभ्यस्त पक्ष से बातचीत कर रहे हैं और जिसकी शोषण प्रवृत्ति मराठों को भी मात दे रही थी।

राज्य की उपर्युक्त आपत्तियों के अलावा अनेक प्रकार की निजी और व्यक्तिगत रायें भी ब्रिटिश प्रस्ताव के विरुद्ध सक्रिय थीं। उदाहरण के लिये मन्त्रियों को राजधानी में नियुक्त किये जाने वाले रेजीडेन्ट की उपस्थिति का भय था और उनके उनके अधिकार और प्रभाव में कमी आ जाने की संभावना थी। सामन्त लोग जो कि प्राचीन प्रथा के अनुसार अपने राजा के दरबार में उसके सलाहकार थे, ने यह अनुभव किया कि उन्होंने धोखे से राजकृपा अथवा सैनिक शक्ति से राज्य के जिन इलाकों को अपने अधिकार में कर रखा है, उन्हें कहीं वापस न लौटाना पड़े। इस प्रकार के मुख्य कारणों ने ही आमेर और ब्रिटिश सरकार के मध्य होने वाली संधि को रोक रखा था, परन्तु इससे लार्ड हेस्टिंग्स की सामान्य संरक्षण व्यवस्था में एक छिद्र बचा रहता यदि जयपुर को उस व्यवस्था से पृथक रखा जाता। चारों तरफ तेजी से घटने वाली घटनाएं—अमीरखां की उपस्थिति मराठों के नारगी झण्डे को निकाल बाहर करना और अजमेर दुर्ग पर उसके स्थान पर ब्रिटिश ध्वज का लहराना आदि ने अन्त में दीर्घसूत्री परन्तु गौरव रहित स्वीकृति को उत्पन्न किया और 2 अप्रैल, 1818 ई. के दिन दस धाराओं वाली एक संधि सम्पन्न हुई जिसने कछवाहा राजाओं को ग्रेट ब्रिटेन के साथ चिरस्थायी मैत्री और अधीनस्थ सहयोग से बांध दिया।

उसी वर्ष 21 दिसम्बर को राजा जगतसिंह की मृत्यु हो गई और किसी उत्तराधिकारी को गोद लेकर शासन करने का निश्चय किया गया, लेकिन संधि के द्वारा स्वीकृत राज्य और उसकी प्रजा पर वर्तमान स्थिति में निरंकुशता के साथ पहले की भांति शासन करना अब संभव नहीं रहा था यह बात मन्त्रियों की समझ में आ गई थी। अतः जयपुर राज्य के मन्त्रिमंडल के सामने यह एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गई। खालसा भूमि के बलात् अधिकार के मामले में राजा और उसके सामन्तों के मध्य हमारी मध्यस्थता का कोई अप्रिय परिणाम नहीं निकला था, परन्तु जब उत्तराधिकार के मामले में होने वाले षड्यन्त्रों में हमने हस्तक्षेप किया (हम प्रचलित प्रथा और अधिकारों से अपरिचित थे) तो हमें उनके असंतोष का सामना करना पड़ा और जयपुर के सामन्त उस संधि को कोसने लगे जो उनके राजा ने उनकी सलाह से बिना होकर की थी।

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में राजपूताना के विभिन्न राज्यों में प्रचलित प्रथाओं का उल्लेख करना, आगे के समझौता को समझने की दृष्टि से लाभप्रद रहेगा।

ज्यष्ठाधिकार का नियम साधारण तौर पर सभी राजपूत राजवशो मे प्रचलित है। केवल अपवाद रूप मे हा इस नियम का उल्लघन किया जाता था। इस सम्ब ध म मनु न बहुत से निदेश दिये है पर तु आधुनिक समय क राजपूता द्वारा शायद ही उन निदेशो का पालन किया गया हो। प्रचलित रीति और पूव दृष्टा त राज्य के सिंहासन अथवा जागीर की गद्दी पर उत्तराधिकार का अधिकार बडे पुत्र को प्रदान करत है जो कि 'पाटकुमार अथवा राजकुमार या सिफ कुमारजी के नाम स पुकारा जाता है, जबकि उसके दूसरे भाई अपन नाम स पुकार जात है जसे कि राजकुमार जीवनसिंह। वास्तव म ज्यष्ठता एक ऐसी विशषता है जिसका पालन जीवन की प्रत्यक अवस्था मे किया जाता है चाह वह राजघराना हा अथवा साम त कुल, सभी के अपन पाटकुमार और पटरानी अर्थात् बडा पुत्र और बडी रानी हाता है। अ य रानियां की अपेक्षा पटरानी को विशेष अधिकार आर सुविधाएँ प्राप्त है। छोटी अवस्था म राजकुमार क सिंहासन पर बठन पर प्रचलित रीति के अनुसार वह अभिभाविका बनती है और मेवाड म (भारत का प्राचीनतम राज्य) तो वह सावजनिक रूप से राणा क साथ सिंहासन पर बठाइ जाती है। जिस रानी के साथ पहला विवाह होता है उसी को पटरानी की पदवी प्राप्त हाती है। पर तु ज्याही राज्य को उसका उत्तराधिकारी प्राप्त होता है ता उत्तराधिकारी की मा रानी को रानी माता ' की उपाधि मिल जाती ह अथवा उस माजी (माता) के नाम स पुकारा जाता है। अभिभाविका के कतव्यपालन म कुछ विशष परिवारा के सरदार उसकी सहायता करते है जो शाही परिवार के कुछ अधिकारियो के साथ शासन चलाना अपना पतृक अधिकार समझते ह।

यदि किसी राजा की औरस पुत्र क बिना मृत्यु हो जाती है और उसके निकट सम्ब धी—भाई-भतीजा भी नही होत तो उस स्थिति म रजवाडे के प्रत्यक राज्य मे ऐसे कुछ खास परिवार होत है, जिनको गद्दी क लिये अपने वशजा का गोद देने का अधिकार है। दावेदारो की सख्या को सीमित रखने की दृष्टि स प्रत्यक राज्य मे इस सम्ब ध म निश्चित नियम बने हुए है कि गाद केवल इ ही परिवारो के बालक को लिया जायगा। जस कि, मवाड राज्य मे उत्तराधिकारी क अभाव मे राणावत वश के बालक को गोद लिया जाता है जि ह बावा' (बच्चा) कहा जाता है। मारवाड म ईडर राज्य क जाधावशी बालक का गाद लन का नियम है। बू दी राज्य म दुगारी वश कोटा म आपजी वश और बीकानर मे महाजन गाव के साम त के बच्चे का गाद लेने का नियम चला आ रहा है। जयपुर म राजा मानसिंह के वशजा की ज्यष्ठ राजावत शाखा स गोद लन की प्रथा रही है। राजावता म भी भेद है। माधोसिंह के पहले क राजावता को मानसिंघोत अथवा केवल राजावत कहा जाता है और माधोसिंह के बाद वालो को माधानी कहा जाता है। राजावता क कई ठिकान है जिनम भिलाइ का घराना सबका नेता अथवा प्रधान माना जाता है और शारीरिक अथवा मानसिक दोष न होन पर उस परिवार के बालक का

जयपुर के सिंहासन के लिये गोद लेना—इस राज्य का लम्बे समय से नियम रहा है।

जगतसिंह की मृत्यु के दूसरे दिन मोहनसिंह नामक बालक को जयपुर के सिंहासन पर बठा दिया गया। यह बालक नरवर राज्य के भूतपूर्व राजा मनोहरसिंह का लडका था। सिंधिया ने मनोहरसिंह को नरवर राज्य से निकाल दिया था। हम पहले यह उल्लेख कर आये हैं कि आठ सौ वर्षों पूर्व नरवर राज्य से ही जयपुर राजवंश का उद्भव हुआ था, परन्तु उस राज्य के किसी उत्तराधिकारी के न बच पाने पर वहा के सामन्तों ने आमेर के राजा पृथ्वीराज प्रथम के लडके को अपना राजा बनाया था। अब जो बच्चा लाया गया था वह पृथ्वीराज की चौदह पीढ़ियों के बाद का था। इसलिये मोहनसिंह को गोद लेना और जयपुर के सिंहासन पर बैठाना प्रचलित प्रथा के विपरीत था। क्योंकि वर्तमान प्रथा के अनुसार जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है झिलाई के सामन्त का वंशज आमेर की गद्दी का अधिकारी था। उस वंश में किसी बालक के न मिलने पर दूसरे कई सामन्त वंश इसका अधिकार रखते थे। उन वंशों के किसी बालक की खोज न करके मोहनसिंह के गोद लिये जाने का एक कारण था। जगतसिंह की मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व से ही शासन की बागडोर रावला के रक्षक मोहन नाजिर[2] के हाथ में थी। वह बहुत ही चतुर था और अपना स्वार्थ सिद्ध करने में निपुण था। उसने बडी बुद्धिमानी के साथ अपने उद्देश्यों की पूर्ति की थी और राज्य के शासन में अपना अधिकार पैदा कर लिया था। वह स्वार्थपरायण था और मौजूदा अवसर का लाभ उठाना चाहता था। मोहनसिंह अभी नौ वर्ष का था। इस बालक को सिंहासन पर बैठाने पर उसको बहुत वर्ष तक शासन सत्ता का उपयोग करने का मौका था। इसी उद्देश्य से उसने प्रचलित प्रथा का उल्लंघन करते हुए मोहनसिंह को सिंहासन पर बठा दिया था। इस काम में जयपुर राज्य के प्रमुख सामन्तों में से एक डिग्गी के मेघसिंह ने उसे सहयोग दिया। उसका भी कारण था। मेघसिंह ने नाजिर की मित्रता का लाभ उठाते हुए राजा की बहुत सी खालसा भूमि को अपने अधिकार में कर रखा था और उस पर अधिकार बनाये रखने की दृष्टि से उसने नाजिर के इस कार्य का समर्थन किया और अपनी शाखा (खंगारोत) जो आमेर के बारह परिवारों में सबसे अधिक शक्तिशाली थी, का समर्थन भी जुटाया।[3] राजा के सभी अधिकारी जैसे कि पुरोहित, धाभाई तथा अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों ने भी यह सोचकर कि छोटे बालक के सिंहासन पर बैठने से वे बिना किसी नियन्त्रण के अपनी मनमानी कर सकेंगे, नाजिर के काम को अपने अनुकूल समझ कर उसका समर्थन करते रहे। नाजिर की कृपा से उनके पद और अधिकार सुरक्षित बने रहने की सम्भावना थी।

इस सम्पूर्ण कार्यवाही के विवरण से पता चलता है कि मोहनसिंह को उत्तराधिकारी बनाने के सम्बन्ध में पहले से कोई विचार विमर्श नहीं किया गया था

न ही साम ता की स्वीकृति ली गई और न ही रानिया स पूछा गया। इसके विपरीत केवल अपन उत्तरदायित्व पर काम करते हुए नाजिर ने जगतसिंह की मृत्यु के दूसर दिन मोहनसिंह का सूय के रथ म सवार" करा कर उसी के हाथ स मृत राजा का अतिम दाह सस्कार करवाया और दूसर दिन सवर ही मोहनसिंह का "मानसिंह द्वितीय' क नाम स कछवाहा का राजा घोषित कर दिया गया। इसक बाद जो कुछ घटित हुआ उससे पता चलता है कि अपनी इच्छानुसार सब कुछ करने के बाद नाजिर न जयपुर राजधानी मे जो साम त अथवा उनके प्रतिनिधि उपस्थित थे, उनकी सम्मति लकर उसन अपने काय पर राज्य की मोहर लगान का प्रयास किया। उस समय उसके समथक साम त भी उपस्थित थ पर तु उनको भी नाजिर का यह काम पस द न आया और उन्होन एसा आचरण किया जिससे यह प्रकट हो कि न तो वे इसके पक्ष म हैं और न विरोध म। एसा उन लोगों न सोच समझ कर किया था। जो लोग नाजिर के विरोधी थ और इस काय को नाजिर की अनाधिकार चेष्टा समझत थे वे भी चुप रहकर सर्वोच्च सत्ता—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निणय की प्रतीक्षा करन लग। व चाहत थ कि कम्पनी के अधिकारी इस काय मे हस्तक्षेप करें। नाजिर भी विरोधी अवसर का अनुकूल बनाना जानता था। अत उसने दिल्ली म नियुक्त कम्पनी के रेजीड ट का एक प्राथना पत्र भेजा और अपना एक गोपनीय मु शी तत्काल जयपुर भिजवान की प्राथना की। जगतसिंह की मृत्यु के छ दिन बाद दिल्ली से कम्पनी का एजेन्ट जयपुर पहुँचा। कम्पनी ने अपने इस कमचारी क द्वारा निम्नलिखित बाता की जानकारी चाही—

1 नरवर राजा क इस लडके को जयपुर राज्य के सिंहासन पर बठान के कारणों का विस्तृत विवरण।
2 उसका वश परिचय।
3 उसके वश का जयपुर राजवश के साथ सम्ब ध।
4 सिंहासन पर बठन क लिए उत्तराधिकार के नियम।
5 जिन लोगा की सम्मति स यह निणय लिया गया उनका वश परिचय।

11 जनवरी को कम्पनी न यह जानकारी भी चाही कि इस सम्बन्ध म रानिया तथा सरदारो की अनुमति भी ली गई अथवा नहीं। जिन लोगा की सम्मति और परामश से सिंहासन पर बठाया गया उनक हस्ताक्षर म युक्त पत्र भिजवाया जाय। इस प्रकार क निदेशा स अधिक और क्या यायाचित बात हो सकती थी।

नाजिर और गोपनीय मु शी क उत्तर कुछ इस प्रकार थ कि उनसे सतुष्ट होकर 7 फरवरी को ब्रिटिश एजण्ट का तरफ से बधाई पत्र और सर्वोच्च सत्ता का स्वीकृति पत्र आ पहुचा जिन्ह सावजनिक तौर पर पढकर सुनाया गया। राजकीय नगाडे बजाय गये और मानसिंह द्वितीय को प्रताप मोंजी के पास ले जाया गया और

उसे मसनद पर वठा दिया गया। नाजिर को अब भी साम ता पर थोडा बहुत सदेह था। उसको दूर करने के लिय उसन उन लागो की सम्मति जानन का प्रयास किया। उ होने सोच विचार कर नाजिर का उत्तर दिया कि "यदि आप चाहते हैं तो हम आपकी आज्ञा का पालन करन का तयार हैं। जाधपुर क राजा की बहिन[1] इस राज्य की पटरानी है। उसकी मयादा का सम्मान देना हम सबका कतव्य है। इसलिए हमारी सम्मति उनकी सम्मति पर निभर है।" साम ता के इस उत्तर से नाजिर चौंक पडा। क्योकि पटरानी नाजिर और उसक गुट की खुलेआम विरोधी थी और उसन साहसपूवक मोहनसिंह का सिंहासन पर वठान का विरोध किया था। माच के प्रारम्भ तक मोहनसिंह के विरुद्ध जबरदस्त जन असतोष व्याप्त हो चुका था और झिलाई के राजावत साम त न अपन वशजा के स्वत्व की रक्षा के लिये सनिक शक्ति का उपयोग करन का निश्चय कर लिया था। कुछ दिनो म ही राजावत वश की कनिष्ठ परन्तु शक्तिशाली शाखाओ–सिवाड और ईसरदा–के सरदार भी झिलाई क साथ मिल गय।

इन्ही दिनो म एक अय गुट न पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद उत्पन्न उसके पुत्र, जो कि ग्वालियर मे सिंधिया की कृपा पर निभर था को सिंहासन पर वठाने का अभियान छेड दिया। पर तु इस बात की जरा भी परवाह किये बिना राजा मानसिंह के वशजो की ज्येष्ठ शाखा न अपन स्वत्व को प्राप्त करन का विचार जारी रखा।

इस प्रकार, जबकि सर्वोच्च सत्ता अधेरे म थी, साम त लोग किसी एक के पक्ष म न आकर अपन अपने पक्ष के लिए समथन जुटा रहे थ, रानिया भी पहले की भाति अपने-अपने विचारो पर दृढ थी तब इस दुविधापूण स्थिति से उभरन के लिय नाजिर ने एक नई चाल चली और उसने इस सारे मामले म जोधपुर के राजा मानसिंह को निर्णायक बनाने का निश्चय किया। उसका विश्वास था कि पटरानी अपने भाई का आदेश जरूर मानेगी और उसकी योजना सफल रहेगी। नाजिर ने राजा मानसिंह को प्रभावित करन म भी कोई कसर न छोडी। पर तु मानसिंह का उत्तर ध्यान देन योग्य है। उसन कहा, 'जयपुर के सिंहासन पर इस समय किसको वठाया जाय इसका निणय करन के लिय प्रचलित प्राचीन प्रथाओ के अनुसार कछवाहों की बारह शाखाओ के प्रधान साम त अधिकारी है। आप उन साम तो की सम्मति उनके हस्ताक्षरो के साथ ले लीजिय। इसक बाद पटरानी की सम्मति की आवश्यकता न रहेगी और यदि होगी तो मै उसक हस्ताक्षर करवा दूगा।'

नाजिर और उसका गुट जिसको यद्यपि गोपनीय मुशी का समथन प्राप्त था अब हताश होने लगे और इस विपरीत परिस्थिति से उभरन के लिये उसन एक और उपाय सोच डाला। उसने अपन कठपुतल मोहनसिंह का मवाड के राणा की पोती क साथ विवाह कराने का प्रयास किया। उसन सोचा कि राणा के परिवार के साथ मोहनसिंह का ववाहिक सम्ब ध हो जाने से उसके विरुद्ध उठने वाली आधी का

ेग कमजोर पड जायेगा । राणा को नाजिर की चाल के बारे म कोई जानकारी नही थी इसलिये उसने इस प्रस्ताव का स्वागत ही किया । नाजिर ने दिल्ली मे स्थित राणा के प्रतिनिधि स भी अपन प्रस्ताव की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी । इस प्रतिनिधि का राणा पर काफी प्रभाव था । परन्तु राणा के दरबार के कुछ बुद्धिमान लोगो का नाजिर के षडयन्त्र की ग ध मिल गई और उन्होने इस विवाह का जोरदार विरोध किया । तब यह प्रस्ताव रखा गया कि इस विवाह के साथ साथ जयपुर की राजकुमारी क साथ राणा का विवाह भी सम्पन्न हो । इस सम्ब ध को काफी वर्षो पूव तय किया गया था और राणा इसक लिये उत्सुक भी था । नाजिर का विचार था कि जब विवाह के लिए राणा जयपुर आयेगा तो उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये आमेर के सभी साम त भी उपस्थित रहग और राणा की उपस्थिति म मोहनसिंह के राज्याभिषक के बारे म उनकी सम्मति भी प्राप्त हो जायेगी । पर तु उसे अपन ध्येय मे सफलता न मिली और विवाह का प्रस्ताव नामजूर कर दिया गया । फिर भी नाजिर को अपने ऊपर पूरा विश्वास था । उसने जो गाठ तयार की थी वह आसानी स खुलन वाली न थी पर तु जगतसिंह की भटियाणी रानी के काफी दिनो से गभवती होन की सूचना ने उस गाठ को काट दिया ।

21 दिसम्बर 1818 ई को जगतसिंह की मृत्यु हुई थी और 24 माच को भटियाणी रानी के गभवती होने का समाचार मिला । इसे समय पर माता जमवी का आशीर्वाद माना गया । इस सूचना का इतना जोरदार प्रचार हुआ कि कई लोग तो इसे 'रावला' की कोई नई चाल और किसी के विचार मे व्यभिचार माना गया । पर तु ऐसा नही था । इसकी जानकारी नाजिर से जानबूझ कर छिपा कर रखी गई थी । अन्यथा यह खबर तो समूचे ढू ढाड प्रदेश के लिये खुशी मनान की बात थी । यह सही है कि अ त पुर म कई ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती हैं जिनकी जानकारी बाहर के लोगो का नही मिल पाती । पर तु किसी राजा का रानी के गभवती होने की खबर एक महीने के बाद गोपनीय रखना सभव न था और खास कर ऐसे राजा की रानी की जिसके कोई उत्तराधिकारी न हो । इस बात की सूचना रावला के रखवाले नाजिर को समय पर दे देनी चाहिए थी । तीन महीने बाद इस रहस्य का उद्घाटन करना स्वाभाविक रूप से स देह उत्पन्न करता है ।

1 अप्रल को मृत राजा की सोलह विधवा रानियो तथा प्रमुख साम तो की पत्नियो की एक सभा हुई जिसम तय किया गया कि इस सच्चाई का पता लगाया जाय कि भटियाणी रानी गभवती है अथवा नही । सभी स्त्रिया भटियाणी रानी क महल म गइ । दूसरी तरफ राज्य क साम त वहा पर उपस्थित होकर उनक निणय की प्रतीक्षा करन लगे । उन स्त्रियो ने रानी भटियाणी से बातचीत की तथा उसको देखभाल कर इस बात को स्वीकार किया कि इसम कोई सदेह की बात नही है कि भटियाणी रानी गभवती है । राज्य के साम तो का इससे अत्यधिक सताप हुआ और

उन्होंने मिलकर प्रतिज्ञा की कि यदि भटियाणी रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ तो वे उसी को अपना राजा मानकर जयपुर के सिंहासन पर बठायेंगे। उन लोगों न इस सम्बन्ध मे एक लिखित पत्र नाजिर को दिया और उससे अनुरोध किया कि वह इस पत्र को रेजीडेन्ट के पास दिल्ली भिजवा दे। नाजिर को अभी तक रानी के गर्भवती होने की जानकारी नही थी। अत उसन उस पत्र को सारहीन मानते हुए अपने हस्ताक्षर भी कर दिये। वस्तुत राठौडी रानी के विशेष आग्रह पर ऊपर लिखी हुई समस्त कार्यवाही से नाजिर को दूर ही रखा गया था। नाजिर न सामन्तो की सम्मति प्राप्त करन तथा नरवर के मोहनसिंह को ही सिंहासन पर बठाने के लिये अब यह नया तर्क दिया कि उसने ऐसा मृत राजा की इच्छानुसार ही किया है, परन्तु उसकी इस झूठी बात पर किसी न विश्वास नही किया और उसका यह प्रयास भी विफल रहा।

राजमाता म जो वधानिक सत्ता निहित थी और उसके अधिकारों का सामन्तों ने जिस सम्मान के साथ समर्थन किया उसके परिणामस्वरूप नाजिर और उसके दल का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। जगतसिंह की मृत्यु के ठीक चार महीने और चार दिन के बाद 25 अप्रल को प्रात काल भटियाणी रानी न पुत्र को जन्म दिया। इस समाचार को सुन कर सम्पूर्ण राज्य मे खुशी और आनन्द की लहर फल गई। राजधानी मे अनेक उत्सव आयोजित किये गये। इस प्रकार एक गंभीर समस्या का समाधान हो गया, अन्यथा उसके बुरे परिणाम देखने को मिलते और सबों व सत्ता के लिये भी वह दुख दायी होता। पुत्र जन्म के साथ ही इस समस्या का सभी पक्षों के लिये संतोषजनक ढंग से अन्त हुआ। भटियाणी रानी से उत्पन्न बालक को सिंहासन पर बठाया गया[5] और मोहनसिंह को सिंहासन से उतार कर नरवर भेज दिया गया।

जयपुर की स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक उस राज्य का विवरण यद्यपि वह अधूरा है, उसके बारे मे अन्य कोई बात लिखने के पूर्व शेखावाटी संघ के उदय तथा उसके विकास का वर्णन करना अनुचित न होगा।

सन्दर्भ

1 द्वितीय मराठा युद्ध काल म लार्ड वेलेजली न राजस्थान से सिन्धिया और होल्कर का प्रभाव समाप्त कर उनके साधनों को कमजोर बनाने की दृष्टि से जयपुर और जोधपुर के साथ सन्धियां की थी। अंग्रेजों का विचार था कि मराठों और सामन्तों से परेशान होने के कारण इन दोनों राज्यों में ब्रिटिश संरक्षण का हार्दिक स्वागत होगा और व मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों को सक्रिय सहयोग देंगे। ऐसा न होने पर संधि को भंग कर दिया गया था।

2 मुगल सम्राटो के अ त पुर के रक्षक प्रधान खोजे "नाजिर' कहलाते थे। राजपूत राजाओ मे जयपुर और बू दा के राजाओ ने मुगलो का अनुकरण करके अपने अ त पुर (रावला) के प्रधान रक्षक को "नाजिर" की उपाधि दी थी।

3 खागरोत शाखा बाईस साम त वशो म विभाजित थी । उन सबकी आमदनी 402806 रु वार्षिक थी। यद्यपि मेघसिह इस शाखा म छठी अथवा सातवी श्रेणी का था पर तु अपनी बुद्धि और तेजस्विता के बल से वह इस सम्प्रदाय का नेता बन गया था।

4 कुछ के अनुसार वह बहिन नही अपितु पुत्री थी।

5 इस बालक को 'जयसिह तृतीय' की उपाधि के साथ सिहासन पर बठाया गया था।

अध्याय 61

शेखावाटी का इतिहास

अब हम शेखावाटी सघ के इतिहास की तरफ आते है। इसका उद्भव आमेर के साम त घराने स हुआ। समय और परिस्थितियो के प्रभाव से इस सघ न इतना अधिक शक्ति प्राप्त कर ली जितनी कि उसके पतृक राज्य की थी। इस सघीय राज्य के नियम और कानून लिखे हुये नही है और न उसका कोई अधिकारी अथवा राजा होता है, जिसे सभी स्वीकार करते हो। इस राज्य म काई एक यवस्था नही है। फिर भी यहा के सभी साम तो म एकता है। यहा कोई निश्चित राजनीति भी नही पायी जाती है। उन लागो को जब किसी सामा य अथवा यक्तिगत रुचि क मामले पर विचार करना होता है, तो शेखावाटी के सरदारा की महान परिषद् उदयपुर म आयोजित की जाती है और उसमे निराय लिया जाता है। वहा पर जो निराय लिया जाता है उस सभी स्वीकार करत हैं।

शेखावाटी के साम त आमेर क राजा उदयकरण के तीसरे पुत्र बालाजी के वशधर है। बालोजी सवत् 1445 (1389 ई०) म आमर के सिहासन पर बठे थे। यदि हम उस समय की राजनतिक स्थिति पर विचार करें ता पता चलेगा कि वह सम्पूरा क्षेत्र जो अब शेखावटी वश के अधिकार म है उस समय प्राचीन दिल्ली के चौहाना अथवा तोमरा के वशधर साम ता के अधिकार म बटा हुआ था और वे किसी की सत्ता न मानकर अपनी तलवार पर भरोसा करते थे। यही कारण था कि मुसलमानो के आक्रमण के समय उनको सभी प्रकार क अत्याचार सहने पड़े थे।

इस समय जा शेखावत वश विशेष रूप से प्रसिद्ध है, उसका आदिपुरुष बालाजी था। उसके पोते न अमरसर का इलाका प्राप्त कर उस पर शासन करना शुरू किया। उसे यहा का इलाका कस मिला—जागीर क रूप म अथवा अपनी विजय के द्वारा—इस सम्ब ध म हमार पास काई सामग्री नही है। उसक तीन लडक थ—मोकलजी, खेमराज और खारद। बडा लडका मोकलजी पतृक इलाके (अमरसर) का उत्तराधिकारी बना। दूसरे पुत्र खेमराज क वशज बालापोता क नाम स प्रसिद्ध हुए। उनमे से एक बारह कोटरिया के कछवाहो के यहा गोद ल लिया गया था। खारद के पुत्र

नाम का एक लडका हुग्रा । उसके वशज कुम्भावत के नाम से प्रसिद्ध हुये । इन दिनो म कुम्भावता का नाम प्राय लुप्त ही गया है ।

मोकल के बहुत समय तक कोई लडका न हुग्रा । इसके लिये वह एक मुस्लिम मत शेख बुरहान के दशना का गया ग्रौर उस मत के ग्राशीर्वाद से उसके एक लडका हुग्रा जिसका नाम सत के नाम पर 'शेखाजी' रखा गया । शेख बुरहान की समाधि ग्रमरोल से छ मील ग्रार मोकल के निवास स चौदह मील की दूरी पर ग्राज भी विद्यमान है । राजस्थान म इस समय जो शेखावत वश प्रसिद्ध है, उसका ग्रादिपुरुष यही शेखाजी हैं । यह घटना तैमूर के ग्राक्रमरण के थोडे समय वाद की है इस वात की सभावना है कि शेख एक धम प्रचारक था ग्रौर वह इस क्षेत्र मे लडाकू पर तु सहिष्णु राजपूतो का धम परिवतन करन के लिये रह गया था यदि वह ग्रपने उद्देश्य मे सफल न भी रहता तो भी उसे राजपूतो का सरक्षरण ग्रौर सहानुभूति प्राप्त करने का विश्वास था ।

एक बार शेख भ्रमरण करता हुग्रा ग्रमरसर की सीमा म पहुच गया ग्रौर एक ऐसे स्थान से गुजर रहा था जहा मोकलजी भी उपस्थित था । शेख ने दुग्रासलाम करने के वाद मोकल से पूछा कि क्या तुम्हार पास मुझको कुछ देने के लिये है ?" पूरण शिष्टता के साथ उत्तर मिला, "ग्रापको जो चाहिये, वावाजी ।' शेख की माग थोडे से दूध तक सीमित रही । मोकल की ग्राज्ञानुसार एक ऐसी भैंस लायी गयी जिसका दूध कुछ समय पहले ही निकाला जा चुका था । शेख ने उस भैंस के थनो से इस प्रकार दूध निकालना शुरू किया जसे किसी झरने से पानी निकलता है । इससे बूढे सरदार मोकल को विश्वास हो गया कि शेख एक चमत्कारी सिद्ध व्यक्ति है। ग्रत उसने शेख से प्राथना की कि ग्रापकी दुग्रा से मैं ग्रधिक दिनो तक पुत्रहीन न रहूँ । समय ग्राने पर मोकल के पुत्र हुग्रा ग्रौर शेख के निदेशानुसार उसका नाम फकीर की जाति पर शेखाजी' रखा गया । फकीर न यह भी हिदायत दी कि इस बालक के गले मे हमेशा गण्डा वधा रहेगा ग्रौर ग्रावश्यकता पडने पर वह गण्डा दरगाह के किसी ऊचे स्थान पर रख लिया जाय । यह बच्चा नीले रग की टोपी ग्रौर दूसरे वस्त्र पहनगा, कभी सूग्रर ग्रथवा दूसरे मास का सेवन नही करेगा । इन सव बाता के ग्रलावा उस फकीर न मोकल से यह भी कहा कि शेखावत परिवार म किसी बालक के पदा होने पर बकरे की बलि दी जायगी, कुरान का कलमा पढा जायगा ग्रौर उस बकरे के रक्त के छीटे वालक के शरीर पर डाल जायेंगे । मोकल न फकीर की सभी वाता का पालन करना स्वीकार कर लिया । इस घटना का चार सौ वष वीत चुके हैं, लेकिन फकीर की वाता का ग्राज भी पालन किया जाता है ।

मोकल के वशज दस हजार वग मील के क्षेत्र म फल गए हैं । यद्यपि शेखावत लोगो मे शेख बुरहान के मामन उनके पूवजा द्वारा जिन वाता का पालन करन के लिये

कहा गया था उनमे काफी कमी आ गई है, फिर भी इस वश मे जन्म
बच्चा को दा वष की ग्रायु तक नीले रग के वस्त्र तथा टोपी पहनायी ज
फकीर के सम्मान मे व लोग ग्रपन पीले रग की पताका के किनारे नी
लगात है और गण्डा पहनन की प्रथा आज भी विद्यमान है। ग्रमरसर ग्रं
आसपास क गाव और नगर ग्रामेर राज्य के अधिकार मे थ परन्तु शेख बु
दरगाह आज भी उस अधिकार स स्वतन्त्र मानी जाती है। आज भी उस द
सुरक्षित "शरणा" (आश्रयस्थल) माना जाता है। दरगाह की देखभाल के
भूमि आवटित की हुई है उस पर उसके वशजो के लगभग एक सौ परिवार ब
जो खेती करत है, पर तु लगान नही देते है।

ग्रपन पिता के बाद शेखा उसका उत्तराधिकारी बना और ग्रपन पर
थाडे ही दिनो मे उसन आसपास के तीन सौ साठ गावो पर अधिकार कर
पैतक राज्य का विस्तार किया। इससे आमेर के राजा को ईर्ष्या उत्पन्न हो
उसन शेखाजी पर आक्रमण कर दिया। शेखाजी न पुनी पठाना की सहायता
स्वामी राजा के आक्रमण को विफल बना दिया। इस समय तक यहा क
आमेर के राजा को ग्रपना अधीश्वर मानते आये थे और ग्रपनी अधीनता क
स्वरूप ग्रपने क्षेत्र म घोडा के जो बच्चे पदा हाते थ, व कर के रूप म आमेर
को दे दिये जात थे।[1] इस बात को लेकर दोनो मे विवाद उठ खडा हुआ औ
विवाद ने शेखावाटी को आमेर राज्य से पृथक होन तथा ग्रपनी पूण स्व
घोषित करने का अवसर प्रदान किया। सवाई जयसिंह के समय तक शेखावाटी
स्वत न रहा। पर तु बादशाह के सेनानायक के रूप म जयसिंह को मुगल साम्रा
साधन उपलब्ध हो गये थे। उसन इन साधना का उपयोग शेखावाटी क सरदा
दमन करन के लिय किया और उन्हे आमेर राज्य की अधीनता स्वीकार करन त
देने के लिये बाध्य किया। शेखाजी ग्रपने पुत्र रायमल के लिये एक विस्तृत
छोड गये पर तु हमको उसके शासनकाल का विशेष विवरण नही मिलता। राय
के बाद सूजा उसका उत्तराधिकारी बना। उसके तीन लडके हुय--नूनकरण राय
और गोपाल। बडा लडका तीन सौ साठ गावो वाल पतक राज्य ग्रमरस
उत्तराधिकारी बना। रायसाल को लाम्बी की जागीर तथा गोपाल को भ
नामक गाव जागीर मे मिली। दूसरे पुत्र रायसाल के नतत्व म शेखावता की
का बहुत विस्तार हुआ।

शेखावतो के प्रधान नूनकरण क बनिया जाति का एक म त्री था--देवा
जो ग्रपनी जाति के बहुत से लोगा की तरह परिश्रमी, बुद्धिमान और चालाक थ
एक दिन ग्रपन सरदार नूनकरण के साथ वाद विवाद करत हुये उसन कहा कि ग्र
भाग्य से युक्त प्रतिभा ईश्वर की पहली भेंट होती है, परन्तु मनुष्य ग्रपन स्वय
बाहुबल से जो अर्जित करता है वह उस भेंट स कही अधिक महत्वपूर्ण होता है

नूनकरण ने इस विषय पर काफी वाद विवाद किया और अ त म अपने म त्री से कहा कि वह रायमाल के पास लाम्बी चला जाय और अपने तक को सिद्ध करके दिखाये। देवीदास ने म त्री पद छोडने के बाद बिना किसी विलम्ब के अपने परिवार सहित लाम्बी के लिये प्रस्थान कर दिया। वहा उसका सामा य उदारता के साथ स्वागत किया गया। वहा पहुच कर देवीदास ने अनुभव किया कि रायमाल के साधन इतने सीमित हैं कि वह अतिरिक्त बोझा उठाने मे असमर्थ है और इस विषय म वह अपने उस कथन को सिद्ध नही कर पायगा जिसके कारण उसे अपने पद से वचित होना पडा है। अत उसने दिल्ली के मुगल दरबार म जाने का निश्चय किया और रायसाल को भी अपने साथ चलने का सुझाव दिया। रायसाल पराक्रमी और महत्वाकाक्षी था। उसने उसकी बात मान ली और बीस घुडसवारो के साथ दिल्ली के लिये चल पडा है। सयोगवश उन दिनो म अफगानो के एक आक्रमण को रोकने के लिये सनिको की भर्ती हो रही थी। उस युद्ध म रायसिह को अपने आपको एक पराक्रमी सनिक सिद्ध करने का अवसर मिल गया। उसने शत्रु पक्ष के अफगान सेनानायक को मौत के घाट उतार दिया। मुगल सेनानायक ने अपनी आखो से उस दृश्य को देखा था। अफगान सेनापति की मृत्यु से मुगलो की विजय हो गई। मुगल सेनानायक को अफगान सेनानायक को मारने वाले सनिक का परिचय प्राप्त करने की उत्सुकता हुई। पहले तो उसने साधारण तौर पर इस बात का अनुसधान किया लेकिन कुछ पता न चला और यदि अ य सेनानायको की भाति वह भी इस बात को वही खत्म कर देता तो रायसाल का पुरुषाथ व्यथ ही चला गया होता। पर तु मुगल सेनानायक ने जियाफत' के नाम से अपने सभी सनिको की एक सभा का आयोजन किया। इसका अभिप्राय है इस युद्ध म भाग लेने वाले सभी सनिक प्रधान सेनापति के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिय एकत्र हो। जब रायसाल वहा पहुचा तो मुगल सेनानायक और अ य बहुत स लोगो ने उसको पहचान लिया। जियाफत का आयोजन समाप्त होने के बाद रायसाल से उसका पूरा वश परिचय पूछा गया। उसका बडा भाई नूनकरण भी अपने सनिक दस्ते के साथ वहा उपस्थित था और जब सेनानायक ने उसे बुला भेजा तो रायसाल को वहा उपस्थित देखकर उसे गुस्सा आया और उसने कहा कि 'मेरे आदेश के बिना तुम यहाँ पर कसे आये?' पर तु रायसाल ने उत्तर देना उचित न समझा। मुगल सेनापति रायसाल को सम्राट अकबर की सेवा म ले गया और उसके पराक्रम की प्रशसा करते हुये बादशाह को उसका परिचय दिया। बादशाह ने प्रसन्न होकर उसी समय उसे 'रायसाल दरबारी' की उपाधि प्रदान की और उसे दवासी तथा कासली नाम के दो नगरो का अधिकार भी दे दिया। ये दोनो नगर पहले चन्देल राजपूतो के अधिकार म थे। यही से रायसाल के भाग्य का उदय शुरू हुआ। वह अपने अधिकार म आये नगरो की व्यवस्था ठीक से कर भी न पाया था कि उसे भटनेर आक्रमण म सम्मिलित होने के लिये दिल्ली से बुलावा आ गया। भटनेर के युद्ध म रायसाल ने अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया जिससे प्रसन्न होकर बादशाह ने

उसे खण्डला और उदयपुर (मेवाड वाला नही) के शासन की सनद् भी दे दी दोनो नगर निरभान राजपूतो के अधिकार मे थे। परन्तु उन्होंने सम्राट के विद्रोही आचरण किया, इसलिये उनसे इन नगरो का शासनाधिकार छीन लिया गया।

खण्डेला और उदयपुर के राजपूतो को उनकी बपौती से निकाल बाहर करना आसान काम न था। अत रायसाल ने अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये चालाकी का सहारा लिया। भटनेर आक्रमण मे सम्मिलित होने के लिये जाने के पहले रायसाल ने खण्डेला के राजा की पुत्री के साथ विवाह किया था। उस समय उसे दहेज मे बहुत कम सामान दिया गया। तब रायसाल ने कुछ और अधिक देने को कहा। प्रत्युत्तर मे उसके ससुर ने कहा कि मेरे पास इसके अलावा कुछ नही है। मेरे अधिकार मे एक शिखर है। यदि चाहो तो उसके पत्थरो को ले जाओ। रायसाल के एक सेवक ने उस समय रायसाल से कहा कि आप अपने वस्त्र मे एक गाठ बाध लीजिये जिससे यह बात याद रहे। इस प्रकार के शब्दो ने रायसाल के मन मे खण्डेला का अधीश्वर बनने की इच्छा को जन्म दिया। इसके बाद वह भटनेर के युद्ध मे भाग लेने के लिये चला गया। बादशाह ने उसे खण्डेला की सनद् दे दी। वहा से वापस आने के बाद उसने अपनी सेना के साथ खण्डेला की तरफ कूच किया। खण्डेला के राजा को जब इसकी सूचना मिली तो वह घबरा गया और नगर छोडकर भाग गया। वहाँ के लोगो ने बिना किसी प्रतिरोध के रायसाल की अधीनता स्वीकार कर ली। तब से खण्डेला शेखावाटी संघ का प्रमुख नगर बन गया। रायसाल के वशज रायसलोत के नाम से प्रसिद्ध हुये और वे शेखावाटी के दक्षिणी भाग मे रहते थे। सम्पूर्ण दक्षिणी भाग उनके अधिकार मे था। दूसरी शाखा के लोग सिद्धानी वश के नाम से प्रसिद्ध हुए और शेखावाटी का उत्तरी भाग उनके अधिकार मे था। खण्डेला पर अधिकार जमाने के कुछ दिनो बाद ही रायसाल ने उदयपुर पर भी अधिकार कर लिया। इसको पहले कसुम्बी कहा जाता था और इस पर भी निरभाण राजपूतो का अधिकार था।

मेवाड के राणा प्रताप के विरुद्ध किये गये अभियान मे रायसाल भी अपने वास्तविक अधीश्वर आमेर के राजा मानसिंह के साथ गया था। काबुल के अन्तर्गत कोहिस्तान के अफगानो के विरुद्ध किये गये अभियान मे भी उसने भाग लिया था। इन सभी अभियानो मे उसके पराक्रम से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे पुरस्कृत किया था जिससे उसको और भी लाभ मिला। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध मे कोई विवरण नही मिल पाता परन्तु इसका इतिहास राजपूत चरित्र का एक अन्य उदाहरण है और उस बनिये की बात को पुष्ट करती है कि प्रतिभा और अच्छा भाग्य पैतृक अधिकार से कही श्रेष्ठ होता है।

रायसाल अपने पीछे अपने पुत्रो के लिये एक विशाल सुव्यवस्थित प्रदेश छोड गया। अपनी मृत्यु के पूर्व वह इस विशाल प्रदेश को अपने सात पुत्रो मे बाट गया।

उसके पुत्रो के वशजा स अगणित परिवारा ग्रौर बहुत से वशो की उत्पत्ति हुई। रायसाल क साता पुत्रो का निम्नलिखित क्षेत्र प्राप्त हुये—

1 गिरिधर—खण्डला ग्रौर रेवासा 2 लाडखान—खाचरियावास, 3 भोज राज—उदयपुर 4 तिरमलराव—कासली ग्रौर चौरासी गाव 5 परशुराम—वाई 6 हरीराम—मू डरू, ग्रौर 7 ताजखान—कोई स्थान नही मिला।

रायसाल के बाद गिरिधर खण्डला का ग्रधिकारी बना। वह भी ग्रपने पिता के समान प्रतिभावान तथा पराक्रमी था ग्रौर एक बार ग्रपूव शौय प्रदशन के लिय बादशाह न उसे "खण्डला का राजा' की उपाधि प्रदान की। इन दिना मे साम्राज्य मे काफी ग्रव्यवस्था फल रही थी। मेवात के पहाडी क्षेत्र म मव जाति के लुटेर ग्रागाद थे ग्रौर उनकी लूटमार की गतिविधिया राजधानी तक विस्तृत हो चुकी थी। इन लुटरो क सरदार का जि दा या मुर्दा लाने का काम खण्डेला क राजा को सौपा गया जिसन बडी बहादुरी क साथ इस सफलतापूवक पूरा किया। यह सोचकर कि बडी सेना क साथ उन पर ग्राक्रमण करने पर वे लोग पहाड की गुफाग्रा ग्रौर क दराग्रा म छिप जायेंग। ग्रत उसन ग्रपने साथ कुछ चुन हुय शूरवीरा को लकर उनसे निपटने का निश्चय किया। ग्रपन निश्चयानुसार वह उनके क्षेत्र की पहाडियो म जाकर घूमने लगा ग्रौर ग्रचानक उसे लुटरा एक दल दिखाई पडा। गिरिधर ने तत्काल ही उस दल पर ग्राक्रमण कर दिया। काफी दर की मारकाट क बाद लुटेरे दल का सरदार मारा गया ग्रौर लुटरा की हार हुई। मारा गया सरदार ही उन सभी लुटरा का सरदार था। इस प्रकार गिरिधर न एक ही मुठभेड म ग्रपन पराक्रम स मवातियो को परास्त कर दिखाया। इसी सफलता स प्रसन्न होकर बादशाह ने गिरिधर को राजा' की उपाधि प्रदान की थी। इसके बाद भी गिरिधर बहुत दिना तक जीवित रहा। यमुना नदी मे स्नान करत समय एक मुस्लिम ग्रधिकारी न उसे मार डाला। इस घटना का पूरा वृत्ता त इस प्रकार है—एक दिन राजा गिरिधर का एक कम चारी दिल्ली म एक लुहार की दुकान पर बठा हुग्रा ग्रपनी तलवार की मरम्मत करा रहा था। उस समय एक मुसलमान उस दुकान के सामने से होकर गुजरा। उसने इस कमचारी को गाव का एक ग्रसभ्य ग्रादमी समझ कर लुहार की दुकान पर बठ कर उसे चिढाना शुरू किया। वह कमचारी राजपूत था। उसने धीरे से मुसलमान को उत्तर दिया। इस पर उस मुसलमान ने ग्राग का एक ग्रगारा उसकी पगडी पर डाल दिया जिससे पगडी जलने लगी। इससे क्रोधित होकर कमचारी ने तलवार उठा कर उस मुसलमान के टुकडे टुकडे कर दिय।

मृत मुसलमान बादशाह के एक प्रसिद्ध ग्रमीर का नौकर था। इस हादस को सुनकर वह ग्रमीर ग्रत्यधिक क्रोधित हो उठा ग्रौर ग्रपने सशस्त्र ग्रादमियो के साथ गिरिधर क निवास स्थान पर गया। वहा उसे मालूम हुग्रा कि राजा गिरिधर यमुना

स्नान को गया हुआ है। अमीर उसी क्रोधित अवस्था मे यमुनातट पर जा पहुचा, जहाँ गिरिधर स्नान कर रहा था। अमीर ने स्नान करते हुए गिरिधर पर आक्रमण कर उसको मार डाला।

गिरिधर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र द्वारिकादास खण्डेला का राजा बना। परन्तु थोडे दिनो बाद ही शेखावतो की ज्येष्ठ शाखा के नूनकरण के वशज मनोहरपुर के सरदार के षडयन्त्र का शिकार हो गया। उन्ही दिनो मे बादशाह जगल से एक शेर पकड कर लाया था। बादशाह ने अपने दरबारियो से पूछा कि इस शेर के साथ कौन युद्ध कर सकता है? मनोहरपुर के सरदार ने तत्काल कहा कि रायसलोत वशी द्वारिकादास सुप्रसिद्ध शूरवीर नाहरखा का शिष्य है। वह इस शेर के साथ युद्ध कर सकता है। द्वारिकादास अपने स्वबन्धु के विश्वासघात को समझ गया परन्तु उसने प्रसन्नता के साथ प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसने स्नान करके ईष्टदेव की पूजा की और एक पीतल के बर्तन मे पूजा की सामग्री—चावल, दही, चदन इत्यादि लेकर उस सुरक्षित स्थान मे प्रवेश किया जहा शेर को रखा हुआ था और बादशाह, सरदारो तथा समस्त दर्शको को चौका देने वाला कार्य किया। शेर के सामने जाकर द्वारिकादास ने उसके मस्तक पर चदन का टीका लगाया, गले मे माला पहनाई और उसके सामने बैठकर पूजा करने लगा। शेर चुपचाप द्वारिकादास के पास खडा रहा और अपनी जीभ से द्वारिकादास को चाटता रहा। वह निर्भीकता के साथ बैठा रहा। सभी लोगो ने आश्चर्य से उस दृश्य को देखा। पूजा समाप्त करने के बाद द्वारिकादास सिंह को दण्डवत प्रणाम करके वापस लौट आया। सिंह ने उसको किसी प्रकार की क्षति नही पहुँचाई। बादशाह ने प्रसन्न होकर उससे कोई भी चीज मागने को कहा। इस पर उस शूरवीर ने बादशाह से प्रार्थना की कि इस सकट से ईश्वर ने मुझे बचा लिया। भविष्य मे आप किसी अन्य व्यक्ति को इस प्रकार के सकट मे न डाले, यही मेरी प्रार्थना है।[3]

अपने युग के विख्यात शूरवीर खानेजहा लोदी के हाथो द्वारिकादास मारा गया। शेखावतो की जनश्रुति के अनुसार दोनो वीर एक दूसरे के हाथो मारे गये थे। खानेजहा और खण्डेला राजा एक दूसरे के मित्र थे। परन्तु किसी कारणवश बादशाह खानेजहा से नाराज हो गया और उसके प्राण लेने का निश्चय किया। द्वारिकादास ने समय से पूर्व अपने मित्र को इस बात का सकेत भी दे दिया और उसे सलाह दी कि वह भाग जाये अथवा आत्मसमर्पण कर दे। फिरिश्ता ने अपने इतिहास मे लिखा है कि अन्त मे विद्रोही खानेजहा पर आक्रमण किया गया और शाही सेना की तरफ से द्वारिकादास भी लडने गया। दोनो मित्र एक दूसरे के प्रहार से मारे गये।

द्वारिकादास के बाद उसका लडका वीरसिंहदेव खण्डेला की गद्दी पर बैठा। बादशाह की आज्ञा से वह अपनी सेना सहित दक्षिण के युद्ध मे गया और युद्ध मे ही

उसने वीरगति प्राप्त की। मरने के बहुत दिनों पूर्व उसे दक्षिण में परनाला का शासनाधिकारी भी नियुक्त किया गया था। खण्डेला के एक ग्रन्थ में लिखा है कि दक्षिण में वह अपने अधीश्वर आमेर के राजा की अधीनता में न रहकर स्वतन्त्र रूप से बादशाह की सेवा में था। परन्तु उस समय की परिस्थितियों में यह सम्भव प्रतीत नहीं होता क्योंकि उन दिनों में सम्पूर्ण दक्षिण आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह के नियन्त्रण में रखा गया था। वह उस समय दरबार या देश का विख्यात व्यक्ति था।

वीरसिंहदेव के सात लडके थे उनमें से ज्येष्ठ पुत्र बहादुरसिंह को उत्तराधिकार में खण्डेला प्राप्त हुआ और अन्य पुत्रों को जागीरें प्रदान की गई। अन्य पुत्रों के नाम थे—अमरसिंह श्यामसिंह जगरदेव भूपालसिंह मोहनसिंह और प्रेमसिंह। वीरसिंहदेव जिन दिनों बादशाही सेवा के सिलसिले में दक्षिण गया हुआ था, उसे सूचना मिली कि उसके लडके ने खण्डेला में उसकी उपाधि और अधिकार दोनों पर अधिकार कर लिया है। तब वह केवल चार घुडसवारों के साथ अपने घर की तरफ लौट चला और जब वह अपनी राजधानी से केवल चार मील दूर रह गया तो विश्राम करने के लिये एक जाटनी के मकान पर उतर गया और उससे कुछ खाने पीने के लिये मांगा और उससे यह प्रार्थना भी की कि हमारे घोडों का भी ध्यान रखना कहीं कोई खोल कर नहीं ले जाय। इस पर जाटनी ने उत्तर दिया यहां पर बहादुरसिंह का शासन है। रास्ते में आप सोना छोडकर चले जाइए, कोई उसे छू न सकेगा।' अपने लडके के शासन की इस प्रकार प्रशंसा सुनकर उसे अपार आनन्द मिला और वह वहीं से वापस दक्षिण को लौट गया और वहीं उसका स्वर्गवास हुआ।

बहादुरसिंह ने सिंहासन पर बैठने के बाद शासन करना शुरू किया ही था कि दक्षिण से बादशाह औरंगजेब का व्यक्तिगत आदेश आ पहुँचा—दक्षिण आने का। वहां बादशाह की सेवा में उसी के नाम का एक मुसलमान अधिकारी भी था। उसने अपने नामराशि बहादुरसिंह का अपमान किया। बहादुरसिंह ने बादशाह से इसकी शिकायत की परन्तु धर्मान्ध बादशाह से उसे न्याय नहीं मिल पाया। इससे रुष्ट होकर वह अपने सैनिकों के साथ दक्षिण से वापस लौट आया। परिणामस्वरूप शाही मनसबदारों की सूची में से उसका नाम पृथक कर दिया गया। यह वह समय था जबकि धर्मान्ध बादशाह ने अपनी सम्पूर्ण हिन्दू जनता पर जजिया कर लगाया था और उनके मन्दिरों को भूमिसात करने के आदेश जारी किये थे।

शेखावत के उस शत्रु सेनानायक बहादुरखां को बादशाह ने दो काम सौंपे—पहला खण्डेला से जजिया कर वसूल करना और दूसरा खण्डेला के भव्य मन्दिर को भूमिसात करना। जब शाही सेना बिना किसी विरोध के खण्डेला के समीप जा पहुंची तो बहादुरसिंह अपने नाम का अपमानित करता हुआ कायरों की भांति खण्डेला छोड कर भाग गया। शाही सेना ने खण्डेला पहुंच कर मन्दिरों को भूमिसात करने का

का काम शुरू किया। जब इसकी सूचना रायसाल के दूसरे लडके भोजराज के वंशज छापोली के सरदार सुजानसिंह को मिली तो उसने अपने प्राणो की आहूति देकर भी मंदिर की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। उस समय वह अपना विवाह करने के लिये मारवाड की तरफ गया हुआ था। वहाँ से घर आकर उसने अपनी माता तथा नव विवाहिता से खण्डला जाने के लिये विदा मांगी। उसके परिवारजनो ने उसे समझाने का प्रयास करते हुये कहा कि 'खण्डला की रक्षा का दायित्व राजा बहादुरसिंह का है। आपको वहाँ पर हस्तक्षेप करने की क्या आवश्यकता है?" इस पर उसने कहा- "क्या मैं रायसल का वंशज नही हूँ? क्या मैं तुर्कों को ठाकुरजी का मंदिर नष्ट करने दूँ और उनकी रक्षा का प्रयास न करूँ? क्या एक राजपूत का यह कर्तव्य नही है?' जब परिवारजनो की सलाह का उस पर कोई प्रभाव नही पडा तो उन लोगो, जिनकी संख्या साठ के लगभग थी, ने भी उसके साथ खण्डला जाकर अपने प्राणो की आहूति देने का निश्चय किया। बहादुरसिंह के कुछ समर्थक भी उनके साथ आ मिले और सभी लोग खण्डला मे प्रवेश करने मे सफल रहे। बहादुरखां को जब उन लोगो के आने की सूचना मिली तो उसने सोचा कि ये लोग व्यर्थ में ही प्राण गवायेंगे क्योंकि वह राजपूतो के स्वभाव और चरित्र से सुपरिचित था। अतः उसने उनके पास संदेश भिजवाया कि उनके दो प्रतिनिधि आकर उससे बातचीत कर ले। मुगल सेनानायक ने उनके प्रतिनिधियो से कहा कि वह बादशाह के आदेश से मंदिर को गिराने आया है, फिर भी यदि उसकी दो शर्तें पूरी कर दी जाय तो वह मंदिर को क्षति पहुँचाये बिना वापस लौट जायेगा। पहली शर्त थी, बहादुरसिंह द्वारा बादशाह की अधीनता स्वीकार करना और दूसरी, मंदिर के स्वर्ण कलश सौंपना। प्रतिनिधियो ने स्वर्ण कलश के बदले मे उनकी सामर्थ्यानुसार धन देने का प्रस्ताव रखा परन्तु सेनानायक का उत्तर था कि उसे स्वर्ण कलश ही चाहिए। सेनापति की हठधर्मिता से एक प्रतिनिधि अत्यधिक क्रोधित हो उठा। उसने अपने पैर तले की गीली मिट्टी को उठाकर उसका कलश बनाया और सेनापति के सामने रखते हुये कहा 'स्वर्णकलश की बात तो बहुत दूर की है इस मिट्टी के कलश को ले लेने का अधिकार किसमे है यह मैं देखना चाहता हूँ।' उस राजपूत की बात से सेनापति नाराज नही हुआ और उन दोनो को सकुशल जाने दिया। वहाँ जाकर उन लोगो ने बुरी से बुरी स्थिति की तैयारी की।

इन दिनो मे खण्डला मे कोई दुर्ग नही था परन्तु ऊंचे शिखर पर स्थित राजनिवास को जाने वाले मार्ग के मध्य मे एक बडा दरवाजा स्थित था। उसी रास्ते के निकट एक तरफ मंदिर बना हुआ था। एक दल को इस दरवाजे पर नियुक्त किया गया और शेष आदमियो के साथ सुजानसिंह ने मंदिर की रक्षा का दायित्व संभाला। बादशाही सेना बन्दूकों से गोलीवर्षा करते हुये आगे बढी और दरवाजे पर नियुक्त राजपूत अपने हाथो मे तलवारें लेकर आगे बढे और थोडे समय बाद सब वीरगति को प्राप्त हुये। इसके बाद शाही सेना मंदिर की तरफ बढी। सुजानसिंह

ग्रार उसके साथियो न मूर्ति का प्रणाम किया ग्रौर प्राणोत्सग के लिये चल पडे। थोडी दर के लिय भयकर मारकाट हुई पर तु ग्र त मे सुजानसिह ग्रपने समस्त साथिया के साथ मारा गया। मुगलो न म दिर पर ग्रधिकार कर लिया। मूर्ति क टुकडे टुकडे कर डाले। खण्डेला की शासन व्यवस्था के लिय कुछ सनिका को वहा छोड कर बहादुर खा वापस लौट गया।

खण्डेला स भागकर बहादुर सिंह उसक एक समीपवर्ती गाव म जा बसा था। ग्रपन दीवान की सहायता स उस फसला की उपज पर प्रति मन पर एक सेर ग्रौर राहदारी शुल्क म स एक पसा प्रति एक रुपया के हिसाब से मिलन लगा। कुछ समय बाद बादशाह न उसका ग्रपन पतृक महल म रहन की स्वीकृति भी द दी पर तु शाही सना की एक टुकडी खण्डेला म बनी रही ग्रार उसका खर्चा बहादुर सिंह का उठाना पडा। बहादुर सिंह ग्रपन पीछे तीन पुत्र छोड गया—केसरीसिंह फतेहसिंह ग्रौर उदयसिंह।

कसरीसिंह न ग्रपन पूवजा का ग्रनुकरण करत हुय बादशाह की सवा मे रहते हुये सुविधाग्रा का प्राप्त करन का निश्चय किया ग्रौर ग्रपन स्वब धुग्रो के साथ दिल्ली की तरफ कूच किया। शखावत वश की वरिष्ठ शाखा का मनोहरपुर का सरदार भी इन दिनो म बादशाह क दरबार म उपस्थित था। खण्डला क पतन से उसको शखावतो का नतृत्व मिल गया था। जब उसन सुना कि केसरीसिंह दरबार म उपस्थित हाने का प्रयास कर रहा है ता उसकी ईर्ष्या जाग उठी ग्रौर उसने केसरीसिंह के विरुद्ध कुचक्र रचना शुरू कर दिया। वह कसरीसिंह के छोट भाई फतेहसिंह स मिला ग्रार उसस कहा कि तुम भी तो बहादुरसिंह के पुत्र हा। खण्डेला मे केवल कसरीसिंह को ही सब कुछ क्यो मिले ? ग्राप ग्रपना स्वत्व उससे मागे। फतेहसिंह उसक जाल म फस गया ग्रौर ग्रपन भाई से ग्रपन हिस्स की माग करन लगा। दीवान न सोचा कि यह पारिवारिक कलह सभी भाइया को बर्बाद कर देगी। इसलिये वह चुपचाप खण्डला चला ग्राया ग्रौर उनकी माता जा कि एक गौड राजपूतानी थी के द्वारा विभाजन किये जान का प्रस्ताव रखा जिसे राजमाता न स्वीकार कर लिया ग्रौर तदनुसार खण्डेला के ग्रधिकार वाली भूमि की माप की गई तथा ग्राबादी का ग्रनुमान भी लगाया गया। फिर उसको पाच भागा मे बाटा गया। तीन भाग केसरीसिंह को ग्रौर दो भाग फतहसिंह को दिये गय। खण्डला नगर का भी इसी ग्रनुपात मे विभाजन किया गया। इसके बाद दोना भाइया म किसी प्रकार की बातचीत नही हुई। केसरीसिंह खण्डला क बजाय कावर नामक स्थान पर रहन लगा। पर तु जब कभी वह खण्डेला ग्राता था तो फतहसिंह उस स्थान से कही दूर चला जाता था। कुछ समय तक यही स्थिति बनी रही। इसस दु खी होकर दीवान न केसरीसिंह स कहा कि इस यवस्था क परिणामस्वरूप शेखावाटी सघ म मनोहरपुर वालो को श्रेष्ठता प्राप्त हो गइ है ग्रार ग्रपनी श्रेष्ठता को पुन स्थापित करन के लिय ग्राप

अपने भाई का विनाश कर इस व्यवस्था से छुटकारा प्राप्त करें। दीवान ने दोनों भाइयों में सुलह कराने के बहाने कासर में दोनों की मुलाकात की व्यवस्था की और उसी दौरान फतेहसिंह मौत के घाट उतार दिया गया। संयोगवश जिस तलवार ने उसकी गर्दन काटी थी उसी की नोक पास खड़े दीवान के गले में जा घुसी जिससे दीवान का भी अन्त हो गया।

इस प्रकार, केसरीसिंह ने पुनः अपनी समस्त पैतृक भूमि का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस समय उसको खण्डेला का कर नारनौल के खजाने में और रेवासा का कर अजमेर में जमा कराना पड़ता था। उसने कर भेजना बन्द कर दिया। वज़ीर सैयद अब्दुल्ला को जब इसकी जानकारी मिली तो उसने एक सेना खण्डेला के विरुद्ध भेज दी। शाही सेना का सामना करने के लिये रायसाल का प्रत्येक वंशज आ जुटा, यहाँ तक कि खण्डेला के शत्रु मनोहरपुर के सरदार ने भी अपने धाभाई के नेतृत्व में अपनी सेना भिजवा दी क्योंकि यह देश की प्रतिष्ठा का सवाल था। इससे केसरीसिंह की शक्ति बढ़ गई और उसने शाही सेना से सम्मुख युद्ध लड़ने का निश्चय कर लिया। दोनों सेनाओं के मध्य राज्य की सीमा पर स्थित देवली नामक स्थान पर युद्ध लग गया और युद्ध में शेखावतों की विजय के आसार दिखाई देने लगे थे कि पुरानी शत्रुता की भावना के उदित होने से मनोहरपुर के धाभाई ने युद्धभूमि से अपनी सेना को हटा लिया और उसी समय कासली का शूरवीर सामन्त मारा गया। इस व्यक्ति पर केसरीसिंह का काफी विश्वास था। दुर्भाग्य ने अभी पीछा नहीं छोड़ा। उसकी सहायता को आये दाता के लाडखानी सरदार ने इस अवसर पर अपना स्वार्थ पूरा करने का विचार किया और अपनी सेना सहित युद्ध से पृथक हो गया और रेवासा को अपने अधिकार में लेने के लिये चल पड़ा। खण्डेला का सिंह (केसरी) अपने बंधुओं को इस प्रकार से साथ छोड़ता हुआ देख कर चिल्ला पड़ा कि आज यदि फतेहसिंह इस मैदान में उपस्थित होता तो वह मुझे कभी धोखा नहीं देता। फिर भी, इन विपरीत परिस्थितियों में भी उसने एक शूरवीर रायसलोत की भांति प्राण उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया और अपने छोटे भाई उदयसिंह को बुलाकर कहा कि वह इसी समय युद्धभूमि से सुरक्षित चला जाय। परन्तु उसने युद्धभूमि से भागने से इन्कार कर दिया। इस पर उसे समझाते हुये केसरीसिंह ने कहा कि मैंने अन्तिम समय तक लड़ते रहने का निश्चय कर लिया है, मुझे फतेहसिंह की हत्या का प्रायश्चित करना है और अपने विवाह के समय बीकानेर के चारणों को भेंट न देने से उन्होंने मुझे जो श्राप दिया है, उससे भी मुक्त होना है। परन्तु यदि मेरे साथ तुम भी मारे गये तो हमारी वंश परम्परा ही समाप्त हो जायगी। विवश होकर उदयसिंह को युद्धभूमि से जाना पड़ा। केसरीसिंह युद्ध करता हुआ मारा गया। विजयी मुगल सेना ने खण्डेला पर अधिकार कर लिया। उदयसिंह पकड़ा गया और उसे अजमेर के दुर्ग में बन्दी बना कर रखा गया। वहाँ वह तीन वर्ष तक रहा। इसके बाद शेखावत वंश के दो सामन्तों ने खण्डेला के उद्धार की योजना बनाई। उन्होंने गोपनाथ

उपाय से अजमेर म व दी उदयसिंह के पास सदेशा भिजवाया कि हम लोग खण्डेला के उद्धार के लिय सशस्त्र कायवाही करने जा रहे है। परिणामस्वरूप आप पर भयकर सकट आ सकता है। अत आप पहले से बादशाह को सावधान कर दे कि शेखावत साम त लडने की तयारी कर रहे है, इससे बादशाह को आप पर स देह न रहेगा। उदयसिंह ने उनके निदेशानुसार बादशाह तक उनकी गतिविधियो की सूचना पहुचा दी। उधर उदयपुर और कासली के साम ता ने अपन सनिको के साथ अचानक खण्डला पर आक्रमण कर दिया और वहा स्थित शाही सना के अधिकारी देवनाथ को मार डाला। तीन सौ मुगल सनिक भी मारे गये। अजमेर के सूबेदार ने खण्डेला को पुन प्राप्त करन के लिय अपन ब दी उदयसिह से इस समय पर विचार-विमश किया। उदयसिंह ने कहा कि यदि मुझे मुक्त कर दिया जाय तो वह खण्डला का पुन बादशाह के अधिकार म ले आयगा। इस पर नवाब ने धराहर के तौर पर किसी व्यक्ति की माग की। उदयसिंह ने कहा कि वह अपनी माता क अलावा अ य किसी को नही जानता। उसकी मा अपने पुत्र की जमानत के तौर पर ब दीखाने मे रहने के लिये तयार हो गई। मुक्त होने के बाद उदयसिंह ने अपना वचन पूरा कर दिखाया। नवाब उससे इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि नजराना क रूप मे उससे धन राशि लकर खण्डेला उसका सौप दिया।

उदयसिह का पहला काम मनोहरपुर को सजा देना था जिसके कारण उन सभी का य दुर्दिन देखने पडे थे। अत उसने अपने सभी बधु बाधवो को एकत्र किया। सभी को साथ लकर उसने मनोहरपुर की तरफ प्रस्थान किया। वहा के सरदार ने उनके विरुद्ध अपने धाभाई को भेजा। पर तु वह मैदान से भाग खडा हुआ। तब उदयसिह ने मनोहरपुर का जा घरा। उस सरदार ने देखा कि सम्मुख युद्ध म सफलता प्राप्त करना आसान नही है अत उसने पुन चालबाजी का सहारा लिया। नूनकरण के दो वशज खाजरौली गाव के सयुक्त रूप से मालिक थ और उदयसिंह के मुख्य सलाहकार कासली क सरदार दीपसिंह के मित्र भी थ। मनोहरपुर के राजा ने उन दोनो को अपना माहरा बनाया और उनक द्वारा दीपसिंह के पास एक व्यक्तिगत सदश भिजवाया कि ज्यो ही मनोहरपुर का पतन हुआ उस कासला मे वचित कर दिया जायगा। इस प्रकार की चालें विश्वासघातपूर्ण थीं पर तु शेखाजी के वशजो के लिय सामा य थी। अत दीपसिंह सरलता से उनके बहकाव म आ गया और जब युद्ध के नगाडे बजने लग ता दीपसिंह अपने सनिको के साथ युद्धभूमि का छोडकर अपनी जागीर का तरफ चल पडा। उदयसिंह जब अपने प्रतिशोध म वचित रह गया तो उसने दीपसिह का पीछा किया। दीपसिह ने सामना करना निरथक समझा और वह अपने अधीश्वर के आश्रय म जयपुर की तरफ भाग गया। उदयसिंह ने कासलो पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार मनोहरपुर उसके प्रतिशोध से बच गया। जयपुर म उन दिनो सवाई जयसिंह का राज्य था। उसने नगाडे दीपसिंह को आश्रय प्रदान किया और इस शत पर सहायता देन का आश्वासन दिया

कि वह जयपुर की अधीनता स्वीकार कर वार्षिक कर चुकाना स्वीकार कर ले। दीपसिंह ने जयसिंह की गद्दी के प्रति निष्ठा की शपथ ली और प्रतिवर्ष चार हजार रुपये कर चुकाने सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार अब वह जयपुर राज्य का करद् सामन्त बन गया।

इस प्रकार शेखावाटी संघ पर आमेर की सर्वोच्चता का वह सिलसिला पुनः प्रारम्भ हुआ जो अमरसर के घोडो के नवजात शिशुओं को भेजने सम्बन्धी विवाद से टूट गया था, हालांकि उस समय शेखाजी के वंशजो की संख्या अधिक न था। दीपसिंह के साथ सम्पन्न समझौते के बाद ग्रहण के अवसर पर जयसिंह गंगा स्नान के लिये चला गया। दीपसिंह भी उसके साथ था। गंगा के किनारे जब जयसिंह दान कर रहा था तो उसने पूछा, "उस दिन दान लेने के लिए कौन उपस्थित हुआ था?" कासली सामन्त ने अपने वस्त्र का पल्ला फैलाते हुए कहा कि वह उपस्थित हुआ था। राजा जयसिंह ने हंसते हुए कहा कि इस प्रकार का दान केवल सम्मान्य लोगो को दिया जाता है जैसे कि पुरोहित कवि एवं गरीब लोग। लेकिन ठाकुर आपकी क्या इच्छा है? ठाकुर दीपसिंह ने उत्तर दिया कि आपकी कृपा से फतेहसिंह का लडका खण्डेला मे अपने पिता का हिस्सा प्राप्त कर सकता है। राजा ने दीपसिंह की प्रार्थना को पूरा करने का आश्वासन दिया।

यह घटना 1716 ई० की है, जबकि जाटों का उदय हो रहा था और जबकि छोटे बडे अनेक राजा और सरदार बादशाह के सेनानायक सवाई जयसिंह की अधीनता मे अपने सैनिक दस्ता सहित काम कर रहे थे। करौली, भदावर, शिवपुर और दूसरी श्रेणी के राजाओं के साथ खण्डेला का राजा उदयसिंह भी सवाई जयसिंह की सेवा मे था। जयसिंह ने जाटों पर आक्रमण कर उनके थूण दुर्ग को घेर लिया लेकिन कुछ कारणों से इस अभियान के दौरान जयसिंह, खण्डेला राजा से अप्रसन्न हो गया। परिणामस्वरूप उदयसिंह उसका शिविर छोडकर खण्डेला लौट आया। अब उसने अपनी तथा वजीद खां की सेना के साथ खण्डेला पर आक्रमण किया। उदयसिंह इस समय अपने नवनिर्मित उदयगढ मे था। जयसिंह ने उदयगढ का घेरा डाल दिया। एक महीने तक घेराव दी का सफलतापूर्वक सामना किया गया परन्तु खान-पीन की सामग्री का अभाव हो जाने से उदयसिंह की स्थिति बिगडने लगी। वह वहाँ से भागकर मारवाड के नाम्ब गाव की तरफ चला गया। उसके पुत्र सवाई सिंह ने दुर्ग की चाबियाँ जयसिंह के सामने उपस्थित करते हुए उसके आश्रय की माग की। जयसिंह उसके आचरण से सतुष्ट हो गया और जब उसने आमेर राज्य की सर्वोच्चता को मानने तथा वार्षिक खिराज देने पर हस्ताक्षर कर दिये तो उसको क्षमा कर दिया गया। सवाईसिंह ने अपने पतृक राज्य के लिए एक लाख रुपया वार्षिक कर चुकाना स्वीकार किया था। कुछ समय बाद इस रकम में से पन्द्रह हजार रुपये कम कर दिये गये और थोडे दिनो बाद बीस हजार रुपये और कम कर

दिये गये। खण्डेला को अब पसठ हजार वार्षिक कर देना था। कुछ दिना बाद जयसिंह की शक्तियां कमजोर पडने लगी। मराठा और पठानो की लूट खसोट ने जयपुर राज्य का और भी कमजोर बना दिया। ऐसी स्थिति मे खण्डेला से नियमित कर वसूल करना जयपुर राज्य के लिये कठिन हो गया। बहुत दिनो पहले गगा के किनारे दीपसिंह की प्रार्थना पर सवाई जयसिंह ने फतेहसिंह के लडके को खण्डेला म उसका पतृक हिस्सा दिलाने का आश्वासन दिया था। जयसिंह न उस आश्वासन को पूरा किया और खण्डेला राज्य का एक हिस्सा फतेहसिंह के पुत्र धीरसिंह का प्रदान किया। सवाई सिंह की भाति उसने भी जयपुर राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली और वार्षिक कर चुकान का वचन दिया। खण्डेला के दोना चचेरे भाई अपने सनिक दस्ता के साथ सवाई जयसिंह की सेना के साथ रहन लग। उदयसिंह न मौके का लाभ उठाते हुए लुटर लारखाना की सहायता से अचानक खण्डला पर आक्रमण करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। जयपुर की सेना को साथ लेकर पुत्र ने अपने अधिकृत क्षेत्र से पिता को मार भगाने का कर्तव्य पालन किया। वह पुन भागकर नारू चला गया। सवाई सिंह न उसके गुजार के लिए पाच रुपये प्रतिदिन तय कर दिये जो उसे उसकी मृत्यु पय त मिलते रहे। वह सवाई सिंह के भी बाद मे मरा। सवाई सिंह अपने पीछे तीन लडके छोड गया। बडा लडका वृन्दावन खण्डेला का उत्तराधिकारी बना। मझले लडके शम्भू को रानोली का और छोटे कुशल को पिपरौली का शासन मिला।

सन्दभ

1 टाड ने लिखा है कि इस प्रकार की रीति प्राचीन फारस म भी प्रचलित थी।

2 निरभाण अथवा निरवाण सम्प्रदाय चौहान जाति की एक शाखा विशेष थी। कसुम्बी जो आजकल उदयपुर के नाम स प्रसिद्ध है इन लोगा की राजधानी थी। इस उदयपुर म हो शेखावत लोग एकत्र हुआ करते थे।

3 इस सम्पूर्ण घटना की ऐतिहासिकता सदिग्ध है।

अध्याय 62

अव्यवस्था के काल मे शेखावाटी

आमेर की गद्दी के लिये जिस गृहयुद्ध का सूत्रपात हुआ उसमे खण्डेला के वृन्दावनदास ने माधोसिंह का पक्ष लिया। माधोसिंह ने सफलता प्राप्त करने के बाद अपने अधीनस्थ सहयोगी जिसका सहयोग इस सफलता के लिये महत्वपूर्ण रहा था को पुरस्कृत करने का निश्चय किया। वृन्दावनदास के अनुरोध पर उसने खण्डेला के विभाजन जिसके परिणामस्वरूप दोनो परिवारो मे काफी रक्तपात हो चुका था को रद्द कर दिया और वृन्दावनदास को सम्पूर्ण खण्डेला जागीर का एकमात्र शासक स्वीकार किया। उसने वृन्दावनदास के नेतृत्व मे पाच हजार सैनिक देकर उसको खण्डेला के दूसरे अधिकारी—फतहसिंह के लडके वीरसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह जो अभी बालक ही था को वहा से निकाल बाहर करने का आदेश दिया। इन्द्रसिंह ने कुछ महीने तक घेराव दी का सफलतापूर्वक सामना किया, परन्तु उसका छोटा सा दल इससे अधिक समय तक घेराव दी के दबाव को सहन न कर पाया और वह वहा से भागकर पारमाली नामक स्थान पर रहने लगा। वृन्दावनदास ने उसको वहा भी जा घेरा और इन्द्रसिंह आत्मसमर्पण करने ही वाला था एक ऐसी घटना घटित हुई जिससे उसको अपने पिता का अधिकार वापस मिल गया।

वृन्दावन को जो पाच हजार वैतनिक सैनिक दिये गये थे, उनके वेतन का सारा भार उसे ही उठाना था। लेकिन उसके पूर्वज उसके लिये धन सम्पत्ति नहीं छोड़ गये थे। इसलिये उसे अपनी प्रजा से दण्ड कर वसूल करने के लिये बाध्य होना पड़ा और इस सम्बन्ध मे उसने ब्राह्मणो तक को कोई रियायत नही दी। इस असामान्य माग से दुःखी होकर कुछ समृद्ध ब्राह्मणो ने अपने राजा मे इसका विरोध किया परन्तु चूंकि वृन्दावनदास के पास सैनिको का वेतन चुकाने का अन्य कोई साधन न था, अतः उसने ब्राह्मणो की प्रार्थना को रद्द कर दिया। अपने प्रभाव और धनसम्पत्ति को नष्ट होते देखकर ब्राह्मणो ने प्रतिशोध लेने का निश्चय किया और उन्होने वृन्दावनदास को ब्रह्म-हत्या का दोषी बनाने का निश्चय किया। उन्होने एक एक करके वृन्दावनदास के निवास के बाहर आत्मदाह का सिलसिला शुरू किया और मरने से पूर्व उसे श्राप देते जाते। इस प्रकार की घटनाओ से खण्डेला की सम्पूर्ण प्रजा उसको कोसने लगी।

जब माधोसिंह को इन घटनाओं की जानकारी मिली तो उसने स्वयं को भी इसका दोषी माना और उसने अपने पाँच हजार सैनिकों को तत्काल वापस बुला लिया और विद्रोही ब्राह्मणों को आमेर बुलवा भेजा जहाँ उसने उनका सम्मान किया तथा अपने पास से उनको बीस हजार रुपये दान में दिये। इससे इन्द्रसिंह को राहत मिल गई। उसने अपने सैनिकों का एकत्र किया और माचेरी के राव के विरुद्ध खुशालीराम के नेतृत्व में भेजी जाने वाली जयपुर की सेना के साथ सम्मिलित हो गया। उसका यह काम उसकी सूझ बूझ का परिचायक था। माचेरी के राव को परास्त करके खदेड़ दिया गया। उसने जाटों के यहाँ शरण ली। इस अभियान में इन्द्रसिंह ने कम आयु का होने पर भी अपनी शूरवीरता का अच्छा प्रदर्शन किया था। अतः पचास हजार रुपया नजराना देने पर जयपुर राजा ने प्रसन्न होकर खण्डेला का आधा भाग उसको प्रदान कर दिया और इसके लिये उसे एक नियमित पट्टा (सनद्) भी लिखकर दे दिया गया।

खण्डेला के आधे भाग की सनद् प्राप्त हो जाने के बाद इन्द्रसिंह और वृन्दावनदास की आपसी शत्रुता और अधिक बढ़ गई। दोनों के पास अलग अलग महल और दुर्ग थे। दोनों ने एक दूसरे का सर्वनाश करने की पूरी तैयारी की। प्रतिदिन झगड़े होने लगे। रक्त के सम्बन्ध को भुलाकर दोनों परिवार एक दूसरे का रक्त बहाने लगे।

वृन्दावनदास अधिक शक्तिशाली था परन्तु इन्द्रसिंह अधिक लोकप्रिय था। वह अपनी सेना सहित वृन्दावनदास से उदयगढ़ छीनने के लिये रवाना हुआ। वृन्दावनदास का छोटा लड़का रघुनाथसिंह भी अपने पिता के विरुद्ध इन्द्रसिंह के साथ चला। इसका भी एक कारण था। उसे कोछोर नगर जागीर में मिला था परन्तु उसने तीन अन्य गावों पर बलात् अधिकार कर लिया था और उस अधिकार को बनाये रखने के लिये वह इन्द्रसिंह की तरफ से युद्ध में भाग ले रहा था। अपने विरोधी पक्ष की शक्ति को विभाजित करने के लिये वृन्दावनदास ने कोछोर पर आक्रमण कर दिया। इस पर रघुनाथसिंह अपने भतीजे रानोली के सामन्त पृथ्वीसिंह और अपने सैनिकों के साथ इन्द्रसिंह का साथ छोड़कर अपनी जागीर की रक्षा करने के लिये चल पड़ा। परन्तु इससे पहले ही वृन्दावनदास के आक्रमण को विफल किया जा चुका था और वह वापस खण्डेला के लिये चल पड़ा था। वापसी में उसे रघुनाथसिंह ने घेर लिया। दोनों पक्षों के मध्य खण्डेला नगर के बाहर ही युद्ध लड़ा गया। खण्डेला नगर के द्वार दोनों ही पक्षों के लिये समान रूप से बन्द कर दिये गये ताकि निर्दोष नागरिक अत्याचारों से बच सकें। उधर उदयगढ़ की घेराबन्दी भी जारी थी और वृन्दावन का बड़ा लड़का गोविन्दसिंह बहादुरी के साथ दुर्ग की रक्षा कर रहा था जबकि दूसरी तरफ उसके ही एक निकट सम्बन्धी चीरना के नाहरसिंह के नेतृत्व में उस पर गोलावर्षा की जा रही थी। कई दिनों तक दोनों पक्षों में झड़पें होती रहीं जिसमें पिता

और पुत्र, चाचा और भतीजे और अन्य निकट सम्बन्धी एक दूसरे को नष्ट करने में लगे हुए थे। अन्त में दोनों पक्ष थक कर चूर हो गये, तब दोनों में एक समझौता सम्पन्न हुआ। इसके अनुसार इन्द्रसिंह खण्डेला जागीर के जितने हिस्से का अधिकारी था, उतना हिस्सा वृन्दावनदास ने उसको दे दिया। इस समझौते से खण्डेला के आपसी संघर्ष का अन्त हो गया।

इन्हीं दिनों माचेड़ी के राव के विश्वासघातपूर्ण कृत्यों में आकर शाही सेनापति नजफकुलीखां ने शेखावाटी संघ में प्रवेश किया और धन की मांग की जिसे विनम्रता परन्तु दृढ़ता के साथ अस्वीकार कर दिया गया। इस पर मुगल सेनापति ने छोटी छोटी जागीरों पर अत्याचार कर धन एकत्र करना शुरू किया। नवलगढ़ के नवलसिंह, खेतड़ी के बाघसिंह विसाऊ के सूरजमल तथा अन्य जागीरदारों से दंड स्वरूप धन की मांग की गई और धन न मिलने पर सेनापति ने उन सभी को बन्दी बना लिया। परिणामस्वरूप शेखावाटी के गरीब किसानों से जबरदस्ती रुपये वसूल कर सेनापति को अदा किये गये। तब कहीं जागीरदारों को मुक्ति मिल पाई।

घरेलू झगड़ों से तो मुक्ति मिल गई, परन्तु खण्डेला के ब्राह्मणों ने अपना भय प्रदर्शन जारी रखा। उन्होंने खण्डेला के दोनों मालिकों को कमजोर समझकर उत्पात मचाना शुरू कर दिया। उनसे जो कर वसूल किया गया था और उनके कई बंधुओं को जो आघात सहन पड़े थे उन सबके लिये वे वृन्दावन को पापी बताने लगे तथा उस पर प्रायश्चित करने का दबाव डालने लगे। भयभीत वृन्दावनदास ने ब्राह्मणों को भूमि का अधिकार देना शुरू किया। इस अनाचार का उसके बड़े लड़के गोविन्दसिंह ने विरोध किया। इस पर वृन्दावनदास ने अपने अधिकार में पांच नगरों को रखकर शेष राज्य उसे सौंपकर खण्डेला की गद्दी त्याग दी।

रायमलोतों के सरदार का सम्मानित पद अधिक दिनों तक गोविन्दसिंह के भाग्य में नहीं था। जिस वर्ष उसने शासन सूत्र अपने हाथ में लिया था उसी वर्ष वर्षा न होने से शेखावाटी क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा जिसके फलस्वरूप गोविन्दसिंह को प्रजा से कर वसूल करने में भारी कठिनाई हुई। रानोली के सरदार ने गोविन्दसिंह से राज्य का भ्रमण कर वस्तुस्थिति को देखने का अनुरोध किया। जब वह बाहर जाने को तैयार हुआ तो ब्राह्मणों ने टोक दिया कि आज का दिन अच्छा नहीं है। परन्तु गोविन्दसिंह ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वह निकल पड़ा। उसके साथ खेजड़ला का एक राजपूत कर्मचारी भी था। मार्ग में उस राजपूत से गोविन्दसिंह ने जो मूल्यवान वस्तुएं उसे रखने को दी थी खो गई। गोविन्दसिंह ने उसी का बार समझा। उस राजपूत ने सोचा कि अब उसे निश्चय ही कठोर दण्ड दिया जायेगा। अतः उसने रात में सोते हुये गोविन्दसिंह को जान से मार डाला। गोविन्दसिंह के पांच लड़के थे—नरसिंह, सूरजमल, बाघसिंह, जवानसिंह और रणजीतसिंह।

ज्येष्ठ पुत्र नरसिंह खण्डेला के आधे भाग का अधिकारी बना। आपसी संघर्ष, यदाकदा होने वाली लूटखसोट तथा शाही सेना और अधीश्वर आमेर राज्य की सेनाओं द्वारा बलात् धन वसूली इत्यादि घटनाओं के उपरान्त भी शेखावाटी संघ की भूमि और आबादी में निरन्तर वृद्धि होती रही। महान् मुगल तो अपने पूर्वजों की छाया मात्र बन चुके थे और उनका अपना अधीश्वर—आमेर का राजा वार्षिक कर तथा आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता की मांग से संतुष्ट था और उसने उनकी राष्ट्रीय स्वाधीनता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। परन्तु अब एक नया शत्रु आ गया था जो यद्यपि उन्हीं की जाति का था परन्तु लूट खसोट तथा अत्याचार में उसने मुसलमानों को भी पीछे रख दिया। मरूभूमि के ये निवासी भाग्यशाली थे कि उनके और लोभी मराठों के बीच रेती के टीबे विद्यमान थे। मेड़ता के युद्ध में राजपूतों की आपसी फूट और ईर्ष्या ने डी बायन को राजपूतों की स्वाधीनता को प्राणघातक चोट पहुंचाने का अवसर प्रदान कर दिया। राजपूत बुरी तरह से पराजित हुये। इसके बाद मराठों के झुण्ड शेखावाटी में घुमकर चारों तरफ लूटमार करने लगे और वहां के सामन्तों तथा उनके बच्चों को बन्दी बना कर ले जाने लगे और रिहाई के बदले में भारी धनराशि की मांग की जाने लगी। बहुतों ने अपना सब कुछ बेचकर मराठों की मांग को पूरा करके रिहाई प्राप्त की। परन्तु जो धन नहीं दे पाये उनको बहुत दिनों तक मराठों की कैद में जीवन बिताना रहा। जब मराठों को उनसे कुछ भी मिलने की उम्मीद न रही तो विवश होकर उन्होंने उनको रिहा कर दिया।

थोड़े समय के लिये मराठों की बर्बर गतिविधियों का उल्लेख करें। इसके लिये उनके एक दिन की लूट खसोट और क्रूरता का वर्णन ही पर्याप्त होगा। मेड़ता के युद्ध के बाद जब मराठों ने शेखावाटी में प्रवेश किया तो उन्होंने सबसे पहले बाई नामक नगर पर आक्रमण किया। वहां के निवासी यह जानकर कि उन लुटेरों से किसी प्रकार की दया की आशा रखना निरर्थक होगी अपने सामान सहित आसपास के बड़े नगरों की तरफ भाग गये। परन्तु असली राजपूतों ने दुर्ग के भीतर रहकर अपने सम्मान की रक्षा करने का निश्चय किया। मराठों ने दुर्ग पर आक्रमण कर उन सभी को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद वे खण्डेला की तरफ बढ़े। मार्ग में उन्होंने नृशंस हत्याकाण्ड कर भूमि को लाल बना दिया। खण्डेला से चार मील दूर हांदी गांव नामक स्थान पर मराठों ने अपना पड़ाव डाला और वहां से खण्डेला के सरदार राव इन्द्रसिंह के पास एक ब्राह्मण दूत भेजा।[1] इन्द्रसिंह को लूटमार से बचने के लिये समझौता कर लेने को कहा गया। अन्त में बीस हजार रुपये पर समझौता तय हो गया। ब्राह्मण दूत को घूस के तीन हजार रुपये अलग से देने का आश्वासन दिया गया। खण्डेला के जिन दो सामन्तों ने खण्डेला के संयुक्त राजाओं के नाम पर समझौता किया था वे उस ब्राह्मण दूत के साथ मराठा शिविर में गये। उनके नाम थे—नवलसिंह और दलेलसिंह। चूंकि उन दोनों के लिये इतनी बड़ी रकम जुटाना

सभव न था, वे अपने साथ खण्डेला के राजस्व अधिकारी को जमानत के तौर पर मराठो के पास रखने के लिये ले गये थे। परन्तु वहा पहुचने पर मराठा सरदार ने दोनो को भी वही रखने का आदेश दिया। इस पर उन सामन्तो ने इसका विरोध किया और उनमे एक सरदार ने अपने सेवक के हाथ से हुक्का लेकर पीने लगा। उसके इस आचरण से क्षुब्ध होकर एक मराठा सैनिक ने उसके हाथ से हुक्का छीन कर जमीन पर फेंक दिया। क्रोधित सामन्त ने तत्काल म्यान से तलवार निकाल ली परन्तु वह उसका प्रयोग कर पाता उससे पहले ही मराठा सरदार ने भाला मारकर उसकी हत्या कर दी। जब दूसरे सामन्त दलेलसिंह और उसके कर्मचारियो ने इसका बदला लेने का प्रयास किया तो मराठा सैनिक एक साथ उन पर टूट पडे और उन सभी को मौत के घाट उतार दिया। इसी समय इन्द्रसिंह समझौते के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिये मराठा शिविर की तरफ चला। रास्ते मे उसे अपने सामन्तो एव कर्मचारियो की हत्याओ की जानकारी मिली। इस पर उसके साथ आये लोगो ने उसे तत्काल वापस खण्डेला जाने का सुझाव दिया। इन्द्रसिंह ने उत्तर दिया कि अपने बन्धुओ की हत्या का प्रतिशोध लिये बिना इस प्रकार अपमानित होकर लौटने की अपेक्षा मै खण्डेला नगर के द्वार के बाहर मरना पसन्द करूगा। वह अपने घोडे से उतर पडा और हाथ मे तलवार थाम ली। उसके साथ वाले भी घोडो से उतर पडे और फिर सभी हत्यारो के अतिथि के शिविर की तरफ बढे। मराठो ने उनको घेर कर मार डाला। सयोग से घायल दलेलसिंह अभी तक जिन्दा था। मराठो ने उसे घसीटकर बन्दीगृह मे पटक दिया।

प्रतापसिंह जो खण्डेला मे अपने पिता इन्द्रसिंह के हिस्से का उत्तराधिकारी बना, इस समय अपनी माता के साथ खण्डेला से दस मील की दूरी पर स्थित पहाडो मे स्थित सीकर नामक सुदृढ दुर्ग मे था। वह अभी बच्चा ही था। खण्डेला नगर को विनाश से बचाने के लिये वहा के प्रमुख लोगो ने अनाज सहित अपनी सभी वस्तुओ को बेचकर धन एकत्र किया और मराठो को दे दिया। चूकि अब मराठो को और अधिक मिलने की आशा न थी अत वे खण्डेला से चल पडे और सिहाना के अधिकृत क्षेत्र मे प्रवेश किया। सबसे पहले उदयपुर पर आक्रमण किया गया जिस पर सरलता के साथ उनका अधिकार हो गया। इसके बाद नगर को लूटा गया और फिर धन की तलाश मे दीवारो और फर्शों को खोदा गया। इस प्रकार उस नगर को बुरी तरह से बर्बाद कर दिया गया। चार दिन तक मराठो ने नगर मे बचे लोगो पर नाना प्रकार के अत्याचार किये। इसके बाद उन्होने शेखावाटी के उत्तरी भाग-सिहाना झुझनू खेतडी आदि पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया। मराठो के चले जाने के बाद युवा प्रताप और उसके बन्धु नरसिंह ने खण्डेला मे आकर रहना शुरू किया। वे लोग मराठो की लूट खसोट से उबर भी न पाये थे कि उनके अधीश्वर जयपुर के राजा की तरफ से वार्षिक कर चुकाने की चेतावनी आ गई। प्रताप ने प्रजा से प्राप्त कुल अनाज का चौथाई अश कर के रूप मे प्रदान कर समझौता

कर लिया परन्तु नरसिंह ने अपने पूर्वजों की भांति प्रतिकूल रुख अपनाते हुये कुछ भी देन से इंकार कर दिया।

इन दिनों में खण्डेला शेखावतों की एक दूर की शाखा ने उन्नति करनी शुरू की और आगे चलकर उसने काफी ख्याति अर्जित की। कासली के राव तिरमल्ल का वंशज सीकर के सामंत देवीसिंह ने खण्डेला राज्य के अंतर्गत रहते हुये भी लोहागढ, खाटू जैसे दूसरे पच्चीस नगरों और दुर्गों पर बलात् अधिकार करके अपने पैतृक राज्य को काफी बढा लिया था। अवसर का लाभ उठाते हुये उसने रेवासा पर आक्रमण करने की योजना भी बनाई थी परन्तु मृत्यु हो जाने के कारण उसकी योजना पूरी नहीं हो पाई। देवीसिंह के कोई लडका नहीं था अतः उसने शाहपुरा के सामंत के लडके लक्ष्मणसिंह को गोद ले रखा था। जयपुर का राजा देवीसिंह के आचरण से काफी अप्रसन्न था क्योंकि उसने निर्बल सामंतों पर आक्रमण कर अन्यायपूर्ण उपायों से अपने राज्य का विस्तार किया था। अतः जयपुर नरेश ने अपने प्रधानमंत्री दौलतराम के भाई नंदराम हलदिया को देवीसिंह के विरुद्ध आक्रमण करने का आदेश दिया। नंदराम ने आक्रमण करने की तैयारी की और उन सभी सामंतों का सहयोग भी प्राप्त कर लिया जिनकी जागीरें देवीसिंह ने छीन ली थी। उसकी सहायता के लिये आने वालों में खण्डेला का राजा कासली और बिलारा के सामंत भी थे। देवीसिंह ने जिन जिन को क्षति पहुँचाई थी वे सब अब लक्ष्मणसिंह के विरुद्ध नंदराम के झण्डे तले एकत्र हो गये थे। इस प्रकार शेखावाटी संघ की अधिकांश सेना सीकर के विरुद्ध एकत्र हो गई। सीकर का सामंत देवीसिंह भी साधारण दूरदर्शी न था। उसने पहले से ही जयपुर दरबार में कुछ प्रभावशाली लोगों को अपने पक्ष में कर रखा था ताकि अन्यायपूर्वक छीनी गई जागीरों पर उसका अधिकार बना रह सके। उसने विशेषकर जयपुर के मंत्री तथा उसके भाई के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम कर रखे थे जो इस समय सहायक बने। नंदराम जब सेनासहित सीकर पर आक्रमण करने पहुँचा तो वहां का दीवान जो एक चूंडावत सरदार था एक शिष्टमण्डल लेकर नंदराम के पास पहुँच गया और मृतक देवीसिंह के नाम पर उसके पुत्र को विनाश से बचाने की प्रार्थना की। इस पर नंदराम ने कहा कि अब तो एक ही रास्ता है, आप एक शक्तिशाली सेना के साथ सीकर की रक्षा करने का प्रयास करें। उस स्थिति में लोग मुझ पर दोष न लगा सकेंगे। सीकर के दीवान को सब कुछ समझ में आ गया। देवीसिंह ने फतेहपुर के कायमखानियों को लूट कर काफी धन सम्पत्ति एकत्र की थी। उससे दस हजार लोगों की सेना खडी की गई। उधर नंदराम के साथ अनेक सामंतों के जो सैनिक दस्ते थे उन सबका युद्ध कौशल नंदराम पर निर्भर करता था। उसने दिखावे के तौर पर सीकर की घेराबंदी की और निरर्थक गोलीबारी में काफी बारूद भी नष्ट कर दिया। इसके बाद उसने दरबार को लिखा कि सीकर को अधिकार में लाने के लिये काफी समय सैनिकों और धन की आवश्यकता पडेगी और काफी क्षति भी उठानी पडेगी। इससे अच्छा तो यह होगा कि सीकर से दण्ड

लेकर उसे दरबार के अधीन ही रहने दिया जाय। यह पत्र उसके भाई मंत्री को मिला। उधर नन्दराम ने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना सीकर से दो लाख रुपये दण्ड के तथा अपनी भेंटपूजा लेकर सेनासहित वापस लौट आया। इस प्रकार देवीसिंह के सम्बन्धों के कारण सीकर को आर्थिक हानि के अलावा कोई और क्षति नहीं उठानी पड़ी। सीकर को पहले की भांति अपना विस्तार करने की छूट मिल गई और उसने खण्डेला के सयुक्त राजाओं के आपसी संघर्ष में काफी सहयोग प्रदान किया। प्रतापसिंह ने नरसिंह द्वारा वार्षिक कर न चुकाने तथा जयपुर दरबार का उसके प्रति अप्रसन्नता से उत्पन्न परिस्थिति का, अपने पूर्वजों का झगड़ा निपटाने तथा खण्डेला का एक मात्र स्वामी बनने के लिये, लाभ उठाने की बात सोची। उसने जयपुर के सेनापति नन्दराम को पत्र भेजकर अनुरोध किया कि मैं सम्पूर्ण खण्डेला का वार्षिक कर चुकाने को तैयार हूँ, यदि मुझे सम्पूर्ण खण्डेला का स्वामी बना दिया जाय। उस स्थिति में मैं जयपुर राज्य की आज्ञानुसार अपनी सेना के साथ तैयार रहूंगा तथा अपने अभिषेक के अवसर पर राजा को नजराना तथा भेंट भी दूंगा। नन्दराम कार्यवाही करने की तैयारी कर ही रहा था कि नाथावत शाखा का सामोद का सरदार रावल इन्द्रसिंह नाहरसिंह की सहायता के लिये तैयार हो गया। उसने गुप्तरूप से नरहरि को अपने पास बुलाया और सभी बातें बताकर उससे कहा कि जयपुर दरबार की तरफ से सम्पूर्ण खण्डेला राज्य प्रतापसिंह को देने की तैयारी हो रही है और सनद भी लिखी जा रही है। अतः आप तुरन्त जयपुर राजा के साथ समझौता कर लें और राजा की मांग को पूरी करें। यदि आपको यह स्वीकार हो तो मैं आपकी सहायता करने को तैयार हूँ।

परन्तु नरसिंह को रावल इन्द्रसिंह का प्रस्ताव स्वीकार्य न हो पाया। तब सामोद सरदार ने उसको तत्काल वापस लौट जाने को कहा। क्योंकि वह उसके वचन का विश्वास करके आया था अतः वह चाहता था कि नरसिंह सकुशल वापस लौट जाय। उसे भय था कि यदि नरसिंह ज्यादा समय तक यहां रहा तो जयपुर दरबार उसे छल कपट से बन्दी बना लेगा और इससे स्वयं उसके लिये भी संकट उत्पन्न हो सकता है। इन्द्रसिंह ने उसकी रक्षा के लिये अपने कुछ सैनिक भी उसके साथ भेज दिये। सवेरा होते होते नरसिंह अपने दुर्ग गोविन्दगढ़ में पहुँच गया। सामोद के सामन्त की सावधानी निरर्थक न थी और सुबह होते ही उसे दरबार के असन्तोष तथा धमकी का सामना करना पड़ा। परन्तु उसने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया कि उसने राजपूतों के कर्तव्य का पालन किया है और इसके किसी भी परिणाम से भयभीत नहीं है।

सामोद और चौमू दोनों ही नाथावत वंश की प्रमुख जागीर थी। बड़ी शाखा (सामोद) के सामन्त को रावल की उपाधि मिली हुई थी और उसके अधीनता में अनेक छोटे सामन्त थे। परन्तु इन दोनों शाखाओं में नेतृत्व के लिये प्रायः झगड़े होते

रहते थे और उनमे काफी रक्तपात भी हो जाता था। नरसिंह का वापस सुरक्षित भिजवाने से जयपुर दरबार रावल इन्द्रसिंह से असंतुष्ट है यह जानकर चौमू का सामन्त जयपुर चला आया और नाथावतो की ज्येष्ठता का पद दिला देने पर नजराने के रूप मे भारी धनराशि देने का प्रस्ताव रखा। जयपुर दरबार ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इन्द्रसिंह उस समय राजदरबार मे ही था। उसे बुलाकर आज्ञा दी गयी कि आपने राज्य के विरुद्ध जो कार्य किया है उसके दण्डस्वरूप सामोद का जागीर जब्त की जाती है और आपको तत्काल सामोद छोडकर राज्य से चले जाने की आज्ञा दी जाती है। राज्य के स्वामिभक्त सेवक की भांति इन्द्रसिंह ने राजकीय आदेश पत्र को सम्मान के साथ स्वीकार किया और सामोद के लिये चल पडा और अपने परिवार के लोगो अपनी सामग्री तथा सम्पत्ति को लेकर सामोद से मारवाड के राज्य मे चला गया। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। इन्द्रसिंह की पत्नी को जयपुर दरबार की तरफ से पिपली नामक एक गांव जागीर मे मिला। उन दिनो राजभक्त इन्द्रसिंह को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो चुका था। अतः उसने अपनी जन्म भूमि मे प्राण त्यागने का निश्चय किया और अपने परिवार वालो के साथ उस गांव मे चला गया। वह जन्म से ही साहसी और पराक्रमी था और हमेशा स्वामी धर्म का पालन करता आया था इस प्रकार के गुण का मौजूदा भ्रष्ट और अनैतिक स्थिति मे दर्शन भी दुर्लभ था। यदि वह चाहता तो जयपुर राज्य के अन्यायपूर्ण आदेश का विरोध कर सकता था। परन्तु राजभक्ति के कारण उसने ऐसा करना उचित नही समझा था।

अब हम वापस प्रतापसिंह की तरफ आते है। नन्दराम की सहायता से वह सम्पूर्ण खण्डेला का स्वामी बन चुका था और दरबार की तरफ से उसे इसकी सनद् भी मिल गई थी। उसका पहला काम उस प्रधान द्वार को गिरवा देना था जिसकी आड मे खण्डेला के दूसरे स्वामी उसके दुर्ग पर गोली वर्षा करते रहते थे। द्वार गिराने का काम चल ही रहा था कि एक अपशकुन घटित हो गया। दीवार मे गणेश की एक मूर्ति थी। वह खंडित हो गई। यह प्रताप के अनिष्ट का संकेत था। इस पर ध्यान न देते हुये द्वार को गिराने का काम पूरा कर लिया गया। खण्डेला की व्यवस्था का काम पूरा करने के बाद उसने रेवासा पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया और फिर नन्दराम हलदिया की एक सैनिक टुकडी के साथ गोविन्दगढ जिसमे नरसिंह रहता था को लेने का प्रयास किया। उसने नन्दराम को यह आश्वासन दिया था कि वह नरसिंह का बकाया कर चुका देगा और भारी नजराना भी देगा। जब वह गोविन्दगढ से चार मील दूर रह गया तो उसने वहीं पडाव डाल दिया। यहां से इतनी ही दूरी पर रानोली की जागीर थी। उसका सामन्त अभी तक नरसिंह के प्रति सहानुभूति रखता था। उसे जब प्रतापसिंह की कार्यवाही का पता चला तो उसने अपने मंत्री को नन्दराम के पास भेजा और प्रार्थना की कि जयपुर दरबार को नरसिंह से जो कुछ मिलना चाहिये वह सब हम देने को तैयार है यदि आप

नरसिंह को उसके स्वत्व से वंचित न करें। इसके अलावा हम आपको भी भेंट-उपहार देकर संतुष्ट करेंगे। नंदराम ने लोभवश उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया परंतु दिखावे के तौर पर उसने रानोली के सामंत को गुप्त रूप से कहला भेजा कि गोविन्दगढ़ से नरसिंह अपनी सेना के साथ रात्रि के समय में बाहर निकले और हमारी सेना पर आक्रमण करे और कुछ देर तक बनावटी युद्ध लड़े। हम लोग पराजित होकर भाग जायेंगे। इससे प्रतापसिंह का हम पर संदेह नहीं होगा। रानोली के सामंत ने उसकी योजनानुसार काम किया। रात्रि के अंधेरे में नरसिंह के भाइयों ने डेढ़ सौ सैनिकों के साथ हलदिया की सेना पर आक्रमण करने का दिखावा किया। नंदराम अपनी सेना के साथ भाग खड़ा हुआ और थोड़े दिनों में ही नरसिंह ने अपने अधिकार वाले सभी नगरों एवं गांवों पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इससे प्रतापसिंह बहुत अधिक क्रोधित हो उठा। उसने नरसिंह के अधिकार को रोकने की चेष्टा की परंतु सफलता न मिली। उसकी सहायता के लिये खण्डेला में बहुत से सैनिक एकत्र हो चुके थे। अब प्रतापसिंह ने अपने विरोधियों को पानी का कष्ट पहुंचाने का निश्चय किया। उसने कुओं को बंद करवाने का आदेश दिया। इससे दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ गया जिसमें बहुत से लोग मारे गये। अंत में नंदराम हलदिया ने जयपुर राज्य की पचरंगी पताका फहराकर दोनों पक्षों के रक्तपात को रोका। इसके बाद दोनों पक्षों में सुलह करवाने का प्रयास किया गया। समझौते के अनुसार प्रतापसिंह को रेवासा प्राप्त हुआ और नरसिंह को खण्डेला राज्य पर उसका पैतृक अधिकार मिल गया।

परंतु इस समझौते से भी दोनों पक्षों के मध्य शांति कायम न रह सकी और सामान्य बातों को लेकर झड़पें हो जाती। गणगौर के उत्सव पर दोनों पक्षों में जोरदार झगड़ा हो गया। तब रानोली के सरदार के आग्रह पर सम्पूर्ण शेखावत जाति का एक वृहद् सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन ने अधीश्वर जयपुर राजा को मध्यस्थ बनकर शांति स्थापित करने का अनुरोध किया। जयपुर दरबार ने कुछ दिनों बाद "मध्यस्थ" के इस पद को "तानाशाह" के पद में परिवर्तित कर दिखाया।

उत्तरी शेखावाटी के सिद्धानी सरदारों को रायसालोतों के आपसी झगड़ों के बुरे परिणामों से चिंता उत्पन्न हो गई और जयपुर दरबार की बढ़ती हुई सर्वोच्चता से घबरा कर उन लोगों ने एकत्र होकर मौजूदा परिस्थितियों पर विचार करने का निश्चय किया। इस समय तक उन्होंने वार्षिक कर चुकाने सम्बन्धी किसी समझौते को स्वीकार नहीं किया था और जयपुर राज्य के साथ उनके सम्बन्ध राजनीतिक सर्वोच्चता के आधार पर न होकर पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित थे और इसी दृष्टि से वे जयपुर राजा के प्रति स्वामिभक्ति प्रकट करते आये थे। परंतु चूंकि अब राज्य की सेना उनकी सीमा पर थी और कभी भी उनकी सीमा में प्रवेश कर

मनमानी कर सकती थी अत अपनी सुरक्षा के लिये कदम उठाना आवश्यक हो गया था। क्योंकि इसके पहले नवलगढ के सामन्त के अधिकार वाले तुई नगर को घेरा जा चुका था और रानोली को प्रतापसिंह को देने के लिए वहा के साम त को परेशान किया गया था। य ऐसी घटनाएँ थी जिसने सभी सिद्धानी साम तो को प्रभावित किया था। उ होने यह अनुभव किया कि अब हम लोग तटस्थ अथवा उदासीन बन कर नही रह पायेंगे। अत अपन आपसी मतभेदो को भुलाकर सभी की सुरक्षा के लिये एक सामा य नीति का पालन करना होगा। अत सभी सिद्धानी सामन्तो और जो रायसालोत उसम सम्मिलित होना चाहे उन सभी को उदयपुर आने को निमं त्रत किया गया। उस अवसर पर एक प्रस्ताव सबके सामने उपस्थित किया गया कि हम लाग विचार विमश शुरू करे उससे पहल प्राचीन प्रणाली के अनुसार नमक पर हाथ रख कर इस बात की शपथ लें कि इस सम्मेलन मे जो कुछ निणय होगा उसका पालन सभी लोग प्रत्येक अवस्था मे करेंगे। इस प्रस्ताव का आशय सभी प्रकार के विश्वासघात तथा आपसी शत्रुता सम्ब धी सदेहो को दूर करना था। सभी न बिना किसी विरोध के उसको स्वीकार कर लिया।

निश्चित समय पर सिद्धानी वश के सभी सरदार अपने सनिको के साथ उदयपुर मे एकत्र हुए। खण्डेला के दोनो साम तो के अलावा लगभग सभी राय सालोतो न भी शेखाजी के वशजो के इस अधिवेशन मे भाग लिया। इस सम्मेलन म यह निश्चय किया गया कि सभी प्रकार के आन्तरिक विवादो का अन्त किया जाय, भविष्य मे यदि विवाद उत्पन्न हो तो हमे जयपुर की मध्यस्थता के लिये प्रार्थना नही करनी चाहिए पर तु ऐसे सभी अवसरो पर, जिनमे सभी के सामा य हित सकट म पडने की आशका हो तो उदयपुर के बाहर इसी प्रकार के सम्मेलन का आयोजन किया जाय और विचार विमश कर निणय लिया जाय, यदि आवश्यकता अनुभव हो तो शस्त्रबल के द्वारा भी जयपुर दरबार के हस्तक्षेप का विरोध किया जाय। इस असामा य निश्चय से जयपुर दरबार चौकन्ना हो उठा। जब उसके अत्याचारो न सगठित विरोध को ज म दे दिया तो दरबार ने अपन सेनापति के कृत्यो को अमा य घोषित करते हुए उसके स्थान पर रोडाराम को नियुक्त किया गया और उसे सेनापति न दराम को कद करके लाने का आदेश दिया गया। न द राम न भाग कर अपने आपको जयपुर कारागार की य त्रणा से बचा लिया पर तु उसकी तथा उसक मन्त्री भाई की सभी धन सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया।

नया सेनापति रोडा राम जाति से दर्जी था। उसे यह आदेश दिया गया कि वह हलदिया का बुरी तरह से पीछा करे क्योकि इन प्रदेशो म पदच्युत मन्त्री और विद्रोही—दोनो एक ही स्तर के समझे जाते है। उन लोगो ने भी राज्य क शत्रु बन कर नगरो और गावो मे लूटमार करके आग लगा दने का काय आरम्भ कर दिया था। इसलिये नवीन सेनानायक न शखावत साम तो स सहायता की प्राथना की।

पर तु शेखावता न पूव अनुभव से सबक सीख कर सहायता देने से इ कार कर दिया। तब जयपुर के राजा की तरफ से उनस सधि का प्रस्ताव आया। इसका आशय भविष्य म राज्य और उनके सम्ब धो का निर्धारण करना था। सामन्तो ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और राज्य के साथ समझौता कर लिया जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार थी—

1 सेनापति न दराम न तुई और ग्वाला आदि जिन नगरो पर अधिकार कर लिया है वे उनके पूव मालिको का पुन लौटा दिय जाय।

2 शेखावत साम त राज्य को अब तक स्वच्छा से जो वार्षिक कर देते आय है, उसके अलावा राज्य का और काई कर लेने का अधिकार न होगा। साम त अपना कर स्वय राजधानी का भेजते रहेग।

3 किसी भी परिस्थिति म जयपुर राज्य को शेखावाटी म सेना भेजने का अधिकार न हागा, क्योकि इसके परिणामस्वरूप खण्डला म भयकर रक्तपात हा चुका है।

4 आवश्यकता पडने पर साम त लाग अपनी सेनायें राजा की सहायता के लिय भजेग। पर तु ये सनाये जब तक राज्य की सेवा मे रहेगी, उसका सारा खर्चा जयपुर राज्य का देना होगा।

रोडाराम के बीच म पडने से जयपुर दरबार की तरफ से शीघ्र ही इस सधि की पुष्टि कर दी गई और साम ता की सेना के खर्चे के लिये 10,000 रु अग्रिम भेज दिय गये। सामन्त लोग अपने सनिका के साथ राजधानी जा पहुचे। वहा पहुच कर सबसे पहल उ होन अपन अधीश्वर के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया और फिर वे हलदिया के विरुद्ध चल पडे। रोडाराम न उनकी सहायता से न दराम स युद्ध किया जिसम पराजित होकर न दराम युद्धभूमि स भाग गया। हलदिया के समथक लागो का उनकी जागीरा से बहिष्कृत कर दिया गया। पर तु जसाकि पहले बतलाया जा चुका है कि जयपुर दरबार न अपन लिय झूठा दरबार" की कुख्याति प्राप्त कर रखी थी। शेखावता को शीघ्र हा इसका आभास मिल गया। शेखावाटी म कई स्थानो पर रोडाराम की सेना न वहा के साम ता की उपेक्षा करके अधिकार कर रखा था। इसलिय शेखावत साम ता न सगठित होकर उन स्थानो से रोडा राम की सेना को भगा दिया। वे स्थान उनके अधिकारिया का वापस लौटा दिय गय।

इ ही दिनो म जयपुर से खण्डेला क नरसिंह स वार्षिक कर की माग करने के लिय एक अधिकारी को वहा भेजा गया। नरसिंह प्राय कुछ न कुछ बकाया रख देता था। इस बार नरसिंह न उस अधिकारी का अपमानित करके अपन यहा स वापस भेज दिया। नरसिंह क इस अपमानपूर्ण आचरण स जयपुर क राजा का क्रोधित होना स्वाभाविक ही था। अत उसन नरसिंह दास को कद करके जयपुर लाने का आदेश

दिया। परन्तु आधा खण्डला के दूसरे मालिक प्रतापसिंह के लिये भय का कोई कारण नहीं था। अतः वह खण्डला में ही बना रहा। आशाराम के नेतृत्व में जयपुर की सेना खण्डला की तरफ रवाना हुई। नरसिंह गोविन्दगढ़ में था। उस ग्रनिय सेनापति ने खण्डला के दोनों शासकों को कैद करने की चेष्टा की। प्रतापसिंह को जयपुर के सेनापति से अपने सम्बन्ध में कोई आशंका न थी। आशाराम ने भी छल से काम लिया। उसने अपने व्यवहार से ऐसा प्रकट किया कि जयपुर की सेना केवल नरसिंह को कैद करने आई है। उसने मनोहरपुर के सामन्त को नरसिंह के पास भेजा और कहलवाया कि आप मेरे वचन पर विश्वास करके चले आयें। आपके सम्मान के विरुद्ध कोई काम नहीं किया जायेगा। नरसिंह ने मनोहरपुर के सामन्त का विश्वास कर लिया और गोविन्दगढ़ से बाहर आ गया। आशाराम ने दिखावे के तौर पर उससे कर सम्बन्धी बातों पर विचार विमर्श किया। इसी में दो दिन बीत गये। नरसिंह को किसी प्रकार के विश्वासघात की आशंका न रही। तीसरे दिन एक सन्धि पत्र लिखा जाने को था। तभी आशाराम ने अपने सैनिकों के साथ नरसिंह को उसके निवास स्थान पर जा घेरा और उसको अपने साथ चलने को कहा। विवश होकर नरसिंह अपने कुछ लोगों के साथ आशाराम के शिविर में आ गया।

प्रताप को बन्दी बनाने के लिये एक साधारण जाल बिछाया गया। आशाराम ने उसे अपने शिविर में बुला भेजा और वह चला आया। अब खण्डला के दोनों मालिक शिविर में थे। एक के साथ जुर्माना अदा कर रिहाई प्राप्त करने की समस्या थी, तो दूसरा मौजूदा परिस्थिति में और अधिक लाभ उठाने की आशा लगाये बैठा था। उनके साथ वाले सैनिक निश्चिन्त होकर आराम करने लगे। सायंकाल के बाद जब वे भोजन कर रहे थे तभी अचानक जयपुर के सैनिकों ने उन्हें घेर कर बन्दी बना लिया। इसके बाद दोनों को जंजीरों से बांध दिया गया और एक बन्द सवारी गाड़ी में बैठा कर पांच सौ सैनिकों के संरक्षण में जयपुर भेज दिया गया। जयपुर कारागार में पहले से ही उनके कमरे सुरक्षित रखे गये थे। वहां पहुंचते ही उन्हें उन कमरों में बन्द कर दिया गया और राजा की आज्ञा से खण्डेला को खालसा कर दिया गया। खण्डेला के अन्तर्गत जो छोटे छोटे सामन्त थे उनका वहां का अधिकार बांट कर उनसे ऐसे प्रतिज्ञा पत्र लिखवा लिये गये जिससे कि वे भविष्य में जयपुर राज्य के विरुद्ध कभी विद्रोह न कर सकें। इस प्रकार खण्डेला राज्य का पतन हुआ और वह पूर्ण रूप से जयपुर राज्य के अधिकार में आ गया।

सन्दर्भ

1 लुटेरे मराठों के अधिकांश मन्त्री और दूत ब्राह्मण थे। टाड ने लिखा है कि ब्राह्मण जितने चतुर थे समय पड़ने पर उतने ही पराक्रमी भी सिद्ध होते थे। दौत्य कार्य में तो वे सबसे अधिक चतुर माने जाते थे।

अध्याय 63

जयपुर और शेखावाटी का सघर्ष

1798–99 ई० म दीनाराम बाहरा जयपुर का प्रधान मत्री था और उसन ज्यो ही आशाराम की सफलता का विवरण सुना, वह स्वय सिद्धानी साम तो से कर वसूल करने के लिय आशाराम से जा मिला। दोनो की मुलाकात उदयपुर म हुई और वहा से दोनो न सिद्धानी क्षेत्र के बीचोबीच म स्थिति परशुरामपुर म जाकर पडाव डाला। यहा स समस्त सिद्धानी सरदारो के नाम कर अदा करन के पत्र जारी किय गय। इसके साथ साथ उसन कर वसूली के लिये प्रत्येक साम त के यहा अश्वारोही सनिक दस्ते भेजे और उ ह प्रत्येक से अलग अलग कर वसूल करन को कहा गया। इस अपमानजनक व्यवस्था स सिद्धानी साम त अत्यधिक क्रोधित हो उठे और उ होने सबके हस्ताक्षरो स युक्त एक पत्र प्रधान मत्री को भेजकर चेतावनी दी कि वह अपनी सना को हटा कर तुर त झु झनू चला जाय अन्यथा उसके बुरे परिणाम भोगन पडेगे। यदि वह इस पत्र को पात ही झु झनू चला गया तो यहा के साम तो म कर स्वरूप जो दस हजार रुपय एकत्र हुय है वे उस तुर त पहुचा दिये जायेंगे। इस पत्र पर सभी साम तो न हस्ताक्षर किय थ, कवल बाघसिह न नहीं किय। वह खण्डला के कदी राजा का भाई था। उसका तक था कि सधि के बाद जिस प्रकार हम लोगो न राज्य की सेवाए की है और न दराम के विद्रोह का दमन करने मे हमने जयपुर की सेना का साथ दिया है, उन सबका पुरस्कार जयपुर राज्य स हमको अत्याचारो के रूप म मिला है। जयपुर राज्य के साथ हम लोगो ने जो सधि की थी, उसका पूरी तरह से उल्लघन किया गया है। सधि के अनुसार कर वसूली के लिये राजा की सेना को शेखावाटी म प्रवेश करन का अधिकार नही है। प्रधान मत्री न साम तो के पास जो पत्र भेजा है वह भी अपमानजनक है।"

बाघसिह ने जयपुर की सेना के साथ युद्ध करन का निश्चय कर लिया। खेतडी के पाच सौ लोग भी उससे आ मिल। उन लोगो की सहायता स उसने सीकर साम त के अधिकृत नगरो–सिघाना और फतहपुर से कर वसूल किया और इस धन क बल पर उसने यूरोप के प्रसिद्ध जाज थामस जो इन दिनो मे राजनतिक दृष्टि स अशा त इन क्षेत्रो मे अपना भाग्य आजमा रहा था, की सेवाए प्राप्त की। जयपुर की सेना

के अन्तगत इस समय उसकी सम्पूर्ण वतनिक सना और साम तो के सनिक दस्त सम्मिलित थ और उनकी मख्या शखावाटी मध की तुलना मे बहुत अधिक थी, पर तु थामस और उसके नियमित सनिका ने शखावता के साथ मिलकर अपने से कही अधिक सख्या वाली जयपुर की सना को आसानी से पराजित कर दिया। उसका सनापति राडाराम भयभीत हाकर युद्धक्षेत्र स भाग गया। थामस ने शत्रु सेना की बहुत सी युद्ध सामग्री अपने अधिकार म कर ली। राडाराम की कायरता से जयपुर की खोई हुई प्रतिष्ठा का उद्धार करने क लिय चौमू के सरदार ने अपने शूरवीरो को एकत्र किया और राज्य की सेना को साथ लकर थामम की सेना पर धावा बोल दिया। इस बार जयपुर वालो ने थामस के गोलो की परवाह न करते हुये उमकी तोपो तक धावा मार कर उनका मु ह ब द कर दिया। चौमू सरदार का मुख्य ध्यय जयपुर की तापा का वापस अपने अधिकार म करन का था। थामम पराजित हुआ आर जयपुर वालो ने अपना तापें वापस छीन नी।[1] पर तु इसक लिय उ ह बहुत वडी कुर्बानी देनी पडी। चौमू सरदार रणजीतसिंह बहुत बुरी तरह से जख्मी हुआ। उमक अनेक शूरवीर मारे गये। इस युद्ध मे खागरात वश के दा शक्तिशाली साम त बहादुर सिंह और पहाडसिंह भी बुरी तरह जख्मी हुय। थामस अपने बचे हुय सनिका के साथ भाग खडा हुआ '

खण्डला के ब दी सरदारो न इस विद्राह और अपन वश वाला की एकता को अपनी मुक्ति के लिए आशाजनक समझा और अपने लोगो को इसके लिये प्रयास जारी रखन का कहा। इस सम्ब ध म अवमानित रोडा राम को सदश भिजवाया गया जिसने अपन प्रभाव का प्रयोग करन का आश्वासन दिया यदि रायसलोत लोग उसक साथ मिल जाय और अपनी सेवाओ क द्वारा उस प्राथना को पुष्ट करे। इसके लिए बाघसिंह को चुना गया। उसन अपन वल पौरुष द्वारा इन दिना काफी ख्याति प्राप्त की थी और दोनो पक्षो म उमका मान सम्मान था यहा तक कि खण्डला का राजकीय प्रशासक भी उसकी सेवाओ का न केवल उसके उद्दण्ड स्ववधुओ का अपितु अ य स्थानो के लोगो को अनुकूल बनान के लिय आवश्यक समझता था। इमी दृष्टि से उसन बाघसिंह का खण्डला क सुरक्षित दुग मे रहन की अनुमति द रखी था। पर तु जब उस अपन वधुओ के सनिक दस्त के साथ राज्य के सनानायक क अ तगत काम करने के लिये चुना गया ता वह अपन छाट भाई लक्ष्मणसिंह का खण्डला दुग का अधिकारी नियुक्त कर जयपुर क सनापति क पास चला गया।

ज्यो ही यह समाचार प्रतापसिंह क लडक सिलदी के साम त हनुम तसिंह का मिला कि बाघसिंह अपनी सना क साथ जयपुर की सना के साथ मिल गया है ता परम्परागत सघष का भावना उभर आई और उसन इस अवसर का लाभ उठा कर खण्डला दुग पर अधिकार करन का निश्चय कर लिया। उसन अपन राजपूत सनिका के साथ रात्रि म कूच करके खण्डला क दुग का घर लिया और फिर मौका पाकर दुग

की दीवारो पर चढकर अपने लोगो के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। उसने लक्ष्मणसिंह और उसके सैनिको को मौत के घाट उतार कर खण्डेला दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। बाघसिंह को रानोली स्थान पर इस दुर्घटना की सूचना मिली। उसने तत्काल अपनी सेना के साथ खण्डेला की तरफ प्रस्थान किया। हनुमन्तसिंह अपने लोगो के साथ खण्डेला दुर्ग में ही था। बाघसिंह ने वहाँ पहुंचते ही दुर्ग पर धावा बोल दिया। नगर निवासियो ने भी उसका पूरा पूरा सहयोग दिया क्योंकि वे सभी लोग हत्यारे हनुमन्तसिंह से प्रसन्न न थे। उस दिन गर्मी बहुत अधिक थी और दुर्ग रक्षक अपने अस्तित्व के लिये लड रहे थे क्योंकि उनके नेता को दया की कोई उम्मीद न था। बाघसिंह और उसके सैनिको को नगर की स्त्रियो की तरफ से अच्छा खाना पीना दिया गया और लोग उनका उत्साह बढाते रहे। तभी अचानक दुर्ग पर सफेद झण्डा फहराया गया और दुर्ग के द्वार खोल दिये गये। बाघसिंह ने दुर्ग में प्रवेश किया परन्तु हत्यारा हनुमन्तसिंह दुर्ग से भाग चुका था।

उधर जयपुर में दीनाराम को प्रधानमन्त्री से हटाकर उसके स्थान पर मानजी दास को नया प्रधानमन्त्री बनाया गया। रोडाराम अपनी पराजय तथा कवियो के कटु वाक्यो की तरफ ध्यान दिये बिना शेखावाटी से कर वसूल करने मे लगा हुआ था और खण्डेला क्षेत्र से कर वसूल करने का इजारा एक ब्राह्मण को बीस हजार वार्षिक में दे दिया। वह ब्राह्मण इस काम में अत्यन्त चतुर सिद्ध हुआ। इसके पहले उसने अपने भाई के साथ मिलकर जयपुर नगर और राहदारी शुल्क वसूली का इजारा (ठेका) लिया था। अब उन्होंने खण्डेला क्षेत्र में कर वसूली का ठेका ले लिया और पहले ही वर्ष में उन्होंने न केवल ठेके के बीस हजार रुपये ही वसूल कर लिये अपितु अपने लिये भी काफी धन कमा लिया। इसके बाद रोडाराम ने इस ठेके को दो वर्ष की अवधि के लिये और बढा दिया। कर वसूली में सहायता के लिये उन ब्राह्मणों के पास जयपुर राज्य का एक सैनिक दस्ता भी रखा गया था। उस ब्राह्मण ने शेखावाटी के उन सामन्तो से भी बलपूर्वक कर वसूल किया जो अभी तक स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी जागीरो में रहा करते थे। जिन लोगो ने उसका विरोध किया उनके नगरो एवं गावो पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया गया। शेखाजी के साहसी वंशज इस नई तानाशाही के अत्याचारों को और अधिक सहन नही कर पाये और उन्होंने दरबार के दर्जी और ब्राह्मण की मिलीभगत के विरुद्ध शस्त्र उठाने का निश्चय कर लिया। इसी समय बन्दी सामन्तो की तरफ से उन्हें सदेश मिला कि उन्हें अब अपनी रिहाई की कोई आशा नजर नही आ रही है। इससे शेखावाटी के समस्त सामन्त और भी क्रोधित हो उठे। सभी ने सगठित होकर खण्डेला में उस ब्राह्मण पर आक्रमण कर दिया। ब्राह्मण की सहायता के लिये इस समय सात हजार दादूपंथी सैनिक थे। दोनो पक्षो के मध्य घमासान युद्ध लडा गया और सामन्तो ने उस ब्राह्मण को पराजित कर उसके निवास स्थान को लूट लिया। पराजित ब्राह्मण अपने शेष सैनिको के साथ खण्डेला से भाग गया। इसके बाद सामन्तो ने जयपुर के

इलाको मे लूटमार और सवनाश करना शुरू किया और रानी की जागीरो को भी नही छोडा। उनका दमन करने के लिये जयपुर मे नई सेना भेजी गई और काफी मारकाट के बाद शेखावता का सगठन छिन्न भिन्न कर दिया गया। रानाली के सरदार तथा बडी शाखा के कुछ अ य सरदारा ने जयपुर राज्य के साथ अलग म सधि कर ली पर तु कनिष्ठ शाखा के साम तो ने अधीनता स्वीकार करने मे इ कार कर दिया और अपनी जागीरा को छोडकर बीकानेर तथा मारवाड म जाकर रहने लग। सूजावास के सग्रामसिह (प्रताप का चचेरा भाई) ने मारवाड म और बाघसिह तथा सूरसिह न बीकानर म आश्रय लिया। वहा के राजा न उनको जागीर देकर उनका सम्मान किया। बहुत दिनो तक वहा रहकर उ होने अपन राजा के याय की प्रतीक्षा की और जब कोई आशा न रही तो उ होन सगठित होकर जयपुर राज्य के विध्वस और विनाश का निश्चय किया।

सग्रामसिह न निर्वासित साम तो का नेतत्व किया और वे लोग जयपुर की तरफ चले। आमेर के पास पहुँच कर उ होने वहाँ के नगरो और गावो को लूटना शुरू किया। उनकी लूटमार ने ढू ढाड के बहुत बडे भाग मे आतक पदा कर दिया। उ होने कई स्थानो पर अपने थाने बठा दिये और अवसर मिलते ही अपने अधीश्वर के थानो अथवा दुग रक्षका पर धावा मारते और बिना किसी दयाभाव के सभी को मौत के घाट उतार देते। जयपुर से कुछ मील की दूरी पर स्थित खोह गाव पर धावा मारा और अपने साथियो के लिये वहा से घाडे उठा ले गये। धीरे धीरे सग्रामसिह के नेतत्व म इतन अधिक घुडसवार हो गये कि अब वह निर्भीकतापूवक किसी भी प्रकार का जोखम भरा काम करन से नही हिचकता था। दरबार मे सभी क्षेत्रा से उनके अत्याचारा से बचान की प्राथनाए आनी शुरू हा गइ। उनका कान ब द कर नकारा जा सकता था यदि प्राथनापत्रो म कर त्री कमी की भी माग न होती। अ त मे राजा न बिसाऊ के सिद्धानी सरदार श्यामसिह के द्वारा सग्रामसिह से बातचीत शुरू की। श्यामसिह के वचन देने पर सग्रामसिह न अपने अधीश्वर राजा से मिलना स्वीकार कर लिया। कुछ दिना बाद सग्रामसिह न अपनी सेनासहित जयपुर म प्रवेश किया। ज्यो ही वह जयपुर नगर की दीवारो के पास पहुचा उसक दल के चारो तरफ भीड एकत्र हो गई विशेषकर वतनिक सिपाही नगनिको की। उनम से किसी ने अपना घोडा किसी ने ऊ ट और किसा न अपन शस्त्रा का पहचान लिया पर तु किसी की भी हिम्मत न हुई कि वे उनको टाक सके अथवा कुछ कह सक। म त्री का उद्देश्य सग्रामसिह को ब दी बनाना था। उसे इस बात की चि ता न थी कि श्यामसिह न उसी के विश्वास पर सग्रामसिह रा सुरक्षित वापसी का वचन दिया था और वचन भग से उसकी कितनी बदनामी होगी। पर तु श्यामसिह को ज्या ही म त्री के षडय त्र का पता चला, उसन सग्रामसिह को म त्री क कपट म सचेत कर दिया। अडतालीस घट क भीतर ही जयपुर दरबार का सूचना मिली कि सग्रामसिह तोरावाटी म चला गया है और वहा क लाग भी उसस मिल गय हैं और उसकी

अधीनता में एक हजार घुडसवार एकत्र हो चुके हैं। अब वह अपने राजा के बड़े नगरों और गावों को लूटने लगा और उनसे कर वसूल करने के लिये अपने सैनिक दस्ते भेजने लगा। कर न देने वाले सरदारों को कैद कर लिया गया और कर वसूली के बाद ही उन्हें रिहा किया। जिनसे कर वसूल नहीं हो पाया उन सामन्तों के नगरों एवं गावों को लूटकर उनकी सम्पत्ति और सामग्री ऊँटों पर लादकर वह अपने साथ ले गया। अन्त में संग्रामसिंह के लुटेरे जीवन का अचानक अन्त हो गया। उसने रानी के अधिकार वाले माधापुर नगर का घेरा डाला। उस अवसर पर एक गोला उसके मस्तक के आर पार हो गई और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके मृतक शरीर का रानोली में अन्तिम दाह संस्कार किया गया। संग्रामसिंह के बाद उसका बड़ा लड़का उसके स्थान तथा प्रतिशोध का उत्तराधिकारी बना। वह भी अपने पिता की भांति शूरवीर तथा पराक्रमी था। अपने पिता का अनुकरण करते हुये उसने जयपुर राज्य के नगरों तथा गावों को लूटने और उनका सर्वनाश करने का काम जारी रखा। अन्त में जयपुर राज्य ने उसके साथ समझौता कर लिया और सूजावास की उसकी पैतृक जागीर उसे लौटा दी गई। इस प्रकार, शेखावतों ने अपने साहसिक कार्यों से अपने अधिकारों के लिये संघर्ष कर इतिहास में ख्याति अर्जित की।

इन दिनों मे, राजवाड़े की हलन (कृष्णाकुमारी) का हाथ प्राप्त करने के लिये महायुद्ध की आधारशिला रखी जाने लगी थी।[2] उसका प्रारम्भिक दृश्य शेखावाटी में हुआ और सिद्धानी वंश के लोग उसके मुख्य अभिनेता बने। यह याद दिला दें कि पोकरण के सामन्त सवाईसिंह ने जोधपुर के राजा मानसिंह को अपदस्थ करके धोकलसिंह को सिंहासन पर बैठाने की जो योजना बनाई थी उसके अन्तर्गत युद्ध चल रहा था। इस समय रामचन्द्र जयपुर का प्रधानमंत्री था और उसने कृष्णाकुमारी के साथ अपने राजा का विवाह कराने के विचार से धोकलसिंह के पक्ष का समर्थन किया था।

इस अवसर पर रामचन्द्र ने शेखावतों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक समझ कर अपने भतीजे कृपाराम को अपना प्रतिनिधि बनाकर शेखावाटी के सामन्तों के पास भेजा। कृपाराम ने उनसे बातचीत करने के लिये कृष्णसिंह नाम के एक सरदार को मध्यस्थ बनाया। उसके माध्यम से जो बातचीत हुई उसके परिणाम स्वरूप शेखावाटी के सामन्त अपनी सेनाओं के साथ उदयपुर के रास्ते में एकत्र होने लगे। वहां एक नई संधि तयार की गई जिसकी मुख्य धारा खण्डेला के दोनों संयुक्त सामन्तों की रिहाई और जब तक ...नियमित रूप से कर अदा करते रहते हैं, तब तक उनकी आन्तरिक व्यवस्था ... के हस्तक्षेप न करने की पुरानी प्रथा की पुनर्स्थापना थी। ... कृष्णसिंह इस संधि के मसौदे को लेकर कृपाराम ... बाद ही संधि की पुष्टि करवा कर लौट आये ... के लिये दस हजार

सनिक एकत्र करने का आश्वासन दिया। राजा ने उनको आश्वासन दिया कि जब तक यह सेना राजकाय के निमित्त जयपुर म रहगी उसका समस्त व्यय राज्य की तरफ से दिया जायगा।

शेखावतो के साथ समझौता हो जान क बाद पोकरण साम त का भतीजा श्यामसिंह चापावत कृपाराम के साथ खेतडी आया जहा से उ होन बालक धोकल सिंह को शेखावाटी सघ पहुचा दिया। वहा पर जयपुर के स्वर्गीय राजा प्रतापसिंह की लडकी और मारवाड के राजा भीमदव (धोकलसिंह का पिता) की विधवा रानी आन दीकु वर न आकर बालक धोकलसिंह से भेट की। आन दीकु वर ने धोकलसिंह को गोद लेकर उसे अपना दत्तक पुत्र स्वीकर कर लिया। उस अवसर पर कई प्रतिष्ठित लोग भी उपस्थित थे। इसके बाद सभी लोग जयपुर चले आये जहा मारवाड पर आक्रमण करने के लिये एक विशाल सेना को एकत्र करने की तयारिया चल रही थी।

यह सेना जयपुर से प्रस्थान कर खण्डला से बीस मील की दूरी पर स्थित साटू नामक स्थान पर पहुची और वहा पर रुक कर बीकानेर के राजा तथा कुछ अ य सरदारो के आन की प्रतीक्षा करने लगी। यहा पर शेखावत साम तो न माग रखी कि उनके दोनो सरदारो (खण्डेला के मालिक) को तत्काल रिहा किया जाय ताकि व भी उनके नेतृत्व मे अपन वश के सम्मान को उज्ज्वल रखत हुय शत्रु पक्ष से समानता के स्तर पर लड सकें। उनकी माग की अवज्ञा करना खतरनाक सिद्ध हो सकता था। अत नरसिंह और प्रतापसिंह—दोनो को रिहा कर दिया गया। इस अवसर पर स्वेच्छा स निर्वासित वृ दावन भी अपने को न रोक सका और वह भी सभी के साथ आ मिला। नरसिंह और प्रतापसिंह ने अपने साम ता के मध्य शिविर लगाया। शेखाजी के वशजा का इतना वडा जमघट पहले कभी नही लगा था। रायसलोत, सिद्धानी भोजानी और लारखानी सेनाओ क साथ शेखावत साम ता की सनायें भी मारवाड पर आक्रमण करन क लिए अपने अधीश्वर की सना के साथ आ मिली थी। इस युद्ध का विवरण पहल दिया जा चुका है। यहाँ पर इतना हा जाडना है कि शेखावतो न जिस पराक्रम का प्रदशन किया था जगतसिंह क युद्धभूमि से भाग आन के परिणामस्वरूप वह सब बेकार चला गया। इस युद्ध म खण्डला का नरसिंह और उसका पिता—दोना न ही वीरगति प्राप्त को। इसक बाद सभी साम त अपन घरा को लौट गय।

नरसिंह के बाद उसका लडका अभयसिंह अपन पिता का उत्तराधिकारी बन कर इस युद्ध म अपन सनिको का नतृत्व किया और जब इस दुर्भाग्यपूर्ण अभियान का अ त हुआ तो वह खण्डला लौट आया। परन्तु जयपुर का झूठा दरबार खण्डला की भूमि वापस लोटान का इच्छा नही कर रहा था। अत अभयसिंह माचेडी क राजा बख्तावरसिंह क पास चला गया। परन्तु बख्तावरसिंह न भी इतनी नीचता क साथ उनका आतिथ्य सत्कार किया कि व पन्द्रह दिन स अधिक उसक पास न टिक पाय।

ऐसी विपदा के समय प्रतापसिंह और उसका लडका दौसा मे पडाव डाले मराठा सरदार बापू सिंधिया के पास चला गया, जबकि हनुमन्तसिंह ने अपने पूर्वजो का अनुकरण करते हुये गोविन्दगढ को अधिकृत करने का निश्चय किया। वह अपने साठ शूरवीरो के साथ उस तरफ चल पडा। सायंकाल के समय उसने उन सभी को एक नदी के किनारे पर छिपा रखा और आधी रात के समय एक एक करके उनको दुर्ग की तरफ भेजना शुरू किया। उन सैनिको ने दुर्ग की दीवारो पर चढ कर दुर्ग रक्षको को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया और हनुमन्तसिंह विजयी रहा। दुर्ग के बचे हुये सैनिक दुर्ग छोडकर भाग निकले। दुर्ग पर हनुमन्तसिंह का अधिकार हो गया। कुछ दिनो मे ही उसने दो हजार शूरवीर एकत्र कर लिये और अपने विश्वासघातक अधीश्वर के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी करने लगा। उसने खण्डेला के आसपास से राजकीय सैनिक दस्तो को खदेड कर अनेक नगरो एव गावो पर अपना अधिकार कायम कर लिया। उन स्थानो की सुरक्षा के लिये जयपुर दरबार की तरफ से खुशालीराम नामक एक दरोगा नियुक्त था। वह बडा ही धूर्त था। उसे एक सौ रक्षको का वेतन दिया जाता था। परन्तु उसने तीस से अधिक व्यक्ति कभी नही रखे थे और शेष का वेतन वह स्वयं हजम कर जाता था। खण्डेला से भागकर खुशाली दरोगा जयपुर पहुचा और अतिशयोक्ति के साथ अपने अपमान तथा हनुमन्त के अत्याचारो का वर्णन किया जिसे सुनकर राजा बहुत क्रोधित हो उठा। उसने रतनचन्द नामक एक सेनापति को सेनासहित खण्डेला के विरुद्ध भेजा। उस दरोगा को भी यह कह कर साथ भेजा गया कि यदि अब भी हनुमन्तसिंह को परास्त नही किया जा सका तो उसे दण्ड का भागी बनना पडेगा। शूरवीर हनुमन्तसिंह ने शत्रु की प्रतीक्षा न की। वह अपनी सेना के साथ खण्डेला के बाहर आकर जम गया और जयपुर की सेना के वहा पहुचते ही उस पर धावा बोल दिया। शेखावतो के आक्रमण ने खुशाली दरोगा को परास्त होकर भागने के लिये विवश कर दिया। युद्ध के दौरान यदि हनुमन्तसिंह अत्यधिक जख्मी न हो गया होता तो जयपुर की सेना का सर्वनाश निश्चित था। हनुमन्तसिंह अपने सैनिको के साथ दुर्ग मे चला गया। खुशाली दरोगा ने अपने सैनिको को संगठित करके दुर्ग का घेरा डाल दिया। हनुमन्तसिंह ने घायल होने के बाद भी शत्रुपक्ष के दो धावो को विफल बना दिया।" एक बार तो उसने अकेले ही शत्रुपक्ष के तीस लोगो को मौत के घाट उतार दिया था। खुशालीराम के लिये दुर्ग को जीतना सम्भव न था, परन्तु दुर्ग के भीतर पानी के अभाव ने हनुमन्तसिंह और उसके सैनिको को भयानक कष्ट मे डाल दिया। वह आत्म समर्पण करने की बात सोच ही रहा था कि जयपुर दरबार की तरफ से खुशालीराम ने उसको पाच बडे गावो का अधिकार देने का प्रस्ताव रखा, जिसे उसने स्वीकार कर लिया और खण्डेला दुर्ग को छोड दिया।

इस बीच जयपुर मन्त्रिमण्डल मे एक और परिवर्तन हुआ। खुशालीराम बोहरा जिसे राजा प्रतापसिंह ने आजीवन कारावास की सजा दी थी, को जेल से रिहा कर

प्रधानमन्त्री बनाया गया । उस समय वह चौरासी वर्ष का था । उसने पिछले पचास वर्षों में सभी प्रकार के उतार चढ़ाव देखे थे और अपने से पहले वाले दोनों मन्त्रियों का अपनी पद प्रतिष्ठा धन सम्पत्ति और प्राण खोते हुये भी देखा था । वृद्धावस्था के उपरान्त भी वह दरबारी छल कपट और कुचक्रों में युवकों से भी अधिक उत्साह से काम करने वाला था । राजा प्रतापसिंह के समय से ही वह कदखाने में था । उस राजा ने मरने पूर्व तीन निदेश दिये थे—उनमें से पहला यह था कि खुशालीराम के बोहरा वंश के किसी भी व्यक्ति का मन्त्री पद पर नियुक्त न किया जाय और यदि संकट की घड़ी में उसके उत्तराधिकारी को उसे रिहा करने के लिये विवश होना पड़े तो उसे बिना किसी नियन्त्रण के सम्पूर्ण शासन सूत्र सौंपा जाय ।

जब यह वृद्ध राजनीतिज्ञ प्रधानमन्त्री बना तो शेखावाटी के सामन्तों का एक प्रतिनिधिमंडल राजधानी आया और उससे प्रार्थना की कि उसकी मध्यस्थता से उन्हें उनकी पैतृक जागीरें मिल सकती है । बोहरा ने शुरू से ही व्यक्तिगत भावना तथा गम्भीर राजनैतिक स्वार्थों की दृष्टि से सामन्तों के साथ मधुर सम्बन्ध रखे थे, अतः उसने अपने राजा से उनकी मांग की वकालत करने का आश्वासन दिया । इसके बाद मन्त्री ने राजा से कहा कि राज्य की सुरक्षा सन्तुष्ट सामन्तों के ऐच्छिक सहयोग में निहित होती है । उनके अत्याचारों से सम्पूर्ण राज्य मे अव्यवस्था फैल जाती है। परन्तु राज्य पर कभी किसी प्रकार की विपदा आने पर सामन्तों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ राजा का पक्ष लेकर युद्ध किया है । अभी मारवाड़ के विरुद्ध लड़े गये युद्ध मे शेखावत सामन्तों ने अपने दस हजार सैनिकों के साथ भाग लिया था । सामन्तों के इस प्रकार के उपकार राज्य के ऊपर है । यदि इन सामन्तों का भय न रहे तो लुटेरे मराठा किसी भी समय इस राज्य मे प्रवेश कर अत्याचार कर सकते हैं । इसलिये मेरी समझ मे इन सामन्तों को सन्तुष्ट रखना हमारा कर्तव्य है । मन्त्री की बातों को सुनकर राजा ने उससे कहा कि आप जो मुनासिब समझें सामन्तों के बारे में निर्णय ले लें । राजा की स्वीकृति लेकर मन्त्री ने शेखावत सामन्तों के साथ एक नयी सन्धि की । उस सन्धि के अनुसार रायसलोत सामन्तों से साठ हजार रुपये वार्षिक कर लेना निश्चित हुआ और इस समय चालीस हजार रुपये नजराने के बतौर देना तय किया गया । सामन्तों ने मन्त्री की शर्तों को स्वीकार कर लिया । तब खण्डेला और उसके अधीन जागीरों के नये पट्टे प्रदान किये गये । इन पट्टों पर प्रधान मन्त्री और राजा के हस्ताक्षर हो चुके थे परन्तु खण्डेला दुर्ग में तैनात नागा सेना तथा कुछ अन्य अधिकारियों ने सन्धि का पालन नहीं किया । इससे हनुमन्तसिंह को मन्त्री के बारे मे सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने खण्डेला के दोनों उत्तराधिकारियों से पूछा कि यदि वह जयपुर के इन सैनिकों से लड़कर दुर्ग को अपने अधिकार में लेने की कोशिश करे तो आप लोग कितने सैनिक देकर मेरी सहायता करेंगे । उन दोनों के अधिकार में इस समय पांच सौ सैनिक थे । हनुमन्तसिंह ने उनमें से तीस शूरवीर सैनिकों को अपने साथ लिया और वह दुर्ग के द्वार पर पहुंच गया । वहां पहुंच कर वह छिप गया

ग्रौर नागा सेना क ग्रधिकारी के पास सदेश भिजवाया कि म हनुमन्तसिह का दूत हू ग्रौर ग्रापके साथ कुछ परामश करन के लिय भेजा गया हू। इसलिय मुझ ग्रपने साथियो के साथ ग्रापके पास ग्रान की ग्राज्ञा दी जाय। दुग के ग्रधिकारी न उसे ग्रान की ग्राज्ञा दी। हनुमन्तसिह ग्रपने बीस साथियो सहित दुग के भीतर पहुच गया। उधर खण्डेला सरदारो की शेष सेना भी दुग क फाटक तक पहुच गई। ग्रब हनुमन्त सिह ने ग्रपना वास्तविक परिचय दिया तथा खण्डेला क लिय जारी नयी सनद् नागा सरदार को दिखाते हुये उसे तुरन्त दुग से चल जाने का कहा ग्रौर यह चेतावनी भी दी कि यदि एसा नही किया गया तो सभी लोगो का मौत क घाट उतार दिया जायगा। ऐसी स्थिति म नागा सरदार ने दुग को तत्काल खाली करना ही उचित समझा। उनके जाने के बाद ग्रभयसिह ग्रौर प्रतापसिह ने ग्रपने पूवजो का राज्य प्राप्त किया ग्रौर उनके वीरान महलो म प्रवश किया। ग्रपनी युवावस्था ग्रौर ग्रनुभव हीनता क कारण उनको जीवन की जिन प्रतिकूल परिस्थितियो से होकर गुजरना पड़ा उससे उ होने सबक सीखा ग्रौर ग्रपने स्वव धुग्रो जिनके परिश्रम ग्रौर पराक्रम से ही उ ह ग्रपना पतृक ग्रधिकार मिल पाया था, की सलाह को स्वीकार करते हुय, ग्रब वे ग्रापस म प्रेमभाव से रहने लग ग्रौर ग्रापसी वर भाव का त्याग दिया।

खण्डेला के उद्धार के थोडे दिना बाद ही शेखावत साम तो को राजपूताना के समान शत्रु ग्रमीरखा के सेनानायक मोहम्मशाह खा के विरुद्ध सेवा क लिय बुलावा भेजा गया। शेखावत साम त ग्रपने सनिक दस्ता के साथ जयपुर जा पहुच। राजा जगतसिह ने जयपुर की सेना का नेतृत्व दूनी के राव चादसिह को सापा। इस सना ने मोहम्मदशाह को टोक के समीप भोमगढ के दुग मे जा घेरा। घेराब दी का काम सुचारु रूप से चल रहा था कि एक घटना हो गई जो साम ती व्यवस्था की सुरक्षा त्मक तथा ग्राक्रमणात्मक व्यवस्था की कमजोरी को उजागर करती है। जयपुर की इस ग्रसगठित सना, जो कि विभिन्न साम तो क सनिक दस्तो से खडी की गई थी के शेखावतो के एक सनिक दस्ते ने टोक क ग्र तगत एक नगर पर ग्राक्रमण किया ग्रौर उसको लूट लिया। इस लूटमार के दौरान उस नगर म एक गोगावतवशी ग्रादमी मारा गया ग्रौर ग्राक्रमणकारियो ने उसकी धन-सम्पत्ति भी लूट ली। उस मृत व्यक्ति का लडका राव चादसिह स मिला ग्रौर सारा विवरण सुनाकर उससे सहायता मागी। चादसिह उस वश का प्रधान था। ग्रत उसने उस लडके क साथ एक सनिक दस्ता भेज दिया ग्रौर ग्रादेश दिया कि ग्राक्रमणकारियो से लूट का माल बरामद कर लिया जाय। शखावतो ने इसका विरोध किया ग्रौर ग्रपन ग्र य लोगो को भी बुला भेजा। चादसिह ने भी ऐसा ही किया। खण्डला क दोना सरदार शेखावतो क ग्रन्य सामन्तो क साथ ग्रा जुटे। उधर गोगावत भी चादसिह के नेतृत्व म एकजुट हो गय। इस प्रकार शत्रु का दमन करने के स्थान पर दोनो पक्ष एक दूसरे का सवनाश करन को तयार हो गय। दानो पक्षो को ग्रपने ग्रपने सम्मान की रक्षा की चिन्ता थी ग्रौर दोनो म से कोई भी ग्रपने दाव को छोडने क लिय तयार न था। इस ग्रापसी विवाद म सीकर

का साम त तटस्थ रहा और एक नागरोत सरदार ने सफलता के साथ दानो पक्षा म सुलह करा दी। उसने चादसिंह के सामने प्रस्ताव रखा कि जो सम्पत्ति लूटी गई है, उसे खण्डेला सरदार के डेरे तक जाने दिया जाय और खण्डेला सरदार स्वेच्छा से वह सम्पत्ति सेनापति के शिविर म भिजवादे। शेखावतो ने भी इस बात का स्वीकार कर लिया और इस प्रकार दोनो पक्षो का सवनाश रुक गया। पर तु चादसिंह का इससे सतोप नहीं हुआ। उसने अनुभव किया कि इससे सेनापति का सम्मान तो सुरक्षित रह गया पर तु शेखावतो क नता क रूप म उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा है।

सीकर का साम त लक्ष्मणसिंह ही एकमात्र ऐसा शेखावत साम त था जो इस विवाद से दूर रहा था। वह बहुत पहले स खण्डेला को अपन अधिकार म लान की अभिलाषा रखता आया था और इस विवाद से उसे अपनी अभिलाषा पूरी करन का अवसर आया प्रतीत हुआ। भोमगढ की घराव दी उठा ली गई क्योकि शेखावता के साथ विवाद हो जाने के बाद उसको जारी रखना सभव न था। इस अवसर पर सीकर का साम त राजधानी से जाकर तेजी के साथ सीकर जा पहुचा और वहा स सीमोह नामक स्थान पर धावा बोल दिया और वहा के अधिकारी जो कि पूर्व प्रधान म त्री बोहरा का लडका था को घूस देकर उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसन उन लोगो स सहायता प्राप्त की जिनके विरुद्ध घेराव दी मे वह सम्मिलित हुआ था। उसने दो लाख रुपये के बदले म म नू और महाबतखा नामक दो पठान सेनापतियो को बुलवा भेजा। महाबतखा ने कुछ दिनो पहले ही हनुमन्तसिंह के साथ खण्डेला के अवयस्क सरदारो के हितो की रक्षा करने के लिये पवित्र [illegible] किया था और इसके बदले म हनुमन्तसिंह ने उसे पचास हजार रुपये दिये थे। [illegible] की धाधाधडी के बाद उस समय इतने मामले हो गये थे कि [illegible] ही निरर्थक है।

हनुम त को समथन दन का निश्चय किया । कुछ साम तो को सीकर न भूमि का प्रलोभन दकर ग्रपन पक्ष मे कर लिया ग्रौर कुछ साम त पठान सनिको क विरुद्ध ग्रपनी जागीरो की रक्षा करन म ग्रसमथ हान के कारण घर पर ही वठे रहे। जयपुर दरवार भी शेखावतो से ग्रप्रसन्न था क्याकि वह इस निणय पर पहुचा था कि खण्डला के ग्रनुयायिया के कारण ही भोमगढ की घेराव दी का वीच म ही उठानी पडी था। ग्रत उस तरफ स भी किसी प्रकार की सहायता न मिली ग्रौर हनुम तसिह ग्रौर उसक साथिया को ग्रपने ही साधना पर निभर रहना पडा ।

तीन महीन तक हनुमन्तसिह न वहादुरी के साथ कोट की रक्षा की परन्तु इसके वाद जव शत्रु के ग्राक्रमण का जोर वढन लगा तो उसक साथियो न वाहर क सुरक्षा स्थान का छाडकर काट की दीवारो के पीछे मोर्चा जमान की सलाह दी तो उसने कहा कि यहा से हटन का ग्रथ सम्पूण खण्डला का हाथ से निकल जाना होगा। इसके वदल यदि हम शत्रु पक्ष पर टूट पडें तो ग्रधिक लाभदायक होगा । सभी न उसकी वात को स्वीकार किया ग्रौर उ हान सगठित होकर शत्रु पर जोरदार ग्राक्रमण करके पीछे धकेल दिया । तीसरी वार इसी प्रकार का प्रयास करत समय हनुमन्तसिंह का ग्रचानक शत्रु की एक गोली लगी ग्रौर वह उसी स्थान पर मर गया । उसकी मृत्यु की सूचना स शत्रु पक्ष का ग्रपार प्रसन्नता हुई । दूसर दिन प्रात काल हनुम त सिंह का दाह सस्कार करन तथा घायल सनिको को ले जान के लिय सीकर के लक्ष्मणसिह से थोडी देर के लिये युद्ध व द रखन को कहा गया जिसे उसने स्वीकार कर लिया । इसी समय उसन खण्डला क दोना सरदारो के सामन प्रस्ताव रखा कि खण्डेला के वदल मे वे दस नगरो का ग्रधिकार ले लें । इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुये शेखावतो न समपण कर दिया । प्रतापसिंह न ग्रपन हिस्से के पाच नगर लना स्वीकार कर खण्डला पर से ग्रपना पतृक ग्रधिकार त्याग दन का निश्चय कर लिया पर तु ग्रभयसिंह न इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया । उसम रायसलोत वश की भावना ग्रव भी विद्यमान थी ग्रौर ग्रपने ही सामन्त सीकर के लक्ष्मणसिंह क दान पर जीवित रहना उसे स्वीकाय न था । प्रतापसिंह न भी यदि ऐसा ही किया हाता तो वह उसके लिये ग्रधिक लाभप्रद रहा होता क्याकि लक्ष्मणसिंह न शीघ्र ही यह ग्रनुभव किया कि उसन ग्रपने भूतपूव राजा को उसी क पतृक राज्य म पाच नगरा का ग्रधिकार दकर ग्रच्छा काम नही किया है । खण्डला म ग्रपनी शासन व्यवस्था के सुदृढ हात ही उसन दोना युवा सरदारा को निकाल वाहर किया । वे दाना ग्रव भु झनू म रहत हैं ग्रौर सिद्धानी सरदारो स उ ह पाच रुपये प्रतिदिन के हिसाव स गुजारा भत्ता मिल रहा है । मौजूदा हालात मे उ हे ग्रपन पतृक राज्य की वापसी की ग्राशा नही है ।

1814 ई० मे जव मिसर शिवनारायण जयपुर का प्रधानम त्री था तो वह ग्रमीरखा से छुटकारा पान क लिय विपम ग्राथिक सकट म फस गया । तव उसने सीकर के सरदार की तरफ ध्यान दिया जो पिछल कई वर्षो से वलात् ग्रधिकृत क्षेत्रा

को दरबार के द्वारा मा यता दिय जान के लिय प्रयत्नशील था। अमीरखां को कुल मिलाकर नौ लाख रुपये (पाच लाख जयपुर के और चार लाख सिद्धानी सामन्तो से) चुकाने थे। मत्री न लक्ष्मणसिंह का सदेश भिजवाया कि यदि वह पाच लाख रुपय अपनी तरफ से और चार लाख सिद्धानी सरदारो से वसूल करक नौ लाख रुपये अमीरखा को पहुँचा दे तो उसे खण्डला राज्य की सनद् दे दी जायेगी। लक्ष्मणसिंह न यह बात मान ली और उसने नौ लाख रुपया अमीरखा को देकर रसीद ल ली और फिर उस रसीद को लेकर जयपुर पहुचा। वहा पर उसका पर्याप्त सम्मान किया गया तथा खण्डला की सनद् प्रदान कर दी गई। लक्ष्मणसिंह ने खण्डला का 57 000 रु वार्षिक कर भी अग्रिम अदा कर दिया। इस प्रकार रायसलात वश के हाथ से खण्डला हमेशा के लिय निकल गया।

जसाकि पहल बतलाया जा चुका है कि राजा जगतसिंह न एक ब्राह्मण को दो वर्ष के लिये खण्डला का पट्टा दे दिया था पर तु उसके अत्याचारो से दु खी होकर उसको खण्डला स निकाल दिया गया था। वही ब्राह्मण अब जयपुर दरबार म अपना स्थान बना चुका था। उसने सीकर के लक्ष्मणसिंह को फसाने के लिय कुचक्र चलाया जिसम म त्री शिवनारायण को भी लपट लिया। बेचार म त्री न आत्महत्या कर अपनी इज्जत बचाई। उसकी मृत्यु के बाद अपनी तिकडम से वह ब्राह्मण जयपुर राज्य का प्रधानमन्त्री बन गया। इसके कुछ दिनो बाद ही लक्ष्मणसिंह जयपुर आया। उसे लक्ष्मणसिंह के प्रभाव स चि ता उत्पन्न हो गई और उसन किसी उपाय से जयपुर के राजा और सीकर के सामन्त क मध्य विरोध उत्पन्न करन का निश्चय किया। उसने गुप्त रूप स राज्य की सेना को खण्डेला पर आक्रमण करन का आदेश दिया। उसने सिद्धानी सामन्तो को भी अपनी तरफ मिला लिया और व लोग भी अपने सनिको क साथ राज्य की सेना के साथ जा मिले। जब लक्ष्मणसिंह को इस आक्रमण की जानकारी मिली तो उसन पठान सरदार जमशेदखा को धन देकर खण्डेला की रक्षा क लिय भेज दिया। प्रधानम त्री स्वय जयपुर की सेना के साथ गया था। उसने खण्डला पहुच कर पडाव डाला। जमशेदखा ने खण्डेला पहुचते ही ब्राह्मण मत्री क डेरे पर आक्रमण कर उसकी समस्त धन सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। ब्राह्मण घबराकर वापस जयपुर लौट आया। लक्ष्मणसिंह भी जयपुर म ही था। म त्री ने उसको कद करन की आज्ञा दी। जब लक्ष्मणसिंह को इसकी जानकारी मिली तो वह राजधानी से भाग गया क्योकि राजधानी म उसक पास कवल पचास सनिक ही थ। म त्री ने लक्ष्मणसिंह के जयपुर निवास स्थान की समस्त सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। उधर खेतडी और बिसाऊ क साम ता क नतत्व म सिद्धानी साम ता न प्रतापसिंह के लिये खण्डेला को जीतने का प्रयास किया पर तु व असफल रह। अपने पैतक राज्य का अधिकार पाने की प्रतापसिंह की अ तिम आशा भी नष्ट हो गई।

अब हम सक्षेप म लक्ष्मणसिंह के इतिहास का उल्लेख करत हैं। जसा कि पहल लिखा जा चुका है कि शेखाजी क पुत्रो म स राजा की उपाधि पान वाला पहला

व्यक्ति रायसाल था। उसके सात लड़के थे। उनमें चौथा था–तिरमल। उसे 'राव' की उपाधि और चौरासी गाव तथा नगर जागीर के रूप में मिले। कासली मुख्य केन्द्र था। उसके लड़के हरिसिंह ने फतेहपुर के कायमखानियों को पराजित कर उससे बिलाड़ा और उसके अन्तगत के एक सौ पच्चीस गावों और नगरों पर अधिकार कर लिया और कुछ दिनों बाद रेवासा और उसके अधीन के पच्चीस गावों और नगरों पर भी अधिकार कर लिया। हरिसिंह के लड़के शिवसिंह ने कायमखानियों से फतेहपुर भी छीन लिया और उसने फतेहपुर को अपना निवास स्थान बनाया। शिवसिंह के लड़के चांदसिंह को सीकर जागीर में मिला। उसके वंशज देवीसिंह ने पुत्र न होने पर अपने निकटवर्ती सम्बन्धी शाहपुरा के जागीरदार के लड़के लक्ष्मणसिंह को गोद लिया जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। देवीसिंह के शासनकाल में भी सीकर की स्थिति काफी समृद्ध और शक्तिशाली थी। लक्ष्मणसिंह ने उसको और अधिक समृद्ध और शक्तिशाली बनाया। खण्डेला पर अधिकार करने के पहले उसने अपने अधीनस्थ सरदारों को निबल बना दिया और उनके दुर्गों को भूमिसात कर दिया। इतना ही नहीं उसने अपने पिता के शाहपुरा दुर्ग तथा बीलाड़ा, भटौती और कासली के दुर्गों को भी गिरा दिया। इस प्रकार उसने अपने ही रक्त का दमन करके सीकर पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित किया। उसके आचरण से दुःखी होकर उसका पिता शेखावाटी छोड़कर जोधपुर में जाकर रहने लगा।

लक्ष्मणसिंह के अधिकार में अब पन्द्रह सौ गावों और नगरों का एक संगठित राज्य था जिसकी वार्षिक आमदनी आठ लाख रुपये थी। अपने नाम को चिरस्थायी बनाने के लिये उसने लक्ष्मणगढ़[3] नामक दुर्ग बनवाया। इसके अलावा उसने कुछ अन्य स्थानों पर भी दुर्ग बनवाये। उसने अपने अधिकार में एक अच्छी सेना संगठित की जिसमें एक हजार घुड़सवारों के अलावा बन्दूकची तथा तोपची भी थे। उनमें से पांच सौ सैनिक वेतनभोगी थे और शेष पांच सौ को राज्य की ओर से भूमि मिली हुई थी। खण्डेला पर अधिकार करने के बाद लक्ष्मणसिंह ने अपनी सैनिक शक्ति को और भी अधिक मजबूत बना लिया। इन साधनों और महत्वाकांक्षा के साथ उसने अपने आपको सम्पूर्ण शेखावाटी का स्वामी बना दिया होता यदि जयपुर राज्य ने अंग्रेजों के साथ सन्धि करके इस प्रकार की लुटेरी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने में सहयोग न दिया होता।

खण्डेला[4] के इतिहास का विवरण देने के बाद अब हम शेखावाटी की अन्य शाखाओं विशेषकर सिद्धानी शाखा का विवरण देते हैं। सिद्धानी शेखावत वंश की एक प्रबल शाखा है। रायसाल ने अपने पुत्र भोजराज को उदयपुर और उसके अधीन गाव तथा नगर जागीर के रूप में दिये थे। भोजराज के वंशजों की संख्या बढ़ती गई और वे उसी के नाम पर भोजानी के नाम से पुकारे जाने लगे। शेखावत नाम के इन्हीं लोगों के उदयपुर[5] में आकर अपना सम्मेलन किया करते थे।

कई पीढियो के बाद भोजराज के वश मे जगराम उदयपुर का सरदार बना। उसके छ लडके थे। सबसे वडे पुत्र का नाम साधु था। एक बार दशहरे के दिन वह अपने पिता से झगडकर उसके राज्य से चला गया। सिद्धानी लोग जिस क्षेत्र म आबाद थे, वह फतेहपुर कहलाता था। इसका प्राचीन नाम झुझनू था और यहा के सभी सिद्धानियो पर कायमखानी मुसलमानो का शासन था।[6] उनका नवाब दिल्ली के बादशाह की अधीनता म था। साधु घर से निकलकर इसी नवाब के पास आया जिसने उसको अपने यहा सम्मानपूर्ण स्थान दिया। साधु ने अपनी योग्यता और काय कुशलता से शीघ्र ही नवाब को प्रसन्न कर दिया। नवाब ने फतेहपुर का समस्त शासनसूत्र साधु को सौप दिया। इस प्रकार काफी समय बीत गया। नवाब काफी वृद्ध हो चला था। अत एक दिन साधु ने उससे कहा कि अब आपको पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। अच्छा हो यदि आप राज्य के किसी सुविधाजनक स्थान पर अपना शेप जीवन शातिपूर्ण व्यतीत करें। आपकी मर्यादानुसार आपके पास इतनी धन सम्पत्ति पहुचाई जाती रहगी कि आपको कभी किसी प्रकार की कमी अनुभव न होगी। साधु की सलाह म निहित गूढ अर्थ को समझने म नवाब ने किसी प्रकार की भूल न की। उसने स्पष्ट रूप से देखा कि साधु को शासनसूत्र सौप कर उसने अपने आपको निर्बल बना दिया है और मौजूदा परिस्थिति मे उसका विरोध करना सकट पूर्ण हो सकता है। इसलिये अवसर मिलते ही वृद्ध नवाब झुझनू को छोडकर अपने राज्य के दूसरे भाग फतेहपुर जहा उसके सम्बधी थे भाग गया। उसके सम्बधियो न विश्वासघातक साधु को झुझनू से निकाल बाहर करने के लिये युद्ध की तयारी आरम्भ की। जब साधु को इसकी जानकारी मिली तो उसने अपने पिता को सहायता के लिये लिखा और कहा कि यह समस्त वश की प्रतिष्ठा का सवाल है। वृद्ध पिता ने पुत्र की सफलता को देखकर पिछली बातो को भुला दिया और उसकी सहायता करने का निश्चय किया। इस समय उसका दूसरा लडका जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह की सेवा म था। वृद्ध पिता ने उसको सारी बातें समझाते हुये लिखा कि वह जयपुर से सनिक सहायता प्राप्त करके साधु की सहायता के लिये पहुँच जाय। पिता के आदेशानुसार दूसरा भाई जयपुर की सेना के साथ झुझनू पहुच गया। इसका लाभ उठाकर साधु ने कायमखानिया से सम्पूर्ण फतहपुर का क्षेत्र भी छीन लिया और दोनो भाइयो ने मिलकर इस विशाल क्षेत्र पर शासन करना शुरू कर दिया। अपने भाई की सलाह मानकर साधु ने जयपुर राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। फतहपुर और उसके अन्तगत के सभी गाव और नगर साधु ने अपने भाई को प्रदान कर दिये। कुछ दिनो बाद साधु ने कायमखानियो की दूसरी शाखा—सुलताना व अधिकार वाले इलाके को भी जीत लिया। इसके अन्तगत चौरासी गाव और नगर थे। इसके साथ ही उनके अधिकार वाले नरवडी इलाके को भी छीन लिया। ये दोनो इलाके सिंहाना के नाम से पुकारे जाते थे। इस प्रकार साधु अपने राज्य की सीमा का विस्तार करता रहा। उसके अधिकार म एक हजार से अधिक गाव और

नगर हो गये थे। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने अपने द्वारा विजित क्षेत्र को अपने पांच पुत्रों में विभाजित कर दिया जिनके वंशज उसके नाम के पीछे 'सिद्धानी' के नाम से विख्यात हुये। उसके लड़कों के नाम थे—जोरावरसिंह, किशनसिंह, नवलसिंह, केसरी सिंह और पहाड़सिंह।

जोरावरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण अपने हिस्से के अलावा चोकेड़ी और उसके अन्तर्गत बारह गांवों का अधिकार, राजा के सभी प्रतीक चिन्ह—हाथी, पालकी वगैरा भी प्राप्त हुये। यद्यपि आगे चल कर दूसरे पुत्र किशनसिंह के वंशज—खेतड़ी के सरदार ने जोरावरसिंह के वंशजों के अधिकार से चोकेड़ी के अलावा अन्य सभी गांव और नगर छीन लिये फिर भी वंश मर्यादा की दृष्टि से जोरावरसिंह के वंशज खेतड़ी वालों से श्रेष्ठ माने जाते हैं, यद्यपि खेतड़ी के अधिकार में पांच सौ ग्राम तथा नगर हैं।

साधु के चार पुत्रों के वंशजों में निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हुये—(1) खेतड़ी का अभयसिंह (2) बिसाऊ का श्यामसिंह (3) नवलगढ का नानसिंह, और (4) सुलताना का शेरसिंह।

साधु ने अपने परिवार के कनिष्ठ सदस्यों को संयुक्त रूप से सिंहाना, कुंभन्द और सूरगढ (प्राचीन नाम उदना) इत्यादि नगर और कई गांव दे दिये थे। परन्तु खेतड़ी के अभयसिंह ने सिंहाना के एक सौ पच्चीस गांवों और नगरों पर अपना अधिकार कायम कर लिया। परन्तु अन्य इलाके अब भी सिद्धानी परिवार के कई सदस्यों के अधिकार में हैं।

सिद्धानी सामन्तों के मध्य अभयसिंह ने वैसी ही प्रतिष्ठा अर्जित की जैसे कि रायसलोत के मध्य लक्ष्मणसिंह ने कायम की और दोनों ने अपने ही वंश के लोगों की भूमि को बलात् अपने अधिकार में करने अत्याचारों तथा विश्वासघात जैसे सामान्य उपायों का सहारा लिया था। सीकर के सामन्त ने अपने वंश की ज्येष्ठ शाखा—खण्डेला का विनाश किया तो खेतड़ी सरदार ने न केवल ज्येष्ठ शाखा का अपितु कनिष्ठ शाखाओं का भी सर्वनाश किया। शेरसिंह के वंशजों को जिस तरह से सुलताना से वंचित किया गया उसका उल्लेख करना आवश्यक है ताकि पता चले कि राजपूत भूमि को प्राप्त करने के लिये किस सीमा तक जा सकता है।

साधु के छोटे लड़के पहाड़सिंह के एक ही लड़का हुआ जिसका नाम था भूपाल। लुहारू के युद्ध में भूपालसिंह मारा गया। तब पहाड़सिंह ने अपने भतीजे खेतड़ी के सरदार बाघसिंह के छोटे लड़के को गोद ले लिया। कुछ दिनों बाद पहाड़सिंह की मृत्यु हो गई। गोद लिया गया बच्चा अभी शासन भार सम्भालने योग्य न था अतः वह खेतड़ी में ही रहने लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बच्चे की कानूनी स्थिति में परिवर्तन आने से उसके प्रति पारिवारिक

सम्ब धो म भी अ तर आ गया। क्योकि वह वच्चा अब खेतडी घरान का न रह कर सुलताना जागीर तथा घरान का मालिक वन गया था। अत खेतडी क सरदार ने उस बच्चे के खून से अपने हाथो का रग कर सुल्ताना जागीर पर अपना अधिकार करक उसे खेतडी राज्य मे मिला लिया[7]। पर तु खेतडी सरदार अपनी सम्पूर्ण जाति की घृणा का पात्र वन गया और लाग उमक नाम पर थूकन लग थे। अपमान स पीडित हाकर वह एका तवास म रहन लगा। उसकी पत्नी भी अपने बच्चे को लेकर अलग क्क्ष म रहन लगी। वाघसिह ने इसी अपमानित अवस्था मे बारह साल गुजार दिय। उसन एक बार भी अपन कक्ष से वाहर कदम नही रखा। खेतडी की शासन व्यवस्था मौजूदा सरदार अभयसिह की माता अपनी देखरेख म चलाती रही। मृत्यु के बाद ही वाघसिह का शव उसक कक्ष से वाहर निकाला गया।

लारखानी—रायसलानी और सिद्धानी वश क विवरण के बाद लारखानिया के बारे म भी कुछ कहना उचित ही होगा। लारखानी (लाडखानी) का शाब्दिक अथ प्रिय प्रभु है पर तु अपन आचरण म व कुख्यात लुटरे है। रायसाल के इस लडके तथा सबसे छोटे लडके ताज—दोना के नामा के वाद मे 'खा' का उपयोग क्यो किया गया, इसक वारे म हमारे पास कोइ जानकारी नही है। रायसाल के लडके लाडखा न अपने ही पराक्रम स दाता रामगढ को जीता था। यह नगर मारवाड की सीमा पर साभर का एक अधिकृत नगर था। सभव है कि जयपुर दरवार मे उसके पिता का प्रभाव भी इस क्षेत्र पर उसका अधिकार जमान मे सहायक रहा हो। इस इलाके को जीतन के वाद उसने टप्पा नोसल जिसके अ तगत अस्सी गाव तथा नगर थ पर भी अधिकार कर लिया। ये ग्राम और नगर पहल मारवाड और बीकानेर के राज्यो म सम्मिलित थे। लारखानी लोग उनके राज्या म किसी प्रकार की लूटमार न करे, इसलिय उन दोनो राज्या ने उ ह इन गावा और नगरो पर अधिकार करने दिया था। लारखानी लाग पिंडारिया का अनुकरण करते हुय सकडो और हजारो की सख्या मे एकत्र हाकर लूटमार के लिय निकलते थे और जिस तरफ जाते थे वहा सवनाश कर दत थ। कभी कभी उनका नाममात्र का अधीश्वर राजा उनसे वार्षिक कर की माग कर उठता है पर तु अपनी शक्ति के मद म चूर लारखानी उसकी माग पर जरा भी ध्यान नही देत पर तु जब अमीर खा जसा शक्तिशाली व्यक्ति उस माग को लेकर आता है तो वह उनसे बीस हजार रुपय वसूल करके ही लौटता है।

अव हम शखावाटी के साम ता की वार्षिक आमदनी का ब्योरा देकर उनके वृत्तान्त को समाप्त करत है। यद्यपि हमार पास उनकी आमदनी को जानन के पुख्ता दस्तावेज नही ह फिर भी अन्य साधना स उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि उनकी वार्षिक आमदनी पच्चीस लाख स तीस लाख रुपय तक थी। इन दिना म

उनकी तथा अन्य राज्यो की आमदनी मे भारी कमी आ गई है और इसका प्रमुख कारण उनका आपसी सघर्ष तथा एक दूसरे का सर्वनाश करने का प्रयास करना था और इसके अलावा बाहरी लुटेरी शक्तियो को धन देकर उन्हें सतुष्ट कर अपने इलाको की सुरक्षा खरीदना भी था। अच्छे समय मे उनकी आय का तालिका इस प्रकार थी—

सीकर और मण्डेला के लक्ष्मणसिंह का = 8 00,000 रु, खेतड़ी के अभयसिंह की = 6 00,000 रु विसाऊ के श्यामसिंह और रणजीतसिंह की = 1 90 000 रु, नवलगढ के ज्ञानसिंह की = 70,000 रु मेदसर के लक्ष्मणसिंह की = 30 000 रु, जोरावरसिंह की = 1 00,000 रु, उदयपुरवाटी की = 1,20 000 रु, मनोहरपुर[8] की = 30 000 रु, लारखानियो की 1,00,000 रु हरराम जी लोगो की = 40 000 रु, गिरिधर पोताओ की = 40,000 रु छोटे सामतो की = 2,00 000 रु,
कुल योग = 23,00,000 रुपये।

जयपुर के राजा को जो वार्षिक कर चुकाया जाता था, वह इस प्रकार था—

सिद्धानी लाग = 2,00 000 रु खण्डेला = 60,000 रु, फतेहपुर = 65,000 रु उदयपुर और वाई = 22,000 रु, कासली = 4 000 रु।
कुल योग = 3 51,000 रुपये

शेखावाटी सामन्तो की आमदनी के जो आकडे ऊपर दिये गये हैं, विगत पचास वर्षों से उनमे निरन्तर कमी होती आ रही है।

सन्दर्भ

1 जार्ज थामस के जीवनी लेखक फ्रेंकलिन ने लिखा है कि उसके विरुद्ध राजपूतो की यह सफलता कुछ विशेष कारण रखती है, फिर भी थामस ने राजपूतो के पराक्रम की प्रशसा की थी।

2 कृष्णाकुमारी प्रकरण का विस्तृत विवरण पहले यथास्थान पर किया जा चुका है।

3 टाड ने लिखा है कि सवत् 1862 (1806 ई) मे सबसे ऊँचे शिखर अर्थात् किसी प्राचीन दुर्ग के अवशेषो पर लक्ष्मणगढ का दुर्ग और नगर का निर्माण कराया गया। यह नगर भी जयपुर के समान श्रेष्ठ रीति से बनाया गया था।

4 टाड के अनुसार खोकर राजपूतो से खण्डला नाम की उत्पत्ति हुई है। खण्डेला नगर मे चार हजार घर है और उनके अधीन गावा की सख्या 80 है। अधिकाश विद्वान टॉड की उपयु क्त कल्पना से सहमत नही हैं।

5 उदयपुर का प्राचीन नाम कुसुम्बी अथवा काइस था। इसके अ तगत चार भागा म विभक्त 45 गाव थे।

6 कायमखानियो को कुछ विद्वान् अफगान मानते है और कुछ उन्ह चौहान राजपूतो के वशज मानत हैं।

7 खेतडी के बाघसिह न अपन ही बच्चे को मार कर सुलतान को खेतडी राज्य म मिला दिया था।

8 जयपुर का राजा जगतसिह मनोहरपुर के सरदार स अप्रसन्न हा गया और उसन किसी उपाय से उसे मरवा डाला और मनोहरपुर की समस्त भूमि को शेखावाटी के अन्य साम तो म बाँट दिया था।

अध्याय 64

जयपुर राज्य का अन्य वृत्तान्त

हम कछवाहा वश और उसके वशजो–शेखावाटी और माचेडी के सामन्तो की उत्पत्ति और उनके विकास का विवरण दे आये हैं। सभव है कि कुछ लोगो को प द्रह हजार वगमील के क्षेत्र म आबाद इन लोगो के आठ सौ वर्षों के इतिहास म किसी प्रकार की दिलचस्पी न हो, लेकिन इस वश के चालीस हजार लोग अपने प्राणो की चि ता न करते हुये अपने राजा और राज्य की रक्षा करने के लिये तलवार हाथ मे लेकर हमेशा तयार रहत आये है। अपन दश का नाम राजपूतो के मस्तिष्क मे अद्‌भुत जादू का सा प्रभाव उत्पन्न कर देता था। इन राज्यो के अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनम देशभक्ति तथा कृतज्ञता का अभाव नही था।

सीमा और विस्तार— आमेर और उसके आश्रित राज्या की सीमाए मानचित्र देखन स भलीभाति मालूम हो जाती है। इसकी सबसे अधिक चौडाई मारवाड की सीमा पर स्थित साभर से लेकर पूव म जाटा की सीमा के समीप स्थित सोथ नगर के मध्य म है। यह एक सौ बीस मील है। उत्तर से दक्षिण के मध्य इसकी लम्बाई एक सौ अस्सी मील है। इसकी जमीन एक सी नही है। खास जयपुर अथवा ढू ढाड का क्षेत्रफल नौ हजार पाच सौ वगमील है जबकि शेखावाटी का पाच हजार चार सौ वगमील है। इस प्रकार राज्य का कुल क्षेत्रफल चौदह हजार नौ सौ वग मील है।

आबादी—इस क्षेत्र म आबाद लोगो की सही सख्या लिखना कठिन है। प्राप्त सामग्री का सही अनुमान लगा कर इतना ही कहा जा सकता है कि जयपुर क्षेत्र म प्रति एक वगमील भूमि पर एक सौ पचास और शखावाटी क्षेत्र म प्रति वगमील में अस्सी लोग बसत है। इस हिसाब म इस राज्य की कुल आबादी 1,85,670 के आसपास है। जब हम बडे नगरो की आबादी का ध्यान करते हैं तो मालूम होता है कि यह सख्या अधिक न होकर कम ही होगी। ढू ढाड के पत्तूक क्षेत्र म ढाणियों (झोपडिया) को छोडकर लगभग चार हजार गांव तथा नगर आबाद है जबकि शेखावाटी क्षेत्र के गावो और नगरो की सख्या इससे आधी है। सीकर और खण्डेला के

लक्ष्मणसिंह तथा खेतडी के अभयसिंह–प्रत्येक के पास लगभग पाच सौ गाव तथा नगर है अर्थात् शेखावाटी सघ के आधे गाव और नगर हैं।

जातीय अनुपात—इस राज्य मे आबाद विभिन्न जातियो की सही सख्या लिखना कठिन काम है परन्तु प्राप्त जानकारी से पता चलता है कि राजपूतो की सख्या अन्य जातियो की सम्मिलित सख्या के मुकाबले मे काफी कम थी। लेकिन मीना जाति के अलावा उनकी सख्या किसी भी अन्य जाति की अकेली सख्या से किसी प्रकार कम न थी। आदिवासी मीना लोगो की सख्या आज भी सबसे ज्यादा है। यहा की जनसख्या मे सात जातियो—मीना, राजपूत ब्राह्मण वैश्य, जाट धाकर अथवा किरात और गूजर की सख्या अधिक है।

मीना—मीना लोग कम से कम बत्तीस उपशाखाओ अथवा श्रेणियो मे विभाजित हैं और उन सबका विवरण देने का अर्थ होगा इस राज्य के इतिहास को अनावश्यक रूप से बडा आकार प्रदान करना। इस राज्य मे मीना लोगो को सभी प्रकार के राजनतिक अधिकार प्राप्त हैं। नरवर के निर्वासित राजा को मीना लोगो के द्वारा ही आमेर का सिंहासन प्राप्त हुआ था। यह सत्य है कि कछवाहो ने मीना लोगो को परास्त किया था, परन्तु उन्होने उन पर अपना आधिपत्य स्थापित नही किया था अपितु मीना लोगो ने ही उनकी अधीनता स्वीकार कर उन्हें अपना लिया था। इसी कारण मीना लोगो के प्रतिनिधि कालीखोह के सरदार को आमेर के नये राजा के अभिषेक के अवसर पर अपने रक्त से उसका तिलक करने का अधिकार मिला था। उनके उदाहरणो से पता चलता है कि आमेर राजाओ का उनमे अगाध विश्वास रहा था और इसी कारण उन्हें अत्यधिक उत्तरदायी पदो पर नियुक्त किया जाता था। जयपुर के राजकोष तथा दरबारी कागजातो की देखभाल का दायित्व मीनो पर ही था। राजधानी के गोपनीय कार्यो, राजा के अगरक्षको तथा इसी प्रकार के अन्य उत्तरदायित्वपूर्ण काम उन्ही को सौपे जाते थे। प्रारम्भ मे तो मीना लोगो को अपना झण्डा फहराने तथा नक्कारा बजाने का अधिकार भी प्राप्त था बाद मे उन्हें इस अधिकार से वचित कर दिया गया था। कृषि के कार्य मे ज्यादा सख्या मीना, जाट और किरात लोगो की ही है।

जाट—जाटो की सख्या लगभग मीनो के बराबर ही है और उनके अधिकार की भूमि भी उनके बराबर ही है। कृषि का कार्य करने वाली जातियो मे वे अन्यो की अपेक्षा अधिक परिश्रमी हैं।

ब्राह्मण—ब्राह्मण लोग धार्मिक अनुष्ठान तथा कर्मकाण्डो के अधिकारी हैं और इसी प्रकार की सेवाओ मे लगे हुये हैं। रजवाडे के अन्य राज्यो की अपेक्षा आमेर राज्य मे उनकी सख्या अधिक है, परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि आमेर के राजा अपने

पडौसी राजाओ की अपेक्षा अधिक धार्मिक मनोवृत्ति के हैं। इसके विपरीत आमर के राजा उनके मुकाबले म अधिक अधर्मी और अपराधी हैं।

राजपूत—यह अनुमान है कि अब भी सकट उपस्थित होने पर अथवा कछवाहा की देशभक्ति को उत्तेजित किये जान पर वे अपन वश के तीस हजार लोगो के साथ युद्धभूमि के लिये एकत्र हो जाते हैं। उनमे नरूका और शेखावत वश के लोग भी सम्मिलित है। इस वश मे पजून मानसिह और मिर्जा राजा जयसिह उतने ही शूरवीर शासक हुये है जितन कि अ य राजवशो मे। फिर भी, राठौडा न अपन साहस और शौय के लिये जो ख्याति अर्जित की है, वसी ख्याति कछवाहा अर्जित नही कर पाये। इसका एक कारण यह भी रहा हो कि उन लोगो ने मुगला के साथ ववाहिक सम्बन्ध कायम किये थे और उसके परिणामस्वरूप उन्हे मुगल दरबार म सम्मान मिला तथा बादशाह के समथक बन कर मुगल साम्राज्य की उन्नति म सहयोग दिया था। मराठो के आक्रमणो से कछवाहो का बहुत अधिक क्षति पहुँची। उनक प्रभुत्व काल म कछवाहो की राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक—सभी प्रकार की भावनायें लडखडान लग गई थी।

खेती, मिट्टी और पैदावार—ढू ढाड मे मिट्टी की सभी किस्म पाई जाती हैं। धान और जुआर की अपेक्षा यहा पर बाजरा अधिक पदा होता है। गहू की अपेक्षा जौ की पदावार अधिक होती है। हिन्दुस्तान के अन्य भागो की तरह यहाँ पर भी अ य प्रकार के अनाज, दाले, तिलहन और साग सब्जियाँ बहुतायत से पदा होती हैं, परन्तु बहुत से कारणो के परिणामस्वरूप यहा के किसानो न ईख की खेती काफी कम कर दी है। उसका मुख्य कारण यह था कि पहल ईख की खेती पर चार रुपये से लेकर छ रुपय प्रति बीघा के हिसाब से निश्चित कर लिया जाता था, परन्तु बाद मे ईख की खेती करने वालो से साठ रुपये अग्रिम लेना शुरू कर दिया गया। राज्य के अनेक जिलो म बढिया किस्म की रूई भी काफी मात्रा म पदा की जाती है। नील तथा रग आदि भी तयार किय जाते हैं। कृषि क उपकरणो म कोई विशेषता नही है और उनका उल्लेख पहल किया जा चुका है।

इजारेदारी प्रथा—इस राज्य मे यह प्रथा है कि भूमि से राजस्व वसूली का इजारा (ठेका) अधिक बोली लगाने वाले को दे दिया जाता है। इजारदारी की प्रथा राज्य और खेती करने वाला—दोनो के हिता के प्रतिकूल है और दोनो को ही इस प्रथा से भारी हानि उठानी पडती है। इजारा लन वाले लाग सामान्यत समृद्ध व्यापारी और साहूकार होते है और व सम्पूर्ण जिले का इजारा ले लत हैं। फिर वे लाग उस जिले के अलग अलग गाँवा का ठेका दूसरे को दे देते हैं और वह व्यक्ति भी अपन इजारे के क्षेत्र को दूसरा म बाट सकता है। इन सभी लोगा क मुनाफे, राजस्व वसूली का खर्चा, सुरक्षाकर्मियो का खर्चा आदि का सारा बोझ गरीब किसान

को ही उठाना पडता है । यदि उ ह यह मालूम भी हो जाय कि वसूली का अं तिम वि दु पार कर लिया गया है तो भी वे और अधिक वसूली के अपन प्रयास म शिथिलता नही आने देत । यदि कोई किसान दस बीस हजार रुपये देकर दूसरे किसान की भूमि पर अधिकार कर लता तो बेचारा बेदखल किसान सब जगह फरियाद करता फिरता और कोतवाली के चबूतरे पर अव्यवस्था फलान के आरोप म उसकी पिटाई अलग से हो जाती थी । ये इजारदार लोग कागजो म हेराफेरी के लिये काफी बदनाम थे और सरकारी अधिकारियो के साठ गाठ होने से किसानो पर इसी प्रकार के अत्याचार करते रहते थे । प्रत्यक जिले मे एक ही खेत के लिये दो दो तीन तीन दावेदार चक्कर लगात रहत । किसन कितना अग्रिम रुपया दिया है इस बात का भी ध्यान नही रखा जाता । ऐसी स्थिति थी इस राज्य की । इसके अलावा दण्ड तथा बगार के नाम पर उनसे बलपूवक धन वसूल किया जाता था । लुटेरो क हाथो परेशान होना भी उनके भाग्य मे लिखा था ।

माल गुजारी—इन राज्यो की मालगुजारी का सही हिसाब लगाना हमेशा एक कठिन काम रहा है क्योकि उसम हमेशा घटत बढत होती रहती है । यह बात जरूर है कि इस सम्ब ध म अनेक प्रकार की सामग्री हमको मिलती है जिसम प्रत्येक जिल की पुरानी और मौजूदा मालगुजारी तथा अ य करो से होन वाली आमदनी का उल्लेख मिलता है । ढूँढाड राज्य की सभी स्रोतो से लगभग एक करोड रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी । पर तु बाद म मराठो और माचेडी के नरूका साम त ने इस राज्य के सोलह समृद्ध जिलो पर अधिकार कर लिया जिससे उसकी आमदनी मे भारी कमी आ गई । राज्य के अधिकार से निकलन वाले इलाको का ब्यौरा इस प्रकार है—

1 कामा, खारी और पहाडी—जनरल परन न अपन स्वामी सिन्धिया के नाम पर इन तीनो इलाको पर अधिकार कर लिया था । बाद मे जाटो न सिंधिया से ये क्षेत्र पट्टे पर ले लिय और उ होन इन पर अपना कब्जा कायम रखा ।

2 का ती, उकरोद पु दापुन माधी का थाना, रामपुरा गौनराई रानी पुरबनी और मौजपुर हरसाना—इन नौ इलाको पर माचेडी के राव न अपना अधिकार कर लिया था ।

3 कानौड (कानोद) तथा नारनोल—डी बाइन न इन दोनो इलाको पर अधिकार कर लिया तथा बाद म लाड लक की स्वीकृति से इन इलाको को मुतजाखा को दे दिया ।

4 कोटपूतली—इस पर मराठो न अधिकार कर रखा था । 1803 4 के युद्ध के दौरान लाड लक न मराठो से यह इलाका लकर खेतडी क अभयसिंह को द दिया ।

5 टोंक और रामपुरा—राजा माधोसिंह ने लार्ड हेस्टिंग्स के द्वारा अमीर खां की प्रधानता में होल्कर को दिये थे।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखने की बात है कि उपर्युक्त लगभग सभी इलाके थोड़े समय के लिये ही आमेर राज्य के अंग रहे थे और उनमें से ज्यादातर मुगल साम्राज्य के अंग थे और यहां के राजाओं को शाही सेवा के मनसबदारों के रूप में जायदाद के रूप में प्रदान किये गये थे। लगभग पचास वर्ष पूर्व राजा पृथ्वीसिंह के समय में आमेर राज्य और उसके आश्रित सामन्तों की कुल आमदनी सत्तर लाख रुपये थी। राजा प्रतापसिंह के शासनकाल के अन्तिम वर्ष 1802 ई० में आमेर राज्य की आमदनी 79 लाख रुपये थी। यदि राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाया जाता तो यह आमदनी पर्याप्त थी। सन् 1802-3 में राजा जगतसिंह के समय में आमेर राज्य की वार्षिक आमदनी का विस्तृत विवरण इस प्रकार था—

	रुपये
राजा के प्रबन्ध द्वारा अथवा कर युक्त भूमि से	= 20,55 000
देवरी ताल्लुका, अन्तपुर के व्यय के लिये	= 5 00 000
राज दरबार के नौकरों के लिये होने वाले व्यय	= 3,00 000
मन्त्रियों और दीवानी के अधिकारियों के लिये	= 2 00 000
सिलेहपोष अथवा अंगरक्षकों की जागीरों से	= 1,50 000
दस पैदल और सवार सैनिकों के लिये जागीरों से	= 7,14,000
खालसा भूमि से कुल आय	= 39 19,000
जयपुर के सामन्तों की जागीरों की आय	= 17,00 000
ब्राह्मणों को दी गई भूमि की आय	= 16,00 000
दान और मापा—कृषि कर और वाणिज्य कर से	= 1,90 000
राजधानी की कचहरी नगर चुंगी आदि से होने वाली आय	= 2,15 000
टकसाल से होने वाली आय	= 60 000
हुण्डी भाड़ा इत्यादि से होने वाली आय	= 60 000
फौजदारी अदालतों के जुर्माने से होने वाली आय	= 12,000
,, ,, ,, (जयपुर नगर)	= 8 000
कचहरी के साधारण जुर्मानों से होने वाली आय	= 16 000
कृषि मंडी से आय	= 3 000
कुल योग	= 77,83 000

सामन्तो से वार्षिक कर के रूप मे		4 00 000
शेखावाटी से	= 3,50,000	
राजावत और दूसरे सामन्तो से	= 30 000	
हाडौती के साम ता से	= 20 000	
	4 00 00	81 83 000

यदि उपरोक्त तालिका सही है तो जगतसिंह के सिंहासन पर बैठने के समय आमेर राज्य की कुल आमदनी अस्सी लाख रुपये वार्षिक से थोडी ज्यादा ही थी और इसकी आधी आय खालसा अर्थात् राजा की थी। यह आमदनी रजवाडे के किसी भी अन्य राजा की आमदनी से दुगनी थी। जब ब्रिटिश सरकार के साथ इस राज्य की सन्धि हुई तब वार्षिक कर निर्धारण के इसी आमदनी—चालीस लाख रुपये का आधार मानकर राज्य से आठ लाख रुपया वार्षिक कर लेने का निश्चय किया गया था। उस समय यह भी निश्चय किया गया था कि राज्य की मौजूदा आमदनी म जितनी वृद्धि होगी उस आय के सोलह भाग मे से पाच भाग ब्रिटिश सरकार को आठ लाख रुपये के अलावा देने होगे। इस सम्ब ध म यह भी ध्यान देने योग्य है कि आमेर के राजाओ ने ब्राह्मणो के लिए जितनी भूमि छोड रखी है उसकी आय से चार हजार कछवाहा सैनिको का वेतन चुकाया जा सकता था। यदि उ होने बुद्धिमानी से धन का उपयोग किया होता तो मराठो को सरलता से परास्त कर सकते थे।

विदेशी सेना—1803 ई० मे आमेर राज्य की आमदनी का जब नक्शा तयार किया गया था, उस समय मे राजा ने अपनी सहायता के लिए तेरह हजार सनिको की एक विदेशी सेना रख रखी थी। इस सेना म ब दूको के साथ दस कम्पनी पदल सेना चार हजार नागा सनिक, एक प्रहरी सनिको का दल और सात सौ अश्वारोही सनिक थे। इस विदेशी सेना के अलावा साम तो की ओर से चार हजार अश्वारोहियो की एक सेना भी राजकीय सेवा के लिए सदा तयार रहता थी और आवश्यकता पडने पर बीस हजार कछवाहा सनिक युद्धक्षेत्र मे पहुँच सकते थे।

साम त—आमेर क राजा पृथ्वीराज ने अपने बारह पुत्रो को अपने राज्य के बारह भाग (कोटडी) देकर राज्य के सामन्त बना दिये। उन्ह कोटडी बध कहा जाता है। उनका विस्तृत ब्यौरा इस प्रकार है—

पुत्रो के नाम	वश का नाम	जागीर	वतमान सरदार	आमदनी	सनिक
1 चतुभु ज	चतुभु जोत	बगरू	बाघसिंह	18,000	28
2 कल्याण	कल्याणोत	लाटवाडा	गगासिंह	25 000	47

3 नाथू	नाथावत	चौमू	किशनसिंह	1 15,000	205
4 बलभद्र	बलभद्रात	अचरोल	कायमसिंह	28,850	57
5 जगमल और उसका पुत्र खगर	खगरोत	टोडरी	पृथ्वीसिंह	25,000	40
6 सुलतान	सुलतानोत	चादसर			
7 पचायन	पचायनोत	सम्भूयो	सूलीसिंह	17 700	32
8 गोगा	गोगावत	दूनी	राव चादसिंह	70,000	88
9 कायम	खुमवानी	भासखो	पद्मसिंह	21,535	31
10 कुम्भो	कुम्भावत	भाहर	रावत स्वरूपसिंह	27 538	45
11 सूरत	शिववरन	नी दर	रावत हरिसिंह	10 000	19
12 बनवीर	बनवीरपोता	बाटको	स्वरूपसिंह	29,000	34

इस सम्ब ध मे एक विशेष बात यह देखने मे आती है कि आमर के इन प्रमुख साम तो—दो के अलावा, अ य सभी की जागीरे मवाड के प्रथम श्रणी के साम० सरदारो अथवा मारवाड के आठ प्रधान सरदारो की तुलना म काफा कम है। आगे दी गई तालिका से यह पता चलता है कि इनमे से कुछ साम ता क अधीनस्थ सरदारो की जागीरें उनके वश के नेता की तुलना म काफी अधिक है। उदाहरण के लिय, नाथावत वश के नेता सामोद के वरीसाल की जागीर की आय चालीस हजार है, जबकि उसी वश के चौमू के सरदार किशनसिंह की आय एक लाख से भी ऊपर की है। इसी प्रकार की भिन्नता अ य वशो के सरदारा की जागीरो म भा देखन का मिलती है। इसका कारण राजा की कृपा व्यक्तिगत शूरवीरता और लडाकू प्रवृत्ति के कारण जागीरा का घटना बढना है। पर तु धन सम्पत्ति अथवा जागीर का विस्तार चाहे जितना हो राज दरबार तथा सामाजिक जीवन मे उस वश के नेता को ग सम्मान दिया जाता था।

अब हम आमेर राज्य क सम्पूर्ण साम तो का ब्यौरा प्रस्तुत करंगे जिसक अ तगत उनके अधीन सरदारो की सख्या, उनकी वार्षिक आमदनी और राज्य का सेवा के लिय जान वाले सनिका की औसत सख्या का उल्लख भी किया गया है—

वश का नाम	अधीन सरदार	कुल आमदनी	अश्वारोही सनिक
1 चतुर्भु जोत	6	53,800	92
2 कल्याणात	19	2,45,196	422
3 नाथावत	10	2,20,800	371
4 बलभद्रात	2	1,30,850	157
5 खागरोत	22	4,02,806	643
6 सुलतानात	—	—	—

7 पचायनोत	3	24,700	45
8 गोगावत	13	1 67,900	273
9 कुम्भानी	2	23 787	35
10 कुम्भावत	6	40 738	68
11 शिवजरनपोता	3	49 500	73
12 बनवीरपोता	3	26 575	48
13 राजावत	16	1 98,137	392
14 नरूका	6	91,069	92
15 बाकावत	4	34 600	53
16 पूरणमलोत	1	10,000	19
17 भाटी	4	1,04 039	205
18 चौहान	4	30,500	61
19 वडगूजर	6	32 000	58
20 चन्दावत	1	14 000	21
21 सीकरवार	2	4 500	8
22 गूजर	3	15 300	30
23 रागड	6	2 91 105	549
24 खेतडी	4	1 20 000	281
25 ब्राह्मण	12	3,12 000	606
26 मुसलमान	9	1,41 400	274

उपयु क्त तालिका म क्रम सख्या एक से बारह तक आमेर के प्रधान साम त हैं। तरह से सोलह तक कछवाहा वश के साम त है पर तु उनकी गिनती प्रमुख बारह साम तो म नहीं की जाती है। बाकी के साम त अलग अलग वशो तथा बाहर के अलग अलग राज्यो से आये हुय हैं। साम तो द्वारा राज सेवा के लिये दिये जाने वाले सनिको की सख्या समय समय पर परिवर्तित हाती रही है। वस इस राज्य म यह नियम है कि प्रत्यक साम त को पाच सौ रुपये वार्षिक आय पर एक घुडसवार के हिसाब से सनिक देगा।

अब हम इस राज्य के कुछ प्रसिद्ध और प्राचीन नगरो का सक्षिप्त विवरण देकर इस राज्य के इतिहास को समाप्त करेग। अनुसधान करने स इन नगरा की प्राचीनता के बार मे बहुत सी बातो की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मोरा—देवनशाह के पूव की ओर अठारह मील की दूरी पर है। इसकी स्थापना चौहानवशी राजा मोरध्वज ने की।

आभानेर—लालसोट से छ मील पूव की तरफ है। यह नगर बहुत पुराना है और किसी समय म एक चौहान राजा की राजधानी थी।

भानगढ़—थालाई से दस मील की दूरी पर है। यह नगर और इसका प्रसिद्ध दुर्ग—दोनों ही नष्ट हो चुके हैं। इसकी प्रतिष्ठा कछवाहा के पहले के ढगाह राजाओं ने की थी।

अमरगढ—खुशालगढ से छ मील की दूरी पर है। इसकी स्थापना नागवंशी राजाओं ने की थी।

वीरात—वीरात अथवा विराट माचेडी के अन्तर्गत बूस से छ मील की दूरी पर है। जनश्रुति के अनुसार इसे पाण्डवों ने बसाया था।

पाटन और गनीपुर—दोनों नगरों की स्थापना दिल्ली के तोमर राजाओं ने की थी।

खुरार अथवा खण्डार—यह स्थान रणथम्भौर के निकट है।

ओटगिर—यह चम्बल के किनारे पर है।

आमेर, अम्बर अथवा अम्बिकेश्वर (शिव की उपाधि)—तीनों नामों से प्रसिद्ध रहा है और प्राचीन नगर के मध्य में एक प्राचीन मंदिर है, उसमें एक कुण्ड है और कुण्ड के बीच में शिवलिंग की प्रतिमा है। कुण्ड के जल में मूर्ति का आधा हिस्सा डूबा रहता है। सर्वसाधारण में इस प्रकार का विश्वास है कि जिस दिन सम्पूर्ण मूर्ति जल में डूब जायगी उस दिन आमेर राज्य का भी पतन हो जायगा। इस मंदिर में कुछ शिलालेख भी उत्कीर्ण हैं।

बून्दी का इतिहास

अध्याय 65

प्रारम्भ से राव देवा तक का इतिहास

हाडाओ का देश 'हाडावाटी अथवा 'हाडौती मे दो राज्य है। एक बू दी और दूसरा कोटा। पहले दोनो को मिलाकर एक ही राज्य था। लगभग तीन सौ वष पूव हाडाओ की कनिष्ठ शाखा न मूल शाखा से पृथक होकर कोटा राज्य की स्थापना की थी। चम्बल नदी दोनो राज्यो को विभाजित करती है।

चौहाना की चौबीस शाखाओ मे हाडा शाखा सबस अधिक महत्वपूण है। अजमेर के राजा माणिकराय का लडका अनुराज हाडा शाखा का आदिपुरुष माना जाता है। माणिकराय ने सबस पहल सवत् 741 (685 इ) मे मुस्लिम शस्त्रो का प्रथम प्रहार सहा था।

भारत के प्रसिद्ध छत्तीस राजवशो म स एक चौहान राजवश का हम पहले विवरण दे आये है। फिर भी, इस अध्याय म हम उनक उदय का और अधिक विस्तार मे विवरण करेंगे। उनका प्रारम्भिक इतिहास सुस्पष्ट नही है और कवि च द ने उनका जो विवरण दिया है वह भी अधिक स्पष्ट नही है, फिर भी हम उसका आश्रय लेने को बाध्य है। क्षत्रिय राजाओ से अप्रसन्न होन पर परशुराम ने इक्कीस बार भयानक रूप से क्षत्रियो का सहार किया था। उस समय कुछ क्षत्रियो ने अपन आपको कवि कह कर तथा कुछ न स्त्रियो का रूप धारण कर अपने प्राण बचाय थ। क्षत्रियो का सहार कर परशुराम न इस दश का शासन ब्राह्मणो को सौप दिया। नवदा नदी के किनारे माहेश्वर राज्य के राजा हैहयवशी सहस्त्राजु न न परशुराम के पिता को मारकर क्षत्रिया के प्रति उस सघष को प्रस्तुत किया था।

पर तु ब्राह्मणो को शासन का अनुभव न था। उन्हे तो श्राप अथवा आशीर्वाद देना ही आता था। अत शीघ्र ही चारो तरफ अन्यवस्था फल गई। देश म अनान और अधविश्वास बढन लगा। धार्मिक ग्र थ परो से कुचले जान लग और अन्याय तथा अत्याचार से बचान वाला कोई न था। इस प्रकार की स्थिति म दिव्य अस्त्र-

शस्त्रो के ज्ञाता महर्षि विश्वामित्र न क्षत्रियो के पुनरुद्धार का निश्चय किया। उसने एक यज्ञ का अनुष्ठान करन का विचार किया और इसके लिये उसन आबू शिखर को चुना। उन दिनो उस शिखर पर ऋषि मुनियो का निवास था और व तप तथा साधना के द्वारा धम का चि तन किया करत थे। जब उ हे विश्वामित्र की योजना का पता चला तो वे सभी लाग उसे सहयोग दन को तयार हो गये। उन सभी को भगवान का दशन हुआ और भगवान ने उ हे क्षत्रियो की सृष्टि करने की आज्ञा प्रदान की तथा उनकी सहायता के लिय इन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु तथा अ य देवी देवताओ को भिजवा दिया। यज्ञ का काय प्रारम्भ किया गया। पहल यज्ञ सम्ब धी अन्य आवश्यक काय सम्पन्न किये गये। फिर सभी ने इन्द्र से प्रायना की कि सृष्टि का काय सवप्रथम वही प्रारम्भ कर। इन्द्र ने हरी दूब से एक पुतला बनाया, उस पर जल का छीटा दिया और उसे जलते हुय यज्ञकुण्ड मे डाल दिया। इसके साथ ही सजीवन म त्र का पाठ किया गया। उस पाठ के समाप्त होते होते दाहिनी हाथ म गदा लिये हुये मार मार की आवाज करता हुआ एक वीर पुरुष बाहर निकला। उसके मुख से निकलन वाले शब्दो के आधार पर उसका नाम परमार रखा गया। देवताओ ने उसको शासन करने के लिये आबू धार और उज्जन दिये।

इसके बाद ब्रह्मा स अपन ही अश से एक क्षत्रिय को उत्पन करने की प्रार्थना की गई। ब्रह्मा ने पद्मासन लगाकर दूब का एक पुतला अग्निकुण्ड म डाला। उसके साथ ही यज्ञ-कुण्ड से एक वीर पुरुष का आविर्भाव हुआ। उसके एक हाथ म तलवार और दूसरे हाथ मे वेद ग्र थ था। उसका नाम चालुक अथवा सोलकी रखा गया। उसे शासन करने के लिये अनहलपट्टन दिया गया।

तीसरे पुरुष की सृष्टि रुद्र ने की। दूब के पुतले पर गगाजल छिड़का गया और मन्त्रो का पाठ हुआ और उसी के साथ यज्ञ कुण्ड से धनुष बाण हाथ म लिये कृष्णवर्ण का एक वीर पुरुष प्रकट हुआ। असुरो के साथ उसको युद्ध करने के लिये प्रस्तुत न देखकर उसका नाम परिहार रखा गया और उसको द्वार की सुरक्षा का दायित्व सौपा गया। उसको शासन के लिये मरूभूमि के नौ स्थान दिये गये।

चौथे का निर्माण विष्णु ने किया। यज्ञकुण्ड स उसी के समान चार भुजाओ वाली आकृति निकली। उसके चारो हाथो म अस्त्र शस्त्र थ। चार भुजाओ के कारण उसका नाम चतुभु ज चौहान रखा गया। उसे मेहकावती नगर का शासन सौंपा गया। इस समय जो स्थान गढा मडला के नाम से प्रसिद्ध है द्वापर युग म मेहकावती के नाम से प्रसिद्ध था।

दत्य लोग इस अनुष्ठान को देख रहे थे और उनके दो नेता अग्नि कुण्ड के काफी समीप खडे थे। यज्ञ का काय समाप्त होत ही यज्ञ स उत्पन्न शूरवीरो को असुरो और दत्यो के विरुद्ध भेज दिया गया और एक भयानक सघष शुरू हो गया।

जिस तेजी के साथ दत्यो का रुधिर बहा उतनी ही शीघ्रता से नवीन दत्य पदा होकर युद्ध करने लगे। इससे युद्ध के समाप्त होने के ग्रासार नही दिखाई देने लग। ऐसी स्थिति म चारा क्षत्रियो की कुल देवियो ने युद्धभूमि म प्रवेश किया और घायल हाकर पृथ्वी पर गिरने वाले असुरा का रक्तपान शुरू किया। इसस नवीन दत्या और असुरो का उत्पन्न हाना ब द हो गया। इन चारो कुलदेवियो के नाम इस प्रकार थे— चौहान की कुलदेवी—आशापूर्णा परिहार की गाजन माता, सोलकी की क्यू ज माता और परमार की सचायर माता।

असुरो और दत्यो का अ त होते ही जयध्वनि आकाश का स्पश करन लगी और स्वग से फूलो की वर्षा की गयी। अपने अपने वाहनो पर सवार होकर देवतागण अग्निकुण्ड स्थल पर आये और विजयी क्षत्रियो को उनकी सफलता के लिये बधाई दी।

चौहानो के महान् कवि च द ने लिखा है कि क्षत्रियो के छत्तीस राजवशा मे अग्निकुल वशी सबसे श्रेष्ठ हैं, अ य वशा की उत्पत्ति स्त्रिया के गभ स हुई। इनकी उत्पत्ति ब्राह्मणो मे हुई जो चौहाना के गौत्र आचाय थे। जसे कि सामवेद सोमवश, माध्यदिनी शाखा, वत्स गोत्र पच प्रवर जनेऊ च द्रभागा नदी, भगु निशान अम्बिका भवानी, बालनपुत्र, कालभरव आबू अचलेश्वर महादेव, चतुभु ज चौहान।

आबू पवत पर देवाताओ के एकत्र हाने, हि द की लडाकू जाति क्षत्रियो के पुन सृष्टि तथा उनका इस देश की भूमि पर फले आसुरी लोगो के विरुद्ध भेजने की तिथि हि दुआ के दूसरे युग (द्वापर) की बतलाई जाती है। इस प्रश्न पर हम किसी प्रकार का विवाद नही करेगे। उसकी आवश्यकता भी नही है। पर तु इस पर तो विचार किया ही जा सकता है कि वे वीर कौन थे जि हे ब्राह्मणवाद का युद्ध लडने के लिय उत्पन्न किया गया था। वे या ता आदिम निम्नवर्गीय लोग रहे होग जि हे प्रचलित धम के म त्रिया ने नतिक महत्व प्रदान किया, या विदेशी जातियो के लोग रहे हाग जि हान उनके मध्य अपने पर जमा लिये थे। दोनो की शारीरिक बनावट इस प्रश्न का आसानी के साथ निणय कर देगी। आदिम निवासियो की शारीरिक आकृति म श्री और सु दरता नही है और उनका रग काला है। य कुण्ड स निकलने वाला के वशज प्राचीन राजाओ के समान शक्तिशाली श्रीयुक्त और प्रभावशाली है। उनका रग खिलता हुआ है, जसेकि प्राचीन भारत के पार्थियन राजाओ का था। उनम वसा ही बल विक्रम तथा अ य गुण पाये जात हैं जसेकि पुरान समय के सीथियन लागो मे विद्यमान थे।

चार अग्निवशी जातिया म, सबमे पहल चौहानो ने अपन राज्य का विस्तार किया था। सम्पूण पृथ्वी की सत्ता सम्ब धी लोकोक्ति प्रचलित है पर तु चौहाना न जिस विस्तृत भूभाग पर शासन किया था उसकी जानकारी थोडी कठिनाइ मे ही

शस्त्रो के ज्ञाता महर्षि विश्वामित्र ने क्षत्रियो के पुनरुद्धार का निश्चय किया। उसने एक यज्ञ का अनुष्ठान करने का विचार किया और इसके लिये उसने आबू शिखर को चुना। उन दिनो उस शिखर पर ऋषि मुनियो का निवास था और वे तप तथा साधना के द्वारा धर्म का चिन्तन किया करते थे। जब उन्हे विश्वामित्र की योजना का पता चला तो वे सभी लोग उसे सहयोग देने को तयार हो गये। उन सभी को भगवान का दर्शन हुआ और भगवान ने उन्हे क्षत्रियो की सृष्टि करने की आज्ञा प्रदान की तथा उनकी सहायता के लिये इन्द्र, ब्रह्मा रुद्र, विष्णु तथा अन्य देवी देवताओ को भिजवा दिया। यज्ञ का काय प्रारम्भ किया गया। पहले यज्ञ सम्बन्धी अन्य आवश्यक काय सम्पन्न किये गये। फिर सभी ने इन्द्र से प्राथना की कि सृष्टि का काय सवप्रथम वही प्रारम्भ करे। इन्द्र ने हरी दूब से एक पुतला बनाया उस पर जल का छींटा दिया और उसे जलते हुये यज्ञकुण्ड मे डाल दिया। इसके साथ ही सजीवन मन्त्र का पाठ किया गया। उस पाठ के समाप्त होते होते दाहिनी हाथ मे गदा लिये हुये मार मार की आवाज करता हुआ एक वीर पुरुष बाहर निकला। उसके मुख से निकलने वाले शब्दो के आधार पर उसका नाम परमार रखा गया। देवताओ ने उसको शासन करने के लिये आबू, धार और उज्जैन दिये।

इसके बाद ब्रह्मा से अपने ही अंश से एक क्षत्रिय को उत्पन्न करने की प्राथना की गई। ब्रह्मा ने पद्मासन लगाकर दूब का एक पुतला अग्निकुण्ड मे डाला। उसके साथ ही यज्ञ-कुण्ड से एक वीर पुरुष का आविर्भाव हुआ। उसके एक हाथ मे तलवार और दूसरे हाथ मे वेद ग्रन्थ था। उसका नाम चालुक अथवा सोलकी रखा गया। उसे शासन करने के लिये अनहलपट्टन दिया गया।

तीसरे पुरुष की सृष्टि रुद्र ने की। दूब के पुतले पर गंगाजल छिड़का गया और मन्त्रो का पाठ हुआ और उसी के साथ यज्ञ कुण्ड से धनुष बाण हाथ मे लिये कृष्णवर्ण का एक वीर पुरुष प्रकट हुआ। असुरो के साथ उसको युद्ध करने के लिये प्रस्तुत न देखकर उसका नाम परिहार रखा गया और उसको द्वार की सुरक्षा का दायित्व सौपा गया। उसको शासन के लिये मरुभूमि के नौ स्थान दिये गये।

चौथे का निर्माण विष्णु ने किया। यज्ञकुण्ड से उसी के समान चार भुजाओ वाली आकृति निकली। उसके चारो हाथो मे अस्त्र शस्त्र थे। चार भुजाओ के कारण उसका नाम चतुर्भुज चौहान रखा गया। उसे मेहकावती नगर का शासन सौपा गया। इस समय जो स्थान गढा मडला के नाम से प्रसिद्ध है, द्वापर युग मे महकावती के नाम से प्रसिद्ध था।

दैत्य लोग इस अनुष्ठान को देख रहे थे और उनके दो नेता अग्नि कुण्ड के काफी समीप खडे थे। यज्ञ का काय समाप्त होते ही यज्ञ से उत्पन्न शूरवीरो को असुरो और दैत्यो के विरुद्ध भेज दिया गया और एक भयानक सघर्ष शुरू हो गया।

जिस तेजी के साथ दत्यो का रुधिर बहा उतनी ही शीघ्रता से नवीन दत्य पदा होकर युद्ध करने लगे। इससे युद्ध के समाप्त होने के ग्रासार नहीं दिखाई देने लगे। ऐसी स्थिति म चारा क्षत्रियो की कुल देवियो ने युद्धभूमि म प्रवेश किया ग्रौर घायल होकर पृथ्वी पर गिरन वाले ग्रसुरा का रक्तपान शुरू किया। इसस नवीन दत्यो ग्रौर ग्रसुरा का उत्पन्न हाना ब द हो गया। इन चारो कुलदेविया के नाम इस प्रकार थे—चौहान की कुलदेवी—ग्राशापूर्णा परिहार की गाजन माता, सोलकी की क्यू ज माता ग्रौर परमार की सचायर माता।

ग्रसुरो ग्रौर दत्यो का ग्र त होते ही जयध्वनि ग्राकाश का स्पश करने लगी ग्रौर स्वग से फूलो की वर्षा की गयी। ग्रपने-ग्रपने वाहना पर सवार होकर देवतागण ग्रग्निकुण्ड स्थल पर ग्राये ग्रौर विजयी क्षत्रियो को उनकी सफलता के लिये बधाई दी।

चौहानो के महान् कवि च द न लिखा है कि क्षत्रियो के छत्तीस राजवशो मे ग्रग्निकुल वशी सवस श्रेष्ठ हैं, ग्र य वशो की उत्पत्ति स्त्रिया के गभ से हुई। इनकी उत्पत्ति ब्राह्मणो से हुई जो चौहाना के गौत्र ग्राचाय थे। जसे कि सामवेद सामवश माध्यदिनी शाखा वत्स गोत्र पच प्रवर जनेऊ च द्रभागा नदी, भगु निशान ग्रम्बिका भवानी बालनपुत्र कालभरव ग्रावू ग्रचलेश्वर महादेव चतुभु ज चौहान।

ग्राबू पवत पर देवताग्रो के एकत्र होने, हि द की लडाकू जाति क्षत्रियो के पुन सृष्टि तथा उनका इस देश की भूमि पर फले ग्रासुरी लोगो के विरुद्ध भेजने की तिथि हि दुग्रो के दूसरे युग (द्वापर) की बतलाई जाती है। इस प्रश्न पर हम किसी प्रकार का विवाद नही करेंगे। उसकी ग्रावश्यकता भी नही है। पर तु इस पर ता विचार किया ही जा सकता है कि वे वीर कौन थे जि ह ब्राह्मणवाद का युद्ध लडने के लिये उत्पन्न किया गया था। वे या तो ग्रादिम निम्नवर्गीय लोग रहे होग जि ह प्रचलित धम के म त्रियो ने नतिक महत्व प्रदान किया या विदेशी जातिया के लोग रहे होगे जि होने उनके मध्य ग्रपने पर जमा लिये थे। दोना की शारीरिक बनावट इस प्रश्न का ग्रासानी के साथ निणय कर देगी। ग्रादिम निवासिया की शारीरिक ग्राकृति म श्री ग्रौर सु दरता नही है ग्रौर उनका रग काला है। यज्ञकुण्ड स निकलन वाला के वशज प्राचीन राजाग्रो के समान शक्तिशाली, श्रीयुक्त ग्रौर प्रभावशाली हैं। उनका रग खिलता हुग्रा है, जसेकि प्राचीन भारत के पार्थियन राजाग्रो का था। उनमे वसा ही वन विक्रम तथा ग्र य गुण पाये जाते हैं जसेकि पुरान समय के सीथियन लोगो म विद्यमान थे।

चार ग्रग्निवशी जातियो म, सबसे पहल चौहाना ने ग्रपने राज्य का विस्तार किया था। सम्पूण पृथ्वी की सत्ता सम्ब धी लाकोक्ति प्रचलित है, पर तु चौहाना न जिस विस्तृत भूभाग पर शासन किया था उसकी जानकारी थाडी कठिनाई से ही

प्राप्त की जा सकती है। जिस समय परमार अपनी उन्नति के चरम शिखर पर थे, चौहानो का गौरव सूय अस्त होने लगा था। यदि हम चौहाना के अन्तिम कवि के कथन को सत्य मानें ता विक्रम की आठवी सदी म तेलगाना के परमार चौहाना की अधीनता म थे यद्यपि पृथ्वीराज का नाम पराक्रम की एक ऐसी चमत्कारी रेखा है, जो अपने पूवजो यहाँ तक कि अग्निकुण्ड मे उत्पन्न चौहान के शौय को भी पीछे धकेल देती है।

चौहान वश के इतिहास के प्रारम्भिक पृष्ठो से पता चलता है कि उनका शासन किसी समय वडे विस्तार म फला हुआ था यद्यपि वह अधिक समय तक स्थायी नही रह पाया। नवदा नदी के किनारो से एक तरफ मैहकावती तक और दूसरी तरफ माहेश्वर तक अर्थात् दोनो किनारा के उत्तर और दक्षिण म चौहानो का राज्य फला हुआ था। अपन मुख्य केन्द्र मे आगे बढते हुय उन्होने माडू, असीर, गोलकुण्डा और काकण तक तथा उत्तर म गगा के किनारे तक अपना शासन स्थापित किया। कवि चन्द ने चौहाना के विस्तार का इस प्रकार से वणन किया है—सरकार की राजधानी (राजस्थान) से उनके आन की दुहाई बावन दुर्गों मे गूजती थी। चौहानो ने अपने बल विक्रम से यटठा लाहौर मुल्तान पशावर और भादरी की पहाडियो तक की भूमि को जीता। वहा के असुर लोग भाग खडे हुय। दिल्ली और काबुल ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और नेपाल का राज्य उन्होने राजा माल्हण[1] को सौपा था। इन सफलताओ के साथ वह अपनी राजधानी महकावती लौट आया।

यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि महकावती गढ मण्डला का पुराना नाम था जहाँ के राजाओ ने लम्बे समय तक पाल की उपाधि धारण कर रखी थी। जनश्रुति के अनुसार किसी समय मे पशुपालन का काम करने से उनको यह उपाधि मिली थी। अहीर वश के लोगो ने किसी समय म सम्पूण मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था। यह अहीर शब्द पाल से बहुत कुछ सम्बध रखता है और अहीर जाति उसी वश की एक शाखा प्रतीत होती है। पाल अथवा पालियो का जिन नगरो पर अधिकार था उनम भेलसा भोजपुर, दाप, भूपाल ऐरन और गमपुर आदि मुख्य थ।

महकावती के एक राजवशज जिसका नाम अजयपाल था, न अजमेर की प्रतिष्ठा की और वहा पर तारागढ का एक सुदृढ दुग बनवाया।[2] अजयपाल का नाम प्राचीन भारत के राजाओ मे आज तक प्रसिद्ध है। उसे चक्रवर्ती राजा कहा गया है। पर तु उसके शासन के समय के बार म सदेह है। उसके लिय पत्थरो और ताम्रपत्रो पर पालि भाषा म उत्कीण लखो के अनुसधान की आवश्यकता है। हम इस बात की जानकारी नही मिलती कि पृथ्वी पहाड किस कारण से महकावती से अजमेर आया था। एक सभावित कारण यह प्रतीत होता है कि राजा के पुत्रहीन होन की अवस्था मे वह अजमेर लाया गया था। उसके चौबीस पुत्र हुये। य सभी एक स्त्री स उत्पन्न हुये थे क्योकि उन दिनो म बहुविवाह प्रथा का प्रचलन न था। उन चौबीस

म से एक था माणिकराय जो संवत् 741 (685 ई) म अजमर और साभर का राजा था।

माणिकराय के समय स चौहाना का इतिहास अधकार स मुक्त हो जाता है और यद्यपि कवि हम विस्तृत जानकारी नहीं दे पाता फिर भी उनके इतिहास की एक स्पष्ट रूपरेखा निर्मित की जा सकती है। यही वह समय था (685 ई) जबकि राजपूताना म पहली बार मुसलमाना न प्रवेश किया। उस समय दुलभ अथवा दूलेराय अजमर का राजा था। असुरा (मुसलमाना) क साथ युद्ध मे उसकी मृत्यु हो गई। उसका एकमात्र सात वर्षीय पुत्र लाठ जो कि दुग क कगूरा पर खेल रहा था शत्रु क एक तीर से मारा गया। मुसलमाना का यह आक्रमण सिंध की तरफ से हुआ था और उसका कारण यह बताया जाता है कि दुलभराय न रोशनअली[3] नामक एक इस्लाम धम प्रचारक का अगूठा कटवा दिया था। इस दुघटना क बाद वह मक्का चला गया और वहा जाकर उसन मूर्तिपूजक राजपूता क अन्याय तथा अत्याचार का वृत्ता त सुनाया। उसस उत्तेजित होकर मुसलमाना न आक्रमण किया और दुलभराय तथा उसके लडके का मारकर गढ बीटली पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध का यह वणन कहा तक सही है, इस बारे म कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सम्ब ध म एक दूसरा वृत्ता त भी मिलता है। उससे पता चलता है कि उ ही दिना म खलीफा उमर न मुसलमानो की एक सेना सि ध म भेजी थी जिसका सेनापति अबुलयास था। प्राचीन राजधानी आलार पर अधिकार करन के प्रयास म वह मारा गया। इसका बदला लेन के लिये मुसलमानो की उत्तेजित सेना न मरूभूमि म जाकर राजपूता पर आक्रमण किया।

युद्ध का कोई भी कारण रहा हो जिसकी वजह से दुलभराय मारा गया और अजमेर पर मुसलमानो का अधिकार हा गया, चौहानो के लिये इस घटना का अत्यधिक महत्व है। वे इस घटना को कभी भी विस्मृत न कर पाये और उसकी याद म वे लोग अब तक दुलभराय क पुत्र लाठ की पूजा करत हैं। कवि च द के अनुसार लोठदेव जेठ मास की बारहवी तिथि सोमवार के दिन स्वग सिधारा था।

लाठ का चाचा माणिकराय, अजमर पर मुसलमाना का अधिकार हो जान पर साभर चला गया। इस सम्ब ध म जा दोहा बनाया गया उसका समय भी वि मवत् 741 है। सकट के इस समय म माणिकराय के उद्धार के लिय कवि न दिव्य चमत्कार का सहारा लिया है। कवि के अनुसार शाकम्भरी देवी ने उसको दशन दिय। उसने माणिकराय से कहा "तुम इस स्थान पर अपना राज्य कायम करो और अपने घोडे पर सवार होकर तुम जितनी दूर जा सकोग उतनी दूर तक तुम्हारे राज्य की सीमा का विस्तार होगा। लेकिन इस बात का ध्यान रखना कि जब तक तुम लौट कर इस स्थान पर न आओ, वापस मुड कर इस तरफ न देखना। उसन घोडे पर सवार होकर उतनी दूरी तक का चक्कर लगान का विचार किया, जहा तक घोडा

चल सकता था। परन्तु वह देवी के निदेश को भूल गया और पीछे मुड़ कर देखा। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। जहां तक उसकी दृष्टि गई सम्पूर्ण भूमि श्वेत चद्दर से ढकी हुई दिखाई दी।[4] राजस्थान की प्रसिद्ध नमक की झील की उत्पत्ति का यही कारण बताया जाता है। माणिकराय ने देवी के नाम पर उस झील का नाम शाकम्भरी रखा और झील के समीप देवी का एक मन्दिर बनवा कर उसकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की। यह प्रतिमा आज भी विद्यमान है। समय के साथ साथ शाकम्भरी का नाम बिगड़ कर साभर हो गया। यह जनश्रुति कहां तक सही है यह कहना आसान नहीं, परन्तु इसमें उनके निवास स्थान की सही जानकारी मिल जाती है और इस निवास स्थान को जो महत्व दिया गया उसका पता यहां के राजाओं द्वारा 'साभरी राव" की उपाधि धारण करने से चलता है। माणिकराय के वंशज पृथ्वीराज ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत का स्वामी बनने के बाद भी इस उपाधि को नहीं त्यागा था।

माणिकराय जिसे हम उत्तरी भारत में चौहानों की सत्ता का संस्थापक मान सकते हैं ने अजमेर पर पुनः अधिकार कर लिया। उसके कई सतानें हुई जिनके वंशजों ने सम्पूर्ण पश्चिमी राजपूताना में बहुत सी शाखाओं को जन्म दिया जो सिंधु के उस पार भी फैल गई। खीची हाडा, मोहिल, नरभान (निरवाण), भदौरिया भूरेचा धनेरिया[5] और बाग्डेचा आदि समस्त शाखायें माणिकराय के वंशजों से ही उत्पन्न हुई हैं। खीचो शाखा के लोगों ने दूरवर्ती दोआव, जो सिंध सागर के नाम से विख्यात है में जाकर रहना शुरू किया। उनकी अधिकृत भूमि का विस्तार बेतवा नदी से लेकर सिंध नदी तक 136 मील तक था। उनकी राजधानी का नाम खीचीपुर पाटन था। हाडाओं ने हरियाणा प्रदेश में असी अथवा हासी को जीता अथवा बसाया और वहीं पर रहना शुरू किया। वहां से उनकी एक शाखा गोवाल कुण्ड जो हैदराबाद के अन्तर्गत गोलकुण्डा के नाम से प्रसिद्ध है पहुंच गई और जब वहां से निकाल दिये गये तो उन्होंने असीर नामक स्थान को पुनः प्राप्त कर लिया। मोहिल लोगों ने नागौर के आस पास के सभी इलाकों को अपने अधिकार में कर लिया। भदौरिया लोगों ने चम्बल नदी के किनारे विस्तृत भूमि पर अधिकार कर लिया। वह भूमि उस शाखा के नाम से भदावर के नाम से प्रसिद्ध है और अभी तक उन्हीं के अधिकार में है। धनेरिया (धुनेरिया) लोग शाहबाद में जाकर बसे परन्तु कुछ दिनों बाद खीचों ने इस स्थान को अधिकृत कर लिया। तब उनकी एक शाखा के लोगों ने नारोल में जाकर रहना शुरू किया। परन्तु उन्होंने अपने मूलवंश चौहान का नाम कभी नहीं त्यागा।

माणिकराय के बहुत से वंशजों ने मरुभूमि के बहुत से स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया। उनमें से कुछ ने स्वतन्त्रतापूर्वक शासन किया और कुछ ने अपने स्वजातीय राजाओं की अधीनता में रहकर शासन किया। जागा नामक ग्रन्थ में माणिकराय से लेकर बीसलदेव तक ग्यारह राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है। उनमें से एक हृपराज की शूरवीरता तथा पराक्रम का उल्लेख जागा तथा हमीर रासो

नामक ग्र थ म किया गया है । हपराज की सत्ता अरावली पवत के शिखर से लकर आबू तक और चम्बल के पूर्वी क्षेत्र तक फैली हुई थी । उसन सवत् 812 स 827 (138 से 153 हिजरी) तक शासन किया और असुरो के साथ युद्ध करत हुये वीरगति प्राप्त की । फरिश्ता ने लिखा है कि हिजरी 143 म मुसलमाना की सख्या काफी बढ गई और उ हाने पहाडो से निकल कर किरमान पेशावर और दूसर अनक स्थानो पर अधिकार कर लिया । उन दिना लाहौर मे अजमेर राजवश का एक सम्ब धी शासन करता था । उसन इन अफगाना के विरुद्ध अपन भाई को भेजा । काबुल के खिलजी और गोरी जाति के लोगो न उसके नेतृत्व म अफगानो से युद्ध किया । लेकिन परास्त होकर उन लोगा न इस्लाम धम अपना लिया । पाच महीने के निर तर सघप के बाद राजपूत भी परास्त होकर भाग गये लकिन शीत ऋतु क जान के बाद राजपूत नयी सना के साथ पुन युद्ध करन का आ पहुचे और पशावर के मध्यवर्ती स्थाना तक जा पहुचे । किरमान और पशावर क मध्यवर्ती क्षेत्र म दोनो के म य लम्बे समय तक युद्ध लडा जाता रहा जिसमे कभी राजपूत मुसलमानो को पीछे खदड देते और कभी नयी सेना के आने पर मुसलमान काफिरा को पीछे हटा दते ।

अजमेर का राजा स्वय इन दूरवर्ती युद्धा मे सम्मिलित हुआ अथवा नही इसका उल्लेख यहा के ग्र थो मे नही मिलता । हमीर रासो से पता चलता है कि हपराज के बाद दुजगनदेव सिंहासन पर बैठा था । उसके राज्य की अ तिम चौकी भटनर थी। उसने नासिरुद्दीन को परास्त किया और उसके बारह सौ घोडे छीन लिये । उसन "सुल्तानगरा" (बादशाह को पकडन वाला) की उपाधि धारण की । 'नासिरुद्दीन" सुबुक्तगीन की उपाधि थी । वह विख्यात महमूद गजनवी का पिता था । सुबुक्तगीन ने अपने राजा अलपतगीन के शासन के दौरान प द्रह वर्षा तक भारत पर निर तर आक्रमण किया था ।

इसके बाद क शासका के समय म मुसलमानो के साथ छुटपुट युद्धो के अलावा अ य कोई विशप घटना नही हुई । अत हम बीसलदेव की तरफ आत हैं । हाडाओ की वशावली क अनुसार बीसलदेव क पिता का नाम धमगज था । लेकिन जागा ग्र थ म दी गई वशावली म वलनदेव लिखा मिलता है । अनुसधान करन पर पता चला कि उसका नाम वलदव था । चू कि वह धर्मात्मा व्यक्ति था अत उस धमगज की उपाधि मिली । दिल्ली के विजयस्तम्भ पर पढन लायक जा लग रह गया है उसम भी इस बात की पुष्टि हाती है । सुल्तान महमूद के अतिम आक्रमण क समय वह सिंहासन पर था । उसन महमूद स युद्ध किया और उस परास्त करक अजमर स भगा दिया । पर तु वह स्वय भी उस युद्ध म मारा गया । इससे पहल कि हम बीसलदव क बार म कुछ लिखें एक चौहान वीर क बार म कुछ लिखना आवश्यक है जिसन अपन पराक्रम से अपना समस्त जाति का नाम रोशन कर दिया था ।

गोगा चौहान वच्छराज का पुत्र था । वच्छराज का नाम भी कम प्रसिद्ध न था । उसन बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी और सतलज स हरियाणा तक समस्त विस्तृत

जागल भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था। सतलज नदी के किनारे महलावा नामक स्थान जिसे 'गागा की मैड़ी" भी कहते हैं उसकी राजधानी थी। महमूद के आक्रमण से अपनी राजधानी को बचाने के लिए उसने घमासान युद्ध किया और अपने पैंतालीस लड़कों तथा साठ भतीजों के साथ युद्ध में वीरगति प्राप्त की। भादों के नौवें दिन रविवार को उसकी मृत्यु हो गई थी। यह दिन सम्पूर्ण राजस्थान में इनके कुलों द्वारा पवित्र माना जाता है। मरुस्थल का एक हिस्सा आज भी 'गागा का थल' के नाम से प्रसिद्ध है। उसके घोड़े "जवादिया" का नाम भी अमर हो गया है और अधिकांश राजपूत गांव के गांव अपने घोड़ों का नाम जवादिया रखते हैं।

संभवतः यह महमूद का अंतिम आक्रमण था जबकि उसने मुल्तान से मरुस्थल होकर सीधे प्रवेश किया था। उसने अजमेर पर आक्रमण किया। वहाँ का चौहान राजा नगर छोड़कर भाग गया और आक्रमणकारियों ने आसपास के समूचे क्षेत्र को लूटकर नष्ट कर दिया। गढ़ बीटली दुर्ग ने सफलतापूर्वक अपनी रक्षा की और महमूद को न केवल विफलता ही हाथ लगी अपितु वह घायल भी हो गया और उसे नाडोल होते हुए वापस लौटना पड़ा। उसने चौहानों के इस दूसरे राज्य को बुरी तरह से बर्बाद किया और नहरवाला पहुंचा जिसे उसने जीत लिया। उसके अत्याचारों ने उसके विरुद्ध एक नवीन गठबंधन को जन्म दिया और उसे पश्चिमी मरुस्थल से सिन्ध जाने को विवश कर दिया। वापसी के दौरान उसकी सेना को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

बीसलदेव की गतिविधियाँ कवि चन्द के एक अन्य ग्रन्थ का मूल विषय है। कवि चन्द ने रासा में बीसलदेव के शासन का समय संवत् 865 लिखा है जो कि सही प्रतीत नहीं होता। अन्य कवियों की भांति चन्द कवि की तिथियों को भी अन्य साक्ष्यों से मिलाये बिना प्रामाणिक नहीं मानना चाहिये। मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध हिन्दूधर्म के पक्षधर बीसलदेव के नेतृत्व में जाने वाले शूरवीरों का चन्द ने अति शयोक्तिपूर्ण विवरण दिया है। इस अवसर पर केवल अनहिलवाड़ा का चालुक्य राजा ही हिन्दुओं के इस संघ में सम्मिलित नहीं हुआ था और परिणामस्वरूप बाद में उसे चौहान राजा के प्रतिशोध का शिकार बनना पड़ा। चन्द ने इस अवसर का वर्णन इस प्रकार से किया है—'गोयलवाल जैत पर विश्वास करके उसने अजमेर उसको सौंपते हुए कहा मैं आपकी राजभक्ति पर निर्भर करता हूं। चालुक्य राजा कहां आश्रय ढूंढेगा ?" इसके बाद वह अजमेर नगर से रवाना हुआ और बीसल नामक झील के तट पर पड़ाव डाला और अपने अधीनस्थ राजाओं तथा सामन्तों को सेना सहित आने का संदेशा भिजवाया। मंडोर के परिहार राजा मोहनसिंह ने सेनासहित आकर उसकी वंदना की।[6] इसके बाद गुहिलोत पवार, तोमर[7] और गौड़ का रावाराम आये। द्रोणपुर के मोहिल राजा ने कर भेजकर न आने के लिये क्षमा मांगी। दोनों हाथ जोड़े हुये बालाच[8] राजा आया। बामूनी[9] का राजा सिंध छोड़कर वहां पहुंचा। फिर भटनेर से नजर आयी। थट्टा और मुल्तान से नालवली आकर उपस्थित हुये।

देरावर के भोमिया और भट्टी लोग भी आये । सदेशा मिलते ही मालन वास के यादव भी पहुचे । मौय, बडगूजर और अ तर्वेद के कछवाहा लोग भी वहा पर पहुच गय । अधीनस्थ मेर लोग भी उसकी वदना के लिये आ पहुचे । तरतपुर[10] की सेना भी आ पहुची । घोडा पर सवार नरभाणो के साथ उदय परमार आया । डोडे, च देल और दाहिमा[11] राजा लोग भी अपने सवारो के साथ आ पहुचे ।'

माणिकराय से पृथ्वीराज चौहान तक जितने प्रमुख राजाओ के नाम मिलते हैं उनमे वीर वीसलदेव का नाम अधिक विख्यात है । इसलिये उसके समय का निर्धारण करना वहुत आवश्यक है । नीचे दी गई चौहान वश की वशावली से वहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है ।

चौहानो की वशावली

अनहल—अथवा अग्निपाल, चौहान वश का आदिपुरुष था जो विक्रमादित्य से 650 वष पूव अग्निकुण्ड स पदा हुआ था । उसने तुरस्क लोगो को परास्त कर मैहकावती म अपनी राजधानी स्थापित की । फिर कोकण असीर और गोल कुण्डा को जीता ।
|
सुवाहु
|
मालन—इसके वशज मालन चौहान कहलाये ।
|
गलनसूर
|
स 202 अजयपाल—इसने अजमेर नगर की स्थापना की ।
|
दूलाराय—685 ई० मे मुसलमानो के हाथो मारा गया और अजमेर पर उनका अधिकार हो गया ।
|
स 741 माणिकराय—साभर मे चौहानो की राजधानी कायम की ।
|
हुपराज
|
वोलनदेव
|
स 1066 1130 वीसलदेव
|
सारगदेव—अल्पावस्था म ही मृत्यु हो गई ।
|
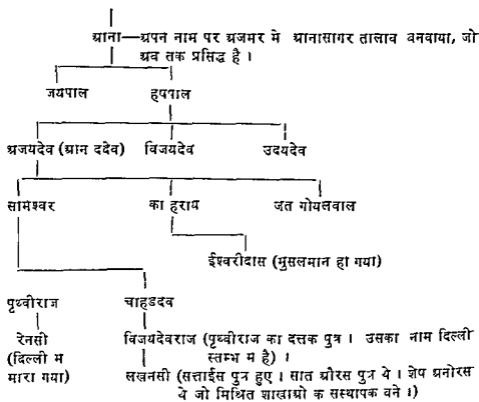
दिल्ली मे फीराजशाह के महल के सामने स्थित विख्यात स्तम्भ पर जिन राजाओ के नाम उत्कीर्ण है उनम बीसलदेव का नाम सर्वोपरि है । च द क अनुसार यह स्तम्भ चौहाना की शौर्यगाथा का उद्घोषक है । यह पहले यमुना के किनारे निगम बोध नामक तीर्थ स्थल पर था, जहा स इस स्थान पर लाया गया होगा ।

इस स्तम्भ म बीसलदेव से पृथ्वीराज तक और भी छ राजाओ के नामो के उल्लेख मिलते है। लेकिन इनम बीसलदव और पृथ्वीराज का नाम ही अधिक विख्यात है । वास्तव मे पृथ्वीराज न बीसलदव की वीरता और ख्याति प्राप्त की थी । बीसल-देव न अपनी विजया का उल्लख करन के लिए स्तम्भ का निमाण करवाया और बाद म पृथ्वीराज न उस पर अपनी विजया का विवरण उत्कीर्ण करवाया । दोना के अभियाना का एक ही ध्येय था—मुसलमानो को मार भगाना । दोनो इस ध्येय को प्राप्त करन म सफल रह । मुस्लिम इतिहासकार भी यह स्वीकार करते हैं कि अ तिम विजय के पहले मुहम्मद को कई बार अपमानजनक पराजयो का सामना करना पडा था ।

मेरी समझ म स्तम्भ लेख का पहला पद बीसलदेव स सम्ब धित है । उसका समय सवत् 1120 अथवा 1064 ई है और चौहान कवि के अनुसार उसके नेतृत्व

मे एकत्र शूरवीरों की विजय की स्मृति मे इस घटना को उत्कीर्ण किया गया था। कवि चद ने बीसलदेव के नेतृत्व म अपनी सेनाओ सहित एकत्र होने वाले अनेक राजाओ का उल्लेख किया है। उनमे से चार राजाओ के नाम ऐसे हैं जिनसे हम समय निर्धारण कर सकते हैं। एक के नाम से प्रत्यक्ष रूप से तथा अन्य तीनो के नाम से अप्रत्यक्ष रूप से। पहला है उदयादित्य परमार। धार नरेश भोज का पुत्र। विभिन्न लेखो के आधार पर मैंने उसका समय सवत् 1100 से 1150 के मध्य निर्धारित किया है, अर्थात् वह इस अवधि के मध्य समय म इस युद्ध मे सम्मिलित हुआ होगा। अप्रत्यक्ष रूप से जिन नामो के आधार पर समय निर्धारित किया जा सकता है वे इस प्रकार हैं—

1 कवि चद ने देरावल के भोमिया भट्टी लोगो का आना स्वीकार किया है। उस स्थिति म भट्टी लोगो का नगर और उसकी मौजूदा राजधानी जसलमेर के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।

2 यमुना और गगा के मध्यवर्ती अन्तर्वेद से कछवाहो के आने का भी उल्लेख किया गया है। इससे भी उस समय का अनुमान होता है। क्योकि उस समय कछवाहा ने नरवर से आकर आमेर मे अपनी राजधानी कायम की थी परन्तु तब वह प्रसिद्ध नही थी।

3 मेवाड के शिलालेखो से पता चलता है कि समरसिंह का दादा तेजसिंह राजा बीसलदेव का समकालीन तथा मित्र था। कहा जाता है कि बीसलदेव ने 64 वर्ष तक शासन किया। यदि हम सवत् 1120 को उसके शासन का मध्य बिन्दु मान लें तो बीसलदेव का समय सवत् 1088 से 1152 (1032 से 1096 ई) निर्धारित किया जा सकता है। परन्तु जैसाकि हमको मालूम है कि उसका पिता धर्मगज महमूद के अन्तिम आक्रमण के समय मारा गया था उस स्थिति म हम बीसल का जन्म समय दस वर्ष आगे तय करना होगा अर्थात् सवत् 1078 से 1142 (1022 से 1086 ई)। यह समय दिल्ली स्तम्भ के समय से मेल खा जाता है। अत हम सन्देह रहित होकर रासो का समय सवत् 1066 से सवत् 1130 को स्वीकार कर सकते है।[12]

इस गणित से बीसलदेव दिल्ली के तोमर राजा जयपाल गुजरात के राजा दुर्लभ और भीम, धार के भोज और उदयादित्य और मेवाड के पद्मसिंह और तेजसिंह का समकालीन था। बीसलदेव ने जिस मुसलमान राजा विरुद्ध राजपूत सघ का नेतृत्व किया वह निश्चित रूप से महमूद गजनी ही रहा होगा जिसे उत्तरी राजस्थान के क्षेत्रों से भगाकर आर्यावर्त को पुन स्वाधीन किया गया था। धीरमदेव और अजमेर के राजा द्वारा महमूद का सामना करने के लिए जो सेना एकत्र की थी वह सवत् 1082 (हिजरी 417 अथवा 1026 ई) म की गई थी और इस सेना के भय

से महमूद अपने अंतिम आक्रमण के समय घबराकर सिंध की तरफ भाग गया था। यह समय कवि चंद के संवत् 1086 के काफी नजदीक है।

वीसलदेव ने गुजरात के राजा के विरुद्ध युद्ध करके विजय प्राप्त की थी और वहां उसने अपने नाम पर बीसल नगर बसाया था। इसका विस्तृत विवरण हम विख्यात पृथ्वीराज के शासन काल के विवरण के साथ करेंगे। इस अभियान का समय कवि चंद ने संवत् 1086 लिखा है। बीसलदेव के इतिहास में बहुत सी बातें मिलाकर लिखी गई हैं जिनका उद्देश्य उसके कलंक को छिपाना हो सकता है। कहा जाता है कि उसने कभी इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था और बाद में इसका प्रायश्चित करने के लिए तपस्या की। तपस्या के लिए उसने जो स्थान चुना वह कालिंजर जूहनेर के समीप एक टीला था जो आज भी बीसलदेव का धाघ" कहलाता है।

हाडा वंश के कवि गोविन्दराम के राज ग्रंथ" के अनुसार बीसलदेव के पुत्र अनुराज से हाडा राजवंश की उत्पत्ति हुई परन्तु खीची वंश के कवि मगजी ने लिखा है कि अनुराज माणिकराय का लडका था और वह खीची वंश का आदिपुरुष था। हमने हाडा कवि का अनुसरण किया है।

अनुराज को सीमा पर स्थित महत्वपूर्ण दुर्ग असि (हांसी) का अधिकार प्राप्त हुआ था। अनुराज का लडका अस्थिपाल और खीचीपुर पाटन के आदिपुरुष अजय राज का लडका अनुगराज—दोनों ही अपना भाग्य आजमाने के लिए गोलकुण्डा के चौहान राजा रणधीर के यहां जाने का विचार करने लगे थे। परन्तु उन्हीं दिनों में कजलीवन के बबरों ने एक साथ असि और गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया। चौहान राजा रणधीर अपने पुत्रों सहित उनसे लडता हुआ मारा गया। उसके परिवार में केवल सुराबाई नामक एक लडकी बच गई। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए असि की तरफ भागी। परन्तु असि पर भी बबरों ने आक्रमण कर दिया था। असि का राजा अनुराज भय से भाग खडा हुआ परन्तु उसके पुत्र अस्थिपाल ने लडने का निश्चय किया और अपने नगर के बाहर आकर आक्रमणकारियों का सामना करने की तयारी की। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध लडा गया जिसमें आक्रमणकारी नेता मारा गया और वे भाग खडे हुये। यद्यपि अस्थिपाल स्वयं भी गम्भीर रूप से घायल हो चुका था परन्तु उसने भागते हुये शत्रुओं का उस समय तक पीछा किया जब तक कि वह बेहोश होकर गिर नहीं पडा। जिस स्थान पर वह गिरा था उससे थोडी ही दूरी पर सुराबाई आश्रय की तलाश में गोलकुण्डा से चली आ रही थी। भूख प्यास और थकान से पीडित होकर वह एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गई। उसे अब जीवन की आशा न रही थी और वह मृत्यु की कामना करने लगी। तभी चौहानों की कुलदेवी आशापूर्णा ने आकर उसे दर्शन दिये। देवी को सम्मुख देखकर सुराबाई ने अपनी विपदा का सम्पूर्ण वृत्तान्त देवी को बताया। देवी ने उसे संताप देते हुए

कहा कि ग्रब तुम्ह चि ता करन की कोई ग्रावश्यकता नही है। तुम्हारे ही एक स्व जातीय ने शत्रु को मार डाला ह ग्रौर उसके साथियो को परास्त करके भगा दिया है। इसके बाद देवी सुरावाई को उस स्थान पर ले गई जहा ग्रस्थिपाल घायल ग्रवस्था म ग्रचेत पडा था। देवी की सहायता स ग्रस्थिपाल न चौहानो की परम्परा के ग्रनुसार शत्रु का स्वदड कर ग्रसीर के ऐतिहासिक दुग को ग्रपन ग्रधिकार म ले लिया।

हाडा वश[13] के प्रतिष्ठाता ग्रस्थिपाल न सवत् 1081 (1025 ई) म ग्रसीर पर ग्रधिकार किया था। महमूद का भारत म ग्र तिम विनाशकारी ग्राक्रमण (मुल्तान के माग से ग्रजमर पर) हिजरी सन् 714 ग्रथवा 1022 ई हुग्रा था। इसलिए हम इस निणय पर पहुचने के सभी प्रकार से ग्रधिकार है कि उसके पिता ग्रनुराज न गजनी के बादशाह के हाथो ग्रपने प्राण तथा ग्रसि का राज्य उस समय खोया था जब महमूद ने ग्रजमेर पर ग्राक्रमण करके उसका सवनाश किया था। हि दू कवियो ने उसको कजली वन के ग्रसुर के रूप मे चित्रित किया है। लकिन मुस्लिम इतिहास कारा ने कही पर भी इस बात का उल्लेख नही किया है कि सुल्तान महमूद किस समय ग्रपनी सेना के साथ दक्षिण गया ग्रौर कब उसने गोलकुण्डा को जीतकर ग्रपने ग्रधिकार म किया। उसके ग्रभियाना की ग्र तिम सीमा सौराष्ट्र तक ही रही थी। गावि दराम ने जिस कजली वन[14] की बवर जाति का वणन किया है, महमूद उस स्थान का शासक था, इस बात को स्वीकार करने के लिए किसी ठोस प्रमाण की ग्रावश्यकता है। यदि वास्तव मे महमूद दक्षिण की तरफ गया होता तो मुस्लिम इतिहासकार किसी न किसी स्थान पर इसका उल्लेख ग्रवश्य करते। ऐसा मालूम हाता है कि दक्षिण मे किसी पहाडी का नाम कजली वन रहा हा। पर तु यह वन कहा पर स्थित था इसका निणय करने के लिए हमार पास कोई ग्रधिकृत सामग्री नही है। यहा हम एक नय सत्य का उल्लग्व करत हैं। वह यह कि दक्षिण ग्रौर उत्तर के राज्य राजपूता क ग्रधिकार म थ। उनके वशजा न दक्षिण के मूल निवासियो क साथ मिल कर मराठा' नाम की एक नयी जाति की उत्पत्ति की पर तु उस जाति के लोगा न ग्रपन पूवजा—यादव तोमर परमार ग्रादि के नामा को छोडकर जिस भाग म पदा हुय थे उसी क नाम का ग्रपनाया, जसे कि नीमालकर, फालकिया पाटनकर इत्यादि।

ग्रस्थिपाल क एक लडका था जिसका नाम था चा द्रकरण। चा द्रकरण के लडके लाकपाल क दो लडके हुए—हमीर ग्रौर गम्भीर। पृथ्वीराज क युद्ध म दाना न नाम कमाया। दाना भाइया का पृथ्वीराज क एक सौ ग्राठ प्रसिद्ध साम ता म गिना जाता था। इसस हम यह निष्कष निकाल सकत है कि यद्यपि ग्रसीर का एक ग्रधीन जागीर नही समझा गया था फिर भी यहा के राजा ग्रजमर का चौहाना का मुख्य क द्र मान कर उनके प्रति ग्रपना सम्मान प्रकट करत थ।

कवि च द न पृथ्वीराज द्वारा कन्नौज के राजा जयच द की पुत्री सयागिता के अपहरण तथा उसक बाद लडे गये युद्ध का विस्तृत विवरण दिया है। तीसर दिन जो युद्ध लडा गया उसमे हमीर और गम्भीर–दोनो भाइयो के शौय की कवि च द न सम्मान क साथ प्रशसा की है। कवि कहता है, "इसक पीछे हाडा राव हमीर अपन अनुज गम्भीर के साथ रण तुरगिनी पर चढकर अपन अधीश्वर पृथ्वीराज के सम्मुख आकर बोल, जगलेश[15] हम जयच द की सेना का विध्वस करत है, आप निर्विघ्नता से चले जायें। नौका जिस प्रकार से सागर के वक्षस्थल का विदलित करती हुई चलती है उसी प्रकार से हमारे रण तुरगा के खुरो स युद्धक्षेत्र कपित हागा।" जयच द के पक्ष की तरफ से लडन वाल उसके अधीनस्थ राजाओ म काशी का राजा भी सेना महित उपस्थित था। दानो वीर भाइयो न उसी रर आक्रमण किया। वीर हमीर ने उस अवसर पर आगे बढकर वीर गव से इस प्रकार सिंहनाद किया कि कैलाश शिखर पर भगवती दुर्गा का सिंहासन भी उसस कम्पित हा उठा। उन दाना भाइयो ने अपूव बल विक्रम का प्रदशन कर वीरगति प्राप्त की।

हमीर क कालकरण नामक लडका हुआ। उसके महामुग्ध नामक पुत्र हुआ। महामुग्ध क राव वाच्छा और वाच्छा के राव च द नामक लडका हुआ।

चौहान वश के जिन अनक राज्यो का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी न विनाश किया था उनम रावच द (रामच द्र) का असीर राज्य भी एक था। इसकी सुदृढ दीवारें यद्यपि अजेय मानी जाती थी परन्तु उस परिश्रमी शूरवीर रणनातिज्ञ की प्रतिभा के आग धराशायी हो गइ। एक लडक के अलावा रामच द अपन परिवार क सभी सदस्यो के माथ मारा गया। उस वालक का नाम रनसी था। वह चित्ताड के राणा का भानजा था। इसलिय उस किसी उपाय से चित्तौड पहुचा दिया गया। उसका पालन पापण और शिक्षा दीक्षा वही पर हुई। बडे हान पर उसन अपना सनिक दस्ता तयार किया और भैंसरोड पर आक्रमण कर वहा क भील सरदार डूगा को भगाकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन न अपन चित्ताड अभियान के समय मवाड की इस प्राचीन जागीर का विध्वस कर दिया था। तब अवसर पाकर डूगा न भसरोड पर अधिकार कर लिया था।

रनसी क दो लडके हुय—कोलन और काकुल। बडा लडका कालन एक असाध्य रोग स पीडित था। अत उसन गगा के किनार पर स्थित कदारनाथ की यात्रा करन का निश्चय किया और इस लम्बी यात्रा को उसन विना किसी सवारी के तय करना निश्चय किया। छ महीन की यात्रा के बाद वह केवल बूदी दर्रे तक पहुच पाया। वहा पर पवत से निकली हुई वाण गगा नामक नदी म उसन स्नान किया। स्नान करन क बाद उसने अनुभव किया कि वह रोगमुक्त हा गया है। उसक बाद वह पठार का राजा अर्थात् मध्यभारत का राजा हुआ। यह सम्पूण क्षत्र पहल

चित्तौड के राणाओ के अधिकार म था, पर तु इस विख्यात नगरी का अलाउद्दीन द्वारा सवनाश किय जान के बाद निसम हजारो गुहिलोत वीर मारे गये थे राणा की शक्तियां काफी कमजोर पड गई और अवसर का लाभ उठाकर आदिवासी मीना लोगो ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया था।

कहा जाता है कि प्राचीन समय म परमार वशी राजा हूण इस पठार का राजा था और मैनाल उसकी राजधानी थी। उस राजधानी म हूण राजा के समय की बहुत सी चीजें अब तक देखन को मिलती हैं। मिली हुई ऐतिहासिक सामग्री स पता चलता है कि आठवी सदी म चित्तौड पर पहले पहल आक्रमण क समय पर हूण राजा अगतसी न राणा की सहायता के लिये युद्ध किया था। यह भी पता चलता है कि बारोली का विख्यात मदिर इसी हूण राजा न बनवाया था। हूण कवि क अनुसार प्रथम सदी म उ ह छत्तीस राजवशो म सम्मिलित किया गया था। जो भी हो कोलन क पाते राव बागा न मैनाल पर अधिकार करके पठार क पश्चिमी तरफ एक शिखर पर भवावदा नामक दुग का निर्माण करवाया। पूव की तरफ भैसरोड पश्चिम की तरफ बबावदा और मैनाल—इस प्रकार हाडाओ न अब सम्पूण पठार पर अपना शासन स्थापित कर दिया। इसक पश्चात् माडलगढ बिजौलिया बेगू रतनगढ और चोराइतगढ आदि को जीता गया जिससे उनके राज्य की सीमा काफी बढ गई।

राव बागा के बारह लडके हुये, उन सभी न पठार के क्षेत्र म अपने वश और राज्यो की प्रतिष्ठा की। बागा क बाद राव देवा उसक सिंहासन पर बठा। राव देवा के तीन लडके हुये—हरराज हथजी और समरसी।

हाडाओ न अब इतनी शक्ति अर्जित कर ली थी कि दिल्ली के सुल्तान सिक दर लोदी[16] का ध्यान उनकी तरफ गया और उसन राव देवा को दरबार म उपस्थित होने का सदेश भिजवाया। राव देवा न अपन बड पुत्र हरराज को बबावदा का शासन भार सौप कर अपने छोटे पुत्र समरसी के साथ दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। हाडा कवि के अनुसार राव देवा बहुत वर्षो तक दिल्ली म रहा। इस बीच, सुल्तान ने राव देवा के घोडे को लेन की चेष्टा की पर तु राव अपन घोडे को देन के लिये तयार नही हुआ और वह वापस पठार जान की सोचने लगा। इस घोडे की कहानी भी मजेदार है। दिल्ली के बादशाह क पास एक ऐसा घोडा था जिसकी विशेषता यह थी कि वह अपने परो की टापो को पानी मे स्पश किये बिना नदी को पार कर लेता था। उस घोडे के इस चमत्कार से प्रभावित होकर राव देवा ने शाही अश्वपाल को घूस देकर अपनी तरफ मिला लिया और अपन राज्य की एक घोडी से बादशाह के उस घोडे से बच्चा पदा करवाया। वह बछेडा कुछ दिनो बाद जवान घोडा बन गया। बादशाह ने उसी घोडे क लिये राव देवा स जिद की थी। राव देवा न अपने परिवार के सभी लोगो को धीरे-धीरे पठार की तरफ भेज दिया और

उनके चले जाने के बाद हाथ में तलवार लेकर घोडे पर सवार होकर वह बादशाह के पास पहुचा। बादशाह उस समय अपने महल के बरामदे में खडा था। राव देवा ने घोडे पर बठे बठे ही बादशाह का अभिवादन किया और कहा, जहापनाह आपको यह मेरा अंतिम प्रणाम है। मैं आपको कवल यह बताना चाहता हूँ कि किसी भी राजपूत से आप उसकी तीन चीजा के पाने की इच्छा न करें। उन तीना में पहला उसका घोडा है दूसरी उसकी स्त्री है और तीसरी उसकी तलवार है। इतना कहने के बाद देवा दिल्ली से पठार के लिये रवाना हो गया। चू कि दिल्ली जाते समय वह बबा दा का शासन हरराज को सौप गया था अत वह वहा नही गया और बू दानाल,[17] जहा उसके पूर्वज कोलन ने रोग से मुक्ति पायी थी गया। वहा पर मीना और उसारा जाति के लोग राजा जेता की अधीनता मे रहते थे और उस स्थान पर कोई नगर बसा हुआ नही था। चारा तरफ पहाडी घाटिया थी। बीच के भू भाग में मीना लोगो की झोपडिया थी। ये लोग चित्ताड के विध्वस के पहले वहा के राणा की अधीनता मे थे। परन्तु राणा की शक्तियो के कमजोर पडने पर रामगढ के खीची राजा राव गागा ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके अत्याचारो से दु खी होकर वहा के मीना तथा उसारा लोगो ने उसे कर देना स्वीकार कर लिया और वे नियमित रूप से कर देते रहे। राव देवा ने वहा पहुच कर उन लोगो की सहायता करने का वचन दिया तथा उन्हे आश्वासन दिया कि वह खीचिया से उनकी रक्षा करेगा। कुछ दिनो बाद राव गागा उस क्षेत्र से कर वसूली के लिये अपनी सेना सहित आ पहुचा। बू दी की सीमा पर जाकर मीना और उसारा लोग उसका कर अदा करते थे। इस बार उनके न आने पर उसे आश्चय हुआ। उसी समय उसने राव देवा को घोडे पर सवार अपनी सेना के साथ आते हुये देखा। गागा ने उससे पूछा कि कौन आ रहा है?' तुरत उत्तर मिला "पठार का राजा आ रहा है।" राव गागा का घोडा भी राव देवा के घोडे से किसी प्रकार कम न था। उसका जन्म भी देवा के घोडे के समान ही हुआ था। कुछ देर बाद ही दोनो के मध्य युद्ध शुरू हो गया। राव देवा विजयी रहा और गागा को युद्धक्षेत्र से पलायन करना पडा। देवा ने गागा के घाडे की परीक्षा करने का निश्चय किया और वह उसके पीछे चल पडा। गागा ने घाटी को छोडकर चम्बल नदी में प्रवेश किया। देवा के देखते देखते घोडा नदी के उस पार चला गया। राव देवा ने प्रसन्नचित्त हो उससे पूछा, वीर राजपूत आपका नाम क्या है?" उत्तर मे सुनाई पडा "गागार खीची। राव देवा ने उससे कहा, मेरा नाम देव हाडा है। हम दोना एक ही जाति के हे और आपस में भाई-भाई है। इसलिये हम दोनो में किसी प्रकार की शत्रुता न होनी चाहिये। आज से यह चम्बल नदी हम दोनो के राज्यो की सीमा है।

संवत् 1398 (1342 ई०) में मीना और उसारा जाति के राजा जेता ने राव देवा को अपना राजा स्वीकार कर लिया। राव देवा ने बू दानाल के मध्यवर्ती स्थान पर बू दी नामक एक नगर बसाया जो हाडाओ की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध

हुग्रा । कुछ समय तक चम्बल नदी पूर्वी सीमा बनी रही पर तु बाद मे हाडाग्रो न उम सीमा को पार कर ग्रपने राज्य का विस्तार किया । इसके बाद, मुगल बादशाहो के सम्पक मे ग्राने के पश्चात् शाही कृपा, ग्रनुदान तथा हाडाग्रो के स्वय के पराक्रम से उनके राज्य का विस्तार होता चला गया ग्रौर उसकी सीमा मालवा से जा टकराई । इस प्रकार जो क्षेत्र प्राप्त किया गया वह हाडावती ग्रथवा हाडौती के नाम से प्रसिद्ध हुग्रा ।

सन्दभ

1 टॉड ने लिखा है कि माल्हन चौहानो की एक शाखा थी ।

2 टॉड ने टिप्पणी मे लिखा है कि यह स्थान ग्र य रूप से ग्रजयमेर ग्रर्थात् ग्रजेय शिखर ग्रौर ग्रजयगढ ग्रर्थात् ग्रजेय दुग नाम से विदित हुग्रा है । पर तु ऐसा विख्यात है कि राजपूताने क प्रवेश के द्वारस्वरूप इस स्थान पर युवक चौहान-राज ग्रजयपाल निवास करते थे, इसी स इसका नाम ग्रजमेर हुग्रा ।

3 पृथ्वीराज रासो मे इस घटना का वणन नही मिलता । यह कवि की कपोल कल्पना मात्र है ।

4 वू दी राजवशावली म लिखा है कि देवी ने यह वरदान दिया था कि घोडे पर चढकर तुम जितनी पृथ्वी की परिक्रमा करोग वह सब चादी की हो जायेगी । पर तु दुर्भाग्यवश ग्राना भग करने पर वह भूमि चादी के स्थान पर नमक की हो गई ।

5 इ ह धु धेरिया चौहान भी कहा जाता है । य माणिकराय के तीसरे पुत्र हरिसिंह के वशज थे ।

6 इससे पता चलता है कि परिहार राजा चौहानो के करद् साम त थे ।

7 यह तोमर राजा दिल्ली के तोमर सम्राट के ग्रधीन कोई तोमर राजा रहा होगा ।

8 बालोच ग्रथवा बलोच लोगो न बाद म इस्लाम धम स्वीकार कर लिया था ।

9 इसका वास्तविक नाम ब्राह्मणाबाद या देवल था । उसी स्थान पर थट्टा का नगर बसा हुग्रा है ।

10 इस स्थान का वतमान नाम टोडा है । यह टोक स कुछ दूरी पर स्थित है ।

11 दाहिमा बयाना के अधीश्वर का नाम है। वह धरणीधर के नाम से भी पुकारे जाते थे।

12 कवि च द ने ठीक लिखा है। टाड ने 931 का भ्रमवश 921 माना है। च द के हिसाब से 1022 म बीसल सिंहासन पर बठे। 64 वष राज्य किया। अर्थात् बीसल का शासनकाल मवत् 1022 से 1086 तक रहा। रासा म विक्रम सवत् नही अपितु अन द शक सवत् है। उसम 91 वष जोडना पडता है। विक्रम मवत् में 56–57 वष का योग करना पडता है।

13 हाडा वश के नामकरण के सम्ब ध मे टाड ने टिप्पणी म लिखा है कि इस प्रकार की अफवाह प्रचलित है कि सुराबाई ने अस्थिपाल के क्षत विक्षत शरीर की हड्डिया को जोडा और देवी ने उस पर अभिमन्त्रित जल छिडक कर उसे पुन जीवन दान दिया। इसी से उसके वशज हाडा कहलाये। कुछ अ य लोगो का विचार है कि असि खो देने तथा हार जाने के कारण "हारा' हुआ कहा जाने लगा। यही शब्द बाद म हाडा' म परिवर्तित हो गया।

14 कजली बन के बारे म काफी विवाद है। टाड ने लिखा है कि इसका अथ 'हस्ती का जगल" है। एक प्राचीन हि दू अ य म गगा के तीरवर्ती समस्त पहाडी देश का कजली वन" तथा 'गजलीवू' नाम से पुकारा गया है। उसका अथ भी हाथी का जगल है। अब्बुल फजल ने लिखा है, वजीर अचल पर गजलीगट नाम का एक देश है।"

15 जगलेश पृथ्वीराज चौहान की एक उपाधि थी।

16 टाड का यह कथन गलत है। सिक न्दर लोदी राव देवा के समय से लगभग दो सौ वष बाद हुआ था। लोदी के समय मे बूदी का राजा राव नारायण दास था।

17 'थल और नाल शब्द का अथ उपत्यका है।

अध्याय 66

बून्दी की प्रतिष्ठा से लेकर राव अर्जुन तक का वृत्तान्त

प्रथम चौहान अनहल की उत्पत्ति से लेकर बूंदी मे प्रथम हाडा राजा के समय तक इस जाति के इतिहास का वर्णन करने के बाद हम इस वंश के प्रमुख व्यक्तियो और उनके तिथि क्रम पर एक बार पुन दृष्टि डालते हैं। अनुराज को असि अथवा हामी प्राप्त हुआ। उसका लडका अस्थिपाल 1025 ई० मे असि से निकाल दिया गया और उसने असीर प्राप्त किया। वह हाडाओ का प्रतिष्ठापक था। शहाबुद्दीन के आक्रमण (1193 ई) के समय हमीर मारा गया। सवत् 1351 मे असीर का राजा रामचन्द अलाउद्दीन के हाथो मारा गया। रनसी वहा से भाग कर मेवाड चला आया और सवत् 1353 मे भैंसराड प्राप्त किया। राव बागा ने बबावदा और मैनाल प्राप्त किया। सवत् 1398 (1342 ई) मे राव देवा ने मीना से बूंदीनाल लिया।

राव देवा ने बूंदी राजधानी की प्रतिष्ठा की। आगे चल कर यह राज्य हाडौती के नाम से विख्यात हुआ। इस राज्य मे हाडाओ की अपेक्षा मीनाओ की सख्या बहुत अधिक थी। मीनाओ ने राव देवा की अधीनता तो स्वीकार कर ली थी परन्तु उनमे स्वतन्त्रता की भावना बनी रही। अत राव देवा ने उनका दमन करने का निश्चय किया। राजपूत कवि इसका एक कारण बतलाता है। एक मीना सरदार ने उद्दण्डता के साथ पठार के स्वामी से उसकी लडकी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा। इस प्रकार के प्रस्ताव से राव देवा ने अपने को अपमानित अनुभव किया। उसने बबावदा के हाडाओ और टोडा के सोलकियो को अपनी सहायता के लिए बुलाया और उन असभ्य मीनाओ का सहार किया।

इस बर्बरतापूर्ण नरसहार के कितने समय बाद राव देवा ने अपना सिंहासन त्यागा, इसकी जानकारी नही मिलती। परन्तु उसने अपने जीवन मे दो बार अपना सिंहासन त्यागा। पहली बार उस समय जब वह बबावदा का राज्य अपने पुत्र हर राज को सौंपकर दिल्ली गया था। दूसरी बार बूंदी का राज्य अपने पुत्र समरसी

का मौप कर एका तवास ले लिया । बूदी और पठार के दानो राज्य एक दूसरे स स्वत न रह । राजा के लिय यह एक नियम है कि सिंहासन त्याग करन क बाद वह कभी गजधानी म वापस नही आता । वह न ता साधारण जन हो सकता है और न ही राजा । अत राव दवा बूदी छोडकर वहा से दस मील की दूरी पर स्थित अमरथुन नामक स्थान पर चला गया और वही रहन लगा । इसके बाद वह लौटकर न तो ववावदा गया और न ही बूदी आया ।

समरसी के तीन लडक हुये । पहला नापाजी जो बूदी के सिंहासन पर बठा। दूसरा हरपाल जिसको जजावर का गाव जागीर मे मिला । उसके वशजो की सख्या म काफी वृद्धि हुई और वे हरपालपाता क नाम से विख्यात हुये । तीसरे का नाम जतसी था । उस चम्बल के उस पार हाडाओ की सत्ता स्थापित करने का सवप्रथम सम्मान मिला । एक बार वह कतुन के तोमर राजा से मिलकर वापस लौट रहा था तो वह भीलो के एक नगर से होकर गुजरा । यह नगर चम्बल नदी के किनार की एक उपत्यका म बसा हुआ था । उसने अचानक भीला पर आक्रमण करके उ ह परास्त कर दिया । नगर के बाहर भीलो का एक दुग था जिसमे भील सरदार रहता था । जतसी न दुग पर आक्रमण कर भील सरदार को मार डाला । इस विजय की स्मृति म उसन युद्ध के देवता भरव के स्मारक म पत्थर की एक हाथी की मूर्ति बनवाकर वहा पर स्थापित की । यह स्थान चार झोपडा के नाम से विख्यात था और कोटा के दुग क समीप है । कोटिया नामक भीला की एक जाति से 'कोटा' नाम की उत्पत्ति हुई है ।

जतसी के वशजा न इस दुग और उसके आसपास के क्षेत्र को कई पीढियो तक अपने अधिकार म रखा । पाचवे वशज भानगसी को बूदी के राव सूरजमल ने इस क्षेत्र स वचित कर दिया । जतसी के एक लडका सुरजन नाम का था । उसने भीला के इस नगर का नाम कोटा रखा और नगर के चारो तरफ एक दीवार बनवा दी । सुरजन क पुत्र वीरदव न बारह विशाल तालाब खुदवाय और नगर के पूव की तरफ एक बडी झील का निमाण करवाया । उसके लडके का नाम कदल था और कदल के लडके का नाम भोनगसी था । सूरजमल न उसे काटा से निकाल दिया । कुछ दिना बाद धाकर और केसरा नामक पठाना न कोटा पर अधिकार कर लिया । भानगसी न अपनी पत्नी की सहायता स षडयन्त्र रचा । कोटा के पठाना को हाडा स्त्रिया के साथ होली खलन का निम त्रण भेजा गया । होली खेलते पठान सरदार अपने अनेक पठानो क साथ मारा गया और भोनगसी का कोटा पर अधिकार हो गया ।

नापाजी जिसका नाम हाडावती क इतिहास म कम महत्वपूर्ण नही है समरसी के बाद बूदी के सिंहासन पर बठा । उसने टोडा के गोलका राजा की लडकी के साथ विवाह किया । सोलकी राजा अनहिलवाडा के प्राचीन राजाओ का वशज

था । टोडा जाते समय उसे राजधानी मे सगमरमर का एक बहुमूल्य पत्थर देखन म आया । उसन अपनी पत्नी स कहा कि वह अपन पिता से इस पत्थर को माग ले । सोलकी राजा न साफ इ कार करत हुय कहा कि उसका ख्याल है कि अगली बार हाडा उसकी पत्नी को भी माग सकता है । सोलकी राजा न नापाजी को टोडा से चल जाने को कह दिया । नापाजी न वापस आकर अपन अपमान का बदला अपनी सोलकी पत्नी स लिया । वह उसस घृणा करन लगा और उस अपन शयन कक्ष स निकाल दिया । उसकी पत्नी न अपन अनादर की सभी बाते अपन पिता तक पहुचा दी । सावन मास क तीसर दिन कजली तीज" पर राजपूतो म यह एक सामा य नियम ह कि व अपनी पत्नी के पास अवश्य जाय । इसलिये नापाजी ने अपने सभी सरदारो को अपने अपन घरो को जाने की अनुमति प्रदान कर दी । इस अवसर का लाभ उठाते हुए टोडा का राजकुमार रात्रि क अधेर म बूदी आया और अपन बहनोई की हत्या कर दी । नापाजी का वध करक वह चुपचाप बूदी से वापस लौट गया । कजली तीज का उत्सव मनान के लिय बूदी क सभी साम त अपन घरो के लिये प्रस्थान कर चुक थे । पर तु एक साम त नगर क बाहर एक रास्ते म बठकर अफीम का सवन करन लगा क्योकि उसकी पत्नी बीमार थी और उसे घर पहुचन की उतनी उत्सुकता भी नही थी । टोडा का राजकुमार उसी रास्ते से लौट रहा था और अपने सनिको के साथ अपन कृत्य की चचा करता हुआ जा रहा था । उस साम त न उनकी बातो को सुना और सुनते ही उत्तेजित हो उठा । उसने तलवार उठाई और नापाजी क हत्यारे राजकुमार पर आक्रमण कर दिया । राजकुमार का एक हाथ कटकर नीचे आ गिरा पर तु वह भागने म सफल रहा । साम त न कटे हुये हाथ को अपने दुपट्टे म बाधा और वापस बूदी लौट आया । वहा सोलकी रानी नापाजी के मृत शरीर के साथ सती होने की तयारी कर रही थी और जब वह चिता पर बठने ही वाली थी कि वह साम त वहा जा पहुचा और उसन दुपट्टे से कटा हुआ हाथ निकाल कर रानी के सामने रखा और कहा कि हत्यारे के कटे हुये हाथ से आपको कुछ सतोष और सहायता मिलगी । रानी न कटे हाथ म बधे ककण स हत्यारे को पहचान लिया और चिता पर चढन के पहल कलम दवात मगवा कर अपन भाई को पत्र लिखा कि तुमन ऐसा जघ य काय करके अपन वश को कलकित कर दिया है । इस कलक का प्रायश्चित करे । आपके सभी वशज हथकट सोलकी क नाम स पुकारे जायेगे । इस पत्र को पढकर उसक भाइ को इतना अधिक पश्चाताप हुआ कि उसने एक स्तम्भ पर अपन मस्तक को इतन जोर से पटका कि उसका उसी समय प्राणा त हो गया ।

नापाजी के तीन लडके हुय—हामाजी नवरग (उसक वशज नवरगपोता है) और थारूड (उसके वशज थारूड हाडा है) । सवत् 1440 (1384 ई०) म हामा सिहासन पर बठा । हम पहल ही बता आय है कि बबावदा का राज्य हरराज को दिया गया था । हरराज क बाद अनू पठार का राजा बना । पर तु उसका चित्तोड

के राणा क साथ झगडा हो गया। राणा न बवावदा का भूमिसात कर दिया। इसका प्रतिशोध लेन के लिए काई न बचा।

अलाउद्दीन क प्रहार स सम्भलने के बाद राणा न अपनी शक्तियाे को पुन सुदृढ बनाने का प्रयास किया। पहला कदम उन साम तो का दमन कर उ ह अपनी अधीनता मे लाना था जि होने अलाउद्दीन क आक्रमण क बाद की कमजोर परिस्थितियो का लाभ उठाते ही अपनी स्वत त्रता की घोषणा कर दी थी। बू दी के हाडा भी उ ही म स एक थे। पर तु हाडाओ न राणा के अधीनस्थ साम त की स्थिति को अस्वीकार करत हुए कहा कि यद्यपि उ होने मेवाड की गद्दी की सर्वोच्चता को हमेशा स्वीकार किया है पर तु जिस क्षेत्र पर उनका शासन है, वह उ ह मेवाड से पट्टा क द्वारा प्राप्त नही हुआ है, अपितु उ होने अपनी तलवारो के पराक्रम स जीता है। दोनो ही बातें एक सीमा तक सही हैं। पर तु इसमे भी किसा प्रकार का स देह नही है कि असीर म भागकर आये हाडा को राणा के आश्रय म ही स्थान मिला था और इस राज्य की स्थापना मे भी वह निमित्त था, क्योंकि अलाउद्दीन क आक्रमण क पहले इस सम्पूर्ण पवतीय क्षेत्र पर राणा का ही अधिकार था। पर तु अलाउद्दीन क आक्रमण से सीसादिया की शक्ति कमजोर हा गई, भामिया और आदिम जातियो न अपने पुरान क्षेत्रो पर पुन अपना अधिकार जमा लिया और हाडाओ ने उ ह जीत कर इस क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित किया था। फिर भी राणा यह मानने का तयार न था कि अस्थायी तौर पर उसकी सत्ता की अनुपस्थिति म किसी को उसके राज्य के क्षेत्र का अतिक्रमण करने का अधिकार मिल सकता है। अत उसने हामा को बू दी क लिए सेवा करने का कहा। हामा ने दशहरा और होली के अवसर पर सेना के साथ चित्तौड मे उपस्थित हाकर राणा की सर्वोच्चता का सम्मान करने की बात स्वीकार कर ली और यह भी मान लिया कि राणा को बू दी के नय राजा का तिलक करन का अधिकार रहेगा पर तु अ य साम तो की भाति असीमित उप स्थिति की बात का मानने से स्पष्ट इकार कर दिया। पर तु इसस कम किसी शत पर चित्तौड का राणा तयार नही हुआ और उसने बू दी को पूर्ण अधीनता म लाने अथवा देवा के वशजो को पठार से निष्कासित करने का निश्चय कर लिया। हामा ने भी राणा की उपक्षा करने का दृढ निश्चय कर लिया। मेवाड का राणा अपने समस्त साम तो के साथ रवाना हुआ और बू दी स कुछ दूरी पर निमोरिया नामक स्थान पर पडाव डाला। एक ही बाप के पाच सौ हाडाओ ने केसरिया बाना पहन कर अपने राजा के साथ मरने का सकल्प लकर राणा का सामना करने के लिए तयार हो गये। रात्रि के अधेरे म बिना कोई सूचना दिये हाडा वीर मवाड की सेना पर टूट पडे। इस अचानक भयकर मारकाट को देखकर राणा घबरा गया और वह मेवाड की तरफ भाग गया। असख्य सीसोदिया सनिक और साम त मार गय। शष भाग खडे हुए। विजयी हामा राजधानी बू दी लौट आया।

मुट्ठी भर हाडाग्रा के हाथो पराजित एव ग्रपमानित होकर राणा ने चित्तौड पहुचकर इसका बदला लेने का निश्चय किया ग्रौर प्रतिना की कि जब तक मैं बू दी पर ग्रधिकार न कर लू गा, ग्रन्न ग्रहण नही करू गा । ग्रब सभी को चि ता सताने लगी । बू दी चित्तौड से साठ मील की दूरी पर था ग्रार शूरवीर हाडा उसकी रक्षा कर रहे थे । ग्रत साम तो ने राणा को समझाया कि ग्रापकी प्रतिना को पूरा करना सवथा ग्रसम्भव है । पर तु राजाग्रो के वचन पवित्र होते हैं । बू दी का पतन ग्रवश्य होना चाहिये ग्र यथा गुहिलोतो के राजा को प्राण त्यागने पडेंगे । यह सोचकर राणा के शुभचितको ने एक उपाय ढू ढ निकाला ग्रौर उ होने राणा से कहा कि हम चित्तौड के बाहर एक कृत्रिम बू दी का निमाण करते हैं । ग्राप उस पर ग्रधिकार करके ग्रपनी प्रतिज्ञा पूरी करें । तत्काल ही चित्तौड की दीवारो के समीप एक कृत्रिम बू दी का निर्माण किया गया । उसम बू दी की सभी बातो की रचना की गई । दुग भी बना दिया गया । उस समय चित्ताड म राणा की सेवा म पठार के हाडाग्रो की एक सनिक टुकडी थी जिसका सेनापति कुम्भा बरसी था । वह उस समय शिकार खेलकर ग्रपने साथिया के साथ वापस लौट रहा था । उसने जब कृत्रिम दुग को बनते देखा तो उसने वहा जाकर पूछताछ की । लोगा ने बताया कि इस कृत्रिम बू दी की विजय करके राणा ग्रपनी प्रतिना पूरी करेगा । कुम्भा बरसी ने तत्काल ग्रपने स्वजातीय लोगा का एकत्र किया ग्रौर घोषणा की कि कृत्रिम बू दी की भी रक्षा की जाय । यह समस्त हाडा जाति की प्रतिष्ठा का प्रश्न है । उधर दुग का निर्माण काय पूरा होते ही राणा के पास सूचना भेज दी गयी । राणा ग्रपनी सेना के साथ कृत्रिम दुग पर ग्रधिकार करने के लिये चल पडा । पर तु वहा पहुचने पर उसके ग्राश्चय की सीमा न रही जबकि कृत्रिम दुग की ग्रोर से गोलिया की बौछार से उसका स्वागत हुग्रा । उसने वास्तविकता का पता लगाने के लिये ग्रपना दूत भेजा । दूत क वहा पहुचने पर कुम्भा बरसी न उससे कहा कि जाग्रो ग्रपने राणा से कह दो कि कृत्रिम बू दी को भी ग्रपमानित करना इतना ग्रासान नही है । दूत क वापस लौटत ही कृत्रिम दुग क बाहर घमासान युद्ध हुग्रा । एक भी हाडा सनिक न उस स्थान से भागकर ग्रपना प्राण बचान का प्रयास नही किया । गार से बन दुग की रक्षा करत हुे सभी ने ग्रपन प्राण उत्सग कर दिय । राणा न दुग पर ग्रधिकार कर ग्रपना प्रतिना पूरी की । पर तु उस समझ म ग्रा गया कि शूरवीर हाडाग्रा से ग्रकारण ही शत्रुता बनाय रखना बुद्धिमानी का काम नही है । सकट के समय उनसे सहायता मिल सकती है । यह सोचकर उसन भविष्य म बू दी पर ग्रधिकार करन का विचार छोड दिया ग्रौर हामा न जितनी बातें माना थी उसी पर सतोप कर लिया ।

सोलह वप तक शासन करन क बाद हामा की मृत्यु हो गई । वह ग्रपन पीछे दो पुत्र छोड गया—वीरसिंह ग्रौर लाला । लाला का खटकड नाम का राज्य मिला । उसक दो पुत्र हुये—नववर्मा ग्रार जमा । उनक वशज क्रमश नववर्मा पाता ग्रौर जतावत क नाम से प्रसिद्ध हुय । वीरसिंह न प द्रह वप तक शासन किया । उसक तीन लडक

हुये—वीरू, जवद्दू और नीमा। जवद्दू से तीन शाखाओं की उत्पत्ति हुई और नीमा के वशज नेमावत के नाम से प्रसिद्ध हुये। वीरू न पचास वर्ष तक शासन किया और सवत् 1526 (1470 ई०) म स्वर्ग सिधारा। वह सात लडके छोड गया—1 राव भाडा 2 साडा 3 अमैराज 4 ऊधव 5 राव चूडा 6 समरसिंह और 7 अमरसिंह। पहले पाच पुत्रो से पाच शाखाओं की उत्पत्ति हुई। अतिम दोनो न इस्लाम धर्म अपना लिया।

राव भाडा ने अपनी उदारता शूरता और बुद्धिमता के द्वारा रजवाडे म विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। सवत् 1542 (1486 ई) म राजपूताना मे भयकर अकाल पडा। राव भाडा ने उन दिनो म धन और अन्न स लोगो की सहायता करके अक्षय कीर्ति अर्जित की। कवि कहता है कि अकाल के एक वर्ष पूर्व राव भाडा ने एक स्वप्न देखा था। स्वप्न म उसने देखा कि चारो तरफ भयानक अकाल पडा हुआ है और एक काले भैंस पर सवार अकाल उसके सामने आकर खडा हो गया। राव भाडा न तलवार लेकर उस पर वार करना चाहा। तब अकाल ने कहा कि मेरे ऊपर तलवार का कोई प्रभाव न पडेगा। तुम्हारे अलावा आज तक किसी ने मेरे ऊपर तलवार का वार करने की चेष्टा नही की। अत तुम मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। मै आगामी वर्ष म आऊगा। सम्पूर्ण भारत म अकाल पडेगा। तुम अभी से धन और अन्न सचित करो और उस समय लोगो की सहायता करना। इसके बाद अकाल अदृश्य हो गया। राव भाडा ने उसके निदेश का पालन किया और आसपास के सभी राज्यो से अन्न खरीद कर अन्न और उसके साथ ही धन का सग्रह करता रहा। अगले वर्ष वर्षा न हुई और सम्पूर्ण भारत म अकाल ने अपना वीभत्स रूप दिखला दिया। दूर-दूर के राजाओ ने उससे अनाज की सहायता मागी। उसने अपने राज्य के गरीब लोगो को मुफ्त म अनाज दिया। अन्य राज्यो म बहुत से लोग भूख से मर गये परन्तु बूदी म एक भी व्यक्ति भूख से नही मरा। राव भाडा की इस परोपकारिता की याद म अब तक लगर का गुगरी नाम से दीनो और दरिद्रो को अनाज बाटा जाता है।

दयालुता और परोपकारिता भी राव भाडा को जीवन की कठिनाइयो से न बचा सकी। उसके दोनो छोटे भाइयो ने सत्ता प्राप्ति की महत्वाकाक्षा से अपना धर्म त्याग कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और फिर दिल्ली के बादशाह की सहायता से राव भाडा को बूदी स निकाल बाहर किया और उन्होने समरकदी तथा अमरकदी के नाम से सयुक्त रूप स ग्यारह वर्ष तक बूदी पर शासन किया। राव भाडा पहाडो म स्थित मातोदा नामक स्थान पर जाकर रहने लगा और वहा के पर्वत शिखर से गिर कर प्राण त्याग दिये। उसने इक्कीस वर्ष तक राज्य किया। वहा उसकी समाधि आज भी विद्यमान है। वह अपने पीछे दो लडके छोड गया—नारायणदास और नरवद। नरवद मातोदा का अधिकारी हुआ।

नारायण दास इस भगोडी अवस्था मे ही बडा होने लगा। ज्यो ही वह वयस्क हुआ, उसने पठार के हाडाओ को एकत्र किया और उन्हे अपना निश्चय बतलाते हुये कहा कि या तो हम बूंदी पर अधिकार करेगे अथवा इस प्रयास मे अपने प्राण उत्सर्ग कर देगे। एकत्रित हाडाओ ने उसके भाग्य के साथ अपना भाग्य बाधने की प्रतिज्ञा की। कुछ दिन गुजर गये। इसके बाद नारायण दास ने अपने मुस्लिम चाचाओ के पास सदेश भिजवाया कि वह उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिये उनके पास आना चाहता है। असमय और असहाय युवक भतीजे से चाचाओ को किसी प्रकार के खतरे की सभावना नजर न आई और उन्होने उसे बूंदी आने की स्वीकृति दे दी।

कुछ अत्यधिक विश्वासी और पराक्रमी साथियो के साथ नारायण दास बूंदी के चौक मे पहुच गया। उसने अपने साथियो को वही छोड दिया और अकेला ही महल की तरफ बढा। दोनो चाचा एक कमरे मे बठे हुये बातचीत कर रहे थे और उनके पास कोई सेवक भी नही था। नारायणदास के मुखमडल पर हिंसा की रेखायें देखकर दोनो ने सुरग के रास्ते मे भागने का निश्चय किया और ज्यो ही प्रयास किया त्यो ही नारायणदास के खाडे ने बडे चाचा का सिर काट दिया और भाले ने दूसरे को घायल कर दिया। एक क्षण मे उसने दोनो चाचाओ को मौत के घाट उतार दिया। दोनो के कटे सिर लेकर वह देवी के मन्दिर मे पहुचा और पूर्व योजनानुसार ऊचे स्वर से जयघोष किया जिसे सुनते ही उसके साथी सनिक आ पहुचे और मुसलमान सनिको को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया। राजधानी का प्रत्येक हाडा भी उनकी सहायता को आ पहुचा। बहुत से मुस्लिम सनिक मारे गये और शेष अपने प्राण बचाकर भाग खडे हुये। बूंदी पर नारायणदास का अधिकार हो गया। महल के जिस कक्ष मे दोनो चाचा मारे गये थे दशहरे के उत्सव पर उस स्थान के पत्थर की पूजा बूंदी के राजपूत अब तक करते आ रहे है।[1]

नारायणदास का शरीर जितना विशालकाय था उतना ही वह साहसी और पराक्रमी भी था। भय नाम से वह परिचित न था और सकटो की चिन्ता न करता था। लेकिन अत्यधिक अफीम की लत ने उसके इन गुणो को मन्द कर दिया। उन दिनो मे राजपूतो मे अफीम का काफी प्रसार था। साधारण राजपूत एक पसे की अफीम को पर्याप्त समझता था परन्तु नारायणदास सात पसे की अफीम प्रतिदिन खा जाता था। इस अफीम के कारण ही उसके जीवन मे अवाछनीय घटनाए घटित हुई थी। माडू के पठानो द्वारा आक्रमण किये जाने पर मेवाड के राणा रायमल ने नारायणदास को अपनी सेना के साथ सहायता के लिये आने को लिखा। नारायणदास तत्काल अपने पाच सौ शूरवीरो के साथ चित्तौड के लिये चल पडा। पहले दिन उसने मार्ग मे विश्राम किया और अफीम का सेवन कर एक वृक्ष के नीचे लेट गया। उसके नेत्र बन्द थे और मुख खुला हुआ था। उसके मुख और होठो पर मक्खियाँ

भनक रही थी। उसी समय उस माग से एक तेली की स्त्री कुएँ से पानी लेने के लिये निकली और यह जानकर कि यह बूदी का राजा है और राणा को सकट के समय सहायता देने को जा रहा है उस स्त्री ने दुखी स्वर से कहा, "हे भगवान ! अपनी सहायता के लिय राणा को कोई दूसरा आदमी न मिला।" रजवाडे म एक आम कहावत है कि अफीमची की आखे तो बद रहती है परतु कान खुल रहत हैं। नारायणदास ने भी उस स्त्री की बात का सुना। क्रोधित राव उठ बठा और उस स्त्री का तरफ बढते हुय कहा 'तू क्या कह रही थी राड (विधवा)। उस स्त्री को भयभीत देखकर राव न उससे कहा "डरो मत ! अपनी बात फिर स कहो।' वह स्त्री कुछ न कह सकी। उसके हाथ म मजबूत लोहे की एक छड थी। राव ने वह छड उसके हाथ स ले ली और उसे पकड कर इस प्रकार से झुकाया कि वह गल म पहनन की हसली की शक्ल की हो गई। फिर उसने उस हसली को उस स्त्री के गल मे पहना कर उसके दोनो सिरो को इस तरह स मोडा कि वह हसली गले से उतारी ही न जा सक। इसके बाद राव न उससे कहा कि यदि तुम्हे कोई दूसरा आदमी इस हसली को उतारने वाला मिल जाय तो इस उतरवा लेना अन्यथा मेरे चित्तौड से लौटन तक इसे पहन रहना।

चित्तौड को अच्छी तरह स घेरा जा चुका था। पठार के गुप्त माग म होकर अपन पाच सौ सनिको के साथ रात्रि के समय नारायणदास न पठानो के शिविर पर अकस्मात आक्रमण कर सीधा उनके सेनापति के शिविर की तरफ बढा और माग म आन वाले शत्रु सनिको को मौत के घाट उतारता गया। थोडे समय बाद ही वह सेनापति के निवास स्थान के सामन पहुच गया। हाडाओ की भीषण मारकाट से पठान चारो तरफ भागने लगे और हाडाओ के नक्कार जयघोष करन लगे। प्रात काल होत ही राणा न सुना कि बूदी के नारायणदास न रात्रि मे आक्रमण कर पठानो को खदेड दिया है। राणा स्वय दुग से नीचे आया और अपने मुक्तिदाता को सम्मान के साथ चित्तौड दुग म ले गया। दुग मे उसको सम्मान देन के लिय एक विशाल सभा का आयोजन किया गया जिसम मेवाड के सभी साम त उपस्थित हुय। मेवाड की रानिया तथा राजकुमारिया ने भी कनात के पाछे से अफीम के प्रेमी उस विशालकाय पराक्रमी सरदार को देखा। राणा की एक भतीजी तो उससे इतना अधिक प्रभावित हो गई कि उसन उसी क्षण उस वीर पुरुष स विवाह करने का निश्चय कर लिया और अपनी सखियो के द्वारा अपन निश्चय की सूचना राणा तक पहुचा दी। राणा न प्रसन्नता के साथ इस बात को स्वीकार कर लिया और नारायणदास स बात की। उसन भी अपनी स्वीकृति द दी। धूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ और नारायणदास पत्नी के साथ बूदी लौट आया। धीरे धीरे नारायणदास पहले स और अधिक अफीम का सेवन करन लगा और एक दिन नशे के उन्माद म उसने रात के समय म मेवाड की राजकुमारी के सौन्दर्य को भारी क्षति पहुचा दी। प्रात जब उसन उसके चेहरे को देखा तो वह बहुत लज्जित हुआ यद्यपि उसकी पत्नी ने किसी

ार की शिकायत न की थी। नारायणदास जिस थाल म अफीम रखता था उसे नी रानी के हाथ म देकर प्रतिज्ञा की कि आज से म अधिक अफीम का सेवन नही रूगा। नारायणदास ने बत्तीस वर्ष तक शांति के साथ शासन किया और अपने मात्र पुत्र के लिये बूदी का सुविस्तृत राज्य छोड गया।

सवत् 1590 (1534 ई) म सूरजमल बूदी के सिंहासन पर बठा। वह ने पिता के समान बलिष्ठ साहसी और पराक्रमी था। रामचन्द्र और पृथ्वीराज भाति उसकी भुजाए भी काफी लम्बी और घुटनो तक जाती थी।[2]

चित्तौड के साथ एक बार पुन आपसी विवाह सम्बध हुये। सूरजमल ने नी बहिन सूजाबाई का विवाह राणा रत्नसिंह के साथ सम्पन्न किया और राणा नसिंह ने भी अपनी बहिन का विवाह सूरजमल के साथ सम्पन्न किया।[3] राव ज भी अपने पिता की भाति अफीम का सेवन करता था। एक दिन चित्तौड के बार म वह आखें मूदे बठा था। उसी समय मेवाड राज्य का एक पुरबिया सामन्त हा पर आया। सूरजमल को निद्रामग्न देखकर उसने मजाक के लिये एक तिनके उठा कर राव के कान म डाल कर हिलाया। राव को लगा जसे किसी शेर ने ला किया हो। उसने अपनी तलवार निकाली और उल्टे हाथ से उस सरदार का र काट कर जमीन पर गिरा दिया। उस सामन्त का पुत्र भी वहा पर उपस्थित । इस दृश्य को देख कर वह अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिये उत्तेजित उठा। परन्तु राव के विशालकाय शरीर को देख कर तथा उसे राणा का निकट जी जान कर उसने किसी प्रकार से अपने क्रोध को शान्त किया। परन्तु उसने णा को यह समझाने का प्रयास किया कि राव यहा अपनी बहिन से ही मिलने ी आया है अपितु कुछ अन्य बुरे इरादे से आया है। उधर सूजाबाई ने अपने पति र भ्राता का भोजन के लिये बुलवाया। दोनो भोजन करने बठे। सूजाबाई भी की सेवा के लिये उपस्थित थी। हिन्दू लडकियां म पतिवश की अपेक्षा पितृवश की सा करने की सामान्य आदत है। जब भोजन समाप्त हो गया तो सूजाबाई ने हज भाव से भाई की प्रशंसा करते हुये कह दिया, मेरे भाई ने सिंह के समान जन किया है जबकि राणा ने बाबा लोगो (बच्चे) की तरह से भोजन किया है।' णा ने उसके इन शब्दो से अपने को अपमानित अनुभव किया और उसने इसका दला लेने का निश्चय कर लिया। परन्तु घर आये अतिथि के साथ अशिष्ट व्यवहार रना अनुचित समझ कर उस समय राणा शान्त रहा। जब राव वापस जाने लगा राणा रत्नसिंह ने आगामी बसन्त ऋतु म फाल्गुण के उत्सव के समय बूदी के ल म शिकार खेलने के लिये आमन्त्रित किया। राव ने सहर्ष इस निमन्त्रण को ीकार कर लिया। फाल्गुण मास के समीप आने पर राव ने राणा के पास शिकार आने का निमन्त्रण भिजवाया। राणा अपने सामन्तो एव सनिको के साथ पठार माग से बूदी के लिये चल पडा। यद्यपि एक सती ने ववावदा मे चिता पर चढते

समय यह श्राप दिया था कि राव और राणा जब भी मिलकर शिकार करने आयेंगे, उनके लिये वह अवसर अनिष्टकारी सिद्ध होगा। परन्तु लोग उसे बीते दिनों की बात समझकर भूलने लग थे। चम्बल नदी के पश्चिमी किनारे नादता नामक विस्तृत वन्य क्षेत्र में शिकार खेलने का निर्णय पहले ही किया जा चुका था। राव भी अपने सामन्तों के साथ निश्चित समय पर आ पहुंचा। राव और राणा दोनों शिकार के लिये घने जंगल की तरफ चल पड़े।

उस घने जंगल में राणा रत्नसिंह ने अपने पिछले अपमान का बदला लेने की योजना पहले से ही बना रखी थी। दोनों शिकार की खोज में अपने सैनिकों से काफी दूर आ चुके थे। राणा के साथ पुरबिया सामन्त का वह पुत्र भी था जिसे सूरजमल से अपने पिता की हत्या का बदला लेना था। राणा ने उसको पहले से ही सारी योजना समझा दी थी। ठीक समय पर राणा ने उस सामन्त पुत्र को गुप्त संकेत करते हुये कहा कि इस अवसर पर क्या वाराह का शिकार करोगे। इस समय तक सूरजमल थोड़ा दूर निकल चुका था। उसने पीछे मुड़कर देखा। तभी सामन्तपुत्र ने उसकी तरफ अपना तीर छोड़ा। राव ने उस तीर को निष्फल कर दिया। तभी दूसरा तीर आया। अब सूरजमल को समझ में आ गया कि मेरे प्राण लेने का प्रयास किया जा रहा है। उसी समय राणा ने आगे बढ़कर उस पर अपनी तलवार का जोरदार प्रहार किया। सूरजमल घायल होकर घोड़े से नीचे गिर पड़ा और उधर राणा ने अपने घोड़े को मोड़कर वापसी का रास्ता पकड़ा। तब तक सूरजमल ने अपने घावों पर पट्टी बांधकर भागते हुये राणा को ललकारा। उधर उस सामन्तपुत्र ने दौड़कर राणा को सूचित किया कि सूरजमल अभी मरा नहीं है। यह सुनते ही राणा ने अपना घोड़ा मोड़ा और सूरजमल की तरफ बढ़ा। उधर से घायल सूरजमल भी आ रहा था। रास्ते में ही दोनों एक दूसरे के सामने आ गये। राणा ने तलवार हाथ में उठाकर राव पर आक्रमण करने की चेष्टा की परन्तु उसी समय राव ने उसको पकड़कर घोड़े से नीचे गिरा दिया और उसकी छाती पर चढ़कर एक हाथ से राणा का गला पकड़ा और दूसरे हाथ में तलवार लेकर उससे कहा देखो बदला इस तरह से लिया जाता है। यह कह कर उसने राणा रत्नसिंह की छाती में पूरी ताकत के साथ तलवार का गहरा प्रहार किया। राणा की उसी समय मृत्यु हो गई। राव को अपार संतोष मिला और वह स्वयं भी राणा के शरीर पर गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

बूंदी के राजमहल में शीघ्र ही यह सूचना पहुंच गई कि अहेरिया उत्सव में राव सूरजमल की हत्या कर दी गई। उसकी माता ने आश्चर्यचकित होकर पूछा 'मारा गया क्या वह अकेला ही मरा?' जब उस वृद्धा राजमाता को बतलाया गया कि मरने के पूर्व राव ने अपने हत्यारे राणा को भी स्वर्ग पहुंचा दिया तो उसे अपार संतोष मिला। उसे विश्वास था कि जिसको उसने दूध पिलाया था वह बदला लिये

जिना कमे मर सकता है ? राव और राणा—दोना की पत्निया अपने अपने पति के मृत शरीर के साथ सती हो गइ। दोना जहा मारे गये थे, उन स्थानो पर दोनो के समाधि मंदिर बनवाये गये जो उस दुघटना की याद को ताजा करते हैं।

सूरजमल के बाद, उसका लडका सुरतान सवत् 1591 (1535 ई) मे बूंदी के सिंहासन पर बठा। उसका विवाह मेवाड के शक्तावत वश के आदिपुरुष शक्तसिंह की लडकी के साथ हुआ था। राव सुरतान रक्तपिपासु युद्ध के देवता काल भरव' का कट्टर उपासक बन गया और उसके साथ मिलकर उसकी पूजा करने वाले लगभग समस्त राजपूत क्रूर तथा उग्र प्रवृत्ति के बनकर पतित होने लगे। इन अधर्मी लोगा का एक घृणित काय भरव को नरबलि चढाना था। उसके इस कृत्य से राज्य के साम त और दूसरे लोग उसस बहुत अधिक असतुष्ट हो गये और आपस मे परामश करक उसे सिंहासन से उतार दिया। चम्बल नदी के किनारे एक छोटा सा गाव उसको रहने के लिय दे दिया गया। सुरतान ने उस गाव का नाम सुरतानपुर रखा। चूंकि उसके कोई लडका न था अत सामन्तो ने बूंदी के भूतपूव राजा राव भाडा के दूसरे लडके नरबुध के लडके अर्जुन को मातोदा से लाकर बूंदी का राजा बनाया।

राव अर्जुन नरबुध के आठ पुत्रो म सबसे बडा था। राजपूता म यह एक आदत पाई जाती है कि उनकी जब किसी से शत्रुता हो जाती है तो वह पीढी दर पीढी चलती रहती है और वे एक दूसरे का सवनाश करने म किसी प्रकार को कमी नही करत। पर तु राव अर्जुन ने शत्रुता को भुलाकर राव सूरजमल के हत्यारे राणा रत्नसिंह के पुत्र क साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित किये और अपने हाडाओ के साथ राणा की सेवा करने लगा। गुजरात के बहादुरशाह ने जब चित्तौड को घेर लिया उस समय अत्यधिक पराक्रम का प्रदशन करते हुय चित्तौड की रक्षा के लिये प्राण न्यौछावर करन वाला हाडा सरदार राव अर्जुन ही था। इस अभियान का वणन यथास्थान पर पहल किया जा चुका है। हाडा कवि ने अपने ग्रन्थ मे अर्जुन की वीरता की जो प्रशसा की है उसकी पुष्टि मेवाड के इतिहास से भी होती है। अर्जुन क चार पुत्रो म से सबसे बडा सुरजन म 1589 (1533 ई) म सिंहासन पर बठा।[4]

सन्दर्भ

1 टाड न लिखा है कि बूंदी के प्राचीन महल म सीढी वाले कमरे क पास म उन्होंने वह पत्थर देखा था।

2 इस प्रकार की लम्बी भुजाओ वाल व्यक्ति का 'आजानुबाहु' कहत हैं।

3 बहुत से विद्वानो का मानना है कि ये वैवाहिक सम्बंध शास्त्रसम्मत नही थे। कवियो ने न जाने किस गूढ अर्थ से ऐसा कहा होगा, विदेशी होने के कारण टाड उनके सही अर्थ को नही समझ पाये। क्याकि रायमल की भतीजी का विवाह नारायणदास से हुआ। फिर नारायणदास की लडकी का विवाह रत्नसिंह से होना अनुचित प्रतीत है और उसी समय रत्नसिंह की बहिन का विवाह सूरजमल से होना–समझ मे नही आता।

4 राव अर्जुन के दूसरे पुत्र रामसिंह के वंशज रामहाडा के नाम से, तीसरे अखैराज के अखराज पोता और चौथे चादल के वंशज जसाहाडा के नाम से प्रसिद्ध हुये।

अध्याय 67

राव सुरजन से राव वुधसिंह

राव सुरजन के साथ ही बूंदी के लिए एक नये युग का सूत्रपात हुआ। अब तक उसके राजाओ ने स्वाधीनता का सुख भोगा था। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने सम्मानपूर्वक मेवाड के राणा की सहायता की थी। परन्तु अब उन्हें एक अधिक विस्तृत क्षेत्र म प्रवेश कर भारत के साम्राज्य के भावी इतिहास म एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त करना था।

बूंदी की कनिष्ठ शाखा के सामन्तसिंह ने शेरशाह के वशजो के निष्कासन के बाद रणथम्भौर के अफगान गवनर के साथ पत्र व्यवहार करके उस दुर्ग का आधिपत्य लेने का प्रयास किया और वह अपने प्रयास म सफल रहा। अफगान सरदार ने रणथम्भौर का दुर्ग सामन्तसिंह को सौंप दिया और सामन्तसिंह ने यह दुर्ग अपने राजा सुरजन को सौंप दिया। बूंदी के राज्य म इस प्रकार का सुदृढ और सुरक्षित दुर्ग कोई न था। इसलिए इस दुर्ग को पाकर राव सुरजन ने सामन्तसिंह का बडा सम्मान किया और उसको अपने राज्य म एक बड़ी जागीर प्रदान की। उसके वशज सामन्त हाडा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वेदला का चौहान सामन्त जो कि रणथम्भौर दुर्ग के हस्तान्तरण म सामन्तसिंह का मुख्य सहयोगी था, उसकी योजना यह थी कि बूंदी का राव इस दुर्ग को मेवाड की एक जागीर के रूप म अपने पास रखे। राव ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार काफी समय के बाद यह दुर्ग पुन चौहानो के अधिकार म आ गया। इसके पूर्व बहुत लम्बे समय तक मुसलमानो के अधिकार मे रहा था।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के कुछ समय बाद ही अकबर ने रणथम्भौर दुर्ग को लेने का निश्चय किया और वह स्वय अपनी सेना के साथ गया। मुगल सेना ने दुर्ग को घेर लिया। राव सुरजन ने मुगलो का बडा प्रतिरोध किया और अकबर को लगा कि इस दुर्ग पर अधिकार करना सम्भव न होगा। तब आमेर के राजा भगवानदास और उसके विख्यात पुत्र मानसिंह ने अकबर को विश्वास दिलाया कि वे अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके राव सुरजन को साम्राज्य की अधीनता म लाने की

चेष्टा करेंगे। राजा भगवानदास ने अपनी बहन का विवाह अकबर के साथ करके मुगलों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम कर लिये थे। उसने राव सुरजन से भेंट करने के लिए संदेशा भेजा। राव उसे अपना सजातीय समझता था। इसलिए उस पर विश्वास करते हुये उसे दुर्ग में आने दिया। अकबर भी छद्म रूप से मानसिंह के साथ दुर्ग में गया। राव सुरजन और मानसिंह में बातचीत का दौर शुरू हुआ। उसी समय राव के एक चाचा ने छद्मवेशी अकबर को पहचान लिया। उसने तुरन्त अकबर को सम्मान के साथ एक ऊंचे आसन पर बठाया। अकबर ने अपना मानसिक संतुलन साथ बिना सहज भाव से कहा "राव सुरजान, अब क्या करना चाहिये।" मानसिंह ने राव की तरफ देखते हुए कहा, 'आप चित्तौड़ के राणा की अधीनता को छोड़ दें, रणथम्भौर का दुर्ग सौंप दें और बादशाह के सेवक बनकर उच्च प्रतिष्ठा और पद को प्राप्त करें।' अपनी बात को जारी रखते हुए मानसिंह ने बादशाह की तरफ से अनेक प्रकार के प्रलोभन रखे। राव को बावन जिलों की सरकार और उससे होने वाली आय बहुत आकर्षक लगी और उसने मानसिंह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसी समय दोनों पक्षों के बीच एक संधि का होना निश्चित हुआ। दोनों के मध्य जो संधि सम्पन्न हुई उसकी मुख्य बातें इस प्रकार थी—

1 बूंदी के राजाओं को शाही हरम में डोला भेजने की घृणित प्रथा से हमेशा मुक्त रखा जायगा। अर्थात् हाडा राजवंश की कोई कन्या मुगलों को विवाह में नहीं दी जायगी। 2 बूंदी राज्य को जजिया कर से मुक्त रखा जायगा। 3 बूंदी के राजाओं को कभी भी अटक के उस पार सेवा के लिए नहीं कहा जायगा। 4 नौरोजा के उत्सव पर लगने वाले 'मीना बाजार' में बूंदी के सामन्तों की पत्नियां और अन्य स्त्रियों को दुकान लगाने से मुक्त रखा जायगा। 5 बूंदी के राजाओं को दीवान आम (बादशाही दरबार) में सशस्त्र जाने की सुविधा दी जायगी। 6 बूंदी के पवित्र स्थानों का सम्मान सुरक्षित रखा जायगा। 7 उन्हें कभी किसी हिन्दू सेनानायक के नेतृत्व में सेवा करने के लिए नहीं कहा जायेगा। 8 उनके घोड़ों को बादशाही मुहर से कभी नहीं दागा जायगा। 9 दिल्ली में आने पर उन्हें लाल दरवाजे तक अपने नक्कारों को बजाने की सुविधा दी जायगी और दरबार में प्रवेश करते समय कमर झुकाकर अभिवादन करने के लिए नहीं कहा जायगा। 10 बूंदी के राजा को अपनी राजधानी में वही अधिकार होंगे जो अधिकार दिल्ली में बादशाह को हैं और बादशाह उन्हें गारन्टी दे कि उन्हें राजधानी को बदलने के लिए नहीं कहा जायगा।

उपर्युक्त शर्तों के अलावा बादशाह ने राव को पवित्र काशी में रहने के लिए निवास प्रदान किया और राजपूतों को जो चीज सबसे अधिक प्रिय है 'शरणा' का अधिकार, वह भी प्रदान किया और उसका बराबर पालन किया जाता रहा। इस प्रकार के प्रलोभन और उसकी सभी शर्तों को मान लेने पर, हमें कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं होता जब राव ने मेवाड़ के प्रति अपनी नाममात्र की अधीनता को उतार फेंका

ग्रौर खासकर ऐसे समय मे जब राणा ग्रपनी राजधानी को खो चुका था । परन्तु राव का यह काम शूरवीर साम तसिह हाडा जिसके प्रयास स ही राव को रणथम्भौर का दुग प्राप्त हुग्रा था, को पस द न ग्राया ग्रौर उसने कुछ चुने हुए हाडा शूरवीरो के साथ लाल वस्त्र धारण कर यह प्रतिज्ञा की कि ग्रकवर इस दुग का ग्रधिकार हमारी लाशो के ऊपर गुजर कर ही प्राप्त कर सकेगा । उसन ग्रौर उसके साथियो ने राणा के प्रति ग्रपनी निष्ठा को निभाते हुए ग्रपने प्राणो की ग्राहुति दे डाली । इसके साथ ही मेवाड के साथ हाडाग्रो की निष्ठा समाप्त हो गई । इस समय से बूदी के राजा "राव राजा" की उपाधि धारण करने लगे ।[1]

शीघ्र ही राव सुरजन का दिल्ली से बुलावा ग्रा पहुँचा । बादशाह ने उसे ग्रपनी सेना का सेनापति बनाकर गोडवाना को जीतन के लिए भेजा । उसने गोडो की राजधानी बाडी पर ग्रधिकार कर लिया ग्रौर ग्रपनी विजय की स्मृति म उस राजधानी म सुरजनपोल नाम का एक दरवाजा बनवाया । सुरजन ग्रपने साथ कई गोड सरदारो को कैद कर बादशाह के पास ले ग्राया ग्रौर बादशाह से प्रार्थना की कि उनको रिहा करके राज्य के कुछ हिस्से का ग्रधिकारी बना दिया जाय । ग्रकबर राव की विजय तथा उदारता से प्रभावित हुग्रा ग्रौर उसन राव की बात को मानते हुए उन्हे कुछ गावो ग्रौर नगरो का ग्रधिकार दे दिया । इस ग्रवसर पर बादशाह ने राव को भी वाराणसी तथा चुनार के साथ-साथ पाच ग्रन्य नगरो का ग्रधिकार प्रदान किया ।[2] यह बात सवत् 1632 (1576 ई) की है जब राणा प्रताप ने शाहजादे सलीम के विरुद्ध हल्दीघाटी का युद्ध लडा था ।

वाराणसी म रहते हुए राव सुरजन ने कई ऐसे काय किये जिससे उसकी उदारता, बुद्धिमता ग्रौर परापकारिता की प्रसिद्धि चारो तरफ फल गई ।[3] उसके कारण सम्पूर्ण साम्राज्य म हिन्दू धम का सम्मान मिला । उसके सुयोग्य प्रशासन तथा पुलिस की सतकता के कारण सम्पूर्ण प्रदेश मे चारो ग्रोर लुटेरो का भय समाप्त हो गया । उसन नगर का सौन्दय बढाने के लिए एक ग्रत्यन्त रमणीक महल बनवाया ग्रौर सावजनिक उपयोग के लिय चौरासी स्थान बनवाये । गगा के किनारे स्नान करने के लिए उसन बीस सुदृढ घाटो का निर्माण करवाया । वाराणसी म ही उसकी मृत्यु हो गई ।[4] वह ग्रपने पीछे तीन पुत्र छोड गया–1 राव भोज 2 दूदा बादशाह इसको लक्कड खा के नाम से सम्बोधित करता था ग्रौर 3 रायमल । रायमल को पलायता नामक नगर ग्रौर उसके ग्राम मिल जो ग्रब कोटा राज्य की जागीरो म सम्मिलित है । राव भोज ग्रपने पिता के सिहासन पर बठा ।

इसी समय के ग्रासपास ग्रकबर ने ग्रपनी राजधानी दिल्ली स उठाकर ग्रागरा मे कायम की ग्रौर वहा ग्रनेक प्रकार के निर्माण काय करवाकर उस नगर का नाम ग्रकबराबाद रखा । गुजरात को ग्रपनी ग्रधीनता म लाने का दृढ निश्चय कर

अकबर ने एक विशाल सेना भेजी और कुछ दिनो बाद वह स्वय भी एक और सेना लेकर वहा गया। मरूभूमि के राजाओ की भाति अकबर ने ऊटो की दो सेनायें गठित की। प्रत्येक म पाच सौ ऊट थे और प्रत्येक ऊट पर दो शूरवीर राजपूत सनिक थे। आराम के स थ यात्रा करता हुआ अकबर अपनी पहली वाली सेना के साथ जा मिला, जो उस समय सूरत का घेरा डाल पडी थी। अन्तिम आक्रमण के दौरान हाडा राव ने शत्रु के सरदार को मार डाला। उस अवसर पर अकबर ने उससे पुरस्कार मागने को कहा। राव ने अपने पुरस्कार को प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु म स्वदेश जाने की अनुमति प्रदान किये जाने तक ही सीमित रखा। बादशाह ने प्रसन्नता के साथ उसकी बात मान ली।

भारत के सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना और सुदृढीकरण के उद्देश्य से अकबर के निरतर युद्धो ने राजपूतो को अपने शौर्य एव पराक्रम का प्रदर्शन करने के लिये स्वर्ण अवसर प्रदान किया और हाडा लोग सकटपूर्ण मोर्चो तथा सम्मान के क्षेत्र मे हमेशा आगे रहे। सुप्रसिद्ध अहमदनगर के दुर्ग की घेराबदी ने हाडा राजपूतो को अपना पराक्रम दिखाने का उत्तम अवसर प्रदान किया और एक बार फिर उन्होने आगे बढ कर भाग लिया और अपने पराक्रम के द्वारा अनेक पुरस्कार अर्जित किये। अहमदनगर के दुर्ग को जीतने के लिये अकबर ने राव भोज को प्रधान सेनापति बना कर भेजा। भोज ने अपने सनिको के साथ दुर्ग की दीवारो को लाघकर शत्रुओ को परास्त कर उस पर अधिकार कर लिया और अकबर ने प्रसन्न होकर उसे अपना हाथी पुरस्कार मे दिया और जिस स्थान से उसने दुर्ग म प्रवेश किया था उसका नाम भोज बुर्ज' रखा। इस अभियान के दौरान अहमदनगर की रानी चादबीबी अपनी सात सौ स्त्रियो के साथ दुर्ग की रक्षा करती हुई मारी गयी।[5]

राव भोज की उपयुक्त सभी सेवाओ को ध्यान मे न रखते हुये बादशाह राव भोज से नाराज हो गया। अपनी पत्नी जोधाबाई की मृत्यु पर बादशाह ने दरबार म शोक मनाने का आयोजन किया और सभी राजाओ सरदारो से अपेक्षा की गई थी कि वे अपने बादशाह के शोक म शरीक होगे। उसने यह भी आदेश निकाला कि हिंदू मुस्लिम सभी सरदार अपनी मूछें तथा दाढी साफ करवाकर इसम भाग लेगे। शाही आदेश का पालन करने के लिये राजकीय नाइयो ने अपना काम करना शुरू कर दिया। परतु जब नाई लोग दिल्ली स्थित बूदी के राजा के निवास स्थान पर गये तो हाडा के सनिको ने उन्हे मार कर भगा दिया। राव भोज के शत्रुओ ने उसके इस कृत्य का विरोध करते हुये बादशाह को उकसाने का काम किया और उन्होने बादशाह को यह समझाने का प्रयास किया कि नाइयो के प्रति जो व्यवहार किया गया है, वह मारवाड की राजकुमारी और बादशाह की मृत रानी की स्मृति का अपमान है। उसने मृत रानी के बारे मे कई अपशब्द भी कहे हैं। इन सब बातो को सुनकर बादशाह क्रोधित हो उठा और उसने आदेश दिया कि राव भोज को जबर

दस्ती बाधकर उसकी दाढी ग्रौर मूछो को साफ कर दिया जाय । बादशाह के ग्रादेश की जानकारी मिलते ही बूदी की हवेली के समस्त हाडा राजपूत उत्तेजित हो उठे ग्रौर ग्रपने ग्रस्त्र शस्त्रो को सभाल कर मरने-मारने को तयार हो गये । जब ग्रकबर को इसकी जानकारी मिली तो उसको ग्रपने ग्रन्यायपूर्ण ग्रादेश पर पश्चाताप हुग्रा ग्रौर राव भोज को सतुष्ट करने के लिये वह स्वय उसके निवास स्थान पर गया । बादशाह को देखते ही हाडा राजा ने उसका पूर्ण ग्रादर-सम्मान करते हुये निवेदन किया कि वह ग्रपने पिता की भाति सूग्रर का माम सेवन करता है, इसलिये वह उस पवित्र रानी के शोक ग्रायोजन म भाग लेने का ग्रधिकारी नही है । इससे बादशाह सतुष्ट हो गया ग्रौर वह राजा भोज को ग्रपने साथ लेकर राजमहल लौट ग्राया ।[6]

बूदी के सस्मरणो के इस भाग म ग्रकबर की मृत्यु का भी उल्लेख किया गया है । उसने राजा मानसिंह से ग्रसतुष्ट होकर विष के द्वारा उसको मारने की योजना बनाई । लेकिन निश्चित समय पर भ्रमवश मानसिंह को दिये जाने वाला विष वह स्वय खा बठा जिससे उसकी मृत्यु हो गई । ग्रकबर की मृत्यु के कुछ दिनो बाद राजा भोज की भी मृत्यु हो गई । वह ग्रपने पीछे तीन पुत्र छोड गया—राव रतन हिरदेव नारायण ग्रौर केशवदास ।

इस समय जहागीर बादशाह था । उसने ग्रपने पुत्र परवेज को दक्षिण भारत की सरकार का शासनाधिकार सौपा था । परतु शाहजादे खुरम ने ग्रपने भाई से जलन होने के कारण उसके विरुद्ध षडयन्त्र रच कर उसे मार डाला । इस हत्या के बाद बादशाह जहागीर को सिंहासनच्युत करने की योजना बनी । चूकि खुरम ग्रामेर की राजकुमारी का पुत्र था, ग्रत वह राजपूतो मे विशेष लोकप्रिय था । बाईस राजपूत राजाग्रो ने उसका साथ दिया, परतु बूदी के राव रतन न बादशाह का साथ दिया ।[7]

राव रतन ग्रपने दोनो पुत्रो–माधोसिंह ग्रौर हरिसिंह के साथ बुरहानपुर की तरफ बढा ग्रौर विद्रोहियो के ऊपर पूर्ण विजय प्राप्त की । यह भयानक युद्ध सवत् 1635 (1579 ई०) म कार्तिक शुक्ल पक्ष मगलवार के दिन लडा गया जिसम उसके दोनो पुत्र गभीर रूप से घायल हुये । इन सेवाग्रो के लिये राव रतन को बुरहानपुर की सरकार स पुरस्कृत किया गया ग्रौर उसके दूसरे लडके माधोसिंह को कोटा नगर ग्रौर उसके सभी नगरो ग्रौर गावो के शासनाधिकार की सनद् दी गई । उसे सीधे बादशाह के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया । इसी समय से हाडौती राज्य दो भागो म विभाजित हो गया । परतु ऐसा करते समय बादशाह राव रतन की महान् सेवाग्रो को भुला बठा । उसका भी एक कारण था । उसे शूरवीर हाडाग्रो की शक्ति से हमेशा भय बना रहता था । ग्रत उनके राज्य का दो हिस्सो म बाटकर वह एक दूसरे की सहायता स सम्पूर्ण हाडाग्रो पर शासन कर सकता था । शाहजहा न माधोसिंह

को दी गई सनद् को बरकरार रखा जिसका विवरण कोटा के इतिहास मे किया जायगा।

बुरहानपुर का शासन करत समय राव रतन न वहा एक नगर की प्रतिष्ठा की जा ग्राज भी उसके नाम पर रतनपुर कहलाता है। उसन इन्ही दिनो एक ग्रौर महत्वपूर्ण सेवा की जिससे बादशाह ता प्रसन्न हुग्रा ही पर तु उसका भूतपूव ग्रधीश्वर मेवाड का राणा भी बहुत सतुष्ट हुग्रा। शाही दरबार का एक विद्रोही ग्रमीर दरियाखा इन दिनो मेवाड राज्य मे लूटमार करक ग्रपना गुजारा चला रहा था। तब हाडा राजा ने उस पर ग्राक्रमण करके उसे बदी बनाकर दरबार म ले गया। बादशाह ने प्रसन्न होकर राव रतन को एक दल नौबत के बाजे का दिया। साथ ही उसको ग्रपन शिविर क स्थान पर लाल ध्वज फहराने का सम्मान प्रदान किया ग्रौर ग्रभियान क समय ग्रपनी सेना के ग्राग पीले रग का ध्वज फहरान की ग्रनुमति प्रदान की। राव रतन के वशज ग्रब तक उस सम्मानसूचक ध्वज का प्रयोग करत है। राव रतन न ग्रपनी सेवाग्रो क द्वारा न केवल राजपूता ग्रपितु सम्पूर्ण हि दू जाति के हितो की रक्षा के लिये ग्रथक प्रयास किया जिसस हि दुग्रो को कई प्रकार के ग्रत्याचारो स राहत मिल गई। हाडा राजपूत गव क साथ कहा करत थे कि जिस क्षेत्र म हाडा तनात किये जात है उस क्षेत्र म कोई भा मुसलमान पवित्र गौ का रक्त बहाने का साहस नही कर सकता। ग्र त म बुरहानपुर के निकट एक युद्ध क दौरान राव रतन की मृत्यु हो गई। वह सम्पूर्ण हाडा जाति का नाम उज्जवल बना गया।

राव रतन के चार पुत्र थ। गोपीनाथ बू दी का युवराज था। माधोसिह को कोटा मिल चुका था। हरिजी को गू गर की जागीर मिली। मेरे समय म उसके वशजो के पचास लोगो का परिवार नीमोदा नामक गाव मे रहता था। चौथे लडक जगन्नाथ की मृत्यु हा गई। गोपीनाथ बू दी राज्य के बलदिया वश क एक ब्राह्मण की सु दर युवा पत्नी के प्रेम म फस गया ग्रौर उससे मिलन के लिये रोज रात्रि के ग्रधेरे मे ब्राह्मण के घर म चुपचाप पहुच जाता था। एक ग्रवसर पर उस ब्राह्मण ने राजकुमार को पकड लिया ग्रौर उसके हाथ पर बाध कर ग्रपन मकान म ब द कर दिया ग्रौर सीधे राजमहल म जाकर राव रतन से उसने सारा वृत्ता त सुनाया। इसके बाद उस ब्राह्मण ने राव स पूछा कि ग्रपराधी को क्या सजा दी जाय। राव का उत्तर था—प्राणदण्ड। ब्राह्मण न घर ग्राकर तलवार स गोपीनाथ का सिर काट दिया ग्रौर मृत शरीर को मकान के बाहर फेंक दिया। यह समाचार राव रतन के पास पहुचा कि बू दी का उत्तराधिकारी मारा गया है ग्रौर उसका मृत शरीर शहर के माग पर पडा है। राव रतन न हत्यारे का पकड कर मृत्यु की सजा देन को कहा। पर तु जब उस ब्राह्मण ने राव को उसके निर्णय की याद दिलाई तो राव रतन चुप हो गया ग्रौर उस ब्राह्मण को रिहा कर दिया गया।

गोपीनाथ के वारह लडक थ । राव रतन न उन सभी को अपन राज्य म पृथक पृथक जागीरें दी और वे वू दी राज्य के प्रमुख साम त मान जाते है । कुछ का विवरण इस प्रकार है—1 राव छत्रसाल—वूदी का राजा बना । 2 इ द्रसिह जिसने इन्द्रगढ की प्रतिष्ठा की । 3 वरीसाल न बलवन और फिलोदी नाम के दो नगर बसाय । उसे करवर और पिपलादा नाम के नगरो का अधिकार मिला था । 4 माखिमसिह—उस आतरदा नाम की जागीर मिली । 5 महासिह को थाना की जागीर मिली । अ य पुत्रो के कोई सताने नही हुई अत उनका विवरण देना निरथक है ।

राव रतन के बाद उसका पोता राव छत्रसाल वू दी क सिंहासन पर बठा । शाहजहा न स्वय वू दी जाकर उसका तिलक किया और उसे न केवल उसके पतक राज्य क शासन का अधिकार ही दिया अपितु शाही राजधानी का गवनर भी नियुक्त किया । उसका यह पद उसके जीवन भर कायम रहा । जब शाहजहा न अपन चारो पुत्रो को चार सूवो के शासन का अधिकार सापा ता राव छत्रसाल को औरगजेब क अधीन सेनापति का पद दकर दक्षिण भेज दिया गया । हाडा राव न दक्षिण क सभी युद्धा म अत्यधिक ख्याति अर्जित की खासकर दौलताबाद और बीदर नामक दुर्गों पर किये गय आक्रमणा म । बीदर दुग क आक्रमण का नतृत्व स्वय छत्रसाल न किया और सभी दुगरक्षको को मौत के घाट उतार कर उसन उस दुग का जाता था । सवत् 1709 (1653 ई०) म गुलवगा का भयकर युद्ध लडा गया और दुगरक्षको के जबरदस्त प्रतिरोध क बाद उस दुग पर अधिकार किया जा सका और इस अवसर पर भी हाडा राव न अपूव पराक्रम का प्रदशन किया । इसक बाद धामूनी के दुग को जीता गया । इसके बाद दक्षिण म शा ति स्थापित हो गई ।

इ ही दिना म दक्षिण म बादशाह शाहजहा की मृत्यु की अफवाह फल गई और जब शाहजादे औरगजब न लगातार बीस दिन तक दरबार नही लगाया और न हो किसी व्यक्ति स मिला तो लोगा का इस अफवाह म विश्वास होन लग गया । इस समय बादशाह के पुत्रा म स केवल दारा शिकोह ही राजधानी दिल्ली म था और राजधानी स अनुपस्थित उसक भाइया न राजसिंहासन पर अपना अपना अधिकार जमान का निश्चय किया । सबस पहल शुजा बगाल स चला । औरगजब न भी दक्षिण म चलन की तयारी की पर तु उसन मुराद को सदेश भिजवाया कि म शासन के प्रति उदासीन हो चुका हू और हजरत मुहम्मद साहब की शिक्षाओ क अनुसार एका त म जीवन व्यतीत करना चाहता हू । दारा एक काफिर है तुम स्वत विचारो वाला व्यक्ति है और म एक फकीर हूँ । एसी स्थिति म शाहजहा केवल तुम ही सिंहासन पर बठन क अधिकारी हो और तुम्ह सिंहासन म अपनी सारी शक्ति लगा दू गा । अत तुम सेना सहित मुल्तस मा [illegible]

जब बादशाह को औरंगजेब की कार्यवाहियों की सूचना मिली तो उसने गुप्त रूप से हाडा राजा को पत्र लिखकर दरबार में उपस्थित होने का संदेशा भिजवाया। बादशाह का संदेशा मिलने पर हाडा राजा ने दिल्ली जाने का निश्चय कर दक्षिण से प्रस्थान करने की तैयारी की। औरंगजेब को जब इसकी सूचना मिली तो उसे छत्रसाल के इस प्रकार दिल्ली जाने के कारण की चिंता हुई और वह उस कारण को जानने के लिए अधीर हो उठा। उसने हाडा राजा से कहा कि इतनी भी क्या जल्दी है आप मेरे साथ दरबार के लिए कूच कर सकते हैं। इस पर छत्रसाल ने उसे शाही फरमान अथवा संदेशा दिखाते हुए कहा कि उसका पहला कर्त्तव्य अपने मौजूदा बादशाह का आदेश पालन करना है। औरंगजेब ने उसे रोकने का निश्चय कर लिया और उसके शिविर को चारों तरफ से घेर लिया। छत्रसाल को पहले से ही इस स्थिति का आभास हो गया था अतः उसने अपना सारा आवश्यक एवं बहुमूल्य सामान पहले ही अपने एक सैनिक दस्ते के साथ भेज दिया था। उसने अपने शिविर में केवल उन्हीं मुगल सैनिकों को रख छोड़ा था जो बादशाह शाहजहां के प्रति निष्ठावान थे। इसके बाद वह उनके साथ औरंगजेब की घेराबंदी को तोड़कर दक्षिण से चल पड़ा। नर्मदा नदी तक औरंगजेब की सेना ने उसका पीछा किया परन्तु हाडा सेना पर आक्रमण करने का साहस नहीं जुटा पाई। उस समय नर्मदा नदी उफान पर थी। छत्रसाल ने कुछ सालवी सरदारों की सहायता से नदी को पार किया। वहां से वह अपने राज्य बूंदी को चला गया। कुछ दिनों तक विश्राम करने और अपने राज्य की व्यवस्था को संगठित कर वह अपनी सेना सहित दिल्ली चला गया।

इसके कुछ दिनों बाद ही फतेहाबाद का युद्ध लड़ा गया और इस युद्ध में औरंगजेब की विजय ने सिंहासन के मार्ग में विद्यमान कठिनाइयों को दूर कर दिया। इस युद्ध में राव छत्रसाल के न जाने के कारण की कोई जानकारी हमें नहीं मिलती परन्तु मालूम होता है कि बादशाह अकबर के साथ उसके पूर्वजों ने जो संधि की थी उसकी एक शर्त यह थी कि बूंदी के राजाओं को किसी भी अन्य हिन्दू राजा की अधीनता में युद्ध करने के लिए नहीं भेजा जायगा। छत्रसाल के न भेजे जाने का शायद यही कारण रहा हो।[8] परन्तु बूंदी राजवंश की कनिष्ठ शाखा—कोटा का राजा अपने चार भाइयों के साथ बादशाही सेना के साथ इस युद्ध में गया था और उसके चारों भाई युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे। अपने पिता के कमजोर हाथों से ताज छीनने के पहले, औरंगजेब को अपने बड़े भाई दारा से एक निर्णायक युद्ध लड़ना पड़ा था। धौलपुर के इस युद्ध में वे सभी राजपूत दारा के साथ थे जो शाहजहां को अब भी अपना वैधानिक बादशाह मानते थे। इस अवसर पर हाडा राजा भी अपने सैनिकों के साथ सम्मिलित हुआ और उसने दारा की सेना के अग्र भाग का नेतृत्व किया था। दारा स्वयं एक हाथी पर सवार होकर युद्ध करने आया था और जब युद्ध का निर्णय उसके पक्ष में जा रहा था तभी अचानक दारा युद्धक्षेत्र से भाग

निकला। उसके हटते ही बादशाह के सैनिक भी भागने लगे। उस अवसर पर छत्रसाल ने अपने सनिको को ललकारते हुए कहा कि हमारा कोई सनिक युद्ध से नही भागेगा। हमने जिसका नमक खाया है उसके प्रति निष्ठावान रहेंगे। या तो युद्ध मे जय प्राप्त करेंगे अथवा लडते हुए अपने प्राण उत्सर्ग कर देंगे। इसके बाद उसने अपने हाथी को आगे बढाया और शत्रुओ का सहार करने लगा। तभी उसके हाथी पर एक गोला आ गिरा और हाथी युद्ध मदान से भाग खडा हुआ। छत्रसाल भागते हुए हाथी की पीठ से कूद पडा और घोडे पर सवार हो युद्ध करने लगा। उसने शाहजादे मुराद को अपना लक्ष्य बनाकर दाहिने हाथ से भाला फेंका परन्तु उससे पहले ही उसके मस्तक में शत्रु की गोली लगी जिससे उसका निशाना चूक गया। मुराद बच गया परन्तु छत्रसाल उसी समय मारा गया। उसके मरते ही उसके छोटे पुत्र भरतसिंह ने नेतृत्व सम्भाला और युद्ध को जारी रखा। छत्रसाल का भाई मोखिमसिंह अपने दोनो लडको और भतीजे के साथ भयकर सघर्ष कर रहा था। शत्रुओ का सहार करते हुए भरतसिंह भी वीरगति को प्राप्त हुआ। हाडाओ के प्रत्येक सरदार और सनिक ने लडते-लडते वीरगति प्राप्त की, परन्तु उनमे से एक ने भी भागकर प्राण बचाने की चेष्टा नही की। यह था हाडाओ का चरित्र और पराक्रम। इस प्रकार के उदाहरणो के लिए हम कहा दृष्टिपात करें ?

राव छत्रसाल ने अपने जीवन मे बावन युद्धो मे भाग लिया और अपनी स्वामिभक्ति, पराक्रम तथा बहादुरी के कारण अपना नाम अमर कर गया। उसने बूंदी के राजमहल में कुछ निर्माण कार्य करवाकर उसका विस्तार किया और उस भाग का नाम 'छतर महल" रखा। पाटन नामक स्थान पर उसने भगवान केशवराय का एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया। सवत् 1715 में उसकी मृत्यु हुई। उसके चार लडके हुए—राव भावसिंह भीमसिंह जिसे गूगोर की जागीर मिली भगवन्तसिंह जिसे मऊ प्राप्त हुआ और भरतसिंह जो धौलपुर के युद्ध में मारा गया।

दिल्ली के सिंहासन पर बठने के बाद औरगजेब ने छत्रसाल के प्रति अपने तमाम आक्रोश का बदला उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राव भावसिंह से लेने का निश्चय किया। उसने शिवपुर के गौड राजा आत्माराम को बूंदी पर आक्रमण कर समस्त उपद्रवी और विद्रोही हाडा जाति का दमन करने तथा बूंदी का राज्य रणथम्भोर की सरकार मे मिलाने का आदेश दिया और कहा कि दक्षिण जाते समय वह स्वय बूंदी आकर उसको उसकी सफलता पर बधाई देगा। राजा आत्माराम बारह हजार सनिको के साथ बूंदी पहुचा और चारो तरफ विध्वस और विनाश शुरू कर दिया। उसने बूंदी की मुख्य जागीर के अन्तर्गत खातौली नगर का घेरा डाल दिया। हाडाओ ने चुपचाप एकत्र होकर गोठडा नामक स्थान पर आत्माराम से युद्ध किया और उसे परास्त करके खदेड दिया। हाडाओ ने उसका पीछा करके उसकी समस्त युद्ध सामग्री और शाही झण्डा छीनकर अपने अधिकार मे कर लिया। इससे भी उन्हें

सतोष नही मिला और उ होने शिवपुर को जाकर घेर लिया। पराजित ग्रात्माराम हाडाग्रो के इस नये ग्राक्रमण की शिकायत करने के लिए औरगजेब के पास जा पहुचा। औरगजेब ने हाडाग्रो से पराजित होकर भाग ग्राने पर उसका तिरस्कार करके उसे बिदा किया। औरगजेब राजपूतो के पराक्रम से अपरिचित न था। ग्रत उसने हाडाग्रो से मेल करना ही उचित समझा। उसने राव भावसिंह के पास एक फरमान भेजा जिसमे उसे क्षमा करने का ग्राश्वासन दिया गया तथा उसे शाही दरबार मे उपस्थित होने के लिए कहा गया। लेकिन भावसिंह ने जाना उचित नही समझा। इस पर औरगजेब ने उसे पुन पत्र लिखकर ग्राश्वस्त किया कि ग्रापको किसी प्रकार के ग्रनिष्ट की ग्राशका नही करनी चाहिए। तब भावसिंह अपनी सेना सहित दिल्ली गया जहा बादशाह ने उसके साथ सम्मानपूर्ण यवहार किया और शाहजादा मुग्रज्जम के ग्र तगत उसे औरगाबाद का शासनाधिकारी नियुक्त किया। यहा उसने अपनी स्वत त्र मनोवृत्ति का परिचय देते हुए बीकानेर के राजा करण का सर्वनाश करने के लिये जो षडय त्र रचा गया था, उस षडय त्र को नष्ट करके करण की जीवन रक्षा की। दक्षिण मे उसने बु देला के ग्रोडछा तथा दतिया राज्यो के राजपूतो के साथ मिलकर अनेक युद्धो मे अपनी वीरता का प्रदर्शन किया। औरगाबाद मे उसने कई सार्वजनिक इमारते बनवाई। उसने अपने साहस शौर्य और उदार व्यवहार के द्वारा वहा के लोगो की प्रशसा प्राप्त की। सवत् 1738 (1682 ई) मे औरगाबाद मे ही राव भावसिंह की मृत्यु हो गई। उसके कोई पुत्र न होने से उसके भाई भीमसिंह का पोता अनिरुद्ध उसका उत्तराधिकारी बना।

औरगजेब ने अनिरुद्ध के उत्तराधिकार की पुष्टि कर दी। उसके पूर्वज के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करते हुये बादशाह ने उसके अभिषेक के अवसर पर सनद के साथ अपना स्वय का हाथी "गज गौहर" भिजवाया। दक्षिण के युद्धो मे अनिरुद्ध बादशाह औरगजेब के साथ गया और एक अवसर पर शाही हरम की स्त्रियो को शत्रुग्रो के हाथो मे पडने से बचाकर महत्वपूर्ण सेवा की। बादशाह ने प्रसन्न होकर उससे पुरस्कार मागने को कहा। अनिरुद्ध ने कहा कि मुझे ग्रापके पीछे चलने वाली सेना का अधिकारी बनाया गया है। मै चाहता हू कि मुझे सेना के ग्रागे चलने का अधिकार दिया जाय। बादशाह ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया। बीजापुर के अभियान और घेराव दी के समय अनिरुद्ध ने अपने इस नये पद की सार्थकता सिद्ध कर दी।

बू दी राज्य के प्रमुख साम त दुर्जनसिंह के साथ एक दुर्भाग्यपूर्ण झगडे ने राव को सकट मे डाल दिया। कुछ अप्रिय शब्दो का प्रयोग करते हुये राव ने गुस्से मे कहा कि मुझे मालूम है कि ग्राप से क्या अपेक्षा की जानी चाहिये।" दुर्जनसिंह ने अपनी निष्ठा को त्यागने का सकल्प कर लिया। वह चुपचाप दक्षिण से अपनी जागीर को लौट ग्राया और अपने वश के लोगो को एकत्र कर बू दी पर ग्राक्रमण

कर उसे अपने अधिकार में ले लिया । इसकी सूचना मिलते ही औरंगजेब ने अनिरुद्ध को अपनी एक सेना देकर बूंदी से विद्रोही दुर्जन को मार भगाने का आदेश दिया । अनिरुद्ध ने वहां जाकर दुर्जन को मार भगाया और उसकी जागीर को भी जब्त कर लिया । दुर्जन ने भागने से पहले अपने भाई बलवंत को बूंदी के राजा के रूप में अभिषेक कर दिया था । उसे सिंहासन से उतार दिया गया । इसके बाद अनिरुद्ध ने अपने राज्य की पुनः व्यवस्था की । इसके बाद राव अनिरुद्ध के आमेर के राजा विशनसिंह के साथ साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्र की व्यवस्था करने के लिये भेजा गया । ये क्षेत्र बादशाह के पुत्र शाहजादे शाह आलम के शासनाधिकार में थे और उसका मुख्यालय लाहौर में था । इसी काम को करते हुये अनिरुद्ध की मृत्यु हो गई ।[9]

अनिरुद्ध अपने पीछे दो लड़के छोड़ गया—बुधसिंह और जोधसिंह । बुधसिंह अपने पिता के राज्य तथा पद का उत्तराधिकारी बना । इसके कुछ दिनों बाद ही औरंगजेब औरंगाबाद में बीमार पड़ गया और उसका अंतिम समय निकट जानकर सामंतों और अमीरों ने उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने को कहा । औरंगजेब ने उत्तर दिया कि उत्तराधिकार ईश्वर के हाथ में है, मेरी अपनी इच्छा यह है कि शाह आलम सिंहासन पर बैठे परंतु उसे आशंका है कि शाहजादा आजम शस्त्रबल से सिंहासन प्राप्त करने की चेष्टा अवश्य करेगा । औरंगजेब ने जैसा कहा वैसा ही हुआ । दक्षिण की सेना के समर्थन से आजम ने अपने भाई के साथ उत्तराधिकार संघर्ष लड़ने का निर्णय किया और धौलपुर के मैदान पर इसका फैसला हुआ । बहादुरशाह ने अपने सभी समर्थक सरदारों को बुलाकर उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट की । उन सरदारों में राव बुधसिंह भी था । यद्यपि वह अभी पूरी तरह से युवा नहीं हुआ था और इस समय अपने भाई जोधसिंह की मृत्यु से काफी दुःखी था । बहादुर शाह को जब जोधसिंह की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने बुधसिंह को बूंदी जाकर अपने भाई का श्राद्ध कर्म करने का आदेश दिया । परंतु बुधसिंह ने उत्तर दिया कि मौजूदा परिस्थितियों में मैं आपकी सेवा करता हुआ धौलपुर के युद्ध में सम्मिलित होने की इच्छा रखता हूं । मैं उस युद्ध में आपकी विजय देखना चाहता हूं ।

शाहआलम अपनी सेना के साथ लाहौर से और आजम अपने पुत्र बेदारबख्त के साथ दक्षिण से रवाना हुये । धौलपुर के निकट जाजाऊ के मैदान पर दोनों का आमना सामना हो गया । इस भयंकर संघर्ष में लगभग सभी राजपूत राजाओं ने किसी न किसी पक्ष की ओर से भाग लिया था । दतिया और कोटा के राजा बहुत दिनों से दक्षिण में आजम के अधीन काम कर रहे थे और शाहजादे ने भी पुरस्कारों तथा अपनी कृपा से उन्हें संतुष्ट रखा था । अतः उन दोनों ने औरंगजेब के निर्णय की परवाह न करते हुये आजम का पक्ष लिया । दतिया और बूंदी के राजवंशों में घनि[illegible] ना थी, परंतु इस समय दोनों एक दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे । कोटा विचार से आजम का साथ दे रहा था कि आजम की विजय होने पर उ

नतृत्व मिल जायेगा और इस समय मुगल दरवार मे बूदी के राजाओ को जो स
प्राप्त है वह उस सम्मान का उत्तराधिकारी वन जायगा। इस प्रकार अपने
स्वार्थों को ध्यान मे रखते हुये हाडाओ की दोना शाखाए एक दूसरे के विरुद्ध
को तयार थी। युद्ध के पूव कोटा के रामसिह न बूदी के राव बुधसिह को आज
पक्ष मे आन के लिये एक पत्र लिखकर भेजा था जिसका उत्तर देते हुये बुधसि
लिखा कि "मेरे पूवजो ने वादशाह के समथन म जिस युद्धक्षेत्र म अपने प्राण उ
किये उस युद्ध क्षेत्र म वादशाह के विरुद्ध युद्ध करके मैं अपने वश को कलकित
करूगा।" युद्ध मे बुधसिह को महत्वपूण पद दिया गया और उसने अपन अ
साहस और शौय से शाहआलम को सिंहासन प्राप्त करन मे सहयोग दिया। इस
मे राजपूतो को ही अधिक क्षति उठानी पडी। कोटा का हाडा राजा और दतिया
बुदेला राजा—दोनो मारे गय। आजम और उसके पुत्र बेदारवख्त को सिंहासन
साथ साथ अपने प्राणो से भी हाथ धोन पडे।

इस महत्वपूण दिन पर उसके द्वारा की गई सेवा से प्रसन्न होकर वादशाह
बुधसिह को "राव राजा" की उपाधि स सम्मानित किया और उस वादशाह की अ
रग मित्रमडली म सम्मिलित कर लिया गया। यह मित्रता वादशाह के जीवन के अ
तक वनी रही। वहादुरशाह की मृत्यु के वाद पुन उत्तराधिकार सघप हुआ जिस
औरगजेव के सभी पौत्र मारे गये और फरूखसियर सिंहासन पर बठा परन्तु सम्पू
सत्ता सय्यद व धुओ के हाथ मे रही जिन्होन अपनी निरकुशता और अत्याचारो
साम्राज्य का विध्वस कर डाला। जव उन्होन वादशाह को पदच्युत करने का निश्चय
किया तो वुधसिह ने वादशाह की मुक्ति के लिये राजधानी के चौक मे सय्यदो की
सेना के साथ जोरदार युद्ध किया जिसम उसके चाचा जगतसिह और कई हाडा
मारे गये।

जाजाऊ क युद्ध मे कोटा और बूदी के राजाओ म जो शत्रुता हुई और कोटा
का रामसिह युद्ध म मारा गया था उस शत्रुता को उसक पुत्र और उत्तराधिकारी
राजा भीम न जारी रखा और उसन सयदो का साथ दिया। अपन शत्रु स वदला लन
की प्रतिहिंसा मे वह राजपूतो क राष्ट्रीय चरित्र को भी भुला बठा और विश्वासघात
का सहारा लिया। एक दिन बुधसिह राजधानी की दीवारो के वाहर अपने घोडे को
प्रशिक्षण द रहा था कि राजा भीम अपने सनिको क साथ आ धमका और उसे वन्दी
वनाकर ल जान की चेष्टा की। बुधसिह के साथ जो थोडे से सनिक थ उन्होन अपन
राजा के चारो तरफ घरा वनाकर वहादुरी क साथ रक्षा की।[10] जव बुधसिह न देखा
कि वह अपने बादशाह को किसी प्रकार की सहायता नही पहुचा सकता और उसका
स्वय का जीवन भी खतर म है तो वह दिल्ली स भाग आया। इसके थोडे दिनो बाद
ही फरूखसियर की हत्या कर दी गई और साम्राज्य म चारो तरफ अराजकता फल
गई। सयदो क खूनी प्रभुत्व और अत्याचारो स अपन आपको असुरक्षित समझते हुये
वहुत स राजा और साम त अपन अपने घरो को लौट गये।

इसी समय ग्रामर के राजा सवाई जयसिंह ने बुधसिंह को बूदी के राज्य से वचित करने का निश्चय किया। राव बुधसिंह उसी के साथ दिल्ली से भागकर आया था और इस समय ग्रामर में उसका अतिथि बनकर ठहरा हुआ था। दोनों के आपसी झगडे का वृत्तान्त इस प्रकार प्राप्त होता है—बुधसिंह ने जयसिंह की बहिन के साथ विवाह किया था।[11] परन्तु इससे पहले उसकी सगाई बादशाह शाहआलम के साथ तय हो चुकी थी। जाजाऊ के युद्ध में बुधसिंह के अपूर्व पराक्रम और सहयोग से प्रसन्न होकर बादशाह ने बुधसिंह को जयसिंह की उस बहिन के साथ विवाह करने को कहा। सवाई जयसिंह ने भी इस प्रस्ताव को प्रसन्नता के साथ स्वीकार कर लिया और अपनी उस बहिन का विवाह बुधसिंह के साथ कर दिया। दुर्भाग्यवश उससे उसे कोई सतान नही हुई जबकि मेवाड के एक प्रमुख सामन्त बेंगू के कालामेघ की लडकी से बुधसिंह को दो लडके हुए। कछवाही उन दोनों को बडी ईर्ष्या के साथ देखा करती थी। अपने स्वामी की अनुपस्थिति में उसने गर्भवती होने का बहाना किया कहीं से एक नवजात शिशु प्राप्त किया और उसे अपना असली बच्चा घोषित कर दिया। राव बुधसिंह को इस षडयन्त्र की जानकारी मिल चुकी थी। उसे रानी के आचरण से बहुत दुःख हुआ और उसने सभी वृत्तान्त उसके भाई सवाई जयसिंह को बताया। सयोगवश रानी भी उपस्थित थी। जयसिंह ने उससे सारा वृत्तान्त जानना चाहा। परन्तु रानी को लगा कि या तो उसके सम्मान और पतिभक्ति के बारे में सदेह किया जा रहा है, अथवा उसके षडयन्त्र की जानकारी मिल चुकी है, उसने अपने भाई की कमर से तलवार बाहर निकाली और उसे अपशब्द कह डाले। उस अवसर पर यदि जयसिंह ने भागकर अपने प्राण नही बचाये होते, तो वह अपनी बहिन के क्रोध का शिकार बन गया होता।

जयसिंह को जिस प्रकार अपमानित होना पडा उसका बदला लेने के लिये उसने बुधसिंह को बूदी राज्य से वचित करने का निश्चय किया और बूदी की गद्दी उसी राज्य के एक प्रमुख सामन्त इन्द्रगढ के सरदार को देने का विचार किया, परन्तु वहा के सरदार देवीसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। तब जयसिंह ने करवर के सामन्त के सामने अपना प्रस्ताव रखा। वह इस प्रलोभन को ठुकरा न सका। वहा का सरदार सालिमसिंह था। उसके नियन्त्रण मे तारागढ का दुर्ग था जो बूदी शहर और उसके दुर्ग का प्रहरी था।

बूदी और जयपुर का यह पारिवारिक झगडा वास्तव मे सवाई जयसिंह की गहरी राजनैतिक चाल का एक बहाना मात्र था। सवाई जयसिंह आस पास के राज्यो को अपनी सर्वोच्च सत्ता के अन्तर्गत लाकर स्वय के प्रभाव और प्रतिष्ठा मे वृद्धि करने का इच्छुक था। इस समय वह बादशाह का प्रधान दरबारी था और मुगल साम्राज्य के तीन प्रान्तो—मालवा, अजमेर और आगरा का शासनाधिकारी था और उसकी अधीनता मे एक बडी शाही सेना थी। उसने अपने पद और सत्ता का बडी सूझ बूझ

के साथ प्रयोग किया। स्थिति भी उसके पक्ष म थी। मुगल साम्राज्य अपने ही आत रिक सघर्षो के कारण काफी कमजोर पड चुका था। फर्रूखसियर के अपदस्थ किय जाने म उसने अपनी याजना को कार्यान्वित करने का सुअवसर देखा। बादशाह को बचाने का दिखावा करने के बाद वह अपनी योजना को पूरी करने के लिय अपन राज्य को लौट आया।

आमेर राज्य की सीमाएँ अभी भी सीमित थी और उसके राजाओ का महत्व साम्राज्य के शासनाधिकारियो के कारण ही बना हुआ था। इसलिय जयसिंह ने अपने राज्य के सीमावर्ती सभी जिलो को अपने अधिकार म लेने का निश्चय किया। इसके अलावा जो साम त बादशाह के अधिकारियो की हैसियत से उसकी अधीनता मे थे, उन सबको भी उसने सीधे अपनी सेवा म लाने के लिये बाध्य करने का विचार किया।

इस समय आमर राज्य की सीमाओ के अ तगत ही ऐसे कई साम त थ जो जयपुर राज्य का न तो किसी प्रकार का कर देते थे और न वधानिक रूप स उसकी अधीनता को स्वीकार करते थे। उ हे सीधे बादशाह से अपने क्षेत्रो का शासनाधिकार मिला हुआ था और इसके बदले मे वे बादशाह की ओर से अपने सनिक दस्ता के साथ जयपुर के राजा के अ तगत सेवाएँ प्रदान करते थे। लालसोट के पचवाना चौहान गुडा और नीमराणा के सरदार इसी श्रेणी के सरदार थे। कछवाहो की अपनी शाखा के शेखावत सरदार तो इसको स्वीकार भी नही करते थे। रा गैर के बडगूजर और बयाना के यादव आदि अनेक साम त पूर्ण स्वत त्रता के साथ शासन किया करते थे। अभी कुछ वर्षो पूव ही उ होने जयपुर की अधीनता स्वीकार की थी। इन साम तो की भाति बू दी के हाडा राजा को भी जयसिंह अपनी आधीनता म लान को उत्सुक था।

बुधसिंह को जयसिंह के षडयन्त्र अथवा योजना की कोई जानकारी नही थी और जिन दिना वह आमेर म उसका अतिथि बनकर रह रहा था एक दिन जयसिंह न उसे सकेत देत हुए कहा कि यदि राव आमेर को अपना निवास स्थान बना ल तो वह उसे प्रतिदिन पाच सौ रुपये गुजारा के दे सकता है। बुधसिंह का चाचा जगत सिंह जिसने राजधानी म बुधसिंह की रक्षा करते हुये अपने प्राण गवाये थ उसका एक भाई उस समय बुधसिंह के साथ था। उसे जयसिंह के वास्तविक इराद को भापन म देर न लगी। उसन उसी समय एक पत्र बू दी भेजा और उसम लिखा कि बेंगू वाली रानी को अपन दोनो पुत्रा के साथ तुर त बू दी छोडकर अपने पिता क पास चला जाना चाहिये। इसक बाद उसन एका त म बुधसिंह को जयसिंह के षडयन्त्र की जानकारी दी और फिर बुधसिंह अपने तीन सौ हाडा राजपूता के साथ चुपचाप आमेर को छोडकर बू दी की तरफ चल पडा। जब वह पजोला नामक स्थान पर

पहुचा तो जयसिंह के आदेशानुसार पाच प्रमुख सरदारो ने अपनी सेनाओ के साथ उस पर आक्रमण कर दिया । बुधसिंह चारो तरफ से घिर गया परन्तु उसने बिना किसी भय के शत्रुओ का सामना किया । इस भयंकर संघर्ष मे दोनो पक्षो के अनेक सामन्त मारे गये जिनके स्मारक आज भी वहा विद्यमान है । विजय बुधसिंह की हुई, परन्तु अब उसके पास नाममात्र के सैनिक बाकी रह गये थे और उसे यह समझते देर न लगी कि बूंदी मे भी इसी प्रकार का षडयन्त्र रचा गया होगा । अत उसने बूंदी जाना उचित नही समझा और पहाडो की शरण मे चला गया । इससे जयसिंह को अपनी योजना कार्यान्वित करने का अवसर मिल गया और उसने करवर के सामन्त दलेलसिंह के साथ अपनी पुत्री का विवाह करके उसको बूंदी के सिंहासन पर बैठा दिया ।

अपने वश की वरिष्ठ शाखा के दुर्भाग्य को देखकर कोटा के राजा भीमसिंह, जिसने मारवाड के राजा अजीतसिंह और सैयदो के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम कर रखे थे ने उनकी सहायता से चम्बल नदी के पूर्व मे स्थित बूंदी राज्य के कई इलाको पर अपना अधिकार कायम कर लिया ।

इस प्रकार, बुधसिंह चारो तरफ से शत्रुओ से घिर गया । फिर भी, उसने अपना पैतृक राज्य प्राप्त करने के लिये कई बार प्रयास किया जिनमे हाडाओ का रक्त बेकार ही बहा । अन्त मे निराश होकर वह अपने ससुराल बेंगू मे जाकर रहने लगा और वही उसकी मृत्यु हो गई । वह अपने पीछे दो पुत्र छोड गया–उम्मेदसिंह और दीपसिंह । राव बुधसिंह के दोनो लडको को शीघ्र ही अपने ननिहाल से भी निकल जाना पडा क्योकि आमेर के राजा जयसिंह के कहने पर मेवाड के राणा ने बेंगू की जागीर को अपने अधिकार मे ले लिया और उन दोनो लडको को बेंगू से निकाल दिया । दोनो युवक भाई अपने कुछ साथियो के साथ पूचल नामक जगल मे चले गये । वहा से उन्होने कोटा के राजा दुर्जनशाल जो भीम की मृत्यु के बाद राजा बना था को पत्र लिखा । दुर्जनशाल उदार और दयालु व्यक्ति था । उसने पारिवारिक कलह को भुलाते हुये न केवल उन दोनो की सहायता ही की अपितु अपने पूर्वजो के राज्य को प्राप्त करने मे उनकी हरसम्भव सहायता भी की ।

सन्दर्भ

1 राव सुरजन को पहली बार एक हजार का मनसब और मनगढ तथा गढ कटगा की जागीर दी गई थी ।

2 इस अवसर पर राव सुरजन का मनसब बढा कर पाच हजारी मनसब कर दिया गया था ।

3 बनारस मे रहते हुय उसके अनुरोध पर च द्रशेखर कवि ने "सुजनचरित" की रचना की थी ।

4 राव सुरजन की मृत्यु 1585 ई म हुई थी ।

5 टाड का यह कथन असत्य है । चादबीबी की हत्या उसके विरोधी पक्ष के ही जीतखा ने की थी । सात सौ स्त्रियो के साथ वीरगति प्राप्त करना भी काल्पनिक है ।

6 इस विवरण की पुष्टि प्रमाणो से नही होती । यह कवि की कल्पना है ।

7 टाड का यह सम्पूर्ण विवरण गलत है । खुरम ने परवेज को नही मारा था अपितु खुसरो को मारा था । परवेज तो इसके बाद भी जीवित रहा । खुरम आमेर की राजकुमारी से भी उत्पन्न न हुआ था । खुसरो हुआ था ।

8 टाड का निष्कर्ष सही नही है । बू दी के राजा इससे पूर्व अनेक हि दू राजाओ के नेतृत्व म अभियानो पर गये थे ।

9 राव अनिरुद्ध की मृत्यु 1695 ई मे हुई थी ।

10 इस घटना की पुष्टि मेवाड के इतिहास तथा सवाई जयसिंह के पत्र से भी होती है ।

11 यह लडकी जयसिंह की बहिन नही थी अपितु उसकी भतीजी थी । जयसिंह ने उसके पिता (अपने बडे भाई) को जो कि आमेर की गद्दी का उत्तराधिकारी था, मरवा डाला था । सभव है वह विजयसिंह रहा हो ।

अध्याय 68

राव उम्मेदसिंह, अजीतसिंह और विशनसिंह

सवत् 1800 (1744 ई०) म अपने घराने के शत्रु आमेर के राजा जयसिंह की मृत्यु के समय उम्मेदसिंह केवल तेरह वष की आयु का था। ज्यो ही उसको इसकी सूचना मिली उसने अपनी जाति के शूरवीरो को एकत्र कर पाटन और गेनोली पर आक्रमण कर उनको अपने अधिकार मे ले लिया। जब लोगो ने सुना कि बुधसिंह का लडका उम्मेदसिंह जाग उठा है तो हाडाओ के वशज उसके झण्डे के नीचे एकत्र होन लग और कोटा के दुजनसाल न इस पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुय अपनी तरफ से भी सहायता भिजवायी।

इस समय ईश्वरसिंह आमेर का राजा था। उसने अपने पिता की नीति पर चलते हुये यह निश्चय किया कि कोटा का राजा और हाडाओ की वरिष्ठ शाखा—दोनो ही उसकी अधीनता म रहन चाहिये। कोटा के शासक ने जब उम्मेदसिंह की सहायता की तो उसने अपने विचार को कार्यान्वित करने का निश्चय कर लिया और कोटा राज्य पर आक्रमण कर दिया। इसकी चर्चा पहल की जा चुकी है। इस आक्रमण से वापसी के दौरान उसन उम्मेदसिंह पर आक्रमण करने के लिय एक सेना भेज दी। उम्मेदसिंह इन दिनो म मीना लोगो के साथ लाहारी नामक स्थान मे रह रहा था। हाडाओ न उनको उनके पतृक राज्य से वचित किया था। इस सत्य के उपरान्त भी मीना लोग बूदी के हाडा राजाओ की समय समय पर सहायता करत रह और कई युद्धो म उनका साथ दिया था। युवक उम्मेदसिंह के पराक्रम और उसके दुर्भाग्य न मीनो का हृदय जीत लिया था और पाच हजार धनुषधारी मीना उसके नेतृत्व मे युद्ध करन के लिय आ जुटे। विचारी नामक स्थान पर उम्मेदसिंह ने जयपुर की सेना को घेर दबोचा। मीना लोगो न शत्रु के शिविर म जाकर लूटमार आरम्भ की और उम्मेदसिंह तथा उसके हाडा सनिक जयपुर की सेना पर टूट पडे और बिना किसी दयाभाव के उनका सहार किया तथा उनके झण्डे और दूसरे चिह्नो को अपने अधिकार म कर लिया। इस पराजय की सूचना मिलन पर नेतडी के नारायणदास के नेतृत्व म अठारह हजार सनिको की एक सेना उम्मेदसिंह के विरुद्ध भेजी गई। ज्यो ही हाडा लोगो को मालूम हुआ कि विचारी के विजेता बालक उम्मेदसिंह के

विरुद्ध एक शक्तिशाली सेना आ रही है तो व अस्त्र शस्त्र लकर उसकी सहायता को आ पहुचे। युद्ध आरम्भ करन के पूव उम्मदसिंह अपन वश की देवी आशापूर्णा क मन्दिर म गया और देवी के सामन शीश झुकाते समय उसकी दृष्टि एक विश्वासघाती के अधिकार म बूदी पर जा टिकी। वहा से लौटकर उसन अपनी सना क सामन प्रतिज्ञा की "या तो बूदी राज्य को जीतू गा अथवा प्राणो की बलि दूगा।"

इसी प्रकार की भावनाओ स वशीभूत होकर उसक साहसी जातीय लोग नारगी झड के नीचे आ जुट। यह झडा जहागीर न राव रतन का उपहार म दिया था। इसके बाद सभी शत्रुपक्ष की तरफ चल पडे। ज्यो ही व दर्रा पार कर डबलाना नामक स्थान पर पहुचे उ होन शत्रु को अपनी प्रतीक्षा करत हुय पाया। उम्मदसिंह न अपन सनिको को छोट छोटे 'गाल म विभाजित करक शत्रु पर आक्रमण कर दिया। जयपुर की सेना एक बार तो बिखर गई पर तु पुन सगठित होकर उसन जोरदार गोलीवर्षा की। हाडाओ न उनकी गोलियो की परवाह न करत हुय तलवारें हाथ म लेकर शत्रुओ का सहार जारी रखा। पर तु इस प्रकार क सघष म उनक अधिक सनिक मारे गय। सबसे पहल उम्मदसिंह का मामा पृथ्वीसिंह घायल होकर गिर पडा, उसके बाद मोटरा का राजा मरजादसिंह मारा गया। इसके बाद सारन का साम त प्राणसिंह अपने बहुत स स्वबधुओ के साथ मारा गया। इस पर भी बालक उम्मदसिंह हताश नही हुआ और शत्रुओ का सहार करता हुआ अपनी सेना क साथ आग बढता रहा। पर तु शत्रु सेना की सख्या अधिक थी और युद्ध का परिणाम भी उनके पक्ष मे होता जा रहा था। इस स्थिति का देखकर उसके साम तो न उस समझाते हुय कहा 'अगर आप जीवित रहगे तो किसी भी समय बूदी पर अधिकार करन की आशा बनी रहेगी पर तु यदि इस युद्ध म आप मार गय तो भविष्य की समस्त आशायें भी समाप्त हो जायेंगी। इसलिय आप युद्धक्षेत्र स चले जायें।"

बडी निराशा के साथ उम्मदसिंह न साम तो की बात का स्वीकार कर लिया और अपनी बची हुई सेना के साथ युद्धक्षेत्र स चल पडा। इ द्रगढ से कुछ दूरी पर सवाली नामक घाटी पहुचन पर उसन अपन जख्मी घोडे को थोडा विश्राम देन का निश्चय किया और घोडे स उतर पडा। उसके उतरते ही घोडे न प्राण त्याग दिय। इससे उम्मेदसिंह को काफी दुख हुआ। यह घोडा इराक देश का था और बादशाह न उसके पिता को उपहार म दिया था। इस घोडे पर सवार होकर बुधसिंह ने अनक युद्धो म भाग लिया था। बाद म जब उम्मदसिंह बूदी का राजा बना तो उसन उस घोडे की एक प्रस्तर मूर्ति बनवा कर राजधानी के चौक मे स्थापित की।

इसके बाद वह पदल ही इ द्रगढ गया। पर तु वहा के विश्वासघातक स्वामी द्रोही हाडा सरदार जिसन कि आमर की अधीनता को स्वीकार कर लिया था ने अपने राजा को न केवल धोखा देने स ही इ कार कर दिया अपितु उस तुर त अपनी जागीर से चल जाने को कहा और पूछा कि क्या उसका इरादा बूदी के साथ साथ

इन्द्रगढ़ का भी सर्वनाश करने का है?' उसके इस दुर्व्यवहार से दुःखी होकर उम्मदसिंह ने उसकी जागीर की सीमा में पानी तक नहीं पिया और वह करवान नामक स्थान की तरफ बढ़ा। यहां का सरदार इन्द्रगढ़ के सरदार की भांति राजद्रोही न था। ज्यों ही उसे उम्मदसिंह के आने की सूचना मिली वह अपने स्थान से चल कर उससे मिलने के लिये गया और उसे अपने साथ अपने निवास स्थान पर लिवा लाया। उसने उम्मदसिंह को एक घोड़ा उपहार में भेंट किया और आवश्यकता पड़ने पर अपनी सामर्थ्य के अनुसार सभी प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया। चूंकि इस समय जयपुर की सेना के साथ युद्ध जारी रखना सम्भव न था, अतः उसने अपने साथ के हाडा राजपूतों को अपने अपने घरों को लौट जाने के लिये कहा। उसने कहा कि जब भाग्य की कृपा होगी तो आप लोगों की तलवारों की सहायता से बूंदी राज्य का उद्धार करने की चेष्टा करूंगा। इस प्रकार, अपने साथियों को विदा करके उम्मदसिंह चम्बल नदी के किनारे वीरान पड़े रामपुरा के टूटे-फूटे महल में जाकर रहने लगा।

कोटा के दुर्जनसाल जिसने जयपुर की सर्वोच्चता के विरुद्ध ईश्वरीसिंह और उसके साथी अप्पाजी सिंधिया के आक्रमण से बहादुरी के साथ अपनी राजधानी की रक्षा की थी ने अब पहले की अपेक्षा और भी अधिक रुचि के साथ उम्मदसिंह के पक्ष का समर्थन करना लगा। उसका दरबार एक भाट कवि द्वारा शासित था और यही कवि उसकी सेनाओं का सेनापति भी था। वह कवि युवक उम्मदसिंह के साहस और उसके पुरुषार्थ से अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह लगातार इस बात को सोचने लगा कि जैसे भी हो सके उम्मदसिंह को उसका पैतृक राज्य मिलना ही चाहिये। तदनुसार कोटा की समस्त शक्ति उम्मदसिंह की सहायता के लिये जुटा दी गई और बूंदी पर आक्रमण कर दिया गया। उम्मदसिंह को बूंदी पर अधिकार करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। दलेलसिंह तारागढ़ दुर्ग में था। उस दुर्ग को भी घेर लिया गया और उस समय युद्ध करते हुये वह कवि मारा गया। उसको मारने वाला उसी की जाति का एक सैनिक था। उसकी मृत्यु को गोपनीय रखा गया और उसकी मृत देह पर एक वस्त्र डाल दिया गया। युद्ध जारी रखा गया जब तक कि भयभीत दलेलसिंह दुर्ग से भाग खड़ा न हुआ। उम्मदसिंह का सपना साकार हुआ और वह अपने पूर्वजों के सिंहासन पर बैठा।

बूंदी से भाग कर दलेलसिंह सीधा अपने अधीश्वर आमेर के राजा के पास पहुंचा। उसने तत्काल केशवदास खत्री के नेतृत्व में एक सेना उम्मदसिंह को बूंदी से बहिष्कृत करने के लिये भेज दी। उम्मदसिंह को बूंदी की सुरक्षा व्यवस्था करने अथवा अपनी शक्तियों को संगठित करने का अवसर भी न मिल केशवदास ने आकर बूंदी को घेर लिया और उम्मदसिंह को परास्त भागना पड़ा। बूंदी के दुर्ग पर पुनः ढूंढाड़ का झण्डा फहराने लगा।

पुन सिहासन पर वठान की तयारी की जान लगी पर तु इस बार उसन सिंहासन पर वठन स इ कार कर दिया ।[1] एक बार उस सिहासन पर वठकर उसने जिस लाक निंदा का सुना था, दूसरी बार वह अपन जीवन म फिर इस प्रकार का अवसर नही आने देना चाहता था ।

उम्मेदसिंह एक बार पुन वेघरबार हो गया । उसने मेवाड और मारवाड के राजाओं से सहायता मागी पर तु किसी न सहायता का आश्वासन नही दिया । फिर भी उसने साहस नही खोया और अपने अधिकारो के शत्रु के प्रति विरोध म किसी प्रकार की कमी न आने दी । उसन फिर से अपनी बिखरी हुई शक्तियो को सगठित किया और शत्रु के गावो पर धावे मारने लगा । इसी सिलसिल म वह एक दिन विनोदिया गाव मे पहुच गया जहा उसकी सौतेली मा उसके पिता की विधवा रानी जो उसकी समस्त कठिनाइयो और मुसीबतो का मूल कारण थी, जिसके ईर्ष्यालु व्यवहार न न केवल बू दी राज्य का अपितु उसके ससुराल क सम्पूण परिवार का सवनाश कर डाला था अपने कृत्या पर पश्चाताप करती हुई इसी गाँव म रह रही थी । उम्मेदसिंह उससे मिलने जा पहुचा और उसको प्रणाम किया । उसे देख कर विधवा रानी के अ त करण मे एक साथ पीडा की अग्नि प्रज्वलित हो उठी । उम्मेदसिंह की दुरवस्था को देखकर वह बहुत दु खी हुई । उसने सोचा कि उसके सभी दु खो का कारण मैं ही हू । अत ऐसी स्थिति म इसकी सहायता करना मरा परम कतव्य है । उसन दक्षिण जाकर मराठो की सहायता प्राप्त करन का निश्चय किया जब वह नवदा के तट पर पहुची ता उसका ध्यान एक स्तम्भ की तरफ केंद्रित किया गया जिस पर लिखा था कि उसके वश के किसी भी व्यक्ति के लिये नवदा पार करना वर्जित है । उसने एक सच्ची राजपूतनी की भाति उस स्तम्भ का ही गिरा दिया और कहा कि दुनिया म कोई विधान हमेशा के लिये लागू नही रहता । नवदा को पार कर वह मल्हारराव होल्कर के शिविर म पहुची ।[2] भारत के हिन्दू राजाओं मे प्रमुख जयसिंह की बहिन लुटेरो के एक सरदार के पास निर्वासित उम्मेदसिंह को बू दी का सिंहासन दिलवाने के लिये न केवल सहायता लेने ही पहुची अपितु उसने उस चरवाहो के सरदार को अपना भाई बना लिया ।

यद्यपि मल्हारराव होल्कर एक साधारण वश म पदा हुआ था पर तु वह श्रेष्ठ वश के अच्छे गुणो को समझता था और उसने सहानुभूति क साथ विधवा रानी की बाता को सुना और रानी को अपनी सहायता का आश्वासन दिया । उसका यह आश्वासन मेवाड के राणा द्वारा अपने वश की लडकी से उत्पन्न पुत्र को आमेर के सिंहासन पर बठाने के लिये मल्हारराव होल्कर से सहायता की माग से किस सीमा तक जुडी हुई थी, इस बारे म बू दी के इतिहासकार चुप हैं । वे केवल अपने राजा के हित की बात का ही उल्लेख करत हैं । पर तु हम यह निष्कष निकाल सकत है कि उत्तर की ओर जाने म होल्कर को चौसठ लाख रुपय प्राप्त करने की आशा थी ।

यह धनराशि मेवाड के राणा ने ईश्वरीसिंह के स्थान पर अपने भानजे माधोसिंह को आमेर के सिंहासन पर बठाने मे उनकी सहायता करने के बदले म देने का वचन दिया था।

जो भी कारण रहा हो बू दी के इतिहासकारा ने लिखा है कि रानी का विश्वास था कि आमेर क राजा के परास्त होन पर वह सधि का प्रयास करेगा और बू दी का उद्धार हा जायेगा। इसीलिय वह होल्कर का सीधे जयपुर पर आक्रमण करने के लिये ल आई। परिस्थितिया ने भी रानी की योजना का साथ दिया। ईश्वरीसिंह के चरित्र ने उसके चारो तरफ शत्रु उत्पन्न कर दिये थे और जि ह बू दी और मेवाड के राजाओ ने अपने हितो की पूर्ति के लिये अपनी तरफ कर लिया था।

इश्वरीसिंह को ज्या ही सूचना मिली कि मराठे आक्रमण करने के लिय आ रहे ह त्यो ही वह अपनी सेना सहित उनका सामना करने के लिये अपनी राजधानी से निकल पडा। पर तु उसे मराठा सना की सही सख्या के बारे मे गलत सूचना दी गई। ईश्वरीसिंह जब बगरू नामक स्थान पर पहुचा तो उसे मालूम पडा कि उसको धोखे म रखा गया है और मराठो को पराजित करना असम्भव सा है। अत वह बगरू के साम त के दुग म चला गया। मराठो ने उस दुग का घेर लिया। अब उसे पता चला कि जिस म त्री (केशवदास) को उसने मरवा डाला था उसके उत्तराधिकारियो ने योजनाबद्ध ढग से उसे सकट म डाल दिया है।

इस म त्री के दोनो पुत्रो—हरसहाय और गुरुसहाय न मराठा के सम्ब ध मे अपने राजा के साथ विश्वासघात किया था। उ होने ईश्वरीसिंह को उनकी काफी कम सख्या बताकर उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिये उसे उत्तेजित किया जबकि उस समय इश्वरीसिंह के पास उनस युद्ध करने के पर्याप्त साधन भी न थे। विशाल मराठा सेना के साथ युद्ध करना पागलपन की बात थी। दम दिना की घेराव दी क बाद उस अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करन के लिये विवश होना पडा। उसे न केवल बू दी का समपण करना पडा अपितु यह भी स्वीकार करना पडा कि भविष्य मे उसका और उसके उत्तराधिकारियो का कोई भी अधिकार बू दी राज्य पर न रहगा और बू दी पर उम्मेदसिंह के अधिकार को मा यता देने के निमित्त अपन हाथ से उसके तिलक करना पडा। इस सधि पत्र का लेकर कोटा की सेना के साथ सभी बू दी की तरफ बढे। विश्वासघातक को बू दी से निकाल दिया गया और बू दी म जब उम्मेदसिंह के अभिषक की तयारी हो रही थी, सूचना मिली कि उसके परिवार के शत्रु आमेर के राजा न जहर खाकर आत्महत्या कर ली है।[3]

इस प्रकार सवत् 1805 (1749 ई०) म उम्मेदसिंह न चौदह वर्षों के निवासन क बाद अपने पतृक राज्य को पुन प्राप्त किया। पर तु इस सघष न बू दी को इसके कई महत्वपूण इलाका से वचित कर दिया और अ त मे इसकी सीमाआ

को इतना कम कर दिया कि वह एक छोटा राज्य बनकर रह गया। होल्कर राज्य का सस्थापक विधवा रानी का भाई बन जान के नात उम्मेदसिंह का मामा कहलान लगा पर तु अपनी जाति के गुणा क अनुकूल उसने अपने भानजे से अपनी सहायता की कीमत के रूप मे बूदी के इलाको की माग की और उम्मेदसिंह का चम्बल नदी के किनारे पाटन का सम्पूर्ण इलाका उसका देना पडा और इसकी बाकायदा लिखा पढी की गई।

राव बुधसिंह के बाद चौदह वर्षों म ही बूदी का राज्य नष्ट हो गया। सताप की बात यह थी कि दलेलसिंह न राजमहल और तारागढ के दुग को सुरक्षित रखा। माधोसिंह जो ईश्वरीसिंह के बाद जयपुर की गद्दी पर बठा, ने भी जयसिंह की नीति का अपनाते हुए केन्द्रीय भारत की छोटी छोटी रियासतो को आमर के अधीन अथवा उस पर आश्रित बनाने का प्रयास किया। इसी नीति के फलस्वरूप कोटा को घेरा गया था और उम्मदसिंह का निर्वासित किया गया था और चूकि यह नीति उनके स्वय के सीमित साधनो म सफलता के साथ लागू नही की जा सकती थी, इसलिये भडत लागो की सहायता प्राप्त की गई और ये भाडे के नता शीघ्र ही उनकी इच्छाओ क विरुद्ध उनके भाग्य निर्माता बन बठे। रणथम्भौर का अधिकार प्राप्त करते ही माधोसिंह भी अपनी सर्वोच्चता का स्थापित करने क मोहजाल म फस गया। राव सुरजन न जिस समय रणथम्भौर का दुग अकबर को समर्पित किया था, उसी दिन से रणथम्भौर की सरकार मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण सूबा बन गई और उसके अ तगत न केवल बूदी और कोटा राज्य अपितु शिवपुर सहित बाणगगा के दक्षिण क समस्त क्षेत्र रख दिय गय थ जिनका क्षेत्रफल आमर राज्य क बराबर था। बगाल क महमूदाबाद सूबा के बाद रणथम्भौर मुगल साम्राज्य की सबसे बडी और विस्तृत सरकार थी। सवप्रथम, मराठा न इस दुग को मुगलो स छीना पर तु व इसे किसी राजपूत राजा को सौपन की बात सोचन लग। पहल उ होने बूदी से बातचीत की, पर तु हाडाओ न इसका अपन अधिकार म बनाय रखन की अपनी असमथता को दख कर तयार नही हुय तब उ होन यह दुग आमेर के राजा को सौप दिया कि वह उनकी तरफ स इस दुग को अपन अधिकार म रखेगा पर तु आमेर न उनके विश्वास को नही निभाया और रणथम्भौर पर अपना अधिकार सुदृढ करने की चेष्टा की।

कवल इ ही परिस्थितियो क अ तगत जयपुर न कोटा या हाडौती की सभी जागीरा स वार्षिक कर वसूल करन का अपना दावा प्रस्तुत किया। एक एसा दावा जो किसी भी दृष्टि स यायोचित नही ठहराया जा सकता था पर तु अपनी सर्वोच्चता के प्रदशन के लिये इस दाव का बार बार दोहराते रहना उसकी कुटिल नीति का अग बन गया जिसस आन वाले पचास वर्षो तक तनाव बना रहा। कोटा के जालिमसिंह न अ त म सवत् 1817 (1761 ई) म भटवाडा के युद्ध म जयपुर का मान-मदन कर इस दाव से अपन राज्य को मुक्त कर दिया। यदि उस अवसर पर बूदी की

सेना ने भी अपने स्वबधुओं का साथ दिया होता तो उन्हे भी जयपुर के आधिपत्य से मुक्ति मिल गई होती और उस वह कर नही चुकाना पडता जो अभी तक चुकाया जाता रहा।

बू दी के सिंहासन पर बैठने के बाद उम्मेदसिंह का सारा ध्यान बू दी की स्थिति को सुधारने में ही लगा रहा। उसने वे सभी कार्य आरम्भ किये जिनके द्वारा प्रजा का कल्याण हो सकता था। परन्तु जिन मराठो की सहायता से उसने राज्य प्राप्त किया था उनके बढ़ते हुये प्रभाव से वह काफी चिंतित था क्योंकि उन लोगों के कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं थे और वे प्रतिवर्ष टिड्डियों की तरह रजवाडे के राज्यों का खून चूसने के लिये आ धमकते थे। राजपूत जाति के इतिहास लेखकों का कहना है कि दक्षिण के मराठों ने इस प्रकार के अवसरों पर राजपूतों के आपसी विवादों का लाभ उठाया था और अपनी शक्तियों को मजबूत बना लिया था। उनका यह भी कहना है कि समय समय पर मराठों का आश्रय लेने से अन्य राजाओं की अपेक्षा बू दी को अधिक क्षति उठानी पडी।

बदले की भावना से किये गये एक काम ने उम्मेदसिंह की प्रतिष्ठा को कलंकित कर दिया, अन्यथा वह एक नेक उदार, धार्मिक और बुद्धिमान व्यक्ति था। यदि उसके जीवन में यह घटना घटित न होती तो राजपूताना के इतिहास में वह सबसे अधिक निर्मल चरित्र का राजा हुआ होता। यह घटना उसके सिंहासन पर बैठने के आठ वर्ष बाद की है। इन आठ वर्षों में उसने अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहारों को मानवीय चरित्र की कमजोरी मानते हुये भुला दिया था। यद्यपि मानवीय चरित्र के लिये इन्द्रगढ के राजा देवीसिंह के द्वारा किये गये दुर्व्यवहार को भुलाना सम्भव न था। परन्तु जब आठ वर्ष का समय गुजर गया तो सभी ने यही सोचा कि उम्मेदसिंह ने गुजरी बातों को भुला दिया है और वास्तव में उम्मेदसिंह ने उस घटना को भुला दिया था। परन्तु इन्द्रगढ के राजा ने इससे कोई सबक नहीं सीखा और हर समय अपने राजा के अनिष्ट की बात ही सोचता रहा। उन्ही दिनों में उम्मेदसिंह ने जयपुर के राजा माधोसिंह के साथ अपनी बहिन का विवाह करने का निश्चय किया और प्रचलित प्रथा के अनुसार माधोसिंह के पास नारियल भेजा। माधोसिंह ने भरे दरबार में नारियल को स्वीकार कर लिया। इन्द्रगढ का देवीसिंह उस समय जयपुर में ही उपस्थित था और माधोसिंह ने उससे सहज भाव से पूछ लिया कि राव बुधसिंह की पुत्री की क्या ख्याति है? देवीसिंह ने अपने राजा उम्मेदसिंह को अपमानित करने का यह एक अच्छा अवसर समझा और उसने अपमानजनक शब्दों में उत्तर दिया कि उस लडकी का जन्म राव बुधसिंह से नहीं हुआ। उसका यह कथन कितना झूठा था यह इस बात से सिद्ध हो गया कि मारवाड के राजा विजयसिंह ने उस लडकी से विवाह कर लिया। परन्तु जयपुर राजा ने देवीसिंह की बात का विश्वास करते हुये स्वीकृत नारियल को लौटाकर बू दी राजवंश और उम्मेदसिंह का जो सार्वजनिक सामाजिक अपमान किया, उसे उम्मेदसिंह नहीं भुला पाया।

संवत् 1813 (1757 ई०) में उम्मेदसिंह करवर के निकट विजयसेनी देवी के मंदिर में पूजा करने के लिये गया। यह स्थान इन्द्रगढ के पास मे ही था। उम्मेदसिंह ने राजा देवीसिंह को परिवार के साथ वहां आकर उपस्थित सामंता से मिलने का संदेश भेजा। पहले तो वह हिचका परन्तु बाद में उसने अपने राजा के आदेश को स्वीकार कर लिया और अपने पुत्र और पोते के साथ वहा जा पहुचा। उन सभी को एक ही साथ मौत के घाट उतार कर उस विश्वासघातक का वंश ही समाप्त कर दिया गया। उनके मृतक शरीरों को तालाब में फिंकवा दिया गया। इन्द्रगढ की जागीर देवीसिंह के भाई को दे दी गई।

इस घटना को लगभग पन्द्रह वर्ष गुजर गये। इस लम्बी अवधि में उम्मेदसिंह चारों तरफ विद्यमान राजद्रोहों ने उसके चित्त को विचलित कर दिया और वह अपने क्रूर कृत्य को भुला न पाया। उसे अनुभव होने लगा कि ईश्वर के अधिकार को अपने हाथ मे लेकर उसने अच्छा काम नहीं किया था। यद्यपि किसी ने भी उसके कृत्य की निंदा न की थी और सभी का मानना था कि विश्वासघाती देवीसिंह ऐसे ही दण्ड का भागी था। परन्तु उसकी अन्तरात्मा ने ही विद्रोह कर दिया और उसे इस कृत्य का अपराधी माना। अपनी अन्तरात्मा के संतोष के लिये उसने राज्य का त्याग करने का निश्चय कर लिया। उसने एक तीर्थ यात्री के रूप मे अपने धर्म के सभी तीर्थ स्थानों की यात्रा करने और ईश्वर की आराधना करने का मानस बना लिया।

संवत् 1827 (1771 ई) में योगाराज का अभिषेक सम्पन्न किया गया जिसने उम्मेदसिंह के राजनैतिक अस्तित्व को समाप्त कर दिया। प्रचलित प्रथा के अनुसार उम्मेदसिंह की एक मूर्ति बनाई गई और उस मूर्ति को चिता पर रख कर उसका अंतिम संस्कार किया गया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी अजीतसिंह की मूंछे और बाल कटवाये गये, रावले में राने धोने की प्रक्रिया पूरी की गई और बारह दिनों तक शोक मनाया गया। इसके बाद अजीतसिंह का अभिषेक किया गया और वह बूंदी के राजसिंहासन पर बैठा।

राज्य त्यागने के बाद उम्मेदसिंह ने अपना नाम भी बदल लिया। अब वह "श्रीजी" के नाम से पुकारा और पहचाना जाने लगा। बूंदी को छोड़कर वह चम्बल घाटी के उस पवित्र स्थान पर जाकर रहने लगा जिसका नाम गंगा के विख्यात केदारनाथ के नाम पर 'केदारनाथ' रखा गया था। इसी स्थान पर रहते हुये उसने ईश्वर की आराधना करनी शुरू की तथा दूसरे राज्यों के ऐतिहासिक ग्रन्थों का मनन भी किया। उसने राज्य का त्याग इस विचार से किया था कि इससे उसके पाप का प्रायश्चित होगा और उसे शांति मिलेगी। उसने ऐतिहासिक ग्रन्थों से यह शिक्षा ग्रहण की थी जो लोग राज्य ऐश्वर्य और आडम्बर को छोड़कर ईश्वर की भक्ति में तल्लीन हो जाते हैं वे ही सुख शांति का जीवन व्यतीत कर पाते हैं। ऐसा सोचते-सोचते उसके मन में अपने देश के सभी तीर्थ स्थानों की यात्रा करने का विचार

। इस विचार म उसकी साहसिक मनोवृत्ति का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।
ार शाही तीथ यात्री यात्रा क लिये निकल पडा पर तु सामा य साधु सयासिया
श भूपा म नही अपितु सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित होकर। इसमे
क तरह स कष्ट सहन करने की बात थी। अस्त्र शस्त्रा का वजन इतना अधिक
क साधारण मनुष्य के लिय उसे ढाना ग्रार वह इतनी दूरी की भी यात्रा म सवथा
भव था। किसी आक्रमणकारी के अस्त्रा के आघात को रोकने क लिये उसने रूई
अगरखा पहना और अपनी ढाल तलवार क साथ उसन एक व दूक और भाला
म लिया। इनके अलावा उसन कुछ अ य आवश्यक अस्त्र शस्त्र भी अपन साथ
।

अपनी पराक्रमी जाति के कुछ विश्वासी सेवको के साथ वह तीथ यात्रा क
निकल पडा और कई वष तक वह भारत के उत्तर म गगोत्तरी दक्षिण म
व ध रामेश्वर और अराकान म गरम सीता कुण्ड एव द्वारिका आदि म घूमता
। हि दुस्तान की इन सीमाम्रो के अ तगत उसन प्रत्येक धार्मिक, ान और कला
के द्र तथा जिज्ञासा वाल स्थानो को देखा और साधु स यासियो से मिला। यात्रा
ते समय वह जब कभी अपन राज्य की सीमा के पास आया तो न केवल उसक
के लोग ही उसका सम्मान करन के लिय आते थे अपितु दूसरे राज्यो के राजपूत
भी उसके प्रति अपनी श्रद्धा एव सम्मान प्रकट करन के लिये आत थे। यात्रा
समय वह जिस राजा के राज्य म पहुचता था, वहा उसका एक चमत्कारी देवता के
ान सम्मान किया जाता था और उसके अनुभवो का लाभ उठान का प्रयास किया
ता था। उसकी वाता को जो प्राय ानवधक हुआ करती थी, लोग बडी श्रद्धा के
थ सुनत थे। बूदी राज्य म शासन करते समय उसे जो सम्मान मिला था इन दिनो मे
से सकडा गुना सम्मान उसे मिल रहा था। उसकी अ तिम यात्रा तो बहुत ही अधिक
टदायक एव श्रमपूण रही थी। वह भारतीय सीमा के बाहर मकरान से निकल
र हिंगलाज नामक स्थान म अग्नि देवी क दशन करने गया और वहा स सीध
रिका के लिये चल पडा। माग म कावा नाम के लुटेरो के एक समूह न उस पर
क्रमण कर दिया। पर तु शूरवीर उम्मदसिह न लुटरो को परास्त कर उनके सरदार
व दी बना लिया। उस सरदार न अपनी रिहाई के बदले मे शपथ लेकर वचन
या कि वह भविष्य मे द्वारिका आन वाले तीथ यात्रिया को कभी नही लूटगा।

उम्मदसिह की सनिक अभियान क समान तीथ यात्रा म एक दु खा त दुघटना
सके परिणामस्वरूप उसक पुत्र की मृत्यु हो गई, व्यवधान आ गया और अपन पोत
प्रशासनिक शिक्षा की देखभाल करन क लिये बूदी राज्य की सीमा म निवास
रने क लिय विवश कर दिया। इस दु खद घटना का उद्भव मवाड और हाडोता
सीमा विवाद स हुआ था। इसकी पुष्टि मवाड और हाडा जाति क इतिहास स

भी होती है जिसमे बताया गया है कि बहुत समय पहले बबावदा की रानी न सती होते समय श्राप दिया था कि यदि राव और राणा कभी बसन्ती उत्सव मे एक साथ शामिल होगे तो महा अनर्थ होगा।" इस घटना ने सती की भविष्यवाणी को एक बार पुन सिद्ध कर दिया। चौथी बार इस प्रकार का अनिष्ट हुआ।

बीलहठा नामक गाव जो अच्छी किस्म के कुछ आमों की पदावार के लिये प्रसिद्ध था और जहा कुछ मीना परिवार बसे हुये थे झगड़े का कारण बना। बूदी के राजा ने इस गाव को अपनी सीमा के अन्तर्गत समझकर वहा एक दुर्ग बनवा दिया और एक सनिक दस्ता भी तनात कर दिया ताकि मेवाड के सामन्तो के उकसाने पर लुटेरो द्वारा किये जाने वाले हमलो को रोका जा सके। तब मेवाडी सामन्तो ने अपने राणा को भडकाया कि बूदी का राजा आपके अधिकारो का अतिक्रमण कर रहा है। क्रोधित राणा अपने सभी सामन्तो के सनिक दस्तो और सिंधियो के एक सनिक दस्ते के साथ विवादास्पद स्थान पर पहुच गया और वहा से उसने बूदी के राजा अजीतसिंह को अपने शिविर म आने के लिये बुला भेजा। अजीतसिंह तुरन्त चला आया। उसके सद्व्यवहार से राणा इतना प्रसन्न हो उठा कि उसने बीलहठा और उसके आमो को पूरी तरह से भुला दिया। बसन्ती उत्सव निकट ही था। राणा की उदारता से प्रभावित युवक अजीतसिंह ने राणा को अहेरिया उत्सव म सम्मिलित होने का निमन्त्रण दे दिया जो स्वीकार कर लिया गया। उत्सव के अनुकूल राणा ने अपने सामन्तो और सनिको को हरे रग की पगडिया बाटी और निश्चित दिन वे नन्दता नामक पहाडी वन की ओर चल पडे। इसी अवसर पर उम्मेदसिंह बद्रीनाथ की यात्रा से वापस लौटा ही था और उसे जब राव और राणा के एक साथ अहेरिया म जाने की सूचना मिली तो उसने अजीतसिंह को रोकने के विचार से अपने एक आदमी को भेजकर उस सती रानी के श्राप को याद दिलाते हुये राणा के साथ न जाने को कहलवाया। परन्तु तीव्र प्रकृति वाले अजीतसिंह ने उत्तर भिजवाया कि इस प्रकार के अधविश्वासी आधार पर राणा का दिया गया निमन्त्रण वापस लेना असम्भव है। सुबह हुआ और युवक राव के प्रति मत्रीपूर्ण भावना को लिये हुये राणा घोडे पर सवार होकर राव के साथ जगल म शिकार करने के लिये निकल पडा। इससे पूर्व सध्या के समय मेवाड का मत्री राव से मिलने गया था और उसने बहुत ही अपमानजनक शब्दो म राव से कहा कि वह बीलहठा समर्पण कर दे अन्यथा आपको बन्दी बनाने के लिये सिंधी सेना का दल भेजना पडेगा। चालाक मत्री ने यह भी सकेत दे दिया कि यह सब राणा के आदेशानुसार ही कहा जा रहा है। मत्री के शब्द उस दिन हाडा राव के मस्तिष्क मे हलचल मचाते रहे और जब शिकार से वापस लौटे तो उसने राणा से विदा ली। अचानक उसके मन म अपने अपमान की बात उभर आई और इसका बदला लेने के विचार से वह वापस मुडा। राणा को किसी बात की जानकारी न थी। उसने मुस्करा करके युवा हाडा मित्र का स्वागत किया और उसे घर जाने की अनुमति

देते हुये कहा कि सुबह हम पुन मिलेंगे। राणा के व्यवहार ने उसको शान्त कर दिया और एक बार पुन राणा का अभिवादन कर वह घर के लिये चला। परन्तु कुछ कदम ही गया होगा कि क्रोध और प्रतिहिंसा ने उसे पागल बना दिया और उसने अपने घोड़े को वापस मोड़ा और उसे तेजी से दौड़ाते हुये तथा हाथ में भाला सम्भाल उसने असावधान राणा पर जोर से प्रहार किया। भाला राणा की गर्दन के आरपार हो गया। अन्तिम समय राणा के मुख से केवल इतना ही निकला—"आह हाड़ा! तुमने यह क्या किया?" राणा की तत्काल मृत्यु हो गई। साधु उम्मेदसिंह ने जब इस घृणित हत्या का समाचार सुना तो उसे अत्यधिक दुःख हुआ। इसी प्रकार के एक कृत्य का प्रायश्चित करने के लिये उसने राज्य का त्याग किया था और अब उसके परिवार में इस कृत्य की पुनरावृत्ति से दुखी होकर उसने उसी समय निश्चय किया कि वह अपने पुत्र का मुंह भी नहीं देखेगा।

मेवाड़ के मृत राणा के अन्तिम संस्कार का रोमांचित वर्णन अन्य स्थान पर दिया गया है। यहां हम इस घटना से संबंधित कुछ अन्य बातों का उसी के इतिहासकारों के आधार पर चर्चा करेंगे।

राणा और राव—दोनों ने ही किशनगढ़ के राजा की दो पुत्रियों के साथ विवाह किया था। इसलिये दोनों एक ऐसे सम्बन्ध में बंधे हुये थे कि राणा को हाड़ा राव के बारे में किसी प्रकार का संदेह करना निरर्थक लगा, यद्यपि उसकी पत्नी ने राणा को सचेत कर दिया था कि वह उसके बहनोई से सावधान रहे। कुछ पीढ़ियों पूर्व मेवाड़ और बूंदी के राजाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण कर अपने प्राणों को खो दिया था, परन्तु उस घटना को दोनों ही राजवंश भुला चुके थे और इस समय रंजिश का कोई कारण न था। इस दुर्घटना के एक दिन पहले मेवाड़ के मंत्री ने एक प्रीतिभोज का आयोजन किया था और राव तथा राणा अपने अपने सामन्तों के साथ एक साथ बैठकर भोजन किया था। परन्तु इस दुर्घटना से सम्बन्धित तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि अपने राणा की निरंकुशता से दुःखी मेवाड़ के सामन्तों ने और उनके मंत्री ने भड़काने वाली स्थिति उत्पन्न कर इस दुर्घटना की बुनियाद रखी थी। जिस समय अजीतसिंह ने राणा पर प्रहार किया था तब केवल एक साधारण सेवक ने अपने स्वामी को बचाने का प्रयास किया था, परन्तु एक भी सामन्त ने उसकी रक्षा करने अथवा हत्यारे का पीछा करने का प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत राणा को मरते देख कर मेवाड़ का सम्पूर्ण शौर्य अपने राणा की मृत देह को छोड़कर ऐसे पलायन कर गया मानो उन सभी पर किसी ने भयंकर आक्रमण किया हो।

राणा की अन्तिम क्रिया करने के लिये घटनास्थल पर उसकी केवल एक उपपत्नी वहां पर बची रह गई। उसने एक कीमती चिता तैयार करवाई राणा के साथ अनन्त लोक में जाने की तैयारी की। अपने हाथों में मृत रा

देह को सभाले वह चिता पर चढी और जब चिता मे अग्नि प्रज्वलित की गई तो उसने भस्मीभूत होने के पहल श्राप दिया कि जिस अजीतसिंह ने राणा का सहार किया ह उसको दो महीने के भीतर ही इसका फल मिलेगा । बूदी के एक इतिहास मे लिखा है कि जिस स्थान पर चिता बनाई गई थी उस स्थान पर लगे एक वृक्ष की एक विशाल शाखा टूट कर पृथ्वी पर गिरी उससे चिता की भूमि बिल्कुल सफेद हो गई ।

दो महीन के भीतर ही उस सती की भविष्यवाणी फलित हुई, हाडा राव एक ककाल मात्र बनकर रह गया । उसके शरीर का मास अपन आप गल गल कर गिरन लगा और उसके कारण उसकी मृत्यु हो गई । इससे पूव क झगडे शा त हाने आय थे पर तु इस अ तिम झगडे का अभी तक अ त नही हो पाया है और बूदी वालो का मानना है कि इसे मेवाड वालो न भडकाया था ।

अजीतसिंह के बाद उसका एकमात्र लडका विशनसिंह बूदी के सिंहासन पर बठा पर तु अभी वह इतनी छोटी आयु का था कि श्रीजी (उम्मेदसिंह) के लिय उसक हितो की देखभाल करना अत्यधिक आवश्यक हो गया । अत उसन बालक विशनसिंह की तरफ से सम्पूण शासन की देखभाल के लिये अपन एक विश्वासी धाती पुत्र को नियुक्त किया और उसे शासन सम्ब धी बहुतसी बातें समझाकर फिर तीथ यात्रा क लिय निकल पडा और लगभग चार वष तक भ्रमण करता रहा । जब वह अपनी वृद्धावस्था के अ तिम चरण म पहुच गया और उसकी शारीरिक शक्तियाँ कमजोर पडन लगी तो वह पुन केदारनाथ आकर रहन लगा ।

इससे हम राजपूत चरित्र की अस्थिरता का एक और उदाहरण मिलता है अथवा उनकी सरकार की अपूणता का दशन हाता है । इस वृद्धावस्था म जबकि उम्मेदसिंह सभी प्रकार के ऐश्वय को त्याग कर एक साधारण जीवन व्यतीत कर रहा था तब ऐसे कौन स कारण थे जि होन इस शूरवीर का अपने ही पोते क अविश्वास का शिकार बना दिया । व स्वार्थी और दुष्ट लोग जो सिंहासन के समीप एक बुद्धिमान व्यक्ति का उपस्थिति को दखना पस द नही करत थ उ होन युवक विशनसिंह को उकसाया और श्रीजी क बू दी प्रवश पर प्रतिब ध लगाने को कहा । इससे अधिक अपमानजनक बात और क्या हो सकती थी कि उनके बहकावे म आकर राजा ने एक स देश भेजकर श्रीजी को कहलाया कि आप बून्दी का राज्य छोडकर वाराणसी म जाकर रहिये ।" उम्मेदसिंह न बिना किसी विरोधी के वाराणसी जाना स्वीकार कर लिया । परन्तु उसन समूचे रजवाडे म अपनी लम्बी तीथयात्राओ तथा आराधना से जो ख्याति अर्जित की थी, उससे प्रभावित अनेक राजा महाराजा उससे अपनी अपनी राजधानी म आकर निवास करने का अनुरोध करने लगे । उम्मेदसिंह के भ य व्यक्तित्व स आमेर का राजा प्रतापसिंह तो इतना अधिक प्रभावित था कि जब उसको इन सब बातो की जानकारी मिली तो उसन एक पुत्र की हैसियत स श्रीजी को पत्र

लिखकर दशन दन तथा ग्रामर म ही ग्राकर रहन की प्राथना की । श्रीजी ने कछ-वाहा नरश द्वारा व्यक्त सम्मान को तो स्वीकार नही किया पर तु उसक निमत्रण को स्वाकार कर लिया । ग्रामेर पहुचने पर श्रीजी का भव्य स्वागत किया गया ग्रौर प्रतापसिह ने सभी प्रकार से उसकी सेवा की । एक दिन प्रतापसिह भक्तिभाव से विभार होकर श्रीजी से कह बठा कि यदि ग्रापके हृदय म ग्रपन राज्य के प्रति कुछ भी लालसा हा तो ग्राप मुझे ग्राज्ञा दीजिय । मै जयपुर की सना लकर बू दी ग्रौर कोटा का परास्त करू गा ग्रौर दोनो राज्यो का ग्रधिकार ग्रापका सौप दू गा । श्रीजी न प्रसन्नता पर तु गभीरता के साथ उत्तर दिया 'य दोनो राज्य ता पहल स ही मर हैं । एक म मरा भतीजा ग्रौर दूसर म मरा पोता राज्य कर रहा है ।" इ हा दिनो म कोटा का जालिमसिह एक मध्यस्थ क रूप मे ग्रवतरित हुग्रा । वह बूदी गया ग्रौर विशनसिह को समझाया कि तुम्हार सदेह ग्रथहीन हैं ग्रौर श्रीजी क बार म एसा सोचना भी पाप है । विशनसिह से सुलह के पूर ग्रधिकार प्राप्त कर उसने ग्रपन विश्वस्त पडित लालजी को श्रीजी को राजधानी वापस लाने क लिय भजा । दादा ग्रौर पोते का मिलन हुग्रा । स्वार्थियो के जाल म फसे एक युवक ग्रौर ससार को त्यागने वाले एक स यासी का मिलन हुग्रा । स यासी क मन म ग्रब भी ग्रपने पौत्र क प्रति स्नह का भाव था । हर्ष के मारे सभी क नत्रो म ग्रासू टपक रहे थ । तभी उम्मेदसिह न ग्रपनी तलवार विशनसिह क हाथ म रखते हुए कहा, 'मेरे बच्चे ! इस लो ग्रौर यदि तुम यह सोचते हो कि मरे मन म तुम्हारे प्रति किसी प्रकार क ग्रनिष्ट की भावना है तो तुम इसका स्वय प्रयोग करो, परन्तु मुझे इन स्वार्थी ग्रौर नीच लोगो के हाथो बदनाम मत होने दो ।" श्रीजी की बात का सुनकर युवक राजा जोर जोर से रोने लगा ग्रौर ग्रपने ग्रपराध की क्षमा मागने लगा । उम्मेदसिह ने उसे क्षमा कर दिया ग्रौर पडित तथा जालिमसिह को इस बात का सन्तोष हुग्रा कि युवक राजा को गुमराह करने वाले दुष्ट ग्रौर स्वार्थी [illegible] हो गई । परन्तु श्रीजी ने बूदी के महलो म चलना स्वीकार नहीं किया । इस घटना के बाद उम्मेदसिह ग्राठ वर्ष तक ग्रौर जीवित रहा । [illegible] गया । तब उसके पौत्र ने जाकर उम्मेदसिह [illegible] के ग्राश्रय म ग्रपने नेत्र बन्द करने [illegible] समाप्त करना कठिन होता है [illegible] वह ग्रपने पूर्वजो के [illegible] (1804 ई.) में [illegible] त्याग दिये ।

बहुत सहायता की थी। युद्ध में परास्त होकर भागने वाली अंग्रेजी सेना को भी उसने हर सम्भव सहायता प्रदान की और उसने अपने राज्य तथा हितों पर आने वाले संकट की चिंता न करते हुए अंग्रेजी सेना को सुरक्षित रूप से अपने राज्य में से होकर जाने दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजी सेना को सहयोग देने के कारण ही होल्कर ने बूंदी राज्य का सर्वनाश करने का प्रयास किया था। उन दिनों की गलीज राजनीति के कारण हम उसको ठीक से समझ न सके और हम उस तरफ अधिक ध्यान भी न दे पाये। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि 1817 ई. में जब हमने लुटेरे आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिये राजस्थान के राजपूत राजाओं का सहयोग देने तथा मित्रता कायम करने के लिये आमंत्रित किया तो उसे स्वीकार करने वाला पहला राजा बूंदी का ही था। इसका एक कारण भी था। राजपूताना में मराठों का आतंक सबसे अधिक बूंदी में ही था और राजधानी की दीवारों के भीतर भी मराठा ध्वज फहराता था और राज्य की मालगुजारी भी मराठे ही वसूल करते थे जिससे राजा को अपने गुजारे के लिये बहुत कम धन मिल पाता था। बूंदी की इस अवस्था का कारण 1804 ई. के बाद हमारे द्वारा बूंदी राव को अपने भाग्य के भरोसे छोड़ देना था। सन 1817 के संघर्ष में बूंदी का राजा अपने सामंतों की सेना के साथ बराबर हमारे साथ बना रहा और जब हमने युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त कर ली तो उसकी सेवाओं को नहीं भुलाया। पिछले पचास वर्षों से होल्कर ने बूंदी राज्य के जिन इलाकों पर बलात् अधिकार कर रखा था हमने वे सब इलाके होल्कर से लेकर बूंदी के राजा के अधिकार में सौंप दिये। इतना ही नहीं, सिंधिया ने बूंदी के जिन नगरों और गांवों पर अधिकार कर रखा था वे भी उससे लेकर बूंदी को वापस लौटा दिये गये। हमारी सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये राव विशनसिंह ने कहा था "मैं अहसानफरामोश व्यक्ति नहीं हूं। जब कभी आपको आवश्यकता पड़े मेरा सिर हाजिर है।" उसके ये शब्द अर्थहीन न थे। मगर उसकी परीक्षा ली गई होती तो वह निश्चय ही अपने प्राणों की बलि देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता और उसके वंश के प्रत्येक हाडा ने उसका साथ दिया होता।

साहसी और स्पष्टवादी राव राजा एक समझौते के प्रति अपनी नाराजगी को प्रकट करने से अपने आपको नहीं रोक सका और उसने व्यथित हृदय से कहा था कि यह उसके पंखों को काटने के समान है। जो समझौता हुआ था वह न्याय और राजनीतिक आवश्यकता—दोनों दृष्टि से अनुचित था और इसका संशोधन किया जाना चाहिये ताकि भारत के इस छोटे से राज्य की अखण्डता और गरिमा को पुनः लौटाया जा सके। हुआ यह कि कोटा के जालिमसिंह ने अंग्रेजों की खुशामद करके बूंदी राज्य के इन्द्रगढ़ बलवान आनरदा और खातोली आदि इलाके कोटा राज्य में मिला लेने की कोशिश की। अंग्रेज सरकार ने बूंदी के इन स्थानों को कोटा राज्य में मिला देने के लिये जो व्यवस्था की उससे पीड़ित होकर ही विशनसिंह ने उपरोक्त शब्द कहे थे। सन 1818 ई. के फरवरी महीने में बूंदी और अंग्रेज सरकार के साथ संधि

सम्पन्न हुई। उस सधि को मैंने लिखा था और उसे बूंदी तथा कोटा–दोनो राज्यो ने स्वीकार किया। वस्तुत मैं बूंदी राज्य का कल्याण चाहता था। बिशनसिंह ने मेरी सभी बातो को स्वीकार कर लिया था। इससे वह शातिपूर्वक अपने राज्य की उन्नति म आगे बढ़ सका। परन्तु चार वर्ष बाद ही वह एक ऐसे रोग का शिकार बन गया कि फिर स्वास्थ्य लाभ न कर सका और 14 जुलाई 1821 ई के दिन उसकी मृत्यु हो गई। उसने अपनी पत्निया को चिता मे न जलने का आदेश दिया।

बिशनसिंह के चरित्र को कुछ शब्दो म व्यक्त करना आवश्यक है। वह एक ईमानदार व्यक्ति था और पूर्ण रूप से एक राजपूत था। उसका हृदय कपटहीन था और उसम कृत्रिमता का अभाव था। उसकी अतरात्मा महान थी। वह अपने हितो का अच्छी तरह से समझता था। जिस समय मराठो ने उसे दीन हीन अवस्था मे पहुचा दिया था उस समय मे भी उसने अपने जीवन का एक नई दिशा की तरफ अग्रसर कर सतोष के दिन व्यतीत किये थे। शुरू स ही वह शिकार का शौकीन था और इन दिनो म तो शिकार ही उसके जीवन का एक मुख्य मनोरजन बना हुआ है। उसने चीता और बाघो के अलावा एक सौ से अधिक शेरो का शिकार किया था। शिकार के दौरान ही उसका एक पर टूट गया और उसे लगडा बना दिया फिर भी शिकार करने की आदत मे कोई कमी न आने पाई। वह अपने पूर्वजो की भाति स्वाभिमानी था और वचन का पक्का था। जिसको एक बार साथ देने का वचन दिया फिर चाहे जितने सकट आये उसने अपना वचन निभाया था। उसका अपने राज्य म भारी दबदबा था। उसने एक सुरक्षित कोष बना रखा था और अपने मन्त्री को आदेश दे रखा था कि वह प्रतिदिन एक सौ रुपये उसम जमा करता रहे। मन्त्री को किसी भी स्थिति मे इस आदेश का पालन करना पडता था अन्यथा उसे किसी भी स्थिति मे क्षमा मिलने की सभावना न थी।

अन्य राज्यो की तरह बूंदी राज्य म भी राज्य का प्रबध नीचे लिखे हुये चार अधिकारियो के हाथो मे रहता है—(1) दीवान अथवा मुसाहिब, (2) फौजदार अथवा किलेदार (3) बख्शी, और (4) रिसाला अथवा राजा का पारिवारिक हिसाब रखने वाला। प्रधान मन्त्री को दीवान अथवा मुसाहिब कहा जाता था। राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के अधिकार म है। फौजदार अथवा किलेदार राज्य के दुर्गों का मुख्य अधिकारी था। इस पद पर हाडा वश का कोई व्यक्ति नियुक्त नही किया जाता था अपितु धाभाई को नियुक्त किया जाता था जिसका परिवार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता था। बख्शी राज्य का सम्पूर्ण हिसाब किताब रखता था और रिसाला राजमहल का हिसाब किताब रखता था। भूतपूर्व राजा न अपनी आय की उत्तम व्यवस्था की थी। बचत के रुपये को खजाने म जमा न करके प्रधान मन्त्री द्वारा किसी व्यापारिक फर्म के पास रखा जाता था और मुनाफे म राजा का भी हिस्सा रहता था। इस मुनाफे की रकम से सैनिको तथा दरबार पर आश्रित लोगो को अनाज तथा अन्य वस्तुओ के रूप म वेतन का भुगतान किया जाता था।

विशनसिंह अपने पीछे दो पुत्र छोड गया—रामसिंह और गोपालसिंह। सन 1821 ई म ग्यारह वप की आयु म रामसिंह अपने पिता के सिंहासन पर बठा। उसे भी अपने पिता की भांति शिकार खेलने का बहुत शौक है। दोनों भाई किशनगढ की राजकुमारी की संतान हैं। हमारी शुभकामनाए हाडा वंश की उन्नति के साथ हैं।

सन्दर्भ

1 यह कथन गलत है। अगल पृष्ठो के विवरण से भी स्पष्ट है कि दलेलसिंह ही बूंदी का राजा बना रहा था।

2 इस कथन की पुष्टि अन्य साक्ष्यो स नहीं होती। रानी स्वय नहीं गई थी अपितु सालिमसिंह (दलेलसिंह का पिता) के बड़े पुत्र प्रतापसिंह को मराठो की सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा था। प्रतापसिंह अपने पिता और भाई दोनों स नाराज होकर बुधसिंह का पक्षधर बन गया था। यह सहायता भी बुधसिंह की मृत्यु के बाद नहीं अपितु उसके जीवनकाल म ही प्राप्त की गई थी।

3 टाड साहब का तिथिक्रम सही नहीं है। बगरू का युद्ध अगस्त 1748 के प्रथम सप्ताह म लडा गया था और ईश्वरीसिंह ने मराठों के पुन आक्रमण के बाद 12 दिसम्बर, 1750 को आत्महत्या की थी। उम्मेदसिंह का राज्याभिषेक 23 अक्टूबर, 1748 को हुआ था अर्थात् उसके राजा बनने के दो वप बाद ईश्वरीसिंह की मृत्यु हुई थी।

कोटा राज्य का इतिहास

अध्याय 69

राव माधोसिंह से छत्रसाल तक

कोटा के हाडाओं का प्रारम्भिक इतिहास अपने वंश की बडी शाखा बूंदी का इतिहास ही है। कोटा राज्य का अलग अस्तित्व मुगल सम्राट शाहजहां के शासनकाल में आया जबकि बुरहानपुर के युद्ध में बूंदी के राव रतन के दूसरे लडके माधोसिंह की शूरवीरता से प्रसन्न होकर उसने कोटा तथा उसके आश्रित क्षेत्रों के शासनाधिकार की सनद् प्रदान की थी। इसके पूर्व कोटा राज्य बूंदी राज्य का ही अंग था।

माधोसिंह का जन्म संवत् 1621 (1565 ई०) में हुआ था। चौदह वर्ष की आयु में ही उसने बुरहानपुर के युद्ध में ऐसा पराक्रम दिखलाया कि उसे कोटा के तीन सौ साठ नगरों और गांवों जिनकी वार्षिक आय दो लाख रुपये थी का अधिकार मिल गया और वह अपने पिता से स्वाधीन होकर कोटा पर शासन करने लगा।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि इस क्षेत्र को हाडाओं ने कोटा के मूल निवासियों से जीता था। यहां के मूल निवासी भील जाति के थे। राजपूत लोग उनके साथ खान पीने का कोई परहेज नहीं करते थे। उस समय कोटा में डेरा झोपडियाँ थी। उनके भील राजा का निवास स्थान इकलेगढ नामक दुर्ग था, जो कि कोटा के दक्षिण में पांच मील दूर स्थित है। परन्तु जिस समय माधोसिंह को कोटा राज्य की सनद् मिली तब तक कोटा की भूमि का काफी विस्तार हो चुका था। उसके दक्षिण में गागरोन और घाटोली का प्रान्त था जो खीची लोगों के अधिकार में था। पूर्व में मांगरोल और नाहरगढ था जहां पहले गौड राजपूतों का अधिकार था और अब राठौडों के अधिकार में था। उस राठौड सरदार ने अपने राज्य को बचाने के लिये इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था और "राव" कहलाने लगा। उत्तर में कोटा की सीमा चम्बल नदी के किनारे सुल्तानपुर नामक स्थान तक थी। उसके दूसरी तरफ नान्दता नामक एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य था।

अन्तगत कुल मिलाकर 360 गाव और नगर थे। अनेक नदियो का पानी मिलने के कारण वहा की भूमि काफी उपजाऊ थी।

मुगल दरबार मे प्राप्त सत्ता और बादशाह की कृपा ने उसे अपने राज्य की सीमा को बढाने का अवसर दिया और अपनी मृत्यु के पूर्व उसने अपने राज्य की सीमा का विस्तार मालवा और हाडोती तक कर दिया था। सवत् 1687 (1631 ई०) मे माधोसिंह की मृत्यु हो गई। वह पाच पुत्र छोड गये। जिनके वशज कोटा राज्य के प्रमुख सामन्त बने। बूदी के वरिष्ठ हाडाओ से अपनी अलग पहचान बनाने के लिये वे माधानी हाडा कहलाने लगे। माधोसिंह के पाचो लडको के नाम थे—1 मुकुन्दसिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। 2 मोहनसिंह—पलायता की जागीर मिली, 3 जुझारसिंह को कोटडा और बाद मे रामगढ, रलावन मिला। 4 कनीराम—कोइला की जागीर प्राप्त हुई और 5 किशोरसिंह—सागोद की जागीर मिली।

मुकुन्दसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। उसने अपनी राज्य की सीमा मे हाडौती और मालवा के मध्य एक मार्ग का निर्माण करवाया जो उसके नाम पर मुकुन्द दर्रा कहलाया। इसी मार्ग से 1804 ई० मे अग्रेज सेनापति मानसन की सेना युद्ध मे पराजित होकर भागी थी। मुकुन्द ने अनेक मजबूत दुर्ग और उपयोगी मकानो का निर्माण करवाया। अन्ता नामक स्थान के महल और उसकी सुदृढ दीवारें उसी ने बनवाई थी।

राजा मुकुन्दसिंह ने वैधानिक शासन के सिद्धान्तो के प्रति राजपूती निष्ठा के कई उदाहरण प्रस्तुत किये। जब औरगजेब ने अपने वृद्ध पिता को सिंहासनच्युत करने का विचार किया था, तब लगभग सभी राजपूत राजा वैधानिक बादशाह के पक्ष मे आ जुटे थे। उनमे राठौड और हाडा सर्वोपरि थे। माधोसिंह के पुत्रो ने इस बात को याद रखते हुये कि शाहजहा के कारण ही उन्हे कोटा का स्वतन्त्र राज्य प्राप्त हुआ है, अपनी मृत्यु के समय तक शाहजहा की रक्षा करने का निश्चय किया। सवत् 1714 मे उज्जैन के निकट लडे गये युद्ध मे पाचो भाइयो ने अपने सामन्तो के साथ औरगजेब से युद्ध किया। यद्यपि उस युद्ध मे औरगजेब विजयी रहा परन्तु हाडा भाई युद्ध से नही भागे और चार भाइयो ने अपने अनेक हाडा बधुओ के साथ वीरगति प्राप्त कर अपने वश का नाम उज्ज्वल किया। सबसे छोटे किशोरसिंह को बाद मे मृतको के बीच मे से जीवित निकाल लिया गया और वह बच गया। दक्षिण के युद्धो मे खास कर बीजापुर को हस्तगत करने मे उसने अपूर्व पराक्रम का परिचय दिया परन्तु शाही राजकुमारो मे ऐसे व्यक्तियो को पुरस्कृत करने अथवा प्रोत्साहित करने की योग्यता न थी। किशोरसिंह को भी अपनी सेवाओ का सम्मान नही मिल पाया।

मुकुन्दसिंह के बाद उसका लडका जगतसिंह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने उसे दो हजार का मनसब प्रदान किया। वह अपनी मृत्युपर्यन्त

अर्थात् सवत् 1726 (1670 ई०) तक दक्षिण क युद्धो म व्यस्त रहा। वह अपने पीछे कोई लडका नही छोड गया।

कोइला के कनीराम क लडके प्रेमसिंह को जगतसिंह का उत्तराधिकारी बनाया गया पर तु वह इतना अयोग्य सिद्ध हुआ कि साम तो की परिषद् ने छ महीने बाद ही उसे सिंहासनच्युत करके वापस कोइला भेज दिया। उसके वशज् आज भी उस जागीर का उपभोग कर रहे हैं।

अत्यधिक घायल होने के बाद भी युद्ध के विनाश स जीवित रह जाने वाल किशोरसिंह को अब कोटा के सिंहासन पर बठाया गया। दिल्ली क सिंहासन पर बठन के बाद औरगजेब ने किशोरसिंह को पुन दक्षिण म भेज दिया। उसन बीजापुर युद्ध म बहुत नाम कमाया। सवत् 1742 (1686 ई०) मे अर्काट के युद्ध म वह मारा गया। वह शूरवीर हाडाओ का एक आदश नमूना था और उसकी देह पर पचास घावो के निशान थे। वह अपन पीछे तीन पुत्र छोड गया। बडे का नाम विशनसिंह और उससे छोटे के नाम रामसिंह और हरनाथसिंह थे। जब बडे पुत्र विशनसिंह ने अपने पिता के साथ दक्षिण जाने से मना कर दिया तो उसे परम्परागत उत्तराधिकार स वचित कर दिया गया पर तु गुजारे के लिय अन्ता की जागीर द दी गइ। उसके एक लडका हुआ—पृथ्वीसिंह। उसे बाद म अन्ता का साम त बना दिया गया। पृथ्वीसिंह के अजीतसिंह हुआ और अजीतसिंह के तीन लडके हुये—छत्रसाल, गुमानसिंह और राजसिंह।

जब दक्षिण मे विशनसिंह मारा गया था तब उसका लडका रामसिंह उसके साथ था। वह अपन पिता के पद सम्मान और राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। शाही इतिहास के पृष्ठ जिन निर तर युद्धो तथा मराठो के विरोध से भरे पडे है उनम रामसिंह की भूमिका किसी अ य राजपूत राजा से कम महत्वपूर्ण न रही थी। औरगजब की मृत्यु के बाद लडे गय उत्तराधिकार सघप म उसन शाहजाद आजम का साथ दिया और बडे शाहजादे मुअज्जम के विरुद्ध लडत हुय जाजाऊ के मैदान म वीरगति प्राप्त की। इस सघप म बू दी के हाडा राजा न बडे शाहजाद का साथ दिया था। परिणामस्वरूप हाडा वश की दोनो शाखायें इस युद्ध म एक दूसर का गला काट रही थी।

रामसिंह के बाद भीमसिंह कोटा क सिंहासन पर बठा। उसक शासनकाल म कोटा राज्य न पर्याप्त उन्नति की। बहादुरशाह की मृत्यु और फरूखशियर क सिंहासनारोहण क समय राजा भीम न सयदो का साथ दिया। अत उस पुरस्कृत किया गया और उस पाच हजार का मनसबदार बना दिया गया। इतना बडा मनसब अब तक केवल प्रमुख राजवशो क राजाओ को ही मिलता आया था। हाडाओ की
पहल की भाति सिंहासन क स्वामी क प्रति निष्ठावान बनी रही और

वाले सयदो का विरोध करतो रही। इस स्थिति का लाभ उठाने हुये कोटा के भीमसिंह ने कोटा के राव राजा बुधसिंह के ऊपर असम्मानजनक ढग से आक्रमण किया जिसका वर्णन बूंदी के इतिहास मे किया जा चुका है। अवन आपको सयदो तथा आमेर के जयसिंह के साथ पूरी तरह से जोड देने के बाद राजा भीमसिंह ने बूंदी का अस्तित्व समाप्त करने की पूरी चेष्टा की। उसने सयदो से कोटा के पश्चिम से लेकर पूव म अहीरवाडे के मध्यवर्ती पठार की सम्पूर्ण भूमि प्राप्त कर ली। यह विस्तृत भूमि खीची लोगो और बूंदी राज्य के अधिकार की थी। गागरोन का सुप्रसिद्ध दुग इसी क्षेत्र मे था जा अब हाडौती के दुर्गों मे सबस अधिक सुदृढ हो गया। इसके अलावा उसने मऊमेदाना शेरगढ, बाग, मागरोल और बरोद आदि स्थानो पर भी अधिकार कर लिया। ये सभी उसके राज्य की पश्चिमी सीमा बन गय थे। इस क्षेत्र के मूल निवासी भीलो ने अब तक अपने पूवजा के अनेक नगरो और गावो पर अधिकार कर लिया था। कोटा की सुदूर दक्षिणी सीमा के समीप मनोहर थाना नामक स्थान पर भीलो ने अपनी राजधानी कायम की और उनका राजा चक्रमन वहा निवास करने लगा। उसकी सेवा मे पाच सौ अश्वारोही सनिक और आठ सौ धनुषधारी थे। मेवाड से लेकर पठार की अंतिम सीमा तक आबाद भीलो की सभी शाखाओ के लोग उसको अपना राजा मान कर उसकी आज्ञा का पालन करते थे। कोटा क राजा भीमसिंह न भीलो पर आक्रमण करके उनका निदयता के साथ सहार किया और उनके नगरो तथा गावा को जीतकर अपने राज्य मे सम्मिलित कर लिया। इन्ही दिना म उसने नरसिंहगढ और पाटन पर भी अपना अधिकार कर लिया। यदि वह कुछ समय तक और जीवित रहा होता तो शायद अपने राज्य की सीमा को पहाडो के उस पार भी विस्तत कर देता। अपनी मृत्यु के पूव उसने अनारसी डिग, पडावा और च दावतो के नगरो को भी अपने राज्य म मिला लिया था। लकिन उसकी मृत्यु के बाद ये सभी स्थान धीरे धीरे कोटा के अधिकार से जाते रहे।

विख्यात कुलीचखा जो आगे चलकर निजामउलमुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ, न दरबार स भागकर अपने शस्त्रबल से दक्षिण की सरकार को अपन अधिकार म बनाये रखने का प्रयास किया तो बादशाह के प्रमुख सेनापति आमेर के राजा जयसिंह ने कोटा के भीमसिंह और नरवर के राजा गजसिंह का उसका माग अवरुद्ध करने तथा उसे रोकने का आदेश दिया। निजाम हाडा राजा का पगडी बदल भाई था और उसने हाडा राजा को एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा। उस पत्र म उसने लिखा कि, 'मैने दिल्ली के बादशाह का कोई नुकसान नही किया है और न ही उसका खजाना लूटा है। इसलिय मेरे सम्ब ध मे बादशाह को जो कुछ कहा गया है वह सब असत्य और आप उन बातो को महत्व न दें। जयसिंह एक षडय त्रकारी है और वह दानो का सवनाश करना चाहता है। अत आप मेरी दक्षिण यात्रा म कोइ रुकावट न डालें।' साहसी हाडा न उत्तर भिजवाया वह कत व्यपरायणता और मित्रता का सीमा रेखा को जानता है। उस आपका माग रोकने का आदेश हुआ है और इसी

-घ्यय स वह यहा तक ग्राया है। यह बादशाह का ग्रादेश है। ग्रापसे लडना ही होगा ग्रौर कल प्रात काल में ग्राप पर ग्राक्रमण करूगा। इस प्रकार एक सच्चे राजपूत की शिष्टता के ग्रनुसार भीमसिंह न उसे सावधान कर दिया पर तु धूत निजाम ने उस पर कोई घ्यान नही दिया ग्रौर सिंधु के कुरवाई ग्रौर भौंरासा नगरो के निकटवर्ती पहाडी माग पर ग्रपना पडाव डाल दिया। यह स्थान ऐसा था जहा शत्रु लोग तो ग्रासानी के साथ धावा नही मार सकत थे परन्तु उसके सनिक छिप कर गालोवर्षा कर सक्ते थ। दूसर दिन सुबह हात ही ग्रफीम सेवन करने के बाद भीमसिंह ग्रपने हाथी पर सवार हुग्रा ग्रौर कछवाहा तथा ग्रन्य सामन्तो की सेना के साथ शत्रु पर ग्राक्रमण करन क लिय चल पडा। राजपूतो के ग्राग बढत ही निजाम की तोपा ने ग्राग उगलना शुरू कर दिया ग्रौर हाथियो पर सवार राजा भीमसिंह ग्रौर राजा गजसिंह-दोनो ही मार गय। उनके मरते ही राजपूत सनिक भाग खडे हुय। निजाम ग्रपनी सेना के साथ ग्रपनी मजिल की तरफ चला गया। हैदराबाद पहुच कर उसने स्वत त्रता के साथ शासन करना शुरू किया। हैदराबाद का वह राज्य ग्रब तक उसके वशजो के ग्रधिकार म है।

इस ग्रवसर पर हाडाग्रो को दोहरी क्षति उठानी पडी। उनका राजा मारा गया ग्रौर राजवश क ईष्टदेवता बृजनाथ की मूर्ति खो गई। हाडाग्रो की यह मूर्ति छोट ग्राकार की थी परन्तु ठास सोन की थी। राजपूत राजाग्रो म युद्ध के समय ग्रपने ईष्टदेव की मूर्ति का साथ ले जान की प्रथा थी ग्रौर धावा मारन क पहले व ग्रपने ईष्टदेव का नाम लकर युद्धघोष करत थ-जय बृजनाथ! काफी दिनो बाद खोई हुई मूर्ति के समान दूसरी मूर्ति मिल गई ग्रौर जब उसे कोटा न ग्राया गया तो प्रत्येक हाडा ग्रान दविभार हो उठा। सवत् 1776 (1720 ई०) म भीमसिंह की मृत्यु हुई थी। उसन पन्द्रह वष तक शासन किया ग्रौर ग्रपने शासनकाल मे उसने ग्रपन राज्य की काफी उन्नति की।

धौलपुर क मैदान पर हाडावश की दोनो शाखाग्रो के मध्य जो शत्रुता उत्पन्न हुई वह जारी रही ग्रौर राजा भीमसिंह न जिस दुष्टता के साथ बूदी क राव बुधसिंह पर ग्राक्रमण किया था, उसका उल्लख किया जा चुका है पर तु उसक परिणामो की चर्चा नही की गई। इस शत्रुता का वरिष्ठ शाखा की सर्वोच्चता पर घातक प्रभाव पडा। राजा भीमसिंह न बूदी पर ग्राक्रमण करके उनके शासन क तमाम प्रतीक चि ह्रो का छीन कर कोटा ल गया जसेकि वहा का नगाडा झण्डा ग्रादि। जहागीर न हाडाग्रो क शौय स प्रभावित होकर बूदी के राव रतन को जो पाले रग की राजपताका दी थी उस भी भीमसिंह कोटा ल ग्राया ग्रौर ग्रब इन सभी प्रतीको का कोटा की कनिष्ठ शाखा विशेष ग्रवसरो पर गौरव के साथ प्रदान करती है।

राजसत्ता के इन प्रतीक चि ह्रो को प्राप्त करन के लिय कई प्रकार किय गय। कोटा दुग ग्रौर नगर क दरवाजो की नकली चाबियाँ बनवा

यहा के पहरेदारो को घूस देकर भीतर प्रवेश करने का प्रयास किया गया और जब योजनानुसार काम पूरा होने ही वाला था कि अन्य कर्मचारियो की सतर्कता से सारी योजना निष्फल हो गई। इससे कोटा के राजा ने सबक सीखा और तब से शाम होने के कुछ समय बाद ही कोटा नगर के दरवाजो को बन्द कर देने की व्यवस्था की गई और इसका इतनी सख्ती के साथ पालन किया गया कि यदि स्वयं राजा भी रात्रि मे दरवाजे खुलवाना चाहे तो नही खुलवा सकता था। इस सम्बन्ध मे एक घटना का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। जब कोटा का राजा दुर्जनसाल युद्ध मे पराजित होकर मध्यरात्रि मे केवल पाँच सवारो के साथ कोटा पहुचा तो उसने जोर से चिल्ला कर पहरेदारो को दरवाजा खोलकर उन्हे अन्दर आने देने के लिये कहा। परन्तु उसके आदेश का कोई असर नही हुआ। पहरेदारो ने दरवाजा खोलने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर राजा स्वयं दरवाजे पर आया और पहरेदार को अपना परिचय दिया और फाटक खोलने को कहा। इस पर भी पहरेदार ने फाटक खोलने से इन्कार कर दिया और कहा कि यदि दुबारा परेशान करोगे तो मैं तुमको गोली मार दूगा। आप यदि हमारे राजा भी हैं तो भी आपको रात्रि का शेष समय बाहर किसी स्थान पर गुजारना होगा। विवश होकर राजा दुर्जनसाल को शेष रात्रि नगर के बाहर ही बितानी पडी। सुबह होते ही दरवाजा खुला। रात वाला पहरेदार अपने दूसरे साथी को रात की घटना बतला रहा था कि उसने राजा दुर्जनसाल को दरवाजे से प्रवेश करते देखा। वह भयभीत हो उठा। उसने अपनी बन्दूक राजा के चरणो मे रख दी और चुपचाप खडा हो गया। राजा ने मुस्करा कर उसकी तरफ देखा और उसकी कर्तव्यपरायणता की प्रशंसा करते हुये उसे पुरस्कार दिये जाने का आदेश दिया।

हाडा इतिहासकार लिखता है कि भीमसिंह के शरीर पर इतने अधिक जख्म थे कि उनके कारण उसके शरीर की सुन्दरता नष्ट हो गयी थी। इसलिये वह उन जख्मो को छिपाने के लिये हमेशा वस्त्र पहने रहा करता था और अपने सेवको की उपस्थिति मे कभी वस्त्र नही बदलता था। कुन्वाई के युद्ध मे तोप के गोले से वह बुरी तरह से घायल हो गया। उस अवसर पर उसकी सेवा करने वाले एक विश्वस्त सेवक ने पहली बार उसके जख्मो को देखा तो उसने राजा से इनके बारे मे पूछा। भीमसिंह ने उसे उत्तर दिया कि 'जो शासन करने के लिये पैदा हुआ है और जो अपनी भूमि की रक्षा करने का विचार रखता है, उसको तो इस प्रकार के जख्मो की आशा करनी ही चाहिये। राजा का स्थान अपने सामन्तो के ऊपर होता है।'

राजा भीमसिंह कोटा का प्रथम राजा था जिसे बादशाह की तरफ से पाँच हजारी का मनसब अर्थात् पाँच हजार सैनिको का नेता मिला था। इसी प्रकार वह अपने वंश का पहला राजा था जिसने 'महाराव' की उपाधि धारण की थी। यह उपाधि उसे मेवाड के राणा ने प्रदान की थी और जिसे मुगल बादशाह ने भी मान्यता प्रदान की थी। बून्दी के गोपीनाथ जिसके वंशज हाडौती के प्रमुख सामन्त हैं, के पहले

बूदी के राजाओ के लिये 'आपजी' शब्द का प्रयोग होता था। परन्तु जब इन्द्रसाल उदयपुर गया तो उसने राणा से 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त की। तब से "आपजी" शब्द का प्रयोग कोटा के माधानी शाखा के राजाओ के लिये किया जाना लगा था। राजा भीमसिंह अपने पीछे तीन पुत्र छोड गया—अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुजनसाल।

महाराव अर्जुनसिंह ने भाला जालिमसिंह के पूर्वज माधोसिंह की बहिन के साथ विवाह किया था परन्तु उससे कोई सन्तान नही हुई और चार साल के शासन के बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद राज्य मे श्यामसिंह और दुजनसाल के मध्य उत्तराधिकार संघर्ष शुरू हो गया जिसमे सामन्त दो भागो मे विभाजित हो गये। संघर्ष मे श्यामसिंह मारा गया और दुजनसाल संवत् 1780 (1724 ई०) मे कोटा के सिंहासन पर बैठा। इस गृह युद्ध के दौरान कोटा को अपने कुछ इलाको से भी हाथ धोना पडा। मुगल बादशाह ने भीमसिंह को पुरस्कार मे रायपुरा, भानपुरा और कालापीत नामक तीन वैभवशाली नगर वहा के मूल अधिकारियो से लेकर दिये थे। गृह युद्ध के दौरान वहा के पूर्व अधिकारियो ने उन नगरो पर पुन अपना अधिकार कर लिया और वे कोटा राज्य के अधिकार से निकल गये।

मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने दुजनसाल के उत्तराधिकार को मान्यता प्रदान की और दरबार मे उपस्थित होने पर उसे खिलत प्रदान की। बादशाह ने उसके इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि यमुना नदी के किनारे जिस स्थान पर हाडाओ का निवास स्थान है उस क्षेत्र मे गौ हत्या नही की जायेगी। दुजनसाल अपने देश के इतिहास के घटना प्रधान समय मे सिंहासन पर बैठा था। उसी के शासनकाल मे मराठो ने बाजीराव के नेतृत्व मे पहली बार उत्तरी भारत (हिन्दुस्तान) पर आक्रमण किया था।[1] इस स्मरणीय अवसर पर उन्होने हाडौती राज्य से पूर्वी सीमा पर तारज-पास नामक पहाडी रास्ते को पार करते हुये नाहरगढ के दुर्ग पर आक्रमण किया। यह दुर्ग उस समय एक मुस्लिम अधिकारी के पास था। मराठो ने इस दुर्ग को जीत कर कोटा के राजा दुजनसाल को सौप दिया। यह संवत् 1795 (1739 ई०) की घटना है जब पहली बार हाडा राजपूतो के साथ मराठो का सम्पर्क हुआ था। राजा दुजनसाल ने नाहरगढ दुर्ग के बदले मे पेशवा बाजीराव को उसके अभियान के लिये आवश्यक बहुत सी रसद तथा युद्ध सामग्री से सहायता दी थी। परन्तु उनकी यह मित्रता ज्यादा दिनो तक नही चल पायी।

बूदी के इतिहास के अन्तर्गत हम उल्लेख कर आये है कि मुगल दरबार की शक्तियो की सहायता से आमेर के राजा ने हाडा राजाओ को अपने करद सामन्त बनाने की चेष्टा की थी। जयसिंह के उत्तराधिकारी ने अपने पिता की नीति को जारी रखा। परिणामस्वरूप बूदी के राव बुधसिंह को सिंहासन से उतारकर निर्वासित कर दिया गया। वृद्धावस्था मे मानसिक पीडा ने बुधसिंह के प्राण ले लिये। परन्तु

उसने जिन साधनो का महारा लिया था, अ त म वे ही उमके स्वय के विनाश के कारण बने। बुधसिह को सिंहासनच्युत करके उमन उसी के एक ऐसे साम त को सिंहासन पर बठाया जिसन आमेर की अधीनता स्वीकार करने तथा वार्षिक कर चुकाना स्वीकार किया। इसके वाद आमेर क राजा ने कोटा का अपनी अधीनता म लान का प्रयास किया। उस समय दुजनमाल काटा का राजा था। सवत् 1800 (1744 ई०) म आमेर के राजा ईश्वरीसिह न अपनी सहायता के लिये तीन बड मराठा नेताओ और सूरजमल के नतृत्व म जाटो को अपनी सहायता के लिये बुलाया और काटा पर आक्रमण कर दिया। कोटडी नामक स्थान पर दानो पक्षो मे घमासान युद्ध हुआ और फिर कोटा नगर का घेरा डाल दिया गया। आक्रमणकारी तीन महीने तक नगर का घेरा डाले रहे पर तु उनको सफलता न मिली। अ त मे निराश ईश्वरी सिह आमेर वापस लौट गया। मराठा क नता जयप्पा सि धिया का गोली लगन स एक हाथ जाता रहा। क्रोधित मराठे नगर क बाहर क वृक्षो का काटकर तथा उद्यानो को नष्ट करके वापस लौट गये।

शत्रुओ के आक्रमण के समय दुगरक्षको के सेनानायक झालावशी राजपूत हिम्मतसिह न दुजनसाल की अपनी मलाह तथा पराक्रम से महत्वपूर्ण सहयोग दिया था। हिम्मतसिह न ही मराठो से बातचीत करके दुजनसाल के लिये नाहरगढ का दुग प्राप्त किया था और उसी के कारण कोटा की सेना का अराष्ट्रीयकरण हुआ और आगे चलकर उसे मराठो क उत्पीडन का शिकार बनना पडा। इन दो घटनाओ के बीच म, अर्थात् सवत् 1795 और सवत् 1800 के मध्यवर्ती समय मे जालिमसिह का ज म हुआ। उसन अपने जीवनकाल म इतनी अधिक कीर्ति अर्जित की कि उसका जीवन चरित्र हाडाओ क शेष इतिहास की जानकारी दे सकता है।

जब ईश्वरीसिह को कोटा को जीतन मे सफलता न मिली तो दुजनसाल न उम्मेदसिह को उसका पतृक राज्य दिलवान म उसकी हरसम्भव सहायता की। पर तु होल्कर की सहायता के बिना यह सम्भव न हो पाया और सवत् 1805 (1749 ई०) म जब उम्मेदसिह को अपना पतक राज्य प्राप्त हुआ तो कोटा को भी मराठो को कर चुकान के लिये विवश किया गया।

दुजनसाल न अपने पतक राज्य म कई इलाके मिलाकर उसकी वृद्धि की। उमने खीची लोगो स फूलबराद का इलाका छीन लिया और गूगोर के दुग को भी जीतन का प्रयास किया पर तु वहा क राजा बलभद्र ने बहादुरी के साथ अपने दुग की रक्षा की। उसन हाडाओ क विरुद्ध रामपुरा, शिवपुर आदि के सरदारो को मिला कर एक सघ की स्थापना की थी। उस युद्ध म बू दी क उम्मेदसिह ने कोटा की लाज रख ली अ यथा खीची लोगो की विजय सुनिश्चित थी। चौहानवश की इन दोनो शाखाओ के मध्य यह युद्ध सवत् 1810 म लडा गया था और इस युद्ध के तीन वष

वाद दुजनसाल की मृत्यु हो गई। वह एक साहसी राजा था और उसमे एक राजपूत के सभी गुण विद्यमान थे। साहस और शूरवीरता के साथ साथ उसम पर्याप्त उदारता भी थी। उसे शिकार खेलने का बहुत शौक था और वह प्राय बाघ और शेर का शिकार किया करता था। उसन जगल के महत्वपूर्ण स्थानो पर मचान बना रखे थे।

इन शिकार अभियानो जो सैनिक अभियानो की तयारी जस ही थे म उसकी रानिया भी उसके साथ जाती थी। इन रानियो को व दूक चलान का पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाता था। जगल मे जाकर उन्हे मचानो पर बठा दिया जाता था और वे अपन हाथो म व दूकें लेकर बठती थी और अवसर मिलन पर बाघ अथवा शेर पर गोलिया चलाती थी। इस प्रकार क अवसरो म से एक अवसर पर झाला फौजदार भी साथ था। उसके साथ क सनिको न एक बाघ को उत्तेजित किया और वह बाघ दहाडते हुय शिकारी लोगो की तरफ दौडा। राजा दुजनसाल ने यह नियम बना रखा था कि जब कोई शेर अथवा बाघ जगल से निकल कर हम लोगो पर आक्रमण करे तो मचान पर बठी हुई रानिया अपनी गोलियो से उसको मारन की कोशिश करे। पर तु उस दिन जब क्रोधित बाघ दौडकर आ रहा था उस समय हिम्मतसिह झाला मचान के नीचे जगली भूमि पर खडा था। ऐसे अवसर पर राजा का सकेत मिलते ही रानिया गोली चलाती थी। बाघ दौडता हुआ हिम्मतसिह की तरफ ही आ रहा था और राजा स सकेत न मिलने के कारण रानिया गोलिया न चला पाइ। क्रोधित बाघ ने हिम्मतसिह पर आक्रमण किया। हिम्मतसिह ने बडी तेजी के साथ ढाल स अपनी रक्षा की और दाहिने हाथ की तलवार से बाघ के सिर को काट कर जमीन पर गिरा दिया। यह दृश्य देखकर सभी ने उसकी दिलेरी की प्रशसा की।

दुजनसाल के कोई सतान नही हुई। उसका विवाह मवाड के राणा की लडकी के साथ हुआ था। दुजनसाल को जब अपन उत्तराधिकारी के होन की आशा न रही तो उसा अपनी मृत्यु के तीन वप पहले अपनी पत्नी से कहा था कि यदि म पुत्रहीन अवस्था म मर जाऊँ ता किसी लडक का गाद ल लना। ईश्वर न मुझे सिहासन का अपहरण करन की सजा दी है। यह पहल लिखा जा चुका है कि राव रामसिह न अपन लडके विशनसिह का उत्तराधिकार स वचित करक आता की जागीर म भेज दिया था। इस समय उसका पाता अजातसिह आता का जागीरदार था, पर तु वह काफी वृद्ध हा चला था। उसक तीन लडक थ, जिनम छत्रसाल सबसे वडा था। मृत्यु के पूव दुजनसाल न छत्रसाल का गाद लन की सलाह दी और उस समय म उपस्थित सभी साम ता न उसके निर्णय का स्वीकार कर लिया और व को बुलवाकर मवाडी रानी की गाद म भी सौप दिया गया तथा उस नाम सिखाये जान लग ताकि वह अपन आपको अब आता के अजीत

समझे। लेकिन झाला फौजदार ने छत्रसाल को गोद लिये जाने का विरोध किय और उसने उसमे सशोधन प्रस्तुत किया। उसमे अपने सशोधन को कार्यान्वित कराने की शक्ति भी थी। उसका तर्क था कि छत्रसाल का पिता अजीतसिंह अभी तक जीवित है। उसके लडके को सिंहासन पर बठाकर फिर उसे उसके अधीन बनाकर प्रजा के समान रखना किसी प्रकार न्यायपूर्ण नही है। इसलिय अजीतसिंह को सिंहासन पर बैठाया जाना चाहिये। किसी ने झाला फौजदार का विरोध नही किया और वृद्ध अजीतसिंह को कोटा के सिंहासन पर बठाया गया। ढाई वर्ष के बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसके तीन लडके थे—छत्रसाल गुमानसिंह और राजसिंह। छत्रसाल को कोटा का महाराव घोषित किया गया। परन्तु उसके राज्याभिषेक के पहले ही वृद्ध झाला फौजदार की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर उसके भतीजे जालिमसिंह को फौजदार बनाया गया।

इसी समय के आसपास ईश्वरीसिंह जहर खाकर मर गया था और उसके स्थान पर माधोसिंह आमेर का राजा बना। उसने अपने भाई की विफलता से कोई सबक न सीख कर हाडाओ से कर वसूली के अपने दावे को मनवाने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी। इस बार राजपूत के विरुद्ध राजपूत म सघर्ष था और सघर्ष का जो प्रश्न था वह एक के लिये अपनी सर्वोच्चता का था तो दूसरे के लिये अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का था। आमेर का तर्क यह था कि साम्राज्य के सेनानायक के रूप म कोटा की सेना उसके अधीन रहती आई थी। इसके विपरीत हाडाओ की दलील थी कि ऐसा बादशाह की सेवा म रहते हुये किया गया था और आमेर का राजा भी तो आखिरकार बादशाह का सेवक ही था। अन्यथा राजनतिक स्तर पर दोनो एक समान थे।

सवत् 1817 (1761 ई) म आमेर के राजा ने अपने स्वबन्धुओ को एकत्र किया ताकि हाडाओ को अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया जा सके। अब्दाली के आक्रमण से मराठा की शक्तिया कमजोर पड़ गई थी और कछवाहा वश के राजपूतो को अब मराठा का भय न रहा था। अत माधोसिंह एक विशाल सेना के साथ हाडौती पर आक्रमण करने के लिये चल पडा। सवप्रथम उनियारा पर आक्रमण किया गया और उसे जीतकर आमेर राज्य म सम्मिलित कर लिया गया। इसके बाद लाखेरी पर आक्रमण किया गया और वहा के मराठा अधिकारियो को खदेडकर उस स्थान पर भी अधिकार कर लिया गया। इस सफलता से उत्साहित होकर वह पालीघाट पहुचा। यह इलाका सुल्तानपुर के हाडावशी सरदार के अधिकार म था। माधोसिंह ने इस स्थान पर आक्रमण कर अपने अधिकार म ले लिया। सुल्तानपुर का सामन्त अपने परिवार सहित युद्ध म मारा गया। इस नवीन सफलता से प्रोत्साहित माधोसिंह कोटा के भीतरी भाग म आगे बढा और भटवाडा नामक स्थान तक पहुच गया। यहाँ पर उसने पाच हजार हाडा सनिको को युद्ध के लिये तयार खडे देखा।

हाडाम्रा के मुकाबले म ग्रामर के सनिका की मख्या उहुत ग्रधिक थी। पर तु व लाग ग्रपनी ज मभूमि ग्रौर सम्मान की रक्षा करन के लिय लड रह थ। ग्रत उ होन ग्रपूव पराक्रम के साथ युद्ध लडा। इसी समय काटा के सनापति जालिमसिंह भाला न राजनीति म प्रवश किया था। उस समय वह इक्कीस वष की ग्रायु का था। उसन ग्रपनी पाडी का कपडा ग्रपन सिर पर बाधा ग्रौर घाड स उतर कर ग्रपन सनिका का उत्साहित करता हुग्रा ग्रामर की सना पर बाघ की भाति भपट पडा। इस युद्ध म उसन जिस वीरता का प्रदशन किया उसक कारण जीवन भर उसकी ख्याति बनी रही ग्रार राजपूताना की राजनीति म उसन ग्रपना एक ग्रलग ही स्थान बना लिया।

मल्हारराव हाल्कर समीप स ही युद्ध का दृश्य देख रहा था। पानीपत के युद्ध न उसका इतना कमजार बना दिया था कि उसन इस युद्ध म किसी भी पक्ष का समथन करना उचित नही समझा। जालिमसिंह न जब ग्रामर का पलडा भारी देखा ता वह ग्रपन घाडे पर सवार हाकर मल्हारराव के पास गया ग्रौर उसस कहा कि यदि ग्राप युद्ध म किसी पक्ष का साथ न देना चाहत हैं ता ग्रपनी सना की सहायता स ग्रामर का शिविर लूटकर लाभ तो उठा सकत हैं। यह एक एसा सकेत था जा लुटर मराठा सनापति के लिय पर्याप्त था।

मराठा न ज्याही ग्रामर के शिविर का लूटना शुरू किया ग्रामेर की सना घबरा उठी ग्रौर वह भयभीत होकर युद्धक्षेत्र स भागन लगी। उस भगदड म ग्रामेर राज्य की पचरगी पताका भी काटा वाला के हाथ लग गई। हाडाग्रा न रक्त सरोवर म ग्रपनी तीथ यात्रा पूरी की।

माचेडी, ईसरदा, वाटका, बाराट ग्रचरोल ग्रादि के साम त ग्रपन सनिक दस्ता के साथ हाडाग्रा का पीठ दिखाकर भाग खडे हुय। इस युद्ध के समय बूदी के हाडाग्रो न कोटा का साथ नही दिया था इसलिय व ग्रपनी जागीरो को ग्रामर के कराराक्रमण स ग्रपन का मुक्त करान का स्वण ग्रवसर गवा बठे। भटवाडा के इस युद्ध म जालिमसिंह का सितारा चमक उठा। हाडा कवियो ने उसकी प्रशसा म जो कवितायें बनाइ थी हाडा लोग ग्रब तक स्वाभिमान के साथ उनको गाया करत है।

भटवाडा के इस युद्ध ने खिराज (कर) के प्रश्न का निर्णय कर दिया। उसके बाद वहा के राजा न ग्रपनी सर्वोच्चता का दावा करत हुये कोटा से कर मागने का कभी साहस नही किया। ग्रपनी स्वाधीनता ग्रौर मर्यादा के लिय भटवाडा के युद्ध म हाडा राजपूतो ने जिस प्रकार युद्ध करके ग्रपन प्राणो का बलिदान किया था उसकी स्मृति म हाडावश के लाग प्रतिवष एक उत्सव मनाया करत है। उस उत्सव के दिन ग्रामेर का एक नकली दुग बनाया जाता है ग्रौर फिर उसका विध्वस कर ग्रान दोत्सव मनाया जाता है।

इस युद्ध के थोडे समय बाद ही राव छत्रसाल की मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे कोई पुत्र नही छोड गया। अत उसके बाद उसके छोटे भाई को कोटा के सिंहासन पर बठाया गया।

सन्दर्भ

1 सयोग की बात है कि जिस वर्ष बाजीराव ने हिंदुस्तान पर आक्रमण किया था उसी वर्ष झाला पृथ्वीसिंह के शिवसिंह नामक पुत्र हुआ और अगले वर्ष विख्यात झाला जालिमसिंह का जन्म हुआ था। जालिमसिंह के जन्म वाले वर्ष में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया था।

अध्याय 70

झाला जालिमसिंह का उदय

सवत् 1822 (1766 ई०) म गुमानसिंह अपन पूवजो की गद्दी पर बठा। वह अपनी युवावस्था म था। उसम साहस और बुद्धिमता थी। इ ही दिनो म मराठो न राजपूत राज्या पर आक्रमण कर उनका जी भर कर शोषण करने का प्रयास शुरू किया था। गुमानसिंह म अपन राज्य की रक्षा करन की शक्ति भी थी पर तु भाग्य के एक प्रहार स उम शासन का भार एक बालक का सौप देना पडा। पर तु इस घटना का उल्लेख करने क पूव उससे पहले की घटनाओ का उल्लेख करना अधिक उचित होगा। इस सम्ब ध म हम इम राज्य के भावी इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालेंगे। उस व्यक्ति का नाम था जालिमसिंह झाला, जिसका नाम राजपूताना के प्रत्येक राज्य क साथ लगभग पचास वर्षो तक जुडा रहा। कोई उसकी अवहलना अथवा उपक्षा नही कर सकता था। वह राजनीति म इतना निपुण था कि कही पर रहते हुये भी अपनी मर्यादा को बनाये रखन मे समथ था।

जालिमसिंह झाला जाति का राजपूत है। उसका ज म सवत् 1796 (1740 ई) म हुआ था– यह वह समय था जबकि नादिरशाह ने भरतपुर पर आक्रमण करके तमूरवशी साम्राज्य पर प्राणघातक प्रहार किया था। यह घटना घटित न भी होती तो भी औरगजेब की नीतियो ने साम्राज्य का रसातल मे पहुचा दिया था और उसका पतन समय की बात थी। उम समय मुहम्मदशाह दिल्ली के सिंहासन पर था और कोटा के सिंहासन पर शूरवीर दुजनसाल था। उस समय (1740 ई०) स पाच राजा गुजर चुक थ और छठे का अभिपक हुआ ही था। जालिमसिंह न उन सभी के बराबर समय तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा और यद्यपि वह अपना एक नत्र खो बठा था परन्तु इसस उसके साहस तथा नतिक विचारो म कोई कमी न आई थी। भटवाडा के युद्ध के प्रथम दिन से उसने अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखा। उसने अपने जीवन म सभी प्रकार के राजनीतिक उतार चढावा को देखा। एसे जीवित व्यक्ति क जीवन चरित्र का लिखना सभव नही है, फिर भी उसकी रूपरेखा तो प्रस्तुत की ही जा सकती है।

जालिमसिंह के पूवज, सौराष्ट्र प्रायद्वीप के उपविभाग के झालावाड़ जिले के अ तगत हलवद नामक स्थान के साधारण साम त थे । भावसिंह इस परिवार का एक छोटा सदस्य था । उसन अपन कुछ साथियो के साथ अपना भाग्य आजमान के लिये अपना पतृक स्थान छोडकर किसी अ य स्थान पर जाने का निश्चय कर लिया और तदनुसार चल पडा । उन दिना मे औरगजेब के वशजो म सिंहासन प्राप्त करन के लिये सघप चल रहा था । भावसिंह का लडका माधोसिंह कोटा चला आया । कोटा मे इन दिनो मे राजा भीमसिंह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था । यद्यपि माधोसिंह के पास उस समय केवल पच्चीस अश्वारोही मनिक ही थे पर तु उसके झाला वश का सम्मान करते हुये राजा भीमसिंह न न केवल उसको अपने यहा आश्रय ही दिया अपितु उसकी बहन के साथ अपने पुत्र अजु नसिंह का विवाह करके उस साहसी झाला को प्रतिष्ठा प्रदान की और गुजारे के लिये आता की जागीर दी । हाडा राजवश के साथ पारिवारिक सम्ब ध स्थापित हो जाने से माधोसिंह की उन्नति का माग प्रशस्त हो गया । राजवश के छोटे सदस्य उसे ' मामा साहब" कहने लगे । माधोसिंह को शीघ्र ही ' फौजदार" का पद प्राप्त हो गया । उसकी मृत्यु के बाद उसका लडका मदनसिंह अपने पिता की जागीर और फौजदार के पद का उत्तरा धिकारी बना । मदनसिंह के दो लडके हुये—हिम्मतसिंह और पृथ्वीसिंह ।
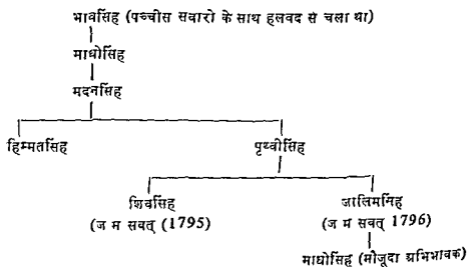
पूव के अ य राज्यो की भाति कोटा म भी फौजदार" का पद वशानुगत हो गया था । मदनसिंह की मृत्यु के बाद हिम्मतसिंह को फौजदार के पद पर नियुक्त किया गया जिसने कई अवसरो पर अपनी नीति वीरता और योग्यता से अपन आपको इस पद के निय साथक सिद्ध कर दिखाया था । आमेर के राजा ने जब मराठो को साथ लेकर कोटा राज्य पर आक्रमण किया था तो उसकी सलाहानुसार हाडा राजा न

बहादुरी के साथ शत्रुओ स अपने दुग की रक्षा की थी। परन्तु बाद मे कोटा के राजा न मराठो मे पृथक सधि करके उनको कर देना स्वीकार कर लिया था। राजा दुजनमाल के मरने के बाद हिम्मतसिंह ने अजीतसिंह को सिंहासन पर बठाया और कोटा के सिंहासन पर उसके वशजो का अधिकार कायम हुआ। जालिमसिंह ने आगे चलकर इस सेवा का पूरा पूरा लाभ उठाया। वह प्राय कहा करता था कि कोटा के मौजूदा राजाओ न उसक पूवजो की सलाह के फलस्वरूप ही शासनाधिकार प्राप्त किया है। जालिमसिंह ने स्वय भी भटवाडा के युद्ध म आमेर की सेना के विरुद्ध घोर युद्ध करके उसकी रक्षा ही नही की अपितु उसे जयपुर की सर्वोच्चता से हमेशा के लिय मुक्त करवा दिया था।

गुमानसिंह क सिंहासन पर बठने के कुछ दिनो बाद ही जब युवक फौजदार ने अपने राजा के प्रेममाग को उलाघने का प्रयास किया तो उसे अपने राजा की कृपा तथा फौजदार के पद से वचित हो जाना पडा। इतना ही नही उससे ना दता (आता) की जागीर भी छीन ली गई। जब कोटा के राजा के पूवज बूदी राजवश की कनिष्ठ शाखा थे, उन दिनो मे उन्हे यह जागीर मिली थी। यह जागीर चम्बल के दक्षिणी किनारे पर थी। यह जागीर और फौजदार का पद—दोनो ही जालिमसिंह के मामा भूपतिसिंह जो कि बाकरोत वश का था को प्रदान किय गये। इससे हाडा राजा क साथ सुलह के द्वार ब द हो गये और जालिमसिंह ने अपने इस अपमान के लिय हाडा दरबार को छोडकर किसी अ य दरबार मे जाकर भाग्य आजमाने का निश्चय कर लिया। इस बारे म उसे काफी सोच-विचार करना पडा। आमेर का द्वार उसके लिये पहले ही बद हो चुका था और मारवाड उसकी महत्वाकाक्षा की पूर्ति के लिये उवरा भूमि नही थी। मेवाड समीप ही था और उसके वश का एक सरदार राणा के दरबार म काफी प्रभाव भी रखता था। उसने मौजूदा राणा अरिसिंह का पक्ष लेकर उत्तराधिकार सघष मे उसे विजयी बनाया था। इसलिये उस झाला साम त का राणा पर बहुत बडा उपकार था और उसने राणा से बहुत से शासनाधिकार प्राप्त कर लिये थे। वह देलवाडा का साम त था और मेवाड क सोलह प्रमुख साम ता म गिना जाता था। इसलिये जालिमसिंह कोटा छोडकर राणा क दरबार मे चला आया। उसकी प्रतिष्ठा क कारण उसे शीघ्र ही सम्मान मिल गया। वह साहसी शूरवीर और नीति निपुण था। अत उसे राणा का विश्वास अर्जित करने म अधिक समय नही मिला। उन दिनो म राणा की शक्तिया काफी कमजोर पड चुकी थी। देलवाडा के जिस झाला साम त की सहायता स उसे मेवाड का सिंहासन प्राप्त हुआ था वह अब राज्य म अपनी मनमानी कर रहा था। उसने विदेशी सनिको का एक दल खडा कर लिया था और अपन समथको का जागीरें बाँट रहा था तथा अपन विरोधी साम ता की जागीरो को राज्य के अधिकार म ले रहा था। राणा अरिसिंह न जालिमसिंह को अपन साम ता द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थिति स निपटन का काम सौपा। यद्यपि जालिमसिंह युवक तथा मेवाड की समस्याओ क लिय

एक ग्रनजान व्यक्ति था फिर भी उसन जिस नीति कौशल का सहारा लिया
उ"की ख्याति ग्रौर भी ग्रधिक बढ गई। उसन एक एसी साहसिक याजना तय
जिसम देलवाडा का भाला साम त मारा गया ग्रौर उसक मरत ही राणा
विवशता से मुक्त हो गया। प्रसन्नचित्त राणा न जालिमसिंह को 'राजराणा
उपाधि तथा चित्रखाडिया को जागीर पुरस्कार म दी। इस प्रकार, जालिमसिंह
राज्य का द्वितीय श्रेणी का साम त बन गया। राणा ग्ररिसिंह के विरुद्ध उत्तराधि
सघप का ग्रभी ग्र"त नहीं हुग्रा था। उसक प्रतिस्पर्धी का पुन ग्रौर उसक समथक
सघप को जारी रखे हुय थ ग्रौर उ होन मराठा से सहायता प्राप्त कर ग्राक्रमए
दिया। जालिमसिंह की जोरदार सलाह का मानते हुय राणा न लडन का नि
किया ग्रौर एक सना तयार की गई। इस सेना न मराठा ग्रौर विद्रोही साम"त
सयुक्त सेना के साथ घमासान युद्ध किया। इस युद्ध का परिणाम मेवाड के इति
म पहल ही लिखा जा चुका ह। राणा की पराजय हुई। जालिमसिंह गभीर रू
घायल हाकर गिर पडा ग्रौर मराठे उसे ब दी बनाकर ले गये। उस विख्यात ग्रम्ब
इगले के पिता त्रिम्बकराव पिंगल की निगरानी म रखा गया ग्रौर उन दिनं
मराठा के साथ उसकी जा मित्रता कायम हुई उसन उसक भावी जीवन की ग
विधियो को काफी प्रभावित किया।

इस युद्ध की पराजय ने राणा ग्रौर मवाड को विजेताग्रो की दया का ग्राि
बना दिया। उदयपुर का घरा डाला गया ग्रौर कुछ समय तक वीरतापूवक घ
ब दी का सामना किया गया पर तु ग्र"त म राणा को सधि करने के लिये विवश हो
पडा। इस सधि न मेवाड के विनाश का माग प्रशस्त कर दिया। मराठो की कद
रिहा होने के बाद बुद्धिमान जालिमसिंह न पतनो मुख मवाड राजवश के साथ ग्रप
भाग्य जोडना उचित न समझा ग्रौर पडित लालजी बेलाल के साथ कोटा चला गया
इस पडित न उसके भाग्य निर्माण म सहयोग दिया।

राजा गुमानसिंह ग्रभी तक जालिमसिंह के कृत्या को मुला न पाया था ग्रौ
न ही मुलान की इच्छा रखता था। ग्रत उसन ग्रपन प्रतिस्पर्धी जालिमसिंह स मिल
से इ कार दिया। पर"तु जालिमसिंह न ग्रपन राजा तक यह सदेश भिजवा दिया कि
वह ग्रपन राजा की सवा के लिय हमशा तत्पर रहगा। सयोग से, उसी समय एस
ग्रवसर उपस्थित हुग्रा कि उसे न केवल क्षमा ही कर दिया गया ग्रपितु सेवा म भी
रख लिया गया।

मराठा सना ग्रब तक राज्य की दक्षिणी सीमा म प्रवश कर चुकी थी ग्रौर
उसन बुकायनी क दुग को घर लिया। सावतवशी चार सौ हाडा सनिक ग्रपन
नेता माधवसिंह क नतृत्व म दुग का बचान की चेष्टा म लग गय। उ होन मराठा
ग्राक्रमणकारिया के ग्रनक प्रयासो का विफल कर दिया था। इससे पता चलता
है कि घराब दी की कला म मराठे कितने साधनहीन तथा ग्रनभिज्ञ थ। इस बार

मराठा न एक हाथी के द्वारा दुग के द्वार को तोडने की चेप्टा की। बार बार के प्रयासा म एमा लगने लगा था कि हाथी अपन उद्देश्य मे सफल हो जायगा और अपन अंतिम प्रयास म वह निश्चित रूप से सफल हान ही वाला था कि हाडा सरदार न उम अद्भुत साहम का प्रदशन कर दिखाया जिससे इतिहास क कई पृष्ठ भरे पडे है। अपनी तलवार का हाथ म लकर माधवसिंह दुग की दीवार से नीचे उतरा और हाथी की पीठ पर जा चढा। उसन हाथी के पीलवान (महावत) को मारकर नीचे फेंक दिया और हाथी की गदन पर तलवार से ऐसे जोरदार प्रहार किय कि घायल हाथी जमीन पर गिर पडा। माधवसिंह बच जायेगा दूसरी आशा न थी परन्तु उमकी मृत्यु तथा साहसिक काय ने हाडाओ म अद्भुत उत्साह का सचार किया और वे दुग का फाटक खोल कर शत्रुओ पर टूट पडे। वे सभी शत्रु से लडत हुय स्वग सिधारे परन्तु अपन साथ तरह सौ मराठा को भी स्वग लोक लत गय। इसके बाद मराठा न अपना अभियान जारी रखा और लूटमार करते हुये 'सुकेत' नामक दुग को जा घेरा। परन्तु गुमानसिंह न वहा के दुगरक्षको को सदेश भिजवाया कि कोटा क लिये उन्हे अपने प्राणो की रक्षा करनी चाहिय सम्मान के नाम पर बुकायनी के दुग को बचाने के लिय काफी बलिदान किया जा चुका है। अत मध्य रात्रि म दुगरक्षको न दुग खाली कर दिया और कोटा की तरफ चल पडे। जिस माग स वह सेना जा रही थी उसके आसपास की घास मे अचानक आग लग गई। ऐसा सयोग से हुआ अथवा विश्वासघात स—यह कहना कठिन है। पर तु आग की रोशनी से मराठो ने उन्हे देख लिया और व उन पर टूट पडे जिसके परिणामस्वरूप बहुत से सनिक मारे गये। मल्हारराव होल्कर जो कि बुकायनी म हुई मराठा क्षति स काफी दु खी था इस सफलता से बडा प्रसन्न हुआ और उसने और अधिक सफलता प्राप्त करने का निश्चय किया। राजा गुमानसिंह न इस स्थिति म सुलह करना ही उचित समझा और मराठा स बातचीत करन के लिय वाकरोत फौजदार को भेजा। पर तु वह विफल होकर लौटा आया।

युवा जालिमसिंह द्वारा अपन विरोधी राजा की सेवा म उपस्थित होने का यही अवसर चुना गया। शायद इस बात की सभावना है कि उसन राजा को यह बताया होगा कि जिस मल्हारराव ने इस समय कोटा पर आक्रमण कर रखा है उसी मल्हार क सहयोग म उसने भटवाडा म आमेर की सेना को खदेडकर कोटा को बचाने म सफलता प्राप्त की थी। राजा गुमान भी मल्हारराव के साथ जालिम के सम्पक स परिचित था। इसलिय उसने जालिमसिंह को पूरे अधिकार देकर मराठो से बात-चीत करने का आदेश दिया। जालिमसिंह ने नये सिरे से बातचीत की और होल्कर ने सधि करना स्वीकार कर लिया। मल्हारराव ने छ लाख रुपये मिल जाने के बाद कोटा राज्य स चले जाने का वायदा किया। रुपये मिलते ही वह कोटा स चला गया। इस प्रकार जालिमसिंह ने अपने राजा का विश्वास पुन अर्जित कर लिया। उसे उसका पद और जागीर भी वापस दे दी गई। पर तु इसके तुर त बाद । गुमानसिंह गभीर रूप स बीमार पड गया और उसके जीवन की आशा

कायम हो गया । फिर भी, उसे प्रारम्भ मे कम विरोध का सामना नही करना पडा । उसक जिस विरोधी गुट न साफ साफ यह कहना शुरू कर दिया था कि राजा गुमान सिंह न शासन म जालिमसिंह का कोई अधिकार नही दिया उस गुट मे राजा गुमानसिंह का भतीजा स्वरूपसिंह और बाकरोत सरदार जिसे पदच्युत करके जालिमसिंह को सत्ता मे लाया गया था प्रमुख थे । उनके अलावा धा भाइ जसकरण जो बुद्धिमान और दूरदर्शी व्यक्ति था और जो हमेशा राजा के पास बना रहता था, जालिमसिंह का विरोधी था । उसी क माध्यम से विरोधियो को अपनी योजना पर विश्वास था । उन लोगा ने मिलकर अपनी योजना बनाई पर तु योजना को लागू किया जाता उससे पहले ही धा-भाई के हाथो स्वरूपसिंह की हत्या हो जाने से योजना मिट्टी मे मिल गई । हत्यारे धाभाई को राज्य स निर्वासित कर दिया गया और बाकरोत सरदार भाग खडा हुआ । जिस तेजी के साथ नाटक का अ त हुआ उससे सभी लोग आतंकित हो उठे । धाभाई को अपनी तरफ मिलाना, हत्या के लिये उस उकसाना और फिर हत्या के अपराध मे उसे राज्य से निर्वासित कर देना–सभी काम जादुई ढग से सम्पन्न हुये जिसमे साहस और मानसिक स्थिरता का सु दर समव य था और जालिमसिंह क इस कारनामे के बाद सभी लोग अपने को असुरक्षित समझन लग । स्वरूपसिंह और धाभाई म असतोप का काई कारण विद्यमान न था जिससे कि बदला लने की बात उठे, फिर भी धाभाई ने दिन-दहाडे बृजविलास के उद्यान मे स्वरूपसिंह की हत्या कर दी । उसको उकसाने वाल जालिमसिंह न ही सबसे पहल हत्यारे की नि दा की और उसे ब दी बनाकर कारागार मे डाल दिया और कुछ दिनो बाद राज्य स निकाल दिया । यह नाटक चाह जितनी सतकता के साथ खेला गया हो लागो के मन म यह विश्वास बना रहा कि जालिमसिंह हा स्वरूपसिंह की हत्या के लिए उत्तरदायी है । धाभाई जयपुर मे रहते हुय ही मर गया । जालिमसिंह न उसक गुजारे की भी कोई व्यवस्था न की थी । वस्तुत स्वरूपसिंह और धाभाई–दोनो जालिमसिंह विरोधी गुट के नेता थे । इसलिये जालिमसिंह न अपनी राजनीतिक चालो स जसकरण को भडका कर स्वरूपसिंह को मरवा डाला । उसन धाभाई से कहा कि महाराज स्वरूपसिंह कोटा के सिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहत हैं । इसलिये वह मरा शत्रु बना हुआ है । वह कभी भी बालक उम्मेदसिंह को किसी चाल से मारकर सिंहासन पर बठना चाहता है । यदि इसका कोइ उपाय न किया गया तो उम्मेदसिंह का भविष्य निश्चित रूप से अधकार म है । जसकरण उम्मेदसिंह को बेहद चाहता था और उसन बिना जाच किय ही जालिमसिंह की बाता का विश्वास कर अपन राजा क शत्रु को मौत के घाट उतार दिया । इस बात म चाहे जितनी सच्चाई रही हो, जिसक कारण जघ य हत्या की गई पर तु इसक जो परिणाम सोचे गये थे व पूरे हुय । इस घटना के तुर त बाद ही विरोधी गुट का बचा हुआ सदस्य भी भाग खडा हुआ और बहुत से साम त भी राजधानी को छोडकर दूसर राज्यो म जाकर निवास करन लग । जालिमसिंह न उन्हे चुपचाप जान दिया पर तु उसन उनके इस पलायन का

हिसाब चुकाने का निश्चय कर लिया। वे लोग जयपुर और जोधपुर में जाकर रहने लगे परन्तु इन दिनों सभी राज्यों में अशान्ति फैली हुई थी और राजा लोग बड़ी कठिनाई के साथ मराठों की लूटमार से अपने राज्यों की रक्षा कर पा रहे थे। इसके अलावा न तो उनके पास धन था और न ही इच्छा शक्ति जिसके बल पर वे दूसरे राज्य के झगड़ों में भाग ले सकें। क्योंकि ऐसा करने में पहले से विद्यमान कठिनाइयों के और अधिक बढ़ने की सम्भावना थी। उधर जालिमसिंह ने भी जयपुर और जोधपुर के राजाओं को संदेश भेजकर कोटा के भगोड़े सरदारों को आश्रय न देने का अनुरोध किया। ऐसी स्थिति में उन सामन्तों को जो आश्रय मिला था वह भी खत्म हो गया। कुछ सरदार इन राज्यों में ही स्वर्ग सिधार गये और जो बचे थे उन्हें अपमानजनक जीवन से घृणा हो गई और उन्होंने जालिमसिंह को संदेश भेजकर कहलाया कि हम लोग अपने पूर्वजों की भूमि में मरना चाहते हैं अतः कोटा में वापस आने की अनुमति दी जाय। उसने उन्हें आने की स्वीकृति दे दी परन्तु उनकी जागीरें वापस नहीं लौटाईं। हाँ उनके गुजारे के लिये उनको थोड़ी थोड़ी भूमि दे दी।

अभिभावक पद सम्भालने के बाद उसके विरुद्ध निर्मित पहले गुट को जालिमसिंह ने सफलता के साथ नष्ट कर दिया और सामन्त वर्ग की शक्तियों को भी कुचल कर रख दिया। परन्तु शीघ्र ही उसके विरुद्ध एक और गुट का निर्माण हो गया जो पहले की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था। इस गुट का नेता था—आंथून का सरदार देवसिंह। उसकी जागीर की वार्षिक आमदनी साठ हजार रुपये थी। उसने अपने दुर्ग की मजबूत किलेबन्दी कर रखी थी और वे सब सामन्त जो जालिमसिंह द्वारा सताये गये थे उससे आ मिले थे। जालिमसिंह को भी पता चल गया था कि आंथून के दुर्ग में मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है। परन्तु वह यह भी जानता था कि राज्य की सेना द्वारा उनको परास्त करना सम्भव नहीं है। अतः वह किसी दूसरे उपाय के बारे में सोचने लगा। उन दिनों में मुगल बादशाह की शक्तियां काफी क्षीण पड़ गई थी। मराठे तो चारों तरफ लूटमार कर ही रहे थे परन्तु कई अन्य लोगों ने अपने सशस्त्र दल बना कर लूटमार करने अथवा धन लेकर दूसरों के लिए लड़ने का व्यवसाय सा बना लिया था। ऐसा ही एक दल था सेनापति मोसेज का। जालिमसिंह ने इसी मोसेज की सहायता प्राप्त की और उसे आंथून के दुर्ग पर अधिकार करने तथा विद्रोही सामन्तों का दमन करने के लिए भेज दिया। मोसेज के पास बन्दूकधारी पलटन के अलावा तोपखाना भी था। मोसेज ने दुर्ग का घेरा डाल दिया। आंथून के सरदार ने कई महीने तक सफलतापूर्वक घेराव का सामना किया और कई बार दुर्ग से बाहर निकलकर शत्रु पक्ष पर हमले भी किये जिन्हें मोसेज की सतर्कता से विफल बना दिया गया। अन्त में जब दुर्ग में खाने पीने की सामग्री समाप्त होने को आई तो सामन्तों ने सुलह की बातचीत शुरू की और वे इस बात पर दुर्ग को छोड़ने के लिये तैयार हो गये यदि उन्हें सम्मानपूर्वक जाने दिया जाय। मोसेज ने उनकी बात को मान लिया और समस्त विद्रोही सामन्त दुर्ग से निकलकर कोटा राज्य छोड़

कर चल गय। उन्होंने दूसरे राज्यों में जाकर आश्रय लिया। इस प्रकार, जालिमसिंह ने सूझ बूझ के साथ अपने विरुद्ध गठित दूसरे गुट की योजना को भी नष्ट कर दिया। आथून की जागीर के साथ साथ विद्रोही सामन्तों का गुजारे के लिए जो भूमि दी गई थी उसे भी पुन राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। आथून के सरदार देवसिंह की निर्वासित अवस्था में ही मृत्यु हो गई। कुछ वर्षों बाद उसका लड़का जालिमसिंह के पास आया और उसने अपने आपको निरपराध सिद्ध करते हुये कोटा में ही गुजारे की प्रार्थना की। जालिमसिंह ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुये उसे पन्द्रह हजार रुपये वार्षिक की आमदनी वाली बामोलिया की जागीर प्रदान की। इसी प्रकार द्वितीय श्रेणी के बहुत से विरोधी सामन्तों को भी क्षमा कर उन्हें कोटा में रहने की अनुमति दे दी गई। परन्तु जालिमसिंह ने उन्हें इतना कमजोर बनाकर रखा कि वे कभी विद्रोह का नाम भी न ले सके। इस प्रकार की राजनीति से उसने अपना वर्चस्व बनाये रखने का प्रयास किया।

अपने विरोधियों के गठबन्धन को नष्ट करते हुये, कोटा राज्य के शासन को अपने अधिकार में रखते हुये जालिमसिंह का समय गुजरता गया। उसने मेवाड़ राजवंश के एक दूर की लड़की के साथ विवाह किया जिससे उसको माधोसिंह नामक पुत्र प्राप्त हुआ। इससे जालिमसिंह का मेवाड़ की बिगड़ती हुई स्थिति की तरफ बराबर ध्यान बना रहा। संवत् 1847 (1791 ई०) में उसने जिन उद्देश्यों से प्रेरित होकर कोटा की अपेक्षा मेवाड़ के हितों की तरफ अधिक ध्यान दिया था उसका उल्लेख मेवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है। अतः हम संवत् 1847 से सीधे 1856 (1800 ई०) में आ जाते हैं जबकि अभिभावक के लौह शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सामन्तों द्वारा एक और प्रयास किया गया।

जालिमसिंह की हत्या करने के लिए कई बार प्रयत्न किये गये परन्तु उसकी सतर्कता ने उन सभी को विफल बना दिया था। यद्यपि संवत् 1833 में आथून के सरदार के नेतृत्व में उसके विरुद्ध जो जोरदार प्रयास किया गया था वैसा साहसिक प्रयास संवत् 1856 (1800 ई०) से पहले नहीं किया गया। उस वर्ष बीस वर्षीय कोसिन के सरदार बहादुरसिंह जिसकी जागीर की वार्षिक आमदनी दस हजार रुपये थी ने विरोधी गुट का नेतृत्व कर जालिमसिंह के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। उसमें वे सभी सामन्त सम्मिलित थे जिन्हें जालिमसिंह की उग्र नीति का शिकार बन कर भाग्यहीन अवस्था में पहुंचने के लिये विवश कर दिया गया था। यद्यपि षड्यन्त्र अत्यन्त गोपनीयता के साथ रचा गया था परन्तु उसे कार्यान्वित किया जा सकता, उससे पहले ही जालिमसिंह को उसकी सूचना मिल गई। षड्यन्त्र के अनुसार न केवल जालिमसिंह को अपितु उसके परिवार के अन्य सदस्यों, मित्रों और उसके सलाहकार पंडित लालजी को भी मार डालने की योजना बनाई गई थी। यह निश्चित किया गया था कि जिस दिन जालिमसिंह खुले दरबार का आयोजन करने वाला हो अचानक

उस पर आक्रमण किया जाय और उसे मौत के घाट उतार दिया जाय। कहा जाता है कि जिस समय जालिमसिंह दरबार मे जा रहा था तभी मार्ग म उसे षडयन्त्र की सूचना मिली। उसने तत्काल पहरेदारो की सहायता के लिये अपने मित्र के अधीन विशेष अंगरक्षको की सेना को तैनात कर दिया और ज्यो ही षडयन्त्रकारी दरबार म आये इस सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया। बहुत से मारे गये और कुछ को बन्दी बना लिया गया और शेष भाग खडे हुए। षडयन्त्रकारियो के नेता बहादुरसिंह ने भाग कर चम्बल नदी के किनारे पाटन मे स्थित हाडाओ के कुल देवता केशवराय के मन्दिर मे जाकर आश्रय लिया। परन्तु उसने जालिमसिंह के चरित्र को समझने म भूल की। उसका विश्वास था कि कुलदेवता के मन्दिर को शरण देने का अधिकार होने तथा इस मन्दिर के बून्दी राज्य की सीमा म होने के कारण उस राजा का सम्मान करते हुये कोटा के सैनिक उसको नही पकडेगे। परन्तु जालिमसिंह के सैनिको ने उस मन्दिर को घेर लिया और बहादुरसिंह को घसीट कर बाहर ले आये और उसे अपने अपराध के लिए अपने प्राणो की बलि देनी पडी।

अभिभावक के समर्थको का मानना है कि इस प्रकार का कृत्य आवश्यकता के कारण ही किया गया था। उसका ध्येय स्वयं अपनी सुरक्षा करना कम था परन्तु अपने राजा के हितो की रक्षा करना मुख्य था। षडयन्त्रकारियो ने उसे सिंहासन से हटाकर उसके भाई को सिंहासन पर बैठाने की योजना बनाई थी। कोटा महाराव के परिवार म इस समय उनके एक चाचा राजसिंह और दो भाई—गोरधन और गोपाल सिंह थे। अर्जुन के विद्रोह के बाद से ही इन लोगो पर सतर्क निगाह रखी जा रही थी, परन्तु इस नये षडयन्त्र म उनके नाम सम्मिलित होने पर उनके विरुद्ध सख्त कार्यवाही की गई और उन सभी को अपना शेष जीवन कारागार की एकान्त कोठरियो म गुजारना पडा। बडा गोरधन दस वर्ष के बाद कारागार म ही मर गया और उसके बाद छोटा गोपालसिंह भी बहुत दिनो तक कारागार म रहने के कारण मर गया। चाचा राजसिंह काफी वृद्ध हो चुका था और चूंकि उसका किसी भी षडयन्त्र म हाथ न था अत उसे परेशान नही किया गया और शहर के एक मन्दिर म निवास करने की अनुमति दे दी गई।

जालिमसिंह के विरुद्ध सभी प्रकार के षडयन्त्र रचे गये थे। उनकी कुल संख्या अठारह बताई जाती है। परन्तु उसकी सतर्कता के कारण उसके विरोधियो को एक बार भी सफलता न मिली। उन सब म सबसे अधिक खतरनाक प्रयास राजमहल की स्त्रियो के द्वारा किया गया था। इस बार जालिमसिंह भयानक रूप से फस गया था और यदि उसके सुन्दर शरीर पर मोहित एक राजपूत स्त्री ने उसकी सहायता न की होती तो यह कहना कठिन है कि जालिमसिंह उस षडयन्त्र से बच पाता अथवा नही। उसे अचानक एक राजमाता के नाम पर महल म मिलने के लिये बुलाया गया। वह महल म पहुंच कर राजमाता के कक्ष के बाहर कनात के सामने राजमाता की आवाज

सुनने की प्रतीक्षा करता रहा। तभी उसे चारों तरफ से राजपूत स्त्रियों ने घेर लिया। उनके हाथो मे तलवारें तथा कटारे थी। जालिमसिंह अपनी जाति की स्त्रियो की शारीरिक और नतिक शक्ति से भलीभाति परिचित था। अत उसे अपने बचने की कोई आशा न रही। परन्तु वे स्त्रिया केवल उसकी मृत्यु से ही सतुष्ट होने वाली नही थी। उन्होंने वाकायदा उस पर मुकदमा चलाना शुरू कर दिया और उसके जीवन से सबधित विभिन्न विवादो एव कृत्यो पर जिरह शुरू हो गई। कई प्रकार के प्रश्न पूछे जाने लगे। यह कार्यवाही चल ही रही थी कि उस पर मोहित वह राजपूत स्त्री वहा आ पहुची। वह राजमाता की मुख्य सेविका थी। काफी हृष्टपुष्ट और शारीरिक शक्ति से भरपूर महिला थी। हाडा ग्रन्थो से पता चलता है कि युवावस्था मे कोटा का राजा गुमानसिंह और जालिमसिंह-दोनो इसी युवती से प्रेम करने लगे थे और इसी कारण राजा ने नाराज होकर जालिमसिंह को राज्य से निकाल दिया था। इस अवसर पर वह महिला अपने भूतपूर्व प्रेमी के प्राण बचाने मे सहायक हुई। उसने आते ही जालिमसिंह का अपशब्द कहते हुये उसे धकेल कर बाहर ले आई। तब जालिमसिंह अपने प्राण बचाकर भागने मे सफल रहा।

स्नान करते समय अथवा अपना प्रिय खेल शतरंज खेलते समय और इसी प्रकार के अन्य प्रसगो के अवसर पर उसका खात्मा कर देने के लिये कई बार प्रयास किये गये, परन्तु उन सभी का परिणाम उसके शत्रुओ को ही भुगतना पडा। जालिमसिंह मे अनेक ऐसे गुण थे जिनके कारण अपने विरोधियो के बीच रहते हुये भी सुरक्षित रहा। इसका एक कारण उसका यह गुण था कि वह आख बन्द करके अपने विरोधियो से बदला लेने की बात अधिक नही सोचा करता था और जब विरोधी क्षमायाचना की प्रार्थना करते तो वह उनके अपराध को क्षमा भी कर देता था। उसका एक नेत्र तत्काल यह जान लेता था कि कौन व्यक्ति उसकी सत्ता पर आक्रमण करने वाला है। स्वय पर पूर्ण विश्वास रखते हुये उसने एक ऐसी पुलिस व्यवस्था कायम कर रखी थी जैसी विश्व के अन्य देशो मे दुर्लभ थी। वह अपने समस्त कर्मचारियो को समय पर वेतन देता था और उदारता के साथ उनको पुरस्कृत भी करता था। राज्य के सभी विभागो की गतिविधियो पर पैनी निगाह रखता था। अपने इन गुणो के अलावा वह प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी व्यक्ति था। इसीलिये सभी प्रकार के षडयन्त्रो, विरोधो और उपद्रवो के उपरान्त भी कोटा राज्य पर उसका प्रभुत्व बरकरार रहा।

अध्याय 71

जालिमसिंह का प्रभुत्व काल

अब हम एक दूसरे दृष्टिकोण से राज्य के नियम निमाता और प्रब धक के रूप म जालिमसिंह का मूल्याकन करने का प्रयास करेंगे। कई वर्षों तक कोटा उसकी महत्वाकाक्षा का शिकार बना रहा। मेवाड के हिता के चक्कर म उसन कोटा क निवासिया का जितना शोपण किया जाना सभव था, उस सीमा तक शापण किया। सवत् 1827 म जब वह पहली बार राणा के दरबार के सम्पक मे आया था तब से सवत् 1856 तक उसन मवाड राज्य म अपना वसा ही प्रभुत्व स्थापित करने का निर तर प्रयास किया जसा कि उसने अपन राज्य म कर रखा था। इस नीति का अनुसरण करते हुय उसन कोटा को बलि का बकरा बना दिया और कोटा का किसान अद्ध गुलाम की स्थिति म पहुच गया। सवत् 1840 म उसका शापण अपनी चरम सीमा पर जा पहुचा था, पहले स कगाल जनता जब उसकी बढी हुइ मागो का पूरा करने म असमथ रही तो उसक मवेशिया और काम करने के उपकरणा को जब्त करके बेच दिया गया जिससे प्रजा का जीवन सकट मे पड गया। कई लोग भूख से मर गये और कई भाग खडे हुये। परन्तु अराजकना के उन दिना म उन्ह कहा आश्रय मिल पाता। विवश हाकर उ ह उ ही खेतो पर और उ ही उपकरणो से जो पहले उ ही की सम्पत्ति थे, किराये के श्रमिका की तरह काम करना पडा। इस राज्य व्यापी शोपण के कारण बहुत सी भूमि बिना खेती किये ही पडी रह जाती थी। उस पर जालिमसिंह राज्य की तरफ से खेती करान का प्रयत्न करता था।

उसकी प्रजा तथा स्वय उसकी प्रतिष्ठा के सौभाग्य से एक घटना ऐसी घटी जिसने मेवाड म अपना प्रभुत्व स्थापित करने की जालिमसिंह की महत्वाकाक्षा का गला घाट दिया। मराठा सेनापति बालाराव इगले के परिवार के साथ जालिमसिंह के घनिष्ठ पारिवारिक सम्ब ध थे। राणा न किसी कारणवश इगल परिवार के मुखिया बालाराव को कद करके कारावास म पटक दिया। जालिमसिंह अपने मित्र को कद से रिहा करवाने के लिये उदयपुर गया। पर तु वहा उसका राणा से झगडा हो गया और उसे हमेशा क लिये अपनी प्रिय महत्वाकाक्षा को त्याग देना पडा। अब

अनुभव हुआ कि उसने एक निरथक कल्पना के पीछे अपन राज्य क सभी वर्गों
हेता एव कल्याण को व्यथ ही नष्ट किया था। पर तु उसकी सूझ बूझ न इसका
नया समाधान ढूढ निकाला और वह इसको लागू करने मे पूरी शक्ति के साथ
गया।

सवत् 1856 तक अर्थात् मोसिन के षडय त्र के समय तक जालिमसिंह कोटा
दुग मे ही निवास करता रहा था। पर तु 1860 (1803–4 ई०) म बालाराव
े की रिहाई के बाद जब वह मेवाड स लौटकर वापस आया तो उसन कोटा के
के महल का छोडकर कही अ यत्र रहन का निश्चय किया। उन दिनो मे अग्रेजा
छ राजपूत राज्यो के साथ मिल कर मराठो स युद्ध छेड दिया था और उनक
प्रकार स कई नगर तथा गाव छीन लिये थ। पराजित मराठे अलग-अलग गुटा
विभाजित होकर राजपूताना के अरक्षित स्थानो म लूटमार करन लगे थ। अत
लेमसिंह न बुद्धिमानी के साथ उस स्थान पर रहने का निणय किया जो आसानी
मराठो की लूटमार का लक्ष्य बन सकता था। ऐसा करन म उसके दो उद्देश्य थे।
ला, मालगुजारी के नियमो म सशोधन करना था और दूसरा वह ऐसे स्थान पर
ना चाहता था जहा स वह मराठा की लूटमार की सूचना मिलते ही आसानी के
थ मराठो का मुकाबला करने के लिय जा सके। स्थान परिवतन के लिये उपयु क्त
ा उद्देश्य नि सन्देह सही थे और हमे उन पर विश्वास करना चाहिये। पर तु
डा ग्र थो म स्थान परिवतन के बारे मे दूसरा ही उल्लख मिलता है। उसमे बताया
ा है कि एक रात्रि मे महल की छत पर बठ कर एक उल्लू बहुत देर तक बोलता
ा। दूसरे दिन जब जालिमसिंह न ज्योतिषियो से इस सम्ब ध म पूछा तो उ होन
ार दिया कि आपक लिये यह एक अपशकुन है और इस महल मे आप कभी भी
नष्ट के शिकार बन सकत हैं। जो भी कारण रहा हो, जालिमसिंह न दुग का
जमहल छोड दिया।

महल छोडन के बाद उसन अपन राज्य का व्यापक दौरा किया जिसस उसे
ज्य की दु यवस्था का सही ज्ञान हो गया। इस अधोगति स वह पहल अपरिचित
। राज्य क अधिकारियो और कमचारियो न उस कभी सही स्थिति का विवरण
ही दिया जिससे वह किसानो और दूसर लोगो की दीनहीन अवस्था को समझ
ता। अपन दौरे क समय उसन किसानो की दीनता को अपनी आखो स देखा और
पन अनुभव किया कि शासन की अयोग्यता और कठोरता ही इस स्थिति क लिय
तरदायी है। उनकी इस दशा के कारण ही राज्य की मालगुजारी भी काफी कम
गई है। उस व्यवसायियो की सही स्थिति का भी पता चल गया। उस मालूम
ा गया कि यदि मौजूदा स्थिति को शीघ्र ही न सुधारा गया तो भविष्य म किसी
ी समय राज्य भारी आर्थिक सकट म फस सकता है। इस व्यवस्था को सुधारन क
ाय सबस पहल किसानो की स्थिति म सुधार लाना आवश्यक था। इसलिय उसन

गागरौन के दुग के पास रहने का निश्चय किया । राज्य के प्रतिष्ठित नागरिको और सामन्तो ने भी नगरो को छोडकर जालिमसिंह के साथ रहने का निश्चय किया । उस स्थान पर एक विशाल शामियाना लगाया गया और जालिमसिंह स्थायी रूप से उसमें रहने लगा । राज्य का समस्त काय तथा पत्र व्यवहार वहीं से किया जाने लगा । आगे चलकर यह स्थान 'छावनी" के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

उसने जो स्थान चुना वह बहुत ही उचित था । वह स्थान दक्षिण से हाडौती मे प्रवेश करने वाले दोनों रास्तो के बीच मे था । दूसरी तरफ कोटा के मूल निवासी भीलो की आबादी थी । इस स्थान मे शेरगढ और गागरौन के मजबूत दुग भी पास ही थे । जालिमसिंह ने इन दुर्गों मे पर्याप्त युद्ध सामग्री और रसद एकत्र कर रखी थी और गागरौन मे उसका-अपना खजाना भी रख छोडा था । उसने एक नई सेना का गठन किया और उसको यूरोपीय पद्धति से अस्त्र-शस्त्रो तथा अनुशासन का प्रशिक्षण दिया गया । सेना की अलग-अलग बटालियनो के अधिकारियो को 'कप्तान' का पद दिया गया । सेना के लिये विदेशो से अस्त्र-शस्त्र मगवाये गये । इस सेना ने राज्य की महत्वपूर्ण सेवा की । इस प्रकार का प्रबध वह राजमहल मे रह कर नही कर सकता था ।

अपने जीवन के इस समय तक, राजनीतिक षडयन्त्रो के पीडादायक सागर मे डूबे रहने के कारण अन्य राजपूत राजाओ की भाति वह भी राजस्व और राज्य की अर्थ व्यवस्था से पूरी तरह से अनजान था । उसने भी अब तक लाटा अथवा बटाई पद्धति को ही अपना रखा था जिसके अन्तगत भूमि से उत्पन्न कुल उत्पादन का नाप कर अथवा तौल कर, राज्य का हिस्सा जिन्स के रूप मे वसूल किया जाता था । जालिमसिंह ने तत्काल इस व्यवस्था के आधारभूत दोषो—कर वसूल करने वाले अधिकारियो का शोषण और किसानो के साथ धोखा-धडी— और ये दोनो ही किसान तथा राज्य के लिये हानिकारक थे—को समझ लिया था । इससे केवल लोभी पटेल ही समृद्ध हो पाता था । पटेल और राजकमचारियो की मिलीभगत से किसानो की स्थिति काफी शोचनीय हो गई थी और उनको कहीं से न्याय भी नहीं मिल पा रहा था ।

अपने नवीन स्थान पर रहते हुये जालिमसिंह ने पुरानी व्यवस्था की उलझन भरी गुत्थी को समझने का प्रयास किया और गुप्त रूप से इस बात का पता लगवाया कि पटेलो ने किस प्रकार किसानो के साथ धान्धाधडी करके उनका शोषण किया है । इसके बाद उसने राज्य के समस्त पटेलो को मिलने के लिये बुला भेजा । उन लोगो के आने पर उसने अपने ईमानदार कमचारियो से प्रत्येक पटेल का ब्यौरा तयार करवाया, जिसमे किस पटेल के अधिकार में कितनी भूमि है कर वसूली का तरीका कैसा है उसका चरित्र कैसा है और समाज मे उसकी क्या प्रतिष्ठा है

: उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा आय के साधन क्या हैं इन सभी बाता का
रण था । इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करक वह खेना और किसानो की
ति का देखने और समझन क लिये अपना निवास स्थान छोडकर बाहर निकला ।
न दौरे के समय उसन प्रत्यक नगर और गाव क अधीन भूमि की चकब दी
पना) करवाई और भूमि का वर्गीकरण भी करवाया अर्थात् कितनी भूमि पीवल
चित) है गोरमा (अच्छी भूमि) है पर तु वर्षा पर आश्रित है मारमी (चरागाह
र पवतीय) है । इसक बाद उसन यह हिसाब तयार करवाया कि पिछने कुछ वर्षों
किसाना स कितनी मालगुजारी वसूल की जाती रही है । किस किसान से कितना
लिया जाना था और कितना लिया गया है । इन सब बाता की खोजबीन करने
बाद उसन भूमि की किस्म क अनुसार पिछन वर्षा की औसत को आधार बनाकर
द भूमि कर नन की नई व्यवस्था का लागू किया और परम्परागत बटाई पद्धति
त्याग दिया ।

भूमिकर की दरा को निश्चित करने के बाद कर वसूल करने वाले पटेलो का
रिश्रमिक निश्चित किया गया और यह तय किया गया कि प्रत्यक पटल अपने
धिकार क्षेत्र के जिन किसाना स कर वसूल करता है, उसके डेढ आना प्रति बीघा
हिसाब से पारिश्रमिक दिया जायेगा । इसके अलावा पटलो का अपन निजी खेतो
: साधारण जनता से कम कर दन की सुविधा भी दी गई पर तु उ ह इस बात की
त चेतावनी दी गई कि यदि उ होन निश्चित दर स अधिक वसूल करने की
शिश की ता उनकी समस्त निजी भूमि को छीन कर खालसा भूमि मे सम्मिलित
र लिया जायेगा । इस व्यवस्था के अ तगत पटेला को कर वसूली का जो दायित्व
पा गया था वह पाच हजार से प द्रह हजार रुपये वार्षिक की वसूली तक सीमित
। इस नयी व्यवस्था से पटल लोगो म भारी असताप फल गया और उ होन इस
ी व्यवस्था को हटाने के लिए अनक प्रयास किये तथा सम्ब धित अधिकारियो को
ा हजार बीस हजार और पचास हजार रुपये तक रिश्वत म दे दिये । ये सारे रुपये
जकोष म जमा हाते रहे । परिणाम यह निकला कि इसस एक एक बार म दस-
स लाख रुपय राज्य के खजान मे रखे गय । इन रुपयो का नजराना अथवा
नकी शिकायता को दूर करन सम्ब धी फीस के तौर पर जमा कर लिये जाते थे ।
िसानो को यह विश्वास हुआ कि अब हम लोग पटेला के अत्याचारो से मुक्त हो
ायेंग । पर तु ऐसा नही हुआ । पटेलो ने जा रिश्वतें दी थी वे बेकार नही रही ।
ालिमसिंह ने बाद म यह आदेश जारी किया कि वर्षा न होने के कारण अथवा
िसी सबब से यदि राज्य म अकाल पड जायेगा ता पहले की भाति फसल न होन
र दी जाने वाली सुविधाए नही दी जायेंगी और किसा ो को अपना पूरा कर अदा
रना पडेगा । यदि कोई किसान कर की अदायगी नही करगा तो उसकी भूमि लकर
टेल किसी दूसरे को दे देने का पूरा अधिकारी होगा । अगर उस प्रकार की भूमि
ो कोई लेन वाला नही होगा ता उसे खालसा भूमि म मिला दिया जायेगा । कुल

मिलाकर, राजस्व की कमी के लिये अब पटेलो को उत्तरदायी घोषित कर दिया गया।

इस व्यवस्था के पूर्व पटल लोग किसानो से 'पटल बरार' के नाम से काफी पैसा कमा लेते थे। अब इसको समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर यह व्यवस्था की गई कि जो पटल किसानो को परेशान किये बिना राज्य के साथ अपने अनुबन्ध को पूरी तरह से निभायेंगे उन्हें पुरस्कृत और सम्मानित किया जायगा। इस व्यवस्था ने पटेलो को ग्राम प्रतिनिधि और राज्य का कर्मचारी बना दिया। जिन लोगो पर राज्य की समृद्धि का दायित्व था उनको सन्तुष्ट बनाये रखने में जालिमसिंह ने विशेष रुचि प्रदर्शित की। उन्हें सम्मानित करने के लिये उन्हें राज्य की तरफ से सोने के कंकण और पगडियां तथा पद की सनदें प्रदान की गई।

गावो की स्थिति मे सुधार लाने के लिए, अन्य राज्यो की भांति जालिमसिंह ने भी ग्राम समितियां कायम की जिनमे व्यावसायिक प्रतिनिधियो राजपूत प्रतिनिधियो और पटलो को भी नामजद किया गया। उस समिति को ग्राम व्यवस्था के सम्बन्ध में राज्य की तरफ से अनेक प्रकार के अधिकार दिये गये और उनके माध्यम से देहाती क्षेत्रो मे शांति की व्यवस्था की गयी। उस समिति को राज्य की तरफ से व्यवस्था में कोई त्रुटि होने पर उस पर विचार करने का भी अधिकार दिया गया। उसका निर्णय राज्य के सम्मुख फिर से रखा जाता था।

पटेलो की इन विभिन्न समितियो में से जालिमसिंह ने चार अत्यधिक प्रभावी और अनुभवी समितियो का चयन कर एक राजपरिषद् का गठन किया। पहले इस परिषद् को केवल राजस्व सम्बन्धी कार्य सौंपा गया। फिर पुलिस व्यवस्था का दायित्व सौंपा गया और बाद में आंतरिक प्रशासन के प्रत्येक कार्य के लिए इसकी सलाह ली जाने लगी। फिर पचायतो के सदेहास्पद निर्णयो को सुनने और उन पर विचार करने का काम भी सौंप दिया गया। फिर राजधानी और अन्य नगरो के नागरिको की अपीलें सुनने का काम भी इस परिषद को सौंप दिया गया। इस प्रकार इस परिषद को तीन सूत्री कार्य करने पडते थे—राजस्व का, न्याय का और पुलिस का। जालिमसिंह की इस व्यवस्था का दूसरा उदाहरण शायद ही कही देखने को मिले।

यह थी कोटा की पटल व्यवस्था। एक ऐसी व्यवस्था जो काफी कठोर थी और उसके अपने दोष भी थे। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के लिये जिस गोपनीयता की आवश्यकता होती है उसका निर्दयता के साथ गला घोट दिया गया। अभिभावक को प्रत्येक लेन देन की जानकारी मिल जाती थी और इस परिषद् में गुप्तचरो के आने जाने से कोई भी मनुष्य अपने को सुरक्षित अनुभव नही करता था। किसी भी भाग्यवर्द्धक सौदे की सूचना मिलते ही उस सफलता में अपना हिस्सा मांगने के लिये अभिभावक तुरन्त पहुच जाता था। इससे व्यापार की आत्मा भी मृतप्राय हो गई क्योकि किसी को भी

अपनी विनियोजित पू जी के मुनाफे की आशा न रही । पर तु कोटा जसी सुरक्षा अ यत्र कही उपलब्ध न थी । यहा केवल अभिभावक ही उनके हितो पर डाका डालन का साहस कर सकता था ।

पटेल लाग जो कि अब किसाना के वास्तविक स्वामी बन बठे थे इस बात से सुपरिचित हो गये थे कि यदि उ होन प्रत्यक्ष रूप स किसानो का शोषण किया तो जुर्माने तथा जायदाद की जब्ती की सजा भुगतनी पडेगी । अत उ होन अप्रत्यक्ष उपाया का सहारा लिया जिससे कि वे अपनी मनमानी कर सके । राजस्थान मे बोहरा नामक वश्या की एक जाति रहा करती है । वे लोग किसानो को कज म रुपय देने है और उनसे ब्याज वसूल करत हैं । पटेलो न उन बोहरा लागो को अपने अधिकार म कर लिया । इसके लिये हम बोहरो के लेन देन को समझना होगा ।

राजस्थान के बोहरा लोग किसान की सभी आवश्यकताओ —चाहे मवेशी कृषि के उपकरण या बीज खरीदना हो—का पूरी करते है और उसे तथा उसके परिवार का फसल पकने तक पोषण करते ह । फसल के तयार होते ही बोहरा उस किसान स हिसाब करता है । यह दो तरीके से किया जाता है—या ता सूद सहित मूल धन की नगद अदायगी अथवा फसल का एक हिस्सा देकर । दूसरा तरीका पहल तय कर लिया जाता और फसल के कम ज्यादा हाने का नफा नुक्सान बोहरा भी उठाता था । यह व्यवहार बहुत पुराने समय से चला आ रहा था और दाना पक्षो म कभी कटुता नही आई । क्योकि महाजन इसलिये अत्याचार नही करता था कि फिर किसान उससे कर्जा नही लेंगे और ब्याज पर रुपया देना ही उसका व्यवसाय था । किसान इसलिये बेईमानी नही करता कि फिर जरूरत पडने पर उसे कर्जा नही मिल पायेगा ।

नयी व्यवस्था अर्थात् बीघोडी प्रथा के लागू होन के पहले उपयु क्त स्थिति थी । नयी व्यवस्था ने पटेलो को भूमिकर की वसूली तक सीमित कर दिया । अत उ हान एक नया तरीका निकाला । उ हान बोहरा लोगा क व्यवसाय को चौपट कर के स्वय बोरगत (महाजनी का काम) करना शुरू कर दिया । जालिमसिंह नाराज न हो इसलिय उ होन एक मध्य का माग ढू ढ निकाला । अब तक किसान लोग फसल काटन के बाद राज्य का कर चुकाया करते थे । पटेला न नया नियम बना दिया कि किसाना को अपनी मालगुजारी फसलो के तयार होने के पहल ही अदा कर दनी चाहिय । पटलो का यह नियम किसानो क लिय अत्य त घातक सिद्ध हुआ । उ हान बोहरा से कज मागना शुरू किया पर तु पटेला ने बोहरो को धमका दिया कि जब तक किसान राज्य की मालगुजारी अदा न करे उ ह ऋण नही दिया जाय । इस स्थिति म किसानो को पटला की शरण म जान के लिय विवश हाना पडा क्योकि मालगुजारी अदा करन लायक कोई अ य साधन उपलब्ध न हो पाया । अपन खेता का अनाज भी नही बेच सकते थे । इस स्थिति म किसानो न अपने खेता का अनाज

पटेलों के यहाँ लाकर रखना शुरू किया। किसानों के उस अनाज को पटेल लोग अपने मनमाने भाव से खरीदने लगे और मजे की बात यह कि किसान को यह लिखकर देना पड़ता था कि मैंने स्वेच्छा से इस भाव पर पटेल को अपना अनाज बेचा है। उन रुपयों से माल गुजारी अदा की जाती। इस प्रकार की नीति का आश्रय लेकर पटेल लोग प्रतिवर्ष किसानों से बहुत सा धन वसूल कर लेते जिससे उनकी आर्थिक स्थिति काफी समृद्ध होती गई। दूसरी तरफ किसानों की स्थिति दिन प्रतिदिन शोचनीय होती गई।

संवत् 1867 (1811 ई.) तक इसी प्रकार की स्थिति बनी रही। फिर अचानक बिजली जैसी कड़कड़ाहट के साथ सरकारी आदेश जारी हुआ और कोटा के समस्त पटेलों को बन्दी बना लिया गया। इसके बाद जालिमसिंह ने उस तमाम सम्पत्ति जो पटेलों ने अन्याय करके संचित की थी, को जब्त कर राज्य के खजाने में जमा करा दी। फिर प्रत्येक पटेल के अपराधों का निर्णय किया गया और उन पर भारी जुर्माने किये गये। उन पटेलों में से एक ऐसा था जिसने अपने अन्याय से अर्जित सात लाख रुपये किसी दूसरे राज्य में भिजवा दिये थे। केवल एक इसी उदाहरण से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कोटा के अन्य पटेलों ने किसानों का शोषण कर कितनी धन सम्पत्ति संचित की होगी। जालिमसिंह ने इससे सबक सीखा और उसने अपनी नयी व्यवस्था को खत्म करके फिर से पुरानी व्यवस्था को लागू किया।

अध्याय 72

जालिमसिंह की कृषि और वित्त व्यवस्था

अब हमे अभिभावक के आतरिक प्रशासन की सबसे प्रमुख विशेषता "कृषि एकाधिकार" का अध्ययन करना चाहिये, जिसके लिये उसे सम्पूर्ण राजपूताना म विशेष ख्याति मिली। सम्पूर्ण राज्य म लहराती हुई खेती को देखकर कोई भी बाहर का मनुष्य कोटा राज्य के किसाना की समृद्ध दशा का अनुमान लगा सकता था। लेकिन उस परदेसी को क्या पता कि इन लहराते हुये हरे भरे खेतो की समस्त पदा वार का मालिक कौन है ? जालिमसिंह ने पुरानी व्यवस्था को त्यागकर पटेली व्यवस्था लागू की थी और किसानो को सुविधा देने की चेष्टा की थी। पर तु पटेलो की बेई-मानी स किसानो को किसी प्रकार का लाभ न मिल पाया और पुन बहुत से पुराने नियमो को लागू करना पडा। उसके स्वय के अत्याचारो ने खेतो और गावा को वीरान बना दिया, आबादी कम होती गई और मालगुजारी म कमी आती गई तब जालिम-सिंह ने एक ऐसा उपाय ढू ढ निकाला जिसने उसे हाडौती की कृषि का सेनानी बना दिया। हाडौती मे ऐसा कोई कोना या टुकडा बाकी नही रहा जहा उसके हल चलते हो और अनाज का उत्पादन न हो। जगल गायब हो गये हैं, यहा तक कि अन उपजाऊ पहाडियो के निचले भागो को भी उपजाऊ मदानो मे बदल दिया गया है।

सवत् 1840 (1784 ई) मे जालिमसिंह के पास केवल दो सौ अथवा तीन सौ हल ही थे। परन्तु कुछ वर्षो बाद ही उनकी सख्या बढकर आठ सौ हो गई। नय वष की शुरूआत मे जब उसन पटली व्यवस्था लागू की थी अथात् पुरान नियमो को तोडकर किसानो स नकद मालगुजारी लना आरम्भ किया था उस वष उसके हलो की सख्या दुगुनी (1600) हो गई थी। वतमान म उसक हलो की सख्या चार हजार म कम न होगी। प्रत्यक हल म चार चार बल का उपयोग किया जान लगा और बलो की सख्या सोलह हजार पहुच गई। जालिमसिंह क वश के अधिकार म कितनी भूमि थी और उन पर कितन हल चलत थे, उनकी सख्या अलग थी।

यह राजराणा की शक्ति और प्रतिष्ठा का रहस्य था। कृषि क द्वारा उसन अपरिमित सम्पत्ति पदा की जिसन कोटा को उस अराजकतापूर्ण स्थिति स बचा

लिया जो पिछले पचास वर्षों से अपना विनाशकारी रूप दिखला रही थी और जिसकी चपेट में अनेक राज्य कमजोर होकर टूट गये थे। लेकिन उसकी इस उन्नति से कोटा राज्य के किसानों और दूसरे लोगों को न केवल निर्धन बल्कि भिखारी बना दिया। अपनी भीषण दरिद्रता के कारण राज्य के अगणित किसानों ने कृषि का काम बन्द करके मजदूरी का सहारा लिया। इस प्रकार किसानों के अधिकार से भूमि छूटती जाती थी और छूटने वाली भूमि पर जालिमसिंह का अधिकार होता जाता था। जब जालिमसिंह के नेत्र बन्द हो जायेंगे और सत्ता उसके पुत्र के हाथ में आयेगी, जो अपने पिता जैसी प्रतिभा का धनी नहीं है तब उसकी इस व्यवस्था की उपादेयता सामने आयेगी। हाडा सरदारों की जागीरों को जब्त करने और उनके राज्य से चले जाने के कारण कृषकों की संख्या में कमी आई थी और तब अभिभावक को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का सुअवसर मिला था। किसानों को जो खेत पैतृक वंश परम्परा से मिले हुये थे और जिन पर उनका अधिकार था, उस अधिकार को अन्याय-पूर्ण तरीकों से समाप्त करके राजराणा ने उनके खेतों पर अधिकार कर लिया था और उन किसानों को अब अपने ही खेतों पर मजदूरों की हैसियत से काम करने के लिये विवश हो जाना पड़ा। जालिमसिंह ने राज्य की लगभग सम्पूर्ण अच्छी भूमि पर अधिकार कर लिया था और उसमें उसकी अपनी खेती होने लगी थी। उसकी इस नीति से कोटा का राज्य-पक्ष जितना ही सम्पन्न और सम्पत्तिशाली बन गया था दूसरे पक्ष में सभी प्रकार की प्रजा से लेकर किसानों तक—सभी लोग कंगाल हो गये।

सम्पूर्ण राजपूताना में भूमि के प्रति प्रेम और उस पर अपना अधिकार बनाये रखने की भावना बहुत अधिक प्रबल है। जब तक जिन्दा रहने की आशा बनी रहती है तब तक किसान लोग अपने 'बपोता' (पैतृक भूमि) से चिपके रहते हैं और हाड़ाती के किसानों में यह आकर्षण इतना अधिक है कि वहाँ एक कहावत प्रचलित है कि 'वह अपना पेट भरने के लिये गुलामी की स्थिति स्वीकार कर लेगा बनिस्पत बाहर के सुखी जीवन के।' परन्तु सवाल यह है कि वे भागकर जाते भी कहाँ? चारों तरफ लूटमार का माहौल था। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा–लुटेरों के दल आंधी के समान आते, लूटमार करते और आगे बढ़ जाते। ऐसी स्थिति में जो किसान कोटा राज्य छोड़कर दूसरे राज्यों में गये भी, उन्हें वहाँ आश्रय नहीं मिल पाया और उन्हें लौटकर अपने ही राज्य में आना पड़ा। अब हम जालिमसिंह की व्यवस्था के दूसरे पहलुओं की चर्चा करें जिससे उसकी प्रतिभा, श्रम और सतर्कता का पता चलता है।

कोटा राज्य की भूमि उपजाऊ तो है परन्तु मालवा की भांति काफी कड़ी है। एक हल से यह भूमि आसानी से नहीं टूटती। इसलिये जालिमसिंह ने कोंकण राज्य की तरह अपने यहाँ भी दो हलों का एक साथ प्रयोग में लाने की व्यवस्था की और उन हलों में जोतने के लिये अच्छी नस्ल के बैलों की व्यवस्था की। जालिमसिंह

न अपनी मती के लिय अच्छे उला के रखन का समुचित प्रब ध कर रखा था और भालरा पाटन के रानु मन के अवसर पर वह प्रतिवप अच्छे वला का खरीदन की व्यवस्था करवाता था। मारवाड और मरुभूमि म जा वल अच्छी नस्ल क तथा शक्तिशाली समझे जात थ जालिमसिंह न वहा म भी वल खरीदकर मगवाय थ। परन्तु काटा की मस्त भूमि म व उपयागी सिद्ध नही हुय अत उन्ह वच दिया गया।

काटा राज्य की भूमि दा फसली है और एक हल की सहायता म सौ बीघा भूमि का खेती की जा सकती है। अर्थात् चार हजार हला की सहायता से चार लाख बीघा भूमि की खेती की जा सकती है और दाना फसला म आठ लाख बीघा की खेती हा जाती है। अंग्रेजी हिसाब से तीन लाख एकड भूमि हा जाती है। जिस भूमि म एक बीघ म मात मन स कम गहू बाजरा, मक्का अथवा अन्य भारतीय अनाज पैदा हाता है ता उम भूमि का अच्छी किस्म की नही माना जाता। इस हिसाब से भी कम औसत स्वीकार कर लिया जाय अर्थात् प्रति बीघे चार मन की पदावार मान ली जाय ता आठ लाख बीघा स बत्तीस लाख मन गहू और बाजरा पदा हो सकता है।[1] अब हम इस पदावार का मूल्य आकना चाहिए। अच्छी पदावार के दिनो म गेहू और बाजरा—दाना का औसत भाव बारह रुपय प्रति एक मानी रहता है और पदावार अच्छा न हो ता अठारह रुपय प्रति एक मानी के भाव से बिकता है।[2] यदि हम प्रति मन पर एक रुपय की बचत भी मान लें ता जालिमसिंह केवल खेती मे बत्तीस लाख रुपय प्रतिवप कमा लेता था। वस यह मुनाफा इससे भी अधिक था। उसके खर्च का ब्यौरा इस प्रकार है—

पशुओ के आहार और किसाना क वतन आदि म = चार लाख रुपय। बीज खरीदन म = छ लाख रुपय। पशुओ क खरीदन म - अस्सी हजार रुपय। फुटकर खच - बीस हजार। कुल खचा=ग्यारह लाख रुपय।

इस हिसाब म स्पष्ट पता चलता है कि जालिमसिंह को खेती से जितनी आमदनी हाती था उस पर उसका खच एक तिहाई ही हाता था। इस सम्ब ध म एक बात और ध्यान देन याग्य है। वह अन्य किसानो की तरह फसला स अनाज मिलत ही सस्ती दर पर बचन वाला व्यक्ति नही था अपितु वह अनाज को गोदामो म सग्रह करके रखता था और जब भाव अनुकूल होन तभी बेचा करता था।

काटा राज्य म अनाज सग्रह करके रखने की व्यवस्था बहुत उसक लिय ऊची सतह वाला भूमि पर खत्ती बनाई जाती है और नाच घास और भूसा डालकर उसक ऊपर अनाज रखा जाता है। उसके ऊपर फिर भूसा रखा जाता है और उसके ऊपर बहुत लगाकर इस प्रकार मजबूत कर दिया जाता है कि अधिक स अ

भी खत्तियां म सुरक्षित अनाज का किसी प्रकार हानि न पहुच सके। इस तरह खत्तियां म सुरक्षित अनाज को दो दो, तीन तीन वर्षों तक भी किसी प्रकार की क्षति नही पहुचती थी। खत्तियों का आकार पास के खेतों की पैदावार के हिसाब से तैयार किया जाता है। इस प्रकार, जालिमसिंह अपने अधिकार म अनाज का विशाल सुरक्षित भण्डार रखता था और अकाल के पडने अथवा किसी कारणवश अनाज के भाव बढने पर वह अपना सुरक्षित अनाज बाहर निकालकर महगे दामो पर बेचा करता था। अकाल अथवा किसी अन्य दूसरे कारण से फसल के खराब होने पर जालिमसिंह एक एक वर्ष म साठ साठ लाख मन तक अनाज बेचा करता था और ऐसे अवसरों पर उसकी ये सुरक्षित खत्तियाँ सोने की खानो का काम देती थी। संवत् 1860 (1804 ई) म मराठा युद्ध के दौरान जब होल्कर भरतपुर राज्य म था और लुटेरी शक्तियाँ राजपूताना के प्रत्येक भाग म सक्रिय थी और अकाल ने राजपूताना पर कहर ढा रखा था तब कोटा ने सम्पूर्ण राजपूताना के भूखे लोगो का भरण पोषण किया था। उस समय उसने 55 रुपये प्रति मन के हिसाब से एक करोड रुपये का अनाज बेचा था।

कोटा के उपलब्ध दस्तावेजो से पता चलता है कि बुरी शासन व्यवस्था के दिनो मे, कोटा राज्य की सम्पूर्ण खालसा भूमि से जिन्स के रूप म किसानो से मिलने वाला कर पच्चीस लाख रुपये के आसपास था। जालिमसिंह ने स्वय इस बात को स्वीकार किया है कि किसानो से होने वाली आमदनी पच्चीस लाख प्रति वर्ष है। इसमे उसकी अपनी कृषि की आमदनी सम्मिलित नही थी। वह यह भी स्वीकार करता है कि कोटा राज्य की दो तिहाई भूमि बजर है परन्तु यह नही कहता कि इस समय केवल एक तिहाई भूमि ही बजर है।

संवत् 186[illegible] (1809 ई०) म जालिमसिंह ने आय का एक अन्य उपाय खोज निकाला। उसने अपने राज्य से बाहर भेजे जाने वाले अनाज पर कर लगा दिया। इसका नाम 'लुट्टा' रखा गया और डेढ रुपया प्रति मन के हिसाब से लिया जाता था। अपने मूल रूप म यह कर अन्यायपूर्ण नही था, परन्तु वसूली की अत्याचारपूर्ण पद्धति से अप्रिय हो गया। पहले यह कर उत्पादको तक सीमित रखा गया, हालाकि अप्रत्यक्ष रूप से इसका प्रभाव उपभोक्ताओ पर भी पडा। परन्तु 'जगाति' (कर-वसूली का अधिकारी) इस नियम के प्रथम परीक्षण से ही इतना अधिक सतुष्ट हुआ कि उसने अपने मालिक से इस कर की सीमा को और बढाने का अनुरोध किया। उसके अनुरोध को स्वीकार करते हुये अब यह कर किसान और खरीददार—दोनो पर लागू कर दिया गया। इससे राज्य को एक साथ ही दस लाख रुपये वार्षिक की आय होने लग गई। परन्तु इससे भी जालिमसिंह सतुष्ट नही हुआ। उसने अपने ही प्रतिस्पर्धी किसानो को समाप्त करने की दृष्टि से एक ही अनाज पर चार चार पाच-पाच बार तक कर वसूल करना शुरू कर दिया। तब

कही अनाज खुदरा बिक्री के लिये उपलब्ध हो पाता था। परिणामस्वरूप अनाज काफी महगा हो गया और कोटा के नागरिक यदि भुखमरी की स्थिति म न भी पहुच पाय तो निरन्तर भुखमरी के भय से आतंकित अवश्य रहने लगे। इस कर की वसूली म राजकर्मचारियों ने अत्याचारपूर्ण उपायो का सहारा लिया। कर वसूली का कोई नियम न था। वसूल करने वाले अपनी इच्छा से उस कम अथवा अधिक कर देते थे और उनके अत्याचारो की सुनवाई करने वाला कोई न था। अग्रेजो के साथ कोटा राज्य की सधि होने के समय तक अत्याचार अपनी चरम सीमा पर जा पहुचे थे। कर वसूली स सर्वाधिक यह अधिकारी जालिमसिंह की व्यवस्था का एक अग बन चुका था और यदि अभिभावक को तत्काल पाच लाख रुपये की जरूरत पडती तो वह अधिकारी "जो हुक्म" कह कर मत्री बैंकर व्यापारी और किसान—सभी को आदेश-पत्र भेजकर रुपया की व्यवस्था कर देता था। जिसस जितनी रकम की माग की जाती, उम बिना किसी विरोध के व्यवस्था करनी पडती थी अथवा अपमानजनक अत्याचार सहन करने के लिये तयार रहना पडता था। एक बार तो अभिभावक के प्रिय मित्र पडित गलाल का भी पच्चीस हजार रुपये देने पडे थे। 'लुट्टा' शब्द रजवाडे मे प्रचलित दण्ड' शब्द का ही दूसरा रूप था। इसस जनता के सभी वर्ग के लोग उसके विरोधी बन गये और जालिमसिंह का उत्थान एक बार तो पतन की स्थिति म भी पहुचा दिया होता। जब हाडा राजा को प्रजा की दयनीय स्थिति का पता चला तो उसने एक बार तो अपने आपको अभिभावक के निरकुश प्रभाव से मुक्त होने के उपाय सोचने शुरू कर दिये थे।

जब अग्रेज सरकार रजवाडो के सम्पर्क म आई, तो उनके साथ जो सधिया की गईं उसका उद्देश्य शासक और शासितो—दोनो के कल्याण के सार्वभौम सिद्धान्त पर आधारित थी। अग्रेजो की इस नीति का प्रभाव जालिमसिंह पर भी पडा। उसने समझ लिया कि अब समय 'जनकल्याण" की तरफ ध्यान केंद्रित करने का आ गया है। इसलिये कर के असगत स्वरूप को समाप्त कर दिया गया और एक आदेश द्वारा अब इस कर का किसान बेचने वाले तथा खरीदने वालो तक ही सीमित रखा गया। अपने अत्याचारो पर पर्दा डालने के लिये वह इतना उत्सुक हो उठा कि इस कर का 'लुट्टा' नाम ही हटा दिया और उसके स्थान पर 'सवाई हासिल" नया नाम रखा। इस कर से अब भी पाच लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती है।

राज्य की समस्त भूमि से जालिमसिंह को पचास लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी। इसके अलावा जो भूमि उसके परिवार के सदस्यो और राजा के परिवार के अधीन थी उससे पाच लाख रुपये वार्षिक की अलग आमदनी होती थी जो कि उन लोगो के खर्चों के लिये पर्याप्त होती थी।

विस्तृत साधना एव व्यापक अनुभव से सम्पन्न एक यूरोपीय व्यक्ति के बारे म अपनी क्या धारणा बनायेगा जिसने इस उलझनपू

जन्म दिया और पूरे चालीस वर्ष तक उसका सभी अधिकारियों पर सिद्ध शक्ति रखते हुए लागू रखा। उसके शासन काल में और उसकी वृद्धावस्था में भी वह अपनी व्यवस्था को सुचारु रूप से कायम रखे हुए है। उसे अपने राज्य की भौगोलिक स्थिति की इतनी अधिक जानकारी है कि यदि किसी भी हिस्से में कृषि योग्य भूमि का एक टुकड़ा भी अछूता रह जाय तो वहाँ के हवलदार की खैर नहीं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उसने कृषि के व्यवसाय में अद्भुत सफलता प्राप्त की और इस व्यवसाय से अपरिमित सम्पत्ति एकत्र की और प्रजा पर भी अनेक प्रकार के कर लगा कर काफी धन एकत्र किया। इन सभी बातों से उसकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का पता चलता है। परन्तु वह अपने इन गुणों के लिए कहाँ तक प्रशंसा का अधिकारी है—यह एक अलग से विचारणीय प्रश्न है।

यद्यपि यह व्यवस्था बहुत विस्तृत थी परन्तु गहराई से सोचने पर अधिकांश लोगों को पता चलता कि यह उसके राजनीतिक यन्त्र का एक हिस्सा मात्र था, उस यन्त्र का जिसको उसने अपनी स्वयं की शक्तियों के सहारे सक्रिय बनाये रखा। इसके लिये उसके आंतरिक प्रशासन और बाह्य सम्बन्धों की विवेचना करना जरूरी होगा। राज्य की रक्षा करने के लिए उसे अपने अधिकार में बीस हजार सैनिकों की एक सेना का गठन करना पड़ा। उन सैनिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, दुर्गों की व्यवस्था, दुर्गों में पर्याप्त युद्ध सामग्री और रसद की व्यवस्था, आधुनिक अस्त्र शस्त्रों की व्यवस्था तथा इन सभी से जुड़ी हुई समस्याओं का निदान एक व्यक्ति के मस्तिष्क के लिये बहुत पर्याप्त था। अपने गुप्तचरों से प्राप्त होने वाली प्रतिदिन की सूचनायें और वो हजारों की संख्या में, और इतनी ही संख्या में प्रत्येक जिलाधिकारी से आने वाली सूचनाएं किसी भी राज्य के साधारण अधिकारी को आधा पागल बना सकती थी परन्तु जालिमसिंह का कहना था कि उसकी सूचना के बिना हाड़ौती में हवा भी प्रवेश नहीं कर सकती। परन्तु जब हम यह पता चलता है कि इसके साथ साथ जालिमसिंह एक सच्चा व्यापारी भी था जो दाव लगाने में निपुण था कि उसने यान्त्रिक कला को प्रोत्साहन दिया, विदेशी उद्योगों को बढ़ावा दिया, बागवानी को विकसित किया और वहाँ पैदा होने वाले फलों को बाजार में बेचने की व्यवस्था की—इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये जालिमसिंह की भला किस आदर्शों से तुलना की जा सकती है? अवकाश के क्षणों में साहित्य दर्शन और भाटों के ऐतिहासिक काव्य उसके मनोरंजन के साधन होते थे। परन्तु अभी हमने उसके आर्थिक चरित्र की पूरी समीक्षा नहीं की है। उसके एकाधिकार की प्रवृत्ति–विशेषकर अनाज की न न केवल उसके अपने राज्य को ही प्रभावित किया अपितु आसपास के सभी राज्यों के बाजारों को प्रभावित किया। अंग्रेज सरकार ने जिस समय समस्त मालवा देश में अफीम की खेती की पैदावार को अपने एकाधिकार में ले लिया उस समय जालिमसिंह ने अवसर का लाभ उठाते हुये अफीम के क्रय विक्रय में लिप्त होकर अपनी इच्छानुसार इसका मूल्य घटा बढ़ा दिया करता था। उसके बगीचे आज भी आस पास के

राज्यों की फसल तथा नाना नदियों की मार को तथा चाल ईंधन की नाद को नरा करते हैं।

जालिमसिंह की कर पद्धति इतनी कठोर थी कि कोई बच नहीं पाता। जो विधवा स्त्री दुबारा विवाह करना चाहती थी उनको भी इसके लिए राज्य का कर देना पड़ता था। भिक्षा मांगने वाले भिखारियों, साधुओं और सन्यासियों पर भी उसने कर लगाया था। परन्तु बाद में कुछ करों का विरोध होने पर तथा मदन पुत्र माधोसिंह की सिफारिश पर उसने उन्हें रद्द कर दिया।

जालिमसिंह भाट कवियों का प्रशंसक नहीं था। इसकी पुष्टि एक घटना से होती है। एक बार एक कवि बड़े जोर शोर के साथ उसकी प्रशंसा में कुछ छन्द सुना रहा था। जालिमसिंह ने उदासीनता के साथ उन्हें सुना और व्यंग्य कसा कि ये कवि झूठी प्रशंसा के गीत गाया करते हैं और उनकी कविताओं में सत्य का अंश नहीं होता। कवि ने वापस उत्तर देते हुए कहा कि सत्य का आदर बहुत कम होता है। कोई सत्य बात सुनना नहीं चाहता। यदि आपको पसन्द है तो मैं आपको सुना सकता हूं। सत्य काव्य पाठ करने के पहले उस कवि ने यह भी कह दिया कि आपको यदि पसन्द न आये तो मेरे अपराध को क्षमा कर देना। जालिमसिंह ने उसकी बात मान ली। इसके बाद उस कवि ने जालिमसिंह के चरित्र के सम्बन्ध में सत्य घटनाओं का लेकर कविता सुनाना शुरू किया जिसमें इतना जहर भरा हुआ था कि उसे सुनते ही जालिमसिंह अत्यधिक क्रोधित हो उठा और उसने कवि के अधिकार की समस्त पट्टक भूमि छीन ली और उसके बाद उसने किसी भी कवि को अपने पास न आने दिया।

यद्यपि जालिमसिंह अपने धर्म के कर्मकाण्डों और उत्सवों का पालन करने में कट्टर था और अपने देश के प्रचलित अंधविश्वासों को भी मानता था फिर भी उसने जन्म अथवा जाति को अपनी नीति को प्रभावित करने का कभी कोई अवसर प्रदान नहीं किया। राज्य के विरुद्ध किये जाने वाले अपराधों के मामले में किसी को भी कोई विशेष सुविधा नहीं दी जाती थी—चाहे अपराधी ब्राह्मण हो अथवा भाट। यदि इन जातियों के लोग व्यापार में लगे होते तो भी उन्हें राजकीय करों के मामले में किसी प्रकार की छूट नहीं दी जाती थी।

जब अभिभावक जालिमसिंह को सत्ता सौंपी गई थी कोटा राज्य की सीमा पूर्व में कलवाटा तक सीमित थी, उसने इसे बढ़ाकर पठार की अंतिम सीमा तक पहुंचा दिया और इस क्षेत्र की सुरक्षा करने वाले दुर्ग जो उसने मराठों से किराये पर ले रखे थे, अंग्रेजों के साथ की गई संधि से कोटा राज्य के अधिकार में आ [illegible]।
उसने जब राज्य की सत्ता सम्भाली तो राजकोष खाली था और राज्य पर रुपयों का कर्जा चढ़ा हुआ था। राज्य की सुरक्षा के नाम पर कुछ द

साम ता की एक ग्रनियमित सेना थी । उसन बहुत सा धन खच करक बहुत स टूट-फूटे दुर्गो की मरम्मत करवाई और उनकी बुजिया पर सकडा तापें रखवाकर तथा दुग म ग्रावश्यक युद्ध सामग्री एकत्र कर उन्ह पूरी तरह स सुरक्षा क योग्य बना लिया। चार हजार हाडा सनिका की सेना क स्थान पर उसन बीस हजार सनिका की एक नियमित, ग्रनुशासित ग्रार प्रशिक्षित सेना खडी की जा ग्रलग ग्रलग बटालियनो म विभक्त थी ग्रौर जिसक साथ सौ तापा का एक तापखाना ग्रौर एक हजार ग्रच्छी किस्म के घोडे थ । साम ता क सनिक दस्त इसक ग्रलावा थे ।

पर तु क्या यह समृद्धि है ? क्या राजा गुमानसिंह न यह सोचकर सत्ता सौपी थी कि उसक उत्तराधिकारियो साम ता ग्रौर प्रजा का इस महानता का यश मिलगा ? क्या इस भूमि क वास्तविक मालिक हाडा साम तो की जागीरा को जब्त करके तीस हजार सनिको की वतनिक सना के लिये सत्ता सौपी गई थी ? क्या यह सरकार सभ्य राष्ट्रो के विचारा की दृष्टि स एक ग्रच्छी सरकार है जिसन ग्रपनी व्यवस्था को बनाय रखन के लिये करा को ग्र तिम सीमा तक लागू किया है ? हम यह मान सकते हैं कि उसको जो सत्ता सौपी गई थी उसका बनाय रखने के लिए तथा लुटेरो स राज्य की रक्षा करन क लिये थाडे समय के लिये उसकी व्यवस्था न्यायोचित थी । किसी ग्रथ म हम इस बात को भी मानने के लिये तयार हैं कि जालिमसिंह न कोटा राज्य क हाडा राजपूता के गौरव की रक्षा की थी । पर तु जहा पर राज्य की प्रजा के कल्याण का प्रश्न पदा होता है जालिमसिंह के शासन की किसी प्रकार प्रशसा नही की जा सकती । उसन विभिन्न उपायो से जितनी ग्रधिक व्यक्तिगत सम्पत्ति पैदा की, राज्य की जनता का जीवन उतना ही सकटमय बन गया था । कोटा की धरती पर लहलहाती फसलें जनता की समृद्धि का प्रतीक नही थी ग्रौर न ही ग्रच्छा वेतन पाने वाली शिक्षित ग्रौर शक्तिशाली सेना राज्य की रक्षा क लिये ग्रावश्यक थी । उसक शासनकाल म नतिकता का उल्लघन किया गया था, जनता को उसके नागरिक ग्रधिकारो से वचित किया गया ग्रौर जब तक उनको पुन स्थापित नही किया जाता उसके द्वारा स्थापित ढाचा कभी भी ग्रसुरक्षा का शिकार बन सकता है ।

स दभ

1 एक मन 75 पाड के बराबर होता है ।

2 राजपूतान म 43 सेर का 1 मन, बारह मन की एक मानी ग्रौर 100 मानी का एक मनासा होता है ।

अध्याय 73

जालिमसिंह की राजनीतिक व्यवस्था

जालिमसिंह की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन की सुविधा की दृष्टि स दो भागो म विभाजित किया जा सकता है—विदेशी और आंतरिक। जालिमसिंह की नीति अपन आपका एक सतुलनकारी शक्ति क रूप म प्रतिष्ठित करन की थी ताकि वह आवश्यकता पडन पर अपन प्रभाव से एक नेता का दूसरे नेता की सहायता स दबा सके। इस विचार के उपरा त भी उसने सभी क साथ अच्छे मैत्रीपूर्ण सम्ब ध बनाय रखन का प्रयास किया और किसी को भी असतोष का अवसर नही दिया जबकि उसकी अपनी शक्ति किसी भी समय स्थिति को अपन अनुकूल बनान के लिय पर्याप्त थी।

भारत के मध्य भाग म बसे होने के कारण, बहुत वर्षो तक कोटा राज्य के आसपास के राज्यो म अनेक प्रकार क अत्याचार और विनाश होते रहे। आक्रमण कारियो न उन राज्यो को लूटा और उनका विध्वस किया। कोटा राज्य की सम्पत्ति ने भी आक्रमणकारियो को अपनी ओर आकर्षित किया पर तु जालिमसिंह न जिस प्रभावोत्पादक ढग से शासन आरम्भ किया कि आधी शताब्दी तक लुटेर मराठा को उसके राज्य की तरफ आग बढन का साहस नही हुआ। व उसका सम्मान करन क साथ साथ उससे डरते भी थे। इसीलिये जहा इस दीर्घावधि म राजस्थान क अधिकाश राज्य लूट गय और उन्ह अनेक प्रकार की विपदाओ का सामना करना पडा वही केवल कोटा का राज्य इस विनाश स सुरक्षित रहा। अपनी पच्चीस वर्ष की अवस्था से लेकर बयासी वर्ष की आयु तक अपन चातुर्य, शक्ति साहस दूरदर्शिता और व्यव-हार स सफलतापूर्वक अपने हितो की रक्षा करता रहा।

राजवाडा म कोई भी दरबार ऐसा न था यहा तक कि लुटेरा सरदार भी जो किसी न किसी रूप म उसके विचारो स प्रभावित न था या उससे बहुधा मार्ग निदेशन की आकाक्षा न रखता हो। प्रत्यक दरबार म उसन अपन दूत रख छोड़े थे और जब कभी उस किसी प्रकार का लाभ उठाना होता तो सभी प्रकार स वह उस प्राप्त करन म सफल हो जाता था। मनुष्य की कमजोरिया ... आवश्यकताओ और झूठे अभिमान को वह अपने प क्ष म करके काम निक

था। आवश्यकता पडने पर वह दूसरे राजाओं को यहां तक कि मराठे नेताओं और पिंडारियों को भी पिता चाचा या भाई बनाने में नहीं चूकता था। किसी भी अवस्था में वह अपने उद्देश्य को सफल बनाने के लिए सभी प्रकार के दावपेंच जानता था। पिछले दस वर्षों से उसने अमीरखां के साथ सम्बन्ध स्थापित करके न केवल उसको होल्कर से पृथक कर दिया बल्कि अपने शक्ति सतुलन का एक प्रभावकारी अंग भी बना दिया। बाद में उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह समय गुजर गया जबकि तुर्कों के गुलाम का मुझे अभिवादन करना पडता था।

यद्यपि जालिमसिंह स्वभाव से कठोर क्रोधी और घमण्डी था, परन्तु आवश्यकता पडने पर वह विनम्रता की अंतिम सीमा तक भी पहुंच जाता था। वह प्रभावशाली पत्र लिखना और बातचीत करने में काफी दक्ष था। सामान्य पिंडारी अथवा पठान इत्यादि नेता को भी समय समय पर वह अत्यन्त विनीत भाव से पत्र लिखकर अथवा नम्रता के साथ बातचीत करके काय कर लेते थे। परन्तु उसकी यह विशेषता थी कि बहुत विनम्र होने पर भी वह स्वाभिमान से काम लेता था। दूसरी तरफ वह आक्रमणकारियों को खदेडने के लिए भी हमेशा तयार रहता था और यदि एक बार के युद्ध से विवाद का निर्णय होने की आशा होती तो वह उस क्षेत्र की किसी भी शक्ति से युद्ध करने में नहीं हिचकता था। परन्तु वह जानता था कि एक युद्ध में विजय का अर्थ भी विनाश है अत उसकी नीति समझौतावादी रही। परस्पर विरोधी सघर्षरत शक्तियों से घिरे होने के कारण उसे प्राय दोहरी भूमिका अदा करनी पडती थी। जैसे कि 1806–7 ई में जोधपुर के विरुद्ध गठित सघ के अवसर पर उसे तीन शक्तियों को सतुष्ट करना था। तीनों ने उससे सहायता की मांग की थी जिसकी वजह से तटस्थता को बनाये रखना असम्भव था। उसने तीनों के पास अपने दूत भेजे और मध्यस्थ की भूमिका का प्रदर्शन किया परन्तु सहायता किसी को नहीं दी।

उसकी विदेश नीति के विस्तृत विवरण में जाना निरर्थक होगा। हम केवल उन घटनाओं पर प्रकाश डालेंगे जिनकी वजह से 1803 4 ई में वह ब्रिटिश सरकार के सम्पर्क में आ गया।

जब मानसन के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने होल्कर के विरुद्ध उस दुर्भाग्यपूर्ण सैनिक अभियान के अन्तर्गत मध्य भारत में प्रवेश किया तो कोटा के अभिभावक ने ब्रिटिश शस्त्रों की अपराजेयता में विश्वास रखते हुये अपनी सीमा में प्रवेश करने पर उसको सभी प्रकार की सहायता देने में जरा भी हिचक नहीं दिखाई। परन्तु जब वह सेना पराजित होकर वापस लौटी और कोटा शहर की दीवारों के भीतर आश्रय की मांग की तो उसे मना कर दिया गया। जालिमसिंह ने अंग्रेज सेनापति को उत्तर भिजवाया कि 'आपकी सेना के नगर में प्रवेश करने पर अराजकता पैदा होने की पूरी सम्भावना है। इसलिये आप अपनी सेना को लेकर मेरी दीवारों का आश्रय लें

इलाको म रहने वालो को सदेश भिजवा दिया तथा पहाडी क्षेत्रो के भीलो को भी कहला दिया गया कि वे सगठित होकर होल्कर की सेना पर ग्राक्रमण करें ग्रौर उसके शिविर तथा रसद सामग्री का लूट लें। होल्कर न एक वार पुन दस लाख रुपये की ग्रदायगी वाला पत्र भिजवाया ग्रौर जालिमसिंह न पुन उसको ग्रस्वीकृति के साथ लौटा दिया। युद्ध ग्रनिवाय प्रतीत होन लगा। पर तु दोना पक्षो के मित्रो ने दानो की भेट वार्ता का प्रयास किया। पर तु जालिमसिंह ग्रपन शत्रु की मक्कारी से सुपरिचित था ग्रत उसने केवल ग्रपनी शत पर मुलाकात करन की स्वीकृति प्रदान की। उसन यह शत रखी कि सधि ग्रथवा युद्ध के बारे म हम लोगो की बातचीत चम्बल नदी म नौका पर होगी। होल्कर ने उसकी शत का स्वीकार कर लिया। इसके लिय जालिमसिंह ने दो नौकाग्रो का प्रब'ध किया। उनमे से प्रत्येक पर बीस सशस्त्र सनिक बठ सकते थे। तीसरी नौका म वह स्वय बठा ग्रौर तीनो नौकायें चम्बल नदी पर तरन लगी। दूसरी तरफ से होल्कर भी नौका पर सवार होकर ग्रा पहुचा। एक नौका म कालीन बिछा दिया गया ग्रौर उस पर बठकर दाना शत्रु एक दूसरे से बातचीत करने लगे। दाना एक एक ग्राख वाले[2] नेताग्रा न ग्रापसी सुलह की शर्तें तय की ग्रौर वही पुराना चाचा-भतीजा का सम्बोधन शुरू हो गया। पर तु दाना पक्षा के सनिक पूरी सावधानी क साथ दोनो की तरफ देख रह थे ग्रौर इस प्रतीक्षा म थे कि विवाद बढते ही एक दूसरे पर टूट पडे। पर तु ऐसा ग्रवसर नही ग्राया। भतीजे न तीन लाख रुपय देना स्वीकार कर लिया ग्रौर चाचा मल्हार उन रुपयो के मिलते ही ग्रपनी सेना सहित वापस लौट गया। इस प्रकार, युद्ध टल गया।

इस बात को ग्रासानी से समझा जा सकता है कि ग्रपने राज्य की शासन व्यवस्था मे ग्रत्यधिक व्यस्त रहने के कारण जालिमसिंह को ग्रपन पडोसी राज्यो की तरफ ध्यान देन ग्रथवा उनके विवादा म ग्रपन को उलझाने का समय ही नही मिला। फिर भी कोटा के कल्याण के हिता म उसने सीधी रुचि ली ग्रौर ग्रपनी सीमा के दक्षिणी भाग से जुडें हुये सि धिया ग्रौर होल्कर के इलाको को किराये पर खेती करने के लिए ले लिया। सि धिया मे उसन पाचमहल नाम का इलाका ग्रौर होल्कर से डीग, पिडावा ग्रादि चार जिले लिय थे। ग्रग्रेजा को जब ग्रपनी विजय के फल स्वरूप इन इलाका का ग्रधिकार मिला तो उ होने इनका शासनाधिकार जालिमसिंह को सौंप दिया। पर तु इन दो मराठा लुटेरी शक्तियो म विश्वास न होन के कारण उसे बहुत सावधान रहना पडा। उसन दोना क दरबारो म ग्रपन प्रतिनिधि रख छोडे थे ग्रौर ग्रपन स्वय के दरबार म भी कई कुशल मराठा राजनीतिज्ञ रख छोडे थे। इन दोनो के माध्यम से उसे मराठा नेताग्रो की गतिविधियो की पूरी सूचना गुप्त रूप से मालूम हो जाती थी। जालिमसिंह म एक विशेष बात यह थी कि वह जिस व्यक्ति का जसा मूल्याकन कर लता था उसके साथ वसा ही व्यवहार भी करता था। ग्रपनी इसी नीति के कारण उसन ग्रमीर खाँ के साथ मित्रता कायम कर ली थी ग्रौर व दोना एक दूसरे के सहायक बन गये थे। जालिमसिंह ग्रमीर खाँ को

उसकी ग्रावश्यकता के ग्रनुसार ग्रस्त्र शस्त्र ग्रौर रसद दे दिया करता था ग्रौर उसको रहन के लिए ग्रपना शेरगढ नामक दुग भी दे रखा था। इन सब बातो के उपकार से दवकर ग्रमीर खा भी जालिमसिंह का शुभचिन्तक वन गया था।

पिंडारियो को भी एक सम्भ्रान्त व्यक्ति के योग्य मान सम्मान देकर जालिम सिंह न ग्रपन ग्रनुकूल बना लिया था। कई पिंडारी नेता कोटा राज्य के साथ ग्रच्छे सम्बन्ध रखते थे ग्रौर जालिमसिंह ने भी उनको ग्रपने राज्य मे बहुत सी भूमि दे रखी थी। जब 1807 ई म सिंधिया ने पिंडारी नेता करीम खा को कद करके ग्वालियर के दुग म बन्द कर दिया था उस समय जालिमसिंह ने उसकी रिहाई के लिय सिंधिया का न केवल बहुत सा धन ही दिया ग्रपितु इस बात की जिम्मेदारी भी ली कि भविष्य म करीम खा उसके विरुद्ध कभी कोई काय नही करेगा।

दूसर राज्या के विद्रोही सरदारो को ग्रपने यहा ग्राश्रय देने के ग्रधिकार का प्रयोग जालिमसिंह न ग्रपन राज्य के साधनो की सीमा का ध्यान रखते हुये किया। मारवाड ग्रौर मेवाड के निर्वासित सरदारा को उसने न केवल ग्राश्रय ही दिया था ग्रपितु उनकी जब्त जागीरो से भी ग्रधिक ग्राय की जागीरें प्रदान की थी। परोपकारिता का यह काम राजपूतो मे बुरा नही समझा जाता था यहा तक कि निर्वासित सामन्ता का राजा भी इसको ग्रपने विरुद्ध की गई कायवाही नही मानता था। जालिमसिंह ऐसे सामन्तो का न केवल स्वागत ही करता था ग्रपितु ग्रवसर मिलते ही वह मध्यस्थ बनकर सामन्तो ग्रौर उनके राजा के मध्य समझौता कराने का प्रयास भी करता था। ग्रपने इन नेक कामो से उसने राजपूताना के ग्रन्य राज्या म बडी ख्याति पाई। ये काम केवल परोपकारिता की भावना स प्रेरित होते थे ग्रथवा उसकी नीति के ग्रग थे—यह कहना कठिन है। लेकिन यह सत्य है कि दूसरे राज्यो के सामन्त सकटावस्था म उसके पास ग्राया करत थे ग्रौर जालिमसिंह उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करता था।

ग्रब हम जालिमसिंह की घरेलू राजनीति की समीक्षा करें ग्रौर इसक लिये हम कोटा के राजा उम्मेदसिंह की स्थिति का लेते हैं। राजा गुमानसिंह न ग्रपनी मृत्यु के समय ग्रपने भावी बालक उत्तराधिकारी को जालिमसिंह के सुपुद कर दिया था। पिता की मृत्यु के बाद उम्मेदसिंह कोटा क सिंहासन पर बठा। उस समय वह बालक था ग्रौर शासन की सम्पूण सत्ता उसके ग्रभिभावक जालिमसिंह न ग्रपन ग्रधिकार म ले रखी थी। तब से ग्रपनी मृत्युपयन्त सत्तर वष की ग्रायु मे भी वह ग्रपने को बालक ही समझता रहा ग्रौर राजा होते हुय भी ग्रपन ग्रधिकारा का उपभोग न कर पाया। जालिमसिंह न एक बार 'ग्रभिभावक' का पद प्राप्त किया तो फिर यह पद वशानुगत हो गया ग्रौर राज्य की शक्तिया राजा के स्थान पर इसी पदाधिकारी के हाथा म केन्द्रित हो गई। फिर भी, कहा जाता है कि जालिमसिंह न

शासन करते हुये भी कभी अपने राजा का अपमान अथवा अवहेलना नही की। वह प्राय गूढ मामलो पर अपने राजा के साथ बठकर विचार विमश किया करता था। पर तु करना अपने मन की। पर तु उम्मदसिंह यही सोचकर सतुष्ट हो जाता था कि जालिमसिंह प्रत्येक काय मेरी स्वीकृति के बाद ही करता है। इसलिये उसने अपने अभिभावक को कभी उसके पद से हटाने का प्रयास ही नही किया अथवा इसका इच्छुक नही था। बस उम्मेदसिंह एक बुद्धिमान और दूरदर्शी राजा था। उसे शिकार खेलने का बहुत शौक था। वह घुडसवारी मे निपुण था और प्राय शिकार खेलने के लिये जाया करता था। पूरे पचास वष तक जालिमसिंह ने अपने राजा के प्रति एक जसा ही व्यवहार रखा और इस व्यवहार मे श्रद्धा और राजभक्ति—दोनो का मिश्रण था। उसकी आयु चरित्र और 'नाना' की पदवी ने उसकी सत्ता को और अपने राजा पर उसके प्रभाव को और भी अधिक मजबूत बनाया। यदि किसी निर्वासित साम त को आश्रय प्राप्त करना होता तो वह राजा के द्वारा ही मिल पाता था। किसी को सहायता की आवश्यकता हो तो उसके लिये भी राजा की स्वीकृति आवश्यक थी। यह बात दूसरी थी कि सहायता की राशि जालिमसिंह द्वारा ही तय की जाती थी। यदि विदेशो से घोडे मगवाये जाते तो उनमे से श्रेष्ठ घोडे महाराव के लिये रखे जाते थे। राजकीय कलाकृतियां दस्तावेज राजकीय मुद्रा और राजत्व के अ य प्रतीक चि ह पहले की भाति राजा के व्यक्तिगत सेवको के पास ही रखे जाते थे। एक बार राजकुमार किशोरसिंह और जालिमसिंह का पुत्र माधोसिंह एक साथ घोडो का प्रशिक्षण दे रहे थे। किसी बात को लेकर दोनो मे विवाद हो गया और माधोसिंह ने राजकुमार के साथ अशिष्ट व्यवहार कर डाला। इस पर जालिमसिंह ने अपने पुत्र माधोसिंह को तीन वष के लिये अपनी निजी जागीर ना ता निर्वासित करवा दिया। इस प्रकार के अ य बहुत से उदाहरण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि जालिमसिंह ने अपने राजा तथा उसके पुत्रो को श्रेष्ठता देने म कभी किसी प्रकार की भूल न की। इन सब बातो ने उसकी नीति को सफल बनाने म महत्वपूर्ण योग दिया था। एक दिन जालिमसिंह दुग म अपने पारिवारिक म दिर म बठा हुआ पूजा कर रहा था। कठोर जाडे के दिन थे और जिस भूमि पर वह बठा हुआ था उसके आसपास का स्थान पानी से भीगा हुआ था। इसलिये जालिमसिंह ने एक रजाई अपने कधो पर डाल रखी थी। उसी समय उम्मेदसिंह के बच्चे देवपूजा के लिये म दिर म आ पहुचे। उ ह पता नही था कि जालिमसिंह अ दर पूजा कर रहा है। उ ह देखकर तथा उ ह सर्दी से बचाने की दृष्टि से जालिमसिंह ने अपने कधे पर रखी रजाई को जमीन पर बिछा दिया और बच्चो को उस पर खडे होकर देव पूजा करने को कहा। पूजा समाप्त होने पर राजकुमार उठकर चल गये। जालिमसिंह के एक सेवक ने यह सोच कर कि उसके मालिक अब इस रजाई को प्रयोग न करेंगे, वह रजाई को उठाकर एक कोने म पटकने के लिये चला। जालिमसिंह ने उसके इरादे को भाप लिया और उसी क्षण नौकर के हाथ से रजाई लेकर अपने कधो पर डाल दिया और

वडी श्रद्धा के साथ कहा कि अब इस रजाई का मूल्य बढ गया है। मेरे राजा के पुत्रो की चरण धूलि से यह पवित्र हो गई है।' इस प्रकार क कृत्यो से ही जालिमसिंह अपनी श्रद्धा और राजभक्ति प्रदर्शित करने मे दक्ष था। इससे अधिक सत्ता अपहरण का अथवा पूर्ण निरकुश सत्ता का अन्य कोई उदाहरण देखने को नही मिलेगा और यह कहा जा सकता है कि अभिभावक और राजा, एक दूसरे के लिये ही पदा हुये थे।

यह अपेक्षा की जा सकती है कि जालिमसिंह जसे बुद्धिमान व्यक्ति ने अपने सेवको का चयन करने मे अवश्य ही विशेष सावधानी से काम लिया होगा। उसमे यह कला थी और निश्चित कामो के लिये उपयुक्त व्यक्तियो का ही चुनाव किया गया था परन्तु काम के मामले मे जालिमसिंह किसी के साथ दया अथवा औपचारिकता का व्यवहार नही करता था और उनसे नियमानुसार काम की अपेक्षा करता था। यद्यपि वह उदारतापूवक उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति कर देता था परन्तु उन्हे कभी भी स्वतन्त्र रूप से काय करने का अवसर नही दिया। वह उनके कामो पर सूक्ष्म दृष्टि रखता था और आवश्यकता पडने पर कठोरता से काम लेना भी जानता था। किसी काम काज के समय, धार्मिक अनुष्ठान अथवा उत्सव और विवाहोत्सवो पर जालिमसिंह उन सभी लोगो को उदारतापूवक पुरस्कार आदि दिया करता था पर तु किसी के अन्याय और अपराध करने पर वह बहुत कठोर व्यवहार करता था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि उसके अधिकाश गोपनीय कमचारी पठान अथवा मराठे पडित थे। पठानो का उपयोग सनिक कार्यों के लिये और मराठा पडितो का राजनीति की उलझन भरी प्रक्रिया मे किया गया। वह अपने राज्य के किसी व्यक्ति को शायद ही कोई महत्वपूर्ण पद देता था। अपवाद रूप म उसने अपने शासन के अन्तिम दिनो मे शक्तावत वश के विशनसिंह को फौजदार के पद पर अवश्य नियुक्त किया था। इस एक उदाहरण को छोडकर कोई दूसरा उदाहरण उसके राज्य मे इस प्रकार का नही मिलता। दलेलखाँ और महरावखा नाम के दो आदमी जालिमसिंह के अत्यधिक विश्वासी और निष्ठावान कमचारी थे। उनके साथ जालिमसिंह का मित्रता का व्यवहार भी था। कोटा का विशाल और विख्यात दुर्ग इसी दलेलखा का बनवाया हुआ है। झालरापाटन[3] का नगर भी इसी की देखरेख मे बसाया गया था। कोटा राज्य के तमाम दुर्गों की मरम्मत और सुधार सशोधन भी दलेलखा की देखरेख म कार्यान्वित किये गये थे। वह अपने इस मित्र के सम्बन्ध म प्राय कहा करता था कि दलेलखा के बाद मैं जीवित नही रह सकता।" महरावखा पदल सेना का सेनापति था। उसने अपनी इस सेना को अत्यन्त योग्य और शक्तिशाली बना दिया था।[4] कोटा की पदल सेना के सनिको को महीने भर के लिये बीस दिना का वेतन दिया जाता था और दो वर्ष का समय व्यतीत हो जाने पर शेष दस दिनो का (पूरे दो वर्षों की अवधि का) बकाया वेतन भी चुका दिया जाता था।

सन्दर्भ

1 टॉड ने टिप्पणी मे लिखा है कि इस अभागे बख्शी ने अपमान से अत्य त दु खी होकर विषपान करके आत्महत्या कर ली ऐसा अनुमान होता है।

2 टाड ने यहा जालिमसिंह को अधा और होल्कर को काना समझ कर लिखा है कि दोना मे एक आख वाला कहा है। यह गलत है। जालिमसिंह अधा नही था। हा, एक नेत्र खो बठा था।

3 जालिमसिंह झाला वश का राजपूत था। उसके वश के नाम पर झालरा पाटन बसाया गया था।

4 महरावखा शूरवीर और विश्वासी सेनानायक था। अग्रेजो का पक्ष लेकर वह अपनी सेना के साथ होल्कर से युद्ध करने गया था और आठ दिना म ही उसने होल्कर के अधिकार वाले हाडौती के तमाम नगरा एव गावो पर अधिकार कर लिया था। उसकी सेना ने सादी दुग की लडाई म भी अपने पराक्रम का अच्छा प्रदशन किया था।

अध्याय 74

ब्रिटिश सरकार के साथ जालिमसिंह के सम्बन्ध

अब हम जालिमसिंह के इतिहास के उस समय की तरफ आते है जबकि घटनाओ के प्रसगवश वह ब्रिटेन की नीति से जुड गया। सन् 1817 ई० म मारक्विस आफ हेस्टिंग्स ने पिंडारी लागो के साथ युद्ध की घोषणा कर दी थी और राजपूताना के राज्यो को भी इस काय मे सहयोग देने के लिये आमन्त्रित किया। उसने यह भी स्पष्ट किया कि इन लुटेरो के विरुद्ध जो राज्य सहयोग नही देगे अथवा तटस्थ रहगे, वे हमारे विरोधी समझे जायेगे। क्योकि इन लुटेरो ने सभी को अपनी लूटमार तथा अत्याचार का शिकार बनाया है, अत सभी को समान हितो की सुरक्षा के लिये उनके विरुद्ध सगठित होना आवश्यक हो गया है। राजपूत राज्यो को इन शक्तियो से मुक्त करने के बदले मे उन्हे हमारी सर्वोच्चता को मानने के साथ साथ अपने राज्यो की आमदनी का एक हिस्सा हमे देना होगा। जालिमसिंह ने हेस्टिंग्स की इस घोषणा मे निहित लाभ को तत्काल समझ लिया और उसने सहयोग करने का निश्चय कर लिया। तदनुसार उसके दूत ने सबसे पहले आकर कोटा को सधि के मन्त्र धो से जोड दिया और इसके बाद सभी राजपूत राजा भी अग्रेज सरकार के साथ मिल गये। इस समय सम्पूर्ण भारत सघष का केन्द्र बना हुआ था और दो लाख सनिक लुटरो को हमेशा के लिये नष्ट कर देने के लिये कटिबद्ध थे। इस सम्बन्ध मे सबसे पहले हाडौती की सीमा पर सघप होने की सभावना दिखलाई दी इसलिये जालिमसिंह के पास अग्रेज प्रतिनिधि की उपस्थिति को अनिवाय माना गया। उसको यह निर्देश दिया गया था कि कोटा के आसपास अभियान म लिप्त मित्र सेनाओ को कोटा के सम्पूर्ण साधना से सहयोग प्रदान करने की व्यवस्था की जाय और लुटेरी शक्तियो को राज्य की सीमा स बाहर खदेडने का प्रयास किया जाय। कोटा क साधन इतने सक्षम थे कि ब्रिटिश प्रतिनिधि के जालिमसिंह क पास पहुचने के पाच दिन के भीतर ही कोटा के सभी महत्वपूर्ण मार्गों की नाकेबदी पूरी कर ली गई और पन्द्रह सौ शूरवीर हाडाओ की एक सना तो परवाने सहित अग्रेज सेनापति जान माल्कम को सहयोग देने के लिये चल पडी। माल्कम अपनी सेना के साथ नवदा को उत्तर की तरफ बढा चला आ रहा था। इन दिनो म भारत का प्रत्येक जिला सघषमय हो रहा था और गगा क किनारे से लेकर समुद्रपय त

नजारे ही नजार देखन को मिल रहे थे। ऐसी स्थिति मे जालिमसिंह का शिविर सभी अभियानो का केद्र बिदु बना हुआ था और सभी प्रकार की सूचनायें यहा उपलब्ध हो जाती थी। जालिमसिंह ने इस अवसर पर अंग्रेजो मे विश्वास रखत हुय उनके साथ पूरा सहयोग किया। जब मैंने उससे यह कहा कि यह युद्ध लुटेरी प्रवृत्तिया के विरुद्ध युद्ध है, तो उस वृद्ध राजनीतिज्ञ ने मुस्करा कर उत्तर दिया 'महाराज आप जो कहत हैं म उस पर म देह नही करता पर तु यह बूढा जो कह रहा ह, उसे भी याद रखें। वह दिन दूर नही है जब सम्पूर्ण भारत पर एक ही शक्ति का मा यता मिलगी।" यह बात 1817-18 ई० की है और इसके बाद उसे जो दस वष का जीवन मिला उसम उसन जो कुछ देखा उसस उसे सतोष हुआ होगा कि उसकी भविष्यवाणी कितनी सही होने जा रही है। प्लासी क युद्ध मे विजयी होकर अंग्रेजो ने इस देश म एकाधिकार प्राप्त किया। अंग्रेजो ने अपनी इस सफलता के लिय राजपूत राजाओ की भाति नीति, साम दाम, दण्ड और भेद को अपनाया और इस प्रकार धीर धीरे देश मे अपनी विरोधी शक्तियो को नष्ट किया। इसलिये जब हमने अपनी नीति क अनुसार राजपूत राज्यो से सहयोग मागा तो जालिमसिंह न केवल हमारी नीति म विश्वास रखत हुये ही सहयोग नही दिया था अपितु उसने कोटा राज्य क हितो और खास कर अपने परिवार मे अपने उस स्थान को बनाये रखन के लिय जिसका वह पिछले कई वर्षों से उपभोग करता आ रहा था, दिया था। इसीलिय उसने हमारी मैत्री के लिये अपनी पूरी शक्ति के साथ हम सहयोग दिया और इससे हमे अपन ध्येय म सफलता मिली।

इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जालिमसिंह की सेवा म कुछ मराठे ऊचे पदो पर काम करते थे और जालिमसिंह उ ह अपना विश्वसनीय मानता था। उन मराठा ने सभी प्रकार के तर्कों की सहायता से अंग्रेजा क साथ सधि का विरोध किया। लेकिन जालिमसिंह उनकी दलीला से जरा भी प्रभावित नही हुआ। वह राजनीति को भलीभाति समझता था। वह यह जानता था कि राज्य क हितो की रक्षा के लिये अंग्रेजा के साथ सधि करना आवश्यक है। हालांकि इसम उस अपनी स्वतन्त्रता को त्याग कर अंग्रेज सरकार की अधीनता स्वीकार करनी पड रही थी, फिर भी वह इस अधीनता को असुरक्षित स्वतन्त्रता स कही अच्छा समझ रहा था क्योकि सुरक्षा क अभाव म राज्य के सवनाश की सभावना अधिक थी। लगातार युद्धो और उपद्रवो स अधीनस्थ शाति राज्य की उन्नति क लिय अधिक उपयोगी थी। इसके अलावा अंग्रेज प्रतिनिधि ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि युद्ध मे विजय प्राप्त करन क बाद होल्कर से कोटा राज्य न जिन इलाका का कृषि के लिय किराये पर ल रखा है व कोटा राज्य को सौंप दिय जायेंगे क्योंकि ब्रिटिश भारत का उन पर शासन करन का कोई विचार न था। अंग्रेज प्रतिनिधि का यह भी कहना था कि राजपूत राज्यो न हम सहयोग का जो आश्वासन दिया है उस हम भुलायेंगे नही और उनकी सेवाओ का याद रखत हुये उनक साथ अधिक उदारतापूर्वक

व्यवहार किया जायगा। इन सब बातो पर विचार करने के बाद जालिमसिंह ने मराठा कर्मचारियो के तर्कों को रद्द कर दिया।

जालिमसिंह का व्यवहार और सद्भाव श्रेष्ठ था। हमने उस पर कभी अविश्वास नही किया। उसमे राजभक्ति और उदारता की भी कमी नही थी। उसके जीवन मे इससे सम्बन्धित अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। सधि के दौरान जब उसको कोटा राज्य की सनद् देने का प्रस्ताव किया गया तो उसने सम्मानपूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया और कहा कि सनद् प्राप्त करने का अधिकारी उसका राजा उम्मेदसिंह है। मैंने जालिमसिंह के जीवन मे ऐसी अनेक बातें लिखी है जिसके लिये मैं उसकी प्रशसा किये बिना नही रह सकता। 1819 ई० के नवम्बर मे उम्मेदसिंह की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर नये राजा को सिंहासन पर बैठाने का प्रश्न उठा और उस अवसर पर जालिमसिंह ने जो कुछ किया वह हमारे साथ की गई सधि के विपरीत था। 26 दिसम्बर 1817 को दिल्ली मे जो सधि हुई थी उसे महाराव उम्मेदसिंह की तरफ से उसके प्रतिनिधि अधिकारी ने स्वीकार किया था। सधि के कागजात जनवरी के पहले दोनो पक्षो के अधिकारियो को दे दिये गये थे और दोनो तरफ से सधि की पुष्टि भी हो गई थी। इस सधि मे जालिमसिंह के अधिकार का कोई निर्णय नही हुआ था और उसके नाम के साथ मन्त्री शब्द का प्रयोग किया गया था। अंग्रेज प्रतिनिधियो को उस सधि मे एक त्रुटि मालूम हुई। इसका कारण असावधानी न था बल्कि स्वय जालिमसिंह था जो सधि मे अपने अधिकार के बारे मे किसी प्रकार की शर्त को आवश्यक नही समझता था।

बालक उम्मेदसिंह के अभिषेक के समय से लेकर उसने पचास वर्ष तक कोटा राज्य पर शासन किया था और वह कोटा के शासक के रूप मे ही जाना जाने लगा था। सधि के समय उसने अपने लिये इस प्रकार की शर्त की इच्छा की होती तो उसके स्वाभिमान और मर्यादा को ठेस पहुचती क्योंकि उस स्थिति मे उसने अंग्रेजी प्रभुत्व के अन्तर्गत मन्त्री पद प्राप्त किया होता। जो भी कारण रहा हो यदि उस समय जालिमसिंह के अधिकार को अन्य शर्तों के समान महत्व दिया गया होता तो उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद उसके अधिकारो को लेकर विवाद उत्पन्न नही होता।

मार्च 1818 ई० मे दोनो पक्षो ने सधि की दो नयी शर्तों को स्वीकार कर लिया। इन शर्तों के अन्तर्गत यह स्वीकार किया गया कि कोटा राज्य के शासन का भार सदा के लिये जालिमसिंह के लडको और उसके उत्तराधिकारियो के अधिकार मे रहेगा। इन स्वीकृत शर्तों को जालिमसिंह के पास भेज दिया गया था।

महाराव उम्मेदसिंह अपने पीछे तीन लडके छोड गया—किशोरसिंह विशनसिंह और पृथ्वीसिंह। उत्तराधिकारी किशोरसिंह की आयु उस समय चालीस वर्ष की थी। वह विनम्र और शीलवान था। धार्मिक बातो मे उसकी रुचि -नो-

राज्य के मामलो से दूर ही रहता था। परन्तु उसमे हाडाओ का जातीय गौरव था और अपने वश की मर्यादा को हमशा श्रेष्ठ रखने का इच्छुक था। उसका जीवन अपने पिता के रहन सहन से काफी प्रभावित रहा और एक तरह से वह अपने पिता का सच्चा अनुयायी था और जालिमसिंह को नाना साहब कहा करता था। बचपन से ही वह जालिमसिंह म विश्वास करता आया था। यद्यपि अब वह काफी आयु का हो चुका था और सभी बाता का समभन भी लग गया था, फिर भी वह शासन भार नानाजी क हाथ म ही रहन म सतोष का अनुभव करता था। विशनसिंह किशोरसिंह से केवल तीन वष ही छोटा था और उसका स्वभाव अपन बडे भाइ स मिलता जुलता था। जालिमसिंह उसका विशेष प्यार किया करता था। तीसर पुत्र पृथ्वीसिंह की आयु इस समय तीस वष की थी। वह शुरू स ही राजपूता की वीरता और पराक्रम का पुजारी था और स्वय भी अस्त्र शस्त्र चलान म निपुण था। वयस्क होने के बाद वह नानाजी से ईर्ष्या करने लगा। उसे अपने पिता का निणय—जालिमसिंह के हाथ मे शासनभार सौपना कभी पस द न आया और इस प्रकार की स्थिति के प्रति उसका असतोष बढन लगा था। लेकिन विशनसिंह और जालिमसिंह के उत्तराधिकारी पुत्र के मध्य गहर स्नेह और सम्ब धा को देखकर लोग उस पर सदह करन लगे थे। तीना भाइया को पच्चीस-पच्चीस हजार रुपय वार्षिक आय की जागीरे मिली हुई थी।

जालिमसिंह क दो लडके थ। बडा लडका माधोसिंह जालिमसिंह की विवाहिता पत्नी स हुआ था और छोटा लडका गोवधनदास अविवाहिता स्त्री स उत्पन्न हुआ था। उसकी मा के साथ अधिक लगाव हाने के कारण जालिमसिंह उसको अधिक प्यार करता था और उसी का अपना उत्तराधिकारी बनाने का विचार रखता था। माधोसिंह उस समय छियालीस वष का था। वह देखन म आलसी और निकम्मा था और उसका व्यवहार अहकारपूण था। परन्तु महाराव उम्मदसिंह उसको अपन पुत्रो से भी अधिक प्यार करता था। अत जब जालिमसिंह का अग्रेजो की सहायता के लिये छावनी म जाकर रहना पडा तो माधोसिंह को फौजदार के पतृक पद पर नियुक्त कर दिया गया। इस पद के कारण सेना को वतन देन और इसी प्रकार के दूसरे कामो के अधिकार उसके पास आ गये। उसन इस स्थिति का लाभ उठाकर अपन लिय काफी धन एकत्र करके एक विशाल बाग लगवाया, उत्तम घाडे खरीदे और नौका विहार के लिय उत्तम नावें खरीदी। इसस राजा के लडका को बहुत बुरा लगने लगा क्योकि उनके पास भी इतनी सुख सुविधाए नही थी। जालिम सिंह को जब अपन पुत्र की कारगुजारिया का पता चला तो उसन पुत्र को समभान का प्रयास किया परन्तु उसन अपन पिता की बातो पर जरा भी ध्यान नही दिया।

जालिमसिंह क दूसर लडके गोवधनदास की अवस्था उस समय सत्ताईस वष की थी। वह बुद्धिमान, साहसी और योग्य था। अपन राजा क परिवार के प्रति उसका

व्यवहार अपने भाई के सवथा विपरीत था। उसका उत्तराधिकारी राजकुमार और पृथ्वीसिंह के साथ घनिष्ठ गापनीय मत्रीपूर्ण सम्ब ध थ। यही कारण है कि जालिमसिंह अपने वडे पुत्र की अपक्षा छोट पुत्र पर अधिक स्नेह रखता था और उसे राज्य क प्रधान पद पर नियुक्त करके राज्य के कृषि विभाग का अधिकारी बनवा दिया था। इसम गावधनदास के अधिकार म राज्य की अपरिमित सम्पत्ति रहने लगी। अत दोना भाई एक दूसर को ईर्ष्या से देखन लग और दोनो मे झगडे भी होन लग। इसका वहुत कुछ उत्तरदायित्व जालिमसिंह का भी था कि उसन उन दोनो को अच्छी शिक्षा नही दिलवाई जिसस व अहकारी वनते चल गय। इससे जालिमसिंह स्वय भी वहुत दु खी होकर अपने आपको कोसने लगता था।

नवम्बर, 1819 ई म कोटा की इस स्थिति मे महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के समाचार को वहुत दिनो तक छिपाकर रखा गया जिसके परिणामस्वरूप राज्य को भयानक स्थिति के दौर से होकर गुजरना पडा। जब उम्मेदसिंह की मृत्यु हुई थी, उस समय जालिमसिंह गागरोन के समीप की छावनी म था। सूचना मिलत ही वह वहा स महाराव का अतिम सस्कार करवान तथा किशोरसिंह के अभिषेक की व्यवस्था करन के लिये राजधानी की तरफ चल पडा।

मारवाड से मवाड जात हुय पोलिटिकल एजेण्ट की हैसियत से मैंने उम्मेदसिंह की मृत्यु का समाचार सुना और उसी अवसर पर अपनी सरकार को आवश्यक निदेशो के वारे म लिखकर पूछा। कुछ दिना तक उदयपुर म रुकने के बाद मैं यह जानन क लिये कि महाराव की मृत्यु के वाद वहा क राजसिंहासन पर वठने क लिये क्या होता है कोटा गया। वहा पहुचन पर मन वृद्ध जालिमसिंह को नगर से एक मील दूर छावनी म पाया जबकि माधोसिंह राजधानी क महल म निवास कर रहा था। राज्य का उत्तराधिकारी किशोरसिंह इस समय अपन भाइयो के साथ उन दिनो म क्या सोचता था—यह कहना कठिन है। कोटा पहुचने क बाद मुझे मालूम हुआ कि गोवधन दास और पृथ्वीसिंह न मिलकर भावी महाराव को अपन विचारो के अनुकूल बना लिया है और उन्होन जो योजना तयार की उससे विशनसिंह को दूर ही रखा है। जालिमसिंह का इन सब बाता की जानकारी नही था। यद्यपि महाराव को गुजर अधिक दिन नही हुए थ फिर भी जालिमसिंह के पुत्रो क मध्य शहर की दीवारो के भीतर ही युद्ध की आशका उत्पन्न होन लगी थी और महाराव के पुत्रो न भी अब तक छीन गये अपन अधिकारा का पुन प्राप्त करन का निश्चय कर लिया था और यह विश्वास करना कठिन लगता है कि जालिमसिंह के जागरुक काना को इसकी खबर न हो।

अपन राजा और मित्र की मृत्यु न जालिमसिंह की व्यथा को और अधिक वढा दिया था और वह गम्भीर रूप स बीमार पड गया। उसक विरोधिया का इसस प्रसन्नता हुई कि वह शीघ्र ही स्वग सिधार जायगा और व आमानो के मा ध्यय को प्राप्त कर लें। परन्तु कुछ दिना वाद ही जालिमसिंह रोगमु

भावी राजा और जालिमसिंह के पुत्र की योजना चौपट हो गई परन्तु वृद्ध जालिमसिंह को उस समय भी उसकी जानकारी न हो पाई।

तब संधि की दो पूरक शर्तें जिनके अन्तर्गत माधोसिंह को अभिभावक पद का उत्तराधिकार मिला हुआ था दोनों पक्षों के मध्य सुलह कराने के हमारे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा सिद्ध हुई। एक पक्ष इतने श्रम से अर्जित सत्ता को त्यागने के लिये तैयार न था और दूसरा पक्ष अपने पैतृक अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिये तत्पर था। यदि लुटेरी पद्धति के दिनों में यह सब घटित हुआ होता तो किसी को कुछ भी कहने की आवश्यकता न थी। राज्य में जालिमसिंह के विरुद्ध जो षडयंत्र रचा गया उसका साफ साफ अभिप्राय यह था कि संधि के द्वारा नवीन महाराव किशोरसिंह को माधोसिंह के हाथ की कठपुतली उसी प्रकार बनाने की चेष्टा की गयी है जिस प्रकार जालिमसिंह ने उसके पिता उम्मेदसिंह को बना रखा था। इसलिये उसका विरोध होना चाहिये। विरोधी लोग अभिभावक और उसके उत्तराधिकारियों के इस अधिकार को हमेशा के लिये समाप्त कर देना चाहते थे।

इस सम्पूर्ण स्थिति की थोड़ी सी व्याख्या करने के बाद हम न्यायपूर्ण धारणा बना लेने में समर्थ हो सकेंगे। 1817 ई. की नीति ने राजस्थान की राजनीतिक नैतिकता के पहलू को काफी बदल दिया था। इससे पहले सत्ता अपहरण अथवा जघन्य अपराध के विरुद्ध भी कोई विरोधी स्वर नहीं उठाया जाता था, क्योंकि सभी वर्गों को इस बात का भय बना रहता था कि ऐसा करने से उनकी मौजूदा स्थिति संकट में फंस सकती है। परन्तु अंग्रेज सरकार के साथ संधियों का होना उनके लिये एक नये युग की शुरुआत थी। क्या संधि द्वारा राजा की सत्ता को दी गारन्टी का अर्थ जनता के कल्याण को देखना नहीं था? सामन्तों द्वारा अपनी जब्त जागीरों के अधिकार को वापस दिये जाने की अपील करना नहीं था? किसानों द्वारा अपनी पैतृक भूमि जो खालसा में सम्मिलित कर ली गई थी को वापस दिलाये जाने की प्रार्थना करना नहीं था? इसी प्रकार की अन्य समस्याओं को लेकर वे हमारी सरकार से मानवीय न्याय की अपेक्षा करते थे। दुर्भाग्यवश परिस्थितियों ने ऐसी करवट ली कि हमारी सेना को अपहरणकारियों तथा धोखाधड़ी करने वाली शक्तियों के साथ मिलकर न्याय मांगने वालों के विरुद्ध शस्त्र उठाने के लिये विवश हो जाना पड़ा। पहली बार हम लोगों को एक ऐसी कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा। शायद इस अवसर पर किसी भी प्रकार की सतर्कता अथवा दूरदर्शिता संधि के परिणामों को रोकने में सफल हो पाती।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कोटा के साथ की गई संधि में दो पूरक शर्तों को जोड़ना और वह भी इस ढंग से कि जिन दोनों पक्षों को एक साथ परस्पर विरोधी आश्वासन दिया गया था उचित नहीं था और उसका पालन करना तो और भी

कठिन था । हमारी इस दुरगी नीति ने हमारे प्रति रजवाड की जनता का जो राज-नीतिक विश्वास कायम हो चुका था, उसको नीव को ही हिला करके रख दिया । इन पूरक शर्ता ने एक ही म्यान म दो तलवारें रखने का प्रयास किया था । फिर भी ऐसा किस प्रकार हुआ, उसको समझान का प्रयास करेंगे ।

यदि ये पूरक धाराए एक अच्छी नीति द्वारा निर्देशित न थी, यदि आवश्यकता के आधार पर उनका बचाव नही किया जा सकता, यदि दिसम्बर म सम्पन्न सधि की त्रुटि को माच तक दूर नही किया जा सका, तो भी इस आधार पर उनको यायोचित ठहराया जा सकता है कि वे पूरक धाराए एक व्यक्ति की सेवाओ को पुरस्कत करन की भावना से प्रेरित थी । भारत मे अग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से लकर इससे पूव हमारी सत्ता को इतन बडे सकट म कभी नही उलझना पडा था । रजवाडे के इस सम्मानित राजनीतिज्ञ के साथ सधि करन का अथ था—अय सभी राजाओ द्वारा स्वच्छा से हमारे सरक्षण का प्राप्त करना । यह लाड हेस्टिग्स की नीति का मुख्य ध्यय था । इस अवसर पर कोटा राज्य के साधनो की भी अत्यधिक आवश्यकता थी । जालिमसिह का सहयोग भी सर्वाधिक महत्वपूण था । यह भी ध्यान रखने की बात है कि जालिमसिह न अपन भविष्य के निणय के बारे म काफी विलम्ब किया । फिर भी, उसकी सेवाओ को ध्यान मे रखते हुये पूरक धाराओ को जोडना एक आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्हे मूल सधि के साथ जोड दिया गया । विजय के उन्माद म हम इन धाराओ के बुर परिणाम की तरफ दृष्टिपात न कर पाये । परन्तु यदि ठड दिमाग से सोचा जाय तो 1817 ई म हम लोगो को वास्तविक सत्ताधारियो से बातचीत करनी पडी थी न कि वधानिक सत्ताधारियो से । यदि उस समय जालिमसिह अपने लिये कुछ भी माग करता तो हम उसकी माग स्वीकार करनी पडती । परन्तु नतिकतावश वह अपनी सत्ता का बनाये रखन के लिये उस समय चुप रहा । युद्ध समाप्त हो गया और हम विजयी रहे और बाद मे हमने उसकी सत्ता को वशानुगत बनान के लिये मूल सधि म दो पूरक धारायें जोड दीं । उनकी आवश्यकता और महत्ता से किसी प्रकार भी इन्कार नही किया जा सकता ।

नये महाराव क सलाहकारो न उस तुरन्त सधि की धाराओ का अथ समझाना शुरू कर दिया । उसको इस बात के लिए भी उकसाया जाने लगा कि वह सधि को उसक शाब्दिक अर्थों मे कार्यान्वित करने के लिए दबाव डाले । जालिमसिह न स्वर्गीय महाराव के साथ प्रारम्भ स लकर अन्त तक जो राजनीतिक सद्भाव रखा था उसको नवीन महाराव के सामन दमनकारी कृत्य के रूप म प्रस्तुत किया गया । उन्होने मूल सधि की दसवी धारा को अपनी योजना का लक्ष्य बनाया जिसमे लिखा था कि ' महाराव उसक वशज और उत्तराधिकारी अपन राज्य क पूण स्वामी बन रहग ।" ऐसी स्थिति म हम माधोसिह और उसके उत्तराधिकारियो क हाथ म सत्त

सौंपकर उसे वास्तविक राजा बनने तथा महाराव और कोटा की गद्दी को निस्तेज करने की स्वीकृति कैसे दे सकते है ? इसके अलावा एक सत्य यह भी था कि मूल सधि पर सभी पक्षों के हस्ताक्षर थे जबकि पूरक धाराओं के बारे में महाराव को जानकारी दी जाती उससे पहले ही उसका स्वर्गवास हो चुका था। अत उन पर महाराव के हस्ताक्षर भी न हो सके।

नवीन महाराव और अभिभावक के मध्य सभी प्रकार के मैत्रीपूर्ण सम्पर्क टूट गये परिणामस्वरूप माधोसिंह के साथ भी सम्पर्क समाप्त हो गये और महाराव को उसके वैधानिक राजनीतिक अधिकार वापस दिलवाने के लिए हर सम्भव प्रयास किये जाने लगे। दोनो पक्षों में सधि की व्याख्या को लेकर तनाव बढता ही गया। हमारी सरकार का इस समय क्या दायित्व था और उसको पूरा करने के लिए हमने कौन कौन से कदम उठाये—उन सबका विवरण देना निरर्थक है। महाराव अपने निर्णय पर दृढ था और अपने सम्मान और न्याय के लिए ठोस दलीलें प्रस्तुत कर रहा था। जब मैंने उसे समझाते हुये कहा कि सधि के समय हमने जालिमसिंह को ही वास्तविक राजा समझा था। अत उसके विरुद्ध हम कठपुतली राजा के किसी भी दावे को स्वीकार करने के पक्ष में पक्ष नही है और कठपुतली महाराव की स्थिति मराठों के नेता सतारा के राजा अथवा मुगल साम्राज्य के नाममात्र के बादशाह के समान ही है। इस पर महाराव ने मेरी बातो को सुनना पसन्द नहीं किया। जबकि उसके प्रमुख सलाहकार पृथ्वीसिंह और गोवर्धनदास से यह अपेक्षा करना निरर्थक था कि वे अपने भाग्य का द्वार त्याग पत्र देकर स्वीकार कर ले। अत उन दोनो को यह चेतावनी दे दी गई कि उन्हे महाराव की परिषद् से हटाना अनिवार्य हो जायेगा।

परन्तु दुर्ग पर आक्रमण किये बिना उन्हे हटाना सम्भव न था और ऐसा करने पर नवीन महाराव और उसके परिवार के सदस्यो के मारे जाने की सम्भावना थी। अत दुर्ग का घेरा डालकर उनको भुखमरी का शिकार बनाकर आत्मसमर्पण के लिए विवश करने का निश्चय किया गया। जब स्थिति सकटपूर्ण हो गई तो महाराव ने अपना भाग्य राज्य की जनता को सौंपने का निश्चय किया और पाच सौ घुडसवारो जो अधिकतर हाडा थे के साथ अपना झण्डा फहराते हुये और नगाडा बजाते हुये दुर्ग से बाहर निकला और घेराव दी को तोडकर निकल गया। सौभाग्य वश दुर्ग का घेरा डालने वाली सेना को प्रतिरोध करने का आदेश नही दिया गया था अत उसका कारवा दक्षिण की तरफ सकुशल आगे चला गया। ज्यो ही मुझे इसकी सूचना मिली मैं तत्काल जालिमसिंह के शिविर मे गया जो व्याकुलता से ग्रस्त था। मैंने जालिमसिंह से पूछा कि उसने इस स्थिति को सुधारने अथवा उससे निपटने के लिए क्या उपाय सोच रखा है। इस सकट के अवसर पर उसका व्यवहार अत्यधिक व्याकुल करने वाला था। उसने राजभक्ति की घोषणा करते हुए कहा कि वह अपने राजा के दामन के साथ चिपका हुआ रहेगा और उसकी चाकरी करेगा। अपने

राजा के साथ विश्वासघात कर अपने चेहरे पर कालिख पोतने की अपेक्षा वह नाथ-द्वारा जाकर साधु का जीवन बिताना पसन्द करेगा। इस प्रकार के उद्गारो से उसने हमारी गाठ का काट दिया। इस नाजुक अवसर पर जब किसी ठोस निर्णय पर पहुचने की आवश्यकता थी वह अपने सनिको के साथ महाराव के पीछे चल पडा। राजधानी से छ मील दूर रंगवाडी नामक स्थान पर उसे महाराव का काफिला दिखलाई पड गया। उसके सनिक बाग की दीवारो के पास जमा थे और महाराव, उसके सामन्त और सलाहकार महल मे थे। वे लोग अपनी भावी रणनीति पर विचार कर ही रहे थे कि जालिमसिंह वहा पर उपस्थित हो गया। इस अवसर पर भी उसने महाराव को पूरा सम्मान दिया तथा उसके सलाहकारो और सामन्तो को कडी चेतावनी दी कि वे सधि की शर्तों का उल्लघन कर तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जाकर न केवल अपने राजा के हितो को ही क्षति पहुचा रहे है अपितु अपने सवनाश को भी योता दे रहे है। मने भी गोवधनदास को समझाया कि वह अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने पिता तथा राजा–दोनो को क्षति पहुचा रहा है और इसके लिए उसे असाधारण दण्ड का भागी होना पडेगा। इसके बाद मैंने महाराव से कहा कि अभी सुलह के द्वार खुले हुये है। उनके बद होने के पहले आपको निर्णय कर लेना चाहिए। अभिभावक के पद और उसके अधिकारो के अलावा उसकी हर माग को पूरा करने का प्रयास किया जायेगा। मैं आपका शुभ चिन्तक हू और आपका सभी प्रकार कल्याण चाहता हू। मैं आशा करता हू कि वर्तमान सकटपूर्ण परिस्थि-तियो मे आप ऐसा कोई काय नही करेंगे जिससे इस राज्य को और हाडा वश के सम्मान को किसी प्रकार की क्षति पहुचे। इस अवसर पर महाराव दुविधा मे पडा हुआ था। तब मैंने राजा का घोडा लाने का आदेश दिया और महाराव का हाथ थामकर उसे घोडे तक ले गया। घोडे पर सवार होते हुये महाराव ने कहा, 'मैं आख मूदकर आपकी मित्रता पर विश्वास करता हू।' पृथ्वीसिंह ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये। लेकिन वहा उपस्थित सामन्तो ने उस समय कुछ नही कहा। वे चुपचाप बैठे रहे। मैं राजा को अपने साथ लेकर दुर्ग के महल मे आ गया। मैंने एक बार पुन महाराव को समझाया कि आपको पृथ्वीसिंह और गोवधनदास से दूर रहना चाहिये और गोवधनदास को तो हाडौती राज्य से बिल्कुल हटा देने की आवश्यकता है। मई मास मे इस प्रकार की बातें हुई थी और जून मे गोवधनदास को राज्य के विद्रोहात्मक अपराध मे कोटा से दिल्ली भेज दिया गया। इसके बाद महाराव और अभिभावक मे सद्भाव पैदा करने के उद्देश्य से एक सावजनिक सभा की गयी। परिणामस्वरूप दोनो मे पुन पहले जैसा सद्भाव उत्पन्न हो गया जिससे सभी को प्रसन्नता हुई।

17 अगस्त 1820 ई को एक बडे समारोह मे किशोरसिंह को कोटा के सिंहासन पर बैठाया गया। अग्रेज सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से सबसे पहले मैंने किशोरसिंह के मस्तक पर राजतिलक किया और उन्हे आभूषण पहनाये तथा

कमर म तलवार बाधी । महाराव न मुझे एक सौ सोन की मोहरे उपहार म दी । मैंने भी गवनर जनरल की तरफ से कीमती खिलत दी । इसके बदले मे जालिमसिंह न धन्यवाद देते हुये मुझे पच्चीस सोन की मोहरें भेंट म दी । इसके वाद माधोसिंह ने फौजदार के परम्परागत कार्यो का सम्पादित किया । उसन महाराव के मस्तक पर तिलक किया कमर म तलवार बाधी ग्रौर बहुमूल्य ग्राभूषण भेंट म दिये । महाराव ने प्रचलित प्रथा के ग्रनुसार उन भेंटो को वापस लौटाते हुये माधोसिंह को खिलत तथा राज्य के फौजदार की सनद् जो सारे विवाद की जड थी, प्रदान की । इस ग्रभिषेक के वाद महाराव ग्रौर माधोसिंह–दोनो मे सद्भाव बढाने की दृष्टि से म पूरे एक महीन तक कोटा म रहा । मुझे ग्रपने काय म पूरी सफलता मिली । सबस बडी बात यह हुई कि सभी ने राजराणा जालिमसिंह के प्रति ग्रपना श्रद्धाभाव बनाये रखा । इस प्रकार कोटा राज्य को घातक ग्रापसी सघष से मुक्ति मिली । राजराणा ने बहुत पहले 'दण्ड' नामक कर लगा रखा था । उसने इस कर को उठाकर वृद्धावस्था म बडी ख्याति प्राप्त की ।

अध्याय 75

सत्ता के लिये आपसी सघर्ष

पिछले अध्याय म जिस विस्फोटक स्थिति का उल्लख किया गया है उसका मूल कारण जालिमसिंह की अविवाहिता स्त्री स उत्पन्न पुत्र गोवधनदास था। वह राजराणा क प्यार की सतति था और वह उसे 'गोवधनजी" कहा करता था। जसाकि बताया जा चुका है उसे हाडौती से दिल्ली भेज दिया गया था। वहा उसे अपन निवास के लिय दिल्ली अथवा इलाहाबाद मे से एक स्थान को चुनने के लिय कहा गया और दुर्भाग्यवश उसने पहले स्थान को चुना। उसके गुजारे के लिये पर्याप्त पेंशन की व्यवस्था कर दी गई। वह अपने परिवार के साथ दिल्ली म रहने लगा और उसकी निगरानी के लिय ब्रिटिश सरकार न कुछ सवारो को उसके निवास पर नियुक्त कर दिया।

1821 ई के अ तिम दिनो मे उसे मालवा के अ तगत झाबुआ के सरदार की एक अनौरस पुत्री के साथ विवाह करन क लिय मालवा जाने की अनुमति प्रदान की गई। उसने कोटा शहर म अपना कदम रखा ही था कि कोटा नगर मे अशा ति क बादल उमड पडे और फिर कोटा स बू दी तक विद्रोहात्मक उत्त जना फलने लगी। सैफ अली जा राज्य की पलटन का सनाधिकारी था और जिसने पिछल तीस वर्षो की सवा के समय म विश्वास और वीरता के लिय ख्याति प्राप्त की थी, के बारे म यह अफवाह उठी कि उसने अपने कठपुतले महाराव का पक्ष समथन करन का सकल्प लिया है। जालिमसिंह न इस पर विश्वास न करते हुय भी बुद्धिमानी स काम लत हुय सफ अली की पलटन और दुग क बीच म राज्य की एक दूसरी सेना नियुक्त कर दी और इससे अचानक तनाव उठ खडा हुआ। इ ही दिना म महाराव क आदेशानुसार सफ अली जल के रास्त से अपनी पलटन सहित दुग म आ गया। जालिमसिंह का जब इसकी सूचना मिली तो उसन अपनी सना के साथ सफ अली की बाकी बची सेना पर आक्रमण कर दिया और दो ऊचे स्थानो पर तोपें लगवा दी जिनम राजधानी स लकर चम्बल नदी के दोना किनारा पर बस नगरा और गावा पर गोला की वर्षा की जान लगी। इस गोलीबारी के मध्य म (जिसकी आशा नही थी) महाराव किशोरसिंह अपन भाई पृथ्वीसिंह और कुछ सनिको के साथ दुग स निकला, चम्बल

घाट पर गया और नौकाओ मे बठकर नदी को पार किया तथा बूदी की तरफ चला गया। उधर विद्रोही सनिको ने आत्मसमपरण कर दिया। इस प्रकार अभिभावक ने अपनी सत्ता के विरुद्ध उठने वाले विद्राह को ज म लेते ही कुचल दिया और हाडाओ का सिंहासन सूना हो गया। बिशनसिंह अपने दोनो भाइयो से पृथक हो गया था और उसने जालिमसिंह के साथ अपना सम्पक स्थापित करके सम्बन्ध सुधार लिय थे।

इस समय कोटा राज्य मे जा अशाति उत्पन्न हो गई थी उसको दूर करने और विद्रोही उत्तेजना को समाप्त करन का केवल यही उपाय वाकी रह गया था कि सधि के अनुसार काम किया जाय। इसलिये सवप्रथम बूदी के राजा के पास पत्र भेजा गया कि काटा के भगोडे महाराव और पृथ्वीसिंह का अतिथि के रूप म स्वागत सत्कार करन पर कोई प्रतिब ध नही है। पर तु यदि वहा रहते हुये महाराव ने जालिमसिंह के विरुद्ध सैनिक तैयारी की तो उत्तरदायित्व आपके ऊपर होगा। इसी समय नीमच स्थित अग्रेजी सेना के सेनापति को भी सूचित किया गया कि वह बूदी से भाबुआ के मध्यवर्ती भाग मे एक सेना तनात कर दे और गोवधनदास को बूदी आकर महाराव से मिलने न दे और हो सके तो उसे जि दा अथवा मुर्दा पकड लिया जाय। जब गोवधनदास को इसकी जानकारी मिली तो वह पहाडी गुप्त मार्गो से अग्रेज सेना की सतक दृष्टि से भाग निकला। पर तु बूदी के राजा ने उसे अपने राज्य मे आश्रय देना स्वीकार नही किया। वह वहा से छिपकर मारवाड की तरफ चला गया और जब वहा भी आश्रय न मिला तो वह लौटकर दिल्ली चला आया। इस बार उसकी अधिक सावधानी के साथ निगरानी की जान लगी।

उधर कुछ दिनो वाद महाराव किशोरसिंह ने भी बूदी छोड दिया और तीथ यात्रा के लिये वृ दावन की तरफ चला गया। उसन वृजनाथजी के म दिर म रहते हुये धार्मिक जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। क्योकि जब वह बूदी म था तो उसके समथन मे किसी प्रकार का जनमत देखने मे नही आया हालाकि कोटा से बूदी अधिक दूरी पर नही था। चू कि वह अपनी जाति के मुखिया के निवास स्थान पर था, अत लोगो ने यही समझा कि थोडे दिना बाद समझौता हो जायगा। लकिन जब वह बूदी से उत्तर की तरफ चला गया तो लोगो ने विश्वास किया कि महाराव को निश्चित रूप से कही अन्य जगह से सहायता मिलेगी। इसलिये कोटा स इन दिना म महाराव को सहानुभूति के अनेक पत्र मिलत रहे। महाराव बूदी से चलकर जिस राज्य म पहुचा, वहा के राजा ने अतिथि के रूप म उसका आदर सत्कार किया। पर तु जब वह भरतपुर राज्य म गया तो वहा क महाराजा न स्वय आन म विवशता प्रकट करते हुये अपने प्रतिनिधियो के साथ वहुमूल्य उपहार भेजे। भरतपुर के राजा के न आने पर महाराव न अपनी अवहेलना समझन हुये उसके द्वारा भेजे गये उपहार वापस कर दिये। इस वहा के राजा न अपना अपमान समझकर महाराव को तत्काल भरतपुर राज्य छोडने का सदेश भेज दिया। महाराव वहा से वृ दावन चला गया

और कुछ दिनों तक भक्तिभाव में लिप्त होकर राज्य के प्रलोभन को भूल गया। परन्तु यहां रहते हुये उसे अनुभव हुआ कि जो लोग उसे घेरे रहते हैं व उससे धन प्राप्ति की आशा लगाये बैठे हैं। इसका प्रभाव महाराव पर अच्छा नहीं पड़ा। उसने समझ लिया कि ये लोग मेरा व्यक्तिगत सम्मान नहीं करते अपितु मुझे कोटा का महाराव जानकर अपने स्वार्थों के वशीभूत होकर मेरा सम्मान करते हैं। इसलिये अप्रैल के मध्य में यह वहां से मथुरा चला आया और यहां से वापस कोटा जाने का निश्चय किया। परन्तु तभी गोवर्धनदास ने उसे संदेश भिजवाया कि महाराव का इस समय कोटा जाना अच्छा नहीं रहेगा। गोवर्धनदास ने अपनी नजरबन्दी के उपरान्त भी गुप्त रूप से राज्य के बहुत से प्रतिष्ठित लोगों के साथ पत्र व्यवहार जारी रख छोड़ा था।

गोवर्धनदास के कारण धीरे धीरे कोटा में विद्रोह की आग सुलगने लगी और भयानक रूप लेने लगी। हाड़ा वंश के जो लोग पक्ष में थे उनको गोवर्धनदास बराबर उकसाता रहता था और उसके गुप्तचर भी उसे बढ़ा चढ़ाकर समर्थन की आशा दिलवाते रहते थे। इसी प्रकार के कितने ही संदेश महाराव के पास भी पहुंचते रहते थे। परिणाम यह निकला कि महाराव ने एक सेना का संगठन किया और उसको साथ लेकर हाड़ौती राज्य की तरफ चल पड़ा। रास्ते में जो राज्य मिले उनके राजाओं के पूछने पर महाराव ने कहा कि वह अपने राज्य का सिंहासन प्राप्त करने के लिये जा रहा है। अतः सभी ने यही अनुमान लगाया कि शायद ब्रिटिश सरकार के साथ महाराव का कोई नया समझौता हो गया है। इस प्रकार का अनुमान लगाकर सभी ने प्रसन्नता प्रकट की और महाराव के साथ चलने वाले लोगों की संख्या भी निरन्तर बढ़ने लगी। 1822 ई. की वर्षा ऋतु में जब वह चम्बल के किनारे पहुंचा तो उसकी सेना में तीन हजार लोग थे। नदी को पार कर महाराव ने अपनी बोली में एक ऐसी घोषणा प्रसारित करवाई जो लोग भली भांति समझ सकते थे और जिसकी अवज्ञा करना भी संभव न था। उसमें कहा गया था कि महाराव ने संधि के अनुसार न्याय की मांग की है इसलिये प्रत्येक हाड़ा राजपूत को उसकी उचित मांग के समर्थन में उसके पक्ष में आकर मिल जाना चाहिये। परिणाम यह निकला कि बहुत से हाड़ा राजपूत अपने वैधानिक राजा के पक्ष में आने लगे, हालांकि उनमें से कई राजराणा के उपकारों से दबे हुये थे और कइयों ने अपने राजा को कभी देखा भी नहीं था। परन्तु राजभक्ति और रक्त के सम्बन्ध ने उन्हें महाराव का समर्थन की नैतिक प्रेरणा दी। उस समय ऐसा लगा कि राज्य में प्रजा से लेकर राजकर्मचारियों और अधिकारियों तक में अपने महाराव के प्रति सहानुभूति थी और वे उसके समर्थक बन हुये थे। सरकार की तरफ लोगों को सख्त चेतावनी दी गई परन्तु महाराव की अपील का कुछ ऐसा जादू चला कि सरकारी प्रयासों को सफलता न मिली।

अभिभावक के विश्वासी सैनिकों पर भी इस समय भरोसा नहीं किया जा सकता था, यह बात स्वयं जालिमसिंह ने भी स्वीकार की थी। इस गड़बड़ी से

जालिमसिंह के शासन के स्वरूप और किशोरसिंह के प्रति लोगों की राजभक्ति का एक अनूठा उदाहरण देखने को मिलता है। इस सकट की स्थिति से बच निकलने के बाद जालिमसिंह ने अपने प्रभावोत्पादक ढंग से कहा था कि मेरे पीठ पर पड़े कपड़ों से भी मुझे विद्रोह की गंध आ रही है।" जालिमसिंह को इस गुत्थी को सुलझाने के लिये सकेत दिये गये परन्तु वह पूरक धाराओं के कार्यान्वयन पर डटा रहा और उधर महाराव ने भी एजेन्ट को सधि की एक प्रति भेजकर उससे पूछा कि क्या यह मानी जायगी अथवा नहीं? इस प्रकार की दयनीय अवस्था से बचा जा सकता था यदि पूरक धाराओं का प्रारम्भ में ही मूल सधि में सम्मिलित कर लिया गया होता। तब उसके अर्थ अथवा व्याख्या में किसी प्रकार की भिन्नता न रहती और ब्रिटिश सरकार पर विश्वास और न्याय का उल्लघन करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता था। हालांकि इस प्रकार के आरोप इस दृष्टि से बेबुनियाद मान जा सकते हैं कि जिन दो पक्षों ने मूल सधि की थी उन्हीं ने पूरक शर्तें भी स्वीकार की थी। फिर भी, वहां प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या एक ही म्यान में दो तलवारें रखने के स्थान पर हम जालिमसिंह की सेवाओं को किसी अन्य रूप में पुरस्कृत नहीं कर सकते थे? हमने एक को "वैधानिक" और दूसरे को 'यथार्थ' शासक मानकर सतोष कर लिया। यह सौभाग्य की बात थी कि वैधानिक राजा ने दूसरे पक्ष का समर्थन न कर अपनी मर्यादा को बनाये रखने पर ही जोर दिया। उसकी तरफ से जो मांगें प्रस्तुत की गई वे इस प्रकार थी—1 मेरे पास तीन हजार अगरक्षक सैनिक रहेंगे जो उसी की जाति के होंगे, 2 वह अपने सामन्तों को अपनी इच्छानुसार जागीरें प्रदान करने का अधिकारी होगा 3 सभी दुर्गों के अधिकारियों और सेनापति की नियुक्ति का अधिकार होगा, 4 सधि के द्वारा अभिभावक को प्रदत्त शासन व्यवस्था का अधिकार वशानुगत न होकर उसकी इच्छा पर निर्भर करेगा। सक्षेप में, महाराव की माग थी कि मालिक को मालिक की तरह और नौकर को नौकर की तरह रखा जाना चाहिये।

क्रोधित महाराव को बुरे और उग्र प्रकृति के लोगों जो प्रतिदिन बहुत बड़ी सख्या में स्वय अपने तथा अपने पूर्वजों के प्रति किये गये अन्याय की शिकायतों के साथ उसके पास एकत्र हो रहे थे की पकड़ से मुक्त करवाने के लिये जो कुछ सभव उपाय थे उन सभी का सहारा लिया गया और जब सफलता न मिली तो पूर्व स्वीकृत सधि को कायम रखने के लिये अग्रेजी सेना को आदेश दिया गया और वह सेना काली सिंधु नामक स्थान पर पहुंच गई। इस स्थान के एक तरफ महाराव की सेना थी और दूसरी तरफ जालिमसिंह की। दोनों ओर की सेनाओं के वहां पहुंचने के बाद से ही पानी का बरसना आरम्भ हुआ और कई दिनों तक लगातार भयानक रूप से पानी बरसता रहा। नदी में भयकर बाढ़ आ गई। ऐसी स्थिति में भी आपसी सुलह के प्रयास जारी रखे गये। महाराव ने अग्रेज सरकार तथा उसके प्रतिनिधियों में अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त किया। लेकिन ऐसा करते हुये भी वह कहता रहा 'सम्मान खोकर

जीवित रहने मे क्या लाभ और अधिकारो के बिना राज्य का क्या फायदा ? पूवजो के राज्य को खोकर जीवित रहने से मर जाना अधिक अच्छा है।"

महाराव की अपेक्षा जालिमसिंह का व्यवहार इस समय काफी उलझनो से भरा हुआ था। एक तरफ तो वह बार-बार अपनी राजभक्ति का प्रदशन कर रहा था और किसी को अपने सफेद बालो म कालिख लगाने का अवसर देना नही चाहता था। पर तु दूसरी तरफ उसन अपनी रक्षा के लिये पूरक धाराओ को अपनी ढाल बनाकर भविष्य के लिये अपने अधिकारो की सुरक्षा की अभिलाषा भी रखता था। पर तु इसके लिय वह स्वय कुछ करना नही चाहता था। उसे इस बात का भय था कि जिस राज्य की उसन जीवन भर रक्षा की है अब अपने पक्ष का समथन करने से वह बदनाम हो जायेगा। अंग्रेज सरकार की तरफ से उसे स्पष्ट कहा गया कि अगर वह भविष्य म अपने उत्तराधिकारियो के लिये अधिकारो का निर्णय चाहता है तो उसे खुलकर अपने पक्ष का समथन करना होगा। राजभक्ति के प्रदशन से काम नही चलेगा। इस पर भी वह अपने विचारो को स्थिर नही कर पाया। तब मैने उससे पुन कहा कि इस अवसर पर आपको अतिम निर्णय लेना चाहिये। डावाडोल विचारो के दुष्परिणाम निकल सकते है। क्योकि अब परिस्थितियाँ उस अवस्था म पहुच चुकी थी जिसम शातिपूर्ण उपाय साथक नही हो सकते थे।

महाराव की सेना स मुकाबिला करने के लिये सम्मिलित सेना के बारे मे जालिमसिंह के साथ उसके अधिकारियो की उपस्थिति मे बातचीत की गई। उसकी प्राथना पर सयुक्त सेना मे एकता बनाये रखन की दृष्टि से सयुक्त सेना की कमान एक अंग्रेज अधिकारी के सुपुद की गई।

पहली अक्टूबर को प्रात काल होते ही सेनायें आक्रमण करन के लिय आगे बढी। जालिमसिंह की सेना म आठ बटालियन पदल सनिको की थी चौदह दल घुडसवारो क और बत्तीस तोपें थी। प्रत्यक दल मे दो सौ सनिक थे। इनम से पाच बटालियन पदलो की और दस घुडसवारो की चौदह तोपो क साथ आगे बढ़ी और शेष जालिमसिंह क साथ सुरक्षित रखी गयी ताकि आवश्यकता पडने पर उनका उपयोग किया जा सके। अंग्रेजो की सेना म दो दल पदल और छ दल घुडसवारो के थ जिनम से एक दल गोलन्दाजो का था। दोनो सनायें आगे जाकर नदी से कुछ दूरी पर एक ऊंचे मैदान म खडी हो गईं। नदी क दूसरी तरफ महाराव की सना खडी थी। उसन अपनी बाई तरफ मेह अली को तनात किया और दायी तरफ अपने पाच सौ हाडा राजपूतो क साथ स्वय न मोर्चा सभाल रखा था। दोनो एक-दूसरे पर आक्रमण करन क लिय तयार खडी थी। उस स्थिति म भी मैं एक बार सुलह कराने क लिय तत्पर हुआ और अंग्रेज सेनापति स थोडा समय लेकर महाराव की तरफ बढ़ा और उस सम्मुख प्रस्तुत सरनाश स वचन का आगाह किया। परन्तु महाराव न अपनी मागो म स एक को भी कम करना स्वीकार नही किया। विवश होकर मुझे

वापस लौटना पड़ा और उसके साथ ही युद्ध शुरू हो गया। जालिमसिंह की तरफ से गोलों की वर्षा शुरू हुई और उनकी सेना आगे बढ़ी। परन्तु हाडाओं ने फतहाबाद और धौलपुर के युद्धों का पराक्रम दोहराते हुए जालिमसिंह की सेना पर जोरदार आक्रमण करके उसके बहुत से सैनिकों को मार डाला और आक्रमण करते हुए उस उस स्थान तक जा पहुंचे जहां जालिमसिंह अपनी सुरक्षित सेना के साथ खड़ा था। यहां आते-आते उनका आक्रमण कमजोर पड़ गया और भागने का कोई रास्ता न मिलने पर वे नदी पार कर दूसरी तरफ निकल गये। उधर जालिमसिंह के चार सौ सैनिकों ने महाराव को घेर लिया और जालिमसिंह की सुरक्षित सेना ने आगे बढ़ कर महाराव की सेना को तितर बितर कर दिया। दूसरी तरफ अंग्रेज सेना ने तेजी के साथ नदी को पारकर हाडा राजपूतों पर आक्रमण कर उन्हें खदेड़ दिया। बाद में पता चला कि वे हाडा नहीं अपितु पिंडारी लोग थे। हाडा राजपूत अब भी महाराव के सामने दीवार बनकर खड़े थे और ज्यों ही अंग्रेज सेना उनकी तरफ आगे बढ़ी उसे राजपूती शौर्य से टकरा कर पीछे लौटना पड़ा। उनके दो युवा सैनिक भी मारे गये। इसके तत्काल बाद ही अंग्रेजी सेना का दूसरा दल आगे बढ़ा पर तु महाराव ने उसका सामना नहीं किया और समीप के एक विशाल बाजरे के खेत में जाकर अदृश्य हो गया। अंग्रेजी सेना भी उसका पीछा करते हुये खेत में घुस पड़ी। मार्ग में उसे घायल पृथ्वीसिंह मिला। उसे तत्काल अंग्रेजी शिविर में पहुंचा दिया गया जहां उसको बचाने का पूरा प्रयास किया गया परन्तु वह बच न सका और मर गया। उसके पास जो कुछ आभूषण वगैरा थे, मैंने उसके लड़के को संभाल कर रखने के लिये दे दी। वह लड़का कोटा के सूने सिंहासन का पूर्ण उत्तराधिकारी था। पृथ्वीसिंह किसी अंग्रेज सैनिक के हाथों नहीं मारा गया था क्योंकि अंग्रेज सेना ने तो महाराव की सेना के पास पहुंचने की चेष्टा भी नहीं की थी। वह भालों की लड़ाई में मारा गया। उसकी पीठ पर भाले की लगी हुई चोटें इस बात का प्रमाण थी कि उस पर उसी के पक्ष के किसी आदमी ने अपना पुराना वैर निकालने के लिये इस प्रकार का विश्वासघात किया था।

महाराव अपने हाडा सैनिकों के साथ बाजरे के उस खेत को पार कर आगे के जंगल में चला गया। वह जंगल इतना घना था कि वहां पहुंच जाने पर सेना का ऊंचा हाथी भी दिखायी न दे। इस युद्ध में हाडाओं ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। लेकिन दो शूरवीरों ने जिस राजभक्ति का परिचय दिया उसका उल्लेख करना जरूरी है। उनकी वह राजभक्ति यूनान और रोम के प्राचीन वीरों से किसी प्रकार कम न थी। युद्ध करते करते सेनायें एक ऐसे संकीर्ण स्थान पर पहुंच गयी थी जो क्रमशः ऊंचा होता गया था। जालिमसिंह की सेना जब उस स्थान से गुजरने लगी तो एकाएक दूसरी तरफ की एक ऊंची भूमि से उस पर गोलीबारी की गई। चूं कि सेना को वापिस गोली चलाने का आदेश नहीं हुआ था अतः वह रुक कर उस तरफ देखने लगी तो पता चला कि नदी पार के एक ऊंचे स्थान से दो आदमी गोली चला रहे हैं। तब सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी गयी और तभी गोलियों की

मार से आगे के कई सैनिक घायल होकर गिर पडे। हमारी सेना ने उन दोना की तरफ गोलियाँ चलाइ पर तु किसी को एक भी गोली नही लगी। वे अब भी निर्भीक होकर गोलियाँ चला रह थे और जालिमसिह के सनिका को घायल करते जा रहे थे। इस पर जालिमसिह की सेना के दो रुहेले सैनिक हाथ मे तलवारें लेकर उनकी तरफ बढे और उन्ह मौत के घाट उतार दिया। आश्चर्य की बात है कि उन दो वीरो ने जालिमसिह के दस दल सनिको और बीस तोपो का सामना किया। वे दोना हाडा राजपूत थे। जालिमसिह ने हाडाओ को उनके अधिकार से वचित कर दिया था। व उसी का हिसाब चुकान आये थे।

महाराव अपनी बची हुई सेना के साथ युद्धक्षेत्र से निकल कर एक पहाडी नदी को पार करके निकल गया। परन्तु नदी पार करते ही उसका घायल घोडा गिर पडा और उसने वही दम तोड दिया। तीन सौ घुडसवारो के साथ वह बडोदा चला गया। हम प्रतिशोध लेने की आवश्यकता न थी। जिन लागो ने मर्यादा के सिद्धा त को लेकर अपना घर बार छोडा था, उनका पीछा कर उन्ह नष्ट करना उचित न था। वे हमारे विरुद्ध युद्ध मे लडे थे। परन्तु आत्मरक्षा के लिये ही उन्ह लडने के लिय विवश होना पडा था। अत हमने उन्ह अपना शत्रु नही समझा।

सधि को लेकर विचारा का जो सघष चला था, उसे अब पूरी तरह से दबा दिया गया था। विद्रोह को उकसाने के लिये उत्तरदायी दोनो प्रमुख लागो को हटा दिया गया था। एक दिल्ली म नजरब द था और दूसरा स्वग सिधार गया था। इस विद्रोह म कोटा क बहुत से साम ता ने जालिमसिह का पक्ष त्याग कर महाराव का साथ दिया था। पर तु वे इसके परिणाम स परिचित न थे। यदि हम चाहते ता उनको राजस्थान के किसी भी राज्य म आश्रय नही मिल सकता था। लेकिन ऐसा करना हमारा कतव्य नही था। महाराव क युद्धक्षेत्र स निकल जान के बाद उसके शिविर का सारा सामान हमारे अधिकार म आ गया था। उसम बहुत स कागजात साम ता क साथ महाराव के पत्र व्यवहार से सबधित थे जिनस पता चला कि हाडौती के सामन्ता और राजपूता को अपन पक्ष मे लान क लिय कौन कौन स कदम उठाय गय थ। उसका परिणाम यह हुआ कि जिन लागा न भी महाराव का साथ दिया था उन सभी का भारी क्षति उठानी पडी। लेकिन युद्ध समाप्ति क बाद उन सबूतों क आधार पर बदले की कायवाही करना उचित न समझत हुय सभी का क्षमा कर दन की घाेषणा की गई। इसक साथ ही जालिमसिह न यह घोषणा भी करवाइ कि जो साम त राज्य छाडकर चल गय हैं, व वापस लौट कर आ सकत है। उनक विरुद्ध किसी प्रकार की काई कायवाही नही की जायगी। इस घोषणा क कुछ सप्ताहा के भीतर सभी साम त और सरदार अपन अपन स्थाना पर लौट आय और राज्य म शाति स्थापित हो गइ।

महाराव अपन चन्द्र सवाइ म नाथद्वारा पहुच गया और वहा रहकर धार्मिक जीवन बिताने लगा। जिन लागा न अपन अपन स्वार्थो स प्रेरित हाकर महाराव का

उकसाकर विनाश की तरफ धकेला था वे सब उसका साथ छोडकर चले गये थ। काफी विलम्ब के बाद उसे सत्य का अनुभव हो गया और अब उसने सोचा कि सम्मान के साथ जीने का एकमात्र माग राजनीतिक आकाक्षा से ध्यान हटाकर भक्ति पूजा म मन लगाना ही है। उसने मूल सधि और पूरक सधि–दोनो के सम्ब ध मे अपने सभी प्रकार के दावो को त्याग दिया। उसके जीवन म आये इस परिवतन को देखकर जालिमसिंह की सहमति से महाराव को एक पत्र भेजा गया जिसमे उसके सम्मानपूवक कोटा मे आकर राजसिंहासन पर बठने सम्ब धी शर्तों का उल्लेख किया गया था। महाराव की स्वीकृति मिलने के बाद एक नया इकरारनामा तयार किया गया जिस पर एजेन्ट तथा जालिमसिंह दोनो ने हस्ताक्षर कर महाराव को भिजवा दिया। इस इकरारनामे मे महाराव के पद की मर्यादा सम्मानपूण और सुरक्षित रखी गयी और पूरी शक्ति लगा कर उसमे इस बात का निणय किया गया जिससे भविष्य मे कभी विरोध और विद्रोह की सम्भावना न रहे। नाममात्र के राजा और यथाथ शक्ति से सम्पन्न अभिभावक–दोनो के पद और अधिकारो को स्पष्ट कर दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य महाराव की सुरक्षा, सुविधा और मर्यादा को उदारतापूवक बनाये रखना था। महाराव के पूवजो मे कभी किसी राजा को राज्य की आमदनी का कोई हिस्सा आवटित नही किया गया था। पर तु इस इकरारनामे के अनुसार महा राव किशोरसिंह को काटा राज्य की आमदनी का बीसवा भाग दिया जाना था। यह आमदनी राजपूत राज्यो के सिरमौर मेवाड के राणा को अपने पारिवारिक खच के लिये राज्य से मिलन वाली धनराशि के बराबर थी। साथ ही इस बात की चेष्टा की गयी थी कि दुबारा दोनो के मध्य सद्भाव नष्ट न होने पाये।

जब ये सभी प्रारम्भिक बातें तय हो गइ तो उसके बाद महाराव किशोरसिंह को नाथद्वारा से कोटा बुलाने का प्रयास किया जाने लगा। इकरारनामे पर महाराव अपनी स्वीकृति पहले ही दे चुका था। अब केवल उसके विश्वास को पुख्ता बनाना था। अपने पिछले कृत्यो के कारण उसके भयभीत होने के कारण भी थे। नाथद्वारा से रवाना होने वाल दिन भी उसका मन नाना प्रकार के स देहो से ग्रस्त था। जब उ हं दूर करके उसे आश्वस्त किया गया तब वह नाथद्वारा से रवाना हुआ। कोटा पहुचने पर उसका शानदार स्वागत किया गया और उसे सिंहासन पर पुन बठाने की तयारी की जाने लगी। तभी एक भयानक षडय त्र का ज म हुआ। एक आदमी जिसका नाक नक्शा विशनसिंह से मिलता जुलता था लगडाता हुआ आ पहुचा और उससे अपने आपको विशनसिंह के नाम से जाहिर किया और यह भी प्रचारित किया कि माधोसिंह (जालिमसिंह का पुत्र) की आज्ञा से उसे लगडा बना दिया गया। यद्यपि इस षडय त्र का शीघ्र ही भडाफोड हो गया पर तु इसका उद्देश्य था, वह पूरा हो गया। थोडे समय के लिए ही सही इसने महाराव और उसके समथकों के मन म अविश्वास उत्पन्न कर ही दिया जो काफी प्रयासो के बाद ही दूर किया जा सका। वस्तुत वह आदमी विशनसिंह नही था। उसको इसीलिय भेजा गया था कि महाराव

भी अधिक आक्रोश उसको अपन उत्तराधिकारी पर था और उसने कहा भी कि 'पुत्र, तुम्हारे पापो के कारण मुझे सजा भुगतनी पडी है ।"

जालिमसिंह के राजनीतिक जीवन मे यह कसी विडम्बना रही होगी कि उसन इस युद्ध के दौरान आज स आठ वष पूव लडे गये भटवाडा के युद्ध को याद किया होगा, क्योकि यह स्थान अन्तिम युद्धस्थल मागरोल के समीप ही था । वह दिन उसके लिये कितना विलक्षण रहा होगा । साठ वष पहले कोटा को स्वाधीन करान के लिये उसन इस क्षेत्र मे तलवार उठाई थी और आज उसी स्वाधीन महाराव क नतृत्व मे स्वाधीनता के लिये लडन वाले हाडाओ के विरुद्ध उस तलवार उठानी पड रही थी ।

इस असाधारण व्यक्ति का जीवन इतना अधिक घटनाप्रधान रहा है कि उसके जीवन की कुछ विशेषताओ पर प्रकाश डालना आवश्यक है । वह राजा नही था फिर भी उसन राजाओ से भी अधिक शक्ति और अधिकार के साथ शासन किया था । वह वास्तव म असाधारण व्यक्ति था । वह प्राय कहा करता था कि अपने मन के भावो को मैं ही जानता हू । बात सही भी है । असाधारण व्यक्ति के मनोभावो को समझना आसान न था । कोटा राज्य मे सर्वोच्च पद को प्राप्त करन के बाद भी वह कभी सुख सुविधा और भोग विलास म नही डूबा था । वह एक गभीर स्वभाव का व्यक्ति था । अपने प्रभुत्व के दिनो मे भी वह कभी अत्यधिक प्रसन्न नही हुआ और भयानक से भयानक कठिनाइया अथवा प्रतिकूल परिस्थितियो म भी किसी ने उसे भयभीत और व्याकुल होते नही देखा । वह सभी परिस्थितियो म एक जसा मानसिक सतुलन बनाये रखता था । उसकी यह सबसे बडी विशेषता थी । उसमे आत्मसयम क साथ साथ आत्मबल भी था और अपने इ ही गुणो क कारण वह भयानक कठिनाइयो के मध्य भी प्रसन्नचित्त बना रहता था । जिन लोगो ने उसके निकट सम्पक मे रहकर उसे समझा है, वे जानते हैं कि जालिमसिंह शुरू से ही आशावादी रहा था । वह अपनी किसी भी योजना के बारे मे असफलता की कल्पना नही करता था । उसका कहना था कि एक पुरुषार्थी को सदा सफलता मे विश्वास रखत हुये काय करना चाहिये । असफलता मनुष्य की निबलता है । उसका एक अ य गुण किसी के प्रति एकाएक स देह न करना था । उसका मानना था कि जो दूसरे मे विश्वास रखता है उसको कभी क्षति नही उठानी पडती ।

उसम अपने कमचारियो स काम लेने की योग्यता थी और अपन सद्व्यवहार से वह उनके हृदयो पर अधिकार कर लता था । शासक के लिय इस प्रकार का गुण आवश्यक होता है । जसाकि पहले बतलाया जा चुका है कि राज्य के बहुत से अधिकारियो, यहा तक कि कुछ कमचारियो क साथ भी उसक अतरग मैत्रीपूर्ण सम्ब ध थे । उसकी शासकीय सफलता म इसका योगदान भी कम न रहा था । इसक उपरात उसकी विशपता इस बात मे थी कि वह अपने इन मित्र अधिकारियो को किसी भी

:यति म अपने ऊपर निय त्रण स्थापित करने का अवसर नही देता था । उन्ह
: और अपने प्रति निष्ठावान बनाये रखने के लिये वह उन्ह नियमित रूप से समय
तन चुकाता था और विशेष अवसरो तथा विशेष सेवाओ के लिये उन्ह उदारता-
पुरस्कृत करने से कभी नही चूकता था । इससे उनको प्रोत्साहन मिलता रहता
उसम बातचीत करने का बहुत अच्छा गुण था । वह अपन तक और सद्भाव
हार दूसरे लोगो को प्रभावित करना भली भाति जानता था । प्रजा उसकी बात-
मे हमेशा सतुष्ट और प्रसन रहा करती थी । अपराधिया तक से वह सतोषजनक
मे बातचीत करता था ।

जहा तक कृषि की उन्नति का सवाल है, जालिमसिंह का नाम अग्रणीय था ।
ने अपन राज्य की कृषि को उन्नति के शिखर पर पहुचा दिया । वह कृषि का एक
वसाय समझता था और इसके लिये पदावार को बढाकर लाभ अर्जित करना वह
ती भाति जानता था । उसके प्रयासो के कारण काटा राज्य की कृषि-पदावार
नी अधिक बढ गई कि उसके राज्य मे अकाल के वर्षों मे भी राज्य म कभी अनाज
ी कमी अनुभव नही की गई अपितु राजपूताना के दूसरे राज्य भी इन दिनो मे
टा से अनाज मगवाया करते थे ।

जालिमसिंह कई आश्चयजनक गुणो से सम्पन्न था । अपराधियो के प्रति वह
ठोर था और आवश्यकता पडने पर उन पर सख्त अत्याचार करन से भी नही
कता था । जिन लोगो को वह सहायता प्राप्त करने का पात्र समझता था, उनकी
वह पूरी तरह से सहायता भी करता था । उसने अपनी प्रजा पर नाना प्रकार के कर
लगाये थे । यहा कि तक साधु स यासियो को भी अपनी दान दक्षिणा अथवा भिक्षा मे
प्राप्त धनराशि का दसवा भाग राज कर चुकाना पडता था । दूसरी तरफ, जहा
आवश्यकता अनुभव करता वहा स्वण आभूषण भी दान मे दे देता था । एक तरफ
उसने अपन राज्य के साम तो को राज्य छोडने के लिये विवश कर दिया तो दूसरी
तरफ अ य राज्यो स आने वाले साम तो को अपने यहा आश्रय देकर उनकी हर सभव
सहायता किया करता था । पर तु वह कवियो और जादूगरो पर विश्वास नही करता
था । क्योकि वे लोग जिस प्रकार की झूठी प्रशसा किया करते थे, वह उसका पस द न
थी । उसका मानना था कि इन कवियो की झूठी प्रशसा के कारण ही अनेक राजवशा
का पतन हुआ था । अपन इस स्वभाव के लिये वह समूचे राजपूताना मे प्रसिद्ध था ।
इसलिये वह जब कभी दूसरे राज्य मे जाता था तो कोई कवि अथवा भाट उसकी
सेवा म उपस्थित होन की इच्छा ही नही करता था । अनजान म यदि कोई चला
भी गया तो निराश लौटना पडा ।

जालिमसिंह म परिश्रम करने की अपार क्षमता थी । वृद्धावस्था म भी वह
जिस ढग स काम किया करता था, उसे देखकर लोग आश्चय किया करत थ । उसे
आलसी और निकम्म लोगो से सख्त नफरत थी और विलासी शासक तो उसको

बिल्कुल पस द न थे। वह कहा करता था कि जिस प्रकार घुन अनाज के ढेर को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार आलस्य मनुष्य के जीवन को नष्ट कर देता है। यही कारण है कि वह स्वय विलासिता से दूर रहा और दूसरा का भी विलासिता से दूर रखन का प्रयास किया। उसका मानना था कि आलस्य और विलासिता एक राजपूत को अपन धम और क्तव्य से गिरा देती है। राजाओ क लिय उसकी शिक्षा थी कि राज्य की सुरक्षा सिंहासन पर बठे रहन से नही अपितु घोडे की पीठ पर बठकर की जाती है। वह स्वय एक अच्छा घुडसवार और शिकारी था और जब भी समय मिल पाता अपन घाडे पर सवार होकर शिकार खेलन के लिय निकल जाता था। वह अपनी एक आख तो पहले ही खो चुका था। वृद्धावस्था ने उसकी दृष्टि को जब कमजोर बना दिया ता वह पालकी पर सवार हाकर शिकार खेलन जाने लगा। उस समय उसके साथ काफी सख्या म सनिक चला करते थे। कई अवसरा पर वह अपन सामन्तो के साथ भी शिकार खेलने के लिय निकल पडता था और ऐसे अवसरा पर वह उनके साथ बिना किसी हिचक के आत्मीयता के साथ बातें किया करता था। कहा जाता है कि अवसर मिलने पर वह छिपे तौर पर अपन अधीनस्थ कमचारियो और अधिकारियो की बातें सुना करता था। उनकी कमजोरियो की उपेक्षा करके वह उनकी अच्छी बातो से कुछ शिक्षा लेन का प्रयास किया करता था। जगल म शिकार के बाद घन वृक्षो की छाया मे सुस्ताते हुय वह उपस्थित सभी लोगो के साथ उस दिन की घटनाओ के बारे सुनता सुनाता था और हसी मजाक के प्रसगो म उनका साथ दिया करता था। शिकार के बाद सभी के साथ बठकर भोजन करता था और भोजन के समय भी वह साथ बठे लोगो से अनेक प्रकार के राजकीय कार्यों के बारे म उनकी राय जानने का प्रयास किया करता था।

इसमे कोई स देह नही है कि वह शासन करने म कठोर था और अपराधियो को कभी क्षमा नही किया करता था। उसका मानना था कि बिना कठोरता के शासन व्यवस्था सुचारु रूप से नही चल सकती। इसलिय इस मामले म उसने कभी शिथिलता नही आने दी। आपसी कलह विद्रोह उपद्रवो और उलझनपूर्ण कठिनाइयो की स्थिति मे भी उसके शासन म कभी शिथिलता न आ पाई। इसलिय अपराधी और उपद्रवकारी उससे हमेशा भयभीत रहते थे। उसमे मनुष्य को पहचानने की अपूर्व क्षमता थी तो वह अच्छे और बुरे लोगो की तुर त पहचान कर लेता था। वह बुरे आदमियो को कभी राज्य की सेवा मे नही रखता था। दूसरे लोगो की अनुशसा पर वह कभी विश्वास नही करता था। अपने इन समस्त गुणो के साथ वह एक पराक्रमी सनिक और सुयोग्य सेनापति था और अपने रणकौशल स उसने अनेक बार कोटा राज्य की सुरक्षा की थी और कोटा जसे छोटे से राज्य को भी सम्मानपूर्ण स्थान दिलवाया। अराजकता और अव्यवस्था के उन दिनो मे यदि जालिमसिंह न होता तो उस राज्य को कसे दिन देखने पडते—यह कहना बहुत कठिन है।